अंतगड-दसाओ
ANTAGADA DASAO

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्री अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

मूल संस्कृत-छाया, पदार्थ मूलार्थ एवं
निर्वाण पथ प्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सहित



व्याख्याकार
जैनधर्म दिवाकर जैनागम-रत्नाकर साहित्य-रत्न
आचार्यप्रवर स्वर्गीय श्री आत्माराम जी महाराज

सम्पादक
पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

प्रकाशक
आचार्य श्री आत्मा राम जैन प्रकाशन समिति
जैन स्थानक, लुधियाना।

ग्रन्थ | श्री अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

*

प्रकाशन संख्या | एक हजार

*

व्याख्याकार | जैनधर्म-दिवाकर, जैनागम-रत्नाकर, साहित्य-रत्न
स्वर्गीय आचार्य-प्रवर श्री आत्माराम जी महाराज

*

संशोधक | मुनिवर श्री फूलचन्द जी 'श्रमण'

सम्पादक | पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

*

प्रकाशक | आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति,
जैन स्थानक लुधियाना

*

मुद्रक | आत्मजैन प्रिंटिंग प्रेस
३५० इण्डस्ट्रियल एरिया-ए,
लुधियाना

*

प्रकाशन तिथि | वीर-निर्वाण संवत् २४९६
सम्वत् २०२७ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

मूल्य
बीस रुपए

*

प्रास्ताविकम्

अनादि काल से आत्मा कर्मों के कारण अपने वास्तविक रूप को भूलकर अज्ञानवश नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव कर रहा है और फिर उन्हीं कर्मों के निमित्तों से नूतन कर्मों का संचय कर रहा है, किन्तु सम्यग्क्षयोपशम के न होने के कारण से ही औदयिक भाव की प्रकृतियों में निमग्न हो रहा है, अतः काल-लब्धि के परिपक्व होने पर ही इस को विकास-मार्ग की ओर गमन करने का समय प्राप्त हो सकता है। जब अनादि सान्त कर्मों की प्रकृतिवाला आत्मा शुद्ध क्षयोपशम के होने पर मनुष्य-योनि में आता है, तब वह शुभ निमित्तों के मिल जाने पर धर्म-क्रियाओं की ओर झुकने लगता है।

धर्म-विषय

अपरञ्च यह भी ध्यान में रहे कि धर्म-क्रियाओं के स्थान पर भी बहुत सी आत्माएं अधर्म क्रियाओं के करने मे प्रयत्नशील बन जाती है, इसका मुख्य कारण सम्यग्-दर्शन का न होना ही है, क्योंकि धार्मिक क्रियाओं के निर्णय करने में सम्यग्दर्शन और सम्यग्-ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है, वास्तव में सम्यग्दर्शन और सम्यग्-ज्ञान के होने पर ही—सम्यक्-चारित्र की उपलब्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं।

सम्यक् चारित्र

जब तक उक्त तीन रत्नों की परस्पर एकरूपता नहीं होती तब तक मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी कारण से आचार्य श्रीउमास्वाति जी 'तत्त्वार्थसूत्र' के प्रथमाध्याय के प्रथम ही सूत्र में कहते है कि—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये ही तीनों मोक्ष के मार्ग हैं। सो इन तीनों के एक साथ मिल जाने पर आत्मा स्व-कल्याण कर सकता है तथा उसे निर्वाण-पद की प्राप्ति सुगमतया हो सकती है, किन्तु यह विषय उन्हीं आत्माओं के लिये है जो अनादि-सान्त कर्मोंवाले हैं।

इस स्थान पर यह शंका उत्पन्न होनी भी स्वाभाविक है कि जब कर्मों को अनादि माना गया है तो फिर कर्मों में सान्तता किस प्रकार आ सकती है? इस शंका के समाधान में कहा जाता है कि—कर्मों का क्रम (प्रवाह) अनादि है, कर्म अनादि नहीं हैं। कारण कि अनादि आत्मा अनादि काल से कर्म करने और भोगने के चक्र में फंसा हुआ है, किन्तु जब इसने नूतन कर्मों के संचार का निरोध कर दिया तब

फिर यह पूर्व कर्मों का तप आदि द्वारा क्षय कर सकता है। इसी कारण से भव्य आत्माओं के कर्मों की संज्ञा अनादि-सान्त मानी गई है।

किन्तु जब आत्मा कर्मों से सर्वथा विमुक्त हो जाता है तब उसे निर्वाण-पद की प्राप्ति हो जाती है। जैनागम कर्मों का फल मोक्ष नहीं मानता, यहां कर्म-क्षय को ही मोक्ष माना जाता है।

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र में इस प्रकार के भव्य जीवों की दशा का वर्णन किया गया है जो अन्तिम श्वासोच्छ्वास में निर्वाण-पद प्राप्त कर सके हैं, किन्तु आयुष्य-कर्म के शेष न होने से केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन से देखे हुए पदार्थों को प्रदर्शित नहीं कर सके, इसी कारण से उन्हें 'अन्तकृत् केवली' कहा गया है।

प्रस्तुत शास्त्र बारह अंगशास्त्रों में से आठवां अंग शास्त्र है, इसका अर्थ अर्हत्-प्रणीत और सूत्र गणधर प्रणीत हैं। इसके आठ वर्ग हैं और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन हैं। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग में दस-दस अध्ययन रखे गए है, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन हैं, चतुर्थ और पंचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन है, छठ वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवें वर्ग के दस अध्ययन है, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात में इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वर्णन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है?' इस प्रकार की शका के समाधान मे श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अतः यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय में होनेवाले जीवों की सक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि अन्य तीर्थङ्करों के शासन में होनेवाले अन्तकृत् केवलियों की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—**द्वादशाङ्गीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।**

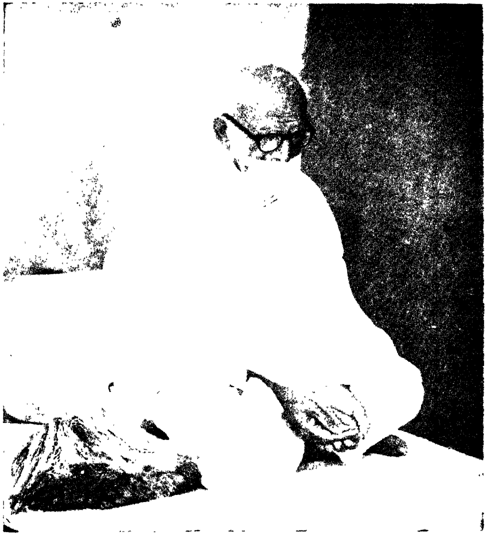
यह शास्त्र भव्य प्राणियों के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अतः इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-संख्या में तथा पद-संख्या में अल्प-सा रह गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी की वाचना का यह आठवां अंग है। भव्य जीवों के बोध के लिये ही इसमें कतिपय जीवों की संक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र के व्याख्याकार

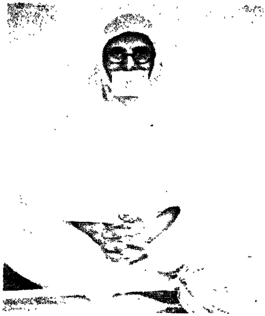
जैनधर्मदिवाकर, जैनागमरत्नाकर, साहित्य-रत्न, तितिक्षावतार

आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज



जन्मस्थान–"राहों" जिला जालन्धर पंजाब,
जन्म-सम्वत्–१९३९ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी,
माता-पिता–श्री परमेश्वरी देवी जी,
श्री मन्शाराम जी,
वंश-गोत्र–क्षत्रिय वंश तथा चोपड़ा गोत्र
दीक्षा-सम्वत्–१९५१ आषाढ शुक्ला पचमी,
दीक्षा-गुरु–श्री शालिगराम जी महाराज,
उपाध्याय-पद–१९५९ अमृतसर पंजाब,

आचार्य-पद पंजाब–सम्वत् २००३ लुधियाना शहर,
प्रधानाचार्य-पद–२००९ सादड़ी सम्मेलन में,
सम्पूर्ण आयु–७९ वर्ष ४ मास २॥ घण्टे
चातुर्मास क्रम–१९ चतुर्मास देश के विभिन्न शहरों
में तथा स्थविरवास के कारण ४९
चतुर्मास लुधियाना मे
स्वर्गवास–दिनाङ्क ३१ जनवरी, सन् १९६२,
वि० स० १९१८, लुधियाना मे ।



जैन-शासन-प्रभाविका स्वर्गीया श्री चन्दा जी महाराज की अन्तेवासिनी
महासती परमार्यिका श्री सौभाग्यवती जी महाराज
जिनकी दिव्य प्रेरणा से श्रीमती विद्यावती जी जैन ने इस शास्त्र के लिये
कागज की व्यवस्था करके पुण्य-लाभ प्राप्त किया।



वैरागन शिमलाकुमारी जैन
सुपुत्री--श्री लब्भूरामजी जैन, (सामाना)
आजकल आप महासती
श्री सावित्रीदेवी जी के नेश्राय मे
साध्वी श्री उमेशकुमारी जी के
नाम से साधना-संलग्न है।



वैरागन वीनाकुमारी जैन
सुपुत्री--श्री जगन्नाथजी जैन (लुधियाना)
आजकल आप आर्या
श्री उमेशकुमारी जी महाराज के
नेश्राय मे साध्वी-जीवन व्यतीत
कर रही है।

कराया गया है, किन्तु समवायाङ्ग-शास्त्र में सविस्तर तथा नन्दीशास्त्र में संक्षिप्तता से अन्तकृद्दशाङ्ग के विषयों का वर्णन किया गया है। इस विषय में निम्न प्रकार से उल्लेख प्राप्त होता है—

नन्दी सूत्र में द्वादशाङ्गी वाणी के विषय का वर्णन करते हुए आठवें अंग का विषय निम्न प्रकार से लिखा है—

से किं तं अन्तगडदसाओ ? अन्तगडदसासु णं अन्तगडाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अन्तकिरियाओ, आघविज्जन्ति । अन्तगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला । संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणन्ता गमा, अणन्ता पज्जवा, परित्ता तसा, अणन्ता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जन्ति, पण्णविज्जन्ति परूविज्जन्ति दंसिज्जन्ति, निदंसिज्जन्ति, उवदंसिज्जन्ति । से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया । एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ । से त्तं अन्तगडदसाओ ।।सू० ५२।।

भगवती सूत्र (व्याख्या-प्रज्ञप्ति) के शतक २५, उद्देशक ३, सूत्र ५२ में लिखा है कि —

कइविहे णं भंते ! गणिपिडए पण्णत्ते ? गोयमा ! दुवालसंगे गणिपिडए पण्णत्ते, तं जहा—आयारो जाव विट्ठिवाओ। से किं तं आयारो ? आयारे ण समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयर० एवं अंगपरूवणा भाणियव्वा, जहा नंदीए जाव—

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगो ।।

इस कथन से श्री नन्दी सूत्रोक्त अन्तकृत् सूत्र का विषय व्याख्या-प्रज्ञप्ति में भी स्वीकार किया गया है, किन्तु उक्त दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकता कि अन्तगड सूत्र शास्त्र है और उसका विषय भी अपौरुषेय है, इस प्रकार जिस तीर्थङ्कर का समय आता है उनके मुख्य गणधर शिष्य उस मार्ग पर चलनेवाले व्यक्तियों के नाम देकर उनके आदर्श जीवन जनता के सन्मुख रखते हैं, जिससे अन्य आत्माएं भी उनका अनुकरण करती हुई सफल मनोरथ हो जाती हैं ।

नन्दीसूत्र के "संखेज्जा अक्खरा" "अनन्ता गमा" यह दोनों पद बड़े ही विस्तृत अर्थ के देनेवाले हैं, क्योंकि इनमें लिखा है कि अन्तगडसूत्र के अक्षर तो संख्यात हैं, किन्तु गमा—अर्थ अनन्त हैं, इस तरह यह सूत्र अनन्तज्ञान से परिपूर्ण है, अतः यह अंगशास्त्र प्राणीमात्र के अध्ययन करने योग्य है। इसका अध्ययन योग्यतापूर्वक ही होना चाहिए। यद्यपि 'व्यवहार सूत्र' के दशवें उद्देशक में पाठ्यक्रम नियत किया गया है और साथ ही काल-संख्या भी नियत की गई है, परन्तु यह अंगशास्त्र उस पाठ्य-क्रम में नहीं ग्रहण किया गया, कारण कि यह गद्यमय शास्त्र चरित-विषय का प्रदर्शक होने से सदैव काल स्वाध्याय करने योग्य है।

पाठ्य-क्रम में १२ अंग-शास्त्रों में केवल पहले पांच ही अंग-शास्त्र ग्रहण किये गए हैं। तथा च पाठः—

तिवास-परियागस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ आयारकप्प नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२१॥ चउवास-परियागस्स समणस्स निग्गंथस्स कप्पइ सुयगडे नामं अंगे उद्दिसित्तए ॥२२॥ पंचवास परियागस्स समणस्स निग्गंथस्स कप्पइ दसाकप्पववहाराओ उद्दिसित्तए ॥२३॥ वसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ विवाहे नामं अंगं उद्दिसित्तए ॥२४॥ एक्कारसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२५॥ बारसवास-परियागस्स कप्पइ गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२६॥ तेरस वास-परियागस्स कप्पइ उट्ठाणपरियावणिए, समुट्ठाणसुए, देविंदोववाए, णागपरियावणिए नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२७॥ चउद्दसवास-परियागस्स कप्पइ सुमिणभावणा नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२८॥ पण्णरसवास-परियागस्स कप्पइ चारणभावणा नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥२९॥ सोलसवास-परियागस्स कप्पइ तेयणिसग्गे नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३०॥ सत्तरसवास परियागस्स कप्पइ आसीविसभावणा नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३१॥ अट्ठारसवास-परियागस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ दिट्ठीविसभावणा नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए ॥३२॥ एगूण वीसवास-परियागस्स समणे णिग्गथे सव्वसुयाणुवाई भवइ ॥३३॥ वीसवास परियागस्स समणे णिग्गंथे सव्वसुयाणुवाई भवइ ॥

(व्यवहारसूत्र, उद्दे० १०)

उक्त पाठ्यक्रम में 'ज्ञाता-धर्म-कथाङ्ग सूत्र' से लेकर 'विपाक सूत्र' पर्यन्त ६ अंगशास्त्र नहीं ग्रहण किये गए हैं, न ही चार मूल सूत्रों का ही ग्रहण है, इतना ही नहीं, अपितु यहां उपाङ्ग शास्त्रों में से भी किसी का नाम उपलब्ध नहीं होता, किन्तु

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि यहां जिन सूत्रों के नाम लिखे गये हैं उनमें से अधिकांश सूत्र अनुपलब्ध हैं।

कथन करने का सारांश इतना ही है कि प्रस्तुत शास्त्र योग्यतापूर्वक अस्वाध्याय के काल को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति के लिये प्रत्येक समय में स्वाध्याय करने योग्य है।

वाचनादि स्वाध्याय अक्षरात्मक होने से उसकी भाषा संज्ञा बन जाती है। सभी जैनागम अर्द्धमागधी भाषा में ही लिखे गये हैं। यह भाषा अत्यन्त मधुर अनन्त अर्थों की व्यञ्जिका है। प्राकृत भाषा से इसका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, कुछ ही नियमों में विशेषता है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र से पता चलता है कि देव भी इसी भाषा में संभाषणादि कर विशेषतया प्रसन्न होते हैं। तथा च पाठः—

देवा णं भंते! कयराए भासाए भासंति? कयराए वा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ? गोयमा! देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति, सावि य णं अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ॥

व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक ५, उद्देशक ४, सूत्र १६१।

अभयदेवसूरिवृत्तिः—देवा णं इत्यादि—'विसिस्सइ' त्ति विशिष्यते विशिष्टो भवतीत्यर्थः, 'अद्धमागहाए' त्ति—भाषा किल षड्विधाः भवति, यदाह—

प्राकृत-संस्कृत-मागध-पिशाच-भाषा च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः॥

तत्र मागधभाषा-लक्षणं किञ्चित्-किञ्चिच्च प्राकृतभाषालक्षणं यस्यामस्ति सार्द्धमागधी इति व्युत्पत्त्याऽर्द्धमागधीति।

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि षड्भाषा होने पर भी देव अर्द्धमागधीभाषा में ही संभाषण कर विशेषतया प्रसन्न होते हैं। अतः इसका नाम "देववाणी" भी है तथा तीनों कालों के तीर्थङ्करदेव इसी भाषा में व्याख्यानादि देते हैं, उनके अतिशय के माहात्म्य से यह भाषा सर्वभाषाओं में परिणत हो जाती है, या यों कहिये कि तीर्थङ्कर देव सर्वज्ञ होने के कारण इसी भाषा का अनुवाद सर्वभाषा में कर देते हैं। परिणत होने का यही तात्पर्य है कि उसका अनुवाद प्रत्येक भाषा में हो जाता है।

समवायाङ्ग सूत्र के ३४ वें समवाय में ३४ बुद्धातिशयों का वर्णन किया गया है, जिनमें २२वां और २३वां अतिशय भाषा से सम्बन्ध रखता है, तथा च पाठ :—

भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ, सावि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं, दुप्पय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाणं अप्पणो हिय-सिव-सुहय-भासत्ताए परिणमइ।

इस सूत्र की व्याख्या में वृत्तिकार अभयदेवसूरि लिखते हैं कि—

"अद्धमागहीए" त्ति प्राकृतादीनां षण्णां भाषा विशेषाणां मध्ये या मागधी नाम भाषा 'रसोर्लसौमागध्या' मित्यादि लक्षणवन्ती, सा असमाश्रितस्वकीयसमग्रलक्षणाऽर्द्धमागधीत्युच्यते, तया धर्ममाख्याति। तस्या एवातिकोमलत्वादिति द्वाविंशः। "भासिज्जमाणी" त्ति भगवताऽभिधीयमाना "आरियमणारियाणं" त्ति आर्यानार्यदेशोत्पन्नानां द्विपदाः—मनुष्याश्चतुष्पदाः—गवादयः, "मृगाः" आटव्याः, "पशवो" ग्राम्याः, पक्षिणः प्रतीताः, सरीसृपाः—उरःपरिसर्प्पाः, भुजपरिसर्प्पाश्चेति, तेषां किम्? आत्मन आत्मनः—आत्मीयया आत्मीययेत्यर्थः भाषातया—भाषा भावेन परिणमतीति—सम्बन्धः, किम्भूताऽसौ भाषा? इत्याह—हितम्—अभ्युदयः, शिवं—मोक्षः, सुखं—श्रवणकालोद्भवमानन्दं ददातीति हित-शिवसुखदेति ॥२३॥

उक्त दोनों अतिशयों में अर्द्धमागधी भाषा विषय जो लिखा गया है वह अतिशयोक्ति नहीं है, किन्तु अर्द्धमागधी भाषा पठन करने से जो आनन्द आता है, वह अनुभवरूप ही होता है, किन्तु इन अतिशयों से साथ में यह भी शिक्षा उपलब्ध होती है कि जिस प्रकार भगवद्-वाणी जो जिसकी भाषा हो उसी में अनुवाद रूप में परिणत हो जाती है। इसी प्रकार वर्तमान में भी जो जिसकी भाषा है श्री भगवद्-वाणी का उसी भाषा में अनुवाद कर उनको शिक्षित किया जाए तो शीघ्र ही भगवान् के सदुपदेशों का प्रचार हो सकता है तथा जैन-धर्म का प्रचार विश्वव्यापी भाषाओं में होने से विश्व भर में हो सकता है। प्रत्येक भगवद्-वाणी-प्रेमी को इस विषय में विचार करना चाहिए।

"प्रज्ञापणा"—"पण्णवणा" सूत्र के प्रथम पद में आर्यता का वर्णन करते हुए भाषार्य-विषय निम्न प्रकार से दिया गया है; तथा च पाठ—

से किं तं भासारिया? भासारिया जे ण अद्धमागहाए भासाए भासंति। जत्थ वि य णं बभी लिवी पवत्तइ, बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेक्ख विहाणे पण्णत्ते, तं जहा—बंभी, जवणाणिया, दोसा-पुरिया, खरोट्ठी, पुक्खरसारिया, भोगवइया, पहराइया, अंतक्खरिया, अक्खरपुट्ठिया, वेणइया, णिण्हइया, अंकलिवी, गणियलिवी, गंधव्वलिवी, आयंसलिवी, माहेसरी, दोमिलिवी, पोलिंदी।

इस कथन से भी सिद्ध हो जाता है कि भाषार्य उन्हीं का नाम है जो अर्द्ध-मागधी भाषा भाषण करते हैं तथा ब्राह्मी लिपि के अठारह भेद जहां पर प्रचलित हों उन्हीं को भाषार्य कहा जाता है, अतः उक्त प्रमाणों से यह भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि अर्द्धमागधी भाषा भगवद्-भाषा भी है, देव-भाषा भी है और आर्य-भाषा भी है, अतः जैनागम इसी भाषा में निर्मित हैं।

: सात :

इस शास्त्र की अर्द्धमागधी भाषा साहित्यिक दृष्टि से बड़े ही महत्त्व की है और भाषा छटादार होने से अति मधुर है तथा अलंकारादि से युक्त होने के कारण अत्यन्त मनोहर है ।

व्याख्या का नाम

इस शास्त्र में उन्हीं जीवों की संक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है जो उसी भव में निर्वाण-पद प्राप्त कर सके, इसी कारण से इस व्याख्या का नाम भी **"निर्वाण-पथ-प्रकाशिका"** रक्खा गया है। जिस से पाठकजनों को इसके अध्ययन और मनन से निर्वाण-पद विषय का विशेष बोध हो सकता है ।

सहायक ग्रन्थ

इस ग्रन्थ की व्याख्या लिखते समय मेरे पास तीन प्रतियां थीं, एक तो आगमोदय समिति की ओर से मुद्रित हुई और दो प्रतियां हस्तलिखित टब्बेवाली, किन्तु मैंने आगमोदय समिति की ओर से जो मुद्रित पाठ है उसी को लिया है क्योंकि टब्बेवाली प्रतियां प्राय: अशुद्धियों से युक्त थीं, जहां पर आवश्यकता प्रतीत हुई है, वहां पर पाठ-भेद भी दिखला दिया गया है ।

शिक्षाएं

इस सूत्र के अध्ययन से मुमुक्षुजनों को ऐसी अनेक अमूल्य शिक्षाओं का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है । जैसे—

धैर्य और दृढ़ विश्वास गजसुकुमार की तरह होना चाहिए ।

सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए ।

श्रावक लोगों को सुदर्शन श्रमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए, जिसका आत्म-तेज देव भी सहन नहीं कर सका ।

धर्मविश्वास कृष्ण वासुदेव की भांति होना चाहिए ।

प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्त कुमार के समान होनी चाहिए ।

त्यागवृत्ति कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियों की भांति होनी चाहिए ।

तपश्चर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियों की भांति होनी चाहिए, जो आठवें वर्ग में सविस्तार वर्णित है। इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओं से अलंकृत हो रहा है । जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओं को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता में आदर्श रूप बन जाता है ।

उपकार

यद्यपि इस शास्त्र की समुचित व्याख्या करने में मैं सर्वथा असमर्थ था, तथापि परम पूज्य आचार्यवर्य श्री श्री १००८ पूज्य मोतीराम जी महाराज, उनके

शिष्य गणावच्छेदक स्थविर-पद-विभूषित श्री श्री १००८ गणपतिराय जी महाराज, उनके शिष्य गणावच्छेदक स्थविर-पद-विभूषित श्री श्री १००८ बाबा जयरामदास जी महाराज, तथा उनके शिष्य प्रवर्त्तक-पद-विभूषित व ज्योतिर्विद मेरे परम पूज्य गुरु श्री श्री १००८ शालिग्राम जी महाराज जी की महती कृपा से इस अनुवाद को मैं पूर्ण कर सका हूं।

मेरे श्रुताचार्य श्री श्री १००८ पूज्य मोतीराम जी महाराज हैं, आपकी शान्त मुद्रा, ज्ञान-दान की निरन्तर वर्षा, वात्सल्य भावादि आपके सद्गुण जब मेरी स्मृति में आते हैं तब आपके ही गुणों में लीन होने की भावना उत्पन्न हो जाती है, अतः यह उनकी कृपा का ही सुफल है, जो मैं इस टीका को पूर्ण कर सका हूं।

निवेदन

यदि मैंने प्रमादवश या स्खलित स्वभाव होने के कारण कुछ शास्त्र-विरुद्ध लिख दिया हो तो विद्वज्जन मुझ पर क्षमा की दृष्टि रखते हुए उस विषय का संशोधन कर मुझे सूचित करने की कृपा करें, जिससे आगामी आवृत्ति में उस विषय का संशोधन किया जा सके।

वीर निर्वाण सम्वत् २४६३,
विक्रम संवत् १९९४,
वैशाख शुक्ला ३, बुधवार
जैन स्थानक, जीरा, पंजाब

चतुर्विध श्रीसंघ-सेवक
मुनि
आत्माराम —

प्रकाशन के सम्बन्ध में

ज्ञान आत्मा का विशेष गुण है—ऐसा विशेष गुण जिसे मोक्ष-मार्ग का प्रथम सोपान कहा जाता है, इसीलिये जैन-संस्कृति ज्ञान को विशेष महत्त्व देती हुई कहती है—स्वाध्याय-आभ्यन्तर तप है और तपस्वी श्रमण के लिये इसका दैनिक अनुष्ठान आवश्यक है। स्वाध्याय से चित्तवृत्तियों पर अपूर्व संयम होता है, बुद्धि का सर्वतोमुखी विकास होता है और समाज-निर्माण के दायित्व को पूर्ण करने के लिये श्रमण साधु के पास जिस ज्ञान-शक्ति का होना अनिवार्य है उस ज्ञान-शक्ति का विकास होता है। इसी लक्ष्य की प्रधानता होने के कारण जैन मुनीश्वर अपने जीवन का अधिकतर भाग अध्ययन, अध्यापन और साहित्य-प्रणयन में ही लगाते रहे हैं।

पूर्व काल का जीवन सीमित था, मानव-जीवन की आवश्यकताएं अधिक न थीं, उसकी बुद्धि विशेष उलझनों में फसी न होने के कारण अत्यन्त तीव्र थी, स्मृति अत्यन्त प्रबल थी, अतः शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा के रूप में मौखिक स्वाध्याय की परम्परा प्रवाहित होती रही, यही कारण है कि जैन मुनियों का अधिकतर समय स्वाध्याय में ही व्यतीत होता था। श्रुति-परम्परा से निरन्तर प्रवाहित होने के कारण ही **"श्रुतज्ञान"** शब्द का जन्म हुआ।

वीर-निर्वाण से लगभग नौ सौ अस्सी वर्ष बाद इस श्रुत-स्वाध्याय-परम्परा को लेखबद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत होने पर मनीषी श्रमणों ने अपनी ज्ञान-प्रसविनी गौरवशालिनी लेखनी को उठाया और समस्त श्रुत-साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे जनोपयोगी स्थायित्व प्रदान किया। जैन मुनि लेखन-कार्य मे कितने सिद्धहस्त निकले इसका प्रमाण राष्ट्रीय संग्रहालय हैं जिनका प्रत्येक पुस्तक-विभाग सुवर्णाक्षरों में अंकित जैनागमों से ही परिपूर्ण है और इन्हीं से सत्तावान् है।

आगम-साहित्य

सर्वज्ञ तीर्थङ्कर भगवान के उन उपदेशों को आगम कहा जाता है जो गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा अविच्छिन्न गति से निरन्तर आगामी पीढ़ियों को प्राप्त होते रहते हैं। जैनागम वेदों के समान शब्दप्रधान न होकर अर्थप्रधान है, अतः आगमों में तीर्थङ्करों के शब्द-भण्डार को सुरक्षित नहीं रखा गया, अपितु उनकी वाणी के अर्थ को उनकी सत्य की पावन भूमि पर अवस्थित भावनाओं को सुरक्षित किहा गया है, अतः आगम भावात्मकता की दृष्टि से सर्वज्ञ तीर्थङ्करों की वाणी हैं। जैन-संस्कृति के वर्तमान आगम चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के भावात्मक उपदेश हैं, जन्हें भगवान् के ग्यारह पट्टधर शिष्यों अर्थात् गणधरों ने अर्थतः ग्रहण किया और

इन ग्यारह गणधरों में से पाँचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने जम्बू नामक जिज्ञासु शिष्य को इन्हें सुनाया। प्रस्तुत अन्तकृद्दशाङ्ग आठवां अंग है जिसे जम्बू-स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी जी से सुना और फिर अनेक शताब्दियों के बाद श्री जम्बूस्वामी की शिष्यपरम्परा द्वारा इसे लिपिबद्ध रूप दे दिया गया।

आगमों के तीन रूप माने गए हैं—१. आत्मागम, २. अनन्तरागम और ३. परम्परागम।

आत्मागम—तीर्थङ्कर भगवान् जिस अर्थ की प्ररूपणा करते हैं उसे आत्मागम कहा जाता है। गणधरों द्वारा रचित सूत्रों को भी आत्मागम कहा जाता है, क्योंकि आत्म-ग्रहीत अर्थ को ही वे सूत्र का रूप प्रदान करते हैं।

अनन्तरागम—गृहीत अर्थ को जब गणधर अध्ययन करवाते हैं उस समय उनकी वाणी के रूप में प्रकट होनेवाली ज्ञानराशि अनन्तरागम कहलाती है।

परम्परागम—गणधरों के अनन्तर शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा निरूपित ज्ञान-धारा परम्परागम कहलाती है।

प्रस्तुत सूत्र को आत्मागम और अनन्तरागम परम्परागम तीनों श्रेणियों में समाविष्ट किया जा सकता है।

नामकरण

अन्तकृत्—प्रस्तुत अङ्ग का नाम 'अन्तकृत्+दशा+अङ्ग+सूत्र है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में उन नव्वे महापुरुषों का जीवनवृत्त संग्रहीत किया गया है, जिन्होंने संयम-साधना एवं तप-साधना द्वारा आठ प्रकार के कर्मों पर विजय प्राप्त करके एवं चौरासी लाख जीव-योनियों में आवागमन से मुक्ति पाकर जीवन के अन्तिम क्षणों में मोक्ष-पद की प्राप्ति की। इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र का अन्त कर देने वाले महापुरुषों के जीवनवृत्त के वर्णन को ही प्रधानता देने के कारण इस शास्त्र के नाम का प्रथम अवयव "अन्तकृत्" है।

दशा—नाम का दूसरा अवयव 'दशा' शब्द है। जैन संस्कृति में दशा शब्द के दो रूढ़ अर्थ हैं:—

१. जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन 'दशा' कहलाता है, दूसरे शब्दों में शुद्ध अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति ही "दशा" है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रत्येक अन्तकृत् साधक निरन्तर शुद्धावस्था की ओर गमन करता है, अतः इस ग्रन्थ में अन्तकृत् साधकों की दशा के वर्णन को ही प्रधानता होने से "अन्तकृत् दशा" कहा गया है।

२. जिस आगम में दस अध्ययन हों उस आगम को भी 'दशा' कहा जाता है।
प्रस्तुत आगम में आठ वर्ग हैं। इनमें से प्रथम (आदि) चतुर्थ, पञ्चम (मध्य) और आठवें वर्ग (अन्त) में दस-दस अध्ययन हैं। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त में दस-दस अध्ययन होने के कारण भी प्रस्तुत आगम को "अन्तकृत् दशा" नाम दिया गया है।

अङ्ग—तीर्थङ्करों ने जो उपदेश दिए हैं उनके दो अंग थे शब्द और अर्थ। तीर्थङ्करों के पट्टशिष्य उन दो अङ्गों में से एक अङ्ग अर्थ को ही ग्रहण कर पाते हैं, अतः भगवान् की वाणी का अङ्ग होने से आगमों को अंग भी कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी भगवान् महावीर की वाणी का अर्थतः अङ्ग है, अतः इसके नाम का तीसरा भाग "अङ्ग" है।

सूत्र—क्योंकि समस्त जैनागम शब्द की अपेक्षा अल्प और अर्थ की अपेक्षा विशाल हैं,* अतः समस्त आगमों को सूत्र कहा गया है। इसीलिये प्रस्तुत आगम के नामकरण का चौथा अवयव 'सूत्र' के रूप में रखा गया है।

इस प्रकार चार अवयवों को मिलाकर प्रस्तुत शास्त्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशाङ्गसूत्र' किया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा

श्री भगवान् महावीर से पूर्व का उपलब्ध जैन-साहित्य प्रायः संस्कृत में ही था, क्योंकि उस समय के जैन-विद्वानों को वैदिक संस्कृति के अनुगामी संस्कृत के विद्वानों से ज्ञान का आदान-प्रदान करना पड़ता था, दार्शनिक वाद-विवाद करने होते थे, अतः जैन भावधारा को संस्कृत भाषा का ही रूप देना पड़ा। यही कारण है कि दार्शनिक विषय-प्रधान पूर्व ग्रन्थों का संस्कृत में होना स्वाभाविक है, परन्तु लोगों का उद्धार करने के महान् लक्ष्य को लेकर भगवान् महावीर ने जो प्रवचन किये वे तत्कालीन लोकभाषा अर्धमागधी में ही किए। भगवान् के गणधर शिष्य भी इसी लोक-पावन लक्ष्य को लेकर आगमों के प्रणयन में प्रवृत्त हुए, अतः उन्होंने भगवान् से प्राप्त ज्ञान-राशि को अर्धमागधी भाषा में ही व्यक्त किया। यही कारण है कि आगमों का विषय दार्शनिक एवं धर्मतत्त्व-प्रतिपादक रहा, परन्तु उसकी शैली पूर्णतया जनपदीय है—लोक-साहित्य की है, क्योंकि सामान्य जनता को उसीकी बोलचाल की शैली में ही समझाया जा सकता था।

मागधी मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमें कुछ विशेष शब्दों का एवं प्रान्तीय बोलियों का मिश्रण भी हो गया, अतः आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थङ्करों, गणधरों और देवों की प्रिय भाषा है, हो भी क्यों न ? लोक-भाषा की सर्वप्रियता

* अल्पाक्षरपठितत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वं सूत्रत्वम्।

सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली में की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली में **"तेणं कालेणं तेणं समएणं"** इस शब्दावली से कथा का आरम्भ किया जाता है। आगमों में ज्ञाता धर्मकथा, उपासकदशाङ्ग, अनुत्तरौपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र का इसी शैली में निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा में शब्दों के दो रूप उपलब्ध होते हैं—**परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए।** इस आगम में प्रायः स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को ही अपनाया गया है।

आगमों में प्रायः संक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त में बिन्दुयोजना द्वारा अथवा अंक योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को व्यक्त करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषि जी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र' में पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना में अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य में रखते हुए मूल पाठ को पूर्ण रूपेण न्यस्त करने की शैली हमें भी अपनानी पड़ी है।

इस सूत्र में यथास्थान अनेक तपों का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग में विशेष रूप से तपों के स्वरूप एवं पद्धतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपों के अनेक विध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते हैं। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रों को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

व्याख्या-शैली

उच्चारण की शुद्धता, शब्दार्थ का ज्ञान और व्याख्येय विषय का विशद विवेचन यह भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। वैदिक साहित्य में मूलपाठ, पदच्छेद (पद, क्रम, जटा घन आदि) पदार्थ-विज्ञान, वाच्यार्थज्ञान, तात्पर्यार्थ-विवेचन आदि की शैली प्रचलित है जिसे निरुक्त कहा जाता है। इसी प्रकार जैनागमों में भी अपनी निजी व्याख्या-पद्धति है, जिसे 'अनुगम' कहा जाता है। अनुयोगद्वार सूत्र में (सूत्र १५५) अनुगम के छः प्रकार बताये गए हैं, जिनमें दो सूत्रस्पर्शी है और शेष चार अर्थस्पर्शी हैं। मूलपाठ, पद, पदार्थ, पदविग्रह, चालना और प्रत्यवस्थान के रूप में यह अनुगमात्मक व्याख्यापद्धति से ही आज तक

सूत्रों की व्याख्याएं होती रही हैं, परन्तु अब युग परिवर्तित हो गया है, अब नई व्याख्या-पद्धति की आवश्यकता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। आचार्यश्री ने नवीन और प्राचीन का समन्वय करके इस सूत्र को सर्वपाठ्य बनाने के उद्देश्य से जो नवीन पद्धति प्रदान की है उसके अनुसार मूल पाठ, मूलपाठ की संस्कृत छाया, पदार्थ, मूलार्थ और विस्तृत व्याख्या के रूप में प्रस्तुत आगम को प्रस्तुत किया है। यह शैली सुबोधता के लिये उपयोगी सिद्ध होगी यह मेरा दृढ़तम विश्वास है।

अन्तकृत्-केवली : एक विहंगम दृष्टि

अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र की कुछ विशेषताएं—

अध्ययन

इस शास्त्र के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययन हैं। गजसुकुमार के अतिरिक्त शेष बारह अध्ययनों में जितने चरितनायक हैं, वे सब चौदह पूर्वों के ज्ञानी होकर कैवल्य को पानेवाले हुए हैं।

चौथे वर्ग के सभी चरितनायक द्वादशाङ्गी वाणी का अध्ययन करके अन्तकृत् हुए हैं।
गजसुकुमार अनगार किसी भी शास्त्र का अध्ययन किए बिना ही अंतकृत् हुए हैं।
शेष सभी ग्यारह अंगों का अध्ययन करके अंतकृत् हुए।

दीक्षा

दीर्घकालिक दीक्षा पर्यायवाले एक अतिमुक्त कुमार हुए हैं, जोकि अन्य चरितनायकों की अपेक्षा अधिक काल तक संयम पाल कर अंतकृत् हुए हैं।

अतिमुक्तकुमार ही ऐसे चरित नायक हुए हैं जिन्होंने यौवनकाल से पूर्व ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

गजसुकुमार एक ऐसे चरित-नायक हैं जो प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर कुछ घंटों में ही कर्म-क्षय कर अंतकृत् हुए हैं। अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु में अंतकृत् नहीं हो पाया।

छ मास की दीक्षा पर्याय और पंद्रह दिनों का संथारा अर्जुन अनगार को प्राप्त हुआ, शेष सभी चरितनायक वर्षों की दीक्षा पर्याय और मासिक संथारेवाले हुए हैं।

जीवन

दो चरितनायक आबाल ब्रह्मचारी हुए हैं, शेष सभी चरितनायक भोग से निवृत्ति पाकर योगवृत्ति ग्रहण करके अंतकृत् हुए हैं।

दो नरेश अन्तकृत् हुए हैं, शेष सभी राजकुमार युवराज तथा महारानियां अन्तकृत् हुए हैं।

गजसुकुमार और अर्जुन अनगार को परिषह सहने का काम पड़ा, अन्य अनगारों को नहीं।

एक अर्जुन अनगार के अतिरिक्त शेष सभी चरित-नायक राजकुल और श्रेष्ठी कुल में उत्पन्न अन्तकृत् हुए हैं।

स्थान

अनगारों में एक गजसुकुमार का निर्वाण श्मशान भूमि में हुआ है शेष सभी अनगार शत्रुंजय और विपुलगिरि पर संथारे के साथ निर्वाण प्राप्त करते हैं।

सभी साध्वियां उपाश्रय में ही अन्तकृत् हुईं।

नर-नारी

पांचवें, सातवें और आठवें में तेंतीस राजरानियों के जीवन-चरित हैं जो कि अंतकृत् हैं शेष सभी पुरुष अन्तकृत् हुए हैं।

शासन

अरिष्टनेमि भगवान के शासन में तेंतीस अनगार अन्तकृत् केवली हुए और महावीर भगवान के शासन में सोलह अनगार अन्तकृत् केवली हुए।

भगवान अरिष्टनेमि के शासन में दस महारानियां दीक्षित होकर अंतकृत् हुईं और भगवान महावीर के शासन में तेंतीस महारानियां दीक्षित होकर अंतकृत् हुईं।

भगवान अरिष्टनेमि के शासन में यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तनी हुई और भगवान महावीर के शासन में आर्या चन्दबाला प्रवर्तिनी साध्वी थी।

पर्युषण के दिनों में ही क्यों ?

अध्ययन के लिये मन एवं मस्तिष्क का स्वस्थ एवं शान्त होना आवश्यक होता है, मानसिक एवं बौद्धिक स्वस्थता के लिये वातावरण की शान्ति अनिवार्य है। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखते हुए शास्त्रकारों ने स्वाध्याय के समय की कुछ सीमाएं निर्धारित की हैं, किन्तु अन्तगडसूत्र के लिये कोई सीमा निर्धारित नही की गई, अतः इसकी पृष्ठभूमि में कोई विशेष कारण अवश्य रहा होगा।

श्री सुधर्मा स्वामी ने महाराज कोणिक के शासन-काल में चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में जब जम्बू स्वामी को अन्तगडसूत्र का अध्ययन कराया था, वह काल पर्युषण-काल न था और शास्त्रों में कहीं पर भी पर्युषण-काल में ही अन्तगडसूत्र की वाचना का विधान प्राप्त नहीं होता, परन्तु पर्युषणों में ही अन्तगडसूत्र के अध्ययन एवं श्रवण की प्राचीन परम्परा विद्यमान है। तब प्रश्न होता है कि इस परम्परा के प्रवर्तन का क्या कारण हो सकता है ?

अमृत-पान का कोई समय नहीं होता, वह जब भी पिया जाय तभी लाभ कारी होता है। कथा-साहित्य के द्वारा प्राप्त होनेवाले उपदेशामृत को भी सर्वदा पिया जा सकता है, अतः इस कथात्मक शास्त्र के स्वाध्याय का कोई विशेष समय निर्धारित नहीं किया गया।

इतना अवश्य है कि इस सूत्र के अन्त में इस शास्त्र के स्वाध्याय एवं वाचना को आठ दिन में पूर्ण करने का आदेश दिया गया है। मननशील मुनियों ने विचार किया होगा कि तपस्या-प्रधान पर्युषण के आठ दिनों से उत्तम और कौन से आठ दिन होंगे, अतः इन्हीं दिनों में इसके पाठ की परम्परा को प्रचलित कर दिया गया होगा। यह भी हो सकता है कि इस सूत्र के अष्टाह्निक पाठ के आधार पर ही पर्युषण को भी अष्टाह्निक पर्व के रूप में प्रचलित कर दिया गया हो।

चतुर्विध श्रीसंघ पर्युषण के दिनों में तपस्या को ही प्रधानता देता है। प्रस्तुत सूत्र में तपस्या-प्रधान जीवन-चरित ही वर्णित किए गए हैं। इन चरितों से तपस्या की सम्यक् प्रेरणा का प्राप्त होना स्वाभाविक है, इसी प्रेरणा-प्राप्ति के लिये पर्युषण और अन्तगडसूत्र का सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया होगा।

प्रकाशन कार्य

प्रस्तुत सूत्र का व्याख्या-समन्वित यह रूप आचार्यप्रवर श्री पूज्य आत्माराम जी महाराज ने सं० १९९४ में ही प्रस्तुत कर दिया था, किन्तु इसके प्रकाशन की व्यवस्था उस समय न हो सकी। आचार्यश्री के इस ग्रन्थ के सम्पादन के कार्य का दायित्व आचार्यश्री के सुयोग्य शिष्य श्री ज्ञान मुनि जी ने स्वीकार किया और उन्होंने सं० २०२३ में खरड़ नगर में इसे पूर्ण कर दिया, परन्तु प्रकाशन-व्यवस्था के अभाव में यह शास्त्र पुनः अप्रकाशित अवस्था में ही पड़ा रहा। इस बार चातुर्मास के लिये मेरे लुधियाना आने पर "आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति" ने इसके प्रकाशन की व्यवस्था की और इस प्रकार मेरे सान्निध्य ने इसके प्रकाशन का श्रेय प्राप्त किया।

इस शास्त्र को प्रकाशकीय सुन्दर रूप देने तथा मुद्रण-सम्बन्धी सभी प्रकार की त्रुटियों को दूर करने के लिये पण्डित-रत्न सेवा-भावी श्री रतन मुनि जी ने जो समर्थ एवं सक्रिय योगदान दिया है, उसी का फल है इस शास्त्र का सुन्दर प्रकाशन।

प्रस्तुत सूत्र के संशोधन कार्य में श्री तिलकधर जी शास्त्री का भी विशेष योगदान रहा है। इस प्रकार एक विशाल प्रयास की सफलता के रूप में प्रकाशित यह अन्त-कृद्दशाङ्ग सूत्र मैं आचार्य श्री की अनुपम कृति उन्हीं को समर्पित करता हूं।

त्वदीयं वस्तु हे देव ! तुभ्यमेव समर्पये।

वीर सम्वत् २४९६
आश्विन शुक्ला प्रतिपदा
सं० २०२७
जैन स्थानक, लुधियाना

मुनि फूलचन्द्र 'श्रमण'

निवेदनीय मन्तव्य

जैनधर्मदिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागम-रत्नाकर, साहित्य-महारथी, महामहिम आचार्यवर्य परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज श्रीवर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के जाने-माने मनोनीत प्रधानाचार्य थे। आपश्री आचार-विचार-गत समुच्चता के जीवित प्रतीक थे, करुणा, दया, सहिष्णुता, प्रेम, जप, तप, क्षमा, सत्य, संयम, त्याग, वैराग्य, उदारता, चारित्रनिष्ठा, साहित्य-सेवा तथा समाज-सेवा के चलते-फिरते आदर्श अक्षय भण्डार थे। आपके जीवन का कण-कण सद्-ज्ञान, सद्-विचार, सद्-आचार एवं अन्य अनेकविध आत्मगुणों के सौरभ से महक रहा था, आपकी जीवन-सम्बन्धी नानाविध गुणसम्पदाओं की ओर जब दृष्टि पात करते हैं तब निस्संकोच कहा जा सकता है कि अध्यात्म-जगत् में आप एक क्रान्तिकारी युगस्रष्टा महापुरुष थे।

वैसे तो हमारे परमाराध्य आचार्यदेव श्री के सभी गुण विलक्षण थे, परन्तु जैनागमों के चिन्तन, मनन, निदिध्यासन एवं अन्वेषण विषयक आपका अनथक प्रयास अनुपमेय था। आपने जीवन के सर्वाधिक क्षण आगमों के परिशीलन एवं पठन पाठन में ही व्यतीत किए थे। आगमों के विचार एवं प्रसार में आपका जो भागीरथ प्रयास रहा है, पञ्चनदीय स्थानकवासी समाज के निकटवर्ती इतिहास में वह किसी अन्य श्रमण का नहीं रहा।

स्थानकवासी समाज में एक ऐसा भी युग था जब कि मुनिराजों का संस्कृत, प्राकृत व्याकरण पढ़ने की ओर किसी भी प्रकार का कोई लगाव नहीं था। सभी इसे त्याज्य एवं हेय मानते थे, परन्तु श्रद्धेयास्पद वन्दनीय आचार्यदेव ने इस दिशा में महान क्रान्तिकारी पग उठाए। सर्वप्रथम स्वयं व्याकरण पढ़ा, तदनन्तर श्रमणों एवं श्रमणियों में व्याकरण-शास्त्र के अध्ययन एवं अध्यापन का श्रीगणेश किया।

आचार्य देव प्राकृत-भाषा में छिपे ज्ञान-रत्नों को प्रकाश में लाना चाहते थे, उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनागमों के ज्ञान-दीप सर्वत्र जगमगाने चाहिएं और जिनेन्द्र-वाणी के ज्ञानालोक से जन-जन के अन्तर्जगत् को आलोकित करके जिनवाणी में अवस्थित विश्वकल्याण की क्षमता को संसार के सामने रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आप श्री की भावना केवल भावना ही नहीं रही उसे आपने साकार रूप दिया। बड़े-बड़े विशाल काय जैनागमों का आपने हिन्दी भाषा में अनुवाद किया। मूल पाठ के अनन्तर संस्कृत-छाया, पदार्थ, मूलार्थ, तत्पश्चात् उस पर विस्तृत व्याख्याएं लिखकर जैनागामों को हिंदी-साहित्य का एक अनुपम अङ्ग बनाकर साहित्य-जगत् पर महान उपकार किया।

वैसे आचार्य देव ने ६० के लगभग ग्रन्थों का निर्माण किया है, परन्तु इनमें १८ जैनागमों का विस्तृत भाषानुवाद है। इनमें से अनुत्तरौपपातिकदशांग, दशाश्रुत-स्कन्ध, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुयोगद्वार आदि आगम तो आचार्यश्री के जीवन-काल में ही मुद्रित हो गए थे। उनके दिवंगत हो जाने पर आचारांग, उपासक-दशाङ्ग तथा नन्दीसूत्र इन तीन आगमों का प्रकाशन हुआ और इस समय श्री अन्त-गडसूत्र स्वाध्यायशील सज्जनों के हाथों में है।

अन्तगडसूत्र को लिखे हुए वर्षों हो चुके हैं, साधनाभाव से यह मुद्रित नहीं हो सका। सौभाग्य की बात समझिए कि श्रद्धेय आचार्य भगवान की पुण्यस्मृति में संस्थापित आगम-साहित्य प्रसारक संस्था "आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति" अब इसका प्रकाशन करवा रही है। श्रद्धेय पण्डित श्री हेम चन्द्र जी महाराज तथा श्रद्धेय पण्डित श्री फूलचन्द जी महाराज "श्रमण" की आज्ञा से अन्तगडसूत्र के सम्पादन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मानता हूँ कि मैं कोई लेखक नहीं हूं और यह भी जानता हूं कि जैनागमों के अथाह सागर की गंभीरता से मैं अभी परिचित भी नहीं हूं, तथापि गुरुदेव की कृपा ही समझिए कि इस सत्कार्य को सम्पन्न करने का प्रयत्न हो गया है। इस प्रयत्न में मुझे कहां तक सफलता मिली है? इसका उत्तर सहृदय पाठक ही दे सकेंगे। मैं तो इतना ही निवेदन किए देता हूं कि भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से जहां तक मुझ से हो सका है इसे सुन्दर बनाने का यथामति पूरा-पूरा प्रयत्न किया है।

अन्तगडसूत्र के सम्पादन में आचार्य अभयदेवसूरि द्वारा रचित संस्कृत टीका के अतिरिक्त आचार्य पण्डितप्रवर पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज द्वारा कृत अन्तगडसूत्रीय संस्कृत टीका का मैंने यथेच्छ प्रयोग किया है। जिस समय जैन धर्म-दिवाकर गुरुदेव आचार्यप्रवर पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने अन्तगडसूत्रीय भाषानुवाद किया था, उस समय पूज्य श्री घासी लाल जी महाराज की संस्कृत टीका प्रकाशित नहीं हुई थी, परन्तु सम्पादन-काल में यह टीका प्रकाशित हो चुकी थी। मैं मानता हूँ कि सम्पादन में इस टीका का जहां-जहाँ प्रयोग किया गया है वह सब टिप्पणी में होना चाहिए था, परन्तु मैंने तो टिप्पणी के अलावा इस टीका का उपयोग हिन्दी विवेचन में भी किया है। इसके पीछे मेरी भावना यही रही है कि अर्थावबोध सुगमतापूर्वक हो सके और सुविधापूर्वक प्रतिपाद्य विषय को समझाया जा सके। इसी दृष्टि से कहीं-कहीं शास्त्रीय भावों को स्पष्ट करने के लिए शंका समाधान की पद्धति अपना कर ऊहापोह भी किया गया है।

एक बात विशेष रूप से मनीषी पाठकों की सेवा में निवेदन करना चाहता हूं कि अन्तगडसूत्र का सम्पादन स्वनामधन्य, महामना आचार्यदेव के दिवंगत हो जाने के अनन्तर किया गया है, अतः सम्पादित पंक्तियां गुरुदेव आचार्य देव की सेवा में नहीं रखी जा सकीं। फलतः सम्पादित पंक्तियों में जहां भी सैद्धान्तिक या भाषा-सम्बन्धी

कोई भूल दृष्टिगोचर हो तो उसका दायित्व मेरे पर आ जाता है। मूल लेखक पूज्य श्री के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं समझना चाहिए। पाठकों से सानुरोध एवं सादर निवेदन करूंगा कि सम्पादन-कार्य में जहां-जहां कोई स्खलना, भ्रान्ति या अशुद्धि देखने में आए तो उसकी सूचना मुझे देने का कष्ट करें ताकि भविष्य में उसका परिमार्जन कर दिया जाए। कष्ट के लिए धन्यवाद।

अन्तगडसूत्र के सम्पादन का संशोधन श्रद्धेय पण्डित श्री फूल चन्द जी महाराज "श्रमण" ने करने की कृपा की है। श्रद्धेय श्रमण जी महाराज पूज्यपाद आचार्य भगवान द्वारा अनुवादित श्री स्थानाङ्ग सूत्र का सम्पादन कर रहे थे, परिणाम स्वरूप व्यस्तता अधिक थी, तथापि इन्होंने संशोधन के लिए जो समय दिया है, इस उदारता तथा कृपालुता के लिए इनका हृदय से धन्यवादी हूं।

अन्त में श्रद्धास्पद पण्डित श्री हेमचन्द जी महाराज, सम्मान्य भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराजी तथा सेवाभावी पण्डित रत्न श्री रतनमुनि जी का अत्यन्त आभारी हूं। अन्तगडसूत्र के सम्पादन का सर्वाधिक श्रेय इन महापुरुषों की सत्प्रेरणा को ही है।

निवेदक—
ज्ञान मुनि

जैन स्थानक लुधियाना
फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी
वि० २०२४

वर्ग-वर्गीकरण

श्री भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में

प्रथम वर्ग—१ से ६६ तक

द्वितीय वर्ग—७० से ७२ तक

तृतीय वर्ग—७३ से २०७ तक

श्री भगवान् महावीर के शासन में

षष्ठ वर्ग—२७५ से ३८० तक

१६ अध्ययन

सप्तम वर्ग—३८१ से ३८६ तक

१३ अध्ययन

अष्टम वर्ग—३८७ से ४८८ तक

१० अध्ययन

—: ● :—



वैरागन शिक्षा देवी जैन
सुपुत्री—श्री कपूरचन्द जी जैन (मोगा)
आजकल आप सतीसाध्वी बाल-
ब्रह्मचारिणी श्री सुन्दरी जी महाराज
के नेश्राय में साध्वी बनकर अपना
मोक्ष-पथ प्रशस्त कर रही है।



वैरागन कुसुम कुमारी जैन (मोगा)
आजकल आप आर्यिका
श्री आज्ञावती जी महाराज के
सानिध्य मे साध्वी जीवन व्यतीत
कर रही है।



वैरागन सन्तोषकुमारी जैन
सुपुत्री—श्री पन्नालाल जी जैन (कान्ती)
आज कल आप महासती परमविदुषी
श्री जगदीशमती जी महाराज की
शिष्या के रूप में साधनालीन है।



स्वर्गीय श्रीमती भागवन्ती जी
धर्मपत्नी श्री मुन्शीराम जी जैन
अर्जीनवीस (जीरा)
परम विदुषी महासती श्री अभयकुमारी जी
महाराज एव श्री सावित्रीदेवी जी महाराज
को जन्म देने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है।



स्वर्गीय रमेशचन्द्र जैन (सुपुत्र श्री वोगामल जैन) जोरा
जिनके हृदय में जैन-सस्कृति के लिये अगाध श्रद्धा थी जो युवावस्था मे ही स्वर्ग सिधार गये।



श्रीमती यशोदा बाई जैन
धर्मपत्नी श्री सेठ कुन्दनलाल जैन
लुधियाना रोलिंग मिल्स लुधियाना
जिनके सांस्कृतिक अनुराग ने
समस्त परिवार को धार्मिकता
प्रदान की है।

*

शास्त्र
प्रेमी
परिवार

*



परिवार में रहते हुए भी साध्वियों-
सा जीवन व्यतीत करती हुई एवं
शिक्षा-प्रसार के लिये यत्नशील
श्रीमती सुशीला देवी जैन
धर्मपत्नी स्व० श्री रमेशचन्द्र
जैन (जोरा), सुपुत्री श्री सेठ
कुन्दनलाल जी जैन लोटिया



श्राविका श्रीमती सुखदेवी जैन
धर्मपत्नी—श्री केदारनाथ जी जैन
सरजीवन हौजरी,
पुराना बाजार, लुधियाना



जैन संस्कृति की साधिका
श्रीमती सावित्रीदेवी जैन
धर्मपत्नी—श्री मोहन लाल जी जैन लोटिया
सिविल लाइन, लुधियाना



धर्म-ध्यान में संलीन
श्रीमती तोतीबाई जैन
धर्मपत्नी—श्री मेहरचन्द जी जैन वकील
गुडगांव (हरियाणा)



परम श्रद्धामयी देवी
श्रीमती चन्द्रवती जैन
माता श्री निहालचन्द जैन सुराणा
सब्जी मण्डी, दिल्ली

(नीचे)
एम० एस० जैन बिरादरी के सक्रिय कार्यकर्ता स्वाध्याय-शील एवं दानवीर
श्री कीमतराय जैन
जैन साइकिल कम्पनी
लुधियाना ।



(बाएं)
स्वर्गीय श्री ज्ञानचन्द जैन
फर्म—ज्ञानचन्द सुशील कुमार
चौक हजूरी रोड,
लुधियाना ।





(दाहिनी ओर)
श्री अमरचन्द जैन
सुपुत्र—श्री मोहनलाल जैन
प्रधान जैन सभा (भीखी)
शास्त्रमाला एवं आत्म-रश्मि
के आजीवन सदस्य ।



(ऊपर)
श्री तिलकचन्द जी जैन
सुपुत्र—श्री खजांचीलाल जैन
जैन ज्यूलर्स, चांदनी चौक, दिल्ली
श्री जगदीश कुमार जैन की ओर से
स्वर्गीय भ्राता की स्मृति में



स्वर्गीय श्री सरदारी लाल जैन
लुधियाना
जिनका समस्त जीवन धार्मिक
कृत्यों में ही व्यतीत हुआ।



श्री हंसराज जी जैन (मूनक)
गवर्नमेंट कन्ट्रैक्टर
आजकल आप लुधियाना में रहकर
जैन-संस्कृति की सेवा में लीन हैं।



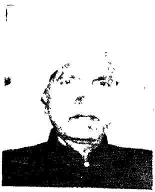
स्वर्गीय श्री ऋषिराम जी जैन
सुपुत्र श्री बेलीराम जैन
अमृतसर
जैन मित्र मण्डल के सक्रिय
कार्यकर्ता एवं जैन कन्या पाठ-
शाला के संचालक



श्री शोरीलाल जैन
सुपुत्र साईं टेकचन्द जी जैन
(स्यालकोट वाले)
धर्मध्यान ही जिनका लक्ष्य है
और प्रत्येक कार्य में जिनका
योगदान रहता है।



जैनागमों के परम प्रेमी
श्री शादीलाल जी जैन
फर्म- शादीराम बनारसीदास, माहोर्लावाले
अहमदगढ मण्डी, लुधियाना।



श्री पन्नालाल जी जैन (सिघाणा)
जिन्होने जीवन भर तन, मन धन
से जैन-संस्कृति के प्रचार
प्रसार में योग दिया।



जैन-संस्कृति के अमर संस्कारों से युक्त
सुकुमार वीरेन्द्र जैन
सुपुत्र—दानवीर सेठ गुज्जरमल जी जैन
नवां शहर (पंजाब)



स्वाध्याय-प्रेमी समाज-हितैषी
स्वर्गीय श्री मानकचन्द जैन जौहरी
दिल्ली।

शास्त्रमाला के स्थायी सदस्य

१. चौधरी श्री सन्तलालजी जैन,	लुधियाना
२. श्री सोहनलालजी जैन,	,,
३. श्री बख्शीराम चमनलाल जैन	,,
४. श्री नन्दलालजी जैन	,,
५. श्री हुकमचन्दजी जैन	,,
६. श्री सावनमल जी नाहर	,,
७. श्री हंसराजजी जैन लोहटिया	,,
८. श्री मुन्शीरामजी जैन	,,
९. श्री बालकराम जी जैन	,,
१०. श्री प्यारेलालजी जैन सराफ	,,
११. श्री बांकेरायजी जैन	,,
१२. श्री हरिरामजी थापर	,,
१३. श्री नौहरियामल रामप्रसाद जैन	,,
१४. श्री तेलूरामजी जैन	,,
१५. श्री अमरनाथजी जैन	,,
१६. श्री ज्ञानचन्दजी जैन	,,
१७. श्री कुलयशरायजी जैन	,,
१८. श्री खैरायतीलालजी जैन	,,
१९. श्री बहिन देवकीदेवी जैन	,,
२०. श्रीमती भाग्यवती जैन	,,
२१. श्रीमती बहिन सुशीलादेवी जैन	,,
२२. बहिन पद्मावतीजी जैन	,,
२३. श्री यशोदाबाई जैन	,,
२४. श्री सरदारीलालजी जैन	,,
२५. श्री शोरीलालजी जैन	,,
२६. श्री ज्ञानचन्दजी जैन	,,
२७. श्री हुक्मचन्दजी लोहटिया	,,
२८. श्री कमलेश कुमारी जैन	,,
२९. श्रीमती सावित्री देवी जैन	,,
३०. श्री बनारसीदासजी जैन	,,
३१. श्री कीमतरायजी जैन जैन साइकिल कं०	,,
३२. सुश्री बैरागन वीना कुमारी जैन	लुधियाना
३३. श्रीमती सुखदेवी जैन	,,
३४. श्री चौधरी विद्यासागरजी जैन	,,
३५. श्री कीमतरायजी जैन	गीदड़बाहा
३६. श्री सत्यप्रकाशजी	फगवाड़ा
३७. श्री बनारसीदासजी जैन	कपूरथला
३८. श्रीमती द्रौपदीदेवी जैन	,,
३९. श्री चुन्नीलालजी जैन	,,
४०. श्री धनीरामजी जैन,	सुलतानपुर
४१. श्री देशराजजी जैन	सुलतानपुर
४२. श्री घूमीरामजी जैन	जालन्धर छावनी
४३. श्री तेलूरामजी जैन	,, ,,
४४. श्री सन्तरामजी जैन	अमृतसर
४५. श्री ऋषिराम जैन	,,
४६. वैष्णवदासजी जैन	,,
४७. श्री गोपीरामजी जैन	होशियारपुर
४८. श्रीमती फूलवन्ती जैन	,,
४९. श्री हंसराजजी जैन	,,
५०. श्री शालिग्रामजी जैन	जम्मू
५१. श्रीमती उत्तमीदेवी जैन	,,
५२. श्री कर्मचन्द कस्तूरीलाल जैन	,,
५३. श्रीमती सुमित्रादेवीजी	,,
५४. बहिन सावित्रीदेवीजी जैन	जीरा
५५. स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्रजी जैन	,,
५६. श्रीमती भागवन्ती जी जैन	,,
५७. श्री मुन्शीरामजी जैन	फरीदकोट
५८. श्रीमती हुक्मीदेवी जैन	,,
५९. श्रीमती विष्णादेवी जैन	जैतोमंडी
६०. श्री कुन्दनलालजी जैन	रामामंडी
६१. श्री रोशनलालजी जैन	भटिंडा
६२. श्री रामजीदासजी जैन,	मालेरकोटला

६३. सेठ अच्छरमलजी जैन	पटियाला
६४. श्री बरखारामजी जैन	,,
६५. श्री चरणदासजी जैन	चण्डीगढ़
६६. श्री श्रीरामजी जैन,	धनौर
६७. श्री मोहनलालजी जैन	बनूड़
६८. श्री अमृतसरियामलजी जैन	सामाना मं०
६९. सुश्री वैरागन शिमलादेवी जैन	,,
७०. श्री किशोरचन्दजी जैन	मानसा मं०
७१. श्री शिवजीरामजी जैन	,,
७२. श्री भानचन्दजी जैन	,,
७३. श्री अमोलकसिंह जी जैन	हांसी
७४. श्री शिवप्रसादजी जैन	अम्बाला
७५. श्री खजाञ्चीरामजी जैन	देहली
७६. श्री लद्धेशाहजी जैन	देहली
७७. श्री मुनिलालजी जैन	,,
७८. श्री विलायतीराम जी जैन	,,
७९. श्री टेकचन्दजी जैन	,,
८०. श्री कुञ्जलालजी जैन	,,
८१. श्री अमरनाथजी जैन	,,
८२. खूबचन्दजी जैन	,,
८३. श्री फतेहचन्दजी जैन	,,
८४. श्रीमती केसरदेवी जैन	,,
८५. श्रीमती चन्द्रपति जन	,,
८६. श्रीमती चन्द्रवती जैन	सब्जी मंडी देहली
८७. बहिन महेन्द्रकुमारी जैन	गुड़गांव
८८. श्रीमती तोतीबाई जैन	,,
८९. श्री आशारामजी जैन	(कसूरवाले)
९०. श्री परमानन्दजी जैन	,,
९१. श्री रोचीशाहजी जैन	(रावलपिंडी)
९२. श्री तेजेशाहजी जैन	,,
९३. श्री चुनीशाहजी जैन	,,
९४. श्री राधूशाहजी जैन	,,
९५. श्री नथूशाहजी जैन	स्यालकोट
९६. श्री जयदयालशाहजी जैन	,,
९७. श्रीमती मालबीदेवी जैन	बम्बई
९८. श्रीमती खेमीदेवी जैन	,,
९९. श्रीमती अनारबाई जैन	लोहामंडी आगरा
१००. श्री पन्नालालजी जैन	सिंघाना
१०१. श्री हंसराजजी जैन	मूनक
१०२. श्री शादीलालजी जैन	अहमदगढ़
१०३. श्री बीरेन्द्रकुमारजी जैन	नवां शहर
१०४. सुश्री वैरागन सन्तोष कुमारी जैन	कान्ही
१०५. श्री लालचन्दजी जैन	पसरूर
१०६. सुश्री वैरागन कुसुम कुमारी जैन	जगराओं
१०७. सुश्री वैरागन शिक्षा देवी जैन	,,
१०८. श्री अमरचन्दजी जैन	भीखी
१०९. श्री दौलतरामजी जैन	समराला

अनेक मान्य सदस्यों के चित्र पूर्व प्रकाशित शास्त्रों में यथासमय छप चुके हैं। अनेक धर्मप्रेमी, गुरुभक्त और श्रुतोपासकों से फोटो मांगने पर भी नहीं मिल सके, इससे उनकी धर्मभावना का उत्कर्ष प्रकट होता है।

अनेक भाई बहिनों ने शास्त्र-प्रकाशनार्थ, गुप्तदान भी दिया है और श्री बहिन विद्यावती जी जैन (धर्मपत्नी श्री खुशीराम जी जैन, अबोहर) ने इस सूत्र के प्रकाशनार्थ कागज प्रदान करके महान पुण्य लाभ प्राप्त किया है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक सेवा द्वारा शास्त्र-प्रकाशन में सहयोग देनेवाले भाइयों और बहिनों को हम सादर धन्यवाद प्रदान करते हैं।

—मन्त्री—

आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति

लुधियाना—

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्री अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र

(अंतगड-दसाओ)

मूल—**तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नगरी। पुण्णभद्दे चेइए। वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहमस्स अंतेवासी अज्ज-जंबू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी*।**

छाया—**तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी। पूर्णभद्रश्चैत्यः। वर्णकः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्य-सुधर्मा समवसृतः। परिषन्निर्गता, यावत् प्रतिगता। तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्य-सुधर्मणोऽन्तेवासी आर्य-जम्बूर्यावत् एवमवादीत्—**

पदार्थ—**तेणं कालेणं**—उसकाल में **तेणं समएणं**—उस समय में **चंपा नामं**—चम्पा नामक। **नगरी**—नगरी थी **पुण्णभद्दे**—उसके बाहर पूर्णभद्र नामक **चेइए**—चैत्य-यक्षमन्दिर था **वण्णओ**—उसका उववाई सूत्र की तरह वर्णन जानना **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल और उस समय में **अज्जसुहम्मे**—आर्य सुधर्मा स्वामी, **समोसरिए**—नगरी में पधारे। **परिसा**—परिषद्—धर्मदेशना सुनने वाली नगर-निवासी जनता। **निग्गया**—धर्मदेशना श्रवणार्थ नगरी से निकली। **जाव**—धर्मदेशना श्रवण करके, यावत्। **पडिगया**—नगरी को वापिस चली गई। **तेणं कालेणं**—उस काल। **तेणं समएणं**—उस समय। **अज्ज सुहम्मस्स**—आर्य सुधर्मा स्वामी के **अंतेवासी**-शिष्य **अज्ज जंबू**—आर्य-जम्बू **जाव**—यावत् **पज्जुवासमाणे**—उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हुए **एवं**—इस प्रकार **वयासी**—बोले—

मूलार्थ—उस काल और उस समय में चंपा नामक एक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक यक्षमन्दिर था। उस नगरी एवं चैत्य का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिए। उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी

---

*वदासि

में पधारे। उनके आगमन का समाचार सुनकर नगर-निवासी धर्मोपदेश सुनने आए और उपदेश सुन कर वापिस चले गए। लोगों के चले जाने के बाद आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू स्वामी उनकी पर्युपासना-सेवा करते हुए इस प्रकार बोले—

हिन्दी विवेचन—जैन वाङ्मय में आगमों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि आगम, तीर्थ-करोपदिष्ट हैं। महामहिम, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् तीर्थ की स्थापना करते है और सब जीवों की रक्षा एवं दया के लिए वे धर्मोपदेश देते हैं*। उनके अर्थ रूप प्रवचन को गणधर सूत्र रूप में ग्रथित करते हैं और वह बारह भागों में विभक्त होता है, जिसे आगमिक भाषा में द्वादशांगी कहते हैं।

भगवान का उपदेश चार अनुयोगों—शैलियों में विभक्त है—१. द्रव्यानुयोग, २. गणितानुयोग, ३. चारित्रानुयोग और ४. धर्मकथानुयोग। कभी भगवान जीव, अजीव आदि द्रव्यों का विश्लेषण करके भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग बताते हैं। कभी गणित के आधार पर उपदेश देते हैं। कभी साध्वाचार--चारित्र का यथार्थ रूप बताकर संयम पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। कभी धर्म-कथाओं के सहारे भव्य जीवों को त्याग का मार्ग दिखाते हैं। स्थानाङ्ग आदि आगमों में द्रव्यानुयोग का वर्णन मिलता है। भगवती सूत्र आदि आगमों में गणितानुयोग का दर्शन होता है। आचाराङ्गादि आगमों में साध्वाचार—चारित्र का निरूपण किया गया है। ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग आदि आगम धर्मकथा की शैली पर रचे गए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि द्वादशाङ्गी का निर्माण चार अनुयोगों में किया गया है और उनका एक मात्र उद्देश्य है—भव्य आत्माओं को निर्वाण का पथ दिखलाना।

जैनागमों के अनुसार तीर्थंकर भगवान द्वादशाङ्गी का उपदेश देते हैं। १ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरौपपातिक, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाक सूत्र और १२ दृष्टिवाद। यही द्वादशांगी वाणी है। वर्तमान में दृष्टिवाद का विच्छेद हो चुका है। अतः इस समय एकादश अङ्ग सूत्र ही विद्यमान हैं। उनमें अन्तकृत् दशा सूत्र आठवां अंग है। इसके पहले सात अंग-शास्त्र हैं। उपासकदशाङ्ग सूत्र के बाद प्रस्तुत आगम का वर्णन आता है। उपासकदशाङ्ग सूत्र की तरह इसका भी धर्म-कथा की शैली में वर्णन किया गया है।

आगम में प्रतिपाद्य विषय में प्रविष्ट होने के लिए उपोद्घात—भूमिका अत्यावश्यक है। प्रस्तुत आगम में भी सूत्रकार ने सर्वप्रथम उपोद्घात—भूमिका का निर्माण किया है। **तेणं कालेणं तेणं समएणं** आदि प्रस्तुत पाठ भूमिका रूप से ही हैं। इसमें मुख्य रूप से पांच विषयों का निरूपण किया गया है।—१ वर्णनक्षेत्र, २ उस समय की परिस्थिति, ३ आगम के प्रतिपादक, ४ प्रतिपादक की योग्यता और ५ प्रश्न कर्त्ता। इनके अतिरिक्त इसमें अन्य विषयों का भी जो उल्लेख किया गया है, प्रस्तुत आगम के अनुशीलन एवं परिशीलन से यथास्थान उसका बोध प्राप्त हो जायगा।

*सव्व-जग-जीव-रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं—प्रश्नव्याकरण सूत्र।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकर्ता ने वर्णन क्षेत्र एवं वर्णन कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है। वर्णन स्थान एवं वर्णन कर्ता के पूरे परिचय को जानने के लिए अन्य आगमों को देखने का संकेत कर दिया है। प्रस्तुत में उल्लिखित **वण्णओ और जाव** ये दो पद इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि उस काल और उस समय में स्थित चंपा नगरी एवं उसमें रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एवं उसमें पधारे हुए आर्य सुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिषद् के आवागमन तक का वर्णन औपपातिक आदि आगमों से जानना चाहिए। औपपातिक सूत्र में चंपा नामक नगरी, पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से परिचय दिया गया है। अतः उसका पुनः उल्लेख नहीं करके संकेत मात्र कर दिया है और सुधर्मा स्वामी के जीवन से संबद्ध वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के अनुसार समझना चाहिए। वहां उनके जीवन का पूरा परिचय दिया गया है। इसी प्रकार प्रश्न कर्ता आर्य जम्बू स्वामी के जीवन का परिचय भी ज्ञाता सूत्र में मिलता है। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र छठा अङ्ग है और प्रस्तुत आगम आठवा अग है। अत. पूर्व सूत्र में वर्णित विषय को यहाँ पुनः नहीं दोहराया गया ।

प्रस्तुत पाठ में पहले आगम-रचना के समय का वर्णन करके फिर स्थान का वर्णन किया गया है। इस मे बताया गया है कि "उस काल और उस समय" में चपा नाम की एक नगरी थी और उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। जहां पर आर्य सुधर्मास्वामी ने अपने प्रिय शिष्य आर्य जम्बू को प्रस्तुत आगम का बोध कराया था। प्रस्तुत में उल्लिखित "काल और समय" दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं, फिर दो शब्दों का प्रयोग क्यों किया गया? इस प्रश्न का होना स्वाभाविक है, साधारणतः **समय** को **काल** का पर्यायवाची मान लेते हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाए तो ये दोनों शब्द भिन्नार्थक है। काल शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप काल चक्र का बोधक है और समय शब्द उस कालचक्र में हुए व्यक्ति के समय का बोधक है। तब "उस काल" का यह अर्थ हुआ कि अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे में इस आगम की वाचना दी गई थी। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं कि चतुर्थ आरे में किस समय वाचना दी गई थी? क्योंकि चतुर्थ आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। अतः इस बात को **तेणं समएणं** ये पद देकर स्पष्ट किया है। उस समय का यह अर्थ है कि जिस समय आर्य सुधर्मा स्वामी विचरण करते हुए चपा नगरी में पधारे, उस समय उन्होंने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी। इससे यह ध्वनित होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान महावीर के निर्वाण के बाद दी गई थी।

इसके पश्चात् यह बताया गया है कि उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे। उनकी शरीर-संपदा, उनके कुल एवं उनके गुणों का वर्णन प्रस्तुत आगम मे नहीं किया गया है, क्योंकि ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में इसका विस्तार से वर्णन किया जा चुका है और नागरिकों के आने एवं धर्मोपदेश सुनने का वर्णन भी औपपातिक सूत्र में किया गया है, अतः उसका भी यहां केवलसंकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान महावीर के पञ्चम गणधर एवं प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे और उनके सुशिष्य आर्य जम्बू स्वामी प्रश्न-कर्ता थे।

पाठकों के मन में यह प्रश्न हो सकता है कि इस उपोद्घात का कर्ता कौन है ? इसका समाधान यह है कि जैसे सुधर्मा स्वामी ने गौतमादि गणधरों का उल्लेख किया है, उसी तरह आर्य जम्बू स्वामी के बाद होने वाले प्रभवादि आचार्यों ने इस उपोद्घात में आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन कर रखा है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि प्रस्तुत उपोद्घात के कर्त्ता प्रभवादि आचार्य ही थे।

व्याकरण संबंधी विचार—

प्रायः आर्ष प्राकृत में अधिकरण—सप्तमी के स्थान में करण—तृतीया का प्रयोग किया जाता है परन्तु, उसका अर्थ सप्तमी का किया जाता है। अतः **तेणं** तृतीया विभक्ति का होने पर भी उसका अर्थ सप्तमी का होगा। और यदि उसमें प्रयुक्त **णं** को वाक्यालंकार के रूप में समझ लिया जाए तो अर्द्धमागधी भाषा मे **ते** सप्तमी के अर्थ में प्रयुक्त होता ही है। और यदि **तेणं** शब्द को तृतीयान्त के अर्थ में माना जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरक लक्षण से और तद्विशेष समय विभाग से चंपा नामक नगरी थी। परन्तु, भाषा विज्ञान की दृष्टि से सप्तमी के अर्थ में ही उसका अर्थ स्पष्ट हो सकता है। अतः आर्ष प्राकृत के अनुसार इस का अर्थ सप्तमी का ही करना चाहिए।

प्राकृत भाषा में **होत्था** क्रियापद अभवत्, अभूत् और बभूव अर्थात् लङ्, लुङ् और लिट् इन तीनों लकारों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः **होत्था** शब्द का प्रसंग के अनुसार अर्थ करना चाहिए। प्रस्तुत में **होत्था** अभवत् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः यहां पर अर्थ होगा कि उस काल और उस समय में चंपा नामक नगरी थी, और यह अर्थ संगत भी है, क्योंकि भगवान महावीर के समय में चंपा नगरी जिस रूप में थी, सुधर्मा स्वामी के शासन काल में उस रूप में नहीं रही। अवसर्पिणी काल होने के कारण वह हीन दशा को प्राप्त होती रही। इस कारण सुधर्मा स्वामी के शासन काल में चंपा नगरी के विद्यमान होने पर भी उसकी पर्यायों में परिवर्तन आजाने के कारण उसके लिए भूतकाल का प्रयोग किया गया है।

इस तरह प्रस्तुत पाठ का यह अर्थ हुआ कि चतुर्थ आरक के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक यक्षमन्दिर में ठहरे। उनके आगमन का शुभ संदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापिस चले गए। उस समय उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी विनय-भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों में उपस्थित होकर विनम्र शब्दों में बोले। क्या बोले ? इस संबंध में सूत्रकार अग्रिम सूत्र में प्रकाश डालेंगे।

वण्णओ यह पद वर्णक का बोधक है। वर्णक पद की व्याख्या करते हुए संस्कृत के एक विद्वान लिखते हैं—

वर्ण्यते, प्रकाश्यते अर्थो येन स वर्णः, वर्ण एव वर्णकः वर्णनप्रकरणम्। वर्णयतीति वा वर्णकः।

अर्थात् जिस के द्वारा अर्थ प्रकट होता है, उस पर प्रकाश पड़ता है, उस स्थल को वर्णक

कहते हैं। वर्णन करने वाला प्रकरण भी वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है। प्रस्तुत में वर्णक पद सूत्रकार ने पुण्णभद्द चेइए के आगे दिया है, यहाँ वर्णक पद देकर सूत्रकार औपपातिक सूत्र में वर्णित पूर्णभद्र उद्यान की ओर संकेत करा रहे हैं। जिस तरह औपपातिक सूत्र में पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन किया है, उसी तरह यहाँ पर भी पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन समझ लेना चाहिए। इस तथ्य को व्यक्त करने के लिए सूत्रकार ने उद्यान के आगे वर्णक पद का उल्लेख किया है। आगे जहाँ-जहाँ जिस पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ पर उस पद से संसूचित पदार्थ का वर्णन करने वाले पाठ की ओर संकेत कराना ही सूत्रकार को इष्ट है, यह समझना चाहिए।

वण्णओ पद से औपपातिक सूत्र में दिए गए जिन पदों की ओर सूत्रकार संकेत कराना चाहते हैं, वे पद निम्नोक्त हैं—

"—चिराईए, पुव्वपुरिसपण्णत्ते, पोराणे, सद्दिए, वित्तिए, कित्तिए, णाए, सच्छत्ते, सज्झए, सघण्टे, सपडागे, पडागाइपडागमंडिए, सलोमहत्थे, कमवेयद्दिए, लाउल्लोइयमहिए-गोसीस,सरस-रत्त-चंदण-दद्दर-दिण्ण-पंचंगुलितले, उवचिय-चंदणकलसे, चंदणघड-सुकय-तोरण-पडिदुवार-देसभाए, आसत्तो-सत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदामकलावे, पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फ-पुंजोवयार-कलिए,कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामे,सुगंधवर-गंध-गंधिए,गन्धवट्टिभूए,णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय- वेलंबग-पवग-कहग- लासग-आइक्खग- लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-भुयग-मागह-परिगए, बहुजण-जाणवयस्स विस्सुयकित्तिए, बहु-जणस्स आहुस्स आहुणिज्जे, पाहुणिज्जे, अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, नमंसणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणिज्जे, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, विणएणं पज्जुवासणिज्जे, दिव्वे, सच्चे, सच्चोवाए, सण्णिहियपाडिहेरे, जाग-सहस्स-भागपडिच्छए, बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्दं चेइयं।

औपपातिक सूत्र, २

अर्थात्—पूर्णभद्र चैत्य चिरादि था, उस की रचना बहुत पुरानी थी, उसकी उपादेयता का वर्णन पूर्व पुरुषों ने कर रखा था, वह पुरातन था, वह शब्दित—बड़ी प्रसिद्धि वाला था, ख्याति वाला था, आश्रित लोगों की आजीविका का साधन था, कीर्तित था, उस की कीर्ति हो रही थी, न्याय था—वहाँ न्याय प्राप्त होता था अथवा ज्ञात था, उसके सामर्थ्य को लोगों ने जान लिया था, सच्छत्र—छत्र वाला था, ध्वज तथा घण्टा से युक्त था, पताका—लघु ध्वज और पताकातिपताक—छोटी-छोटी झण्डियों से सुशोभित था, लोममय प्रमार्जन—झाड़ू से युक्त था, वहां वेदिका बनी हुई थी, गोबर से लीपा हुआ था, खडिया माटी से पोता हुआ था। वहाँ ताज़े घिसे हुए मलयागिरि (मलयागिरि पर्वत पर उत्पन्न होने वाला चदन) और लाल चन्दन से पांच अंगुलियों का हाथ (थापा) बनाया हुआ था, वहाँ मांगलिक घट स्थापित कर रखे थे। अच्छे-अच्छे तोरण (बाहरी फाटक या सजावट के लिए लटकाई जाने वाली मालाएँ, पत्तियाँ आदि वंदनवार) बनाए हुए थे। वहां भूमि को और ऊपरी भाग को छूती हुई, विपुल विस्तार वाली गोल और लम्बी-लम्बी मालाएँ थी, पाँच वर्ण वाले सुगन्धित पुष्पों द्वारा उसकी पूजा की जाती थी। कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दरुक और तुरुक्क इन सब की मघ-मघ करती हुई धूप की सुगंध से वह बड़ा अभिराम बन रहा था। अच्छे-अच्छे सुगन्धित

पदार्थों की गन्ध से युक्त था। सुगन्ध की अतिशयता के कारण मानों वह गन्ध द्रव्यों की गुटिका (गोली) ही बन गया था। नट—नाटक करने वाले, नर्तक—नाचने वाले, जल्ल—रस्से पर खेल करने वाले, मल्ल—मल्लयुद्ध करने वाले, मुष्टि-युद्ध करने वाले, वेलम्बक—विदूषक (मसखरे), कथक—कथाएँ कहने वाले, प्लवक—तैरने वाले, रास गाने वाले, शुभाशुभ बतलाने वाले, लंख—विशालबांस के अग्रभाग पर खेल करने वाले, मंख—चित्र दिखा कर भिक्षा मांगने वाले, तूण नाम बाजा बजाने वाले, वीणा बजाने वाले, भोजक—पूजा या सेवा करने वाले, मागध—भाट, स्तुति करने वाले,इन सब से चैत्य युक्त था। नगर तथा देश के लोगों में उस की ख्याति थी। अनेक लोग मंत्रोच्चारण करके आहूति देते और आराधन करते थे। चन्दनगन्ध आदि से वह चैत्य अर्चनीय था, स्तवनीय (स्तुतियोग्य) था, नमस्करणीय था, पुष्पादि से पूजनीय था, वस्त्रादि से सत्कारयोग्य था, बहुमान के योग्य था, कल्याण—प्रयोजन सिद्ध करने वाला था, मंगल—अनर्थों को दूर करने वाला था. दैवत—देवस्वरूप था, चैत्य—मन को आह्लादित करने वाला था, विनयपूर्वक उपासना करने योग्य था, दिव्य—प्रधान था, सत्यस्वरूप था, सत्य प्रभाव वाला था, अधिष्ठायक देवों ने इसकी महिमा बढ़ा रखी थी, हजारों यज्ञों का भाग उसे प्राप्त होता था, बहुत लोग उस की पूजा करते थे। ऐसा वह पूर्णभद्र नामक यक्ष का मन्दिर था।

"परिसा निग्गया जाव पडिगया" यहाँ **'जाव'** पद **"धम्मं सोच्चा, निसम्म जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं"** इन पदों का परिचायक है। इन का भाव है—जनता धर्म-देशना सुन कर, हृदय में धारण कर जिस दिशा (ओर) से आई थी, उसी दिशा को चली गई

"जंबू जाव पज्जुवासमाणे" यहां पठित **जाव** पद भी वण्णओ की भांति अन्य शास्त्रों में पठित तत्सम्बंधी विस्तृत पाठ की ओर संकेत करता है। यदि किसी आगम में किसी बात का वर्णन विस्तारपूर्वक कर दिया गया है तो सूत्रकार उस विस्तृत वर्णन का पुन: उल्लेख न करके उसे **वण्णओ, जाव** पदों से व्यक्त कर देते हैं। इस शैली को समस्त आगमों में अपनाया गया है। इसी शैली के आधार पर अन्तगड सूत्र में विस्तृत पाठ को सूचित करने के लिए सूत्रकार ने कहीं **वण्णओ** और कहीं **जाव** इस पद का उल्लेख किया है। प्रस्तुत प्रकरण में **'जाव'** पद दिया गया है। यह निम्नोक्त पदों का अभिव्यञ्जक है—

***णामं अणगारे कासवगोत्तेणं, सत्तुस्सेहे, समचउरंस-संठाण-संठिए, वज्जरिसह-नाराय-संघयणे, कणग-पुलग-निघस-पम्हगोरे,उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोर-बंभचेरवासी, ऊच्छूढसरीरे, संखित्त-विउल-तेउलेसे, चोद्दसपुव्वी,चउणाणोवगए, सव्वक्खरसन्निवाई, अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामन्ते उड्ढं जाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तते णं अज्ज-जंबू णामं अणगारे जायसड्ढे, जायसंसए, जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे, संजायसंसए, संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्न-संसए**

*ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र ५

समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छइ,उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति, करित्ता वन्दति, नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे, णमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं ।

इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी के पास संयम और तप से आत्मा को भावित (युक्त) करते हुए विहरण कर रहे थे । आर्य जम्बू काश्यप गोत्रवाले थे,इन का शरीर सात हाथ प्रमाण का था, पालथी मार कर बैठने पर शरीर की ऊंचाई और चौड़ाई बराबर हो, ऐसे संस्थान वाले थे, इन का ‡वज्रऋषभनाराच संहनन था, सोने की रेखा के समान और पद्मराग (कमलरज) के समान वर्ण वाले थे, उग्र (साधारण मनुष्य की कल्पना में न आनेवाला) तप करने वाले थे, दीप्ततपस्वी थे—कर्म रूपी गहन वन को भस्म करने मे समर्थ तप करने वाले थे, तप्ततपस्वी थे—कर्मसन्ताप का विनाशक तप करने वाले थे, महातपस्वी थे—स्वर्गादि की प्राप्ति की इच्छा विना तप करने वाले थे, उदार—प्रधान थे, आत्म शत्रुओं को विनष्ट करने में निर्भीक थे, दूसरों के द्वारा दुष्प्राप्य गुणों को धारण करने वाले थे, घोर-विशिष्ट तपस्वी थे, दारुण—भीषण ब्रह्मचर्य व्रत के पालक थे, शरीर पर ममत्व नहीं रख रहे थे, तेजोलेश्या—विशिष्ट तपोजन्य लब्धि विशेष को संक्षिप्त किए हुए थे, चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान इन चारों ज्ञानों के धारक थे, इन को समस्त अक्षरसंयोग का ज्ञान था, इन्होंने उत्कुटुक नामक आसन लगा रखा था, ये अधोमुख थे—नीचे को मुख किए हुए थे, धर्म तथा शुक्ल ध्यान रूप कोष्ठक में प्रवेश किए हुए थे, अर्थात् जिस प्रकार कोष्ठक में धान्य सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार ध्यान रूप कोष्ठक में प्रविष्ट हुए आत्मवृत्तियों को सुरक्षित रखे हुए थे ।

तत्पश्चात् आर्य जम्बू स्वामी के हृदय में अन्तगड में वर्णित तत्त्वों को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई, साथ में यह *संशय भी उत्पन्न हुआ कि उपासकदशांग सूत्र में जिस प्रकार श्रावकों के जीवनवृत्त वर्णित हुए हैं, क्या उसी तरह ही अन्तगड सूत्र में श्रावकों के जीवनों का उपन्यास किया है या उस में किसी भिन्न पद्धति का आश्रयण किया है ? तथा उन्हें यह उत्सुकता भी हुई कि जब उपासकदशांग सूत्र में श्रावकों के जीवनवृत्तान्त प्रस्तावित हो चुके हैं, उन्हीं से अनगारवर्ग के त्याग-प्रधान जीवनों की कल्पना की जा सकती है, तो फिर देखें श्रद्धेय गुरुदेव अन्तगड सूत्र में अनगार-जीवन को लेकर क्या फरमाते है ?

प्रस्तुत में जो जात, संजात, उत्पन्न तथा समुत्पन्न ये चार पद दिए हैं । इन में प्रथम जात

---

‡संहनन छः होते हैं । यह संहनन सब से अधिक बलवान होता है ।

* जम्बू स्वामी को क्या संशय उत्पन्न हुआ था ? इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता, टीकाकार भी यहां मौन हैं, तथापि ज्ञाता-धर्मकथांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में उल्लिखित संशय की भांति प्रस्तुत में कल्पना की गई है । —सम्पादक

शब्द साधारण तथा संजात शब्द विशेष, इसी भाँति उत्पन्न शब्द भी सामान्य और समुत्पन्न शब्द विशेष का बोध कराता है। जात और उत्पन्न शब्दों में इतना ही भेद है कि उत्पन्न शब्द उत्पत्ति का और जात शब्द उस की प्रवृत्ति का संसूचक है। भाव यह है कि पहले श्रद्धा, संशय और कौतूहल पैदा हुआ, तत्पश्चात् इनमें प्रवृत्ति हुई।

जातश्रद्ध, जातसंशय,जातकौतूहल, संजातश्रद्ध, संजातसंशय, संजातकौतूहल, उत्पन्न-श्रद्ध,उत्पन्न संशय, उत्पन्नकौतूहल, समुत्पन्नश्रद्ध समुत्पन्नसंशय और समुत्पन्नकौतूहल श्री जम्बू स्वामी अपने स्थान से उठकर खड़े होते हैं,खड़े होकर जहां श्रीसुधर्मा स्थविर विराजमान थे,वहां पर आते हैं,आकर उन्होंने श्री सुधर्मा स्वामी को दक्षिण ओर से तीन बार प्रदक्षिणा (परिक्रमा) दी, प्रदक्षिणा करके स्तुति और नमस्कार किया,स्तुति नमस्कार करके वे आर्यसुधर्मा स्वामी के थोड़ी सी दूरी पर,सेवा और नमस्कार करते हुए सामने बैठे और हाथों को जोड़ कर विनय-पूर्वक उनकी भक्ति करने लगे।

अंगों में उपांगों का उद्धरण क्यों ?

जैन वाङ्मय अंग, उपांग, मूल और छेद इन चार विभागों में विभक्त है। उन में आचारांग सूत्रकृतांग आदि ११ अंग हैं। औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय आदि १२ उपांग हैं। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि चार मूल सूत्र हैं, दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प आदि चार छेद सूत्र है। ये सब मिल कर ३१ होते हैं, आवश्यक सूत्र के जुड जाने से आगमों की संख्या ३२ हो जाती है। इन में अंगसूत्र गणधरकृत हैं। गणधर देवों ने अंगसूत्रों की रचना की है। कालदोषकृत बुद्धिबल और आयु की कमी को देख कर सर्वसाधारण के हित के लिए अंगों में से भिन्न-भिन्न विषयों पर गणधरों के पश्चाद्वर्ती श्रुतकेवली या पूर्वधर आचार्यों ने जो शास्त्र रचे है, वे उपांग कहलाते हैं। इस वर्णन से हम यह प्रकट करना चाहते हैं कि आगमों में अंगसूत्रों का स्थान सर्वोपरि है, सर्वोच्च है, उन अंग सूत्रों के आधार पर ही अन्यान्य समर्थ आचार्यों ने उपांग सूत्र बनाए हैं।

अन्तगड सूत्र अंग सूत्र है, और औपपातिक उपांग सूत्र है। अन्तगड में पठित **"वण्णओ"** पद औपपातिक सूत्र में वर्णित पूर्णभद्र चैत्य के वर्णन की ओर संकेत करता है। इस तरह अंग सूत्र अन्तगड में उपाँग सूत्र औपपातिक का उद्धरण स्पष्ट उपलब्ध हो रहा है। सूत्रों के क्रमानुसार अंगसूत्र में उपांग का उद्धरण नही होना चाहिए, उपांग सूत्रों में अंगसूत्रों का निर्देश हो तो यह तर्कसंगत ठहरता है, पर अंगसूत्रों में उपाँग सूत्रों का उद्धरण बुद्धिसंगत प्रतीत नहीं होता। अतः यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा क्यों किया गया ? अंगसूत्र में उपाँगसूत्र का उद्धरण देने का क्या कारण है ?

अंगसूत्रों का स्थान सर्वोच्च है, इन्हीं के आधार पर उपाँगसूत्र बनाए गए हैं। यह सैद्धान्तिक सत्य है। इस से किसी को कोई मतभेद नहीं है। फिर भी अंगसूत्रों में उपांगसूत्रों का जो निर्देश है, इस का एक कारण है, वह कारण यह है कि आगमों को लिपिबद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नहीं रखा गया। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, आचारांग सूत्र, स्थानांग सूत्र, इन में किसी सूत्र का उद्धरण नहीं दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिबद्ध पहले कर

लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तारपूर्वक एक सूत्र में कर दिया गया, उस का पौनः-पुन्येन वर्णन करना उचित नहीं समझा गया, परिणामस्वरूप जिस सूत्र में जिस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन हो चुका था, उस का उद्धरण देकर पाठ को संक्षिप्त कर दिया गया। अन्तगड में औपपातिक सूत्र का जो निर्देश है, इस से सिद्ध होता है कि औपपातिक सूत्र अन्तगड सूत्र से पहले लिपिबद्ध किया जा चुका था।

भगवती सूत्र में नन्दी, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यकसूत्र आदि सूत्रों के उद्धरण मिलते हैं, इस से भी यह प्रमाणित होता है कि भगवती सूत्र को बहुत पीछे लिपिबद्ध किया गया है और उसमें उद्धृत आगमों को उस से पहले लिपिबद्ध कर लिया गया था। **रहस्यं तु केवलिगम्यम्।**

'**अज्जसुहम्मे**' इस में आर्य और सुधर्मा ये दो पद हैं। आर्य शब्द की व्याख्या करते हुए संस्कृत के एक विद्वान लिखते हैं—

"अर्यते भविभिर्गम्यते कल्याणप्राप्तये यः स आर्यः। अथवा हेयधर्माद् आरात् यायते—दूरेण स्थीयते येन स आर्यः। अथवा कर्मरूप-काष्ठच्छेदेकत्वाद्रत्नत्रयरूपमारम्, तद् याति—प्राप्नोति यः स आर्यः।"

अर्थात्—भव्य प्राणी अपने कल्याण के लिए जिन की सेवा करते हैं, अथवा हेय, त्याज्य पदार्थों से जो दूर रहते है। अथवा कर्मरूप काष्ठ का छेदन करने के लिए रत्नत्रय रूप आरा जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, उन को *आर्य कहते हैं।

आध्यात्मिक जगत में आर्य शब्द का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर्य शब्द ही एक ऐसा शब्द है, जिसमें सब गुणों का समावेश हो जाता है। आर्य शब्द की इसी महानता के कारण इसे श्री सुधर्मा स्वामी का विशेषण बनाया गया है। यह विशेषण देकर सूत्रकार सुधर्मा स्वामी में अहिंसा, सत्य, क्षमा, निर्लोभता आदि सभी सद्गुणों का अस्तित्व प्रकट करना चाहते हैं।

सुधर्मा भगवान महावीर स्वामी के प्रथम पट्टधर हैं, भगवान महावीर की वंश-परंपरा को आगे चलाने वाले सर्वप्रथम महापुरुष श्री सुधर्मा स्वामी हैं। सु-प्रशस्त धर्म—ज्ञान चारित्र वाले, तथा प्रशान्त स्वभाव होने के कारण ही इनको सुधर्मा यह अन्वर्थ नाम दिया गया है।

पाठ भेद क्यों ?—

अन्तगड की तीन प्रतियां हमारे सामने हैं, तीनों में पाठ-भेद मिलता है। पाठकों की जानकारी के लिये उसे यहां दिया जा रहा है। एक प्रति में लिखा है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नगरी, पुन्नभद्दे चेतिए। वन्नओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं

*अज्जइ भविहि आरा, जाइज्जइ हेयधम्मओ जो वा।
रयणत्तयरूवं वा, आरं जाइत्ति अज्ज इय वुत्तो॥

अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्जजंबू जाव पज्जुवासति एवं वदासि ।

यह पाठ आगमोदयसमिति द्वारा प्रकाशित प्रति का पाठ है। श्रद्धेय पूज्य श्री घासी लाल जी महाराज द्वारा अनुवादित प्रति में निम्नोक्त पाठ उपलब्ध होता है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नगरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नगरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था। वणसंडे वण्णओ। तीसे णं चंपाए णयरीए कोणिए नामं राया होत्था, महया हिमवंत० वण्णओ०। सू० १।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगारसएहिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेण विहरमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइये तेणेव समोसरिए। परिसा निग्गया जाव परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्जजंबू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी।

प्रोफेसर M. C. MODI M. A. L L. B. पूना द्वारा सम्पादित अन्तगड सूत्र में लिखा है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए वणसंडे। (वण्णओ) तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया। [जाव] पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्ज जंबू [जाव] पज्जुवासइ। एवं वयासी।

इन पाठान्तरों से सुस्पष्ट हो जाता है कि आगमीय पाठ में एकता नहीं है। आगमज्ञ मनीषी विद्वानों को इस दिशा में अवश्य ध्यान देना चाहिए। पाठगत एकता सर्वथा सुरक्षित रहनी चाहिए।
(सम्पादक)

श्रद्धेय जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी की सेवा में उपस्थित हो कर जो निवेदन करते हैं, सूत्रकार अगले सूत्र में उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**जइ णं भंते ! समणेणं आदिकरेणं जाव सम्पत्तेणं, सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव सम्पत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठवग्गा पण्णत्ता।**

छाया—**यदि भदन्त ! श्रमणेन आदिकरेण यावत् सम्प्राप्तेन सप्तमस्य अङ्गस्य उपासकदशानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, अष्टमस्य भदन्त ! अङ्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेण कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमाङ्गस्य अन्तकृद्दशानामष्टवर्गाः प्रज्ञप्ताः।**

पदार्थ—**णं**—वाक्य* सौन्दर्यार्थ में है **भंते** ! हे भगवन् ! पूज्य गुरुदेव ! **जइ**—यदि **आदिकरेणं**—श्रुतधर्म की आदि करने वाले **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्ष को प्राप्त **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने **सत्तमस्स**—सातवें **अंगस्स**—अंग **उवासगदसाणं**—उपासकदशाङ्ग सूत्र का **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादन किया है। **भंते** ! हे भगवन् ! **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने **अट्ठमस्स**

*सर्वत्र यही जानना चाहिये।

अंगस्स—आठवें अग **अन्तगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र का **के अट्ठे**—क्या अर्थ **पण्णत्ते**?—प्रतिपादन किया है? **जंबू!**—हे जम्बू! **जाव सम्पत्तेणं**—यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने **एवं खलु**—निश्चय ही इस प्रकार **अट्ठमस्स**—अष्टम **अंगस्स**—अंग **अन्तगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र के **अट्ठवग्गा**—आठ वर्ग **पण्णत्ता**—कहे हैं।

मूलार्थ—हे भगवन्! श्रुतधर्म की आदि करने वाले यावत् निर्वाण पद को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सप्तम अंग उपासकदशाङ्ग सूत्र का यह अर्थ प्रतिपादन किया है जिस को अभी मैंने आप श्री के मुखारविंद से सुना है। हे भगवन्! अब यह बतलाने की कृपा करें कि श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र का क्या अर्थ बताया है?

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशाङ्ग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं।

हिन्दी विवेचन—आगमों के पर्यालोचन से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि आगम श्री जम्बू और आर्य सुधर्मा स्वामी इन महापुरुषों के प्रश्नोत्तररूप हैं। श्री जम्बू प्रश्न करते हैं और उनके श्रद्धेय गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी उस का उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमो के रूप में दिखाई देते हैं। प्रस्तुत वर्णन इस तथ्य को पूर्णतया स्पष्ट कर रहा है। यहां लिखा है कि जम्बू स्वामी अपने पूज्य गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से विनय-पूर्वक पूछते है कि भन्ते! अहिंसा, सत्य के अमर सन्देशवाहक भगवान महावीर ने उपासकदशांग सूत्र का जो वर्णन किया है उसका मैंने श्रवण कर लिया है। अब मेरी इच्छा है कि मैं आठवें अंग श्री अन्तकृद्दशांग का वर्णन सुनू। मै जानना चाहता हूं कि इस आगम में भगवान ने किन-किन महापुरुषों के जीवनवृत्त प्रस्तुत किए हैं? अपने प्रिय शिष्य श्री जम्बू अनगार की विनयभरी प्रार्थना सुनकर परमदयालु गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—जम्बू! अन्तकृद्दशाग सूत्र के आठ वर्ग है, यह आगम आठ विभागों में विभक्त है। यह प्रस्तुत सूत्र का संक्षिप्त साराश है। इस में गुरुशिष्य के प्रश्नोत्तर की रूपरेखा स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही है।

प्रस्तुत सूत्र में गुरुशिष्य के प्रश्नोत्तर की मर्यादा, एव अगसूत्रों के क्रमशः अध्ययन करने की विधि का बड़े सुंदर ढंग से वर्णन उपलब्ध होता है। इस से प्राचीन युग की वर्णन शैली का भी परिज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन युग में अर्थ स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान रहता था, उसे अधिक से अधिक सुबोध बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता था। भाषा की कठिनता, दुरूहता, प्राञ्जलता इतनी अपेक्षित नहीं थी, जितनी कि अर्थस्पष्टता। वस्तुतः सुबोध, सरल और रुचिपूर्ण शैली द्वारा पाठकों के हृदयों तक अपने भाव पहुचा देना और उन के प्रति उन्हे आकर्षित कर लेने में ही वक्ता या लेखक की विशेषता, बुद्धिमत्ता और लोकप्रियता सन्निहित रहती है। यही कारण है

कि आगमकार श्रद्धेय महापुरुषों ने भाषा के काठिन्य-जाल से अपने को सर्वथा उन्मुक्त रखा है और सर्वथा सरल, अथच स्पष्ट पद्धति का ही आश्रयण किया।

आगमों के ३ प्रकार–

जैनाचार्यों ने तीन प्रकार के आगम बताए हैं। वे इस प्रकार हैं–

१–आत्मागम–गुरुजनों के उपदेश विना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर भगवान के लिए अर्थागम आत्मागम रूप है और गणधरों के लिए सूत्रागम* आत्मागम रूप है।

२–अनन्तरागम–स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान के लिए अर्थागम अनन्तरागमरूप है। तथा जम्बू स्वामी आदि गणधरशिष्यों के लिए सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

३–परम्परागम–आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न हो कर जो आगम ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जम्बू स्वामी आदि गणधरशिष्यों के लिए अर्थागम परम्परागमरूप है। तथा इन के बाद के सभी साधकों के लिए सूत्र एवं अर्थ दोनों प्रकार का आगम परम्परागम‡ है।

ऊपर की पंक्तियों से हम यह ध्वनित करना चाहते हैं कि अन्तकृद्दशांग सूत्र अर्थकी दृष्टि से तीर्थंकर भगवान के लिए आत्मागम है, गणधरों के लिए अनन्तरागम है और गणधरशिष्यों के लिए परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यों के लिए अनन्तरागम, और गणधरप्रशिष्यों के लिए परम्परागम है।

आगमों के आदि काल की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि अर्थरूप से आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर भगवान करते है, तीर्थंकर भगवान के प्रतिपादन किए हुए अर्थों को ही उन के गणधर सूत्ररूप में परिवर्तित करते हैं, अर्थ का सूत्ररूप में निर्माण करके जनता में प्रचार करते हैं। वस्तुतः गणधर भगवान, तीर्थंकर भगवान से प्राप्त किए हुए पदार्थ के केवल प्रचारक है, स्वयं उसके द्रष्टा या स्रष्टा नहीं हैं। धर्म-अधर्म आदि द्रव्यों के स्वरूप को आमूलचूल सोचने-समझने और जानने में छद्मस्थ आत्माएं समर्थ भी नहीं है। अतः सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान द्वारा फरमाए हुए पदार्थों का विवेचन ही गणधर देव करते हैं। प्रस्तुत सूत्र के **"एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव**

*मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम, सूत्र तथा अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते है।

‡आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–अत्तागमे, अणंतरागमे, परंपरागमे, । तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे, गणहराण सुत्तस्स अत्तागमे, अत्थस्स अणतरागमे, गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे अत्थस्स परंपरागमे, तेणं परं सुत्तस्स वि अत्थस्स वि णो अणतरागमे, परपरागमे ।

अनुयोगद्वार, प्रमाणविषय–सू० १४७

संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता" ये शब्द स्पष्ट रूप से उक्त तथ्य का समर्थन कर रहे हैं।

"**समणेणं आदिकरेणं जाव संपत्तेणं**" यहां पठित **जाव**–यावत् पद निम्नोक्त पदों का संसूचक है–

"**तित्थगरेण, सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिस-सीहेणं, पुरिस-वर-पुण्डरीएणं, पुरिसवरगन्ध-हत्थिएणं, लोगुत्तमेणं, लोग-नाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, चक्खुदएणं,-मग्गदएणं, सरणदएणं, जीवदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्म-वर-चउरंत-चक्कवट्टिणा, दीवो ताणं, सरणं, गई, पइट्ठा, अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधरेणं, वियट्ट-छउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिण्णेणं, तारएणं, बुद्धणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोयएणं, सव्वण्णुणा, सव्वदरिसिणा, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति-सिद्धि-गइ-नामधेयं ठाणं**—" श्रमण आदि पदों का अर्थ निम्नोक्त है—

श्रमण—तपस्वी, अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय–समान व्यवहार करने वाले श्रमण कहलाते हैं।

आदिकर—आचारांग आदि बारह अंगग्रन्थ श्रुतधर्म कहे गए हैं। श्रुतधर्म के आदिकर्ता, आद्य उपदेशक होने के कारण भगवान को आदिकर कहा गया है।

तीर्थंकर—जिस के द्वारा संसार–रूपी मोह-माया का नद सुविधापूर्वक तिरा जा सकता है, उसे तीर्थ कहते है, वह तीर्थ धर्म है, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर हैं।

स्वयंसम्बुद्ध—अपने आप प्रबुद्ध होने वाला, क्या ज्ञेय है? क्या उपादेय है? और क्या उपेक्षणीय है? यह ज्ञान जिन्हें स्वतः ही प्राप्त हुआ है, उन्हें स्वयंसम्बुद्ध कहते हैं।

पुरुषोत्तम—जो पुरुषों में उत्तम हों, श्रेष्ठ हों, वे पुरुषोत्तम हैं। भगवान के क्या बाह्य क्या आभ्यन्तर, दोनों ही गुण अलौकिक होते हैं, असाधारण होते है, इसलिए वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

पुरुषसिंह—पुरुषों में सिंह के समान। जिस प्रकार मृगराज अपने बल और पराक्रम के कारण निर्भय रहता है, कोई भी अन्य पशु वीरता में उसकी समानता नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवान भी निर्भय रहते थे और कोई भी संसारी प्राणी उनके आत्मबल, तप, त्याग सम्बन्धी वीरता की बराबरी नहीं कर सकता था।

पुरुष-वर-पुण्डरीक—पुण्डरीक श्वेत कमल का नाम है। अन्य कमलों की अपेक्षा श्वेत कमल सौन्दर्य एवं सुगंध में अत्यन्त उत्कृष्ट होता है, हज़ारों कमल भी उसकी सुगन्धि की बराबरी नहीं कर सकते। भगवान महावीर पुरुषों में श्वेत कमल के समान थे, उनके आध्यात्मिक जीवन की सुगन्ध अनन्त थी, उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था।

पुरुष-वर-गन्धहस्ती—भगवान पुरुषों में गन्धहस्ती के समान थे। गन्धहस्ती एक विलक्षण हाथी होता है, उसमें ऐसी सुगन्ध होती है कि सामान्य हाथी उसकी सुगन्ध पाते ही त्रस्त हो

भागने लगते हैं, व उसके पास नही ठहर सकते। भगवान महावीर को गन्धहस्ती के समान कहने का अभिप्राय है—जहां भगवान विराजमान होते थे, वहां अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कोई भी उपद्रव नहीं होने पाता था।

लोकोत्तम—लोक शब्द से स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक इन तीनों का ग्रहण होता है। तीन लोक में जो ज्ञान आदि गुणों की अपेक्षा सब से प्रधान हो, वह लोकोत्तम कहलाता है।

लोकनाथ—नाथ शब्द का अर्थ है--योग (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की संकट के समय पर रक्षा करना) करने वाला। लोक का नाथ लोकनाथ है। सम्यग्दर्शन आदि सद्गुणों की प्राप्ति कराने के कारण तथा उनसे स्खलित होने वाले मेघकुमार आदि को स्थिर करने के कारण भगवान को लोकनाथ कहा गया है।

लोकहित—लोक का हित करने वाले को लोकहित कहते है। भगवान मोहनिद्रा में प्रसुप्त विश्व को जगा कर आध्यात्मिकता एवं सच्चरित्रता की पुण्य विभूति से मालामाल कर उसका हित सम्पादित करते थे।

लोकप्रदीप—लोक को दीपक की भांति प्रकाश देने वाला। भगवान लोक को यथावस्थित वस्तु-स्वरूप दिखलाते है, इसलिए इन्हें लोक—प्रदीप कहा गया है।

लोकप्रद्योतकर—प्रद्योतकर सूर्य का नाम है। जो लोक में सूर्य के समान हो, उसे लोक-प्रद्योतकर कहते है। भगवान महावीर लोक के सूर्य थे। अपने केवल ज्ञान के प्रकाश को विश्व में फैला कर उन्होंने उस के मिथ्यात्व-अन्धकार को नष्ट किया था।

अभयदय—अभय-निर्भयता के दाता महापुरुष अभयदय कहलाते है। भगवान महावीर अभयदय थे। विरोधी से विरोधी के प्रति भी उन के हृदय मे करुणा की धारा बहा करती थी।

चक्षुर्दय—आंखो के देने वाले। जब मानवी जगत के ज्ञानरूप नेत्रों के सामने अज्ञान का जाला आ जाता है, उसे सत्यासत्य का कुछ विवेक नही रहता, तब भगवान संसार को ज्ञान नेत्र देते है, अज्ञान का जाला साफ करते है। इसी लिए भगवान को चक्षुर्दय कहा गया है।

मार्गदय—मार्ग के देने वाले-बताने वाले को मार्गदय कहते है। सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। भगवान महावीर ने इस का वास्तविक स्वरूप संसार के सामने रखा था, अतएव उन को मार्गदय कहा गया है।

शरणदय—शरण-त्राण देने वाले महापुरुष शरणदय कहलाते हैं। भगवान की शरण में आने पर किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं रहने पाता था।

जीवदय—संयम जीवन के देने वाले जीवदय कहे गए हैं। भगवान की पवित्र सेवा में आने वाले अनेक साधकों ने संयम का आराधन करके परम साध्य निर्वाणपद को पाया था।

बोधिदय—बोधि सम्यक्त्व को कहते हैं। सम्यक्त्व को प्राप्त करवाने वाले महापुरुष बोधिदय कहलाते हैं।

धर्मदय—धर्म के दाता धर्मदय है। भगवान महावीर ने अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म का संसार को परम पावन अनुपम संदेश दिया था।

धर्मदेशक—धर्मोपदेष्टा को धर्मदेशक कहते हैं। भगवान श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का मर्म बतलाते हैं, इसलिए इन्हें धर्मदेशक कहा गया है।

धर्मनायक—धर्म के नेता धर्मनायक कहलाते हैं। भगवान धर्ममूलक सदनुष्ठानों का तथा धर्म सेवी व्यक्तियों का नेतृत्व किया करते थे।

धर्मसारथि—रथ को निरुपद्रवरूप से चलाता हुआ जो उस की रक्षा करता है, रथ में जुते हुए बैल आदि प्राणियों का संरक्षण करता है उसे सारथि कहते हैं, भगवान धर्मरूपी रथ के सारथि हैं। भगवान धर्मरथ में बैठने वालों के सारथि बनकर उन्हें निरुपद्रव स्थान—मोक्ष में पहुंचाते हैं।

धर्मवर-चतुरन्त-चक्रवर्ती—पूर्व, पश्चिम और दक्षिण—इन तीन दिशाओं में समुद्रपर्यन्त और उत्तरदिशा में चुल्लहिमवन्त पर्वत पर्यन्त के भूमि भाग का जो अन्त करता है अर्थात् इतने विशाल भूखण्ड पर जो विजय करता है, इतने में जिस की अखण्ड और अप्रतिहत आज्ञा चलती है, उसे चतुरन्त-चक्रवर्ती, चक्रवर्तियों मे प्रधान चक्रवर्ती को वर-चतुरन्त-चक्रवर्ती कहते हैं। धर्म का वरचतुरन्त चक्रवर्ती धर्म-वर-चतुरन्त-चक्रवर्ती कहा जाता है। भगवान महावीर स्वामी नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारों गतियों का अन्त कर सम्पूर्ण विश्व पर अपनी अहिंसा और सत्य का धर्मराज्य स्थापित करते है। अथवा दान, शील, तप और भाव रूप चतर्विध धर्म की साधना स्वयं अन्तिम कोटि तक करते हैं और जनता को भी इस धर्म का उपदेश देते हैं, अतः वे धर्म के वरचतुरन्त-चक्रवर्ती कहलाते हैं। अथवा जिस प्रकार सब चक्रवर्ती के अधीन होते हैं, चक्रवर्ती के ही विशाल राज्य मे सब राजाओं का राज्य अन्तर्गत हो जाता है। उसी प्रकार संसार के समस्त धर्मतत्त्व भगवान के अनेकान्त तत्त्व के नीचे आ गए है। भगवान का अनेकान्त तत्त्व चक्रवर्ती के विशाल राज्य के समान है और अन्य धर्मप्ररूपकों के तत्त्व एकान्त रूप होने के कारण अन्य राजाओं के समान हैं। सभी एकान्तरूप धर्मतत्त्व अनेकान्त तत्त्व के अन्तर्गत हो जाते हैं। इसीलिए भगवान को धर्म का श्रेष्ठ चक्रवर्ती कहा गया है।

द्वीप, त्राण, शरण, गति, प्रतिष्ठा—द्वीप टापू को कहते हैं। संसार सागर में नानाविध दुःखों की विशाल लहरों के अभिघात से व्याकुल प्राणियों को भगवान सान्त्वना प्रदान करने के कारण द्वीप कहे गए है। अनर्थों—दुःखों के नाशक होने के कारण प्रभु को त्राण, धर्म और मोक्ष रूप अर्थ का सम्पादन करने के कारण भगवान को शरण कहा गया है। सुख की प्राप्ति के लिए दुखी व्यक्तियों द्वारा जिस का आश्रय लिया जाए उसे गति कहते हैं। प्रतिष्ठा शब्द "संसार रूप गर्त में पतित प्राणियों के लिए **जो आधार रूप है**", इस अर्थ का परिचायक है। दुःखियों को आश्रय देने के कारण गति और उन का **आधार होने से भगवान** को प्रतिष्ठा कहा गया है।

मूल सूत्र में **'समणेणं'** इत्यादि पद तृतीयान्त प्रस्तुत हुए हैं, जबकि **"दीवो"** इत्यादि पद प्रथमान्त। ऐसा क्यों है? यह प्रश्न उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु औपपातिक सूत्र

में वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने **"नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं"** इत्यादि षष्ठ्यन्त पदों में पढ़े गए **"दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा"** इन प्रथमान्त पदों की व्याख्या में **"दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा इत्यत्र जे तेसिं नमोत्थु णमित्येवं गमनिका कार्येति"** इस प्रकार लिखा है। अर्थात् वृत्तिकार के मतानुसार **"दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा"** ऐसा ही पाठ स्वीकार किया गया है। और उसके अर्थ-संकलन में **"जे तेसिं णमोत्थु णं"** जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप हैं, उन को नमस्कार हो, ऐसा अध्याहारमूलक अन्वय किया है। प्रस्तुत में जो प्रश्न उपस्थित हो रहा है, वह भी वृत्तिकार की मान्यतानुसार **"दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा, इत्यत्र** जो **तेणत्ति"** (जो द्वीप, त्राण, शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप है, उसने) इस पद्धति से समाहित हो जाता है।

अप्रतिहत-ज्ञान-दर्शन-धर—अप्रतिहत का अर्थ है—किसी से बाधित न होने वाला, किसी से न रुकने वाला। ज्ञान, दर्शन के धारक को ज्ञानदर्शनधर कहते हैं। तब भगवान महावीर स्वामी अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले थे। यह अर्थ फलित हुआ।

व्यावृत्तछद्म—छद्म शब्द के—१-आवरण, २-छल; ये दो अर्थ होते हैं। ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्म आत्मा की ज्ञान, दर्शन आदि शक्तियों को ढके हुए रहते है, इसलिए वे छद्म कहलाते हैं। जो छद्म-ज्ञानावरणीय आदि चार घातक कर्मों से तथा छल से अलग हो गया है, उसे व्यावृत्त-छद्म कहते हैं। भगवान महावीर छद्म से रहित थे।

जिन—राग-द्वेष आदि आत्मशत्रुओं को पराजित करने वाला जिन कहलाता है।

जापक—का अर्थ है—जिताने वाला, अर्थात् भगवान महावीर स्वयं भी राग, द्वेषादि को जीतने वाले थे और दूसरों को भी जिताने वाले थे।

तीर्ण—जो स्वयं संसार सागर से तर गए हैं, वे तीर्ण कहलाते हैं।

तारक—जो दूसरों को संसार-सागर से तारने वाले है,उन्हें तारक कहते हैं। भगवान महावीर स्वामी ने अर्जुन-माली आदि अनेकों भव्य पुरुषों को संसार सागर से पार लगाया था।

बुद्ध—जो सम्पूर्ण तत्त्वों के बोध को प्राप्त कर रहे हों। भाव यह है कि भगवान महावीर राग द्वेषादि विकारों के स्वरूप को जानने वाले थे। इसलिए उन्हें बुद्ध कहते हैं।

बोधक—जो दूसरों को जीव, अजीव, आदि तत्त्वों का बोध देने वाला हो, उसे बोधक कहते हैं। जीव आदि तत्त्वों का बोध देने के कारण भगवान को बोधक कहा गया है।

मुक्त—जो स्वयं कर्मों से मुक्त है, अथवा आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियों-गांठों से रहित है, उसे मुक्त कहते हैं। भगवान महावीर स्वामी आभ्यन्तर और बाह्य ग्रन्थियों से मुक्त थे।

मोचक—जो दूसरों को कर्म-बन्धनों से मुक्त करवाता है, उसे मोचक कहते हैं।

सर्वज्ञ—चर और अचर सभी पदार्थों का ज्ञान रखने वाला और जिसमें अज्ञान का सर्वथा अभाव हो, वह सर्वज्ञ कहलाता है। भगवान घट-घट के ज्ञाता होने के कारण सर्वज्ञ कहे गए हैं।

सर्वदर्शी—चर और अचर सभी पदार्थों का द्रष्टा सर्वदर्शी कहा जाता है। भगवान महावीर सर्वदर्शी थे।

शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति, सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त—अर्थात् शिव आदि पद सिद्धगति* के विशेषण हैं। शिव आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

शिव—कल्याणरूप को कहते हैं। अथवा जो बाधा, पीड़ा और दुःख से रहित हों, वह शिव कहलाता है। सिद्धगति में किसी प्रकार की बाधा, पीड़ा नहीं होती, अतः उसे शिव कहते हैं।

अचल—चलरहित, स्थिर को कहते हैं। चलन दो प्रकार का होता है। एक स्वाभाविक दूसरा प्रायोगिक। दूसरे की प्रेरणा बिना अथवा अपने पुरुषार्थ के बिना मात्र स्वभाव से ही जो चलन होता है, वह स्वाभाविक चलन होता है। जैसे जल में स्वभाव से चंचलता रहती है, इसी प्रकार बैठा मनुष्य भले ही स्थिर दिखाई देता है किन्तु योगापेक्षया उस में भी चंचलता है, इसे ही स्वाभाविक चलन कहते हैं। वायु आदि बाह्य निमित्तों से जो चंचलता उत्पन्न होती है, वह प्रायोगिक चलन कहलाता है। मुक्तात्माओं में न स्वभाव से ही चलन होता है और न प्रयोग से ही। मुक्तात्माओं में गति का अभाव है, इस लिए भी वे अचल हैं।

अरुज—रोगरहित को अरुज कहते है। शरीर-रहित होने के कारण मुक्तात्मा को वात, पित्त और कफजन्य शारीरिक रोग नहीं होने पाते और कर्मरहित होने से रागद्वेषादि भी नहीं होते।

अनन्त—अन्त-रहित को अनन्त कहते हैं। सिद्धगति को प्राप्त करने की आदि तो है, परन्तु उस का अन्त नहीं, इसलिए उनको अनन्त कहते हैं। अथवा, मुक्तात्माओं का ज्ञान, दर्शन अनन्त होता है और अनन्त पदार्थों को जानता, देखता है, अतः गुणापेक्षया वे अनन्त हैं। अथवा. अन्तररहित का नाम अनन्त है। सभी मुक्तात्माएं गुणापेक्षया समान होती हैं।

अक्षय—क्षयरहित का नाम है। मुक्तात्माओं की ज्ञानादि आत्मविभूति में किसी प्रकार की क्षीणता नहीं आने पाती, इसलिए से अक्षय कहते हैं।

अव्याबाध—पीड़ारहित को अव्याबाध कहते हैं। मुक्तात्माओं को सिद्धगति में किसी प्रकार का शोक नहीं होता और न वे किसी दूसरे को पीड़ा पहुंचाते हैं।

अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित का नाम है। अर्थात् जो जन्म तथा मरण से रहित हो कर एक बार सिद्धगति में पहुंच जाता है, वह फिर लौट कर कभी संसार में नहीं आता।

उवासगदसाणं—इस पद द्वारा सूत्रकार ने उपासकदशांग सूत्र का स्मरण कराया है। उपासकदशा सातवां अंगसूत्र हैं। इस में उपासक और दशा ये दो पद हैं। साधु-साध्वियों की उपासना करने वाले उपासक कहे जाते हैं। दशा शब्द अध्ययन अथवा चर्या का बोधक है। इस सूत्र में दस श्रावकों के दस अध्ययन होने से या दस श्रावकों की जीवन-चर्या होने से यह उपासकदशा कहा गया

*जिस के सब काम सिद्ध हों, पूर्ण हों, उसे सिद्ध कहते है, सिद्ध भगवान् जहां विराजमान हों, वह स्थान सिद्धगति कहलाता है।

है। इस के प्रत्येक अध्ययन में एक-एक श्रावक का वर्णन है। प्राचीन श्रावक जगत में आनन्द, कामदेव आदि दस श्रावक बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्हीं श्रावकों के जीवनवृत्त इस में प्रस्तुत किए गए हैं।

अंतगडदसाणं—यह अन्तकृद्दशा का बोधक है। इस की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं—

तत्रान्तो—भवान्तः कृतो—विहितो यैस्तेऽन्तकृतास्तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशाः—दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृद्दशाः।

आठ कर्मों का नाश कर के संसार रूपी समुद्र से पार उतरने वाले अथवा जीवन के अन्तिम समय में केवल ज्ञान और केवल दर्शन उपार्जन कर मोक्ष जाने वाले जीव अन्तकृत् कहलाते हैं। इन जीवों की दशा-अवस्था का इस सूत्र में वर्णन किया गया है, इस लिए इस सूत्र को अन्तकृद्दशा कहते हैं। इसे अन्तगड भी कहते हैं। इस में एक ही श्रुतस्कंध है। आठ वर्ग हैं। नव्वे अध्ययन हैं। इन में गौतमादि महर्षि तथा पद्मावती आदि साध्वियों के जीवन-चरित्र वर्णित हैं।

"समणेण०" यहां का बिन्दु तथा **"समणेणं जाव संपत्तेणं"** यहां पठित 'जाव' पद **"भगवया महावीरेणं आदिकरेणं......नामधेयं ठाणं"** इन पदों का परिचायक है। श्रमण तथा आदिकर आदि पदों का अर्थ पीछे पृष्ठ पर लिखा जा चुका है। भगवान और महावीर इन दोनों पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१—भगवान—जो ऐश्वर्य से सम्पन्न है, पूज्य हैं।

२—महावीर—जो अपने आंतरिक वैरियों का नाश कर डालता है, उस शक्तिशाली पुरुष को वीर कहते है। वीरों में जो महान प्रधान वीर है, वह महावीर है। प्रस्तुत में यह भगवान वर्धमान का नाम है। यह नाम उन के देवकृत संकटों में सुमेरु की तरह अचल रहने तथा घोर परीषहों, उपसर्गों के आने पर भी क्षमा का त्याग न करने के कारण देवताओं ने रखा था।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जम्बू अनगार से कहा—जम्बू ! भगवान महावीर ने अन्तगड में आठ वर्ग प्रतिपादन किए हैं। तत्पश्चात् जम्बू स्वामी ने अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में जो निवेदन किया, अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हैं—

मूल—**जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठवग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव सम्पत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव सम्पत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-**

गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चेव होइ थिमिए य।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू ॥

छाया—**यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामष्ट वर्गाः**

प्रज्ञप्ताः। प्रथमस्य भवन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ? एवं खलु जंबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

गौतम-समुद्र-सागर-गंभीरश्चैव भवति स्तिमितश्च।
अचलः काम्पिल्यः खलु अक्षोभः प्रसेनजित् विष्णुः॥

पदार्थ—**णं**—यह पद सर्वत्र वाक्यालंकारार्थक है **भंते**!—हे भगवन्! **जइ**—यदि **समणेणं**—श्रमण **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्ष संप्राप्त महावीर ने **अट्ठमस्स**—आठवें **अंगस्स**—अंग **अंतगड-दसाणं**—अन्तकृद्दशा के **अट्ठवग्गा**—आठ वर्ग **पण्णत्ता**—कथन किए हैं, तो **भंते**!—हे भगवन्! **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद्दशा के **पढमस्स**—प्रथम **वग्गस्स**—वर्ग के **समणेणं**—श्रमण **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्षसंप्राप्त महावीर ने **कइ अज्झयणा**—कितने अध्ययन **पण्णत्ता?**—कथन किए हैं? **जंबू**! हे जम्बू! **खलु**—निश्चय ही **एवं**—इस प्रकार **समणेणं**—श्रमण **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने **अट्ठमस्स**—आठवें **अंगस्स**—अंग **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद्दशा के **पढमस्स**—प्रथम **वग्गस्स**—वर्ग के **दस**—दस **अज्झयणा**—अध्ययन **पण्णत्ता**—कथन किए हैं **तंजहा**—जैसे कि **गोयम**—गौतम कुमार **समुद्द**—समुद्र कुमार **सागर**—सागर कुमार **च**—और **एव**—निश्चयार्थक अव्यय है **गंभीरे**—गंभीर कुमार **य**—और **थिमिए**—स्तिमित कुमार **होइ**—है **अयले**—अचलकुमार **खलु**—निश्चयार्थक है **कंपिल्ले**—काम्पिल्यकुमार **अक्खोभ**—अक्षोभ कुमार **पसेणइ**—प्रसेनजित् कुमार **विण्हू**—विष्णु कुमार।

मूलार्थ—आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन्! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किए हैं, तो भगवन्! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किए हैं?

जम्बू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किए हैं। जैसे कि—

१—गौतम, २—समुद्र, ३—सागर, ४—गंभीर, ५—स्तिमित, ६—अचल, ७—काम्पिल्य, ८—अक्षोभ, ९—प्रसेनजित् और १०—विष्णुकुमार।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का तथा उन के श्रद्धास्पद गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी द्वारा किए गए समाधान का उल्लेख किया है। कहा जा चुका है कि आर्य सुधर्मा स्वामी ने अन्तगड सूत्र का परिचय कराते हुए जम्बू स्वामी को उस के आठ वर्ग बताए थे। प्रस्तुत सूत्र में जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा है कि अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग में

कितने **अध्ययन कथन** किए हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ! **अन्तगड सूत्र** के प्रथम वर्ग में—गौतम, समुद्र आदि दश अध्ययनों का विवेचन किया गया है। अथवा अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन हैं, उनमें गौतम कुमार, समुद्र कुमार आदि दस राजकुमारों के जीवन-वृत्तों का उल्लेख कर रखा है।

वग्गा—शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है—शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनों का समूह। सूत्र के अवान्तर विभाग को या ग्रन्थ के एक अंश को अध्ययन कहते हैं। अध्ययन शब्द की व्याख्या करते हुए एक आचार्य लिखते हैं—

अज्झप्पस्साणयणं, कम्माणं अवचओ उवचियाणं।
अणुवचओ य नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति*॥

अर्थात्—जिससे अध्यात्म—हृदय को शुभध्यान में स्थित किया जाता है, जिसके द्वारा पूर्व-संचित कर्मों का नाश होता है और नवीन कर्मो का बन्धन रुकता है, उस का नाम अध्ययन है।

"समणेणं जाव संपत्तेणं" इन पदों का प्रस्तुत सूत्र में तीन बार प्रयोग हुआ है। वहां पठित **जाव**-यावत् पद अन्य सूत्रों में पठित **"भगवया महावीरेणं"** आदि पदों का संसूचक है। इन पदों का निर्देश और इन का भावार्थ पीछे पृष्ठ पर दिया जा चुका है।

"गोयम समुद्द" इस गाथा में दस अध्ययनों के नाम हैं। गौतम प्रथम वर्ग का पहला अध्ययन है। इस में राजकुमार गौतम का वर्णन किया गया है। इसी कारण इस अध्ययन का नाम "गौतम" रखा गया है। समुद्र आदि अध्ययनों के नामकरण के सम्बन्ध में भी यही दृष्टि प्रतीत होती है।

गौतम कुमार, समुद्र कुमार आदि राजकुमारों का संक्षेप में परिचय इस प्रकार है—

१—गौतम कुमार—द्वारिका नगरी में महाराज अन्धक वृष्णि राज्य किया करते थे। धारिणी उनकी रानी थी, इन के बड़े पुत्र का नाम गौतम कुमार था। अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के गौतम कुमार यही गौतम कुमार हैं। आठ राजकन्याओं के साथ इन का विवाह किया गया था। परन्तु अहिंसा, सत्य के अमर सन्देश-वाहक भगवान अरिष्टनेमि का चरण-सान्निध्य पाकर ये मोह-माया के विकराल बन्धनों को तोड़कर अनगार बन गए थे, भगवान के पास दीक्षित हो गए थे। इन्होंने लगातार बारह वर्ष तक संयम व्रत का आराधन किया। अन्तिम समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर के मोक्ष में जा विराजे।

२—समुद्रकुमार, ३—सागर कुमार, ४—गंभीर कुमार, ५—स्तिमित कुमार, ६—अचल कुमार, ७—काम्पिल्य कुमार§ ८—अक्षोभ कुमार, ९—प्रसेनजित् कुमार, १०—विष्णु कुमार।

ये सभी राजकुमार गौतम कुमार के मां जाये भाई थे। इन सभी के पिता महाराजा अन्धक वृष्णि

* अध्यात्ममानयन कर्मणामपचय. उपचितानाम।
अनुपचयश्च नवानां, तस्मात् अध्ययनमिच्छन्ति॥

§ कहीं कंपिल नाम भी मिलता है।

थे तथा माता—महारानी धारिणी थी। सभी ने भगवान अरिष्टनेमि के पावन चरणों में दीक्षा लेकर, बारह वर्ष तक कठोर संयम का पालन करके अन्तिम समय केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया था तथा तत्पश्चात् ही मोक्ष में पधार गए थे।

कहा जा चुका है कि अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रथम अध्ययन में क्या वर्णन किया गया है? जम्बू स्वामी के इसी प्रश्न की चर्चा करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अन्तगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

छाया—**यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?**

पदार्थ—**णं**—वाक्यालंकारार्थक है। **जइ**—यदि **भंते** ! हे भगवन् ! **समणेणं**—श्रमण **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने **अट्ठमस्स**—आठवें **अंगस्स**—अंग **अन्तगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र के **पढमस्स**—प्रथम **वग्गस्स**-वर्ग के **दस**—दस **अज्झयणा**—अध्ययन **पण्णत्ता**—कथन किए हैं **भंते** ! हे भगवन् ! **अन्तगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र के **पढमस्स**—प्रथम **अज्झयणस्स**—अध्ययन का **समणेणं**—श्रमण **जाव**—यावत् **संपत्तेणं**—मोक्षसप्राप्त महावीर स्वामी ने **के**—क्या **अट्ठे**—अर्थ **पण्णत्ते**—कथन किया है ?

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर ने आठवें अंग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किए हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष-प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने आर्य जम्बू स्वामी के प्रश्न का उल्लेख किया है। अपने परम आराध्य गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में श्री जम्बू स्वामी ने निवेदन किया—

गुरुदेव ! यह सत्य है, पतितपावन भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के आठ वर्ग कथन किए हैं और उन में से प्रथम वर्ग के दश अध्ययन फरमाए हैं। भगवन् ! कृपा करो, अब यह बताने की दया करो कि भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन में क्या वर्णन किया है ? किस महापुरुष के जीवन-वृत्त का निर्देश किया है ?

'समणेणं जाव संपत्तेणं' यहां **जाव** पद भगवान के अन्य विशेषणों का परिचायक है। इससे

संसूचित पदों का निर्देश पीछे पृष्ठ पर कर दिया गया है ।

श्री जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने जो कुछ फरमाया, अब सूत्रकार उस का वर्णन करने लगे हैं । उस का आदिम सूत्र इस प्रकार है—

मूल—**एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं, तेणं समएणं बारवती णामं नगरी होत्था । दुवालसजोयणायामा, नव-जोअण-वित्थिण्णा, धणवइमतिनिम्माया, चामोकरपागारा, नानामणिपंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया, सुरम्मा, अलकापुरिसंकासा, पमुदितपक्कीलिया, पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया ४ । तीसे णं बारवती नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे एत्थ णं रेवतते नामं पव्वते होत्था । तत्थ णं रेवतते पव्वते नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ । सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे० से णं एगेणं वणसंडेणं०, असोगवरपायवे० ।**

छाया—**एवं खलु जंबू !** तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नाम्नी नगरी अभूत्, द्वादश-योजनायामा, नव-योजन-विस्तीर्णा, धनपति-मति-निर्मिता, चामीकरप्राकारा, नाना-मणि-पञ्चवर्ण-कपिशीर्षक-मण्डिता, सुरम्या, अलकापुरी-संकाशा, प्रमुदित-प्रक्रीडिता, प्रत्यक्ष देवलोक-भूता, प्रासादीया ४ । तस्या द्वारवतीनगर्याः बहिः उत्तरपौरस्त्ये-दिग्भागे, अत्र रैवतको नाम पर्वतोऽभूत् । तत्र रैवतक-पर्वते नन्दनवननाम उद्यानमभवत् । वर्णकः । सुरप्रियं नाम यक्षायतनमभूत्, पुराणम्, तदेकेन वनषण्डेन० अशोकवरपादपः० ।

पदार्थ—**एवं**—इस प्रकार **जम्बू !** हे जम्बू ! **खलु**—निश्चयार्थक है, **तेणं**—उस **कालेणं**—काल में **तेणं**—उस **समएणं**—समय में **बारवती णामं**—द्वारवती (द्वारिका) नाम वाली **नगरी**—नगरी **होत्था**—थी,जोकि **दुवालसजोयणायामा**—बारह योजन लम्बी थी **नवजोयणवित्थिण्णा**—नव योजन चौड़ी थी **धणवइ-मति-निम्माया**—उस का निर्माण धनपति-वैश्रमण देव की बुद्धि से किया गया था । **चामीकर-पागारा**—उस के प्राकार-कोट सोने के थे । **नाना**—नानाविध **मणि**—इन्द्रनील, वैदूर्य आदि मणियों के कारण **पंचवण्ण**—पांच वर्ण वाले **कविसीसग**- कपिशीर्षक--कगूरों से, **मंडिया**—सुसज्जित थी **सुरम्मा**—अति रमणीय थी **अलकापुरिसंकासा**—अलकापुरी कुबेर की नगरी के समान थी **पमुदितपक्कीलिया**—जो प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी,**पच्चक्खं**—साक्षात् **देवलोगभूया**—स्वर्ग लोक के स्वरूप जैसी प्रतीत होती थी,**पासादीया**—देखने योग्य थी, चित्त को प्रसन्न करने वाली थी । ४—दर्शनीय थी, अभिरूप थी प्रतिरूप थी । **तीसे**—उस **बारवतीनयरीए**—द्वारिका नगरी के **बहिया**—बाहिर **उत्तरपुरच्छिमे**—ईशानकोण के **दिसीभागे**—दिशाविभाग में **एत्थ णं**—वहां पर **रेवतते**—रैवतक **नामं**—नाम का **पव्वते**—एक पर्वत **होत्था**—था **तत्थ**—वहां **रेवतते**—रैवतक **पव्वते**—पर्वत पर **नंदणवणे**—नन्दन वन **नामं**—नाम का **उज्जाणे**—उद्यान-बाग **होत्था**—था **वण्णओ**—वर्णन प्रकरण समझ लेना **सुरप्पिए**—वहां पर सुरप्रिय **नामं**—नामक यक्ष का **जक्खा-**

यतणे—यक्षायतन—मन्दिर **होत्था**—था **पोराणे**—बहुत प्राचीन था **से**—वह मन्दिर **एगेणं**—एक **वणसंडेणं०**—वनषण्ड—अनेकविध वृक्षो के समूह से घिरा हुआ था, उसके मध्य में **असोगवरपायवे०**—अशोक वृक्ष नामक एक प्रधान वृक्ष था।

मूलार्थ—**जम्बू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—**

जम्बू ! उस काल, उस समय में द्वारिका नाम की एक नगरी थी। यह नगरी बारह योजन लंबी, नौ योजन चौड़ी थी, वैश्रमणदेव कुबेर की विलक्षण बुद्धि से उसकी रचना की गई थी, उस का कोट सोने का बना हुआ था। इन्द्रनील, वैदूर्य आदि मणियों का प्रयोग होने के कारण उस के कंगूरे पांच वर्ण वाले दिखाई दे रहे थे, वह रमणीय थी, कुबेर नगरी के समान प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान बन रही थी, साक्षात् देवलोक जैसी मनोहर लग रही थी, देखने योग्य थी, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

द्वारिका नगरी के बाहिर ईशाण कोण में रैवतक नाम का एक पर्वत था। उस पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उद्यान वर्णनीय था। वहां सुरप्रिय नामक यक्ष का एक मन्दिर था, बहुत प्राचीन था, और एक वनषण्ड [अनेकविध वृक्षों का समुदाय] से घिरा हुआ था। उस वनषण्ड के मध्य में एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।

हिन्दी विवेचन—अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में क्या वर्णन किया गया है ? जम्बू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी फरमाने लगे—

बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का युग था, भगवान उस समय जन-कल्याण के लिए स्थान २ पर भ्रमण कर रहे थे, जनता को अहिंसा सत्य का अमृत बाँट रहे थे। उसी युग में द्वारिका नाम की एक नगरी थी। नगरी अपनी अनेकानेक विशेषताओं के कारण संसार में प्रख्यात हो रही थी। उस की लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई नौ योजन थी। उस की रचना स्वयं कुबेर ने की थी। उस का कण-कण कुबेर के बुद्धिवैलक्षण्य का परिचय करवा रहा था।

द्वारिका नगरी के चारों ओर सोने का कोट बना हुआ था। उस में पांच वर्ण वाले अनेकों कंगूरे-बुर्ज बने हुए थे, जिनका निर्माण इन्द्रनील, वैदूर्य, पद्मराग आदि मणियों के द्वारा किया गया था। बड़ी रमणीक थी। कुबेर-पुरी की तरह वह सुन्दर लग रही थी, प्रमोद और क्रीडा करने वाले लोग उस में निवास करते थे। द्वारिका नगरी के सौन्दर्य की अधिक क्या चर्चा की जाय ? यदि संक्षेप से कहें तो, द्वारिका नगरी साक्षात् देवलोक की तरह प्रतीत होती थी।

द्वारिका नगरी की रचना ऐसे विचित्र ढंग से की गई थी, कि उस को देखकर मन हर्षित होता

था, उसे बार-बार देखने पर भी आंखें थकावट अनुभव नहीं करती थीं, उसे एक बार देख लेने पर भी पुनः देखने की लालसा बनी रहती थी, उसे जब भी देखा जाता था तब भी वहां कुछ नवीनता ही प्रतीत होती थी।

आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को फिर कहने लगे—जम्बू ! द्वारिका नगरी के बाहिर ईशाणकोण में एक विशाल पर्वत था। उस का नाम था—रैवतक, रैवतक पर्वत पर नन्दन वन नाम का एक उद्यान था। उद्यान बड़ा सुन्दर था, उद्यानयोग्य उस में सभी विशेषताएं थी। उस में सुरप्रिय नामक यक्ष का एक मन्दिर था। मन्दिर बहुत प्राचीन था। नागरिकों के हृदयों में उसके लिए बड़ा आदर था। वह मन्दिर वृक्ष समुदाय से घिरा हुआ था। उस नंदन वन के मध्य में एक वृक्ष था,द्वारिका के लोग उसे अशोक कहा करते थे। वृक्ष जगत में इस का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ लिखा गया है। अब प्रस्तुत सूत्र में पठित समस्त तथा कठिन पदों की अर्थ सम्बन्धी विचारणा करेंगे।

"तेणं कालेणं तेणं समएणं" यहां पठित काल और समय की अर्थगत भिन्नता को लेकर पीछे पृष्ठ पर प्रकाश डाला जा चुका है। जिज्ञासु पाठक वह स्थल देख ले।

बारवती—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है। यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है। जैनेतर संसार, वैदिक परम्परा में यही नगरी द्वारिका नाम से प्रसिद्ध है। इस तरह द्वारवती तथा द्वारिका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं।

दुवालसजोयणायामा—द्वादश योजनानि आयामो—दैर्घ्यं यस्याः सा। जो नगरी बारह योजन लम्बी हो, उसे द्वादशयोजनायामा कहते हैं।

प्रस्तुत में योजन का अर्थ मान **आत्मांगुल*** से करना है। जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उन के अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते है। ९६ अगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोस,तथा चार कोस का एक योजन होता है। इस तरह द्वारिका नगरी की लम्बाई ४८ कोस थी। ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारिका नगरी को बसाया गया था।

नव-जोअण-वित्थिण्णा—नव-योजनानि विस्तीर्णा—विस्तृता। अर्थात्—जो नगरी नव-योजन चौड़ी हो, विस्तार वाली हो, उसे नव-योजन-विस्तीर्णा कहते है।

धणवइ-मति-निम्माया§—धनपतिः कुबेरः तस्य मतिः, तया निर्मिता—रचिता। अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ,उसे धनपति निर्मिता कहते हैं।

त्रिखण्डाधिपति कृष्णचन्द्र महाराज की जीवनी की घटना है कि जब यादव जरासंध प्रतिवासुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में

* अगुल आत्मांगुल, उत्सेध आगुल और प्रमाणागुल इस तरह तीन प्रकार के होते हैं। अर्थ के लिए देखो "जैनसिद्धान्त बोल संग्रह" प्रथम भाग पृष्ठ ८३।

§ धणवइ-मति-निम्माया— द्वारिकावर्णनप्रकरण।

पहुंचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहां तेला किया, धनपति वैश्रमण देव का आराधन किया। आराधना से प्रसन्न हुए वैश्रमण देव प्रकट हो गए। तब कृष्ण महाराज ने उन को नगरी वसाने के लिए निवेदन किया। तदनन्तर धनपति देव ने आभियोगिक देवों द्वारा दिव्य योजनानुसार शीघ्र ही वहां नगरी बसा दी। नगरी के द्वार बहुत बड़े-बड़े थे, इस कारण इस का नाम द्वारवती रखा गया। आगे चलकर यही द्वारवती द्वारिका कहलाने लगी।

धनपति को कुबेर भी कहते हैं। यह उत्तर दिशा के एक अधिष्ठाता देव हैं, धन, समृद्धि के स्वामी माने जाते हैं। इन्होंने स्वयं द्वारिका नगरी का निर्माण कराया था, इसलिए सूत्रकार ने द्वारिका नगरी को धनपति-मति-निर्मिता यह विशेषण दिया है।

चामीकर-पागारा—चामीकरस्य प्राकारो यस्याम्, चामीकरनिर्मितः प्राकारो यस्यां सा सुवर्ण-मयप्राकारवती। अर्थात्—जिस का प्राकार कोट सोने का बना हुआ हो, उस नगरी को चामीकर-प्राकारा कहते हैं।

नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया—नानामणिभिः, इन्द्रनील-वैदूर्य-पद्मरागादिकैः मणिभिः, पञ्चवर्णाः कपिशीर्षकाः तैः मण्डिता, शोभिता। अर्थात्—अनेकविध इन्द्रनील, वैदूर्य, पद्मराग आदि मणियों के द्वारा बनाए गए पांच वर्ण वाले कपिशीर्षकों से मण्डित—शोभित नगरी को नानामणि-पंचवर्ण कपिशीर्षक-मण्डिता कहते हैं। कपिशीर्षक शब्द के कोषों में अनेकों अर्थ लिखे हैं—सचित्र अर्धमागधि कोषकार कपिशीर्षक का अर्थ करते हैं—

गढ से बाहिर देखने के लिए उस में रखे हुए बंदर के सिर के आकार के छेद।

"प्राकृत शब्द महार्णव" में कपिशीर्षक को "प्राकार का अग्रभाग" लिखा है।

कपिशीर्षक का कगूरा यह अर्थ भी लिखा है। बृहत हिन्दीकोषकार कंगूरा का गुंबद, बुर्ज, यह अर्थ करते हैं।

सुरम्मा—अतिशय रमणीया। अत्यधिक रमणीय, रुचिर, सुन्दर नगरी सुरम्या कही जाती है।

अलकापुरी संकासा—वैश्रमणयक्षपुरी तत्सदृशी। अर्थात्—अलकापुरी वैश्रमणयक्ष की नगरी का नाम है। वैश्रमणयक्ष को कुबेर भी कह देते हैं, इसलिए अलकापुरी को कुबेरपुरी भी कह दिया जाता है। कुबेर पुरी का सौन्दर्य अद्वितीय है, उस सौन्दर्य के समान जिस नगरी का सौन्दर्य है, उस नगरी को अलकापुरीसंकाशा कहते हैं।

द्वारिका नगरी का निर्माण कुबेर ने स्वयं करवाया था अथवा यूं कहें, द्वारिका* की रचना धनपति-वैश्रमण की बुद्धि द्वारा की गई थी। ऐसी दशा में उसे कुबेरनगरी से उपमित करना, उस के तुल्य बतलाना उचित ही है। कारण स्पष्ट है। कुबेर अपनी नगरी की सभी विशेषताओं को द्वारिका में ले आए थे, उस में उन्होंने कोई न्यूनता नहीं रहने दी थी। इस दृष्टि से द्वारिका अलका-पुरी के बिल्कुल समान प्रतीत होती थी, यदि द्वारिका को देख लिया जाए तो मानो अलकापुरी देख ली गई।

* धणवई-मति-निम्माया— द्वारिकावर्णनप्रकरण।

इस के अलावा, द्वारिका को अलकापुरी के समान बतलाने का यह भी कारण हो सकता है कि लौकिक साहित्य में किसी नगरी के वैशिष्ट्य का वर्णन करना हो तो अलकापुरी को ही सर्वोत्कृष्ट उपमान स्वीकार किया गया है। तात्पर्य यह है कि नगरियों में अलकापुरी सर्वोत्तम नगरी मानी जाती है। यदि किसी नगरी की उत्तमता का वर्णन करना इष्ट हो तो सूत्रकार उसे अलकापुरी-संकाशा यह विशेषण दे डालते हैं।

पमुदितपक्कीलिया—प्रमुदित प्रक्रीडिता, प्रमुदितयोगात् प्रमुदिता, प्रक्रीडितयोगात् प्रक्रीडिता, प्रमुदिता चासौ प्रक्रीडिता प्रमुदितप्रक्रीडिता तन्निवासिजनानां प्रमुदितत्वप्रक्रीडितत्वाभ्यामिति। अर्थात् जिस नगरी के निवासी प्रमुदित-प्रसन्न रहने वाले तथा प्रक्रीडित—क्रीड़ा प्रिय हों, उस नगरी को प्रमुदित-प्रक्रीडिता कहते हैं। द्वारिका नगरी का यह विशेषण उस के अपार वैभव और ऐश्वर्य का परिचायक है। जिन लोगों को पारिवारिक और सामाजिक किसी प्रकार का कोई भी संक्लेश नहीं होता जो प्रत्येक दृष्टि से सुखी और सम्पन्न होते हैं, वे ही प्रमुदित रह सकते हैं और वे ही नानाविध मनोरंजक क्रीड़ाओं के लिए समय निकाल सकते हैं। उक्त विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है।

"पच्चक्खं देवलोगभूया" प्रत्यक्षं देवलोकभूता—साक्षाद् देव-लोकसमाना। अर्थात्—जो नगरी साक्षात् देवलोक जैसी हो, देव लोक जैसी जिस में सुख सुविधाएं हों, वह नगरी प्रत्यक्षरूपेण देवलोक-भूता कहलाती है। प्रश्न हो सकता है कि मर्त्यलोक की कोई नगरी साक्षात् देवलोक स्वरूप कैसे हो सकती है? मर्त्यलोक मर्त्यलोक है, और देवलोक देवलोक। फिर मर्त्यलोक के एक भाग को साक्षात् देवलोक जैसा कैसे कहा व माना जा सकता है? यह सत्य है, देवलोक के क्षेत्र को मर्त्यलोक का क्षेत्र नहीं कहा जा सकता, और मर्त्यलोक के क्षेत्र को देवलोक का क्षेत्र नहीं माना जा सकता। तथापि सूत्रकार ने द्वारिका नगरी को जो साक्षात् देवलोक जैसी नगरी कहा है, इस का इतना ही उद्देश्य है कि यह नगरी ऐश्वर्य, सौन्दर्य में बढ़ी चढ़ी हुई थी, इस की समता करने वाली उस समय कोई दूसरी नगरी नहीं थी। तथा देवनिर्मित होने के कारण देवलोक जैसी रमणीयता उस में विद्यमान थी, इसी समानता के कारण उसे देवलोक जैसी बतलाया गया है।

"पासादीया ४" यहां दिए गए ४ के अंक से—**दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा,** इन तीन पदों का ग्रहण करना इष्ट है। इन सभी पदों का अर्थ इस प्रकार है—

प्रासादीया—प्रसादो मनः प्रमोदः प्रयोजनं यस्याः सा, द्रष्टृणां मनः प्रमोदजनिका, मनः प्रसन्नतोत्पादिका। अर्थात्—हृदय में प्रमोदः प्रसन्नता पैदा करने वाली नगरी प्रासादीया कहलाती है।

दरिसणिज्जा, दर्शनीया, यस्याः दर्शने चक्षुषोः श्रान्तिर्न भवति। अर्थात्—जिस नगरी को देख देख कर आंखें श्रान्ति—थकावट अनुभव न करें, निरन्तर देखने की ही उन में लालसा बनी रहे, उसे दर्शनीया कहते हैं।

'अभिरूवा—अभिरूपा, अभिमुखाभिमुख्येन सर्वदाऽवस्थितानि रूपाणि-राजहंस-चक्रवाक-सारसादीनि करि-महिष-मृगकुलादीनि, जलान्तर्गतानि मकरादीनि वा यत्र सा, अथवा यस्याः दर्शनं पुनः पुनरभिलषितं

भवति सा ।

अर्थात्—जिस नगरी की दीवारों पर राजहंस, चक्रवाक, सारस, हाथी, महिष, मृग आदि के तथा जल में स्थित (विहार करते हुए) मगरमच्छ आदि जलीय प्राणियों के सुन्दर चित्र बने हुए थे। अथवा जिस नगरी को एक बार देख लेने पर भी, उसे पुनः देखने के लिए दर्शक की इच्छा बनी रहती हो, उस नगरी को अभिरूपा कहते हैं।

'पडिरूवा—नवं नवमिव दृश्यमानं रूपं यस्याः सा, रमणीयेत्यर्थः। क्षणं-क्षणं यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः' ।

अर्थात्—जिस नगरी को जब भी देखो तब ही उस में देखने वाले को कुछ नवीनता प्रतिभासित हो, उस नगरी को प्रतिरूपा कहते हैं।

'उत्तरपुरच्छिमे' का अर्थ होता है–ईशानकोण। उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य के प्रदेश का नाम ईशानकोण है।

'वण्णओ' यह पद नन्दनवन उद्यान से सम्बन्धित अन्य वर्णक पदों की ओर संकेत करा रहा है। वे वर्णक पद ये हैं–

"सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे, रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाइए दंसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। इन पदों का अर्थ इस प्रकार है–

१—**सर्वर्तुक-पुष्प-फलसमृद्ध**—सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों और फलों से परिपूर्ण एवं समृद्ध।

२—**रम्य**—रमणीय, सुन्दर।

३—**नन्दनवनप्रकाश**—मेरुपर्वत पर स्थित नन्दनवन की तरह शोभा को प्राप्त करने वाला।

४—**प्रासादीय**—मन को हर्षित करने वाला।

५—**दर्शनीय**—जिसे देखकर आंखें थकावट अनुभव न करें, जिस को देखने की लालसा बनी ही रहे।

६—**अभिरूप**—जिसे एक बार देख लेने पर भी पुनः देखने की लालसा बनी रहे।

७—**प्रतिरूप**—जिसे जब भी देखा जाए तब भी वहां नवीनता ही प्रतीत हो।

"**सुरप्पिए**" की संस्कृत छाया सुरप्रियः और सुराप्रियः ये दो होती हैं। वैसे यह एक यक्ष का नाम है। शाब्दिक रचना के आधार पर इस के दो अर्थ हो सकते हैं—१—सुरों—देवों को प्रिय—प्यारा। २—सुराप्रिय, सुरा मदिरा का नाम है। मदिरा को प्रिय मानने वाला, सुराप्रिय कहलाता है।

"पोराणे०" यहां दिया गया बिन्दु ० **चिराईए पुव्वपुरिस-पण्णत्ते**......आदि पदों का संसूचक

है। इन सब पदों का अर्थ पीछे पृष्ठ पर दिया जा चुका है। अन्तर केवल इतना है कि वहां पूर्णभद्र उद्यान का वर्णन है जबकि प्रस्तुत में नन्दनवन का। नामगत भिन्नता के अतिरिक्त अन्य कोई भिन्नता नहीं है।

"**वणसंडेणं०**" यहाँ दिए बिन्दु ० से औपपातिक सूत्रगत निम्नोक्त पदों का ग्रहण करना चाहिये—

"सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए घण-कडिअ-कडिच्छाए, रम्मे महामेहणिकुरंबभूए।

ते णं पायवा मूलमंतो कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुप्फमंतो फलमंतो बीयमंतो अणुपुव्व-सुजाय-रुइल-वट्टभावपरिणआ एक्कखंधा अणेगसाला, अणेग-साहप्प-साह-विडिमा अणेग-नर-वामसुप्पसारिअ-अग्गेज्झ-घण-विउलबद्धखंधा अच्छिद्दपत्ता अविरलपत्ता अवाईण-पत्ता अणईअपत्ता निध्दूयजरढपंडुपत्ता, णवहरियभिसंतपत्तभारंधकार-गंभीरदरिसणिज्जा, उवणिग्गय णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलंतकिसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकुरग्गसिहरा, णिच्चं कुसुमिया णिच्चं माइया, णिच्चं लवइया, णिच्चं थवइया, णिच्चं गुलइया, णिच्चं गोच्छिया, णिच्चं जमलिया, णिच्चं जुवलिया, णिच्चं विणमिया, णिच्चं पणमिया, णिच्चं कुसुमिय-माइय-लवइय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-पिंड-मंजरिवडिंसयधरा, सुय-बरहिण-मयणसाल-कोइल-कोहंगक-भिंगारक-कोंडलक-जीवंजीवग-णंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंड-चक्कवाय- कलहंस-सारस-अणेग-सउण-गण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय-महुरसरणाइए सुरम्मे, संपिंडिय-दरिय-भमर-महुकरि-पतकर-परिलिन्त-मत्त-छप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर - गुमगुमंत-गुंजंत-देसभागे, अब्भंतर-पुप्फफले, बाहिर-पत्तोच्छण्णे, पत्तेहि य पुप्फेहि य उच्छण्ण-पडिवलिच्छण्णे, साउफले, निरोयए, अकंटए, णाणाविह गुच्छ-गुम्म-मंडवग- रम्मसोहिए, विचित्तसुहकेउभूए, वावी-पुक्खरिणी-दीहियासु य सुनिवेसिय-रम्मजाल-हरए, पिंडिमणीहारिम-सुगंधि-सुहसुरभि-मणहरं च महया गंधद्धणिं मुयंता, णाणाविह-गुच्छ-गुम्ममंडवक-घरक-सुह-सेउ-केउबहुला, अणेगरह-जाण-जुग्ग-सिवियपविमोयणा, सुरम्मा, पासादिया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा। तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झ-देसभाए एत्थ णं महं एक्के—"

अर्थात्—सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन एक विस्तृत वनखण्ड द्वारा समस्त* दिशाओं एवं विदिशाओं में घिरा हुआ था। वह वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाला, कृष्ण आभा वाला था, नील वर्ण वाला, नील आभा वाला था। हरे वर्ण वाला, हरे वर्ण की आभा वाला था, शीत स्पर्श वाला, शीत स्पर्श की प्रतीति कराने वाला था, स्निग्ध था, स्निग्धता की प्रतीति कराने वाला था, वर्णादि की प्रकर्षता वाला, वर्णादि क प्रकर्षता की द्योतक था।

वह वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाला, कृष्ण वर्ण की छाया वाला था। नील वर्ण वाला, नील वर्ण की छाया वाला था। हरित वर्ण वाला, हरित वर्ण की छाया वाला था। शीत था, शीत स्पर्श

* यहाँ से प्रस्तुत पाठ का अर्थ आरम्भ होता है।

वाली छाया वाला था। स्निग्ध था, स्निग्ध छाया वाला था। वर्णादि की प्रकर्षता से युक्त था तथा वर्णादि की प्रकर्षता से युक्त छाया वाला था। परस्पर शाखाओं के मिलने से सघन छाया वाला था। अत्यन्त रमणीक महान मेघों के विशाल समुदाय के समान था।

उस वनखण्ड के वृक्ष बड़ी-बड़ी जड़ों वाले थे (भूमि के भीतर गहरी फैली हुई होने के कारण उन वृक्षों की जड़ें बहुत विशाल थीं) विशाल कन्द (मूल के ऊपर की गाँठ) वाले थे। विशाल स्कन्ध वाले थे, विशाल त्वचा वाले थे, विशाल शाखाओं वाले थे। विशाल कोंपलों वाले थे विशिष्ट फूलों वाले थे, बीजों से परिपूर्ण थे।

उस वनखण्ड के वृक्ष अनुक्रम से उत्पन्न हुए थे। छत्र के समान रमणीय गोल आकार वाले थे। एक-एक स्कन्ध वाले थे, अनेक शाखाओं प्रशाखाओं एवं विडिमाओं (ऊपर की ओर गई हुई शाखाओं) वाले थे। अनेक पुरुषों द्वारा अच्छी तरह पसारी गई भुजाओं से भी उन वृक्षों के सघन विपुल वर्तुलाकार स्कन्ध का ग्रहण नहीं हो सकता था। उन वृक्षों के अनेक पत्र छिद्ररहित थे, वे पत्र अविरल थे—बहुत अधिक थे। अधोमुख—नतमुख थे, ईतियों—विपत्तियों से रहित थे। पुराने, पीले और सड़े हुए नहीं थे। नवीन, हरित थे, चमकीले थे। पत्रों की अधिकता से वहाँ अंधकार व्याप्त हो रहा था, अत एव वे गंभीर और दर्शनीय थे। नवान निकलने के कारण वे पत्र और पल्लव नूतन तरुणता से सम्पन्न थे—मुरझाए हुए नहीं थे, पत्रों पर जो कोंपलें थीं, वे कोमल थीं, उज्ज्वल थीं, मृदु पवन के झोंकों से हिलती रहती थीं। उनके प्रवाल भी बहुत कोमल थे। इस प्रकार पत्रों, पल्लवों, कोंपलों तथा प्रबालों से इन के उत्पन्न हुए अंकुर शोभित होरहे थे। इन अंकुरों से उन वृक्षों का अग्रभाग लहलहा रहा था। ये वृक्ष सदा सर्व ऋतु के फूलों से फूले रहते थे।

वनखण्ड के वृक्षों पर सदा मोर रहते थे। ये वृक्ष नित्य पल्लवित रहते थे, सदा गुच्छों से युक्त रहते थे, इन पर सदा नवमल्लिका आदि लताएं लिपटी रहती थीं। ये सदा फूलों, फलों के गुच्छों से युक्त रहते थे। ये सदा समश्रेणिरूप से स्थित रहते थे, ये सदा युगलरूप से स्थित रहते थे। ये सदा ही फल पुष्पादि के भार से झुके रहते थे, वे सदा अत्यन्त झुके रहते थे। इस प्रकार ये सब के सब कुसुमित, मयूरित, पल्लवित, स्तवकित, गुल्मित, गुच्छित, यमलित, युगलित, विनमित, प्रणमित वृक्ष पृथक्-पृथक् घनीभूत मंजरीरूप शिरोभूषणों से सदा युक्त रहते थे।

ये वृक्ष शुक, मयूर मदनशाल (मैना), कोकिल, कोभगक (पक्षिविशेष), भृंगारक (पक्षिविशेष), कोंडलक (पक्षिविशेष), जीवंजीवक (चकोर), नन्दीमुख (पक्षिविशेष), कपिल (तीतर), पिंगलाक्षक (बटेर), कारण्ड (पक्षिविशेष), चक्रवाक (चकवा), कलहंस (हंसविशेष), सारस इत्यादि अनेक पक्षियों के जोड़ों की उन्नत एवं मधुर स्वर वाली ध्वनियों से युक्त थे। ये बड़े ही सुरम्य—आनन्दप्रद थे। मद से उन्मत्त भ्रमर और भ्रमरियों के समुदाय जो पुष्पों के रसपान से उन्मत बने हुए थे, अथवा पुष्पों के रस का पान करने के लिए लालायित हो रहे थे, के "गुम् गुम्" इस प्रकार के अव्यक्त नाद से

गुंजते रहते थे। आभ्यन्तर में पुष्पों एवं फलों से तथा बाहिर में पत्तों से ये वृक्ष व्याप्त हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि ये पत्रों और पुष्पों से आच्छादित हो रहे हैं।

ये वृक्ष मीठे फलों वाले थे, निरोग—रोगरहित थे, कण्टकरहित थे, अनेक प्रकार के गुच्छगुल्मों (पुष्प स्तवकों) से मण्डित तथा लतामण्डपों से युक्त होने के कारण रम्य एवं सुशोभित थे। ये विचित्र सुखों के केन्द्र बने हुए थे। उस वनखण्ड में जितनी भी वापी (चार कोणों वाली वावडियाँ), पुष्करिणी (गोलाकार तथा कमलिनियों से यक्त वावडियाँ) तथा दीर्घकाएं (लम्बे आकार वाली वावड़ियां) थीं, उन सब पर वृक्षों के यथायोग्य सन्निवेश से स्थान-स्थान पर सुन्दर जाली-झरोखे बने हुए थे।

वनखण्ड के वृक्ष शुभ पुद्गलों के समूह से दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्धि वाली, अपने शुभ सौरभ से मन को आनंदित करने वाली विशिष्ट सुगन्ध की परम्परा को छोड़ते रहते थे। ये वृक्ष नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों से बने हुए अनेक मण्डप, घर, सुन्दर मार्ग और पताकाओं से सदा सुशोभित रहते थे। वहां पर अनेक रथ, यान, युग्य (तांगा) और पालकी आदि सवारियों के साधन रखे जाते थे। ये बड़े सुरम्य—अत्यन्त रमणीय, आल्हादकारक, दर्शनीय, सुन्दर आकृति वाले, अभिमत रूप वाले, लोगों के हृदयों को आकर्षित करने वाले थे। इस वनखण्ड के प्रायः मध्य में एक विस्तृत अशोक नामक श्रेष्ठ वृक्ष था।

"**असोगवरपायवे०**" यहां दिए गए बिन्दु से सूत्रकार को निम्नलिखित पाठ का ग्रहण करना इष्ट है—

"**पण्णत्ते कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूले, मूलमंते, कंदमंते जाव पविमोयणे, सुरम्मे पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।**"

से णं असोगवरपायवे अण्णेहिं, बहूहिं, तिलएहिं, लउएहिं, छत्तोवेहिं, सिरीसेहिं, सत्तवण्णेहिं, दहिवण्णेहिं, लोद्धेहिं, धवेहिं, चंदणेहिं, अज्जुणेहिं, णीवेहिं, कुडएहिं, सव्वहिं फणसेहिं, दाडिमेहिं, सालेहिं तालेहिं, तमालेहिं, पिएहिं, पियंगूहिं, पुरोवगेहिं, कायरुक्खेहिं, णंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। तेणं तिलया लवइया जाव णंदिरुक्खा कुस-विकुस विसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो, एएसिं वण्णओ भाणियव्वो, जाव सिविय पविमोयणा सुरम्मा, पासदीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा।

ते णं तिलया जाव णंदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउमलयाहिं, णागलयाहिं असोअलयाहिं, चंपगलयाहिं, चूयलयाहिं, वणलयाहिं, वासंतियलयाहिं, अइमुत्तयलयाहिं, कुंदलयाहिं, सामलयाहिं, सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ताओ णं पउमलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव वडिंसयधरीओ पासादीयाओ, दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ, पडिरुवाओ।

तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते, विक्खंभायामउस्सेह सुप्पमाणे किण्हे अंजण-घण-किवाण-कुवलय-हलधर-कोसेज्जागास-केस-कज्जलंगी-खंजण-सिंग-भेदरिट्ठय - जंबूफल-असण-कसण-बंधण-णीलुप्पल-पत्तनिकर-अयसि-कुसुमप्पगासे, मरकत-मसारकलित्तणयणकीयरासि-वण्णे, णिद्धघणे, अट्ठसिरे, आयंसयतलोवमे सुरम्मे, ईहामिय-

उसभ-तुरग-नर-मगर-विहगवालग-किण्णर-रुरुसरभ-चमर-कुंजर - वणलय-पउमलय-भित्तिचित्ते, आईणगरूय-बूर-णवणीय-तूलफरिसे सीहासणसंठिए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।

—औपपातिक सूत्र ५

अर्थात्—अशोकवृक्ष का मूलभाग—अधोभाग कुश, एवं विकुश आदि तिनकों से रहित था। वह विशुद्ध मूल वाला, कद वाला यावत् रथादि सवारियां उस के नीचे रखी जाती थी। वह अत्यन्त रमणीय, आल्हादकारक, दर्शनीय, अभिरूप—सुन्दर आकृति वाला तथा सबके मन को आकर्षित करने वाला था।

वह सुन्दर अशोक वृक्ष अन्य अनेक तिलक वृक्ष, लकुच वृक्ष, छत्रोप—वृक्षविशेष, शिरीष, सप्तपर्ण, दीर्घ वर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज, सव्य, पणस, दाडिम—अनार का वृक्ष, शाल, ताल, तमाल, पिय-प्रियगू, पुरोपग, राजवृक्ष (पीपल) और नन्दिवृक्ष इन से सर्वदिशाओं और विदिशाओं में घिरा हुआ था। वे तिलक, लकुच यावत् नन्दिवृक्ष वृक्षसमुदाय कुश, बिकुश आदि तिनकों से रहित मूल भाग वाला था। यह वृक्षसमुदाय विशुद्ध मूल वाला, विशुद्ध कंद वाला था। इन वृक्षों का वर्णन पहले की भान्ति जानना।

अशोक वृक्ष के समान ही उस वृक्षसमुदाय के नीचे शिविका आदि सवारियां रखी जाती थीं। वृक्षसमुदाय रमणीय चित्ताल्हादक, दर्शनीय आकृति वाला तथा सब के मन को आकर्षित करने वाला था। तिलक से लेकर नन्दिवृक्ष तक सभी वृक्ष अन्य अनेक प्रकार की पद्मलताओं से, चम्पक लताओं से, आम्र लताओं से, वन लताओं से, वासन्ती लताओं से, कुन्द लताओं से और श्याम लताओं से समस्त दिशाओं और विदिशाओं में चारों ओर से घिरे हुए थे।

वे पद्मलता आदिक लताएं नित्य ही पुष्पों से युक्त रहती थी। यावत् वे ऐसी ज्ञात होती थी मानो इन्हों ने शिरोभूषण धारण कर रखे हैं। वे लताएं चित्ताल्हादकारक थीं, दर्शनीय थीं, सुन्दराकृति वाली थी, तथा सब को आकर्षित करने वाली थीं।

उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे स्कन्ध से कुछ दूरी पर एक विशाल शिलापट्ट था। वह चौड़ाई, लम्बाई एवं ऊंचाई में उचित प्रमाण वाला था। वह कृष्ण वर्ण वाला था। उस शिलापट्ट का अंजनवृक्ष, नीलमेघ, कृपाण—तलवार, नीलकमल, हलधर, कौशेय—बलदेव का नीलवस्त्र, आकाश, केश—कलिवर्ण के बाल, काजल रखने की डिबिया, खंजन—पक्षिविशेष, शृङ्ग-भेद, भैंस आदि के सींग का खण्ड, रीठा, जामुन, अशणक—नील वर्ण का वृक्षविशेष, सनबन्ध—सन के फूल की डोडी, नीलोत्पल—नीलकमल के पत्तों का समूह, अलसी का फूल इन के प्रकाश जैसा प्रकाश था। मरकत-मणि—पत्थर को चिकना करने वाला पत्थर या कसौटी, कृष्ण—चमड़े की बनी हुई वस्तु विशेष, नेत्र की कनीनिका, इन के समुदाय जैसा उस शिलापट्ट का वर्ण था। वह शिलापट्ट सजल मेघ के समान श्याम वर्ण वाला था। इस के आठ कोने थे। इस का तलभाग आदर्श—दर्पण जैसा चमकीला था। वह अत्यन्त रमणीय था। वह शिलापट्ट ईहामृग—मृगविशेष, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी व्यालक—सर्प, किन्नर—व्यन्तरदेवविशेष, रुरु—काला मृग, सरभ, अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता एवं

पद्मलता इन सब के चित्रों से अलंकृत था। आजिनक—चर्ममय वस्त्र, रुत—रूई, बूर—वृक्षविशेष, नवनीत—माखन, तूल—आक की रूई, इन सब के समान उस का स्पर्श था। उस का आकार सिंहासन जैसा था। वह शिलापट्ट हृदय को हर्ष देने वाला था। देखने योग्य था। सुन्दर आकृति वाला था। सब को अपनी ओर आकर्षित करने वाला था।

प्रस्तुत सूत्र में द्वारिका नगरी तथा उसके बाहिर स्थित यक्षायतन आदि का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार अगले सूत्र में द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तत्थ णं बारवती नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया रायवण्णतो। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, पज्जुन्नपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडोणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुदन्त साहस्सोणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाते वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सोणं, रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं, अणंगसेना-पामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवतीए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स आहेवच्चं जाव विहरति।

छाया—तत्र द्वारवतीनगर्याः कृष्णनामा वासुदेवो राजा परिवसति। महता राजवर्णकः। स तत्र समुद्रविजयप्रमुखानां दशानां दशार्हाणां बलदेव प्रमुखानां पंचानां महावीराणं, प्रद्युम्नप्रमुखानामर्द्ध-चतुष्काणां कुमारकोटीनां, शाम्बप्रमुखानां षष्ठ्याः दुर्दान्तसाहस्रीणां, महासेनप्रमुखानां षट्पंचाशत् बलवर्गसाहस्रीणां, वीरसेनप्रमुखानामेकविंशतिवीरसाहस्रीणाम्, उग्रसेन प्रमुखानां षोडशानां राज-साहस्रीणां, रुक्मिणीप्रमुखानां षोडशानां देवीसाहस्रीणाम्, अनंगसेन प्रमुखानामनेकानां गणिका-साहस्रीणामन्येषां च बहूनामीश्वरयावत् सार्थवाहानां द्वारावत्या नगर्याः अर्द्धभारतस्य च समस्तस्याधिपत्यं यावत् विहरति।

पदार्थ—**णं**—वाक्यालंकार में ग्रहण किया जाता है; **तत्थ**—वहां; **बारवतीनयरीए**—द्वारिका नगरी में; **कण्हे णामं**—कृष्ण नाम का; **वासुदेवे राया**—वासुदेव राजा; **परिवसति**—निवास करता है; **महया**—जो कि महान है; **रायवण्णतो**—राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र की तरह जानना; **से**—वह कृष्ण वासुदेव; **तत्थ**—वहां पर; **समुद्दविजयपामोक्खाणं**—समुद्रविजय प्रमुख—अर्थात् जिनमें समुद्रविजय प्रधान है ऐसे; **दसण्हं**—दश; **दसाराणं**—दशार्हों; दस पूज्य जनों का; **बलदेवपामोक्खाणं**—बलदेव की प्रधानता वाले; **पंचण्हं**—पांच; **महावीराणं**—महावीरों के; **पज्जुन्न पामोक्खाणं**—प्रद्युम्न की प्रधानता वाले; **अद्धुट्ठाणं**—साढे तीन; **कुमारकोडीणं**—करोड़ कुमारों के; **संबपामोक्खाणं**—शाम्ब की प्रधानता वाले; **सट्ठीए**—६०; **दुद्दंतसाहस्सीणं**—हजार दुर्दान्त मनुष्यों के; **महासेनपामोक्खाणं**—महासेन की प्रधानता वाले;

छप्पण्णाए—छप्पन; **बलवग्गसाहस्सीणं**—हजार बलवर्ग—सैन्यसमूह के, **वीरसेनपामोक्खाणं**—वीरसेन की प्रधानता वाले; **एगवीसाते**—इक्कीस; **वीरसाहस्सीणं**—हजार वीर योद्धाओं के **उग्गसेणपामोक्खाणं**—उग्रसेन की प्रधानता वाले; **सोलसण्हं**—सोलह; **रायसाहस्सीणं**—हजार राजाओं के; **रुप्पिणीपामोक्खाणं**—रुक्मिणी की प्रधानता वाली; **सोलसण्हं**—सोलह; **देवीसाहस्सीणं**—हजार देवियों रानियों के; **अणंगसेणापामोक्खाणं**—अनंगसेना की प्रधानता वाली; **अणेगाणं**—अनेक **गणियासाहस्सीणं**—हजार गणिकाओं के; **अण्णेसिं च**—और दूसरे; **बहूणं**—अनेकों; **ईसर**—ईश्वर-ऐश्वर्यशाली; **जाव**—यावत् **सत्थवाहाणं**—सार्थवाहों—सेठों के **बारवतीए नयरीए य**—द्वारिका नगरी के तथा; **समत्थस्स**—समस्त **अद्धभरहस्स**—अर्द्धभारत के **आहेवच्चं**—आधिपत्य-शासन को धारण करता हुआ; **जाव**—यावत् **विहरति**—विहरण करता है।

मूलार्थ—द्वारिका नगरी में कृष्ण नाम के वासुदेव राजा राज्य करते थे, ये महान थे। (इनका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिये।)

द्वारिका नगरी में कृष्ण महाराज, समुद्रविजय की प्रधानतावाले दश दशार्ह, दस पूज्यजन, बलदेव की प्रधानतावाले पांच महावीर, प्रद्युम्न की प्रधानतावाले साढे तीन करोड़ राजकुमार, शाम्ब की प्रधानतावाले ६० हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन की प्रधानतावाले ५६ हजार सैनिक, वीरसेन की प्रधानता वाले २१ हजार वीर, उग्रसेन की प्रधानता वाले १६ हजार राजा, रुक्मिणी की प्रधानतावाली १६ हजार देवियां-रानियां, अनंगसेना की प्रधानतावाली हजारों गणिकाएं, तथा और भी अनेकों ऐश्वर्यशाली यावत् सेठ, इन सब पर तथा द्वारिका एवं आधे भारत के समस्त जनों पर शासन कर रहे थे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में द्वारिकाधीश महाराज कृष्ण के राज्यवैभव का वर्णन किया गया है। सूत्र का अर्थ मूलार्थ में लिखा जा चुका है। इस वर्णन से यह ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था, उस में किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं थी। कृष्ण महाराज का पुण्यदिवाकर पूरे यौवन में था और उसका प्रखर तेज सब के लिये असह्य बन रहा था।

'रायवण्णओ'—पद से सूत्रकार ने निम्नोक्त पदों की ओर संकेत किया है—

"हिमवंत-महंत-मलयमंदर-महिंदसारे, अच्चंत-विसुद्ध दीहराय-कुलवंससुप्पसूए, निरंतरं रायलक्खण विराइअंगमंगे, बहुजनबहुमाणे, पूजिए,सव्वगुणसमिद्धे, खत्तिए, मुइए, मुद्धाहिसित्ते माउपिउ-सुजाए, दयपत्ते, सीमंकरे सीमंधरे, खेमंकरे खेमंधरे, मणुस्सिन्दे, जणवयपिया, जणवयपाले, जणवयपुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, नरपवरे, पुरिसवरे, पुरिससीहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुण्डरीए,पुरिसवरगंधहत्थी, अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णे-

बहुधण-बहुजायरूवरयते, आओग-पओग-संपउत्ते विछड्डियभत्तपउर-भत्तपाणे बहुदासदासी-गोमहिस-गवेलग-प्पभूते, पडिपुण्ण जंत-कोसकोट्ठागराउधागारे, बलवं, दुब्बलपच्चामित्ते ओहकण्टयं, निहयकंटयं, मलियकंटयं, उद्धियकंटयं, अकंटयं, ओहयसत्तुं, निहयसत्तुं, मलियसंत्तुं, उद्धियसत्तुं, निज्जियसत्तुं, पराइअसत्तुं, ववगयदुब्भिक्खं, मारिभयविप्पमुक्कं, खेमं, सिवं, सुभिक्खं, पसन्त-डिम्बडमरं रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

महाराज कृष्ण महाहिमवान—हिमालय के समान महान थे । जैसे समस्त पर्वतों में हिमालय पर्वत महान माना जाता है, उसी प्रकार शेष राजाओं की अपेक्षा कृष्ण महाराज महान थे । मलय—पर्वतविशेष, मन्दर—मेरुपर्वत, महेन्द्र—पर्वतविशेष अथवा महाराज इन्द्र के समान वे प्रधान थे । वे अत्यन्त विशुद्ध, निर्दोष तथा चिर-दीर्घकालीन राजाओं के वंश में उत्पन्न हुए थे । उन का प्रत्येक अंग राजलक्षणों- स्वस्तिक आदि चिन्हों से निरन्तर (बिना अन्तर के) सुशोभित था । वह अनेक जनसमूहों से सम्मानित थे, पूजित थे, वे सर्वगुणसम्पन्न थे, वे क्षत्रिय जाति के थे, वे मुदित-प्रसन्न रहनेवाले थे । मूर्धन्य व्यक्तियों ने उनका राज्याभिषेक किया था । वे माता पिता के विनीत पुत्र होने के कारण सुपुत्र कहलाते थे । वे दयालु थे । वे विधान आदि की मर्यादा के निर्माता और अपनी मर्यादाओं का पालन करनेवाले थे । वे उपद्रव करनेवाले नहीं थे, और न ही वे उपद्रव होने देते थे । वे मनुष्यों में इन्द्र के समान थे, तथा उनके स्वामी थे । देश के हितकारी होने के कारण वे देश के पिता समझे जाते थे । वे देश के रक्षक थे । शान्ति-कारक होने से वे देश के पुरोहित माने जाते थे । वे देश के मार्ग-दर्शक थे । वे देश के अद्भुत कार्य करनेवाले थे । श्रेष्ठ मनुष्यों वाले थे और वे स्वयं मनुष्यों में उत्तम थे । वे पुरुषों में वीर होने के कारण सिंह के समान थे । वे रोष पूर्ण हुए मनुष्यों में व्याघ्र-बाघ के समान प्रतीत होते थे । अपने क्रोध को सफल करने में समर्थ होने के कारण वे पुरुषों में आशीविष—सर्प विशेष के समान थे । अर्थी रूपी भ्रमरों के लिये वे श्वेत कमल के समान थे । गजरूपी शत्रु राजाओं को पराजित करने में समर्थ होने के कारण वे पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान थे । वे आढ्य-समृद्ध थे, वे आत्मगौरव वाले थे । उन का यश बहुत विस्तृत हो रहा था, उनके विशाल तथा बहुसंख्यक सम्पन्न भवन, शयन-शय्या, आसन, यान, वाहन, रथ तथा घोड़े आदि से भरे पड़े थे । उनके पास बहुत सा धन तथा बहुत सा चाँदी सोना था । वे सदा अर्थलाभ-आमदनी के उपायों में लगे रहते थे । वे बहुत से अन्न, पानी का दान किया करते थे । उनके पास बहुत सी दासियां, दास, गौएं, भैंसें तथा भेड़ें थीं । उन के पास पत्थर फेंकने वाले यंत्र, कोष, भण्डार, कोष्ठागार-धान्यगृह तथा आयुधागार—शस्त्रशाला, ये सब परिपूर्ण थे । अर्थात् यंत्र पर्याप्त मात्रा में थे और उन से कोषादि भरे हुए रहते थे । उनके पास विशाल सेना थी । उनके पड़ोसी राजा निर्बल थे अर्थात् वे बहुत बलवान न थे । उन्होंने स्पर्धा रखनेवाले समानगोत्रीय व्यक्तियों का विनाश कर डाला था, उनकी सम्पत्ति छीन ली थी, उन का मान भंग कर डाला था तथा उन्हें देश से निकाल दिया था ।

महाराज कृष्ण ने शत्रुओं को जीत लिया था, उन्हें पराजित कर डाला था, अर्थात् पुनः राज्य प्राप्त करने की संभावना भी उनकी समाप्त कर दी थी । वे ऐसे राज्य के शासन का पालन

करते हुए शासन कर रहे थे जिसमें दुर्भिक्ष-अकाल नहीं था, जो महामारी—प्लेग के भय से रहित था, क्षेमरूप था, अर्थात् जहां लोग कुशलतापूर्वक रहते थे। जो शिवरूप था, सुखरूप था, जिसमें भिक्षा सुलभ थी, जिसमें डिम्बों-विघ्नों और डमरों-विद्रोहों का अभाव था।

"दसण्हं दसाराणं" इन पदों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं—

दसण्हं दसाराणं'ति तत्रैते दश—

समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्तिमितः सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरणः पूरणस्तथा॥ १॥
अभीचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्,
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्री च विश्रुते॥ २॥

'दश च तेऽर्हाश्च-पूज्याः इति दशार्हाः।'

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दस भाई थे—१—समुद्रविजय, २—अक्षोभ्य, ३—स्तिमित, ४—सागर, ५—हिमवान, ६—अचल, ७—धरण, ८—पूरण, ९—अभिचन्द्र, १०—वसुदेव। ये दसों बड़े बली थे। समुद्रविजय सब से बड़े थे और वसुदेव सब से छोटे। इन के कुन्ती और माद्री ये दो बहिनें थी।

'समुद्दविजय पामोक्खाणं—समुद्रविजय-प्रमुखानाम्, समुद्रविजयः प्रमुखो मुख्यः येषु ते, तेषामिति।' अर्थात् समुद्रविजय सब में मुख्य थे, प्रधान थे। कृष्ण महाराज के लिये दसों पूज्य थे, आदरास्पद तथा सम्मानास्पद थे, इसलिये इन दसों को दशार्ह शब्द से सूत्रकार ने अभिव्यक्त किया है। दशार्ह शब्द प्राकृत मे दसार का रूप ले लेता है। इसलिये इन्हें दस दसार कहा जाता है।

महावीराणं—महावीराणाम्, विशेषेण ईरयन्ति कम्पयन्ते शत्रून् ये ते वीराः, महान्तश्च ते वीराश्चेति महावीराः, तेषामिति। अतिशूराणामित्यर्थः। अर्थात्—शत्रुओं के हृदयों को कम्पित कर देनेवाले बलवान् व्यक्ति वीर कहलाते हैं। वीरों में भी जो महान वीर हों, उन्हें महावीर कहते हैं। महाबली, अतिशूर, महावीर ये समस्त शब्द समानार्थक हैं।

'पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमार-कोडीणं—प्रद्युम्नः प्रमुखो मुख्यो येषां ते प्रद्युम्नप्रमुखाः, तेषामिति, अर्द्धचतुष्काणां, सार्धत्रिकसंख्यकानामित्यर्थः, कुमारकोडीणं कुमारकोटीनाम्, कुमाराणां कोटयस्तासामिति। अर्थात्—साढ़े तीन करोड़ कुमार थे और इन मे प्रद्युम्न मुख्य थे। प्रद्युम्न इन कुमारों के नेता थे।

यहां प्रश्न हो सकता है कि कुमारों की इतनी बड़ी संख्या द्वारिका नगरी में ही विद्यमान थी? या कुछ राजकुमार द्वारिका में और कुछ द्वारिका से बाहिर रहते थे? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारों की जो संख्या बतलाई है, वह केवल द्वारिकानिवासी राजकुमारों की नहीं, प्रत्युत ये सभी राजकुमारों की है। महाराज कृष्ण के समस्त राज्य में इनका निवास था। उस समय महाराज कृष्ण का राज्य वैताढ्य पर्वत तक फैला हुआ था, अतः कुमारों की उक्त संख्या भारत वर्ष के तीनों खण्डों में निवास करती थी।

सूत्रकार ने आगे चल कर **"उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं"** ये पद दिये हैं। **इन का अर्थ है**—सोलह हज़ार राजा थे, इन के मुखिया महाराज उग्रसेन थे। ये सोलह हज़ार राजा भी द्वारिका नगरी में नहीं रहते थे। इन राजाओं का राज्य तीनों खण्डों में था और तीनों खण्डों में इन का निवास था।

सूत्रकार ने कुमारों की, राजाओं की तथा अन्य लोगों की संख्या का जो निर्देश किया है, इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य में ये सब लोग रहते थे और इन सब पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे। जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की संख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियों की जाति, धर्म और भाषा का बोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वासुदेव कृष्ण के राज्य में कितने कुमार थे? कितने राजा थे? कितना सैनिक दल था? कितनी रानियां थी? कितनी गणिकाएं थीं? आदि सभी बातों का सूत्रकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है। इस का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि सूत्रकार ने जिन लोगों का परिचय कराया है, वे सब द्वारिका में ही रहा करते थे। सूत्रकार ने सूत्र के अन्त मे **"आहेवच्चं"** यह पद दे कर इस तथ्य को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है। **आहेवच्चं** का अर्थ है—शासन। भाव यह है कि द्वारिका में रहते हुए कृष्ण महाराज सब के ऊपर अपना शासन चला रहे थे।

कुमारों की संख्या तथा अन्य लोगों की संख्या का वर्णन जिस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है, ठीक इस से मिलता-जुलता वर्णन श्री ज्ञातासूत्र के पांचवे अध्ययन में तथा सोलहवें अध्ययन में मिलता है। इस प्रकार का वर्णन प्रश्नव्याकरण के चतुर्थ अध्ययन मे भी आता है।

"दुद्दन्तसाहस्सीणं" दुर्दान्तसाहस्रीणाम्, दुर्दान्तानां परैर्दमितुमशक्यानां साहस्र्यस्तासां शत्रुभिरदम्यानामिति। अर्थात्—शत्रुओं द्वारा जिनका दमन न किया जा सके, जिन्हें पराजित न किया जा सके, उन्हें दुर्दान्त कहते हैं। महाराज कृष्ण के राज्य में ऐसे ६० हज़ार दुर्दान्त वीर थे। और उनमें शाम्ब कुमार मुखिया थे।

"बलवग्गसाहस्सीणं" बलवर्गसाहस्रीणाम् बलवर्गाणां सैन्यसमूहानां साहस्र्यस्तासामिति। अर्थात्—बल का अर्थ है सैनिक। समूह को भी बल कहते हैं। दोनों को मिलाकर अर्थ होगा—सैनिक समूह। भाव यह है कि वासुदेव कृष्ण के पास ५६ हज़ार सैन्यसमूह था। महासेन उस सैन्य-समूह का नायक अर्थात् मुखिया था।

वासुदेव कृष्ण का राज्य तीन खण्डो में था। इतने बड़े प्रदेश में ५६ हज़ार सैनिक क्या महत्व रखते हैं? कृष्णराज्य की अपेक्षा भारत छोटा सा देश है, आज इस के पास लाखों सैनिक हैं। तीन खण्डों की सुरक्षार्थ तो करोड़ो सैनिक अपेक्षित हैं। फिर सूत्रकार ने जो ५६ हज़ार सैनिक लिखे हैं? इस का क्या कारण है? इस प्रश्न का होना स्वाभाविक है। इस का समाधान इस प्रकार है। बलवग्ग शब्द सैन्यसमूह का बोधक है। सैन्यसमूह का अर्थ है—सैनिकों का समुदाय, अतः सूत्रकार ने जो बलवर्ग शब्द दिया है यह सैनिकदलों—सैनिक टुकड़ियों का परिचायक है। फिर एक सैनिक दल में भले ही हज़ारों सैनिकों की संख्या हो। कहने का भाव यह है कि महाराज कृष्ण के

पास ५६ हज़ार सैनिक-समुदाय था। केवल ५६ हज़ार सैनिक थे, यह अर्थ नहीं समझना चाहिए। **"रहस्यं तु केवलिगम्यम् ।"**

"अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं" यहां पठित **'अणेगाणं'** यह पद अनेक का बोधक है। इस का भाव यह है कि जिस प्रकार कुमारों की, सैन्यदल की और रानियों की संख्या निश्चित थी, परन्तु महाराज कृष्ण के राज्य में रहनेवाली गणिकाओं की संख्या निश्चित नहीं थी, इसीलिये सामान्य रूप से प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने हज़ारों गणिकाओं का उल्लेख कर दिया है। अनंगसेना का सब गणिकाओं में प्रधान स्थान था।

गणिका शब्द के दो अर्थ उपलब्ध होते हैं—१—नृत्य तथा गायन द्वारा जीविका चलानेवाली स्त्री। २—पैसे लेकर कामियों की कामवासना पूर्ण करनेवाली नारी। प्रस्तुत में गणिका शब्द का प्रथम अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये।

"ईसर जाव सत्थवाहाणं" यहां पठित **जाव**—यावत् पद से **"तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय—"** इन पदों का ग्रहण करना चाहिए। इन का अर्थ इस प्रकार है—

'ईश्वर—युवराज का नाम है। **तलवर**—राजा के कृपापात्र को अथवा जिन्होंने राजा की ओर से उच्च आसन (पदवी विशेष) प्राप्त करलिया है, ऐसे नागरिकों को तलवर कहते है। जिस के निकट दो-दो योजन तक कोई ग्राम न हो उस प्रदेश को **मडम्ब** कहते हैं, मडम्ब के अधिनायक को **मांडबिक** कहा गया है। कुटुम्बों के स्वामी को सेठ कौटुम्बिक तथा सार्थ अर्थात् व्यापारी मुसाफिरों के समूह के नायक को **सार्थवाह** कहते है।

"अद्धभरहस्स" इस में दो पद है—एक अर्द्ध और दूसरा भरत। अर्द्ध आधे को कहते हैं। भरत का अर्थ है—भारतवर्ष। भरतक्षेत्र का अर्धचन्द्र जैसा आकार है। तीन ओर लवणसमुद्र और उत्तर में चुल्लहिमवत पर्वत है। अर्थात् लवणसमुद्र और चुल्लहिमवन्त पर्वत से उस की सीमा बंधी हुई है। भारत के मध्य में वैताढ्य पर्वत है। इस से भरत के दो भाग हो जाते हैं। वैताढ्य की दक्षिण ओर का दक्षिणार्ध भरत और उत्तर की ओर का उत्तरार्ध भरत है। चुल्लहिमवन्त पर्वत के ऊपर से निकलनेवाली गंगा और सिन्धु नदियां वैताढ्य की गुफाओं से निकल कर लवणसमुद्र में मिलती हैं। इस से भरत के छः विभाग हो जाते हैं। इन्हीं छह विभागों को छह खण्ड कहते हैं। चक्रवर्ती का राज्य इन ६ खण्डों में होता है। और वासुदेव* का राज्य तीन खण्डों में अर्थात् अर्धभरत में होता है। महाराज कृष्ण वासुदेव थे, इसीलिये प्रस्तुत सूत्र में कहते हैं कि महाराज कृष्ण अर्ध भरत का शासन कर रहे थे।

"आहेवच्चं जाव विहरति" यहां पठित **जाव**—यावत् पद से सूत्रकार को जो पद अभीष्ट हैं, वे इस प्रकार हैं—

"आहेवच्चं" त्ति—आधिपत्यम्—अधिपतिकर्म, इह यावत्करणादिदं दृश्यम्—"पोरेवच्चं"—पुरोवर्तित्वमग्रेसरत्वमित्यर्थः, "भट्टित्तं"—भर्तृत्वं पोषकत्वम्, सामित्तं—स्वामित्वं, महत्तरगत्तं—महत्तरकत्वं शेषनृपापेक्षया महत्तमताम्, आणाइसरसेणावच्चं—आज्ञेश्वर—आज्ञाप्रधानो यः सेनापतिः,

* चक्रवर्ती से आधे वैभव को धारण करनेवाले, तीन खण्डों के अधिनायक युगपुरुष।

सैन्यनायकस्तस्य भावः कर्म वा आज्ञेश्वरसेनापत्यम्। 'करेमाणे' कारयन्, परैः पालेमाणे "पालयन् स्वयमिति" इस का अर्थ इस प्रकार है—

१—आधिपत्य—अधिपति राजा का नाम है। उसका कर्म आधिपत्य कहलाता है, अर्थात् राजा लोगों के प्रभुत्व को आधिपत्य कहते है।

२—पुरोवर्तित्व—आगे चलनेवाले का नाम पुरोवर्ति है। पुरोवर्ती—मुख्य का कर्म पुरोवर्तित्व है। मुख्यत्व और पुरोवर्तित्व दोनों समानार्थक हैं।

३—स्वामित्व—स्वामी नेता का नाम है। उस का कर्म स्वामित्व कहलाता है।

४—भर्तृत्व—पालन-पोषण करनेवाले का नाम भर्ता है। उस का कर्म भर्तृत्व है।

५—महत्तरकत्व—उत्तम या श्रेष्ठ का नाम महत्तरक है। उस का कर्म महत्तरकत्व है।

६—आज्ञेश्वर-सैनापत्य—जो स्वयं ही आज्ञेश्वर (राजा) है, स्वयं ही सेनापति है, उसे आज्ञेश्वर सेनापति कहते है। उस का भाव अथवा कर्म आज्ञेश्वर सैनापत्य कहलाता है।

करेमाणे, पालेमाणे का अर्थ है—दूसरों द्वारा कराते हुए तथा स्वय पालन करते हुए।

प्रस्तुत सूत्र में महाराज कृष्ण के आधिपत्य का जो वर्णन किया गया है, उस से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण का पुण्यदिवाकर अपने शिखर पर आसीन था। उसके प्रखर तेज के सामने कोई ठहर नही सकता था। सिर पर माता, पिता पितामह आदि सभी पूज्य पुरुषों की विद्यमानता भी पुण्योत्कर्ष का एक ज्वलन्त प्रतीक है। महाराज कृष्ण को इस का भी सौभाग्य प्राप्त था।

श्री स्थानाग सूत्र मे वासुदेव कृष्ण का 'कर्म-उत्तम-पुरुष' के रूप मे वर्णन किया गया है। कर्म उत्तम पुरुष का अर्थ है—जो राजनीति में पूर्णतया कुशल हो, शत्रुओं के लिये सिह के समान हो, मित्रों के लिये कल्पवृक्ष के तुल्य हो तथा क्षत्रियजनोचित सभी गुणों मे अलंकृत हो। स्थानांगसूत्र द्वारा कृष्ण महाराज को जो कर्म उत्तमपुरुष कहा गया है, इसमे भी कृष्ण महाराज के पुण्य की उत्कृष्टता ही प्रकट होती है।

प्रस्तुत सूत्र मे महाराज कृष्ण के आधिपत्य का वर्णन किया गया है। अब अगले सूत्र मे सूत्रकार अपने प्रतिपाद्य विषय का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तस्स णं बारवतीए नयरीए अंधगवण्ही णामं राया परिवसइ। महता हिमवन्त वण्णओ। तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। वण्णओ। तते णं सा धारिणी देवी अण्णया कदाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले—

सुमिण दंसणकहणा, जम्मं बालत्तणं कलातो य।
जोव्वणपाणिग्गहणं, कंता वासा य भोगा य॥ १॥

नवरं गोयमे अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ।

छाया—तत्र द्वारावत्यां नगर्याम्, अन्धकवृष्णिर्नाम राजा परिवसति । महता हिमवद्० वर्णकः । तस्य अन्धकवृष्णेः राज्ञः धारिणी नाम्नी देव्यभूत् । वर्णकः । ततः सा धारिणी देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशके शयनीये एवं यथा महाबल :—

स्वप्नदर्शनकथना जन्म, बालत्वं कलाश्च ।
यौवनपाणिग्रहणं, कान्ताप्रासादभोगाश्च ॥ १ ॥

नवरं, गौतमो अष्टानां राजवरकन्यकानामेकदिवसे पाणिं ग्राहयन्ति, अष्टौ-अष्टौ दायाः ।

पदार्थ—णं—वाक्यालंकारार्थक है । **तत्थ**—उस; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **अंधगवण्ही**—अन्धकवृष्णि; **नामं**—नामक; **राया**—राजा; **परिवसइ**—रहता था; **महता**—महान था; **हिमवंत**—हिमालय जैसा बड़ा था; **वण्णओ**—विशेष वर्णन जान लेना; **तस्स**—उस; **अंधगवण्हिस्स**—अंधिकवृष्णि, **रण्णो**—राजा के, **धारिणी**—धारिणी; **नामं**—नामवाली, **देवी**—रानी; **होत्था**—थी; **वण्णओ**—विशेष वर्णन जान लेना; **तते**—तदनन्तर; **सा**—वह; **धारिणी देवी**—धारिणी रानी; **अण्णया**—कभी; **कदाइं**—किसी समय; **तंसि**—उस । **तारिसगंसि**—तत्समान—उसके योग्य; **सयणिज्जंसि**—शय्या, **एवं**—इस प्रकार । **जहा**—जैसे ; **महब्बले**—महाबल कुमार का वर्णन है; **सुमिणदंसणकहणा**—स्वप्नदर्शन का कथन करना; **बालत्तणं**—बालावस्था का वर्णन करना, **जम्मं**—जन्म का वर्णन करना; **य**—और; **कलातो**—कलाओं का वर्णन करना । **जोव्वण**—यौवनावस्था; **पाणिग्गहणं**—विवाह, **कांता**—स्त्रियां, **पसाया**—महल, **य**—और **भोगा**—भोग, सब का वर्णन करना; **नवरं**—इतना विशेष है; **गोयम नामेणं**—लड़के का नाम गौतम था उसका; **अट्ठण्हं**—आठ, **रायवरकन्नाणं**—श्रेष्ठ राजाओं की कन्याओं के साथ **एगदिवसेणं**—एक दिन में; **पाणिं गेण्हावेन्ति**—विवाह करवा देते हैं; **अट्ठट्ठओ**—आठ-आठ; **दाओ**—दातें दी गई ।

मूलार्थ—उस द्वारिका नारी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा राज्य करता था । पर्वतों में जैसे हिमवान पर्वत महान है, ऐसे ही वह राजा अन्य राजाओं से महान था । उसकी ऋद्धि-समृद्धि का विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । उस राजा की रानी का नाम धारिणी था ।

किसी समय महारानी धारिणी एक उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी । उसने एक स्वप्न देखा, उस स्वप्न को उसने अपने पति को बतलाया । बालक का जन्म, बालक का बालभाव, उस द्वारा कलाओं का सीखना, युवावस्था की प्राप्ति, कान्ताओं—राजकुमारियों के साथ विवाह, प्रासादों—महलों का निर्माण और काम-भोगों का उपभोग आदि सभी बातें भगवती सूत्र में वर्णित महाबल की भांति जान लेनी चाहियें । इतना अन्तर अवश्य है कि राजकुमार का नाम गौतम रखा गया था और उसका एक ही

दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज में आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं दी गईं।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में राजकुमार गौतम के माता-पिता तथा विवाह तक की एवं उसके जीवन सम्बन्धी अन्य घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

गौतम के पिता महाराज अन्धकवृष्णि थे, माता महारानी धारिणी थी। गौतम जब माता धारिणी के गर्भ में आए थे, उस समय माता को स्वप्न में सिंह के दर्शन हुए थे। माता धारिणी ने स्वप्न दर्शन की बात महाराज अन्धकवृष्णि के सामने रखी। उन्होंने उसे स्वप्न की महत्ता समझाते हुये कहा—देवानुप्रिये ! स्वप्न उत्तम है, लाभप्रद है, हमारे घर में सिंह जैसे पराक्रमवाला एक बालक जन्म लेगा। पुत्रजन्म की बात सुन कर महारानी धारिणी को असीम आनन्द प्राप्त हुआ।

गौतम का जन्म, उस का बाल-भाव, पुरुषोचित कलाओं का सीखना, पाणिग्रहण—विवाह, प्रासादों का निर्माण तथा भोगों उपभोग आदि सभी बातें महाबल कुमार के समान जान लेनी चाहिए। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार भगवती सूत्र में राजकुमार महाबल के जन्म से लेकर विवाह तक के जीवनवृत्तों का उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार गौतम कुमार के जीवन वृत्तों को भी समझ लेना चाहिये। अन्तर केवल नाम का है। भगवती सूत्र में यह वर्णन महाबल कुमार के नाम से किया गया है, जबकि प्रस्तुत सूत्र में यह वर्णन गौतम कुमार के नाम से है। नामगत भिन्नता के अतिरिक्त दोनों के जीवनवृत्तों में कोई अन्तर नहीं है। जहां अन्तर है, वहां सूत्रकार ने स्वयं **"नवरं गोयमो नामेणं"**—इन शब्दों द्वारा प्रकट कर दिया है। इसका भाव यह है कि गौतम कुमार का एक दिन में आठ राजकन्याओं के साथ विवाह कराया गया और उन्हें आठ-आठ प्रकार का दहेज मिला।

"महता हिमवन्त० वण्णओ" यहां दिया गया बिन्दु तथा **"वण्णओ"** पद औपपातिक सूत्र में किए गए राजा कोणिक के वर्णन की ओर संकेत कर रहा है। सूत्रकार का आशय यह है कि चम्पा-नरेश कोणिक के ऐश्वर्य के समान महाराज अंधकवृष्णि का ऐश्वर्य था। औपपातिक सूत्र के राज-वर्णन का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

"वण्णओ" इस का सम्बन्ध रानी धारिणी से है। यह पद रानी का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर संकेत करा रहा है। रानी सम्बन्धी पाठ इस प्रकार है—

सुकुमाल पाणिपाया, अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा, लक्खणवंजण-गुणोववेया, माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगी, ससिसोमाकारकंतपियदंसणा—सुरूवा, करयल-परिमिअ-पसत्थ-तिवलियमज्झा, कुंडलुल्लिहियगंडलेहा, कोमुइ-रयणियर-विमलपडिपुण्ण-सोमवयणा, सिंगारागार-चारुवेसा, संगयगयहसिय भणिय विहियविलास-सललिय-संलाव-निउण जुत्तोवयार कुसला, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा, अंधगवण्हिणा रण्णा सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता, इट्ठे-सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरति।

इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

महारानी धारिणी के हाथ-पैर बड़े ही कोमल थे। उसमें स्त्रियोचित लक्षणों की हीनता न थी, उसके अंग स्वरूप की अपेक्षा परिपूर्ण (न अधिक छोटे, न अधिक मोटे और न अधिक कृश) अर्थात् अपने-अपने प्रमाण से युक्त पांचों इन्द्रियों से उसका शरीर सुशोभित था, उसका शरीर लक्षणों* तथा व्यंजनों† से युक्त था। मान‡ उन्मान* प्रमाण× के अनुसार उसके सब अंग बने थे, इसलिये वह अद्भुत सुन्दरी थी। चन्द्रमा जैसे सौम्य और मनोहर अंग होने से, देखनेवालों को उसका रूप बड़ा प्यारा लगता था। उस की बीच में रही हुई त्रिवलियुक्त कमर मुट्ठी में आ जाती थी, केश-कुण्डलों के पुनः पुनः स्पर्श होने के कारण उस के गालों पर निशान बन गए थे, उसका मुख कार्तिक में उदय होनेवाले स्वच्छ चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान था, उस का रूप शृंगार रस का स्थान सा बन गया था, या उस का आकार शृंगार के सहित और वेष सुन्दर था।

महारानी धारिणी का चलना, हंसना, चेष्टायें और कटाक्ष विलक्षण थे। वह प्रसन्नतापूर्वक भाषण करने में कुशल तथा लोकव्यवहार में चतुर थी। देखनेवालों का चित्त उसे देखते ही प्रसन्न हो जाता था, वह दर्शनीय थी—मनोहर थी। देखनेवालों को उसका नवीन-नवीन रूप मालूम होता था। महाराज अन्धकवृष्णि में वह अनुरक्त थी—उस का शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श प्रिय था। वह मनुष्यों के पांच प्रकार के कामभोगों को भोगती हुई रहती थी।

"एवं जहा महाबले" इन पदों से सूत्रकार ने गौतम कुमार के जीवन को महाबल कुमार के समान प्रकट किया है। गौतम कुमार और महाबलकुमार की जहां-जहां जीवन सम्बन्धी समानता है, उस का भी सूत्रकार ने—**"सुमिणदंसण कहणा—"** आदि पदों द्वारा सर्वथा स्पष्टीकरण कर दिया है। महाबल के जीवन का भगवती सूत्र में वर्णन किया गया है। प्रसंगानुकूल कुछ अंश इस प्रकार है—

हस्तिनापुर नगर के राजा बल की प्रभावती नाम की एक रानी थी। किसी समय उसने रात्रि के समय अर्द्धजागृत अवस्था के स्वप्न में आकाश से उतर कर मुख में प्रवेश करते हुए एक सिंह को देखा। जागने पर वह उक्त स्वप्न का फल पूछने के लिये अपने शयनागार से उठी, समीप के शयनागार में सोए हुए महाराज के पास आई, उनको जगाया और अपना स्वप्न उन्हें सुनाया। स्वप्न को सुन कर नरेश बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—'प्रिये ! स्वप्न बड़ा उत्तम है, इसके फलस्वरूप तुम्हारे गर्भ से एक बड़ा प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न होना चाहिये।' महारानी प्रभावती स्वप्न के इस फल को सुनकर मन ही मन प्रसन्न होती हुई पतिदेव को प्रणाम करके वापिस अपने शयनभवन

* साथिया, चक्र, शंख आदि चिन्ह।

† मसा, तिल आदि।

‡ एक पुरुष प्रमाण जल का कुण्ड भर दिया जाए, उस में उसी पुरुष को बैठाने से यदि एक द्रोण (३२ सेर) प्रमाण पानी कुण्ड से बाहिर निकल जाए, उसे मान कहते हैं।

* मनुष्य को तराजू पर बैठाने से जो आधा भार-परिमाण विशेष होता है, उसे उन्मान कहते हैं।

× अपने अंगुलों से जो १०८ अंगुल हो, वह प्रमाणप्राप्त कहलाता है।

में आ गई। अनिष्टोत्पादक कोई स्वप्न न आ जाए, इस विचार से शेष रात्रि उसने धर्म-जागरण में ही व्यतीत की।

स्नानादि की आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो कर महाराज बल ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों एवं राजपुरुषों को बुलवाया, उन से कहा—'स्वप्नशास्त्रियों को बुला कर लाओ।' राजकर्मचारियों ने राजाज्ञानुसार स्वप्नशास्त्रियों को बुलाया। तदनन्तर राजा ने उन के सामने महारानी प्रभावती का पूर्वोक्त स्वप्न सुना कर उस का फल पूछा। स्वप्नशास्त्रियों ने भी कहा कि—"आप के घर में एक सर्वांगपूर्ण पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। यह पुत्र महान प्रतापी राजा होगा, या अखण्ड ब्रह्मचारी मुनीश्वर होगा।" राजा ने ज्योतिषियों को यथोचित पारितोषिक देकर विदा किया।

लगभग नवमास के परिपूर्ण होने पर महारानी ने एक सर्वांगसुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजदम्पति ने बड़े आनन्द मंगल के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया तथा बड़े समारोह के साथ उस का नामकरण संस्कार किया और महाबल यह नाम रखा। पांच धाय माताओं के संरक्षण में महाबल का लालन-पालन होने लगा। तत्पश्चात् कुमार के माता पिता ने क्रम से स्थितिपतित (पुत्र जन्म का उत्सव विशेष) चन्द्रसूर्यदर्शन, रात्रि-जागरण, नामकरण आदि सभी कार्य सानन्दपूर्ण किये।

आठ वर्ष और कुछ दिन बीतने पर कुमार को कलाचार्य को सौंप दिया गया। कलाचार्य ने भी महाबल को लिखना, गणित से लेकर पक्षी आदि के बोलने का शकुनज्ञान तक ७२ कलाएं सिखाईं। तदनन्तर कलाचार्य ने कुमार को उसके माता-पिता के पास छोड़ दिया। सर्वथा योग्य तथा युवावस्था सम्पन्न कुमार को देख कर महाराज बल ने महाबल के लिये विशाल और उत्तम आठ सुन्दर महल बनवाए और उनके मध्य में एक विशाल भवन तैयार कराया। तदनन्तर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में सुयोग्य आठ राज-कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह के उपलक्ष्य में राजा बल ने आठ करोड़ हिरण्य, आठ करोड़ सुवर्ण, आठ सामान्य मुकुट, आठ सामान्य कुण्डलों के जोड़े इस प्रकार की अनेक विध उपभोग्य सामग्री देकर श्री महाबल कुमार को महलों में रहने का आदेश दिया और महाबल कुमार भी प्राप्त हुई दहेज की सामग्री को आठों रानियों में विभक्त कर उन महलों में उनके साथ निवास करते हुए, विषयभोगों का सुख भोगने लगा।*

गौतम कुमार के जीवन की समानता बतलाने के लिए सूत्रकार ने **"एवं जहा महाबले"** आदि पदों काउल्लेख किया है। इनका भाव स्पष्ट है कि कला-शिक्षण आदि में गौतम और महाबल दोनों राजकुमारों का जीवन एक जैसा है।

"नवरं" यह एक अव्ययपद है इस का अर्थ है—इतना विशेष है। भाव यह है कि जहां एक व्यक्ति के जीवन के साथ अन्य व्यक्ति के जीवन की समानता की गई हो, यदि वहां कुछ भिन्नता भी कहनी इष्ट हो, तब वहां "नवरं" इस अव्ययपद का प्रयोग किया जाता है।

* विस्तृत कथानक के लिये देखिए भगवती सूत्र शतक ११, उद्देश्य ११।

"**अट्ठट्ठओ दाओ**" का अर्थ है, आठ-आठ प्रकार का दहेज। आठों राजकुमारियों को आठ आठ वस्तुएं दी गई। वे वस्तुएं कौन-कौन सी थीं? उस की सूची भगवती सूत्रके अनुसार इस प्रकार है—

आठ **हिरण्यकोटि** आभूषणों के रूप में परिणत आठ करोड़ रुपये का सोना अथवा (आठ करोड़ चांदी के सिक्के), आठ **सुवर्णकोटि** (आभूषण के रूप में परिवर्तित सोना जिस का मूल्य आठ करोड़ हो), आठ उत्तम **मुकुट**, आठ उत्तम **कुण्डलों के जोड़े**, आठ उत्तम **हार**, आठ उत्तम **अर्द्धहार**, आठ उत्तम **एकावली हार**, आठ उत्तम **मुक्तावली हार**, आठ उत्तम **कनकावली हार**, आठ उत्तम **रत्नावली हार**। आठ उत्तम **कड़ों के जोड़े**, आठ उत्तम **भुजबन्धों के जोड़े**, आठ उत्तम **रेशमी वस्त्रों के जोड़े**, आठ उत्तम **वटर**—टसर के जोड़े, आठ उत्तम **पट्टसूत्र के जोड़े**, आठ **दुकूल** नाम वृक्ष की त्वचा से बने वस्त्रों के जोड़े। आठ **श्रीदेवी** की प्रतिमाएं, आठ **ह्री देवी** की प्रतिमाएं, आठ **धृति देवी** की प्रतिमाए, आठ **लक्ष्मी देवी** की प्रतिमाएं। आठ **नन्द**—मांगलिक वस्तुएं अथवा आठ **लोहासन**, आठ **भद्र**—मांगलिक वस्तुएं, अथवा आठ **शरासन**, आठ उत्तम रत्नमय **तालवृक्ष**—अपने-अपने भवनों के चिन्ह-स्वरूप, आठ उत्तम **ध्वजा**, दस हजार गौओं का एक गोकुल होता है, ऐसे आठ उत्तम **गोकुल**, एक नाटक में ३२ पात्र काम करते हैं, ऐसे आठ उत्तम **नाटक**, रत्न-जटित एवं बहुमूल्य आठ उत्तम अश्व-प्रतिमाएं और आठ सुवर्ण निर्मित एवं रत्न जटित हस्ति प्रतिमाए, उत्तम **हाथी**, आठ उत्तम **यान**—गाड़ी आदि, आठ उत्तम **युग्य**—एक प्रकार का वाहन जिसे गोल्लदेश में जम्पान कहते हैं, आठ उत्तम **शिविकाएं**—पालकिएं, आठ उत्तम **स्यन्दमानिका**—पालकी विशेष, इसी प्रकार आठ उत्तम **गिल्लिएं** (हाथी के ऊपर की अम्बारी—जिस पर सवार बैठते है, उसे गिल्ली कहते है), आठ उत्तम **थिल्लियां** (घोड़े की काठी का नाम **थिल्ली** है), आठ उत्तम **विकट यान**—बिना छत की सवारी। आठ **पारि-यानिक**—क्रीड़ादि के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले रथ, आठ **सांग्रामिक रथ**, आठ उत्तम **घोड़े**, आठ उत्तम हाथी, दस हजार **कुल** (परिवार) जिस में रहते हैं, उसे ग्राम कहते है, ऐसे आठ उत्तम **ग्राम**, आठ उत्तम **दास**, आठ उत्तम **दासियाँ**, आठ उत्तम **किंकर**—नौकर (पूछ कर काम करनेवाले), आठ **कंचुकी**—अन्तःपुर के प्रतिहारी, आठ **वर्षधर**—वे नपुंसक जो अन्तःपुर में काम करते हैं, आठ **महत्तर**—अन्तःपुर में काम करने वाले। शृङ्खला—सांकल वाले आठ **सोने** के दीपक, सांकलवाले आठ **चांदी** के दीपक, सांकलवाले आठ **सोने और चांदी**—दोनों से निर्मित दीपक, **ऊंचे** दण्डवाले आठ सोने के दीपक, **ऊंचे** दण्डवाले आठ चांदी के दीप, **ऊंचे** दण्ड वाले आठ सोने और चांदी के दीपक, **पंजर**—फानूस वाले (एकदण्ड में लगे हुए शीशे के कमल या गिलास आदि जिन में बत्तियाँ जलाई जाती हैं) आठ सोने के दीप, **पंजरवाले** आठ चांदी के दीप, **पंजरवाले** आठ सोने और चाँदी के दीप। आठ सोने के **थाल**, आठ चांदी के थाल, आठ सोने और चांदी के थाल, आठ सोने की **कटोरियां**, आठ चांदी की **कटोरियाँ** आठ सोने और चांदी की **कटोरियाँ**, आठ सुवर्णमय **दर्पण** के आकार वाले पात्रविशेष, आठ **रजतमय** दर्पण के आकार वाले पात्रविशेष, आठ सुवर्णमय और **रजतमय** दर्पण के आकार वाले पात्रविशेष, आठ सुवर्णमय **मल्लक**—पात्र (कटोरा) आठ रजतमय **मल्लक**, आठ सुवर्णमय और रजतमय मल्लक, आठ सुवर्ण की **तलिका** (पात्री विशेष,) आठ रजत की तलिका, आठ सुवर्ण और रजत की तलिका, आठ सुवर्ण की **कलाचिका** (चमचे), आठ रजत की कलाचिका, आठ सुवर्ण और रजत की कलाचिका, आठ सुवर्ण के

तापिकाहस्त (पात्रविशेष), आठ रजत के तापिकाहस्त, आठ स्वर्ण और रजत के तापिकाहस्त, आठ **सोने के अवपाक्य** तवे, आठ रजत के तवे, आठ सुवर्ण और रजत के तवे। आठ सोने के **पादपीठ**—(**पांव रखने के आसन**), आठ रजत के पादपीठ, आठ सुवर्ण और रजत के पादपीठ, आठ सुवर्ण की **भिसिका**, (आसनविशेष), आठ रजत की भिसिका, आठ सुवर्ण और रजत की भिसिका, आठ सुवर्ण **के करोटिका**, (कुण्डे अथवा बड़े मुंह वाले पात्रविशेष), आठ रजत की करोटिका, आठ सुवर्ण और **रजत की** करोटिका, आठ सुवर्ण के **पलंग**, आठ रजत के पलंग, आठ सुवर्ण और रजत के पलंग, आठ **रजत की प्रतिशय्या** (उत्तरशय्या अर्थात् छोटे पलंग), आठ रजत की प्रतिशय्या, आठ सुवर्ण और **रजत** की प्रतिशय्या, आठ **हंसासन**, हंस के चिन्हवाले आसनविशेष, आठ **क्रौंचासन**—क्रौंच पक्षी के **आकार** वाले आसनविशेष, आठ **गरुडासन**—गरुड के आकारवाले आसनविशेष, आठ **उन्नत**—ऊंचे **आसन**, आठ **प्रणत**—नीचे आसन, आठ **दीर्घ**—लम्बे आसन, आठ **भद्रासन**—आसनविशेष, आठ **पक्षासन**—आसनविशेष, जिन के नीचे पक्षियों के अनेकविध चित्र हों, आठ **मकरासन**—मकर के **चिन्हवाले** आसन, आठ **पद्मासन**—आसनविशेष, आठ **दिशासौवस्तिकासन**—दक्षिणावर्त (स्वस्तिक) **के आकारवाले आसन**, आठ **तैलसमुद्ग**—तैल के डब्बे।

इनके अतिरिक्त औपपातिक सूत्र नामक शास्त्र में किये गए वर्णन के अनुसार **आठ पारिसो**—पारसदेशोत्पन्न दासियां, आठ **छात्र**—आठ छत्र धारण करनेवाली दासियां, **आठ चंवर**, आठ चवर धारण करनेवाली दासियां, आठ पंखे—आठ पंखे झुलानेवाली दासियाँ, **आठ** पानदान (वे डब्बे जिन में पान और इस के लगाने की सामग्री रखी जाती है—पनडब्बा) **आठ** पानदान को धारण करनेवाली दासियाँ, आठ **क्षीरधात्रियाँ**—बालकों को दूध पिलानेवाली **धायमाताएं**, आठ बालकों को गोद में लेनेवाली धायमाताएं, आठ अगमर्दन करनेवाली **स्त्रियां**, आठ **उन्मर्दिका**—विशेष रूप से अंग मर्दन करनेवाली दासियां, आठ स्नान करानेवाली **दासियां**, आठ शृङ्गार करनेवाली दासियां, आठ **चंदन** पीसनेवाली दासियां, आठ चूर्ण (पान का **मसाला**) अथवा सुगन्धित द्रव्य पीसनेवाली दासियां, आठ क्रीड़ाकरानेवाली दासियां, आठ **परिहास**—मनोरंजन करनेवाली दासियां, आठ **राजसभा** के समय साथ रहनेवाली दासियां, **आठ नाटक** करनेवाली दासियाँ, आठ साथ चलनेवाली दासियाँ, आठ **रसोई** बनानेवाली **दासियां**, आठ भाण्डागार—भण्डार की देखभाल करनेवाली दासियां, आठ मालिनें, आठ पुष्प धारण **करनेवाली दासिएं**, आठ पानी लाने वाली दासियां, आठ बलिकर्म—शरीर की स्फूर्ति के लिये **तैलादि मर्दन** करनेवाली दासियां, आठ शय्या बिछानेवाली दासियां, आठ अन्तःपुर का पहरा **देनेवाली** दासियाँ, आठ बाहिर का पहरा देनेवाली दासियां, आठ माला गूँथनेवाली दासियां, **आठ आटा** आदि पीसनेवाली अथवा सन्देश वहन करनेवाली दासियां, और बहुत सा हिरण्य, **सुवर्ण, कांस्य-कांसी**, वस्त्र, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती शंख, मूँगा, रक्तरत्न, **उत्तमोत्तम वस्तुएं** स्वापतेय—रुपया पैसा आदि इतना द्रव्य दिया जो कि सात पीढ़ी तक **चाहे इच्छापूर्वक** दान दिया जाए, स्वयं उसका उपभोग कर लिया जाए या खूब उसे बांटा जाए तो **भी वह** समाप्त नहीं हो सकता था।

प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार का जीवन सम्बन्धी वर्णन किया गया है और गर्भ में आने से लेकर विवाह तक के उन के जीवन को महाबल के समान बताकर संक्षेप में उसका परिचय करा दिया गया है। ध्यान से पढ़ने या गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेकों शिक्षाएं इस संदर्भ से प्राप्त की जा सकती हैं। कुछ शिक्षाएं इस प्रकार हैं—

१—जब पति-पत्नी दोनों सुयोग्य हों दोनों के द्वारा गृहस्थजीवन की समस्त मर्यादाओं का ठीक पालन होता हो, दोनों सदाचारी हों तथा दोनों में सात्विक तथा पूर्ण स्नेहभाव हो तो उनके जो सन्तान होती है, वह भी प्रायः सुशील, संयत और सर्वगुणसम्पन्न होती है। माता-पिता की सुशीलता तथा सच्चरित्रता का सन्तति पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। इसलिये सन्तति के भविष्य को उज्ज्वल देखने की कामना रखनेवाले प्रत्येक माता पिता को अपना जीवन सदाचारी, विवेकी और धर्म-प्रिय बनाना चाहिये।

२—जीव जिन शुभ-अशुभ कर्मों को लेकर माता के गर्भ में आता है, उन की प्रतीति माता को दिखाई देनेवाले स्वप्नों से तथा माता को उत्पन्न होनेवाले दोहदों से भलीभांति हो जाती है। यदि माता को शुभ स्वप्न आते हैं तो उनसे गर्भगत जीव की पुण्यसम्पत्ति का बोध होता है, यदि माता अशुभ स्वप्न देखती है, तो वे अशुभ स्वप्न गर्भ में आनेवाले जीव की भाग्यहीनता के प्रतीक होते है। यही स्थिति दोहदों की होती है। शुभ दोहद (गर्भिणी स्त्री को उत्पन्न होनेवाला एक विशेष प्रकार का सकल्प) जीव के सौभाग्य का और अशुभ दोहद जीव के दुर्भाग्य का परिचायक होता है।

महारानी धारिणी को स्वप्न आया। उस ने देखा कि मानो सिंह मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है। यह स्वप्न कितना महान है, शुभ है? मगलफल सूचक है? इस की चर्चा पीछे की जा चुकी है। भाव यह है कि शुभ स्वप्नो से जीव के पुण्य आदि का अनुमान किया जा सकता है।

३—जन्म के बाद, नामकरण, चूड़ाकर्म आदि कार्य हो जाने पर विद्यारंभ करवाया जाता है। विद्या के क्षेत्र में सर्वथा निष्णात हो जाने पर बालक के विवाह संस्कार का समय आता है। शास्त्रों में जहां कहीं पर भी किसी के विवाह का उल्लेख आया है, वहां पर युवावस्था में ही विवाह का होना पाया जाता है। इस से बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह दोनों का निषेध स्पष्ट हो जाता है तथा इस से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाला व्यक्ति युवा होना चाहिए। शास्त्रों के परिशीलन से पता चलता है कि विवाह-संस्कार का समय नव अंगों की जागृत दशा में ही होता है। दो कान, दो आंख, दो नासिका, जिव्हा, शरीर और मन ये नौ अंग जिस समय पूर्ण विकसित, पूर्ण बलवान हो जाते हैं, वह समय विवाह का है और वही समय युवावस्था है। बाल्यकाल में ये नौ अंग विकसित नहीं होते हैं। वृद्धावस्था आने पर इन की शक्ति क्षीण हो जाती है, अंग निर्बल हो जाते हैं। इसलिये ये दोनों अवस्थाएं विवाह के योग्य नहीं मानी जाती हैं। इस विचारणा से युवावस्था ही विवाह का समय सिद्ध होता है।

४—एक दिन में आठ राजकुमारियों के साथ विवाह करने का अर्थ है-समय और धन का दुरुपयोग न होने देना। जिस तरह आजकल विवाह में अधिक व्यय होता है और समय का दुरुपयोग होता है उस युग में ऐसी बात नहीं थी।

५—विवाह में जिस प्रकार वर्तमान में नवग्रह पूजनादि की रीति प्रचलित है, उस समय यह रीति प्रचलित नहीं थी। महाबल कुमार के वर्णनीय प्रकरण में उसके विवाह का जो वर्णन आता है उसमें देवों की पूजा का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सूत्रकार ने महाबलकुमार की विवाह सम्बन्धी समानता अभिव्यक्त करते हुए गौतम कुमार के आठ राजकुमारियों के साथ विवाहित होने का जो उल्लेख किया है, उसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि जैन-शास्त्र बहु विवाह प्रथा का समर्थन या विधान करते हैं, परन्तु यहां तो तात्कालिक घटनावृत्तों का केवल परिज्ञान कराना ही सूत्रकार को इष्ट है।

शास्त्रों के परिशीलन करने से पता चलता है कि विशाल साम्राज्य के उपभोक्ता नरेश अधिकाधिक विवाह होने में अपना गौरव मानते थे। अपने को वे प्रतिष्ठित अनुभव किया करते थे। राजकुमार गौतम के एक साथ आठ विवाहों से यही भाव व्यक्त होता है।

प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में आने से लेकर उस के विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमाराध्य भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँचकर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते है—

मूल—**तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आदिकरे जाव विहरइ, चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। ततेणं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्मं सोच्चा जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाणं० एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाते जाए इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।**

संस्कृतच्छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमिः आदिकरो यावत् विहरति। चतुर्विधा देवा आगताः। कृष्णोऽपि निर्गतः। ततः स गौतमः कुमारो यथा मेघः तथा निर्गतः। धर्मं श्रुत्वा यद् नवरं देवानुप्रिय! अम्बापितरौ आपृच्छामि, देवानुप्रियाणामेवं यथा मेघः यावत् अनगारो जातः। यावत् इदमेव नैर्ग्रन्थ्यं प्रवचनं पुरतः कृत्वा विहरति।

पदार्थ—**तेणं कालेणं**—उस काल, **तेणं समएणं**—उस समय **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), **आदिकरे**—श्रुतधर्म की आदि करनेवाले, **जाव**—यावत्; **विहरइ**—विहरण कर रहे थे, **चउव्विहा**—चार प्रकार के, **देवा**—देव, **आगया**—आए, **कण्हे वि**—कृष्ण महाराज भी; **णिग्गए**—नगर से निकले; **तते**—तत्पश्चात्, **से**—वह; **गोयमे कुमारे**—गौतम कुमार, **जहा**—जैसे; **मेहे**—मेघकुमार दर्शनार्थ गया था, **तहा**—उसी प्रकार, **णिग्गते**—नगर से निकला; **धम्मं**—धर्म; **सोच्चा**—सुनकर; **जं**—जो, **नवरं**—इतना विशेष; **देवाणुपिया**—हे देवानुप्रिय! हे भगवन्!; **अम्माप्पियरो**—माता-पिता को, **आपुच्छामि**—पूछता हूं (पूछ कर); **देवाणुप्पियणं**—देवानुप्रिय—आपके पास; **एवं**—इस प्रकार; **जहा**—जैसे; **मेहे**—मेघ कुमार की दीक्षा हुई थी; **जाव**—यावत्-साधु वृत्ति का पालन करता हुआ; **इणमेव**—इस; **निग्गंथं पावयणं**—निर्ग्रन्थ प्रवचन को; **पुरओ**—आगे; **काउं**—करके; **विहरइ**—विचरने लगा।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय श्रुत-धर्म का आरम्भ करनेवाले, धर्म के प्रवर्तक अरिहन्त अरिष्टनेमि-नेमिनाथ भगवान विहरण कर रहे थे। जब वे द्वारिका नगरी के बाहर उद्यान में विराजमान हुए, तब उनके समवसरण में चार प्रकार के देव उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी वहां आये। तदनन्तर उनके दर्शन करने को गौतम कुमार भी तैयार हुए। जैसे मेघ कुमार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास गए थे वैसे ही गौतम कुमार भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में गए। धर्म का श्रवण करके उस पर विचार करते हुए कहने लगे—

भगवन्! मैं अपने माता-पिता को पूछ कर आपके पास दीक्षा ग्रहण करूंगा।

जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास मेघकुमार दीक्षित हुए थे ठीक उसी प्रकार भगवान नेमिनाथ के पास गौतमकुमार दीक्षित हो गये। तदनन्तर मुनि गौतमकुमार निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुसार मुनि-वृत्ति का पालन करने लगे।

हिन्दी विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ का द्वारिका नगरी के बाहर रैवताचल पर्वत के नन्दन वन नामक उद्यान में पधारना, उनके समवसरण में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतषी और वैमानिक इन चतुर्विध देवों का आगमन, कृष्ण वासुदेव का पधारना, मेघकुमार की भांति गौतम कुमार का आना तथा मेघकुमार की भांति धर्मदेशना से प्रभावित होकर अन्त में गौतमकुमार का भगवान् के पास दीक्षित हो जाना आदि बातों का संकेत रूप में वर्णन किया गया है। साथ में यह सूचना भी दे दी गई है कि गौतमकुमार के विषय में ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र में वर्णित हुए मेघकुमार के सम्पूर्ण वर्णन की तरह सब कुछ जान लेना चाहिये। भाव यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित होकर मेघ कुमार ने जिस प्रकार संयम ग्रहण किया था उसी तरह गौतम कुमार ने भगवान् नेमिनाथ के चरणों में संयम अंगीकार किया।

"आदि करे जाव विहरति" यहां पठित 'जाव' पद से निम्नलिखित पदों का ग्रहण होता है—

तित्थगरे, सयंसंबुद्धे, सिव-मयल-मरुय-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्तिअंसिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामे, अरहा जिणे केवली सत्तहत्थूस्सेहे सम-चउरंस-संठाणसंठिए, वज्जरिसहनाराय-संघयणे, अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणी कवोयपरिणामे, सउणि-पोसपिट्ठंत-रोरुपरिणए, पउमुप्पल-गंध-सरिस० निस्सास-सुरभिवयणे, छवी निरायंक-उत्तम-पसत्थ-अइसेय-निरुवमपले-जल्ल-मल्ल-कलंक-सेयर-य व सवज्जिय, सरीर निरुवलेवे, छाया-उज्जोइ-अंगमंगे, घणनिचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागार-निभ-पिंडियग्गसिरए, सामलि-बोंड-घण-निचिय-छोडिय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुमलक्खण-सुगंध सुन्दर-भुअमोअग-भिंगनेलकज्जल-पहिट्ठभमर-गण-णिद्धनिकुरंबनिचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त-मुद्धसिरए, दालिम-पुप्फप्पगास-तवणिज्जसरिस निम्मलसुणिद्ध-केसंत-केसभूमी घण-(निचय)-छत्तागारुत्तमंगदेसे णिव्वण-

समलट्ठ-मट्ठ-चंदद्धसमणिडाले, उडुवइ-पडिपुण्णसोमवयणे, अल्लीण-पमाण-जुत्त-सवणे, सुस्सवणे पोणमंसल-कवोलदेसभाए आणामिय-चावरुइल-किण्हब्भराइतणुकसिणणिद्ध भमुहे, अवदालिय-पुंडरीयणयणे, कोआसिय धवलपत्तलच्छे, गरुलायतउज्जुतुंगणासे, उवचिय-सिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्ठे, पंडुर-ससि-सयल विमल-णिम्मल-संख-गोक्खीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया धवलदंत सेढी अखंडदंते अप्फुडियदंते अविरलदंते सुणिद्धदंते सुजायदंते एगदंतसेढीविव अणेगदंते, हुयवहणिद्धंत-धोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अवट्ठिय-सुविभत्तचित्तमंसू, मंसलसंठिय-पसत्थ सद्दूलविउलहणुए, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवे, वरमहिस-वराह-सोह-सद्दूलउसभ-नाग-वरपडिपुण्ण-विउल-क्खंधे, जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-सुसंठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिर-सुबद्ध-संधिपुरवर-फलिह-वट्टियभुए, भुअ-ईसर-विउलभोग-आदाण-पलिह-उच्छूढ-दीहबाहू रत्ततलोवइय मउअ मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्दजालपाणी, पीवर-कोमल वरंगुली, आयंबतंब-तलिण-सुइ-रुइल-णिद्धणक्खे। चंद-पाणिलेहे सूरपाणिलेहे संखपाणिलेहे चक्कपाणिलेहे, दिसासोत्थियपाणिलेहे चंद-सूर-संख-चक्क-दिसासो-त्थिय-पाणि-लेहे, कणगसिलातलुज्जल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्णपिहुलवच्छे, सिरिवच्छंकियवच्छे अकरंडुअ-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहयदेहधारी, अट्ठसहस्स-पडिपुण्ण-वर-पुरिसलक्खणधरे सण्णयपासे, संगयपासे, सुन्दरपासे सुजायपासे मियमाइअ-पीणरइअपासे, उज्जुअ-समसहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-रमणिज्जरोमराई, झसविहग-सुजाय-पीण-कुच्छी, झसोदरे सुइकरणे, पउमवियडणाभे, गंगावत्तक-पयाहिणावत्ततरंग-भंगुर-रविकिरणतरुणबोहिय-अकोसायंत-पउम-गंभीर-वियडनाभे, साहयसोणंद-मुसल-दप्पणणिकरिय-वरकणगच्छरु-सरिसवर-वइर-वलियमज्झे, पमुइय-वरतुरग-सोह-वर-वट्टियकडी, वरतुरग-सुजाय-सुगुज्झदेसे, आइण्णहउव्वणिरुवलेवे वरवारण-तुल्ल-विक्कम-विलसियगई, गयससण-सुजायसन्निभोरुसमुग्ग-णिमग्ग-गूढजाणू, एणीकुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंघे, संठिय-सुसिलिट्ठ-गूढगुप्फे, सुप्पइट्ठिय-कुम्म-चारुचलणे, अणुपुव्वसुसंहयंगुलीए, उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खे, रत्तुप्पल-पत्त-मउअ-सुकुमाल-कोमलतले, अट्ठ-सहस्स-वर-पुरिस-लक्खण-धरे, नग-नगर-मगर-सागर-चक्कंक-वरंक-मंगलंकियचलणे, विसिट्ठ-रूवे, हुयवह-निद्धूम-जलिय-तडितडिय-तरुणरवि-किरणसरिसतेए, अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नसोए निरुवलेवे, वगयपेमराग-दोसमोहे, निग्गंथस्स पवयणस्स देसए, सत्थनायगे, पइट्ठावए समणगपई, समणगविंदपरिअट्टए, चउत्तीस-बुद्धवय-णातिसेसपत्ते, पणतीस-सच्चवयण.तिसेस पत्ते, आगासगएणं, चक्केणं आगासएगं छत्तेणं आगासियाहिं चामराहिं, आगास-फलिआमएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे वारवतीए नयरीए नंदणवणे उज्जाणे वण्णओ, पुढविसिलापट्टए वण्णओ, तहेव—" इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

भगवान् अरिष्टनेमि श्रुतधर्म का आरम्भ करनेवाले, चार संघों की स्थापना करनेवाले स्वयं सम्बुद्ध, निरुपद्रव, निश्चल, नीरोग, अनन्त, अक्षय, निर्बाध, जिस से वापिस न आवें ऐसी सिद्ध गति को प्राप्त होनेवाले, इन्द्रों से पूज्य, जिन-केवली, सात हाथ लम्बे,* समचतुरस्र संस्थानवाले, वज्र ऋषभ नाराच संहनन वाले, शरीर के अन्दर की अनुकूल वायु के वेग से युक्त कंकपक्षी की भांति

* यह भगवान महावीर की अवगाहना है, भगवान अरिष्टनेमि की अवगाहना १० धनुष थी।

नीरोग गुदावाले, कबूतर की तरह तीव्र जठराग्निवाले, शकुनि पक्षी की तरह निर्लेप अपान देश वाले, पसवाड़े और जांघों की दृष्टि से विशेष सुन्दर आकारवाले थे।

भगवान् का मुख पद्म और नीले कमल के समान सुगन्ध-युक्त निश्वासवाला था। उनके शरीर की छवि अत्यन्त निराली थी, त्वचा अति कोमल थी। उनका मांस नीरोग, उत्तम, सफेद और निरुपम था। उनका शरीर मैल, अशुभ-तिल आदि चिह्नों, पसीना और धूल आदि की मलिनता से रहित अत्यन्त निर्मल था। उनके अंगोपांग कान्ति से चमकते थे। उनके स्नायु-बंधन शुभ लक्षणवाले और इतने मजबूत थे जैसे लोहे का घन।

उनका सिर ऐसे प्रतीत होता था जैसे पर्वत के शिखर का चिकना पाषाण-खण्ड। उनके सिर के बाल सेमल की रुई की तरह नरम, स्वच्छ, शुभ, चिकने और शुभ-लक्षणों से युक्त थे। सुगन्ध-वाले सुन्दर भुजमोचक रतन जैसे और नीलम एवं कज्जल के समान एवं मदोन्मत्त चमकीले भौरों की तरह काले, दक्षिण की ओर घूमे हुए, घने और घूंघरवाले थे। उनके मस्तक की त्वचा अनार के फूल या तपे हुए सोने के समान लाल, निर्मल और चिकनी थी। उनका मस्तक खुले हुए छत्र के समान उन्नत था। ललाट घाव आदि से रहित, समान, मनोज्ञ और दीप्त होने से अर्ध-चन्द्र-सा प्रतीत होता था। मुख पूर्ण चन्द्र-सा सौम्य था। कान सटे हुए और छोटे-बड़े न होने से प्रमाण-युक्त अतएव अत्यन्त सुन्दर थे। उनके गाल स्थूल और मांसल थे। भौंहें थोड़े नमे हुए धनुष के समान मनोज्ञ या काले बादल की रेखा की तरह काली और स्निग्ध थी। नेत्र खिले हुए, श्वेत कमल जैसे थे, अतः उनके कोये एवं पलक विकसित कमल के समान उज्ज्वल थे। नाक गरुड़ की तरह सीधी और ऊंची थी। नीचे का ओठ प्रवाल और बिम्बफल सा रक्तिम था। दांतों की पंक्ति स्वच्छ चन्द्र के टुकड़े-सी निर्मल, शंख-सी, गोदुग्ध के फेन-सी, कुन्द पुष्प सी जल की बूंद और कमल-नाल के समान श्वेत थी। उनके दांत टूटे हुए एवं छिदरे न थे, अतिशय स्निग्ध, मनोहर और पंक्तिबद्ध थे। घने होने से एक दूसरे से अलग मालूम न पड़ते थे तालु और जिह्वा, अग्नि से निर्मल हुए, पानी से धोए तथा फिर अग्नि में तपाये हुए सोने की तरह लाल थी। दाढ़ी और मूंछ के बाल बढ़ने-वाले न थे, दाढ़ी भरी हुई सुन्दर, शुभ लक्षणयुक्त विस्तीर्ण और व्याघ्र की दाढ़ी की तरह थी। ग्रीवा चार अंगुल की और उत्तम शंख जैसी थी।

भगवान् के कन्धे महिष, सिंह, शार्दूल, व्याघ्र, बैल और गजेन्द्र के कंधों से सुपुष्ट थे तथा यूप (यज्ञ के खंभे) के समान लम्बे, चौड़े, मोटे और मनोहर थे। उनकी कलाई भी स्थूल, सुन्दर आकारवाली, सुसंगत, उत्तम, पुष्ट स्थिर और मजबूत जोड़वाली थी। नगर-द्वार की अर्गला जैसी भुजाएं ऐसी मालूम होती थीं मानो इष्ट पदार्थ को ग्रहण करने के लिये जाते हुए किसी नागराज का लम्बा शरीर हो। हाथ कोमल, मांसल सुन्दर और सामुद्रिक शास्त्र के शुभ चिह्नों से युक्त थे। अंगुलियों के बीच छेद नहीं पड़ते थे। अंगुलियां स्थूल, कोमल और सुन्दर थीं। अंगुलियों के नख ताम्बे की तरह कुछ लाल, पतले पवित्र चमकीले और चिकने थे। हाथ की रेखाएं चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र और स्वस्तिक के चिह्नों से युक्त थीं।

वक्षस्थल सोने की शिला के समान उज्ज्वल, शुभ, समतल, मांसल विस्तीर्ण और अत्यन्त विशाल था, श्रीवत्स के चिह्न से शोभित था।

उनका सारा शरीर ही सोने सी कान्तिवाला मांसल (अतः पीठ की हड्डी दिखाई न देती थी) सुन्दर और रोगों से रहित था। महापुरुष के सम्पूर्ण १००८ लक्षणों से युक्त था।

पसवाडे क्रमशः पतले होते गये थे। शरीर के प्रमाण के अनुसार ही पसवाड़े थे, इसीलिये वे सुन्दर और मनोहर थे तथा अच्छे परिमाणवाले मोटे और सुन्दर थे। रोमराजि, सीधी विषमता से रहित घनी, पतली, काली, स्निग्ध, दर्शनीय, लावण्ययुक्त और रमणीय थी। कुक्षि मछली और पक्षी की तरह सुन्दर भरी पूरी थी। पेट मच्छ की तरह था। पांचों इन्द्रिया समर्थ थीं। नाभि कमल की तरह विकसित, गंगा के भवर के समान घुमावदार तथा विकसित कमल के समान गंभीर और विशाल थी। उनकी कटि त्रिकाष्ठिका (तिपाई), मूसल, दर्पण की मूठ तथा शुद्ध किये हुए सोने की तलवार की मूठ की तरह पतली थी और उत्तम वज्र के मध्य भाग की तरह पुष्ट थी। नीरोग घोड़े और बबर शेर की कमर के समान गोल थी। गुह्य देश घोड़े के गुह्य देश की तरह सुजात था। जात्यश्व (उत्तम अश्व) की तरह उनका शरीर मलमूत्र आदि से रहित था। गजराज की तरह मस्ती से युक्त और विलासपूर्ण गमन था। जांघें हाथी की सूण्ड की तरह पुष्ट थीं। घुटने मांस से भरे हुए होने के कारण ऐसे मिले हुये थे जैसे अनाज भरने की कोठी और उसका ढक्कन आपस में मिला रहता है। पिडली हरिणी की पिडली और कुरुविन्द (तृणविशेष) की तरह नीचे-नीचे क्रम से पतली होती गई थीं। घुटिकाएं सुन्दर आकारवाली उत्तम और मांसल होने से गूढ़ थी। चरण सुन्दर और कछुवे के समान उन्नत थे। अंगुलियां यथायोग्य छोटी बडी और एक दूसरे से मिली हुई थीं। पैर के नख उन्नत पतले ताम्रवर्ण और चिकने थे, तलवे लाल कमल के पत्ते के समान कोमल और सुन्दर थे। चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर, रथ, चक्र और इनके अतिरिक्त श्रेष्ठ मांगलिक चिह्नों से अंकित थे।

इस प्रकार भगवान् विशिष्ट रूपवाले थे। उनका तेज धूएं से रहित अग्नि, बिजली और दोपहर के सूर्य के समान दीप्त था। उनके कर्मों का आस्रव नहीं होता था। वे ममता-हीन परिग्रह-मुक्त और शोक-शून्य थे। प्रेम, राग, द्वेष और मोह से रहित थे। निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेशक थे। उपदेशकों के नायक और उनकी स्थापना करनेवाले थे। साधु-संघ के अधिपति और साधु-वृत्ति के संवर्धक थे। तीर्थंकरों के वचनादि चौंतीस अतिशयों से और पैंतीस सत्य वचन के अतिशयों से युक्त थे।

भगवान् के आगे-आगे धर्म-चक्र आकाश में चलता था। तीन छत्र आकाश में भगवान के ऊपर रहते थे। आकाश में ही बढ़िया श्वेत चंवर ढुलते थे। वे आकाश की तरह स्वच्छ स्फटिक के सिंहासन पर बैठे हुए थे। धर्म-ध्वजा (इन्द्रध्वजा) को देवता लोग आगे-आगे ले जा रहे थे। इन सबसे युक्त भगवान् क्रमशः ग्रामानुग्राम जाते हुए सुख पूर्वक विहार करते हुए द्वारिका नगरी के नन्दन वन में पधारे।

"जहा मेहे णिग्गते" इसका अर्थ है—जैसे मेघकुमार निकला। भाव यह है कि जैसे मेघकुमार भगवान् के दर्शनों के लिये गये वैसे ही गौतम कुमार भी भगवान् के चरणों में गये। मेघकुमार की दर्शन-यात्रा का वर्णन 'श्री ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र' में विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'मेहे जाव' आदि पद से मेघकुमार के जीवन-वृत्त की ओर संकेत किया गया है। मेघकुमार की कुछ जीवन-वृत्त रेखाएं इस प्रकार हैं—

भगवान् महावीर की आध्यात्मिक वाणी से मेघकुमार बड़ा प्रभावित हुआ। उपदेशामृत का पान करने से उसके हृदय-सरोवर में वैराग्य की तरंगें उठने लगीं। उसके मन पर से वासनाओं का आवरण इस तरह उतर गया, जैसे सांप के शरीर से केंचुली उतर जाया करती है। मेघकुमार के हृदय पर वैराग्य का अमिट रंग चढ़ गया। उसका विषयानुरागी मन अब वैराग्यानुरागी होकर संसार को त्याज्य मानने लगा।

सबके चले जाने पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी से मेघकुमार ने विनीत वाणो में निवेदन किया—'भगवन्! आप श्री का प्रवचन अत्यन्त प्रिय और यथार्थ है, मैं आपके श्रीचरणों के पास ही रहूं और संयम व्रत ग्रहण कर लूं—यही मेरी इच्छा है। केवल माता तथा पिता से पूछना शेष है, अतः उनसे पूछकर मैं अभी उपस्थित होता हूं।

इसके उत्तर में श्री भगवान् ने इतना ही कहा—'जैसे तुम्हें सुख हो, पर तुम्हें प्रमाद से सावधान रहना चाहिए।'

मेघकुमार रथ पर सवार हो घर पहुंचा। माता-पिता को प्रणाम करके वह कहने लगा—'मैंने आज भगवान् महावीर स्वामी से उपदेशामृत का पान किया है, उससे मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता। उपदेश तो अनेकों बार सुने, पर कभी हृदय इतना प्रभावित नहीं हुआ था, जितना आज हुआ है। उनके उपदेश से मेरे हृदय पर जो चित्र अंकित हुआ है उसे मैं ही देख सकता हूँ, दूसरे को दिखलाना मेरे लिये अशक्य है।

पुत्र के इन वचनों को सुनकर महारानी धारिणी बोली—'पुत्र! तू बड़ा भाग्यशाली है। धर्माचार्यों के चरणों में बैठकर धर्म का श्रवण कर उसे जीवन में उतारने का प्रयत्न कोई पुण्यशील ही कर सकता है। भाग्यहीन एवं पुण्यहीन व्यक्ति ऐसे पुनीत अवसर प्राप्त नहीं कर सकते। पुत्र! तेरे भाग्य की क्या सराहना करूं? सचमुच आज मेरे किसी महान् पुण्य का उदय हुआ है।'

माता की पावन वाणी सुनकर मेघकुमार बोले—'मां! मेरी इच्छा है कि मैं भगवान् के चरणों में उपस्थित होकर दीक्षा ले लूं। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपने इष्ट कार्य में शीघ्र लग जाऊं।'

अपने प्रिय पुत्र मेघकुमार की यह बात सुन कर महारानी धारिणी अवाक् सी रह गई। उसे क्या खबर थी कि उसके पुत्र के हृदय को भगवान् महावीर की धर्म-देशना ने वैराग्यमय कर

दिया है और वह राग एवं सांसारिक आसक्ति से सर्वथा मुक्त हो चुका है। पुत्र-वियोग की कल्पना से वह सहम गई।

माता-पिता विवाह के योग्य पुत्री का विवाह अपनी इच्छा से करते हैं, तब भी वियोग-वेला उन्हें व्यथित कर ही देती है। मेघकुमार की धर्मपरायणा माता धारिणी वैराग्यमयी दीक्षा को सर्वश्रेष्ठ मानती हुई भी, साधु-जनों की संगति और संयम को आदर्श समझती हुई भी वह इतनी विह्वल हो उठी कि बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब दास-दासियों के उपचार से वह कुछ सचेत हुई तो स्नेहपूर्ण हृदय से मेघकुमार को सम्बोधित करती हुई बोली—

'पुत्र ! तूने यह क्या कहा ? मैं तो तुम्हारा मुख देखकर ही जी रही हूँ, मेरे स्नेह का एकमात्र केन्द्र तू ही है। मैंने तुम्हें प्राणों से भी अधिक संभाल कर रखा है, मैं तो तुम्हारे आते का मुख और जाने की पीठ देखने के लिये ही खड़ी रहती हूँ। ऐसी दशा में तुम्हारे दीक्षित हो जाने पर मेरी जो अवस्था होगी, उस पर तुम्हें गम्भीरता से विचार करना चाहिये। माता का भी पुत्र पर कोई अधिकार होता है। इसलिये अधिक नहीं तो मेरे जीने तक तो तू इस दीक्षा के विचार को अपने हृदय से निकाल दे। अभी तेरा यौवन है, यौवनोपयोगी सभी भोग यहां विद्यमान हैं। यह सारा वैभव तेरे ही लिये है, फिर तू इसका यथेच्छ उपभोग न करके अभी से दीक्षित होने का निश्चय क्यों कर रहा है ?'

'तू अभी बच्चा है, संयम के पालने में कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, इसका तुझे अभी अनुभव नहीं है। संयम-व्रत का ग्रहण करना कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिये बड़े दृढ़ मनोबल की आवश्यकता होती है। तेरा कोमल शरीर, सुकुमार अवस्था और देव-दुर्लभ राज्य-वैभव की सम्प्राप्ति आदि के साथ दीक्षा जैसे कठोर व्रत की तुलना करते हुए मुझे तो तू उसके योग्य प्रतीत नहीं होता है। इस पर भी यदि तेरा दीक्षा लेने के लिये ही विशेष आग्रह है तो मेरे मरने के बाद दीक्षा ले लेना।

इसी समय महाराज श्रेणिक भी वहां आ पहुंचे और अश्रुपूर्णनेत्रा अपनी पत्नी से पुत्र के दीक्षा-सम्बन्धी निश्चय को सुनकर वे भी विचलित हो गये और पुत्र को दीक्षा से उदासीन करने का यत्न करने लगे। मां की ममता और पिता के स्नेह-बन्धनों को तोड़ते हुए दृढ़ निश्चयी मेघकुमार बोले—

'आज तक आपकी पुनीत गोद में बैठकर मैंने तो यही सीखा है कि जिस काम में अपना और संसार का कल्याण हो, उस काम के करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये, न जाने फिर आज आप मुझे विलम्ब की शिक्षा क्यों दे रहे हैं ? फिर यह भी तो निश्चित नहीं है कि मैं आपसे अधिक आयु प्राप्त करके ही आया हूं। क्या माता-पिता की उपस्थिति में पुत्र या पुत्री की मृत्यु नहीं हो सकती ?'

मेघकुमार के उत्तर से एक बार तो महारानी और महाराज अवाक् रह गये, परन्तु कुछ सोच कर बोले—'बेटा ! यदि तुमको हमारा ध्यान नहीं है, तो अपनी नवपरिणीता वधुओं का तो

ख्याल करो। अभी तुम इन्हें ब्याह कर लाये हो, इन बेचारियों ने तो अभी तक तुम्हारा कुछ भी सुख नहीं देखा। तुम यदि इन्हें इस अवस्था में छोड़कर चले गये तो इनका क्या बनेगा? इनकी रक्षा करना, तुम्हारा प्रधान दायित्व है। इनके विकसित हुये यौवन-पुष्प का विनाश कर दीक्षा के लिये उद्यत होना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। वंश-वृद्धि के पवित्र दायित्व को पूर्ण करना भी तो तुम्हारा कर्तव्य है और कर्तव्य से विमुख होना पाप है।'

मेघकुमार ने विनीत शब्दों में उत्तर दिया—'यह काम-भोग तो जीवन को पतित कर देने वाले हैं, स्वयं मलिन हैं और उपभोक्ता को भी मलिन बना देते हैं। यह जो रूप, लावण्य और शारीरिक सौन्दर्य है, वह भी चिरस्थायी नहीं है और यह शरीर जिसे अक्षय सौन्दर्य-सागर समझा जाता है, वस्तुतः मलमूत्र और अशुचि पदार्थों का घर है। ऐसे अपवित्र शरीर पर आसक्ति रखना मूर्खता के अतिरिक्त क्या हो सकता है। शरीर, वैभव और सम्बन्धी कोई भी इस जीव के साथ में जानेवाला नहीं है। समय आने पर ये सब साथ छोड़कर अलग हो जाते है। फिर इन पर मोह करना या विश्वास रखना कैसे उचित हो सकता है? इस अस्थिर सांसारिक सम्बन्ध के व्यामोह में पड़कर आप मुझे अपने कर्तव्य-पालन से विचलित करने का यत्न न करें। सच्चे माता-पिता वही होते हैं जो पुत्र के वास्तविक हित की ओर ध्यान देते है। मेरा हित इसी में है कि एक वीर क्षत्रिय के नाते कर्मरूप आत्म-शत्रुओं को पराजित करके आत्म-स्वराज्य को प्राप्त करू। इसके लिये साधन है–संयम-व्रत का सतत पालन। अतः संयम-पालन की आज्ञा देकर मुझे अनुगृहीत कीजिये, मुझे आत्म-शत्रुओं पर विजयी होने का आशीर्वाद दीजिये, मेरी संयम-व्रत की सफलता के लिये मंगल-कामना कीजिये। मुझे आज्ञा दो मां! मुझ आज्ञा दीजिए! आज्ञा दीजिये पितृदेव! मुझे भगवान् की शरण में पहुंचने की आज्ञा दीजिये।'

मेघकुमार के इस आग्रह की उपेक्षा करके सयम-मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए उसकी माता ने पुनः कहा—

'कुमार! संयमव्रत लेने की तेरे मन में जो लालसा है, वह तो प्रशंसनीय है, पर संयम-दीक्षा का ले लेना यद्यपि आसान कार्य है, परन्तु स्वीकृत दीक्षा के नियमों का पालन करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि संयम लेने का अर्थ है—उस्तरे की धार को चाटना और जिह्वा को कटने न देना, या नदी के प्रबल वेग के प्रतिकूल गमन करना या महान समुद्र को भुजाओं से पार करने की बात सोचना। बेटा! पर्वत को सिर पर उठाकर चलना आसान है, परन्तु संयम-व्रत का पालन करना कठिन है। भली प्रकार से सोच समझ कर तुम्हें इस मार्ग पर पैर बढ़ाना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि इधर सांसारिक वैभव से भी हाथ धो बैठो और उधर संयम का पालन भी न कर सको। संयम-व्रत में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसमें भोजन की व्यवस्था बड़ी अटपटी होती है। कच्चा पानी इसमें त्याज्य है, संसार भर के मधुर से मधुर एवं स्वादिष्ट से स्वादिष्ट फल-फूल और पक्वान्न इसमें त्याज्य हैं। भोजन के ग्रहण में भी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, भिक्षा से जीवन-निर्वाह करना होता है। तेरे जैसे राजसी ठाठ में पले हुए सुकुमार युवक के लिये भिक्षा मांगना बड़ा कठिन

कार्य है। नीरस भोजन, पृथ्वी पर शयन और शीतातप की बाधाओं को सहना आदि अत्यन्त कष्ट-साध्य कार्य हैं, जिनके पालन की तेरे जैसे राजकुमार द्वारा कभी कल्पना भी नहीं हो सकती है। ऐसे मार्ग में गमन करने से पहले अपने आत्म-बल को भी परख लो। कहीं इस नवीन वैराग्य की बाढ़ में तैरने के बदले अपने आपको डुबो देने की भूल न कर बैठना। तेरी बाल-बुद्धि अभी दूरगामिनी नहीं है। प्रत्येक कार्य में उसके आरम्भ से पहले उससे निष्पन्न होनेवाले हानि-लाभ का विचार करना नितान्त आवश्यक होता है, इसलिये मेरी तो इस समय तेरे लिये यही सम्मति है कि अभी तू दीक्षा के विचार को स्थगित कर दे।'

मां के इस उपदेश का भी मेघकुमार के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि वह संयम-पथ की कठिनाइयों को सुनकर कुछ उत्तेजित सा होकर बोला—

'मां! संयम महान् कठिन है, यह मैं जानता हूँ और मैं यह भी जानता हूं कि इसके धारक वीर पुरुष ही हो सकते हैं। यह काम कमजोरों और कायरों का नहीं है। वे तो इस दिशा में आरम्भ में ही विफल हो जाते हैं, परन्तु मैं तो एक वीर क्षत्रियाणी का वीर-पुत्र हूं और क्षात्र-धर्म का जीता-जागता प्रतीक हूँ। वीरांगना के पुत्रों में दुर्बलता की शंका करना अनुचित है। मां! एक वीर माता अपने पुत्र को संग्राम से पीछे हटने का उपदेश दे, यह देख मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। एक क्षत्रिय-कुमार होता हुआ मैं संयम की कठिनता से भयभीत हो जाऊं? यह तो आपको स्वप्न में भी सोचना नहीं चाहिये। मां!

"तेजस्विनः क्षणमसूनपि संत्यजन्ति।
सत्यव्रतप्रणयिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्॥"

तेजस्वी, धीर और वीर पुरुष अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं, परन्तु ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को भंग नहीं होने देते।

'भला मां! यह तो बतलाओ कि संसार में ऐसा कोई काम भी है जिसमें किसी न किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े? फिर तपोमार्ग के कष्टों से ही भयभीत किस लिये हुआ जाय? इसलिये आप मुझे संयम की कठिनाइयों से भयभीत करके संयम से विमुख करने का विफल प्रयास न करें। मैं तो—

"कार्यं वा साधयामि, देहं वा पातयामि"

इस प्रतिज्ञा का पालन करनेवाला हूँ, इसलिये मुझे संयम में उपस्थित होनेवाली कठिनाइयों का कोई भय नहीं है। आप इस विषय में सर्वथा निश्चिन्त रहें। आपकी निर्मल कीर्ति में किसी भी प्रकार का लांछन नहीं लगने दूंगा, अतः मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान कीजिये। माता के चुप रहने पर वह फिर बोला—

'वीरमाता अपने पुत्र को रणक्षेत्र में जाने के लिये स्वयं सजा कर भेजती है, परन्तु आज न जाने उसे क्या हो गया है? मां! मैं तो कर्मरूपी शत्रुओं के महान् दल को विध्वंस करने जा रहा हूं। मुझे उसके लिये स्वयं तैयार करो। योग्य माताओं के आदर्श को अपना कर अपने इस वीर

बालक को संयम-यात्रा की आज्ञा प्रदान करो। अब तो सौभाग्यवश मुझे श्रमण भगवान् महावीर जैसे महापुरुष मिल गये हैं। मैं उनके शासन में अवश्य विजय प्राप्त करूंगा। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसलिये माँ! उठो, तुम स्वयं चलकर मुझे भगवान् के चरणों में जाकर अर्पित कर दो।'

मेघकुमार के पिता महाराज श्रेणिक बड़े नीतिज्ञ थे। उन्होंने सोचा कि कभी-कभी अनेक युवक भावुकता के प्रवाह में बहते हुए स्थायी और दृढ़ संकल्पों के अभाव में भी स्थायी प्रभाव रखने वाले कार्यों में जुट जाते हैं। उसका फल यह होता है कि तीर तो हाथ से छुट जाता है, केवल पश्चात्ताप पल्ले रह जाता है। यद्यपि मेघकुमार बुद्धिमान् और सुशील है, तथापि युवक ही तो है; अस्तु इसकी दृढ़ता की प्रथम जांच करनी चाहिये। यह सोच महाराज श्रेणिक मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए बोले—

'पुत्र! तू वीर है, संसार में वीरता का आदर्श उपस्थित कर! तू साधु बनकर संसार से क्यों भाग रहा है? संसार का कल्याण जितना तलवार से हो सकता है, उतना साधुवृत्ति से नहीं हो सकता। अपने ऊपर आये हुए गृहस्थी के भार से भयभीत होकर भागना कायरों का काम है। यदि तू संसार का कल्याण चाहता है तो अपने हाथ में शासन की बागडोर ले और प्रजा का नीतिपूर्वक पालन कर। ऐसा करने से तेरा और जगत दोनों का ही कल्याण होगा।'

पिता की यह बात सुनकर मेघकुमार बोला—'पिता जी! यह आप ने क्या कहा? क्या संयम-धारण करना कायरों का काम है? नहीं, नहीं! उसके धारण करने के लिये तो बड़ी वीरता की आवश्यकता होती है। तलवार चलाने में वह वीरता नहीं जो संयम के ग्रहण करने में है। तलवार के बल से तो जनता के मन को भयभीत किया जा सकता है, उसे व्यथित एवं संत्रस्त करके कुछ काल के लिये वश में किया जा सकता है, पर तलवार का प्रभाव स्थायी नहीं हो सकता है।'

'राम अकेले थे, निस्सहाय थे, वन-विहारी थे और इसके विपरीत रावण लंकेश था, तलवारवाला था, परन्तु प्रजा ने किसका साथ दिया? राम का न कि रावण का। सारांश यह है कि तलवार चलाने में वीरता नहीं, वीरता तो उस काम में है जिससे अपना और दूसरों का हित सम्पन्न हो, कल्याण हो।'

दूसरी बात, यदि बाहरी शत्रुओं को जीता तो क्या जीता? इसमें तो कोई असाधारण वीरता नहीं है। वीरता तो आन्तरिक शत्रुओं की विजय में है। उनका दमन करनेवाला ही सच्चा वीर है। काम, क्रोध आदि जितने भी भयंकर एवं अदम्य आन्तरिक शत्रु हैं उनका दमन करनेवाला ही सच्चा वीर है। काम, क्रोध आदि जितने भी आन्तरिक शत्रु हैं, वे तलवार से कभी जीते नहीं जा सकते। इन पर तलवार का कोई असर नहीं होता। इनके जीतने का तो एक मात्र साधन संयम है। संयम की तलवार में जितना बल है, उससे तो शतांश या सहस्रांश भी इस बाहिर की चमकने वाली लोहे की जड़ तलवार में नहीं है। संयम की तलवार जहां अन्दर के काम, क्रोध आदि शत्रुओं को मार भगाने में शक्तिशाली है, वहां बाहर के शत्रुओं को पराजित करने में भी सिद्धहस्त है। मैं तो इसी उद्देश्य से इन्हीं अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये अपने आपको संयम की

तलवार से सन्नद्ध कर रहा हूं, परन्तु आप उसमें बाधक बन रहे हैं, क्या आपके हृदय में मेरी इस आदर्श वीरोचित तैयारी के लिये प्रोत्साहन देने की भावना जागृत नहीं होती ? क्या ही अच्छा हो, यदि आप अपने हाथ से मेरा निष्क्रमणाभिषेक करावें और प्रसन्न चित्त हो मुझे भगवान महावीर के चरणों में समर्पित करें।'

मेघकुमार के इस उत्तर ने महाराज श्रेणिक को भी मौन करा दिया और माता ने भी समझ लिया कि मेघकुमार अब रुक नहीं सकेगा, तब इससे तो यही अच्छा है कि इसके श्रेयसाधक कार्य में हम बाधाकारी न ही बनें। यही विचार कर उसने कुमार से कहा—

'अच्छा बेटा ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जाओ धर्म-साधना के द्वारा अन्तःशत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करो। कुमार ! धर्म-साधना में प्रमाद न करना, जाओ कुमार ! तुम्हारा संयम-पथ निर्विघ्न एवं कल्याणकारी हो। पर मेरी एक कामना है, तुम केवल एक दिन के लिये राज-सिंहासन पर अवश्य बैठ जाओ !' मेघकुमार ने स्वीकृति देदी।

मां धारिणी कुमार को एक दिन के लिये राजा बना कर उसकी परीक्षा लेना चाहती थी कि वैभव के आकर्षण उसे अपनी ओर खींचने में समर्थ तो नहीं हैं और वह यह भी जानती थी कि राज्य को त्याग कर लिये गये संयम का महत्त्व भी अधिक हो जायेगा और संसार को त्याग के महत्त्व का ज्ञान भी हो सकेगा।

मेघकुमार भी माता के अभिप्राय को समझ गया कि जैसे सोने की परीक्षा अग्नि में तपाकर ही होती है, वैसे मुझे भी अपनी दृढ़ता की परीक्षा राज्य लेकर देनी होगी।

दूसरे दिन मेघकुमार का बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक करके उसे राजा बना दिया गया। मेघकुमार राज्य सिंहासन पर बैठा, उसके ऊपर छत्र और चमर दोनों ढुलाये जाने लगे। राज्य-सत्ता मेघकुमार को अर्पित कर दी गई। महाराजा श्रेणिक और महारानी धारिणी अपने पुत्र को राज-गृह नरेश के रूप में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सप्रेम कहने लगे कि 'पुत्र ! किसी वस्तु की इच्छा है ?'

तब मेघ नरेश ने उत्तर दिया—'हां, मां ! अपने हाथों से रजोहरण और भिक्षा-पात्र दीजिये और स्वयं चल कर भगवान् महावीर के चरणों में मुझे समर्पित कीजिये।'

महाराजा श्रेणिक तथा महारानी धारिणी ने जब यह देखा कि मेघकुमार अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है और अब उसे किसी भी ढंग से आपातरमणीय सांसारिक काम-भोगों में फंसाया नहीं जा सकता और अब यह प्रभु वीर के चरणों में दीक्षित होकर अपना आत्मश्रेय साधने में अत्यधिक उत्सुक एवं उसके लिये सन्नद्ध हो ही रहा है तब उन्होंने अपने राजकर्मचारी पुरुषों को बुलाकर कहा कि—'भद्रपुरुषो ! राज्य के कोष में से तीन लाख मोहरें निकाल लो। उनमें से दो लाख मोहरों द्वारा रजोहरण और पात्र ले आओ, एक लाख मोहरें नाई को दे डालो, जो दीक्षित होने से पूर्व कुमार का शिरो-मुण्डन करेगा।

दीक्षा-महोत्सव की तैयारी होने लगी। सब से प्रथम मेघकुमार को एक पट्टासन पर बैठा कर सोने और चांदी के कलशों से स्नान कराया गया, शरीर को पोंछ कर सुन्दर से सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाए गए, शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेपन किया गया, सेवकों को पालकी लाने की आज्ञा दी गई और आज्ञा मिलते ही सेवकवृन्द एक सुन्दर सुसज्जित एवं एक हजार आदमियों द्वारा उठाई जानेवाली पालकी ले आए। उस पालकी में पूर्व की ओर मेघकुमार बैठ गए। उन के पास महारानी धारिणी भी अच्छे-अच्छे वस्त्रालङ्कार पहन कर बैठ गई। मेघकुमार के बाईं ओर उनकी धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर बैठी। एक तरुण महिला छत्र लेकर उसके पीछे खड़ी हो गई, दो युवतिएं हाथों में चंवर लेकर वहां आईं और मेघकुमार को चंवर ढुलाने लगीं। एक और तरुण सुन्दरी पंखा लेकर पालकी में आई और मेघकुमार के उष्णताजन्य संताप को दूर करने का प्रयत्न करने लगी। एक स्त्री झारी लेकर पूर्व-दक्षिण दिशा की ओर पालकी में खड़ी हो गई। पालकी की तैयारी होने पर महाराज श्रेणिक ने समान रंग, समान आयु और समान वस्त्रवाले एक हजार पुरुषों को बुलवाया। आज्ञा मिलने पर वे पुरुष स्नानादि से निवृत्त हो, वस्त्राभूषण पहन कर वहां उपस्थित हो गये। महाराज श्रेणिक द्वारा पालकी उठाने की आज्ञा मिलने पर उन्होंने पालकी को अपने कन्धों पर उठा लिया और राजगृह के बाजार की ओर चलने लगे।

एक राजा अपने राज्य को त्याग कर दीक्षा ले रहा है, ऐसी सूचना मिलने पर कौन ऐसा भाग्यहीन आदमी होगा जो इस पावन दीक्षा-महोत्सव में सम्मिलित न हुआ होगा। सारे नागरिक दीक्षा-महोत्सव को देखने के लिये जल-प्रवाह की भांति उमड़ पड़े। राज्य की समस्त सेना भी उपस्थित हुई। सब लोग जय-जयकार से आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए दीक्षायात्रा की शोभा में वृद्धि करने लगे।

मेघकुमार की सहस्रवाहिनी पालकी बड़े वैभवपूर्ण समारोह के साथ नगर के बीच में से होकर चली। सबसे आगे सेना थी। महाराज श्रेणिक उसी के साथ थे। सेना के पीछे मंगलद्रव्य थे और उनके पीछे मेघकुमार की पालकी। पालकी के पीछे जनता थी। इस प्रकार धूमधाम से मेघकुमार की पालकी महामहिम, करुणा-सागर, पतितपावन, श्रमण भगवान महावीर स्वामी की ओर गुणशिलक उद्यान की ओर चल पड़ी। वहां पहुंचने पर पालकी नीचे रखी गई। मेघकुमार तथा उसकी माता आदि सब उसमें से नीचे उतरे। मेघकुमार को आगे करके महाराज श्रेणिक और महारानी धारिणी जहां भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे वहां पहुंचे। सब ने विधिपूर्वक भगवान को वन्दन किया। तदनन्तर मेघकुमार की ओर संकेत करके महारानी धारिणी तथा महाराज श्रेणिक ने बड़े विनम्र भाव से भगवान को सम्बोधित करते हुए कहा—

'भगवन्! हम आपको एक शिष्य की भिक्षा देना चाहते हैं, आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें। यह मेघकुमार मेरा इकलौता बेटा है, यह हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है, परन्तु इसकी भावना आपके श्रीचरणों में दीक्षित हो आत्म-कल्याण करने की है। यद्यपि यह राज्य-वैभव के अनुपम काम-भोगों में पला है, तथापि कीच में पैदा होकर कीच से अलिप्त रहनेवाले कमल की भांति यह काम-भोगों में आसक्त नहीं हुआ है। जिन दुःखों को इसने अतीत जन्मों में अनेक बार सहा है,

उनसे यह विशेष भयभीत है, "भविष्य में अतीत के समान दुःखों को न पाऊँ" इस भावना से यह आपके श्रीचरणों में उपस्थित हो रहा है। अतः इसकी इस पुनीत भावना को पूर्ण करने की अवश्य कृपा करें। माता-पिता के इस निवेदन के अनन्तर भगवान महावीर स्वामी की ओर से दीक्षा की स्वीकृति मिलने पर मेघकुमार भगवान महावीर के पास से उठकर ईशानकोण में चले गये। वहां जाकर उन्होंने शरीर के सारे बहुमूल्य वस्त्रों-आभूषणों को उतार दिया और उन्हें माता के सुपुर्द कर दिया। माता धारिणी ने भी उन्हें सुरक्षित रख लिया। तदनन्तर माता और पिता मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए बोले—

'पुत्र ! हमारी आन्तरिक इच्छा न होने पर भी हम विवश होकर तुम्हें आज्ञा दे रहे हैं, किन्तु तुम्हें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य के लिये तुमने राज्य-सिंहासन को ठुकराया है, उसे सफल करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना। तुम क्षत्रिय कुमार हो, इसलिये संयमव्रत के सम्यक् अनुष्ठान के द्वारा तथा संचित आत्म-शक्ति के द्वारा कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए अपने कर्तव्य-पालन में प्रमाद को कभी स्थान न देना।

तेरी वैराग्य-निष्ठा ने हमारे हृदयों में तेरा ही अनुकरण करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न कर दी है, अतः हम भी शीघ्र ही प्रभु-चरणों में उपस्थित होकर कषायों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।'

इसके अनन्तर महाराज और महारानी भगवान को वन्दना कर राजधानी की ओर चले गये।

माता-पिता के चले जाने के बाद मेघकुमार ने पंच-मुष्टि लोच करके भगवान के पास आकर विधिपूर्वक वन्दन किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

'प्रभो ! यह संसार जरा-मरण रूपी अग्नि से जल रहा है। जिस प्रकार जलते हुए घर में से सर्वप्रथम बहुमूल्य पदार्थों को निकालने का प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ रत्न आत्मा को संसार की अग्नि से निकालने के लिये मैं अपने आपको आपके श्रीचरणों में समर्पित कर दीक्षित होना चाहता हूँ। कृपया मेरी कामना को पूर्ण कीजिये।'

भगवान ने मेघकुमार को मुनि-धर्म की दीक्षा दी और मुनि-धर्मोचित शिक्षाएं देकर उसे मुनि-धर्म की सारी चर्या समझा दी। मेघकुमार भी भगवान वीर के आदेशानुसार संयम-व्रत का यथाविधि पालन करते हुए कषाय-विजय का प्रयास करने लगा।

उपर्युक्त कथानक को लक्ष्य में रखकर कहा गया है कि जिस तरह मेघकुमार के हृदय में दीक्षा लेने के भाव उत्पन्न हुए थे और जैसे उसने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और माता-पिता ने परीक्षा लेने के अनन्तर कुमार को सहर्ष आज्ञा प्रदान करके अपने ही हाथों से समारोह-पूर्वक निष्क्रमणाभिषेक करके उसे भगवान को समर्पित किया था, ठीक उसी प्रकार श्री गौतम कुमार ने भी भगवान नेमिनाथ के चरणों में अपने आपको माता-पिता की आज्ञा से समर्पित किया और दीक्षा ग्रहण की।

यहां एक प्रश्न हो सकता है कि मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समय में हुए और द्वारकाधीश अन्धकवृष्णि के सुपुत्र राजकुमार गौतम २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समय

में हुए। पहले गौतमकुमार हुए तदनन्तर मेघकुमार ऐसी स्थिति में गौतम कुमार के लिये मेघकुमार का उदाहरण किस प्रकार संगत हो सकता है ? यदि मेघकुमार के लिये गौतम कुमार का उदाहरण दिया जाता तब तो यह संगत और उचित हो सकता था ?

उत्तर में कहा जा सकता है कि यहां पर जो उदाहरण दिया गया है, वह समय की अपेक्षा से नहीं, किन्तु वर्णन की अपेक्षा से दिया गया है। अग सूत्रों में भगवती सूत्र का पांचवां और 'ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र' का छठा स्थान है। 'अन्तगड़सूत्र' आठवां अग शास्त्र है। उक्त दोनों अंग-शास्त्रों का इससे पहला स्थान है। अंगसूत्रों में वर्णनक्रम का पौर्वापर्य है, उसकी अपेक्षा से ही यहां पर मेघकुमार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

किसी-किसी हस्तलिखित प्रति में कुछ अधिक पाठ भी देखने में आता है, परन्तु यह पाठ-भेद नहीं है, 'ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र' के प्रथम अध्ययन के पाठ के उद्धरण मात्र हैं।

किसी प्रति मे सक्षिप्त शब्दों में ज्ञातासूत्रीय पाठ का सकेत किया गया है। किसी में अधिक शब्दों मे।

उपर्युक्त वर्णन मे यह तथ्य सामने आते हैं कि--

(क) तीर्थंकर भगवान के समवसरण [जहा बैठकर तीर्थंकर भगवान उपदेश करते हैं] मे धर्म-देशना के समय साधारण व्यक्तियों के साथ साथ बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव भी उपस्थित हुआ करते थे, अतः मनुष्य को भी सांसारिक कार्यों मे से कुछ न कुछ समय निकाल कर धर्मोपदेश सुनने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म-श्रवण के द्वारा मनुष्य का आचार, विचार, आहार और व्यवहार प्रशस्त बनता है।

(ख) धर्म को सुनने के अनन्तर विचारपूर्वक यथाशक्ति उसको आचरण में लाने का प्रयास करना चाहिये। कानों में पड़े हुए धार्मिक वचन आचरण का स्थान लेकर जीवन के लिये वरदान बन जाया करते हैं।

(ग) सयम ग्रहण करके मोक्ष-मार्ग के प्रदर्शक निर्ग्रन्थ प्रवचन पर साधक को अधिकाधिक श्रद्धान रखना चाहिये, धर्म-कार्यों में उत्साह दिखलाना चाहिये तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुकूल अपने जीवन को ढालने का यत्न करना चाहिये।

सूत्रकार के **"निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ"**-'निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे रख कर विहरण करता है'-ये शब्द महत्वपूर्ण हैं। यदि निर्ग्रन्थ प्रवचन को अधिक महत्त्व देना सूत्रकार को इष्ट न होता तो सूत्रकार उक्त पाठ के स्थान में **"अरहा अरिट्ठनेमि पुरओ काउं विहरइ"** यह पाठ देते। इस समस्त विवेचन का सार यह है कि प्रत्येक साधक को निर्ग्रन्थ प्रवचन पर पूरा-पूरा विश्वास रखना चाहिए और उसी के नेतृत्व में अपनी जीवन-यात्रा को गतिशील बनाना चाहिये।

दीक्षित होने के अनन्तर गौतम कुमार ने क्या कुछ किया ? अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में उसी का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

मूल—तते णं से गोयमे अणगारे अन्नदा कयाइ अरहतो अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिजित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। ते अरिहा अरिट्ठनेमि अन्नदा कदाइ बारवतीओ नंदनवणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णदा कदाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिम उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता गुणरयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेस जहा खंदओ तहा चिंतइ, तहा आपुच्छइ तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारसवरिसाइं परियाए जाव सिद्धे—५।

छाया—ततः स गौतमो अनगारोऽन्यदा कदाचिद् अर्हतोऽ-अरिष्टनेमेस्तथरूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते, अधीत्य बहुभिः चतुर्थं यावद् आत्मानं भावयन् विहरति। सोऽर्हन् अरिष्टनेमिः अन्यदा कदाचित् द्वारवत्याः नन्दनवनतः प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपद-विहारं विहरति।

ततः सः गौतमोऽनगारोऽन्यदा कदाचिद् यत्रैव अर्हः अरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्वः आदक्षिणां प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दति, नमस्यति, वंदित्वा, नमस्यित्वा-वादीत्—'इच्छामि भदन्त! युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् मासिकीं भिक्षुप्रतिमामुपसम्पद्य विहर्तुम्। एवं यथा स्कन्धकः तथा द्वादशभिक्षुप्रतिमाः स्पृशति, स्पृष्ट्वा गुणरत्नमपि तपः कर्म तथैव स्पृशति निर्विशेषं यथा स्कन्धकः तथा चिन्तयति तथा स्थविरैः सार्द्धं शत्रुञ्जयं पर्वतमारोहयति आरुह्य मासिक्या संलेखनया द्वादशवर्षाणि यावत् सिद्धः—५॥

पदार्थ—**णं**—वाक्यसौन्दर्य प्रयोग में लाया जाता है; **तते**—इसके पश्चात्; **से गोयमे**—वह गौतम! **अणगारे**—अनगार-साधु; **अन्नया कदाइ**—किसी अन्य समय; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के; **तहारूवाणं**—तथारूप (उस प्रकार के); **थेराणं**—**स्थविरों के**; **अंतिए** समीप; **सामाइयमाइयाइं**—सामायिक आदि; **एक्कारस**—ग्यारह; **अंगाइं**—अंगों का; **अहिज्जइ**—अध्ययन करता है; **अहिजित्ता**—अध्ययन करके; **बहूहिं**—बहुत; **चउत्थ**—उपवास; **जाव**—यावत्; **भावेमाणे**—करते हुए; **विहरइ**—विहरण करता है; **ते**—वे; **अरिहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमि**—नेमिनाथ; **अन्नया कयाइं**—किसी अन्य समय; **बारवतीये**—द्वारिका नगरी के; **नंदनवणाओ**—नन्दनवन से; **पडिनिक्खमइ**—निकलते हैं, **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर; **बहिया**—बाहिर; **जणवयविहारं**—अनेक जनपदों में **विहरइ**—विहरण करते हैं।

तते—तदनन्तर; **से**—वह; **गोयमे**—गौतम कुमार; **अणगारे**—अनगार; **अन्नया कदाइ**—किसी अन्य समय; **जेणेव**—जहां; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमि**—नेमिनाथ थे; **तेणेव**—वहीं पर; **उवागच्छइ**—आता है ; **उवागच्छित्ता**—आकर ; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को; **तिक्खुत्तो**—तीन बार; **आयाहिणं**—दक्षिण की ओर से घूमते हुए; **पयाहिणं**—प्रदक्षिणा दे कर; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—कहनेलगे; **भंते !**—हे भगवन् ! **इच्छामि—मैं** चाहता हूँ; **तुब्भेहिं**—आप श्री द्वारा, **अब्भणुण्णाते समाणे**—आज्ञा प्राप्त अनुमत में; **मासियं**—प्रत्येक मासकी ; **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा को; **उवसंपज्जित्ताणं**—ग्रहण कर के; **विहरित्तए**—विचरूं; **एवं**—इस तरह; **जहा**—जैसे; **खंधओ**—स्कन्धक कुमार; **तहा**—जैसे; **वारस**—बारह; **भिक्खुपडिमाओ**—भिक्षु प्रतिमाओं का; **फासेति**—स्पर्श करता है; **गुणरयणं पि**—गुण रतन नामक; **तवोकम्मं**—तप कर्म का भी; **तहेव**—उसी प्रकार; **फासेति**—स्पर्श करता है, **निरवसेसं**—सम्पूर्ण, **जहा**—जैसे, **खंधओ**—स्कन्धककुमार का अधिकार है; **चिन्तेति**—चिन्तन करता है, **तहा**—उसी प्रकार; **आपुच्छइ**—भगवान को पूछता है, (और पूछकर); **तहा**—उसी प्रकार; **थेरेहिं**—स्थविरों के; **सद्धिं**—साथ; **सेत्तुंज्जं**—शत्रुञ्जय पर्वत पर; **दुरूहइ**—चढ़ता है और चढ़ कर; **मासियाए**—एक मास की, **संलेहणाए**—संलेखना-संथारे से, **बारसवरिसाइं**—बारह वर्ष की; **परियाए**—पर्याय-दीक्षा पालता है, पाल कर; **जाव**—यावत्; **सिद्धे**—सिद्ध हो जाता है ।

मूलार्थ—साधु बन जाने के अनन्तर अनगार गौतम ने भगवान अरिष्टनेमि के सान्निध्य में रहनेवाले आचार, विचार की उच्चता को पूर्णतया प्राप्त स्थविरों के पास सामायिक आचारांग आदि ११ अंगों का अध्ययन करते हुए व्रत बेला आदि अनेक विध तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करना आरम्भ कर दिया ।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि ने अब द्वारिका नगरी के नन्दनवन से विहार कर दिया और वे अन्य जनपदों में विचरण करने लगे ।

तपस्या और शास्त्रस्वाध्याय में तत्पर अनगार गौतम अवसर पा कर भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हुए विधिपूर्वक वन्दना, नमस्कार करने के अनन्तर इन्होंने भगवान से निवेदन किया—

'भगवन् ! मेरी इच्छा है यदि आपश्री आज्ञा दें तो मैं मासिकी भिक्षु-प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) की आराधना करूं ।' भगवान से आज्ञा पाकर वे साधना में लीन हो गए ।

भगवती सूत्र में स्कन्धक मुनि का वर्णन आता है, जैसे उन्होंने भिक्षु की बारह प्रतिमाओं तथा गुणरत्न तप का आराधन किया था, वैसे ही मुनिराज गौतम ने

भिक्षु की बारह प्रतिमाओं तथा गुणरत्न तप का आराधन किया, मनन किया, चिन्तन किया और अध्ययन किया। स्थविर मुनिराजों के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर जा कर मासिकी संलेहणा (संथारे) द्वारा बारह वर्ष तक दीक्षा की प्रतिपालना करते हुए अन्त में सिद्धत्व को प्राप्त किया।

टीका—अब प्रस्तुत सूत्र द्वारा संसूचित कुछ विशेष तथ्यों पर विचार किया जाता है—

सूत्रकार ने जिस पद्धति से गौतम मुनि के विद्यार्थी जीवन का शब्दचित्र उपस्थित किया है, उससे यह भली भान्ति सिद्ध होता है कि आगमों का अध्ययन स्थविरो एवं गुरुजनों से ही करना चाहिए, क्योंकि तपोनिष्ठ एवं सतत स्वाध्याय मे लीन गुरुजनों के द्वारा जो सत्यानुभूति व्यक्त की जा सकती है, वह सामान्य व्यक्ति द्वारा और केवल स्वानुभूति के आधार पर किसी भी प्रकार प्राप्त नही की जा सकती।

साधक को सर्वप्रथम श्रुत का अध्ययन करना चाहिए और फिर उस पर श्रद्धा करना चाहिए। तदनन्तर अहिंसा संयम, तप के अनुष्ठान द्वारा कर्म-मल को जला कर आत्मा को विशुद्ध बनाना चाहिए। आत्म-विशुद्धि कर लेने के पश्चात् साधक को संलेखना के द्वारा निर्वाण पद को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। ये तथ्य भी गौतम कुमार के संयमी जीवन द्वारा सूत्रकार ने ध्वनित किये हैं।

"**तहारूवाणं थेराणं**" के रूप में यहां 'तथारूप' और 'स्थविर' इन दो पदों का ग्रहण किया गया है। तथारूप का अर्थ है—शास्त्र मे वर्णन किए गए आचार का पालन करनेवाले और स्थविर का अर्थ है वृद्ध साधु। स्थानांग सूत्र में इस के तीन भेद बताए गए है—१—वय-स्थविर, २—सूत्र-स्थविर और ३—प्रव्रज्या-स्थविर। साठ वर्ष की आयु के वय-स्थविर, स्थानाग और समवायांग सूत्र के ज्ञाता साधु सूत्र-स्थविर तथा २० वर्ष की दीक्षा पर्यायवाले साधु प्रव्रज्या-स्थविर कहलाते हैं।

"**सामाइयमाइयाइं**" का अर्थ है—सामायिक आदि।

अर्द्ध मागधी (गुजराती, पृष्ठ ७६७) नामक कोष में सामायिक शब्द के निम्नोक्त अर्थ किए गए हैं—

१—सामायिक चारित्र का अर्थ है सर्वसावद्य योगों से निवृत्ति। २—श्रावक का नवम व्रत, देश विरतिरूप सामायिक चारित्र। ३—सामायिक श्रुत, आचारांग आदि। ४—आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन। ५—द्रव्य लेश्या से उत्पन्न होनेवाला परिणाम अध्यवसाय।

प्रस्तुत प्रकरण में सामायिक शब्द से आचारांग सूत्र का ही ग्रहण करना उचित है। "**सामाइय माइयाइं**" में आदि शब्द शेष अगशास्त्रों का बोधक है। अंगशास्त्रों का परिचय पीछे कराया जा चुका है।

प्रश्न—ग्यारह अंगों में अन्तकृद्दशांग सूत्र का भी निर्देश किया गया है। इसके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्याय में श्रीगौतमकुमार का जीवन प्रस्तावित हुआ है। तो क्या वह गौतमकुमार यही था या अन्य ? यदि यही था तो उसने अन्तकृद्दशांग का अध्ययन कैसे किया ? जिस का निर्माण ही बाद में हुआ है, उसका अध्ययन पहले कैसे सम्भव हो सकता है ?

उत्तर—अन्तगड़ सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में जिस गौतम कुमार का वर्णन किया गया है वे यही हमारे द्वारकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के सुपुत्र हैं। अब रही बात पढ़ने की। इस का समाधान यह है कि भगवान अरिष्टनेमि के १८ गणधर थे। ये सभी अनुपम ज्ञानादि गुणों के धारक थे। उनकी अनेकों वाचनाएं थीं, जोकि इन्हीं पूर्वोक्त अंगों उपांगों के नाम से प्रसिद्ध थी। प्रत्येक में विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न ही होता था। वर्तमान काल में जो वाचना उपलब्ध हो रही है, वह भगवान महावीर के पट्टधर श्रद्धेय श्री सुधर्मा स्वामी की है। श्री गौतम कुमार ने जो एकादश अंग पढ़े थे वे तत्कालीन किसी गणधर की वाचना के ११ अंग थे। वर्तमान में उपलब्ध अंगशास्त्रों का उन्होंने अध्ययन नहीं किया, यह वाचना तो उस समय थी ही नहीं, अतः इस वाचना (आगमसमुदाय) के पढ़ने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

आचार्यप्रवर अभयदेव सूरि ने भगवती सूत्र की व्याख्या में स्कन्धक कुमार के प्रसंग को ले कर ऐसी ही आशंका उठा कर उस का जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह मननीय एवं प्रस्तुत प्रकरण में उत्पन्न शंका के उपयोगी समाधान के लिये पठनीय है।

"एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ"—इह कश्चिदाह—नन्वनेन स्कन्धकचरितात् प्रागेवैकादशांग-निष्पत्तिरवसीयते, पंचमांगान्तर्भूतं च स्कन्धकचरितमुपलभ्यते, इति कथं न विरोधः ? उच्यते—श्रीमन्महावीर-तीर्थे किल नव वाचना। तत्र च सर्व-वाचनासु स्कन्धक-चरितात् पूर्वकाले ये स्कन्धक-चरिताभिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यते स्कन्धकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मास्वामिना जम्बू-नामानं स्वशिष्यमंगीकृत्याधिकृतवाचनायामस्यां स्कन्धकचरितमेवाश्रित्य तदर्थ प्ररूपणा कृतेति न विरोधः। अथवा सातिशायित्वाद् गणधराणामनागतकाल-भाविचरित-निबन्धनमदुष्टमिति। भाविशिष्य-सन्तानापेक्षया अतीतकाल निर्देशोऽप्यदुष्ट इति।

—भगवती सूत्र श० २, उ० १ सू० ९३।

अर्थात्—प्रस्तुत में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्कन्धक चरित से पहले ही ११ अंगों का निर्माण हो चुका था। स्कन्धक चरित पंचम अंग (भगवती सूत्र) में उपलब्ध होता है। तब स्कन्धक ने ११ अंग पढ़े, इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या उसने अपना ही जीवन पढ़ा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—

भगवान महावीर के तीर्थ-शासन में नौ वाचनाएं थीं। प्रत्येक वाचना में स्कन्धक के जीवन का अर्थ (शिक्षारूप प्रयोजन) समान रूप से अवस्थित रहता था। अन्तर केवल इतना होता था कि जीवन के नायक तथा नायक के सभी साथी भिन्न-भिन्न होते थे। भाव यह है कि जो शिक्षा स्कन्धक

के जीवन से मिलती है उसी शिक्षा को देनेवाले अन्य जीवन-चरितों का संकलन तत्कालीन वाचनाओं में मिलता था। सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी को लक्ष्य बनाकर अपनी इस वाचना में स्कन्धक के जीवन-चरित से ही उस अर्थ की प्ररूपणा कर डाली, जो अर्थ अन्य वाचनाओं में गर्भित था, अतः यह स्पष्ट है कि स्कन्धक ने जो अंगादि शास्त्र पढ़े थे, वे सुधर्मास्वामी की वाचना के नहीं थे।

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गणधर महाराज अतिशय (ज्ञानविशेष) के धारक होते थे, इसलिये उन्होंने भविष्य में होनेवाले चरितों का भी संकलन कर दिया। इसके अतिरिक्त भावी शिष्यवर्ग की अपेक्षा से अतीतकाल का निर्देश भी दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता।

"चउत्थ जाव भावेमाणे" यहां पठित चतुर्थ शब्द व्रत उपवास का बोधक है तथा **जाव**-यावत् पद बेले, तेले, चौले आदि तपों का समूचक है। **भावेमाणे** का अर्थ है—भावयन्—वासयन्—अर्थात् अपने जीवन में उसका प्रयोग करता हुआ।

"मासियं भिक्खुपडिमं" का अर्थ है—मासिकी भिक्षुप्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा। भिक्षु की प्रतिज्ञा को भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। ये प्रतिमाएं बारह होती हैं। इनका विस्तृत विवेचन दशाश्रुत स्कंध सूत्र में किया गया है। इसका विशेष [illegible] हमने इस सूत्र की **"गणपतिगुण प्रकाशिका"** नामक भाषा टीका मे विस्तार से किया है।

इस प्रतिमा का धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति* लेता है। जहां एक व्यक्ति के लिये भोजन बना है, वहां से भोजन लेता है, गर्भवती या छोटे बच्चे की मां के लिये बनाया गया भोजन वह नहीं लेता। दुग्धपान छुड़वा कर भिक्षा देनेवाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देनेवाली आसन्नप्रसवा स्त्री से भोजन नहीं लेता। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हों या बाहिर हों उससे आहार नहीं लेता। दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागों में से एक भाग में वह भिक्षा को जाता है। परिचित स्थान पर वह एक रात रहता है, अपरिचित स्थान पर एक या दो रात ठहर जाता है। वह याचनीय आहार की याचना करनी २-पृच्छनी-मार्ग पूछना, ३—अनुज्ञापनी—स्थान आदि के लिये आज्ञा लेना, ४—प्रश्न का उत्तर देने वाली ये चार भाषाएं बोलता है। वह अधः-आराम-गृह—जिसके चारों ओर बाग हो, २—अधाविकटगृह—चारों ओर से खुला हो, ऊपर से ढका हो, ३—अध.वृक्ष मूलगृह—वृक्ष का मूल या वहां पर बना स्थान इन स्थानों पर मालिक की आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इन स्थानों मे कोई आग लगा दे तो यह मुनि जीवन की सुरक्षा के लिये स्वय स्थान से बाहिर नही निकलता। विहारी जीवन मे यदि पाव मे कांटा लग जाए तो उसे नही निकालता, आंखों मे धूल पड़ जाए तो उसको भी दूर नहीं करता। जहां सूर्य अस्त हो जाए वही ठहर जाता है। शरीर-शुद्धि को छोड़कर जल का प्रयोग नहीं करता। विहारी जीवन में यदि सामने कोई हिंसक जीव आए तो डरकर पीछे नहीं जाता। यदि कोई जीव उसे देखकर डरता हो तो वह एक ओर हो जाता है। शीत-निवारण के लिये घाम का सेवन नहीं करता। गरमी का परिहार करने के लिये शीत स्थान में नहीं जाता। इस विधि से मासिकी प्रतिमा का पालन होता है। इसका समय एक महीना है।

* दाता द्वारा दिए जानेवाले अन्न और पानी की अखण्ड धारा 'दत्ति' कहलाती है।

"एवं जहा खंदओ तहा" का भाव यह है कि गौतम-कुमार का चरित मुनिवर स्कन्धक के ही समान था। भगवती सूत्र में वर्णित स्कन्धक मुनि ने भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का आराधन किया था। सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार भगवती सूत्र के स्कन्धक कुमार ने भिक्षु-प्रतिमाओं की आराधना की थी, इसी प्रकार गौतम मुनि ने भी बारह भिक्षु-प्रतिमाओं का परिपालन किया था।

पहले कहा जा चुका है कि साधु के अभिग्रह विशेष का नाम भिक्षु-प्रतिमा है। एक से लेकर सात प्रतिमाओं का समय एक-एक मास का है। पहली मासिकी, दूसरी द्वैमासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चातुर्मासिकी, पांचवीं पाञ्चमासिकी, छठी षाण्मासिकी और सातवीं साप्तमासिकी कहलाती है। पहली प्रतिमा में अन्न-पानी की एक दत्ति, दूसरी में दो, तीसरी में ३, चौथी में ४, पांचवीं में ५, छठी में ६, सातवीं में ७, दत्तियां ली जाती हैं। आठवीं प्रतिमा का समय सात दिन-रात है, नवमी का समय भी सात दिन-रात है। आठवीं में चौविहार उपवास करना होता है। नवमी में चौविहार बेले-बेले पारणा किया जाता है। दसवीं का समय भी सात दिन-रात है। इसमें चौविहार तेले-तेले पारणा करना होता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का समय एक दिन रात है। चौविहार बेला करके इसका आराधन किया जाता है। बारहवीं का समय केवल एक रात है। इसका आराधन चौविहार तेला करके करना होता है। इन सभी प्रतिमाओं का आराधन श्रीगौतम मुनि जी ने किया था।

"गुणरयणं पि तवोकम्मं" का अर्थ है— गुणरत्न-तपः-कर्म। तपों के नाना प्रकारों में गुणरत्न भी एक प्रकार का तप है। इसे 'गुण-रत्न-सम्वत्सर तप' भी कहते हैं। यह तप सोलह महीनों में सम्पन्न होता है। इस में तप के ४०७ दिन और पारणा के ७३ दिन होते हैं। पहले महीने एकान्तर उपवास किया जाता है, दूसरे महीने में बेले-बेले पारणा करनी होती है, तीसरे महीने में तेले-तेले पारणा करनी पड़ती है। इसी प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप में दिन को उत्कुटुक आसन से बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि को वस्त्ररहित वीरासन से बैठकर ध्यान लगाना होता है। शास्त्रों में 'गुणरत्न सम्वत्सर तप का एक यंत्र भी देखने में आता है। जो इस प्रकार है—

गुण-रत्न-संवत्सर-तप

मास	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	योग
[illegible]	१५	२०	२४	२४	२५	२४	२१	२४	२७	३०	३३	२४	२६	२८	३०	३२	४०७
[illegible]	१५	१०	८	६	५	४	३	३	३	३	३	२	२	२	२	२	७३

"जहा खंदओ तहा चिंतेति"—का अर्थ है, जिस प्रकार स्कंधककुमार ने चिन्तन किया था उसी प्रकार गौतम मुनि ने भी चिन्तन किया। भगवती सूत्र में वर्णित स्कंधककुमार प्रतिमाओं तथा तप का

आराधन करते हुए जब दुर्बल हो गये. तब उन्होंने सोचा कि अब जीवन की विशेष स्थिति प्रतीत नहीं होती, अतः जितना समय शेष है उसे अनशन में लगा देना चाहिए।

जिस प्रकार की बातें स्कन्धककुमार जी ने विचारी थी, उसी प्रकार गौतम मुनि भी जब अपने को कृश अनुभव करने लगे तो उन्होंने भी स्कन्धक मुनि की भांति ही चिन्तन किया। उनके चिन्तन की समस्त रूपरेखा भगवती सूत्र में दी गई है।

प्रस्तुत प्रकरण में **"जहा खंदओ"** पद के द्वारा सूत्रकार स्कन्धक मुनि के चिन्तन की ओर संकेत करके श्रीगौतममुनि के चिन्तन का परिचय करवाते है।

"थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरोहति" का अर्थ है, गौतम मुनि स्थविर मुनियों के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर चले जाते हैं। शत्रुञ्जय पर्वत पर गौतम मुनि केवल जीवन के शेष दिनों को व्यतीत करने के लिये गए थे। यह तो स्पष्ट ही है, पर यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि उनके साथ स्थविर मुनियों के जाने का क्या उद्देश्य है? यदि कहा जाए कि वे स्थविर मुनि गौतम मुनि की सेवा-सुश्रूषा के लिये साथ गये थे तो यह उत्तर ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जो मुनि स्वयं स्थविर है—वृद्ध हैं, वे दूसरे की सेवा क्या करेंगे? सेवा करने के लिये तो युवक मुनियों की अपेक्षा हो सकती है, वृद्धों की नहीं।

समाधान के रूप में कहा जा सकता है कि स्थविर का अर्थ केवल वयोवृद्ध ही नहीं होता। स्थविर ज्ञानवृद्ध, दीक्षावृद्ध और वयोवृद्ध तीनों को कहते हैं।' अतः शत्रुञ्जय पर्वत पर जानेवाले स्थविर मुनि वयोवृद्ध ही थे ऐसा कोई शास्त्रीय उल्लेख नहीं है।

दूसरी बात—भगवती सूत्र में—**"कडाइं थेरेहिं सद्धिं"*** ऐसा पाठ आता है। इस में पठित 'कडाइ' शब्द का अर्थ होता है-सेवा करने की क्षमतावाले अर्थात् उक्त पाठ में सूत्रकार ने सूचित किया है कि जो स्थविर सेवा करने में निपुण थे उनके साथ ही श्री गौतम मुनि ने शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण किया था।

"संलेहणाए" के रूप में पठित संलेखना शब्द का अर्थ है-अन्तिम समय में किया गया शरीर और कषाय आदि को कृश करनेवाला तप-विशेष। संलेखना से पहले सूत्रकार ने **"समासियाए"** यह पद दिया है। इसका अर्थ है—एक मास की।

"सिद्धे ४" के रूप में दिया गया ४ का अंक शेष—बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वात, सर्वदुःखप्रहीण, इन चार विशेषणों का बोधक है। जो आत्मा कृतकृत्य हो चुकी है, उसे सिद्ध कहा जाता है, लोक-अलोक समस्त पदार्थों का ज्ञाता आत्मा बुद्ध, समस्त कर्मों का आत्यन्तिक नाश करनेवाला आत्मा मुक्त, कर्मों से उत्पन्न विकारों को सर्वथा नष्ट करनेवाला आत्मा परिनिर्वात और शारीरिक एवं मानसिक सभी दुःखों से छुटकारा प्राप्त करनेवाला आत्मा सर्व-दुःख-प्रहीण कहलाता है। गौतमकुमार भी बुद्ध, मुक्त परिनिर्वात, सर्वदुख-प्रहीण एवं सिद्ध हो गये।

* **कृतयोग्यादिभिः स्थविरैः सार्द्धम्।**

गौतम कुमार के जीवन से ग्रहण करने योग्य भाव यही है, कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये संसार की ममता का त्याग करना ही पड़ता है। मोह-ममता का परित्याग किये बिना जीवन के भविष्य को समुज्ज्वल नहीं बनाया जा सकता, अतः मोक्षाभिलाषी साधक को वैभव का परित्याग करके मोहमाया के बन्धनों को तोड़ कर संयम ग्रहण करना आवश्यक है। छह काया के जीवों की सर्वतोभावेन रक्षा करना, संयम की आराधना के साथ-साथ ज्ञान की आराधना करना और तपोऽनुष्ठान के द्वारा आत्म-शुद्धि में प्रवृत्त होना संयम के लिये अत्यावश्यक है। जीवन के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने का यही सर्वोत्तम साधन है।

गौतम कुमार के जीवन-वृत्तों का वर्णन करने के अनन्तर अब सूत्रकार अन्य राजकुमारों के जीवन-वृत्तों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढम-वग्ग-पढम-अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। एवं जहा गोयमे तहा सेसा वण्हिपिया धारिणी माता समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणति, विण्हुए, ए ए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।**

छाया—एवं खलु जंबू ! श्रमणेण यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्याङ्गस्य अन्तकृद्दशानां प्रथम-वर्ग-प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः। एवं यथा गौतमः तथा शेषाः, वृष्णिः पिता, धारिणी माता। समुद्रः, सागरः, स्तिमितः, अचलः, काम्पिल्यः, अक्षोभः, प्रसेनजित्, विष्णुः। एते एकगमाः। प्रथमो वर्गः, दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।

पदार्थ—**जंबू**—हे जम्बू !; **एवं**—इस प्रकार, **खलु**—निश्चय अर्थ में है; **समणेणं**—श्रमण; **जाव**—यावत्, **संपत्तेणं**—मोक्ष को प्राप्त महावीर स्वामी ने; **अट्ठमस्स**—आठवें; **अंगस्स**—अंग; **अंतगडदसाणं**—अन्तगड दशा के; **पढम वग्ग**—प्रथम वर्ग के; **पढमअज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का; **अयमट्ठे**—यह अर्थ; **पण्णत्ते**—कथन किया है; **एवं**—इसी प्रकार; **जहा**—जैसे; **गोयमे**—गौतम मुनि का वर्णन है; **तहा**—वैसे ही; **सेसा**—शेष राजकुमारों का वर्णन जानना चाहिये; **वण्हि पिया**—उन सब राजकुमारों के पिता वृष्णि थे; **धारिणी माता**—धारिणी माता थी।

कुमारों के नाम ये हैं—

समुद्दे—समुद्र कुमार; **सागरे**—सागरकुमार; **गंभीरे**—गंभीर कुमार; **थिमिए**—स्तिमित कुमार; **अयले**—अचल कुमार; **कंपिल्ले**—कम्पिल्य कुमार; **अक्खोभे**—अक्षोभ कुमार; **पसेणती**—

प्रसेनजित कुमार; **विण्हुए**—विष्णु कुमार; ए ए—ये सब राजकुमार; **एगगमा**—समान वर्णनवाले (**गौतम कुमार के अनुगामी**) बने। इस प्रकार—**पढमो**—प्रथम, **वग्गो**—वर्ग के; **दस**—दश; **अज्झयणा**—अध्ययन; **पण्णत्ता**—कथन किए गए है।

मूलार्थ—सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू से कहने लगे कि हे जम्बू! मोक्ष को प्राप्त भगवान महावीर तक तीर्थंकरों ने आठवें अंग अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कथन किया है।

जिस प्रकार गौतमकुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, काम्पिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु इन नव अध्ययनों का अर्थ भी समझ लेना चाहिये। सबके पिता महाराज वृष्णि थे। माता धारिणी थी। सब का वर्णन एक जैसा है। इस प्रकार दस अध्ययनों के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में दो बातों का वर्णन किया गया है। एक है अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का उपसंहार। इसी उपसंहार को सूत्रकार ने **"एवं खलु जम्बू!"** आदि पदों द्वारा प्रकट किया है।

"समणेणं जाव संपत्तेणं" यहां पठित जाव—यावत् पद से समूचित पदों का विवरण पीछे किया जा चुका है।

प्रस्तुत सूत्र में दूसरी बात है—समुद्र आदि नव राजकुमारों के जीवन चरित। इन कुमारों के जीवन-चरितों का वर्णन भी सूत्रकार ने **"एवं जहा गोयमे तहा—"** के रूप में सांकेतिक शैली मे कर दिया है।

गौतम कुमार द्वारिकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारिणी था। इनके समुद्र कुमार, सागर कुमार, गम्भीर कुमार, स्तिमित कुमार, अचल कुमार, काम्पिल्य कुमार, अक्षोभ कुमार, प्रसेनजित् कुमार और विष्णु कुमार ये नौ भाई और थे। ये दसों ही सहोदर भाई थे। जिस प्रकार श्री गौतम कुमार ने भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षा ली, तप किया, अनशन आदि द्वारा मोक्ष प्राप्त किया, ठीक इसी प्रकार इन नौ भाइयों ने भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में मोहमाया के बन्धनों को तोड़कर दीक्षा अंगीकार की थी। गौतम के ही समान इन्होंने भी तथारूप स्थविरों के पास ११ अंगों का अध्ययन किया था और भिक्षुप्रतिमाओं का आचरण तथा गुणरत्नसम्वत्सर तप का अनुष्ठान करने के अनन्तर शत्रुञ्जय पर्वत पर चढ़कर अनशन करके मोक्ष गति को प्राप्त किया था।

इन सबके जीवन भी मेघकुमार, महाबल एवं स्कन्धक मुनि के ही समान त्याग और संयम से सम्पन्न एवं तपोमय थे।

गौतमकुमार अन्तकृत केवली हुए हैं। इन्होंने जीवन के अन्तिम भाग में केवल ज्ञान को प्राप्त किया और तदनन्तर ये मुक्ति में विराजमान हो गए। इनकी तरह ही समुद्रकुमार आदि शेष राजकुमार भी अन्तकृत केवली हुए हैं। सभी ने अन्तिम अवस्था में कैवल्य-विभूति से विभूषित होकर निर्वाण पद प्राप्त किया है।

"**पढमो वग्गो दस अज्झयणा पण्णत्ता**" इन शब्दों के द्वारा सूत्रकार ने अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग का तथा प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों का उपसंहार कर दिया है। इसका भाव है—सुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामी से कहते हैं कि 'हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड-सूत्र के प्रथम वर्ग में वर्णित दस अध्ययनों का विवेचन किया है।

अन्य सूत्रों के परिशीलन से पता चलता है कि अध्ययन की समाप्ति पर सूत्रकार ने उस समाप्ति को "**त्ति बेमि**" इन पदों द्वारा प्रकट किया है। इसका अर्थ है—'जम्बू! मैं इस प्रकार कहता हूँ, भगवान से जो मैंने सुना है उसका ही विवेचन मैंने किया है। अपनी ओर से मैंने कुछ नहीं कहा है। प्रस्तुत सूत्र मे "**त्ति बेमि**" ये पद न देकर सूत्रकार ने "**पढमो वग्गो**"—इन पदों द्वारा प्रथम वर्ग और उसके दस अध्ययनों को समाप्त कर दिया है। यह सूत्रकार की नवीन शैली मात्र है, वस्तुतः इसे भी श्रीसुधर्मा स्वामी ने उसी रूप मे कहा था जैसा कि उन्होंने भगवान महावीर से सुना था।

समाप्तः प्रथमो वर्गः

द्वितीय वर्ग

महाराज अन्धक वृष्णि की पत्नी देवी धारिणी के आठ पुत्रों द्वारा मुनि-दीक्षा ग्रहण करने के वृत्तान्त को उपस्थित करते हुए सूत्रकार कहते है :—

मूल—जइणं दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवग्रो । तेण कालेणं तेणं समएणं बारवतीए णगरीए वण्हिपिया धारिणी माया—

अक्खोभसागरे खलु समुद्द हिमवंत अचलनामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचन्दे चेव अट्ठमते ।। १ ।।

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं सोलसवासाइं परिआओ । सेत्तुंजे मासियाए सलेहणाए सिद्धी ।। २ ।।

छाया—यदि द्वितीयस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः (उत्क्षेपः) । तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां वृष्णिः पिता धारिणी माता—

अक्षोभ सागरः खलु समुद्रहैमवन्त अचलनामा च ।
धरणश्च पूरणोऽपि च अभिचन्द्रश्चैवाअष्टमः ।। १ ।।

यथा प्रथमो वर्गः तथा सर्वाणि अष्टाध्ययनानि, गुणरत्नतपकर्म षोडशवर्षाणि पर्याय । शत्रुञ्जये मासिकया संलेखनया सिद्धिः ॥

पदार्थ—**जइ**—यदि; **णं**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थ है; **दोच्चस्स**—द्वितीय; **वग्गस्स**—वर्ग का; **उक्खेवग्रो**—उत्क्षेप जानना; **तेणं कालेणं**—उस काल तथा; **तेणं समएणं**—उस समय; **बारवतीए**—द्वारिका; **नगरीए**—नगरी में; **वण्हिपिया**—वृष्णि पिता; **धारिणी माया**—धारिणी माता; **अक्खोभ**—अक्षोभकुमार; **सागरे**—सागरकुमार, **खलु**—निश्चय ही, **समुद्द**—समुद्र कुमार; **हिमवन्त**—हैमवन्तकुमार; **य**—और; **अचलनामे**—अचल नामक कुमार; **य**—और; **धरणे**—धरण कुमार; **य**—तथा; **पूरणे वि**—पूर्ण कुमार भी; **य**—और; **एवं**—निश्चय अर्थ मे है; **अट्ठमते**—आठवां, **अभिचन्दे**—अभिचन्द्रकुमार ।

जहा—जैसे; **पढमो**—प्रथम; **वग्गो**—वर्ग का वर्णन किया है; **तहा**—वैसे ही; **सव्वे**—सभी; **अट्ठ अज्झयणा**—आठ अध्ययनों का वर्णन जानना; **गुणरयणतवोकम्मं**—गुणरत्न तप का आराधन किया; **सोलसवासाइं**—सोलह वर्ष की; **परिआओ**—दीक्षा पाली; **सेत्तुंजे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर; **मासियाए**—एक महीने की; **संलेहणाए**—संलेखना द्वारा; **सिद्धी**—मोक्ष प्राप्त किया ।

मूलार्थ—द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप समझ लेना। हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के द्वितीय वर्ग का अर्थ इस प्रकार वर्णन किया है—

उस काल, उस समय में द्वारिका नगरी थी। महाराज वृष्णि राज्य करते थे। रानी का नाम धारिणी था। इन के आठ पुत्र थे—अक्षोभकुमार, सागरकुमार, समुद्र-कुमार, हैमवन्तकुमार, अचलकुमार, धरणकुमार, पूर्णकुमार, और अभिचन्द्रकुमार।

जैसे प्रथम वर्ग में गौतम कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इन के आठ अध्ययनों का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। इन्होंने भी 'गुण-रत्न-संवत्सर-तप' का आराधन किया और १६ वर्ष का संयम पालन कर के अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास की संलेखना द्वारा सिद्ध पद प्राप्त किया।

व्याख्या—जिस प्रकार प्रथम वर्ग में गौतम आदि राजकुमारों के साधना-प्रधान जीवनों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार प्रस्तुत द्वितीय वर्ग में भी अक्षोभ आदि राजकुमारों के त्याग एवं वैराग्य प्रधान जीवन-चरित्रों का संकलन किया गया है।

सूत्रकार ने—**"जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा"** ये इस वाक्य द्वारा यह ध्वनित कर दिया है कि प्रथम वर्ग में प्रतिपादित राजकुमारों के जीवन-चरित के समान ही इनका भी जीवन चरित है। नामों की भिन्नता के अतिरिक्त विशेष अन्तर नहीं है।

सूत्रकार ने—**"सोलस वासाइं परिआओ"** इस वाक्य द्वारा इतना अन्तर अवश्य बताया है कि प्रथम वर्ग में वर्णित राजकुमारों की दीक्षापर्याय १२ साल की थी, प्रस्तुत वर्ग में वर्णित राजकुमारों की दीक्षापर्याय १६ वर्षों की थी। दीक्षा-पर्याय की स्थिति-गत भिन्नता को छोड कर शेष सभी बातें-माता का स्वप्नदर्शन, कुमारों का जन्म, बाल-जीवन, कलाभ्यास, यौवन, पाणिग्रहण प्रासाद में भोगो-पभोग, भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थिति, वैराग्य और अन्त में भगवान के पास दीक्षा शास्त्र-स्वाध्याय भिक्षु-प्रतिमा तथा गुणरत्न सम्वत्सर तप का आराधन आदि प्रथमवर्ग में वर्णित राजकुमारों जैसा ही था, इसीलिये सूत्रकार ने इन राजकुमारों के जीवन-वृत्तों का विस्तार से वर्णन न करके संक्षेप में सांकेतिक वर्णन कर दिया है।

ये आठों ही राजकुमार महाराज अन्धकवृष्णि और धारिणी माता के ही पुत्र थे। सभी ने भगवान नेमिनाथ के चरणों में उपस्थित होकर दीक्षा अंगीकार की थी। सभी ने इन्हींकी छत्रछाया में ज्ञान-दर्शन और चारित्र के सम्यक् अनुष्ठान से आत्म-शुद्धि द्वारा निर्वाण पद प्राप्त किया था। इसी कारण इन्हें अन्तकृत केवली कहा जाता है।

"दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ" का अर्थ है द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप जान लेना। उत्क्षेप का अर्थ है—प्रस्तावना। प्रस्तावना आरंभ, प्राक्कथन, भूमिका, एवं वक्तव्य विषय की पूर्व सूचना को कहा जाता है। द्वितीय वर्ग की प्रस्तावना शास्त्रीय शब्दों में इस प्रकार हैं—

'जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स पढमवग्गस्स य अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते। वग्गस्स अन्तगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता। तंजहा-अक्खोभ सागरे खलु समुद्द हिमवन्त अयलणामे य। धरणे य पूरणे य अभिचंदे चेव अट्ठमए।

जम्बू अनगार सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अंग के प्रथम वर्ग का यह कथन किया है तो श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने आठवें अंग अन्तगड सूत्र के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ बताया है। उत्तर में सुधर्मा स्वामी बोले—'जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन बताए हैं उनके नाम ये हैं—

अक्षोभ, सागर, समुद्र, हैमवन्त, अचल, धरण, पूर्ण, और अभिचन्द्र। द्वितीय वर्ग की समाप्ति पर किसी-किसी प्रति में निम्नोक्त पाठ देखने में आता है—

'एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

हे जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने अष्टम अंग के द्वितीय वर्ग का अर्थ समझाया है। इस अंश को शास्त्रीय भाषा में निक्षेप कहते हैं। निक्षेप का अर्थ है—समाप्ति, किसी पुस्तक का या ग्रन्थ का अन्तिम भाग जिस में उसका उद्देश्य अथवा परिणाम संक्षेप में बताया गया है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र के प्रथमवर्ग के दस अध्ययनों में समुद्र, सागर और अक्षोभ नामक जिन राजकुमारों की जीवनी वर्णित हुई है, इसी सूत्र के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययनों में वर्णित अक्षोभ, सागर और समुद्र ये राजकुमार वही थे या ये उन से पृथक् हैं ?

सूत्रकार ने **"वण्हि पिया धारिणी माया"** ये पद देकर दोनों वर्गों के राजकुमारों के माता-पिता एक ही अभिव्यक्त कर दिए हैं। ऐसी दशा में इन राजकुमारों को एक ही समझना चाहिए या भिन्न भिन्न ?

माता-पिता तथा राजकुमारों की नामगत समानता को देख कर उक्त आशंका उत्पन्न होनी स्वाभाविक है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि दोनों वर्गों में वर्णित समान नाम वाले राजकुमार एक नहीं थे, प्रत्युत ये सभी भिन्न थे, क्योंकि लोक-व्यवहार में देखा गया है कि एक नगरी में समान नामवाले माता-पिता के एक जैसे नामवाले पुत्र भी होते हैं। इसी तरह द्वारिका नगरी में वृष्णि राजा और माता धारिणी के समान नामवाले अन्य वृष्णि और धारिणी नामक दम्पति भी थे, इनके अक्षोभ, सागर और समुद्र नामक एक ही संज्ञावाले पुत्र थे। ये सभी भगवान के पवित्र चरणों में दीक्षित हो गये थे। अन्तर केवल इतना है कि प्रथम वर्गस्थ राजकुमारों की दीक्षा पर्याय १२ वर्ष की थी, जबकि द्वितीय वर्गीय राजकुमारों की १६ वर्षों की। शेष साधना इन सब की एक जैसी है।

यदि ये राजकुमार एक ही होते तो सूत्रकार प्रथमवर्ग में वर्णन करने के अनन्तर इनका दूसरी बार द्वितीय वर्ग में वर्णन न करते।

समाप्तः द्वितीय वर्गः

तृतीय वर्ग

तृतीय वर्ग में तेरह जीवन-चरितों का वर्णन प्रस्तुत करते हुए सूत्रकार भूमिका रूप में कहते हैं :—

मूल—जइ णं तच्चस्स उक्खेवओ । एवं खलु जंबू ! तच्चस्स वग्गस्स अंतगड-दसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

१–अणीयसे, २–अणंतसेणे, ३–अणिहय, ४–विऊ, ५–देवजसे, ६–सत्तुसेणे, ७–सारणे, ८–गए, ९–सुमुहे, १०–दुम्मुहे, ११–कूवए, १२–दारुए, १३–अणादिट्ठी ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं नगरे होत्था, वण्णओ । तस्स णं भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए सिरिवणे णामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ । जितसत्तु राया । तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे नागे नामं गाहावती होत्था । अड्ढे० । तस्स णं नागस्स गाहावतिस्स सुलसा नामं भारिया होत्था । सुमाला जाव सुरूवा ॥१॥

छाया—यदि खलु तृतीयस्य उत्क्षेपकः । एवं खलु जंबू ! तृतीयस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशानां त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१–अनीयसः, २–अनन्तसेनः, ३–अनिहतः, ४–विदुः (विद्वान्), ५–देवयशः, ६–शत्रुसेनः, ७–सारणः । ८–गजः, ९–सुमुखः, १०–दुर्मुखः, ११–कूपकः, १२–दारुकः, १३–अनादृष्टिः ।

यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन तृतीयस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशानां त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तृतीयस्य भदन्त ! वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अन्तकृद्दशानां कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ।

एवं खलु जंबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये भद्दिलपुरं नाम नगरमभूत । वर्णकः । तस्य भद्दिलपुरस्य उत्तरपौरस्त्ये दिग्विभागे श्रीवनं नामोद्यानमभूत् । वर्णकः । जितशत्रु राजा । तत्र

भद्दिलपुरे नगरे नागो नाम्ना गृहपतिरभूत् । आढ्यः० । तस्य नागस्य गृहपतेः सुलसा नाम्नी भार्याऽभूत् । सुकुमारा यावत् सुरूपा ।

पदार्थ—**जइ**—यदि; **णं**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थ है; **तच्चस्स**—तृतीय वर्ग के; **उक्खेवग्रो**—उत्क्षेप समझ लेना; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **जंबू !**— जम्बू ! **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग के; **अंतगडदसाणं**—अन्तगडसूत्र के; **तेरस**—तेरह; **अज्झयणा**—अध्ययन; **पण्णत्ता**—कथन किए हैं; **तंजहा**—जैसे; **अणीयसे**—अनीयस कुमार; **अणंतसेणे**—अनन्तसेन कुमार; **अणिहय**—अनिहत कुमार; **विऊ**—विद्वत् कुमार; **देवजसे**—देवयश कुमार । **सत्तुसेणे**—शत्रुसेन कुमार; **सारणे**—सारण कुमार; **गए**—गज कुमार; **सुमुहे**—सुमुख कुमार; **दुम्मुहे**—दुर्मुख कुमार; **कूवए**—कूपक कुमार; **दारुए**—दारुक कुमार; **अणादिट्ठी**—अनादृष्टि कुमार; ।

जइ—यदि, **भंते !**—हे भगवन् ! **समणेणं**-श्रमण; **जाव**—यावत्; **संपत्तेणं**—मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने; **तच्चस्स**—तृतीय; **वग्गस्स**—वर्ग के, **अंतगडदसाणं**—अन्तगडसूत्र के; **तेरस**—तेरह; **अज्झयणा**—अध्ययन; **पण्णत्ता**—कथन किए है, **भंते**—हे भगवन् ! **तच्चस्स**—तृतीय; **वग्गस्स**—वर्ग के; **पढम अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन के; **के**—क्या; **अट्ठे**—अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है ।

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **जंबू !**—हे जम्बू ! **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **भद्दिलपुरे**—भद्दिलपुर; **नामं**—नाम का; **नगरे**—नगर; **होत्था**—था; **वण्णग्रो**—औपपातिक सूत्र के अनुसार उस नगर का वर्णन जानना; **तस्स भद्दिलपुरस्स**—उस भद्दिलपुर के; **उत्तरपुरच्छिमे**—ईशान कोण के; **दिसिभाय**—दिग्भाग में; **सिरिवणे**—श्रीवन; **नामं**—नामक; **उज्जाणे**—उद्यान (बाग); **होत्था**—था; **वण्णग्रो**—औपपातिक सूत्र के अनुसार इस उद्यान का वर्णन भी जान लेना चाहिए, (वहां); **जियसत्तू राया**—जितशत्रु नामक राजा थे; **तस्स**—उस, **भद्दिलपुरे णयरे**—भद्दिलपुर नगर में; **नागे नामं**—नाग नामक; **गाहावती**—गाथापति; **होत्था**—था; **अड्ढे-आढ्य**—धनी था, **तस्स नागस्स**—उस नाग; **गाहावतिस्स**—गाथापति की; **सुलसा नामं**—सुलसा नामवाली; **भारिया**—भार्या—स्त्री; होत्था—थी, **सुमाला**—सुकुमारी थी; **जाव**—यावत्, **सुरूवा**—रूपवती थी ।

मूलार्थ—श्रद्धेय जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कथन किया है तो भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तीसरे वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस पर सुधर्मा स्वामी कहने लगे—

जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन बताए हैं, जैसे कि—

अनीयस कुमार, अनन्तसेन कुमार, अनिहत कुमार, विद्वत् कुमार, देवयश कुमार, शत्रुसेन कुमार, सारण कुमार, गज कुमार, सुमुख कुमार, दुर्मुख कुमार, कूपक कुमार, दारुक कुमार और अनादृष्टि कुमार।

ये तेरह अध्ययन हैं। इनमें इन्हीं नामवाले राजकुमारों का वर्णन किया गया है।

हे भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के तेरह अध्ययन बताये हैं तो भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगड-सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

सुधर्मा स्वामी बोले–'हे जम्बू ! उस काल में उस समय में एक भद्दिलपुर नाम का नगर था। उसके ईशानकोण (उत्तर-पूर्व दिशा का मध्यभाग) में श्रीवन नामक एक उद्यान था। उस नगर में महाराज जितशत्रु राज्य किया करते थे। उसी नगर में नाग नामक एक गाथापति—गृहपति निवास किया करता था, वह महान् धनी था। उस गृहपति की सुलसा नाम की एक भार्या थी। सुलसा अत्यन्त सुकोमल और रूपवती थी।

व्याख्या—इस तृतीय वर्ग में तेरह अध्ययन हैं। तेरह अध्ययनों में तेरह राजकुमारों के जीवन-चरित वर्णित किये गये हैं। राजकुमारों के नाम पर ही इन अध्ययनों के नाम रखे गये हैं। उदाहरणार्थ प्रथम अध्ययन मे राजकुमार अनीयस कुमार का वर्णन हुआ है, इसलिये इस अध्ययन का नाम भी अनीयस कुमार रखा गया है। इसी प्रकार शेष अध्ययनों के नामकरण भी किए गये हैं।

प्रस्तुत सूत्र का भाव सरल एवं स्पष्ट है और वह मूलार्थ के द्वारा ही स्पष्ट हो चुका है। अतः हम केवल सूत्रगत विशेष वाक्यों को ही स्पष्ट करने का यत्न करेंगे।

"तच्चस्स उक्खेवम्रो" इस वाक्य द्वारा तृतीय वर्ग के उत्क्षेप की ओर संकेत किया गया है। उत्क्षेप का अर्थ है—प्रस्तावना। प्रस्तुत वर्ग की प्रस्तावना भी मूलार्थ के रूप में स्पष्ट हो चुकी है।

तृतीय वर्ग के प्रस्तुत तेरह अध्ययनों के नामों में पाठ भेद मिलता है। एक प्रति में पाठ है—

१–अणीयसेणे, २–अणंतससेणे, ३–अजियसेणे, ४–अणिहयविऊ, ५–देवसेणे, ६–सत्तुसेणे, ७–सारणे, ८–गए, ९–सुमुहे, १०–दुम्मुहे, ११–कूवए, १२–दारुए, १३–अणाविट्ठी।

और दूसरी प्रति का पाठ है :—

अणीयसे, अणंतसेणे, अणिहय, विऊ, देवसेणे, सत्तुसेणे, सारणे, गए, सुमुहे, दुम्मुहे, कूवए, दारुए, अणाविट्ठी ।

आगमज्ञ महापुरुषों को इस दिशा में ध्यान देना चाहिए कि इस अध्ययन के नामों में यह अन्तर क्यों है ?

"समणेणं जाव सम्पत्तेणं" इस वाक्य में पठित 'जाव' पद का भाव भी वही है जो पूर्व सूत्रों में वर्णित किया गया है।

"नगरे होत्था वण्णओ" इस वाक्य के 'वण्णओ' शब्द द्वारा सूचित नगर-वर्णन इस प्रकार है :—

"रिद्धत्थिमिय-समिद्धे पमुइय जणजाणवये" आइण्णजणमणुस्से हलसय-सहस्स-संकिट्ठ-विकिट्ठ-लट्ठ-पण्णत्त-सेउसीमे कुक्कुट-संडेय-गामपउरे, उच्छु-जव-सालि-कलिये गोमहिस-गवेलगप्पभूते, आयार-वन्त-चेइय जुवइ-विविह-सन्निविट्ठ बहुले, उक्कोडिय-गाय-गंठिय-भेय-भड तक्कर-खंड-रक्खरहिए खेमे निरुवद्दवे सुभिक्खे वीसत्थसुहावासे, अणेगकोडि-कुटुम्बियाइण्ण-णिव्वुयसुहे णड-णट्टग-जल्ल मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबय-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-अणेग - तालायराणुचरिये आरामुज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय वप्पिणी गुणोववेए, नंदण-वण सन्निभप्पगासे उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खाय-फलिहे, चक्कगय-भुसुंडि-ओरोह-सयग्घि-जमल-कवाड-घणदुप्पवेसे, धणु-कुडिल-वंक-पागार-परिक्खित्ते, कविसीसग-वट्टरइय-संठिय-विरायमाणे अट्टालय चरिय-दारगोपुर-तोरण-उण्णय-सुविभत्त-रायमग्गे, छेयायरिय-रइय-दढफलिहे-इंदकीले, विवणि-वणिच्छेत्त-सिप्पियाइण्णा णिव्वुय सुहे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-पणियावण-विविह वत्थु-परि-मण्डिए सुरम्मे नरवइ-पविइण्ण-महिवइ पहे, अणेगवर-तुरग-मत्त-कुंजर-रह-पहकर, सीय-संदमाणीयाइण्ण-जाण जुग्गे विमउल-णव णलिणिसोभियजले, पण्डुर-वर-भवण-सण्णिमहिये उत्ताण-णयण-पेच्छणिज्जे, पासादीये दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

वह नगर अनेक समृद्ध भवनों से युक्त, स्तिमित, स्वचक्र और पर-चक्र के भय से विमुक्त और धन-धान्य से परिपूर्ण था। उस मे रहनेवाले लोग तथा जानपद—बाहिर से आए हुए लोग, बहुत प्रसन्न रहते थे। वह जन-संख्या की दृष्टि से भी सम्पन्न था। उस की सीमाओं पर दूर-दूर तक लाखों हलों द्वारा खेतों को अच्छी तरह जोता जाता था, वे खेत किसानों के अभिलषित फल के देने में समर्थ और बीज बोने के योग्य बनाए जाते थे। उस में कुक्कुटों-मुर्गों और सांडों के बहुत से समूह रहते थे। वह ईख, जौ और शालि आदि धान्यों से भरपूर था। उसमें बहुत सी गौएं, भैंसें और भेड़ें रहती थीं। उसमें बहुत से सुन्दर चैत्यालय और वेश्याओं के महल्ले थे। उस नगर में कोई रिशवत लेनेवाला, गांठ कतरनेवाला, बलात्कार करनेवाला, चोर और कर वसूल करनेवाला न था।

वह नगर क्षेमरूप था, अतः वहां किसी का अनिष्ट नही होता था और वह उपद्रवों से रहित था। उसमें भिक्षुओं को भिक्षा की कोई कमी नही थी। वह नगर विश्वस्त, निर्भय अथवा धैर्यवान लोगों के लिये सुखरूप आवासवाला था, अनेक प्रकार के कुटुम्बियों और सन्तुष्ट लोगों के निवास के कारण सुखरूप था। नाटक करनेवाले, नृत्य करनेवाले, रस्से पर खेल करनेवाले अथवा

राजा की स्तुति करनेवाले चारण, मल्ल, पहलवान, मौष्टिक—मुष्टियुद्ध करनेवाले, विदूषक, कथा कहनेवाले तैरनेवाले, रसिया गानेवाले, ज्योतिषी, बांसों पर खेल करनेवाले, चित्र दिखा कर भिक्षा मांगनेवाले, तूण नामक बाजा बजानेवाले, वीणा बजानेवाले, ताली बजा कर नाचनेवाले आदि लोग उस नगर में रहते थे। उत्सवों के लिये उपयुक्त आराम-बागों उद्यानों, वाटिकाओं कूओं, तालाबों, बावड़ियों और खेतों से परिपूर्ण वह नगर सुशोभित था।

वह नगर मेरु पर्वत पर स्थित नन्दन वन के समान शोभायमान था। उस विशाल नगर के चारों ओर एक गहरी खाई थी जोकि ऊपर से चौड़ी और नीचे से संकुचित थी. चक्र, गदा, भुशुण्डी (बन्दूक), अवरोध अर्थात् मध्य के कोट शतघ्नी (तोप), तथा छिद्र-रहित कपाटों के कारण उस नगर में प्रवेश करना बड़ा कठिन था अर्थात् शत्रुओं के लिये वह दुष्प्रवेश था। वक्र धनुष से भी अधिक वक्र प्राकार-कोट से वह नगर परिवेष्टित था। वह नगर अनेक सुन्दर कंगूरों से मनोहर था। ऊंची अटारियों वाले कोट के भीतर आठ हाथ के मार्गो, ऊंचे-ऊंचे कोट के द्वारों, गोपुरों तोरण द्वारों और चौड़ी-चौड़ी सड़कोंवाला वह नगर था। उस नगर का अर्गल (वह लकड़ी जिसे कपाट बन्द करके पीछे से आड़ी लगा देते है) इन्द्रकील (नगर के दरवाजों का एक अवयव जिसके आधार से दरवाजे के दोनों किवाड़ बन्द रह सकें) दृढ़ था और निपुण शिल्पियों द्वारा उनका निर्माण किया गया था। वहां पर बहुत से शिल्पी निवास किया करते थे, जिनसे वहां के लोगों की प्रयोजन सिद्धि हो जाती थी, इसीलिये वह नगर लोगों के लिये सुखप्रद था।

शृ घाटक अर्थात् त्रिकोण मार्गो, त्रिकों (जहां तीन रास्ते मिलते है) चतुष्कों (चौराहों), चत्वरों (जहा चार से भी अधिक रास्ते मिलते हो) और नाना प्रकार के बर्तन आदि के बाजारों से वह नगर अति रमणीय प्रतीत होता था।

वहां का राजा इतना प्रभावशाली था कि उसने अन्य राजाओं के तेज को फीका कर दिया था। अनेक अच्छे-अच्छे घोड़ों, मस्त हाथियों, रथों, गुमटीवाली पालकियों, पुरुष की लंबाई के समान लबाईवाली पालकियों, गाड़ियों और युग्मों (गोल्ल देश में पाई जानेवाली एक प्रकार की पालकी जिस के चारों ओर दो हाथ प्रमाण की वेदिका (कटहरा) होती है) से वह नगर युक्त था। उस नगर के जलाशय नवीन कमल-कमलनियों से सुशोभित थे। वह श्वेत और उत्तम मोहल्लों से युक्त था। वह नगर इतना स्वच्छ था कि एकटक देखने के लिये मन चाहता था। वह चित्त को प्रसन्न करनेवाला था, उसे देखते-देखते आंखें नही झपकती थी। उसे एक बार देख लेने पर भी पुन: देखने की लालसा बनी रहती थी। उसे जब देखा जाये तब उसमें नवीनता ही प्रतीत होती थी। इस प्रकार अनुपम सौन्दर्य से सम्पन्न वह नगर था।

"उज्जाणे होत्था, वण्णओ" इस वाक्य में पठित **"वण्णओ"** पद से व्यवत उद्यान-सौन्दर्य का वर्णन पृष्ठ २९-३० पर किया जा चुका है।

"गाहावती" का अर्थ होता है—गाथापति, गृहपति अर्थात् परिवार का प्रमुख व्यक्ति।

"अड्ढे०" यहां दिए बिंदु से—**वित्ते, विस्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण जाण-वाहणाइण्णे,**

बहुधन-बहु जाय रूवरयए, आओगप्पओग संपउत्ते विच्छड्डिय-विउलभत्तपाणे, बहुदासी दास-गोमहिस-गवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए" इन पदों का ग्रहण करना चाहिये। इनका अर्थ इसप्रकार है—

नाग गाथापति आढ्य—धनी तेजस्वी विस्तृत और विपुल भवनों शय्याओं, आसनों, यानों और वाहनोंवाला था तथा सोना चांदी आदि धन की बहुलता से युक्त था। अधमर्णों (ऋण लेनेवालों) को वह अनेक प्रकार से ब्याज पर रुपया देता था। उसके यहां भोजन करने के अनन्तर भी बहुतसा अन्न बाकी बच जाता था, उसके घर में दास-दासी आदि पुरुष और गाय-भैंस और बकरी आदि पशु थे। वह बहुतों से भी पराभव को प्राप्त नहीं होता था और जनता मे सम्माननीय था।

"सुमाला जाव सुरूवा" यहां पठित **जाव** पद से सूत्रकार कुलीन स्त्रियों के समस्त गुणों को ग्रहण कर लेने की सूचना देते हैं। शास्त्रों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि स्त्रियों मे दो प्रकार के गुण होते है। एक अन्तरंग गुण दूसरे बहिरंग गुण। इनमे अन्तरग गुण मुख्य और बहिरग गुण गौण माने जाते हैं। पातिव्रत्य धर्म का सम्यक्तया परिपालन करना और पति की आज्ञा से कदापि पराङ्मुख न होना, सत्य, सन्तोष, श्रद्धा-शील, विवेक, उदारता, सहिष्णुता आदि स्त्री के अन्तरग गुण कहलाते है। रूप, लावण्य, आकृति अगोपाग का संगठित होना और सुकुमारता आदि स्त्री के बहिरंग गुण माने गये है। सूत्रकार के कहने का भाव यह है कि सेठानी सुलसा अन्तरग और बहिरग दोनो प्रकार के गुणों से विभूषित थी। सक्षेप में कहे तो सुलसा शारीरिक दृष्टि से परम सुन्दरी थी और आचार-विचार की दृष्टि से सती-साध्वी सुशीला नारी थी। भद्दिलपुर के नारी जगत में उसका सर्वोत्कृष्ट आदरास्पद स्थान था। स्त्री-जगत को उस पर गौरव था, मान था।

अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे प्रस्तुत अध्ययन के प्रधान-चरित श्रीअनीयस कुमार का वर्णन करते हुए कहते हैं —

मूल—तस्स णं नागस्स गाहावतिस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए असए अणीयसे नाम कुमारे होत्था। सुमाले जाव सुरूवे। पंचधाती परिक्खिते, तंजहा—खीरधाती जहा दढपइण्णे जाव गिरि० सुहं परिवड्ढइ। ततेणं तं अणीयस कुमारं सातिरेग अट्ठ-वासजायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाते यावि होत्था। तते ण त अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभाव जाणेत्ता अम्मापियरो सरि० जाव बत्तीसाए इब्भवर-कन्नगाणं एगदिवसे पाणिं गेण्हावेंति।*

*इस सूत्र का अन्य प्रतियों में कुछ पाठ-भेद भी प्राप्त होता है।

तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए-भारियाए अत्तए, अणीयस-सेणे णामं कुमारे होत्था। सुकुमाल जाव सुरूवे। पंचधाई परिक्खित्ते, तंजहा—खीरधाई, मज्जणधाई, मण्डणधाई, कीलावणधाई, अंकधाई। जहा दढपइण्णे जाव गिरि-कन्दरमल्लीणेव चंपगवरपायवे सुहं सुहेणं परिवड्ढइ। तएणं तं अणीयसकुमारं सातिरेग-अट्ठवास जायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तएणं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणेत्ता अम्मापियरो सरिसयाणं सरिसव्वयाणं सरिस-तयाणं सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवर-कण्णगाणं एगदिवसे पाणिं गेण्हावेंति।

छाया—तस्य नागस्य गृहपतेः पुत्रः सुलसायाः भार्यायाः आत्मजः अनीयसनाम्ना कुमारोऽभूत्, सुकुमारः यावत् सुरूपः। पञ्चधात्री परिरक्षितः तद्यथा-क्षीरधात्री यथा दृढप्रतिज्ञः यावत् गिरि० सुखं परिवर्द्धते। ततः तद् अनीयसं कुमारं सातिरेक-अष्टवर्षजातं अम्बापितरौ कलाचार्यं यावत् भोग समर्थो जातश्चापि अभवत्। ततः तमनीयसं कुमारमुन्मुक्तबालभावं ज्ञात्वा अम्बापितरौ सदृग् यावत् द्वात्रिंशत् कन्यकानामेकदिवसेन पाणिं ग्राहयन्ति।

पदार्थ—**तस्स**—उस; **नागस्स**—नाग; **गाहावतिस्स**—गाथापति का; **पुत्ते**—पुत्र; **सुलसाए**—सुलसा; **भारियाए**—भार्या का; **अत्तए**—आत्मज; **अणीयसे कुमारे**—अनीयस कुमार; **होत्था**—था; **सुमाले**—सुकुमार; **जाव**—यावत्; **गिरि०**—जैसे पर्वत की गुफा में चम्पकलता सुख पूर्वक बढ़ती है ठीक उसी प्रकार; **सुहं०**—सुखपूर्वक; **परिवड्ढइ**—वृद्धि को प्राप्त करता है; **णं**—वाक्यालंकारार्थक है; **तते**—तत्पश्चात्; **तं**—उस; **अणीयसं**—अनीयस; **कुमारं**—कुमारको; **साहिरेग**—कुछ अधिक; **अट्ठवास जायं**—आठ वर्ष का हुआ जान कर; **अम्मापियरो**—माता-पिता ने; **कलायरियं**—कलाचार्य के पास भेज दिया; **जाव**—यावत् वह; **भोगसमत्थे जाते यावि होत्था**—भोग भोगने में समर्थ हो गया; **तते**—तदनन्तर; **तं**—उस; **अणीयसं कुमारं**—अनीयस कुमार को; **उम्मुकबालभावं**—बाल्यावस्था का परित्याग किये हुए को; **जाणेत्ता**—जानकर; **अम्मापियरो**—माता-पिता ने; **सरि०**—उसके समान; **जाव**—यावत्; **बत्तीसाए**—बत्तीस; **इब्भवरकन्नगाणं**—प्रधान कुलों की कन्याओं के साथ; **एगदिवसे**—एक ही दिन में; **पाणिं गेण्हावेंति**—पाणि ग्रहण—विवाह कराया।

मूलार्थ—उस नाग गृहपति का पुत्र सुलसा भार्या का आत्मज अनीयस नामक पुत्र था। उनका यह बेटा अति कोमल और रूपवान था। क्षीर-धात्री—दूध पिलानेवाली, आदि पांच धाय माताओं के द्वारा वह परिरक्षित था। उसका अगला जीवन दृढ़प्रतिज्ञ की भांति समझ लेना चाहिए तथा वह गिरि-गुफा में उत्पन्न होनेवाली चम्पकलता के समान सम्वर्धित हो रहा था। अनीयस कुमार जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता-पिता ने विद्या ग्रहण करने के लिये उसको कलाचार्य के पास छोड़ा। विद्या पढ़ने के अनन्तर तथा बालभाव को छोड़कर जब अनीयस कुमार भोगों के भोगने में समर्थ हो गया तब माता-पिता ने उसके अनुरूप बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओं के साथ उसका एक ही दिन में विवाह कर दिया।

व्याख्या—गाथापति नाग और सेठानी सुलसा का परिचय पिछले सूत्र में देकर सूत्रकार उनके पुत्र अनीयस कुमार का वर्णन करते हैं कि यह बालक क्षीर-धात्री—दूध पिलानेवाली, स्नान-धात्री—स्नान करानेवाली, मण्डन-धात्री—शरीर को विभूषित करनेवाली, क्रीड़ा-धात्री—खेल आदि क्रियाएं करानेवाली तथा अंक-धात्री—गोद में रखनेवाली, इन पांच धाय माताओं के द्वारा लालित-

पालित होने लगा और पर्वत की गुफा में उत्पन्न होनेवाले चम्पक वृक्ष के समान बिना किसी विघ्न-बाधा के स्वतः ही बढ़ने लगा।

जब बालक आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु का हो गया, तब उसको विद्याध्ययनार्थ कलाचार्य के पास भेज दिया गया। विद्याध्ययन करते हुए उसने पुरुष की ७२ कलाएं और नानाविध भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। युवा होते ही उसके माता-पिता ने उसके अनुरूप अर्थात्* शरीर, अवस्था, रूप, लावण्य, विद्या विनय और शील आदि गुणों से युक्त ३२ कुलीन कन्याओं के साथ एक ही दिन उसका विवाह कर दिया।

"सुमाले जाव सुरूवे" इस वाक्य में पठित **'जाव'** शब्द के द्वारा सूत्रकार को—**अहीण पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे, लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंग सुन्दरंगे ससिसोमगारे कंते पियदंसणे"** यह वाक्य अभीष्ट है। जिसका अर्थ है—उसकी पांचों इन्द्रियां पूर्ण एवं निर्दोष थीं। उसका शरीर विद्या, धन और प्रभुत्व आदि के सूचक सामुद्रिक लक्षणों और मस्सा-तिल आदि व्यंजनों और विनय, सुशीलता आदि गुणों से युक्त था तथा मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण एवं अंगोपांग-गत सौंदर्य से परिपूर्ण था, वह चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त-मनोहर और प्रियदर्शन था।

"खीरधाती जहा दढपइण्णे जाव गिरि० सुहं० परिवड्ढइ—इस वाक्य मे सूत्रकार ने अनीयस कुमार के शैशव को दृढ़-प्रतिज्ञ के समान सूचित किया है। दृढ़-प्रतिज्ञ का वर्णन 'राज-प्रश्नीय सूत्र' में प्राप्त होता है। दृढ़-प्रतिज्ञ कुमार के शैशव का वर्णन करते हुए राजप्रश्नीय सूत्रकार कहते हैं—

दृढ़प्रतिज्ञ क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मण्डनधात्री, अंकधात्री और क्रीड़ाधात्री इन पांच धाय-माताओं द्वारा वृद्धि को प्राप्त करेगा। वह अनेक कुब्ज, चिलात, वामिनी आदि देश-विदेश की दासियों से घिरा रहेगा। ये दासियां उसकी देख-रेख करेंगी तथा वर्षधर कञ्चुकी पुरुषों द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ रखा जाता हुआ, एक गोद से दूसरी गोद लिया जाता हुआ, बाल-सुलभ गुणों द्वारा प्रशंसा का पात्र बनता हुआ हृदय से हृदय को प्राप्त करता हुआ, बाल-मनोविनोद योग्य गीतों द्वारा गाया रिझाया जाता हुआ, रत्न-जटित आंगण में खेलता हुआ और पर्वत मे उत्पन्न चम्पकलता के समान सुखपूर्वक वृद्धि करेगा।

सूत्रकार का आशय है कि अनीयस कुमार का शैशव भी दृढ़-प्रतिज्ञ के शैशव के समान सुखी एवं सम्पन्न था।

"कलायरिय जाव भोग-समत्थे" इस वाक्य में पठित **'जाव'** पद से सूत्रकार ने अनीयस कुमार की शिक्षा-दीक्षा की ओर संकेत किया है। भाव यह है कि अनीयस कुमार जब आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु का हो गया तो उसे कलाचार्य के पास भेजा गया। वहां पर उसने—लेखनकला, गणित-कला, रूपपरावर्तन, नृत्य-कला, गीत-कला, ताल-कला, वादित्र-कला आदि पुरुष की ७२ कलाओं

***सरिसयाणं, सरित्तयाणं, सरिव्वयाणं, सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं विणीयाणं कय-कोउय-मंगलपाय-च्छित्ताणं सरिसएहिं रायकुलेहिं आणिल्लियाणं०—व्या० शत० ११ उद्दे० ११ सू०।**

का अध्ययन किया। विद्या के क्षेत्र में पूर्णतया निष्णात हो जाने पर अनीयस कुमार को राजदरबार में लाया गया। अनीयस कुमार के पिता ने कलाचार्य का खूब सम्मान एवं सत्कार किया, अन्त में उन्हें योग्य पारितोषिक देकर विदा किया।

अब अनीयस कुमार के कानों, आंखों, नासिका, जिह्वा, शरीर एवं मन आदि में नवचेतना आने लगी, वह संगीत व नृत्यकला में कुशल होकर मानो शृंगार का आगार बन गया। घोड़ों और हाथियों के युद्ध में तथा बाहुयुद्ध में कुशल एवं भोग-भोगने में समर्थ हो गया।"

"सरि जाव बत्तीसाए" इस वाक्य में पठित **जाव** पद—**सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोवण-गुणोववेयाणं सरिसेहिं कुलेहिंतो आणिल्लियाणं** आदि विशेषताओं का संसूचक है। इन पदों से सूत्रकार ने, वर और कन्या में जिन बातों की समानता होनी चाहिए उन बातों की ओर संकेत किया है। वे बातें इस प्रकार हैं—

१—शरीर की त्वचा समान हो।
२—अवस्था समान हो।
३—लावण्य—कान्ति समान हो।
४—रूप आकृति समान हो।
५—यौवन समान हो।
६—विद्यादि गुण समान हों।
७—कुल समान हो।

यदि वर और कन्या में उक्त समानताएं हों तो दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय रह सकता है, दोनों में परस्पर प्रेम का सम्वर्धन हो सकता है और दोनों अभ्युदय के मार्ग पर सुखपूर्वक चल सकते हैं। इसी कारण लौकिक व्यवहार में अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह, दुःख के उत्पादक और समान विवाह सुख के साधक माने गये हैं।

"उम्मुक्कबालभावं" इन शब्दों से स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि बाल-विवाह नहीं करना चाहिये, जो बालक बालिकाएं बालभाव को छोड़कर युवावस्था मे पदार्पण कर चुके हैं, वे ही विवाह के योग्य हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सूत्रकार ने—**सातिरेग अट्ठवासजायं-अम्मापियरो कलायरिय जाव"**—आदि पदों द्वारा यह भी बता दिया है कि विद्यारम्भ का समय आठ वर्ष से कुछ अधिक होना चाहिये। इस अवस्था में विद्योपार्जन करने पर विद्यार्थी के शारीरिक और मानसिक विकास में किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचती है। इससे कम आयु में विद्या आरंभ कर दी जाने पर बालक के मन और शरीर पर अधिक बोझ पड़ने से उसकी शारीरिक एव मानसिक उन्नति में बाधा पड़ सकती है।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा सूत्रकार ने यह भी समझाया है कि प्राचीन युग में गुरुकुलवास की प्रथा थी और विद्यार्थियों को गुरुकुल में रहना पड़ता था। वहीं रहकर कलाचार्य से विद्या का अध्ययन करना पड़ता था। इसी कारण अनीयस कुमार को विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल भेजा गया था। अनीयस

कुमार घर में रह कर भी पढ़ सकता था, पर जिस सुविधा के साथ गुरुकुल में विद्या प्राप्त की जा सकती है, वह घर में नहीं प्राप्त की जा सकती। घर में रहने से अनेकों विघ्न उपस्थित होते हैं। वातावरण अनुकूल नहीं रहता, कोलाहल और शोर छात्र के अध्ययन में बाधक बनते हैं, अतः अनुकूल वातावरण में रह कर ही विद्या का सम्पादन करना अधिक श्रेष्ठ और चरित्र को संयमित बनानेवाला होता है।

अनीयस कुमार के शैशव तथा उस के वैवाहिक जीवन का उल्लेख करके अब सूत्रकार उस के अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—ततेणं से नागे गाहावती अणीयसस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीतिदाणं दलयति। तं जहा—बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिं पासा० फुट्ट० विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठ जाव समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे। जहा जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। ततेणं तस्स अणीयसस्स तं महा० जहा गोयमे तहा नवरं सामाइयमातियाइं चउद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। वीसं वासाति परिताओ। सेसं तहेव जाव सेतुंजे पव्वते मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे ५।

एवं खलु जंबू! समणेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढम अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

एवं जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो जाव सत्तुसेणे छअज्झयणा एक्क-गमा। बत्तीसदो दाओ। वीसं वासा परियाओ। चउद्दस पुव्वाइं अहिज्झंति। सेत्तुंजे सिद्धा।

छाया—ततः स नागो गृहपति अनीयसस्य कुमारस्य इदमेतद् रूपं प्रीतिदानं ददाति। तद्यथा—द्वात्रिंशत् हिरण्यकोटी: (कोट्यः) यथा महाबलस्य यावद् उपरि० प्रासादे० स्फुट० विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्ट यावत् समवसृतः। श्रीवने उद्याने यथा यावद् विहरति। परिषद् निर्गता। तत तस्य अनीयसस्य तं महा० यथा गौतमस्तथा नवरं सामायिकादीनि चतुर्दशपूर्वाणि अधीते। विंशतिवर्षाणि पर्यायः, शेषं तथैव यावत् शत्रुञ्जये पर्वते मासिक्या संलेखनया यावत् सिद्धः ५।

एवं खलु जंबू! श्रमणेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

एवं यथा अनीयसः एवं शेषा अपि अनन्तसेनः यावत् शत्रुसेनः। षड् अध्ययनानि एकगमाः। द्वात्रिंशद्दायाः विंशतिवर्षाणि पर्यायः। चतुर्दश पूर्वाणि अधीयन्ते। शत्रुञ्जये सिद्धाः।

पदार्थ—**णं**—वाक्यालंकारार्थक है; **तते**—इस के पश्चात्; **से**—वह; **नागे गाहावती**—नाग गृहपति; **अणीयसस्स**—अनीयस; **कुमारस्स**—कुमार को; **इमं**—यह; **एयारूवं**—इस प्रकार का; **पीतिदाणं**—प्रीतिदान; **दलयति**—देते हैं; **तं जहा**—जैसे कि; **बत्तीसं**—३२; **हिरण्णकोडीओ**—हिरण्यकोटि; **जहा**—जैसे; **महब्बलस्स**—महाबल कुमार को दहेज में दिया था; **पासा० उप्पिं०**—महलों के ऊपर; **फुट० विहरइ**—नाटक देखता हुआ विहरण कर रहा है; **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठ**—अरिष्टनेमि भगवान्; **जाव**—यावत्; **सिरिवणे उज्जाणे**—श्रीवन नामक उद्यान में; **समोसढे**—पधारे; **जहा**—जैसे; **जाव**—यावत्; **परिसा**—परिषद्; **निग्गया**—व्याख्यान सुनने को आई, **ततः**—तदनन्तर; **तस्स**—उस; **अणीयसस्स**—अनीयस कुमार का भगवद्दर्शन करने आना; **जहा**—जैसे; **गोयमे**—गौतम का धर्मश्रवण और दीक्षा ग्रहण; **तहा**—उसी प्रकार अनीयस कुमार का भी जानना; **नवरं**—इतना अन्तर है; **सामाइयमातियाइं**—आचारांग से ले कर; **चउद्दस**—चौदह; **पुव्वाइं**—पूर्वों को; **अहिज्जइ**—पढ़ते है; **वीसं**—२०; **वासाति**—वर्षों की; **परितागो**—संयमपर्याय पाल कर; **सेसं**—शेष वर्णन, गौतम कुमार के समान जानना; **तहेव**—उसी प्रकार; **जाव**—यावत्; **सेत्तुंजे**—शत्रुञ्जय; **पव्वते**—पर्वत पर, **मासियाए**—एक मास की; **संलेहणाए**—संलेखना द्वारा; **जाव**—यावत्, **सिद्धे ५**—सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परिनिर्वृ त और सर्वदुःखप्रहीण बनेगा।

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही, **जंबू !**—हे जम्बू ! **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने; **अट्ठमस्स**—आठवें; **अंगस्स**—अंग; **अंतगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र के; **तच्चस्स**—तृतीय; **वग्गस्स**—वर्ग के; **पढम**—प्रथम; **अज्झयणस्स**—अध्ययन का; **अयमट्ठे**—यह अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है।

एवं—इस प्रकार; **जहा**—जैसे; **अणीयसे**—अनीयस कुमार का वर्णन है; **एवं**—उसी प्रकार; **सेसा वि**—शेष भी; **अणंतसेणे**—अनन्त सेन; **जाव**—यावत्, **सत्तुसेणे**—शत्रुसेन का भी वर्णन जान लेना चाहिए, **छ अज्झयणा**—छह अध्ययनों का, **एक्कगमा**—एक समान पाठ है; **बत्तीसदो दाओ**—बत्तीस-बत्तीस दहेज दिए गए; **वीसं-वासा**—बीस वर्ष, **परियातो**—संयम पाला; **चउद्दस पुव्वाइं**—चौदह पूर्वो का; **अहिज्झंति**—अध्ययन किया; **सेतुञ्जे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर; **सिद्धा ५**—सिद्ध हुए।

मूलार्थ—विवाह के अनन्तर वह नाग गाथापति अनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय बत्तीस करोड़ चांदी के सिक्के तथा अन्य बत्तीस प्रकार की अनेकों वस्तुएं देता है। जिस प्रकार महाबल कुमार महलों में नाटक देखता हुआ सानन्द जीवन व्यतीत करता है। इसी प्रकार अनीयस कुमार भी सांसारिक वैषयिक आनन्द भोगता है।

उस काल तथा उस समय श्रीवन नामक उद्यान में भगवान अरिष्टनेमि पधारे। जनता उनका धर्मोपदेश सुनने के लिये उद्यान में पहुंची और सुन कर अपने-अपने घर को चली गई।

भगवान की सेवा में अनीयस कुमार भी आए। उन्होंने भी भगवान का प्रवचन सुना और प्रवचन के प्रभावसे उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्तमें गौतम कुमारकी भान्ति वे भगवानके चरणोंमें दीक्षित हो गये। दीक्षित होने के अनन्तर उन्होंने आचारांगसे लेकर चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। बीस वर्ष दीक्षाका पालन किया। अन्त समय एक मास को संलेखना द्वारा शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी कहने लगे–हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगड के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया है।

इसी प्रकार अनन्तसेन से ले कर शत्रुसेन पर्यन्त अध्ययनों का वर्णन भी जान लेना चाहिए। सब का बत्तीस-बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ था और सब को बत्तीस-बत्तीस करोड़ अनेक वस्तुएं दी गई। बीस वर्ष तक संयम का पालन एवं १४ पूर्वों का अध्ययन किया। अन्त में एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुञ्जय पर्वत पर पांचों ही सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में अनीयस कुमार के शेष जीवन का तथा अनन्तसेन आदि पाच श्रेष्ठ-पुत्रों का वर्णन किया गया है। इन के विस्तृत जीवनों को महाबल कुमार तथा गौतमकुमार के जीवनों के समान बतला कर उन्हें संक्षिप्त कर दिया गया है। मूल पाठ का अर्थ स्पष्ट ही है। मूलार्थ में उस का भाव लिख दिया गया है।

'पीतिदाणं' का अर्थ है—प्रीतिदान जो हर्ष होने के कारण दिया जाता है। यहा दान का अर्थ है पारितोषिक प्रेमोपहार। वैसे प्रीतिदान का प्रयोग आज कल दहेज के लिये किया जाता है। आज विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जानेवाला धन और सम्मान दहेज समझा जाता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से पता चलता है यह दहेज विवाह के अवसर पर वर के पिता की ओर से वर को दिया जाता था। जो वर द्वारा विवाहित कन्याओं में बांट दिया जाता था।

"हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिं पासा० फुट्ट०–" इन पदों द्वारा सूत्रकार ने अनीयस कुमार को दिए गए प्रीतिदान का विशेष वर्णन न कर के उसे महाबल के प्रीतिदान के समान बतला कर समास शैली के द्वारा उसका सांकेतिक वर्णन कर दिया है। महाबल को जो प्रीति-दान दिया गया था उस का वर्णन पृष्ठ ८३ पर किया जा चुका है।

'पासा०' यहाँ दी गई बिंदु--**य-वर-गए"** इस पद का बोधक है, तथा **'फुट्ट०'** यहां का बिंदु-**"माणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं, भुंजमाणे"** इन पदों की ओर संकेत कर रहा है। इनका भाव है--महल में बजते हुए मृदगों के द्वारा पर्याप्त भोगों का उपभोग करते हुए।

"**अरिट्ठ जाव समोसढे**" इस वाक्य में पठित **जाव** पद द्वारा भगवान अरिष्टनेमि से सम्बन्धित "—**नेमी आदि करे**···" आदि पदों का स्मरण कराया गया है। आदिकर आदि पदों का अर्थ पृष्ट १३ पर किया जा चुका है।

"**तं महा० जहा गोयमे तहा**" ये पद अनीयस कुमार के दर्शन-यात्रा, धर्मश्रवण, वैराग्य आदि जीवनप्रसंगों को गौतम कुमार के समान बतला रहे हैं। गौतम कुमार का वर्णन अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है।

"**नवरं सामाइयमाइयाइं चउद्दस पुव्वाइं**" इस वाक्य में पठित **नवरं** यह अव्ययपद गौतम कुमार और अनीयस कुमार की अध्ययनगत भिन्नता को प्रकट कर रहा है। 'नवर' शब्द का **अर्थ है**— "इतना विशेष है या इतना अन्तर है।" अनीयस कुमार और गौतम कुमार की पढ़ाई में जो अन्तर था उसे सूत्रकार ने स्वयं "**सामाइय···पुव्वाइं**—इन पदों द्वारा व्यक्त कर दिया है। भाव यह है कि गौतम कुमार ने तो केवल ग्यारह अगों का अध्ययन किया था, परन्तु अनीयस कुमार ने ११ अंग भी पढ़े और साथ मे १४ पूर्वो का अध्ययन भी किया था। तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थकर भगवान जिस अर्थ का गणधरो को पहले पहल उपदेश देते है या गणधरदेव पहले पहल अर्थ को सूत्र रूप में गूथते है, उसे पूर्व कहते है। पूर्व १४ है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१—**उत्पादपूर्व**—इस पूर्व में सभी द्रव्य और सभी पर्यायों के उत्पाद को ले कर प्ररूपणा की गई है।

२—**अग्रायणीयपूर्व**-इसमे सभी द्रव्यों, सभी पर्यायों और सभी जीवों के परिमाण कावर्णन है।

३—**वीर्य-प्रवाद-पूर्व**—इस मे कर्म-सहित और बिना कर्मवाले जीवों तथा अजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है।

४—**अस्ति-नास्ति-प्रवाद-पूर्व**—संसार मे धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुए विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान है, उन सब का वर्णन इस पूर्व में है।

५—**ज्ञान-प्रवाद-पूर्व**—इस में मति ज्ञान आदि पञ्चविध ज्ञानो का विस्तृत वर्णन है।

६—**सत्य-प्रवाद-पूर्व**—इस में सत्यरूप सयम का या सत्य वचन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

७—**आत्म-प्रवाद-पूर्व**—इस मे अनेक नय तथा मतों की अपेक्षा से आत्मा का वर्णन है।

८—**कर्म-प्रवाद-पूर्व**—इस में आठ कर्मों का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप में किया गया है।

९—**प्रत्याख्यान-प्रवाद-पूर्व**—इस में प्रत्याख्यानों का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन है।

१०—**विद्यानु-प्रवाद-पूर्व**—इस पूर्व में विविध प्रकार की विद्याओं तथा सिद्धियों का वर्णन है।

११—**अवन्ध्य-पूर्व**—इस में ज्ञान, तप, संयम आदि शुभ फलवाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फलवाले, निष्फल न जानेवाले कार्यों का वर्णन है।

१२—**प्राणायुष्य-प्रवाद-पूर्व**—इस में दस प्राण और आयु आदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है।

१३—**क्रिया-विशाल-पूर्व**—इस में कायिकी आधिकरणिकी आदि तथा संयम में उपकारक क्रियाओं का वर्णन है।

१४—**लोक-बिन्दुसार-पूर्व**—संसार में श्रुतज्ञान में जो शास्त्र बिदु की तरह सब से श्रेष्ठ है, वह लोक-बिंदुसार है।

"तहेव जाव सेतुञ्जे" इस वाक्य में पठित **जाव** पद से सूत्रकार गौतम मुनि जी ने जिस तप का आराधन किया था, उसकी ओर संकेत किया गया है। सूत्रकार का भाव यह है कि जिस प्रकार गौतम मुनि ने नानाविध तपों का आराधन किया और अन्त में वे स्थविरों के साथ शत्रुञ्जय पर चले गये इसी प्रकार अनीयस कुमार ने भी तप का अनुष्ठान किया और उन्ही की तरह ही स्थविरों के साथ शत्रुञ्जय पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

"सिद्धे ५" यहां दिए गए ५ के अंक से जिन पदों की ओर संकेत कराया गया है। उन का निर्देश पृष्ठ ६६ पर कराया जा चुका है।

"एवं सेसा वि" इस वाक्य के 'शेष' पद का अर्थ है अवशिष्ट। प्रश्न हो सकता है कि अनीयस कुमार को छोड़ कर शेष अनन्तसेन आदि सभी अवशिष्ट ही है, अतः शेष शब्द अवशिष्ट सभी का परिचायक है या किसी विशेष कुमार का ? इस प्रश्न का उत्तर सूत्रकार स्वयं **"अणंतसेणे जाव सत्तुसेणे"** कह कर दे रहे है। सूत्रकार का आशय है कि जिस प्रकार अनीयस कुमार का जीवन-चरित बताया गया है। उसी प्रकार अणंतसेन से लेकर शत्रुसेन आदि के जीवन चरित भी समझ लेने चाहिएं।

"अणंतसेणे जाव सत्तुसेणे" इस वाक्य मे विद्यमान **जाव** पद अनिहत कुमार, विद्वत् कुमार, देवयश कुमार इन तीन श्रेष्ठि-पुत्रों का संसूचक है। तात्पर्य यह है कि अनीयस कुमार की भान्ति *अनन्तसेन, अनिहत कुमार, विद्वन् कुमार, देवयश और शत्रुसेन इन पांचों की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए।

अध्ययनों की समाप्ति पर प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने कुछ संकेत नहीं किया, परन्तु सूत्र शैली के आधार पर सर्वत्र निक्षेप उपसंहार की कल्पना कर लेनी चाहिए। शास्त्रीय भाषा में इस निक्षेप को ऐसे कह सकते हैं—

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स वितियस्स, तइयस्स, चउत्थस्स, पंचमस्स, छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अर्थात्—हे जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम या षष्ठ) अध्ययन का अर्थ इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

---

*वृत्तिकार अभयदेवसूरि के मत मे अनीयस कुमार आदि छहों मुनि मा जाए भाई थे और मूलतः ये महाराज वसुदेव और माता देवकी के पुत्र थे। वैसे प्रत्यक्ष रूप से ये सुलसा सेठानी के पुत्र कहे गए हैं। इति षडपि चैते तत्वतो वसुदेवदेवकीसुताः। आठवें अध्ययन में यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

सप्तम अध्ययन

मूल—**तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवतीए नयरीए जहा पढमे नवरं वसुदेवे राया धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पन्नासतो दातो, चउद्दस पुव्वा। वीसं वासा परितास्रो। सेसं जहा गोयमस्स जाव सेतुंजे सिद्धे।**

छाया—**तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां यथा प्रथमः। नवरं वसुदेवो राजा। धारिणी देवी। सिंहः स्वप्नः। सारणः कुमारः। पञ्चाशत् दायाः। चतुर्दशपूर्वाणि, विंशति वर्षाणि पर्यायः। शेषः यथा गौतमस्य यावत् शत्रुञ्जये सिद्धः।**

पदार्थ—**तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय में; **बारवतीए**—द्वारिका; **नयरीए**—नगरी में; **जहा**—जैसे; **पढमे**—प्रथम वर्णन है वैसा जानना; **नवरं**—इतना विशेष है; **वसुदेवे**—वसुदेव राजा राज्य करता था; **धारिणी देवी**--धारिणी देवी थी; **सीहो-सुमिणे**—उसने स्वप्न में सिंह देखा, **सारणे कुमारे**—सारण कुमार पुत्र का नाम था; उस के विवाह में; **पन्नासातो**—पचास; **दातो**—दहेज दिए; **चउद्दस**—चौदह; **पुव्वा**—पूर्वों का अध्ययन किया; **वीसं**—बीस; **वासा**—वर्ष तक; **परितास्रो**—संयम का पालन किया; **सेसं**—शेष वर्णन; **जहा**—जैसे; **गोयमस्स**—गौतम कुमार का वर्णन है, **जाव**—यावत्, **सेतुञ्जे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर, **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय में द्वारिका नगरी थी। उस में वसुदेव राजा राज्य किया करता था, धारिणी उस की रानी थी। उसने गर्भाधान के पश्चात् स्वप्न मे सिंह देखा। समय आने पर बालक को जन्म दिया, उस का नाम सारण कुमार रखा गया। उस का ५० कन्याओं के साथ विवाह हुआ। पिता ने ५० दहेज दिए। तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपदेश सुन कर वह वैराग्य को प्राप्त हुआ, साधु बना, चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, बीस वर्ष तक संयम का पालन कर के एक मास की संलेखना द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया सारण कुमार का शेष वर्णन गौतम कुमार की भान्ति समझ लेना चाहिए।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग का सातवां अध्ययन है। इस में सारण कुमार का जीवन-चरित्र वर्णन किया गया है। यह कुमार वसुदेव राजा का पुत्र था, माता का नाम धारिणी था। जब सारण कुमार का जीव माता धारिणी के गर्भ में प्रविष्ट हुआ, उस रात्रि को माता ने एक स्वप्न देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो एक सिंह मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है। गर्भकाल के पूर्ण होने पर माता ने बालक को जन्म दिया। बालक का नाम सारण कुमार रखा गया। सारण कुमार पर्वत गुफा में स्थित चम्पकलता की भान्ति पांच धायमाताओं के संरक्षण में संवर्धित होने लगा। जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तो इसे गुरुकुल में कलाचार्य के पास

भेजा गया। वहां इसने ७२ पुरुष कलाएं सीखीं। विद्या क्षेत्र में खूब प्रगति की। एक दिन सारण कुमार पूर्ण विद्वान् हो गया।

माता पिता ने विवाह योग्य जान कर सारण कुमार का ५० राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया और कुमार को ५० करोड चांदी के सिक्के और नाना प्रकार की वस्तुएं प्रीतिदान में दीं। विवाहित सारण कुमार आनन्दपूर्वक राजमहलों में अपनी तरुण सुन्दरी पत्नियों के साथ सांसारिक विषयों का उपभोग करने लगा।

उस समय भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे। महाराज वसुदेव तथा अन्य नागरिक प्रभु की धर्मदेशना सुनने के लिये भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। सारण कुमार भी गया। सब ने भगवान की कल्याणकारिणी वाणी सुनी। सुन कर सब अपने अपने घर को चले गए। सारण कुमार को भगवान की वाणी सुन कर वैराग्य हो गया। माता पिता ने बहुत समझाया, इस के वैराग्य रंग को उतारने की उन्होंने भरसक कोशिश की, पर सारण कुमार दृढ रहा। अन्त में माता पिता से आज्ञा ले कर सारण कुमार भगवान के चरणों में दीक्षित हो गए, साधु बन गए।

मुनि सारण कुमार विद्याध्ययन करने लगे। तथारूप स्थविरों के पास उन्हों ने चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। अध्ययन के साथ साथ तप का भी आराधन किया। बीस वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्त में भगवान से आज्ञा लेकर शत्रुञ्जय पर्वत पर चले गए और वहां एक मास का अनशन कर के कर्मों को क्षय कर दिया, निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। सारण मुनि सिद्ध हो गए।

यह है सारण मुनि का संक्षिप्त जीवनचरित्र जिसे सूत्रकार ने अपनी भाषा में उपस्थित किया है। साथ में यह भी सूचित कर दिया है कि सारण कुमार का जीवन गौतम कुमार की भान्ति समझ लेना चाहिए। सारण कुमार और गौतम कुमार के जीवन मे जो भिन्नता है, उस का भी सूत्रकार ने स्वयं निर्देश कर दिया है। **'सोहो सुमिणे, पन्नासतो दातो'** आदि पद उसी भिन्नता के बोधक हैं।

"सेसं जहा गोयमस्स जाव" इन पदों द्वारा सूत्रकार ने सारण कुमार के जीवन को गौतम कुमार के समान होने की सूचना दी है। भाव यह है, जैसे गौतम कुमार का जीवन-चरित था वैसा सारण कुमार का भी समझ लेना चाहिए।

इस अध्ययन से या सारण कुमार के जीवन-चरित से साधक को अपने जीवन को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि जीवन को परम शान्त और परम सुखी बनाने के लिये भोगमय जीवन का परित्याग करना ही पड़ेगा, धर्म में दीक्षित हो कर संयम का पालन करना ही होगा। वस्तुतः अध्यात्मसाधना ही जीवन को शान्त और सुखी बना सकती है। इसी के प्रताप से साधक निर्वाण पद को प्राप्त कर के परम सुख को प्राप्त कर सकता है। अतः प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी का कर्त्तव्य बनता है कि वह सारण कुमार के जीवन से ग्राह्य सार को अवश्य ग्रहण करने का प्रयत्न करे।

प्रस्तुत अध्ययन के उत्क्षेप-प्रस्तावना और निक्षेप-उपसंहार की कल्पना पिछले अध्ययनों की भान्ति पाठकों को कर लेनी चाहिए। सूत्रकार ने विस्तार भय से उनका उल्लेख नहीं किया।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम अध्ययन

मूल—जइ णं उक्खेवओ अट्ठमस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवतीए नयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी सामी समोसढे। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अन्तेवासो छः अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा, सिरिवच्छंकिय-वच्छा, कुसुम-कुंडल-भद्दालया नलकूब्बरसमाणा। तते णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वतिया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति, नमंसंति वंदित्ता, नमंसित्ता एव वयासी—इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवकम्मसंजमेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तते। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह। ततेणं छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति।

छाया—यदि उत्क्षेपकोऽष्टमस्य। एवं खलु जंबू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां यथा प्रथमो यावद् अर्हद् अरिष्टनेमिः स्वामी समवसृतः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तेवासिनः षड् अनगाराः भ्रातरः सहोदराः अभूवन्। सदृशाः, सदृग्वयसः नीलोत्पल-गवलगुलिकाअतसीकुसुमप्रकाशाः श्रीवत्सांकितवक्षसः, कुसुमकुण्डलभद्रालकाः नलकूबरसमानाः। ततः ते षड् अनगाराः यत्र चैव दिवसे मुण्डा भूत्वा अगारादनगारितां प्रव्रजिताः तत्र चैव दिवसे अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दन्ते, नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवदन्—इच्छामो भगवन्! युष्माभि-रभ्यनुज्ञाताः सन्त यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेण अनिक्षिप्तेन तपःकर्मसंयमेन आत्मानं भावयन्तं विहर्तुम्? यथासुखं देवानुप्रियाः! मा प्रतिबंधं कुर्युः। ततः षडनगाराः अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञाताः सन्तः यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेण यावद् विहरन्ति।

पदार्थ—**जइ**—यदि, **णं**—यह अव्ययपद वाक्यसौन्दर्यार्थक है। **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक समझ लेना चाहिये, **अट्ठमस्स**—आठवें अध्ययन का, **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **जंबू!** हे जम्बू! **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **बारवतीए**—द्वारिका नामक; **नयरीए**—नगरी में; **जहा**—जिस प्रकार; **पढमे**—प्रथम अध्ययन में वर्णन किया गया है; **जाव**—यावत्; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि; **सामी**—स्वामी; **समोसढे**—पधारे; **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि भगवान के; **अन्ते-वासी**—शिष्य; **छ**—छह; **अणगारा**—साधु, जो कि; **सहोदरा भायरो**—मां जाए, सगे भाई; **होत्था**—थे। वे छः भाई; **सरिसया**—एक समान थे; **सरित्तया**—समान त्वचा वाले थे; **सरिव्वया**—

समान उमर वाले थे; **नीलुप्पल**—नील कमल; **गवल**—भैंस के सींग के अन्दर का भाग; **गुलिय**—गुलिका—रंग विशेष; **अयसिकुसुम**—अलसी के फूल, इन सब के; **प्पगासा**—प्रकाश वाले थे, नील कमल आदि के समान वर्ण वाले थे; **सिरिवच्छंकियवच्छा**—उन की छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह था; **कुसुमकुंडलभद्दालया**—कुसुमों के समान कोमल और कुण्डल के समान-वर्त्तुल-घुंघराले अलक—केशों वाले; **नलकूब्बरसमाणा**—वैश्रमण देव के पुत्र के समान थे; **तते**—तदनन्तर; **ते**—वे; **छ**—छह; **अणगारा**—अनगार साधु; **जंचेव दिवसं**—जिस दिन; **मुण्डा भवेत्ता**—मुण्डित हुए थे, साधु बने थे; **अगाराओ**—घर से निकल कर; **अणगारियं**—अनगार भाव में; **पव्वतिया**—प्रव्रजित हुए थे, दीक्षित हुए थे; **तं चेव दिवसं**—उसी दिन; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि भगवान को; **वंदंति**—वन्दना करते हैं; **वंदित्ता**—वंदना कर के; **नमंसंति**—नमस्कार करते हैं; **नमंसित्ता**—नमस्कार कर के; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—कहने लगे; **भंते**—हे भगवन्! **णं**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है; **इच्छामो**—हम चाहते हैं; **तुब्भेहिं**—आपश्री द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणा**—अभ्यानुज्ञात—आज्ञा प्राप्त किये हुए; **छट्ठंछट्ठेणं**—बेले-बेले तप द्वारा; **अणिक्खित्तेणं**—निरन्तर, बिना व्यवधान के; **तवकम्मसंजमेणं**—तपस्या और संयम से; **अप्पाणं**—आत्मा को; **भावेमाणे**—भावित युक्त करते हुए; **विहरित्तते**—विहरण को। भगवान बोले: **देवाणुप्पिया!**—हे देवानुप्रियो! **अहासुहं**—जैसे तुम्हे सुख हो, परन्तु; **पडिबंधं**—विलम्ब; **मा करे**—मत करो, **तते**—तत्पश्चात् **छ**—छह; **अणगारा**—साधु; **अरहया**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिणा**—अरिष्टनेमि भगवान द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त होने पर; **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त; **छट्ठं छट्ठेणं**—बेले-बेले तप द्वारा; **जाव**—यावत; **विहरंति**—विहरण करते हैं।

मूलार्थ—आठवें अध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी थी। उसके बाहिर उद्यान में भगवान अरिष्टनेमि पधारे।

उस काल तथा उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के छः शिष्य थे। ये छहों सगे भाई थे, वर्ण त्वचा और आयु में एक दूसरे के समान प्रतीत होते थे। उन का वर्ण नील कमल, महिष के शृङ्ग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष और अलसी के समान था। उनका वक्षस्थल श्रीवत्स नामक चिन्ह से चिन्हित था। उन के सिर के केश फूल के समान कोमल और कुण्डल के समान वर्त्तुल गोल अर्थात् घुंघराले थे। वे वैश्रमण देव के पुत्र के समान प्रतीत होते थे।

उक्त छहों भाई जिस दिन अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में साधु बने और घर को छोड़ कर दीक्षित हुए, उसी दिन भगवान के चरणों में वन्दना नमस्कार करते हुए निवेदन करते हैं—

भगवन्! हमारी हार्दिक इच्छा है कि यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करदें, तो हम जीवनपर्यन्त बेले-बेले तप द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि करें।

अपने शिष्यों की विनीत प्रार्थना सुनकर भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुख हो, करो पर शुभ कर्म करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये ।

भगवान से आज्ञा मिल जाने पर छहों भाई जीवनपर्यन्त बेले-बेले तप द्वारा अपनी आत्म-साधना करने लगे ।

व्याख्या—यह अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का आरम्भिक सूत्र है। इसमें भगवान अरिष्टनेमि के छः शिष्यों का वर्णन किया गया है। सुधर्मा स्वामी श्रीजम्बू स्वामी से कहते हैं— एक बार बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। भगवान नगर से बाहिर उद्यान में विराजमान हो गये। उस समय भगवान के छः शिष्य मां जाए भाई थे। उनका रूप-रंग एक जैसा था। एक समान उनकी आयु प्रतीत होती थी। नील-कमल जैसा या भैंसे के सींग जैसा अथवा अलसी के फूल जैसा इनका रंग था। वक्षःस्थल में श्रीवत्स का निशान था, सिर के बाल बड़े कोमल और कुण्डल की तरह गोल घुंघराले थे। वे धनपति कुबेर के पुत्रों के तुल्यही दिखाई देते थे। छहों ने जीवन-भर के लिये बेले-बेले पारणा करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। इस तरह ये छहों मुनि भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में तप-संयम की आराधना कर रहे थे। यही प्रस्तुत सूत्र का संक्षिप्त भावार्थ है।

"**उक्खेवओ अट्ठमस्स**" का अर्थ है—अष्टम अध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। इन शब्दों द्वारा सूत्रकार कहना चाहते है कि आठवें अध्ययन के उत्क्षेप-उपोद्घात की कल्पना पिछले अध्यायों की भांति कर लेनी चाहिये। जिस उपोद्घात की कल्पना की ओर संकेत किया गया है, वह उपोद्घात शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है—

"**जइ णं भंते ! अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?**"

अर्थात्—जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव सुधर्मास्वामी से निवेदन करने लगे—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के सप्तम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?

"**नयरीए जहा पढमे जाव अरहा**" इस वाक्य में पठित "**जहा पढमे जाव**"—इन वाक्यों द्वारा सूत्रकार प्रथम अध्ययन में प्रदर्शित द्वारिका नगरी, वहां के उद्यान, वहां के नरेश आदि बातों की ओर संकेत कर रहे हैं। कहने का भाव यह है कि जैसे अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारिका नगरी के नन्दन वन का तथा महाराज वासुदेव का वर्णन किया गया है, वैसे ही यहां भी समझ लेना चाहिये।

'**सरिसया**'—आदि पदों का टीकानुसारी अर्थ सम्बन्धी चिन्तन इस प्रकार है—

सरिसया—सदृशकाः समानाकाराः, अर्थात् समान आकृति या आकारवाले को सदृशक कहते हैं।

सरित्तया—सदृक्त्वचः–सदृशी त्वग् येषां ते, समानकान्तयः , अर्थात् एक जैसी त्वचा–चमड़ी-वाले या एक जैसे रूपवाले को सदृक्त्वच् कहते है।

सरिव्वया—सदृग् वयसः। सदृक् सदृश समानं वयो येषां ते समान-वयस्काः, अर्थात् जिनकी आयु समान हो, उन्हें सदृग्वय कहते है।

उक्त विशेषण भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यों के है। इन विशेषणो से सूत्रकार ने छहों भाइयों को एक जैसी आयुवाला ध्वनित किया है, परन्तु यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि छहों भाइयों की एक जैसी आयु कैसे हो सकती है? जो बालक एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इसी प्रकार चौथा, पांचवां और छठा इस प्रकार इकट्ठे बालक लगातार भी पैदा होते है, तो भी उनकी आयु में अन्तर रहता है, उनमे भी कोई छोटा कोई बडा यह कल्पना रहती है, फिर सर्वथा भिन्न-भिन्न काल में पैदा होनेवाले बालकों की आयु एक जैसी कैसे हो सकती है?

उत्तर मे निवेदन है कि यह सत्य है कि छहों भाइयों की एक जैसी आयु नही थी वे सब भिन्न-काल में पैदा हुए थे, वे भी आपस में छोटे बड़े थे, तथापि सूत्रकार ने उनकी जो समान आयु बतलाई है उसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि उन के शरीरो की अवगाहना एक जैसी थी। उन छहों को यदि खड़ा कर दिया जाए तो वे एक जैसे कदवाले प्रतीत होते थे और एक जैसी उमरवाले लगते थे।

नीलुप्पल-गवल-अयसि-कुसुम-प्पगासा—नीलोत्पलगवलातसी–कुसुमप्रकाशा—नीलोत्पलं नील-कमलम्, गवलं महिषशृङ्गान्तवर्ती नीलद्रव्यम्, गुलिका रंग विशेषः, अतसीकुसुमम्, अतसी नामधेयं पुष्पविशेषम् एतेषां प्रकाश इव प्रकाशः कान्तिर्येषां ते नीलवर्णाः। नील-कमल भैंस के सींग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष तथा अलसी के फूल, इनके समान जिनकी कान्ति हो, उन्हे नीलोत्पल-गवल तथा अलसी के फूल* ये सब नील वर्णवाले होते है। अतः छहों भाई नीलवर्ण के थे।

किसी प्रति में—**नीलुप्पल-गुलिय-अयसि-कुसुम-प्पगासा**" ऐसा पाठ है। इसमें गवल शब्द का सर्वथा अभाव है और गुलिय का ग्रहण किया है। आगमोदय समिति द्वारा इसी पाठ को अपनाया गया है, परन्तु वृत्तिकार अभय देव सूरि ने—**नीलोत्पल-गवल-गुलिका-अतसीज-कुसुम-प्रकाशाः गवलं-महिषशृङ्ग, अतसी-धान्य विशेषः**" ऐसा लिखा है। इन्होंने गवल और गुलिय दोनों पदों का आश्रयण किया है। पाठ भेद की इस विचित्रता पर आगमज्ञ मनीषी व्यक्तियों को ध्यान देना चाहिये।

सिरिवच्छंकियवच्छा—श्रीवत्सांकितवक्षसः, श्रीवत्सो महापुरुषाणां वक्षःस्थचिन्हविशेषः, तेन अंकित वक्षः उरो येषां ते श्रीवत्स-युक्त-वक्षस्थस्काः, अर्थात् श्रीवत्स से युक्त है, वक्षःस्थल जिनका वे महापुरुष श्रीवत्सांकित वक्षस् कहलाते है। श्रीवत्स का अर्थ है—महापुरुषों के हृदय का एक ऊचा अवयवाकार नौ कोणवाला चिन्ह, साथिया जैसा शुभ चिन्ह विशेष।

कुसुम-कुण्डल-भद्दालया—कुसुम-कुण्डल-भद्रालकाः, कुसुमवत्कोमलाः, कुण्डलवद् वर्तुलाः,

* अलसी के फूल आसमानी रंग के होते है, इसके बीज चपटे और नुकीले होते है, इनमे से तिलों की भांति तेल निकलता है।

आकुञ्चितत्वाद् , भद्राः शोभना अलकाः केशाः येषां ते, अर्थात्—जिनके बाल कुसुमों के समान कोमल और कुण्डल के समान गोल, घुंघराले होने के कारण सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं वे 'कुसुम-कुण्डल-भद्रालक' कहलाते हैं।

"कुसुम-कुण्डल-भद्दालया" इस वाक्य की वृत्तिकार अभयदेव सूरि व्याख्या करते हुए कहते हैं—

कुसुमकुण्डलभद्दालयेति-कुसुमकुण्डलं धत्तूरकपुष्पसमानाकृतिकर्णाभरणं तेन भद्रकाः शोभनाः ये ते तथा। बालावस्थाश्रयं विशेषणं न पुनरनगारावस्थाश्रयमित्येके, अन्ये पुनराहुः-दर्भ-कुसुमवद्भद्राः सुकुमारा इत्यर्थः, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यम्। अर्थात् धतूरे के फूल के समान आकृतिवाले कर्णभूषण से सुशोभित व्यक्ति को कुसुम-कुण्डल-भद्रक कहते हैं। प्रश्न हो सकता है कि साधु-जीवन में कुण्डल पहनने का प्रसंग कैसे हो सकता है? इसका समाधान करते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि सूत्र-कार ने यह उपमा बाल्यावस्था को लक्ष्य में रखकर दी है। इससे अनगारावस्था का कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा एक आचार्य का मत है।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि कहते हैं कि अन्य आचार्यों ने उक्त पद का अर्थ—दर्भ-पुष्प के समान सुकुमार अर्थात्—जिसका शरीर दर्भपुष्प के समान अत्यन्त कोमल है—यह अर्थ किया है।

नलकूब्बरसमाणा-नलकूब्बरसमानाः, सौंदर्य लावण्यादिभिः गुणैः नलकूबर सदृशाः, अर्थात्—जो सौंदर्य, लावण्य आदि गुणों से नलकूबर के समान हो, उसे नलकूबर समान कहते हैं। नलकूबर वैश्रमणदेव का पुत्र माना जाता है, जो सौन्दर्यादि गुणों में अनुपम है।

इस पद की व्याख्या करते हुए श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं—

"नलकूबर समाना" वैश्रमण पुत्र तुल्याः। इदं च लोकरूढ्या व्याख्यातं यतो देवानां पुत्राः न सन्ति, अर्थात्—भगवान अरिष्टनेमि के छहों शिष्यों को जो वैश्रमण देव के पुत्र के समान बतलाया गया है, यह कथन लोकरूढि को लक्ष्य में रखकर किया गया है, कारण कि देवों के पुत्र नहीं होते, जैसे लोक व्यवहार में देखा जाता है कि कोई लड़का अच्छा सुन्दर हो, कोमलांग हो तो उसे देखकर कह दिया जाता है कि 'यह लड़का तो देवकुमार के समान है' इसी प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में लोक-प्रथा को लेकर अथवा देवकुमार के सौन्दर्याधिक्य की समानता के कारण भगवान अरिष्टनेमि के शिष्यों को वैश्रमणदेव के पुत्र की उपमा दी गई है।

"मुंडा भवेत्ता" यहां पर पठित **'मुंडा'** पद मुण्डित का बोधक है। मुंडित दो प्रकार के होते हैं—द्रव्य-मुण्डित, भाव-मुण्डित। जिसने सिर के केश उतार रखे हों, केशलुञ्चन करवा रखा हो, वह द्रव्य-मुण्डित और जो क्रोध, मान, माया आदि जीवन-विकारों को समाप्त कर चुका है, वह भाव-मुंडित कहलाता है। छहों भाई द्रव्य मुंडित भी थे और भावमुंडित भी।

"छट्ठंछट्ठेणं" का अर्थ है—षष्ठ षष्ठ से। षष्ठ-बेला लगातार दो उपवास का नाम है। एक साथ दो उपवास करना, तीसरे दिन पारणा कर लेना, फिर लगातार दो उपवास करने तथा फिर तीसरे दिन अन्न-जल ग्रहण करना, इसी प्रकार करते रहना यही बेले-बेले पारणा करना कहलाता

है। जैन-जगत में उपवास को चतुर्थभक्त-परित्याग कहते हैं, लगातार दो व्रत षष्ठ-भक्त-विरमण तथा लगातार तीन उपवास अष्टमभक्त विरमण कहलाते है।

किसी प्रति में **"तवकम्म संजमेणं तवसा"** ऐसा पाठ दिया गया है। पर **'तव कम्म'** शब्द के आ जाने पर पुनः **तवसा** शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है ? यह विचारणीय है।

"अहासुहं देवाणुप्पिया" यहां पठित **'अहासुहं'** इस पद का अर्थ है जैसे तुम्हें सुख हो। इस कथन के पीछे एक सैद्धान्तिक सत्य है। जैन-दर्शन का विश्वास है कि वही तप आत्म-शुद्धि का कारण बन सकता है, जो सुखपूर्वक, समाधिपूर्वक किया जाता है। जिस तप में मन की समाधि भग हो जाए, मन अशान्त और दुःखी हो जाये वह तप आत्म-शुद्धि का कारण नही बनसकता। फलतः साधक को तप करते समय अपनी मानसिक शान्ति का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

देवाणुप्पिया—देवानुप्रिय का अर्थ है—भद्र ! आगमो के परिशीलन से पता चलता है कि देवानुप्रिय शब्द का प्रयोग बड़ा आदरास्पद माना गया है। इस शब्द द्वारा वक्ता सम्बोधित व्यक्ति के प्रति अपनी आदरमयी तथा स्नेह पूर्ण भावना को व्यक्त करता है।

इन पदों द्वारा सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि श्रेष्ठ कार्यों में कभी विलम्ब नही करना चाहिए। जो कार्य जीवन का भविष्य उज्ज्वल समुज्ज्वल बनानेवाले होते है, जिनसे मनुष्य परम-साध्य मोक्ष पद को प्राप्त करता है, उन कार्यों के सम्पादन में किंचित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। अन्यथा विचार विचार ही रह जाते है, उन्हे आचरण का रूप देना कठिन हो जाता है, इसीलिये भगवान महावीर स्वामी ने गौतम जी महाराज को कहा था—'हे गौतम ! एक समय के लिये भी अपने आपको प्रमादी नहीं बनाना चाहिये। **"समयं गोयम मा पमायए"**।

"छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति" यहाँ पठित **जाव**-यावत् पद से **"अणिक्खित्तेण तवकम्म-संजमेणं अप्पाणं भावेमाणे"** इन पदों का ग्रहण करना चाहिये। अर्थ मूलार्थ में दिया जा चुका है।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने भगवान अरिष्टनेमि के छः शिष्यों के जीवन का कुछ परिचय कराया है। अब सूत्रकार उन्ही के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्रस्तुत करते हुए कहते है—

मूल—तते णं छः अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति जहा गोयमो जाव इच्छामो णं छट्ठक्खमणस्स पारणाए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवतीए नयरीए जाव अडित्तए। अहासुहं-देवाणुप्पिया। तते णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति, णमंसंति, वंदित्ता, णमंसित्ता अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अन्तियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमंति २ तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति।

छाया—ततः षड् अनगाराः अन्यदा कदाचित् षष्ठक्षमणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं कुर्वन्ति। यथा गौतमः, यावद् इच्छामः षष्ठक्षमणस्य पारणके युष्माभिः अभ्यनुज्ञाताः सन्तः त्रिभिः संघाटकैः द्वारावत्यां नगर्यां यावद् अटितुम्? यथासुखम् देवानुप्रिय ! ततस्ते षडनगाराः अर्हता अरिष्ट-

नेमिना अभ्यनुज्ञाताः सन्तः, अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दन्ते, नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा अर्हतः अरिष्ट-नेमेः अन्तिकाद् सहस्राम्रवनात् प्रतिनिष्क्राम्यन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य त्रिभिः संघाटकैस्त्वरितं यावदटन्ति ।

पदार्थ—**णं**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है; **तते**—इस के पश्चात्; **छ अणगारा**—छहों साधु; **अन्नया कयाइं**—किसी अन्य समय; **छट्ठक्खमणपारणयंसि**—षष्ठ क्षमण—बेले के पारणे के दिन; **पढमाए**—प्रथम; **पोरिसीए**—प्रहर में; **सज्झायं**—स्वाध्याय; **करेंति**—करते हैं; **जहा**—जैसे; **गोयमो**—अनगार गौतम भगवान महावीर से पूछते हैं; **जाव**—यावत्, भगवान अरिष्टनेमि से बोले; **इच्छामो**—हम चाहते हैं; **छट्ठक्खमणस्स**—बेले के; **पारणाए**—पारणे में; **तुब्भेहिं**—आप से; **अब्भणुण्णाया-समाणा**—आज्ञा प्राप्त किए हुए; **तिहिं**—तीन; **संघाडएहिं**—संघाड़ों से; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **जाव**—यावत्; **अडित्तए**—भिक्षार्थ गमन करना, इस पर भगवान बोले—**अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो ।

देवाणुप्पिया—देवानुप्रिये; **तते**—तत्पश्चात्; **ते**—वे; **छ**—छह; **अणगारा**—साधु; **अरहया**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिणा**—अरिष्टनेमि भगवान द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त किए हुए; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—भगवान अरिष्टनेमि को; **वंदंति**—वंदना करते हैं; **नमंसंति**—नमस्कार करते है; **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करने के अनन्तर; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स** अरिष्ट-नेमि के; **अन्तियाओ**—पास से; **सहसंबवणाओ**—सहस्राम्र नामक वन से; **पडिनिक्खमंति**—निकलते हैं, निकल कर; **तिहिं**—तीन; **संघाडएहिं**—संघाड़ों से; **अतुरियं**—शीघ्रता और चपलता से रहित; **जाव**—यावत्; **अडंति**—पर्यटन करते हैं ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वे छहों अनगार किसी समय बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, अनगार गौतम की भान्ति जीवनचर्या करते हुए भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में निवेदन करते हैं । भगवन् ! आज हमारा बेले का पारणा है । अतः हम चाहते हैं, कि हम छहों भाई तीन भागों में विभक्त हो जाएं और द्वारिका नगरी में भिक्षा के लिये भ्रमण करें । इसके लिये आपश्री की आज्ञा चाहते हैं ।

अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि बोले—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो ।

भगवान अरिष्टनेमि से आज्ञा मिल जाने पर छहों अनगार अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वन्दना तथा नमस्कार करने के अनन्तर अरिहन्त अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्र वन से निकलते हैं, निकल कर तीन संघाड़ों में विभाजित हो कर चपलता और शीघ्रता को छोड़ कर शान्त भाव से द्वारिका नगरी में यावत् भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यों की जीवन-चर्या का परिचय कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि छहों अनगार बड़े आनन्द तथा उल्लास के साथ तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए समय बिता रहे थे। एक दिन की बात है कि बेले के पारणे का दिन था। प्रातः काल प्रथम प्रहर तक उन्होंने शास्त्रस्वाध्याय किया। शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन में व्यतीत किया। दूसरे प्रहर में ध्यान करते है, आत्मा का चिन्तन, मनन करते हैं। तीसरे पहर में मुख-वस्त्रिका तथा भाजन एवं वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं। तदनन्तर पात्रों को झोली में रखा, झोली उठा कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों मे उपस्थित हुए। भगवान को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगे—

भगवन्! यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करें, तो हम छहों अनगार तीन भागों मे बट कर, अर्थात् दो-दो की तीन टोलियां बना कर बेले के पारने के वास्ते द्वारिका नगरी में भिक्षा के लिये जाएं? इतना निवेदन कर के भगवान के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। अपने शिष्यों द्वारा पारणे के लिये द्वारिका नगरी में भिक्षार्थ जाने की आज्ञा की मांग सुन कर भगवान् बोले—

भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा कर लो। मेरी ओर से तुम्हें भिक्षार्थ द्वारिका नगरी में जाने की आज्ञा है।

अपने आराध्यदेव गुरुदेव भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पारणे के लिये द्वारिका मे जाने की आज्ञा मिल जाने पर छहों अनगार दो-दो भागों में अपने को बांट लेते है और भगवान को विधि-पूर्वक वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर द्वारिका नगरी की ओर चल देते हैं। यह प्रस्तुत सूत्र का संक्षिप्त भावार्थ है।

"जहा गोयमो जाव इच्छामो" इन पदों द्वारा सूत्रकार ने छहों मुनियों के जीवनवृत्त को गौतम स्वामी के जीवनवृत्त से उपमित किया है। गौतम स्वामी पारणे के लिये जैसे भगवान महावीर से पूछते हैं, वैसे ही ये मुनि भगवान अरिष्टनेमि से पूछते है। गौतम स्वामी से सम्बन्धित आगमीय पाठ इस प्रकार है—

बीयाए पोरसीए झाणं झियाती, तइयाए पोरसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुंह-पोत्तियं पडिलेहेति, भायणवत्थाणि पडिलेहति, भायणाणि पमज्जति, भायणाणि उग्गाहेति, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, २ समणं ३ वंदति २ एवं वयासी—।" अर्थात्—गौतम स्वामी दूसरे पहर में ध्यानारूढ़ होते, तीसरे पहर में कायिक और मानसिक चपलता से दूर हो कर मुखवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं। तत्पश्चात् पात्रों को झोली में रख कर और झोली को ग्रहण कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित होते है, वन्दना नमस्कार करते हैं तदनन्तर निवेदन करते है जैसे गौतम अनगार का यह वर्णन किया गया है, वैसे ही छहों मुनियों का समझ लेना चाहिए। अन्तर केवल भगवान अरिष्टनेमि और भगवान महावीर का है। गौतम अनगार भगवान महावीर के पास गए जब कि छहों मुनि भगवान अरिष्टनेमि के पास जाते हैं। इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं है।

"**तिहिं संघाडएहिं**"—यहां संघाटक शब्द टोली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार दो-दो की टोली में छः साधुओं के तीन संघाटक बन जाते हैं। भाव यह है कि छहों मुनि पारणे के लिये इकट्ठे भी नहीं गए और न ही अकेले-अकेले गए। प्रत्युत वे दो-दो की टोली बना कर भिक्षा के लिये जाते हैं।

"**अतुरियं जाव अडंति**" यहां पठित जाव—यावत् पद—**अचवलमसंभंते जुगंतरपरिलोयणाए दिट्ठीए पुरओ ईरियं सोहेमाणे जेणेव बारवती नगरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवतीए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए**" इन पदों का संसूचक है, अर्थात् चपलता तथा संभ्रान्ति से रहित दो हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमिति का पालन करते हुए जहां द्वारिका नगरी थी, वहां आते हैं, वहां आकर द्वारिका नगरी में साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरों में भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं।

दो साधुओं का पारणा एक साधु भी ला सकता था, किन्तु एक न जा कर जो दो-दो साधु पारणे के लिये जा रहे हैं, इस से यह ध्वनित होता है कि साधु को यथाशक्य गोचरी के लिये अकेले नहीं जाना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र से संयमशील साधक के लिये तीन बातों को ग्रहण करने की पवित्र प्रेरणा प्राप्त होती है।

१—पारणे के दिन पहले प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करना चाहिए।

२—गुरुजनों की आज्ञा ले कर फिर आहारादि के लिये जाना चाहिए।

३—भिक्षा के लिये जाने वाले साधक को चपलता चंचलता और संभ्रान्ति से रहित हो कर शान्तभाव से ईर्यासमिति का परिपालन करते हुए भ्रमण करना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमि के छहों मुनि भगवान से आज्ञा लेकर तीन भागों में विभाजित हो कर द्वारिका नगरी में बेले के पारणे के लिये पधार जाते हैं। अब सूत्रकार अग्रिमसूत्र में उन मुनियों के अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—**तत्थ ण एगे संघाडए बारवतीए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवतीए देवीए गेहे अणुपविट्ठे, तते णं सा देवती देवी ते अणगारे, एज्जमाणे पासति पासित्ता हट्ठ जाव हियया आसणातो अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेति, करित्ता वंदति, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागया, सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेति ते अणगारे पडिलाभेति, वंदति, णमंसंति वंदित्ता, णमंसित्ता पडिविसज्जेइ। तदाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवतीए उच्च जाव विसज्जेइ।**

छाया—**तत्र एकः संघाटकः द्वारवत्यां नगर्यामुच्चनीचमध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन्-अटन् वसुदेवस्य राज्ञः देवक्याः देव्याः गृहेऽनुप्रविष्टः। ततः सा देवकी देवी तमनगारमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा यावत् हृदयेन आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि त्रिकृत्वः (त्रिवारं) आदक्षिणं प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा च वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च यत्रैव भक्त-गृहं तत्रैवोपागता, सिंहकेसराणां मोदकानां स्थालं भरति, तावनगारौ प्रतिलाभयति, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य प्रतिविसर्जयति, तदनन्तरं च द्वितीयं संघाटकं द्वारवत्यामुच्चैः यावद् विसर्जयति।**

पदार्थ—**णं**—वाक्य सौंदर्य के लिये है, **तत्थ**—उन तीन सिंघाड़ों में से; **एगे**—एक; **संघाडए**—सिंघाडा; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **घरसमुदाणस्स**—घर समुदाय के; **उच्चनीयमज्झिमाइं**—साधारण असाधारण और मध्यम; **कुलाइं**—कुलों—घरों में, **भिक्खायरियाए**—भिक्षा के लिये; **अडमाणे-अडमाणे**—भ्रमण करते हुए; **वसुदेवस्स**—वसुदेव, **रण्णो**—राजा के; **देवतीए देवीए**—देवकी-देवी के; **गेहे**—घर में; **अणुपविट्ठे**—प्रविष्ट हुआ; **तते**—तदनन्तर; **सा**—वह; **देवती देवी**—देवकी देवी ; **एज्जमाणे**—आते हुए; **ते**—उन; **अणगारे**—साधुओं को; **पासइ**—देखती है; **पासित्ता**—देखकर; **हियया**—हृदय से; **हट्ठ**—प्रसन्न होती है; **जाव**—यावत्; **आसणातो**—आसन से; **अब्भुट्ठेति**—उठती है; **अब्भुट्ठित्ता**—उठकर; **सत्तट्ठपयाइं**—सात-आठ कदम आगे जाकर; **तिक्खुत्तो**—तीन बार ; **आयाहिणं**—दक्षिण की ओर से, **पयाहिणं**—प्रदक्षिणा, **करेति**—करती है; **करित्ता**—प्रदक्षिणाकरके, **वंदति**—वन्दना करती है; **णमंसति**—नमस्कार करती है; **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करके; **जेणेव**—जहां पर; **भत्तघरे**—भक्त घर—रसोई घर है; **तेणेव**—वहां पर; **उवागया**—आई, आकर; **सीहकेसराणां**—सिंह-केसर; **मोयगाणं**—लड्डुओं का; **थालं**—थाल; **भरेति**—भरती है, थाल भर कर, **ते अणगारे**—उन साधुओं को, **पडिलाभेति**—प्रदान करती है, तदनन्तर, **वंदति**—वन्दना करती है, **णमंसति**—नमस्कार करती है, **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करके; **पडिविसज्जेति**—उनको विदा करती है, **तदाणतरं च**—तदनन्तर, **दोच्चे**—द्वितीय, दूसरा, **संघाडए**—सिंघाड़ा, **बारवतीए**—द्वारिका नगरी के, **उच्च०**—साधारण असाधारण आदि गृहों में; **जाव**—यावत् भिक्षा करता हुआ देवकी के घर मे आया; **विसज्जेति**—वह उसे भी सिंह केसर लड्डू देकर विदा करती है।

मूलार्थ—तीन सिंघाड़ों में से एक सिंघाड़े के दोनों मुनि द्वारिका नगरी के साधारण असाधारण तथा मध्यम गृहों में से भिक्षा के लिये घूमते हुए महाराज वसुदेव की रानी देवकी देवी के घर में प्रविष्ट हुए। तब देवकी देवी ने घर में आते हुए मुनियों को देखा, देखकर वह प्रसन्नता से फूली नहीं समाई। तदनन्तर आसन से उठकर सात-आठ कदम आगे चलकर दक्षिण की ओर से उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके उनको वन्दन, नमस्कार किया, तत्पश्चात् जहाँ भोजन-गृह था वहां आई, आकर सिंहकेसर नामक लड्डुओं से एक थाल भरा और उसे मुनियों को बहराया, फिर वन्दना नमस्कार करके मुनियों को विदा किया।

पहले मुनियों के जाने के अनन्तर दूसरा सिंघाड़ा भी द्वारिका नगरी के उच्च असाधारण, नीच-सामान्य तथा मध्यम (न साधारण और न असाधारण, मध्यम श्रेणी के) गृहों में भिक्षा के निमित्त भ्रमण करता हुआ देवकी देवी के घर में आ पहुंचा। देवकी देवी ने प्रथम सिंघाड़े की भांति इसको अभ्युत्थान वन्दन नमस्कार आदि से सत्कृत किया और उसे भी सिंह-केसर नामक लड्डू देकर विदा किया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि के छह साधुओं में (जो कि दो-दो की टोली में विभक्त होकर भिक्षा के लिये द्वारिका नगरी मे गये है) से पहली और दूसरी टोली को महाराज वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी देवी द्वारा सत्कृत सम्मानित करने के अनन्तर विधिपूर्वक दी जानेवाली सिंह-केसर मोदकों की भिक्षा का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से सुपात्रदान में प्रवृत्ति रखनेवाले सद्गृहस्थों को अनेकों शिक्षाएं प्राप्त हो सकती हैं। घर में आये हुए सुपात्र साधु का हृदय से सम्मान करना चाहिये। साधु को देखकर खड़े होना, आसन छोड़ देना, उनके स्वागतार्थ उनको लेने के लिये आगे जाना, वन्दना नमस्कार करना, दान देने से पहले आनन्दानुभूति करना, दान देते समय आनन्द-विभोर होना, दान देने के पश्चात् हृदय को प्रमुदित बनाये रखना, वन्दन, नमस्कार रूप शिष्टाचारपूर्वक आगन्तुक साधु को विदा करना आदि बातों का शिक्षण उक्त संदर्भ से बहुत अच्छी तरह प्राप्त हो सकता है। कल्याण-कामी साधक को इस शिक्षण से अपने को शिक्षित करके तदनुसार आचरणशील बनकर अपना कल्याण करना चाहिये।

"**उच्चनीय-मज्झिमाइं कुलाइं**" का अर्थ है—उच्च नीच तथा मध्यम कुल-गृह। उच्च कुल से धनी गृह, नीच कुल से निर्धन गृह और मध्यम कुल से मध्यम अवस्थावाले गृह का ग्रहण करना होता है। भिक्षु के सामने धनी, निर्धन गृह का कोई प्रश्न नहीं होता। वह तो बिना किसी भेद के लोगों के घरों में भिक्षार्थ जाता है। जहां उसे निर्दोष और सात्त्विक आहार मिलता है, उसका ग्रहण कर लेता है। यदि भिक्षु के सामने धनी का महत्त्व और निर्धन की अवहेलना हो तो समता के दर्शन कहां होंगे? यह सत्य है कि लोक-व्यवहार में जो कुल निंदनीय अथवा घृणास्पद है, जहां से भिक्षा लेने पर जनता से किसी प्रकार का अपवाद-मूलक विवाद उत्पन्न होता हो, उन कुलों में साधु को भिक्षा के लिये जाना शास्त्र द्वारा निषिद्ध है।

"**घरसमुदाणस्स**" का अर्थ है—**गृहेषु समुदानं भिक्षाटनं, गृहसमुदानम्**, अर्थात् सामान्य रीति से सभी घरों से गोचरी करना। भाव यह है, कि जो गोचरी बीच में आनेवाले घरों को छोड़े बिना की जाती है उसे गृहसमुदान भिक्षा कहते है। इस भिक्षा में गरीब-अमीर का प्रश्न नहीं रहता। इसमें तो बिना भेदभाव के आहार लिया जाता है।

'**देवती**'—का अर्थ है—'देवकी' यह शब्द आर्ष प्राकृत भाषा का रूप है, अन्यथा व्याकरण के आधार पर तो '**देवकी**' शब्द का प्राकृत प्रतिरूप '**देवई**' ऐसा होता है। कुछ प्रतियों में '**देवई**' ऐसा ही पाठ उपलब्ध होता है।

"हट्ठ जाव हियया" यहां पठित **जाव पद-तुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा, परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणा"** इन पदों का बोधक है। इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१—**तुष्ट-चित्तानन्दिता**-हर्ष को प्राप्त एव सन्तोष को उपलब्ध तुष्ट और कृतकृत्य चित्त होने के कारण जो आनन्द को प्राप्त करती है। उसे **तुष्ट-चित्तानन्दिता** कहते हैं।

२—**प्रीतमना**—**तृप्तचित्ता** अर्थात् जिस का मन अभिलषित उत्तम पदार्थो की प्राप्तिरूप तृप्ति की उपलब्धि कर रहा है, उस स्त्री को प्रीतमना कहते हैं।

३—**परमसौमनस्यिता**—अत्यन्त आमोद-प्रमोद को प्राप्त करने वाली नारी का नाम परम सौमनस्यिता है।

४—**हर्ष-वश-विसर्पद्-हृदया**-हर्ष के कारण जिस का हृदय विस्तृत-विस्तार को प्राप्त हो गया है, हर्षाधिक्य से जिस का हृदय उछल रहा है, उस नारी को 'हर्ष-वश-विसर्पद्-हृदया' कहा जाता है।

"सत्तट्ठपयाइं" का अर्थ है—सात आठ कदम। यहां पर केवल सात या आठ का ग्रहण न करके सूत्रकार ने जो सात और आठ इन दोनों का एक साथ ग्रहण किया है, इस मे एक रहस्य है। वह यह है कि जब आदमी दोनों पांव जोड़ कर खड़ा होता है, तब चलने पर एक पांव आगे होगा और दूसरा पांव पीछे। चलते-चलते जब अगले पाव मे सात कदम पूरे हो जाएगे तब उसी दशा में स्थित रहने से एक कदम आगे और एक कदम पीछे, ऐसी स्थिति होगी। तदनन्तर पिछले पाव को उठाना पड़ता है और उसे उठा कर दूसरे पांव के साथ मिलाने से खड़े होने की स्थिति सम्पन्न होती है। ऐसे क्रम में जो पाव आगे था उससे तो सात कदम होते है और जिस समय पिछला पाव अगले पांव के साथ मिलाया जाता है उस समय आठ कदम होते हैं। इस तरह एक पाव से सात कदम रहते हैं और दूसरे से आठ कदम होते हैं। इसी भाव को सूचित करने के लिये सूत्रकार ने केवल सात या आठ का उल्लेख न कर के **"सत्तट्ठपयाइं"** ऐसा उल्लेख किया है, जो कि सर्वथा उचित ही है।

"सिंह-केसराणं मोयगाणं" का अर्थ है—सिंह केसर नामक मोदक—लड्डू। सिंह केसर का अर्थ कोषों ने कई प्रकार का बतलाया है। एक कोषकार इसका अर्थ मोदक विशेष करते हैं। गुजराती कोष जैनागम शब्द संग्रह मे लिखा है—

"सीह-केसर—पुं० (सिंह-केशर) सिंह नी केस जेवी बून्दी ना बना वेल लाडवा, सिंह केसरिया लाडवा (पृष्ठ ७८१)। अर्थात्—शेर की गर्दन के बालों के समान बारीक दानों से निर्मित मोदक सिंह-केसर मोदक कहलाते हैं।*

---

* पण्डितप्रवर श्री घासीलाल जी महाराज सिंह केसर का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"सीहकेसराणं मोयगाणं"—सिंहकेसराणां मोदकानाम्। चतुरशीति-विशिष्ट-वस्तु-विनिर्मिता मोदकाः सिंहकेसरमोदका उच्यन्ते—अर्थात् जिन लड्डुओं में ८४ प्रकार की विशिष्ट वस्तुएं डाली गई हैं, वे लड्डू 'सिंहकेसर मोदक' कहलाते हैं।

"उच्च जाव विसज्जेति" यहां पठित **जाव** पद से प्रस्तुत सूत्र में ही पठित—**"नीयमज्झि-माइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए...ते अणगारे पडिलाभेति वंदति णमंसति वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेति"** इन पदों का सूचन कराया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि मुनियों की दो टोलियां देवकी देवी के घर से आहार लेकर चली गई हैं, इस के पश्चात् तीसरी टोली के सम्बन्ध में सूत्रकार वर्णन करते हुए लिखते हैं—

मूल—**तदाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवतीए नयरीए उच्चनीयजाव पडिला-भेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी--**

किण्णं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमोसे बारवतीए नयरीए नवजोयण वित्थिणाए पच्चक्खदेवलोगभूताए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, जन्नं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसंति ?

तते णं ते अणगारा देवतीं देवीं एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमोसे बारवतीए नयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइ दोच्चंपि भत्तपाणाए अणुप्पविसन्ति ।

एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावतिस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव नलकूब्बर समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा संसार-भउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं मुंडा जाव पव्वइया। तते णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वतिता तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो, वंदित्ता, नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हामो–इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया ! तते णं अम्हे अरहतो अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमण-पारणयंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहे अणुप्पविट्ठा, ते नो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अन्ने, देवतिं देविं एवं वदंति, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगता।

छाया—**तदनन्तरं च तृतीयः संघाटकः द्वारवत्यां नगर्यामुच्चनीचः यावत् प्रतिलाभयति, प्रतिलभ्य एवमवादीत् :—**

किं देवानुप्रियाः ! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारवत्यां नगर्यां नवयोजन-विस्तीर्णायां प्रत्यक्ष-देव-लोक-भूतायां श्रमणाः निर्ग्रन्थाः उच्चनीचं यावद् अटन्तः भक्तपानं नो लभन्ते, यत्तानि चैव कुलानि भक्तपानाय भूयो-भूयः अनुप्रविशन्ति ? ततः तावनगारौ देवकीं देवीमेवमवादिष्टाम् नो खलु देवानुप्रिये ! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारवत्यां नगर्यां यावद् देवलोकभूतायां श्रमणाः निर्ग्रन्थाः उच्चनीचं यावद् अटन्तः भक्तपानं नो लभन्ते, नो यच्चैव तानि-तानि कुलानि द्वितीयमपि तृतीयमपि भक्तपानाय अनुप्रविशन्ति । एवं खलु देवानुप्रिये । वयं भद्दिलपुरे नगरे नागस्य गृहपतेः पुत्राः, सुलसायाः भार्यायाः आत्मजाः षड् भ्रातरः सहोदराः सदृशाः यावत् नलकूबरसमानाः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके धर्मं श्रुत्वा संसारभयाद् उद्विग्नाः भीताः जन्ममरणाणां (जन्ममरणेभ्यः) मुण्डा यावत् प्रव्रजिताः । ततः वयं यच्चैव दिवसं प्रव्रजिताः, तच्चैव दिवसमर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दामहे नमस्यामः वन्दित्वा नमस्कृत्य इदमेतद् रूपमभिग्रहमभिगृह्णामः—इच्छामो भदन्त ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञाताः सन्तः यावद् यथासुखं देवानुप्रिया ! ततः वयं अर्हतः अभ्यनुज्ञाताः सन्त. यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेन यावद् विचरामः । तद् वयमद्य षष्ठक्षमणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां यावद् अटन्तः तव गृहे अनुप्रविष्टाः । तन्नो खलु देवानुप्रिये ! ते चैव वयम्, आवामन्यौ, देवकीं देवीमेवं वदतः उक्त्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतौ तामेव दिशं प्रतिगतौ ।

पदार्थ—**तदाणंतरं**—तदनन्तर; **च**—समुच्चय अर्थ मे है, **णं**—वाक्यसौन्दर्य के लिये है; **तच्चे**—तृतीय; **संघाडए**—सिंघाड़ा—टोली, **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में पूर्व की भान्ति **उच्चनीय**—उच्च नीच; **जाव**—यावत् मध्यम कुलों में घूमता हुआ देवकी देवी के घर, पहुंचा; **पडिलाभेति**—वह भिक्षा देकर लाभ लेती है, तदनन्तर, **एवं**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगी :—

देवाणुप्पिया ! हे देवताओं को प्यारो ! **किण्णं**—क्या; **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव की, **इमीसे बारवतीए नयरीए**—इस द्वारिका नगरी में, जोकि **नव जोयणवित्थिणाए**—नव योजन चौड़ी (और १२योजन लम्बी है); **पच्चक्ख**—प्रत्यक्ष रूप से, **देवलोगभूयाए**—देवलोक के समान है, **समणा**—श्रमण, **निग्गंथा**—निग्रन्थ, **उच्चनीय**—सामान्य, असामान्य आदि कुलो में; **जाव**- यावत्, **अडमाणा**—भ्रमण करते हुए, **भत्तपाणं**—आहार पानी, **नो लभंति**—प्राप्त नहीं करते है, **जन्नं**—क्योंकि, **ताइं ताइं**—उन उन, **कुलाइं**—घरों मे, **चेव**—निश्चय ही, **भत्तपाणाए**—आहार पानी के लिये; **भुज्जो-भुज्जो**—बार-बार, **अणुप्पविसंति**—प्रवेश करते है ? **तते**—तदनन्तर, **ते**—वे, **अणगारा**—साधु, **देवतीं देवीं**—देवकी देवी को, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—, **खलु**—निश्चय ही, **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव की, **देवाणुप्पिए** ! हे देवानुप्रिये ! **इमीसे**—इस, **बारवतीए**—द्वारिका, **नयरीए**—नगरी मे, **जाव**—यावत् जो, **देवलोगभूयाए**—देवलोक के समान हैं, **समणा**—श्रमण, **निग्गंथा**—निर्ग्रन्थ, **उच्चनीय०** -सामान्य, असामान्य आदि घरों में, **जाव**—यावत्, **अडमाणा**—भिक्षा के लिए घूमते हुए, **भत्तपाणं**—आहार-पानी को, **नो लभंति** प्राप्त नहीं करते हैं, **नो**—ऐसी बात नहीं है, **नो चेवं**—ऐसा भी नहीं है, कि, **ताइं ताइं**—उन उन, **कुलाइं**—कुलों में, **दोच्चंपि**—दो बार, **तच्चंपि**—तीन बार, **भत्तपाणाए**—आहार-पानी के लिये, **अणुप्पविसंति**—प्रवेश करते हैं, **खलु**—

निश्चय ही, **देवाणुप्पिए !**—हे देवानुप्रिये ! **एवं**—(वस्तुस्थिति) इस प्रकार है—, **अम्हे**—हम, **भद्दिलपुरे**—भद्दिलपुर, **नयरे**—नगर में, **नागस्स**—नाग, **गाहावतिस्स**—गृहपति के, **पुत्ता**—पुत्र हैं, उसकी, **सुलसाए**—सुलसा नामक, **भारियाए**—धर्म पत्नी के, **अत्तया**—आत्मज हैं, **छः भायरो**—हम छः भाई हैं, **सहोदरा**—मां जाए हैं, **सरिसया**—एक जैसे हैं, **जाव**—यावत्, **नलकूब्बर समाणा**—वैश्रमणदेव के पुत्र जैसे हैं; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के; **अंतिए**—पास; **धम्मं**—धर्म को; **सोच्चा**—सुनकर; **संसार-भउव्विग्गा**—संसार के भय से उद्विग्न बने हुए; **जम्म-मरणाणं**—जन्म और मरण से; **भीया**—भयभीत हुए; **जाव**—यावत्; **मुंडा**—मुण्डित होकर; **पव्वइया**—दीक्षित हो गये; **तते**—उसके अनन्तर; **अम्हे**—हम; **च**—अवधारण अर्थ में है; **एव**—निश्चयार्थक है; **जं दिवसं**—जिस दिन; **पव्वइया**—दीक्षित हुए; **तं चेव दिवसं**—उसी दिन; **अरहंतं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को; **वंदामो**—वंदना करते है; **नमंसामो**—नमस्कार करते है; **वंदित्ता**—वन्दना करके, **नमंसित्ता**—नमस्कार करके; **इमं**—यह; **एयारूवं**—इस प्रकार का; **अभिग्गहं**—अभिग्रह अर्थात् प्रतिज्ञा को; **अभिगिह्णामो**—ग्रहण करते है; **भंते**—हे भगवन् !; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है; **इच्छामो**—हम चाहते हैं, **तुब्भेहिं**—आपश्री द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त किये हुए, **जाव**—यावत् भगवान ने कहा; **अहासुहं**—जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो; **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो !

अम्हे—हम । **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है; **अरहतो**—अरिहन्त भगवान से; **अब्भणुण्णाया समाणा**—आज्ञा प्राप्त कर; **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त; **छट्ठंछट्ठेणं**—बेले-बेले तप द्वारा; **जाव**—यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए; **विहरामो**—विचरते है; **तं**—इसलिये; **अम्हे**—हम; **अज्ज**—आज; **छट्ठक्खमणपारणयंसि**—बेले के पारणे में; **पढमाए**—प्रथम; **पोरिसीए**—प्रहर में स्वाध्याय किया; **जाव**—यावत्; **अडमाणा**—भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए हमने; **तव गेहे**—तुम्हारे घर में; **अणुप्पविट्ठा**—प्रवेश किया है; **तं**—इसलिये; **खलु**—निश्चयार्थक है; **देवाणुप्पिए !**—हे देवानुप्रिये ! **ते**—वे; **अम्हे**—हम; **नो**—नहीं है; **च**—समुच्चयार्थक है; **एव**—निश्चयार्थक है; **अम्हे**—हम; **अन्ने**—अन्य हैं; **देवतीं देवीं**—देवकी देवी को; **एवं**—इस प्रकार; **वदंति**—कहते है; **वइत्ता**—इस प्रकार कहकर; **जामेवदिसं**—जिस दिशा से; **पाउब्भूया**—आये थे, **तामेव**—उसी ही; **दिसं**—दिशा में; **पडिगता**—चले गये ।

मूलार्थ—तदनन्तर उन साधुओं की तीसरी टोली द्वारिका नगरी के असाधारण साधारण तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के घरों में भिक्षा के लिये भ्रमण करती हुई देवकी देवी के घर आई । माता देवकी ने उस टोली का पूर्णतया स्वागत किया और सम्मानपूर्वक उसे सिंहकेसर नामक मोदकों का भोजन बहराया । आहार देने के अनन्तर देवकी देवी ने मुनियों की सेवा में सादर निवेदन किया—

'देवानुप्रियो ! आदरास्पद मुनिवर ! कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नव योजन चौड़ी और १२ योजन लम्बी है, प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान है । इतनी विशाल नगरी

में श्रमणों—साधुओं को साधारण-असाधारण तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के घरों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए क्या आहार-पानी प्राप्त नहीं होता ? क्या कारण है कि श्रमणों को आहार पानी के लिये बार बार एक ही घर आना पड़ता है ?'

देवकी देवी के प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि बोले— 'हे देवानुप्रिये ! हे भद्रे ! कृष्ण वासुदेव की नगरी बड़ी विशाल है और देवलोक के समान है। इसमें भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए श्रमणों, साधुओं को अहार-पानी नहीं मिलता, ऐसी कोई बात नहीं है। कृष्ण महाराज की द्वारिका में साधुजनों को अहार पानी को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं है, सभी घरों में सुविधापूर्वक आहार-पानी प्राप्त हो जाता है। दूसरी बात—साधु लोग जिन घरों से एक बार अहार ले आते हैं, बिना कारण उन्हीं घरों में दूसरी बार या तीसरी बार आहारार्थ नही जाते हैं।

देवानुप्रिये ! वास्तव में बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के निवासी नाग गृहपति के पुत्र हैं, हमारी माता सुलसा सेठानी है। हम छह सगे भाई हैं, एक जैसे प्रतीत होते हैं—रूप, लावण्य, अवस्था में समान से दृष्टिगोचर होते हैं, वैश्रमणदेव के पुत्र के समान हमारी आकृति है। हमने अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में बैठकर धर्म का श्रवण किया, तत्पश्चात् संसार (आवागमन के चक्र) के भय से उद्विग्न तथा जन्म-मरण मे भयभीत होने के कारण हम दीक्षित हुए थे, उसी दिन अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वन्दना नमस्कार करके हमने अभिग्रह धारण करने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हुए कहा—

भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम 'जीवन पर्यन्त बेले बेले पारणा करें'' ऐसी प्रतिज्ञा करना चाहते हैं। हमारी इस प्रार्थना पर भगवान अरिष्टनेमि ने कहा, देवानुप्रियो ! जैसे तुमको सुख हो। इस प्रकार अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा हो जाने पर हमने बेले-बेले पारणा करना आरम्भ कर दिया। आज हमारे बेले का पारणा था। प्रथम प्रहर हमने स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर ध्यान किया, तीसरे प्रहर हम छहों भाई तीन टोलियां बना कर बेले के पारणे के वास्ते भिक्षा के लिये द्वारिका नगरी के साधारण असाधारण आदि सभी गृहों में भ्रमण करते हुए आपके घर आगए हैं। अतः हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे घर में पहले आ चुके हैं, वे हम नहीं हैं।

हम उनसे अन्य हैं। इस प्रकार देवकी देवी के प्रति अपनी वात कह कर दोनों मुनि जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा की ओर चले गये।

व्याख्या—एक जैसी आकृतिवाले पदार्थों के पृथक्करण में सन्देह का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जहां पर अधिक साम्य होता है, रूप, वर्ण लावण्य एक समान होता है, वहां पर देखनेवाले को भ्रम हो जाने के कारण पृथक्करण में अवश्य कठिनता हो जाया करती है और कभी-कभी तो मनुष्य का यह भ्रान्त ज्ञान निश्चय के रूप में परिणत हो जाता है। इसी भाव को प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने व्यक्त किया है।

भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यों की तीसरी टोली जिस समय देवकी देवी के घर में प्रविष्ट हुई तो उसे देख कर देवकी देवी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या कृष्ण वासुदेव की स्वर्ग-तुल्य विशाल नगरी में जहां पर कि सम्पत्तिशाली सम्मान्य गृहस्थों का निवास चल रहा है, इन श्रमण निर्ग्रन्थों को आहार पानी नहीं मिलता होगा। यह साधु तीसरी बार मेरे घर में आए हैं। यदि इन को अन्यत्र भिक्षा मिल जाती तो फिर ये तीसरी बार मेरे यहां क्यों आते? इस से प्रतीत होता है कि इन को और किसी घर में भिक्षा की प्राप्ति ही नहीं हुई है। यह सन्देह देवकी देवी को उन साधुओं की अधिक समानता के कारण होना स्वाभाविक ही था।

यह सत्य है कि देवकी देवी ने उन साधुओं को भिक्षा देने में तो किसी प्रकार की आनाकानी नहीं की और न ही उसने ज़रा विलम्ब किया, किन्तु विधि और सम्मानपूर्वक भिक्षा देने के अनन्तर उसने अपने आन्तरिक भाव को छिपाए रखने की अपेक्षा उसे प्रकट कर देना ही उचित समझा। ऐसा करना उचित ही था। किसी बात को मन में रखने की अपेक्षा उसे निकाल देना, अपनी जिज्ञासा बता कर उसका समाधान कर लेना अच्छा होता है। भ्रान्ति से कई बार अनर्थ हो जाते हैं। इस अनर्थ को रोकने का सर्वोत्तम साधन वही है जिसका देवकी देवी ने आश्रयण किया है।

देवकी देवी के उक्त प्रश्न को सुन कर उस के समाधान में मुनियों ने अपना जीवन-परिचय दिया और बताया कि हम भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के पुत्र हैं, हमारी माता सेठानी सुलसा है भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में बैठ कर धर्म का श्रवण करने से हमें वैराग्य हो गया और हम साधु बन गए। बेले-बेले तप का आराधन करने लगे। आज बेले का पारणा है, हम सब ने अपनी तीन टोलियां बना ली थीं। तीनों टोलियां द्वारिका नगरी में भिक्षार्थ भ्रमण कर रही हैं। इस प्रकार इन मुनियों ने अपना सारा जीवन-वृत्तान्त सुना कर देवकी देवी के सन्देह को निवृत्त करते हुए अपने जीवन को आदर्श के सर्वथा अनुरूप बतलाने का भी स्तुत्य प्रयत्न किया है।

उन्होंने दूसरी बात यह भी कह दी कि साधु दो या तीन बार भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में नहीं जाता और न ही हम दूसरी या तीसरी बार आप के घर आए हैं। हम से पहले जो आपके घर में आ चुके हैं, वे मुनिराज दूसरे थे, हम वे नहीं हैं, हम और हैं। मालूम होता है कि आपको हमारी समान आकृति और समान अवस्था को देख कर भ्रम हो गया है।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा ज्ञातव्य तीन बातों का बोध होता है। उन्हें भी समझ लेना चाहिए :—

संयम शील मुनिराज जितनी बार घर में आवे उतनी बार सद्गृहस्थ को उनका विधिपूर्वक वन्दन, नमस्कार और भक्त-पान आदि अपेक्षित वस्तुओं से सत्कार करना चाहिए।

किसी भी सन्देहमूलक विचार की उपेक्षा करने की अपेक्षा उसको सरलता पूर्वक प्रकट करके सन्देह रहित होने का प्रयास करना चाहिए। मन में सन्देह के रहने से अश्रद्धा, अवहेलना आदि अनेकों दोष उत्पन्न हो सकते है, अतः इसका परिहार कर लेना ही उचित होता है।

संयमशील मुनि को बिना किसी विशिष्ट कारण के भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में एक से अधिक बार जाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए तथा अपने सम्बन्ध में उत्पन्न हुए किसी भी सन्देह को उसी समय दूर कर देना चाहिए ताकि अपने निमित्त से किसी गृहस्थ की धर्मभ्रष्ट होने का अवसर न आए और उसकी श्रद्धा पर किसी भी प्रकार का आघात न हो।

"उच्चनीय जाव पडिलाभेइ" यहाँ पठित "जाव"—यावत् पद से पिछले सूत्र मे पढ़े गए— **मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स...थालं भरेति ते अणगारे"** इन पदो की ओर संकेत किया गया है।

नव जोयण ० वित्थिणाए पच्चक्खदेवलोगभूयाए" इस वाक्य के साथ पृष्ठ २३-२४ पर दिए गए द्वारिका वर्णन की संगति अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए।

किसी प्रति में **'नवजोयण०'** इस पाठ से पहले **"दुवालस जोयणायामा"** ऐसा पाठ आता है। वर्णन-क्रम से यह पाठ पहले ही आना चाहिए। दोनो पाठ एक ही स्थान पर दिए गए हे। दोनो मे पहला स्थान **"दुवालसजोयणायामा"** का है, परन्तु आगमोदय समितिवालो ने इस संस्करण में पहले पाठ को छोड़ कर दूसरे का आश्रयण न जाने किस उद्देश्य से किया है? यह अवश्य विचारणीय है।

"नगरीए जाव देवलोगभूयाए" इस वाक्य का जाव पद द्वारिका नगरी के **दुवालसजोयणायामा** आदि पदो का सूचक है। विभक्ति-व्यत्यय स्वयं कर लेना चाहिए।

"सरिसया जाव नलकूब्बरसमाणा" यहां पठित **जाव** पद **"सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गुलियअयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुम-कुण्डल-भद्दालया"** इन पदों का बोधक है। इन पदों का अर्थ पीछे पृष्ठ ९२ पर लिखा जा चुका है।

संसारभउव्विग्गा-संसार भयोद्विग्नाः, संसारात् यद् भयं तेन उद्विग्नाः-संसारभयोद्भ्रान्ताः, अर्थात्—संसार के दुःखों से होनेवाला भय, उससे उद्विग्न—खिन्न होनेवाले 'संसारभयोद्विग्न' कहलाते हैं। **अभिग्गहं** का अर्थ है—अभिग्रह। अभिग्रह प्रतिज्ञा विशेष का नाम है। **"मुंडा जाव पव्वइया"**— यहां पठित जाव पद से **"भवेत्ता अगाराओ अणगारियं"** इन पदों का ग्रहण करना चाहिये।

समाणा जाव अहासुहं" यहां पठित जाव पद **जावज्जीवाए छट्टछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवकम्मसंजमेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तते"** इन पदों का परिचायक है।

"छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो पोरिसीए जाव अडमाणा" यहां पठित जाव पद भी पीछे पढ़े गये पदों का संसूचक है ।

प्रस्तुत सूत्र में भगवान अरिष्टनेमि के छः शिष्यों मे से दो शिष्यों के साथ देवकी देवी के साथ हुई बात का वर्णन किया गया है । अब सूत्रकार देवकी देवी के मन में उठे एक संकल्प का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

मूल—तीसे देवतीते देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए० समुपण्णे, एवं खलु अहं पोलासपुरे नगरे अतिमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिता तुमण्णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि, सरिसए जाव नलकूब्बरसमाणे, नो चेव णं भरहे वासे अन्नातो अम्मयातो तारिसए पुत्ते पयाइस्संइ तं णं मिच्छा, इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ भरहे-वासे अन्नातो वि अम्मयातो एरिस जाव पुत्ते पयायाओ । त गच्छामि णं अरहं अरिट्ठ-नेमिं वंदामि नमंसामि, वदित्ता, णमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामीत्ति कट्टु एवं सपेहेति, संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसा सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी— लहुकरणप्पवरं जाव उवट्ठवेति, जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ । ते अरहा अरिट्ठनेमि देवति देविं एवं वयासी— से नूणं तव देवती ! इमे छ अणगारे पासेत्ता अयमेयारूवे अज्झत्थि० एवं खलु अहं पोलासपुरे नगरे अतिमुत्तेणं तं जाव णिगच्छसि, णिगच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं हव्वमागया, से मूणं देवति ! अत्थे समट्ठे ? हंता अत्थि !

छाया—तस्याः देवक्याः देव्याः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः० समुत्पन्नः—एवं खलु अहं पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तेन कुमारश्रमणेन बालत्वे व्याकृता-त्वं नु देवानुप्रिये ! अष्टपुत्रान् प्रजनिष्यसि, सदृशः यावत् नलकूबरसमानान्, नो चैव भारते वर्षे अन्या अम्बा तादृशः पुत्रान् प्रजनिष्यति, तन्मिथ्या, इदं प्रत्यक्षमेव दृश्यते भारते वर्षे अन्यतोऽपि अम्बायाः ईदृशः यावत् पुत्राः प्रजातास्तद् गच्छामि, अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दे, नमस्यामि, वन्दित्वा, नमस्कृत्य इदं चैतद्रूपं व्याकरणं प्रक्ष्यामीति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य, कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दायति, शब्दायित्वा एवमवादीत्- लघुकरणप्रवरं यानम् उपस्थापयन्ति, यथा देवानन्दा यावत् पर्युपास्ते । तत् अर्हन् अरिष्टनेमिः देवकी देवीमेवम-वादीत्-अथ नूनं तव देवकि ! इमान् षट् कुमारान् दृष्ट्वा अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः० समुत्पन्नः, एवं खलु अहं पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तेन तच्चैव यावत् निर्गच्छसि, निर्गत्य यत्रैव ममान्तिके शीघ्र-मागता, अथ नूनं देवकि ! अर्थः समर्थः ? हंत अस्ति !

पदार्थ—**तीसे**—उस; **देवतीते**—देवकी; **देवीए**—देवी के; **अयमेयारूवे**—इस प्रकार के; **अज्झत्थिए०**—आध्यात्मिक; **समुप्पण्णे**—समुत्पन्न—मानसिक संकल्प हुआ; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **अहं**—मैं (मुझे); **पोलासपुरे**—पोलासपुर नामक; **नगरे**—नगर में; **अइमुत्तेणं**—

अतिमुक्त; कुमारसमणेणं—कुमार श्रमण ने; **बालत्तणे**—बालकपने में; **वागरित्ता**—कहा था; **देवाणुप्पिए**—हे देवानुप्रिये !; **तुमण्णं**—तू; **अट्ठपुत्ते**—आठ पुत्रों को; **पयाइस्ससि**—जन्म देगी जो कि; **सरिसए**—एक जैसी आकृतिवाले होंगे; **जाव**—यावत्; **नलकूब्बरसमाणे**—वैश्रमणदेव के पुत्र के समान होंगे; **णं**—वाक्य-सौन्दर्य के लिये है; **च**—समुच्चयार्थक है; **एवं**—निश्चयार्थक है; **अन्नातो**—अन्य; **अम्मयातो**—माताएं; **तारिसए**—उनके समान; **पुत्ते**—पुत्रों को; **नो पयाइस्संति**—जन्म नहीं देगी; **तं णं मिच्छा**—वह कथन मिथ्या प्रमाणित हुआ; **इमं**—यह; **पच्चक्खमेव**—प्रत्यक्ष ही; **दिस्सइ**—दिखाई दे रहा है; **भरहे वासे**—भारतवर्ष में; **अन्नातो वि**—अन्य भी; **अम्मयातो**—माता से; **एरिस**—ऐसे—इनके समान; **जाव**—यावत्; **पुत्ते**—पुत्र; **पयायाओ**—उत्पन्न हुए हैं; **तं**—इसलिये; **गच्छामि**—मैं जाती हूं; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को; **वन्दामि**—वन्दना करती हूं; **णमंसामि**—नमस्कार करती हूं; **वंदित्ता**—वन्दना करके, **णमंसित्ता**—नमस्कार करके; **च**—समुच्चयार्थक है; तदनन्तर **इमं**—यह; **एयारूवं**—इस प्रकार के; **वागरणं**—प्रश्न; **पुच्छिस्सामि**—पूछूंगी; **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर; **एवं**—इस प्रकार; **संपेहेति**—विचार करती है; **संपेहित्ता**—विचार करके; तदनन्तर; **कोडुंबियपुरिसा**—सेवक जनो को, **सद्दावेइ**—बुलाती है; **सद्दावित्ता**—बुलाकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगी; **लहुकरणप्पवरं**—शीघ्र कार्य करने-वाले वृषभों से युक्त रथको; **जाव**—यावत्, राजपुरुष; **उवट्ठवेंति**—उपस्थित करते है; **जहा**—जिस प्रकार; **देवानन्दा**—देवानन्दा भगवान के पास गई; **जाव**—यावत्—देवकी देवी; **पज्जुवासइ**-भगवान की सेवा करने लगी तब; **ते**—वे; **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि भगवान; **देवतिं देविं**—देवकी देवी को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **देवती !**—हे देवकि ! **नूणं**—निश्चय ही; **से**—अथ, अब; **तव**—तेरे को; **इमे**—इन; **छ अणगारे**—छः साधुओं को, **पासेत्ता**—देखकर; **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का; **अज्झत्थि०**—संकल्प उत्पन्न हुआ; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **अहं**—मैं; **पोलासपुरे नगरे**—पोलासपुर नगर में; **अइमुत्तेणं**—अतिमुक्त कुमार श्रमण; **तं**—तू; **जाव**—यावत्; **णिगच्छसि**—घर से निकलती है, **णिगच्छित्ता**—निकलकर; **जेणेव**—जहां पर मै हूं वहां; **मम अन्तियं**—मेरे पास; **हव्वमागया**—शीघ्र आ गई है; **से**—अथ; **नूणं**—निश्चय ही; **देवती !**—हे देवकि !; **अत्थे**—अर्थ-वार्ता; **समत्थे**—ठीक है ? **हंता अत्थि**—हां, यह ठीक है।

मूलार्थ—उन श्रमणों के चले जाने के अनन्तर देवकी देवी के मन में यह निश्चयात्मक-विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार श्रमण ने बालावस्था में कहा था कि देवानुप्रिये! तू वैश्रमण कुमार के तुल्य और समानवर्णवाले आठ पुत्रों को जन्म देगी। तथा भारतवर्ष में अन्य माताएं इस प्रकार के पुत्रों को जन्म नहीं देंगी। वह कथन मिथ्या निकला, क्योंकि यह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओं से भी इस प्रकार के नलकूबर के समान पुत्र उत्पन्न हुए हैं। अतः मैं जाती हूं अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना नमस्कार करती हूं और

वन्दना नमस्कार करके यह प्रश्न पूछूंगी। इस प्रकार मन में विचार करके उसने सेवकों को बुलाया और उनसे कहा कि तुम शीघ्र चलनेवाले बैलों से सुसज्जित धर्म-रथ को तैयार करो। यह आज्ञा मिलते ही सेवकों ने शीघ्रगामी वृषभों से युक्त रथ को तैयार कर दिया। जिस प्रकार देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हुई थी उसी प्रकार देवकी देवी भी गई।

अरिहन्त अरिष्टनेमि देवकी देवी को देखते ही कहने लगे– हे देवकि। इन छह अनगारों को देख कर तुम्हारे मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ है कि मुझे पोलासपुर नगर में अतिमुक्तकुमार ने कहा था, यावत् वस्तुस्थिति जानने के लिये तुम घर से निकलकर बड़ी शीघ्रता के साथ मेरे पास आई हो, क्या यह बात सत्य है? भगवान के इस प्रश्न का समाधान करती हुई देवकी कहने लगी :—

भगवन्! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य है, मैं इसी उद्देश्य के लिये आपश्री की सेवा में उपस्थित हुई हूं।

व्याख्या—भगवान अरिष्टनेमि के शिष्यों को तीसरी बार अपने घर में आए देखकर देवकी देवी के हृदय में जो संकल्प उत्पन्न हुआ, उसका निश्चय करने के लिये वह भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित हुई तथा भगवान ने उस के हृदयगत संकल्प को जिन स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है, इन सब बातों का प्रस्तुत सूत्र में दिग्दर्शन कराया गया है। उनका पदार्थ और मूलार्थ में स्पष्टीकरण कर दिया गया है। "**अज्झत्थिए० समुप्पण्णे**" इस वाक्य में शून्य द्वारा—**कप्पिए-चिन्तिए-पत्थिए-मणोगए-संकप्पे** इन पदों का बोध होता है। आध्यात्मिक—आत्मगत को कहते हैं। कल्पित शब्द हृदय में उठनेवाली अनेकविध कल्पनायें, चिन्तित शब्द—बार-बार किया गया विचार। प्रार्थित शब्द—इस दशा का मूल कारण क्या है? इस जिज्ञासा का पुनः पुनः होना। मनोगतशब्द—जो विचार अभी मन में है प्रकट नहीं किया गया है, तथा संकल्प शब्द—सामान्य विचार—इस अर्थ का बोधक है।

"**अतिमुत्ते णं कुमार समणेणं**" का अर्थ है—अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण। अतिमुक्त कुमार श्रमण (सुकुमार शरीरवाला श्रमण, या कुमारावस्था बाला श्रमण) कंस कुमार के छोटे भाई थे। जिस समय कंस की धर्मपत्नी जीवयशा देवकी के साथ क्रीड़ा कर रही थी उस समय अतिमुक्त कुमार जीवयशा के घर में भिक्षा के लिये गये थे। आमोद-प्रमोद में मग्न जीवयशा ने अपने देवर को मुनि के रूप में देखकर उपहास करना प्रारम्भ किया। वह बोली—देवर! आओ तुम भी मेरे साथ क्रीड़ा करो, इस आमोद-प्रमोद में तुम भी भाग लो। इस पर मुनि अतिमुक्त कुमार जीवयशा से कहने लगे—जीवयशे! जिस देवकी के साथ तुम इस समय क्रीड़ा कर रही हो, इस देवकी के गर्भ

से आठ पुत्र पैदा होंगे। ये पुत्र इतने सुन्दर और पुण्यात्मा होंगे कि भारतवर्ष मे अन्य किसी स्त्री के ऐसे पुत्र नहीं होंगे। परन्तु इस देवकी का सातवां पुत्र तेरे पति को मार कर आधे भारतवर्ष का राज्य करेगा। इस प्रकार की बात देवकी देवी ने बचपन में सुनी थी। भगवान अरिष्टनेमि के छह शिष्यों को देखकर देवकी देवी को अतिमुक्त मुनि द्वारा कही गई बचपन की बात याद आ गई। तब उसके हृदय में संकल्प पैदा हुआ कि जब मैं पोलाशपुर नगर में थी और मैं बाल-अवस्था में ही थी उस समय अतिमुक्त मुनि ने मुझसे कहा था कि तू आठ पुत्रों की माता बनेगी। जो एक समान होंगे, रूप वर्ण, लावण्य की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर दिखाई नहीं देगा। वे ऐसे लगेंगे मानो धनपति देव के पुत्र हों और वह पुत्र ऐसे होंगे जिनको भारतवर्ष में दूसरी माता जन्म न दे सकेगी। देवकी कहने लगी समझ में नहीं आता ये क्या बात बनी? संयमशील मुनिराजों की वाणी तो कभी असत्य हो नहीं सकती, पर "**प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्**" जब मैं सेठानी सुलसा द्वारा जन्म दिए गए एक जैसी आकृति-त्वचा-रूप-लावण्य वाले बालक सामने देख रही हू तो कैसे समझूं कि अतिमुक्त मुनि ने जो कुछ कहा था वह सत्य ही है? देवकी अपनी विचारधारा से प्रभावित होती जाती थी, सोचने लगी—अतिमुक्त मुनि भी साधारण सन्त नहीं थे, वे अहिंसा सत्य के अमर साधक रहे हैं। उनकी वाणी आज तक कभी असत्य नहीं हुई है, फिर यह भी कैसे कह दू कि अतिमुक्त मुनि ने जो कुछ कहा है वह सर्वथा मिथ्या है। इस प्रकार विचारों के उतार चढाव में पड़ी हुई देवकी देवी को अन्त मे ध्यान आया कि अपनी नगरी के बाहिर उद्यान मे त्रिकालदर्शी भगवान अरिष्टनेमि विराजमान हैं। मुझे उनकी सेवा में जाना चाहिये और उनके सामने अपने हृदय की समस्त बात रख देनी चाहिये, और उनसे ही अपनी आशंका का समाधान करवाना चाहिये। यह निश्चय करने के बाद देवकी देवी एक रथ पर बैठकर भगवान की सेवा में उपस्थित हो जाती है। इस तथ्य को सूत्रकार ने "**एवं खलु पोलासपुरे नगरे—अतिमुत्ते णं कुमार समणेणं**" आदि पदों द्वारा प्रस्तुत किया है।

"**सरिसए जाव नलकूब्बरसमाणे**" यहां पठित **जाव** पद **सरित्तय सरिव्वया**··· आदि पदों का बोधक है। इनकी व्याख्या ९२ पृष्ठ पर की जा चुकी है।

कोडुंबिय पुरिसा—का अर्थ है कौटुम्बिक पुरुष। कौटुम्बिक पुरुष के दो अर्थ हैं—कुटुम्ब का व्यक्ति और सेवकजन। प्रस्तुत मे—इस का दूसरा अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये! रथादि को सुसज्जित करने का कार्य प्राय: सेवक जन ही किया करते हैं अतः दूसरा अर्थ ही अधिक युक्त प्रतीत होता है।

"**लहुकरणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति**" इन पदों से सूत्रकार ने एक धार्मिक रथ की ओर सकेत किया है। यह रथ किसी धार्मिक कार्य के उपस्थित होने पर काम में लाया जाता था। सांसारिक कार्यों के लिये इस का प्रयोग नहीं किया जाता था, इसीलिये इस का नाम धार्मिक रथ रखा गया है।

किसी प्रति में—**लहुकरणजुत्तजोइयं जाणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति**" ऐसा पाठ आता है। इस का अर्थ है—"**लघुकरणयुक्तयोजितम्, लघुकरणं—क्षिप्रकारित्वं, तेन युक्तोल घुकरणयुक्तः—दक्षपुरुषः तेन योजितम्—दक्षपुरुषयोजितम्-जाणप्पवरं—यानप्रवरं, धार्मिकरथमुपस्थापयन्ति**, अर्थात् लघुकरण शब्द शीघ्रता का बोधक है। उस से युक्त—कार्य को शीघ्र करने वाला, लघुकरण-युक्त कहा जाता है।

प्रस्तुत में रथ का प्रसंग होने से लघुकरण युक्त शब्द शीघ्रगामी बैलों का अथवा सर्वथा सतर्क और चुस्ती के साथ कार्य करने वाले सारथी का बोधक है जिस में शीघ्रगामी बैल जोड़ दिये गए हैं अथवा जिस पर कुशल—कार्यदक्ष सारथी बैठा है उस रथ को 'लघुकरण-युक्त-योजित' कहते हैं। यानप्रवर—धार्मिक रथ का नाम है। शेष पदों का अर्थ स्पष्ट ही है। **जाव** पद भगवती सूत्र में वर्णित रथ सम्बन्धी अवशिष्ट पदों का बोधक है।

"जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ..." इन पदों से सूत्रकार ने देवकी देवी की दर्शन-यात्रा को भगवती सूत्र में वर्णित देवानन्दा की दर्शनयात्रा से उपमित किया है। जैसे भगवती सूत्र के शतक नौ उद्देश ३३ में, धार्मिक रथ में बैठ कर भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रही देवानन्दा का वर्णन किया गया है, उसी तरह माता देवकी देवी धार्मिक रथ में बैठ कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों मे उपस्थित होती है, परन्तु भगवती सूत्र के अनुसार देवानन्दा भगवान महावीर की सेवा में पहुँचती है जबकि माता देवकी भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में गई थी। इसके अतिरिक्त और कोई भिन्नता नहीं है।

"सा नूणं तव देवती ! इमे" आदि पद भगवान अरिष्टनेमि के कहे हुए हैं। देवकी देवी अभी भगवान की सेवा में आई ही थी कि उसके कुछ कहने से पूर्व ही भगवान ने उसके हृदय की बात उसके सामने रखते हुए कहा—देवकि ! इन छह मुनियों को देख कर तेरे मन में ये विचार आया है कि जब मैं पोलाशपुर में थी उस समय अतिमुक्त मुनि ने कहा था कि तू ऐसे आठ पुत्रों की मां बनेगी जो एक जैसे लगेंगे, त्वचा-वर्ण-लावण्य से एक जैसे प्रतीत होंगे, भारत वर्ष में और जननी ऐसे पुत्रों को जन्म नहीं दे सकेगी, पर प्रतीत होता है कि यह बात असत्य प्रमाणित हुई। अतिमुक्त मुनि की बात मिथ्या है या सत्य ? इसी बात का निर्णय करने के लिये तू मेरे पास आ रही है ! देवकि ! यह सत्य है कि तुम इसी उद्देश्य से मेरे पास आई हो। आदि सभी बातें उक्त पाठ द्वारा सूत्रकार ने व्यक्त की है। यहां प्रश्न हो सकता है कि अपने सन्देह की निवृत्ति के लिये देवकी भगवान के पास गई और भगवान ने बिना पूछे ही उस के हृदयगत सन्देह को प्रकट कर दिया। तो क्या भगवान भी ज्योतिषियों की भान्ति लौकिक फलाफल का वर्णन किया करते थे ?

उत्तर में निवेदन है कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान अरिष्टनेमि ने जो कुछ कहा है वह केवल धार्मिक दृढ़ता लाने के उद्देश्य से कहा है। देवकी देवी का मन अतिमुक्त मुनि के प्रति अश्रद्धालु हो रहा है, साधु-जगत पर उसकी श्रद्धा कुछ शिथिल पड़ रही है। इसी शिथिलता को दूर करने के लिये ही भगवान ने उस की हृदयगत विचारणा को उसके बिना कहे उस के सामने प्रस्तुत किया है। इस के अलावा सूत्रकार इन पदों द्वारा भगवान की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता को भी प्रकट करना चाह रहे हैं। प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने देवकी देवी के हृदयगत संकल्प विकल्प का चित्रण किया है और देवकी देवी अपने हृदय की बात भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में निवेदन करने के लिये चल पड़ी और वहां उपस्थित हो गई आदि बातों का भी वर्णन किया है। तदनन्तर देवकी देवी के मानस को समाहित करने के लिये भगवान अरिष्टनेमि ने जो कुछ कहा, सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं :

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नगरे नागे नामं गाहावती परिवसइ अड्ढे० । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था । सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएणं वागरित्ता—एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ । तते णं सा सुलसा बालप्पभिति चेव हरिणेगमेसी भत्तया यावि होत्था । हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाता जाव पायच्छित्ता-उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जन्नुपायपडिया पणामं करेइ । ततो पच्छा आहारेति वा, नीहारेति वा, वरति वा । तते णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिते यावि होत्था । तते णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणं तुमं च दोवि सम-उउयाओ करेइ । तते णं तुब्भे दोवि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भ परिवहह, सममेव दारए पयाहह । तए णं सा सुलसा गाहावइणां विणिहायमावण्णए दारए पयाइति । ततेणं हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाते विणिहायमावण्णए दारए करतलसंपुडेणं गेण्हति, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ । तं समयं च णं तुमं पि णवण्हं मासाणं० सुकुमालदारए पसवसि । जे वि अ णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अंतिआओ करयलसंपुडेणं गेण्हति, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावयणीए अंतिए साहरइ । तं तव चेव णं देवइ ! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाते गाहावयणीए ।

छाया—एवं खलु देवानुप्रिये ! तस्मिन् काले, तस्मिन् समये भद्दिलपुरे नगरे नागो नाम गाथापतिः परिवसति । आढ्यः । तस्य नागस्य गाथापतेः सुलसा नाम्नी भार्या अभूत् । सा सुलसा गाथापत्नी बालत्वे चैव नैमित्तिकेन व्याकृता– एषा दारिका निन्दुः (मृतप्रसविणी) भविष्यति । ततः सा सुलसा बालप्रभृति चैव हरिनैगमेषिभक्तका चाभूत् । हरिनैगमेषेः प्रतिमां करोति, कृत्वा, कल्याकल्यं स्नात्वा यावत् प्रायश्चित्ता आर्द्र कपट-शाटिका महार्हां पुष्पार्चनां करोति, कृत्वा जानु-पादपतिता प्रणामं करोति । ततः पश्चाद् आहारयति वा, नीहारयति वा, वरयति वा । ततः तस्याः सुलसायाः गाथापत्न्याः भक्ति-बहु-मान-शुश्रूषया हरिनैगमेषिदेवः आराधितश्चापि अभूत् । ततः सो हरिनैगमेषिदेवः सुलसायाः गाथापत्न्याः अनुकम्पनार्थं सुलसां गाथापत्नीं त्वां च द्वेऽपि समर्तुके (समकाल-ऋतुमत्यौ) करोति । ततः युवां द्वेऽपि सममेव (समकालमेव) गर्भं गृण्हीथः (धारयथः) सममेव गर्भं परिवहथः, सममेव दारकौ प्रजायेथे (प्रजनयथः) । ततः सा सुलसा गाथापत्नी विनिघात-मापन्नान् दारकान् प्रजनयति । ततः सः हरिनैगमेषिदेवः सुलसायाः अनुकम्पनार्थं विनिघातमापन्नान् दारकान् करतलसम्पुटेन गृण्हाति, गृहीत्वा तवान्तिके समाहरति (स्थापयति), तस्मिन् समये च त्वमपि नवानां मासानां० सुकुमारदारकान् प्रसवयसि । येऽपि च देवानुप्रिये ! तव पुत्राः तेऽपि

च तव अन्तिकात् करतलसम्पुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा सुलसायाः गाथापत्न्याः अन्तिके समाहरति (स्थापयति), तस्मात् तव चैव देवकि ! एते पुत्राः, नो चैव सुलसायाः गाथापत्न्याः ।

पदार्थ—**खलु**—निश्चय ही; **एवं**—इस प्रकार; **देवाणुप्पिए !**—देवानुप्रिये ! **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **भद्दिलपुरे नगरे**—भद्दिलपुर नामक नगर में; **नागे नामं**—नाग नामक; **गाहावती**—गृहपति (सेठ); **परिवसइ**—निवास करता था जो कि; **अड्ढे०**—धनी था; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है; **तस्स नागस्स**—उस नाग, **गाहावइस्स**—सेठ की; **सुलसा नामं**—सुलसा नामक; **भारिया**—पत्नी; **होत्था**—थी। **सा**—वह; **सुलसा**—सुलसा नामक; **गाहावइणी**—गृहपति की पत्नी जो कि; **बालत्तणे**—बालावस्था में; **चेव**—ही (उससे) **निमित्तिएणं**—किसी नैमित्तिक ज्योतिषी ने; **वागरिता**—कहा था कि; **एसा**—यह; **दारिया**—लड़की; **णिंदू**—मृतप्रस्रविणी—जिसके बच्चे मरे हुए पैदा हों; **भविस्सइ**—होगी। **तते**—तदनन्तर; **सा सुलसा**—वह सुलसा; **बालप्पभिति चेव**—बालावस्था से ही; **हरिणेगमेसी**—हरिनैगमेषी देव की; **भत्तया-यावि-होत्था**—भक्ति किया करती थी, वह; **पडिमं**—प्रतिमा—मूर्ति; **करेइ**—बनाती है; **करित्ता**—मूर्ति बना कर; **कल्लाकल्लं**—प्रतिदिन; **ण्हाता**—स्नान करके; **जाव**-यावत्; **पायच्छित्ता**—प्रायश्चित्त करके; **उल्लपडसाडया**—आर्द्र पट तथा गीली धोती पहन कर; **महरिहं**—पूजा के योग्य; **पुप्फच्चणं**—पुष्पों द्वारा पूजा; **करेइ**—करती है; **करित्ता**—पूजा करके; **जन्नुपायपडिया**—अपने पांचों अंग नमाकर; **पणामं**—प्रणाम; **करेइ**—करती है; **ततो पच्छा**—उसके पश्चात् **आहारेति**—आहार करती है; **वा**—अथवा; **नीहारेति**—नीहार करती है; **वा**—अथवा; **वरति**—अन्य क्रियाओं में प्रवृत्त होती है। **तते**—तदनन्तर; **तीसे**—उस; **सुलसाए**—सुलसा; **गाहावइणीए**—उस सेठ की पत्नी की; **भत्ति**—भक्ति; **बहुमाण**—बहुविध सम्मान—अत्यधिक सत्कार; **सुस्सूसाए**—शुश्रूषा—सेवा से; **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी देव; **आराहिते**—आराधित—सिद्ध; **यावि होत्था**—हो गया। **तते**—तत्पश्चात्; **णं**—सौन्दर्यार्थ; **से**—वह; **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी **सुलसाए**—सुलसा; **गाहावइणीए**—सेठ की पत्नी के; **अणुकम्पणट्ठाए**—अनुकम्पा के लिये, उस पर दया करके; **सुलसं**—सुलसा; **गाहावइणी**—सेठानी; **च**—और; **तुमं**—तुमं; **दो वि**—दोनों को ही; **समउउयाओ**—सम ऋतुवाली; **करेति**—करता है—रजस्वला होने का समय एक कर देता है; **तते**—तदनन्तर; **तुब्भे**—तुम; **दो वि**—दोनों ने ही; **सममेव**—एक काल में में ही; **गब्भे**—गर्भ; **गिण्हह**—धारण किया, **सममेव**—एक ही काल में, **गब्भे परिवहह**—गर्भ का उद्वहन किया, **सममेव**—एक ही काल में, **दारए**—बालकों को, **पयायह**—जन्म दिया, **तए**—तदनन्तर, **सा**—वह, **सुलसा**—सुलसा; **गाहावइणी**—सेठानी, **विणिहायमावण्णए**—मरे हुए, **दारए**—बालकों को, **पयाइति**—जन्म देती है, **ततः**—तदनन्तर, **से**—वह, **हरिणेगमेसी देवे**—हरिनैगमेषी देव, **सुलसाए**—सुलसा पर, **अणुकंपणट्ठाए**—अनुकम्पा करने के लिये, **विणिहायमावण्णए**—मरे हुए, **दारए**—बालकों को, **करतलसंपुडेणं**—करतल के सम्पुट में, **गेण्हति**—ग्रहण करता है, **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके, **तव**—तुम्हारे; **अंतियं**—पास; **साहरइ**—उपस्थित करता है, **च**-और, **तं समयं**-उसी समय, **तुमं पि**-तुम भी, **णवण्हं मासाणं**—नौ मास से कुछ अधिक समय व्यतीत हो जाने पर, **सुकुमाल**—

दारए—सुकुमार बालकों को **पसवसि**—जन्म देती है। **देवाणुप्पिए!**—हे देवानुप्रिये ! **जे वि य**—जो भी, **तव पुत्ता**—तेरे पुत्र थे, **ते वि अ**—वे सब, **तव अंतिआओ**—तुम्हारे पास से, **करयलसंपुडेणं**—करतल के सम्पुट से, **गेण्हति**—ग्रहण करता है और ग्रहण करके, **सुलसाए गाहा०** सुलसा सेठानी के, **अन्तिए**—पास, **साहरति**—लाकर, स्थापित कर देता है, **तं चेव**—अत एव, **देवइ**—हे देवकि ! **एए**—ये छहों अनगार; **तव**—तुम्हारे, **पुत्ता**—पुत्र हैं, **सुलसाते गाहावइणीए**-सुलसा सेठानी के, **णो चेव**—नहीं हैं।

मूलार्थ—हे देवानुप्रिये ! उस काल तथा उस समय में भद्दिलपुर नामक नगर में नाग नामक सेठ निवास करता था। वह पूर्णतया सम्पन्न था। नागरिकों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। सेठ नाग की धर्मपत्नी का नाम सेठानी सुलसा थी। वह सेठानी सुलसा जब बालावस्था में थी, तब किसी नैमित्तिक ज्योतिषी ने उसके सम्बन्ध में कहा था कि यह लड़की निंदू होगी अर्थात् उसके मरे हुए बच्चे उत्पन्न होंगे। ज्योतिषी की बात सुन कर सुलसा ने बाल्यकाल से हरिनैगमेषी का आराधन करना आरम्भ कर दिया। उस ने हरिनैगमेषी देव की एक प्रतिमा बनवाई, प्रतिमा बनवाकर नित्यप्रति स्नान, अनिष्ट परिहारार्थ प्रायश्चित्त करके आर्द्र पट तथा साड़ी के साथ पूजा के योग्य फूलों के द्वारा वह उस प्रतिमा की पूजा किया करती थी, तदनन्तर दोनों जानुओं को भूमि पर टेककर उसको प्रणाम करती है। यह सब कुछ करने के बाद ही वह आहार ग्रहण करती, नीहार करती-शौचादि से निवृत्त होती तथा अन्य कामों में प्रवृत्त होती थी।

तदनन्तर सुलसा सेठानी की भक्ति-प्रचुर सत्कार तथा सेवा से हरिनैगमेषी देव आराधित हो गया, प्रसन्न हो गया। तब प्रसन्न हुए हरिनैगमेषी देव ने सुलसा सेठानी की अनुकम्पा निमित्त उस पर दयाभाव लाकर सुलसा के और तुम्हें, इस प्रकार दोनों को एक समय में रजस्वला होने की व्यवस्था कर दी अर्थात् देवमाया से तुम और सुलसा दोनों एक समय में रजस्वला बनने लगी। तदनन्तर तुम दोनों ने एक ही समय में गर्भ धारण किया, उसका परिवहन किया और एक ही समय में बालकों को जन्म दिया। तब सुलसा पर अनुकम्पा करके देव ने मृतक बच्चों को अपने दोनों हाथों से उठाकर तुम्हारे पास लाकर स्थापित कर दिया। उस समय तुमने भी कुछ अधिक नवमास व्यतीत होने पर सुकुमार बालकों को जन्म दिया। हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे बालक थे उनको

तुम्हारे पास से दोनों हाथों से उठाकर सेठानी सुलसा के पास पहुंचा दिया। अतः हे देवकि ! ये पुत्र तुम्हारे ही हैं, सेठानी सुलसा के नहीं हैं।

व्याख्या—भगवान अरिष्टनेमि ने देवकी देवी के समाधान के लिये सेठ नाग की धर्मपत्नी सेठानी सुलसा का निन्दू होना उसका हरिनैगमेषी देव की आराधना करना, देव का प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को सुलसा के पास पहुंचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुंचाना आदि जितनी बातें कथन की थी, उन्हीं का प्रस्तुत सूत्र में वर्णन दिया गया है। भाव स्पष्ट ही है। पदार्थ और मूलार्थ में उसे लिख भी दिया गया है।

"**अड्ढे०**" यहां दिये गये बिन्दु से जिन पदों की ओर संकेत करना सूत्रकार को इष्ट है उन का निर्देश पृ० ७७-७८ पर कर दिया गया है।

"**निमित्तएणं**" का अर्थ है—**नैमित्तिक**"। भविष्य की बात बतलानेवाले योग्य ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

णिंदू—का अर्थ है—**मृतप्रसविनी**, जिसके बच्चे मृत पैदा हों, उसे "निन्दू" कहते हैं। मृत बालक दो तरह के होते है—एक तो गर्भ से ही मरे हुए पैदा होनेवाले, दूसरे पैदा होने के बाद मर जानेवाले। प्रस्तुत प्रकरण मे निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणेगमेसी—का अर्थ होता है—**हरेः इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य सम्बन्धी नैगमेषी नाम देव इति** (कल्पसूत्र प्रदीपिका टीका,गर्भपरिवर्तन-प्रकरण) अर्थात् हरिनगमेषी शब्द के दो अर्थ है—१ हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश की इच्छा रखनेवाला देव तथा २—हरि-इन्द्र का नैगमेषी नामक सम्बन्धी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शक्रेन्द्र के सेनापति देव हैं।

"**ण्हाता जाव पायच्छित्ता**"—यहां पठित **जाव** पद **कयवलिकम्मा-कय-कोउय-मंगल**—इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ है—शरीर की स्फूर्ति के लिये जिसने तैल आदि का मर्दन कर रखा है अथवा जो काक आदि पक्षियों को अन्नादि दान रूप बलिकर्म से निवृत्त हो गया है अथवा जिसने देवता के निमित्त किया जानेवाला कर्म कर लिया है उसे **कृतबलिकर्मा** कहते हैं। दुष्ट स्वप्नादि के फल को निष्फल करने के लिये जिसने प्रायश्चित्त के रूप में—कौतुक-कपाल पर तिलक तथा अन्य मांगलिक कृत्य कर रखे हैं उसे "कृतकौतुक मगल-प्रायश्चित्त" कहा जाता है।

"**उल्ल-पड-साडया**" का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढ़ने के वस्त्र का नाम है। शाटिका-शब्द से नीचे पहरने की धोती या साड़ी का बोध होता है।

"**पुप्फच्चणं**" का अर्थ है—पुष्पार्चन। पुष्पों द्वारा की जानेवाली पूजा का नाम पुष्पार्चन है।

"**आहारेति वा, नीहारेति वा, वरति वा**" यहां पठित आहारेति का अर्थ है—आहार करती थी, भोजन खाती थी। **नीहारेति** का अर्थ है—शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होती थी। **वरति—वृ** धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, वरण करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना,

आच्छादन करना, ढकना, सेवा करना। प्रस्तुत में वृ धातु विचार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तब वरति का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करती थी। आहारेति आदि तीनों पदों से सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि सुलसा सेठानी के हृदय में हरिनैगमेषी देव के लिये अत्यन्त श्रद्धा थी, आस्था थी, निष्ठा थी। यहां तक कि जब तक वह अपने इष्टदेव की पूजा न कर लेती, उसका वन्दन-नमस्कार न कर लेती, तब तक वह न खाती थी न पीती थी, मुख जूठा नहीं करती थी। शुद्ध मुख से अपने आराध्य की आराधना किया करती थी। जब तक अपने उपास्य की उपासना न कर लेती तब तक वह शौच तक नहीं जाती थी। वैसे पूजन आदि कार्य शौच आदि से निवृत्त होने के अनन्तर किये जाने की परम्परा देखने में आती है, पर सुलसा सेठानी को तो अपने इष्टदेव के पूजन की इतनी अधिक लगन थी कि जब तक वह अपना इष्ट कार्य न करले तब तक शौच जाना भी उसे नहीं सूझता था। इसी प्रकार सुलसा जब तक हरिनैगमेषीदेव की पूजा नहीं कर लेती थी तब तक उसको अन्य कार्य करने का विचार ही नहीं आता था। इस विवेचन से हम यह कहना चाहते है कि सुलसा सेठानी के हृदय में हरिनैगमेषी देव के लिये अत्यधिक श्रद्धा थी, वह पूरी आस्था के साथ उसका पूजन किया करती थी।

"भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए"—का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान—अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदों द्वारा सूत्रकार ने हरिनैगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनों का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातों की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्व प्रथम साधक के हृदय में देव के लिये अनुराग होना चाहिये, तदनन्तर साधक के हृदय में देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

"गिण्हइ, परिवहइ, पयाहइ" ये तीनों—क्रियापद हैं। प्रथम का अर्थ है—ग्रहण किया अर्थात् धारण किया और दूसरे का अर्थ है—परिवहन किया और **पयाहइ** का अर्थ है—जन्म दिया।

प्रस्तुत सूत्र में आए हुए वर्णन से निम्नोक्त बातों का बोध होता है—सत्पुरुषों के मुख से निकला हुआ वचन अन्यथा नहीं होता। त्याग-वैराग्य की सजीव प्रतिमा महामान्य अतिमुक्त कुमार श्रमण ने देवकी देवी से कहा था कि तुम आठ अनुपम राजकुमारों को जन्म दोगी, यह सोलह आने सत्य-प्रमाणित हुआ। छह मुनियों को देखकर देवकी के मन में मुनि के वचन के मिथ्या होने की जो आशंका पैदा हो गई थी, उसे त्रिकालदर्शी भगवान अरिष्टनेमि ने दूर कर दिया और देवकी को स्पष्ट कह दिया कि छहों अनगार तुम्हारे ही पुत्र है, सुलसा के नहीं हैं। यह सारा परिवर्तन हरिनैगमेषी देव ने किया है। भगवान के इस कथन से भी अतिमुक्त कुमार श्रमण की वचनगत सत्यता का ही परिचय प्राप्त होता है।

सेठानी सुलसा जब बालावस्था में थी उसके सम्बन्ध में उस समय एक नैमित्तिक ने बतलाया था कि यह बालिका निन्दू होगी—मृत बच्चो को जन्म देगी। नैमित्तिक की यह भविष्यवाणी भी

सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई। सारांश यह है कि अनुभवी सत्पुरुषों की वाणी कभी निष्फल नहीं होती है वह समय आने पर सर्वथा सत्य सिद्ध हो जाती है।

मनुष्य के सतत प्रयत्न से दुष्कर से दुष्कर कार्य भी सुकर हो जाता है। मनुष्य में यदि साहस है, वह हतोत्साह नहीं है तो उसके लिये कुछ असंभव नहीं रहता है। वह अपने भागीरथ प्रयत्नों द्वारा असंभव से असंभव कार्य को भी संभव बना लेता है। सेठानी सुलसा इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। सेठानी-सुलसा को बचपन में किसी ज्योतिषी ने मृत-प्रस्रविनी—मृत-बच्चों को जन्म देनेवाली कहा था, परन्तु सुलसा निराश नहीं हुई। आशावादी बन कर उसने हरिनैगमेषी देव की आराधना आरंभ कर दी। देवोपासना में उसने अपना तन, मन, धन सब समर्पित कर दिया। पूर्ण तन्मयता तथा दृढ़ता के साथ देव की आराधना करके, उसने देव को आराधित कर लिया। यह सत्य है कि बच्चे तो उसके मरे हुए ही पैदा होते थे, पर देव-कृपा से उसके मरे बच्चे देवकी के पास पहुँचा दिये जाते थे और देवकी के सुकोमल बच्चे सुलसा के पास ला दिए जाते थे। यह सब कुछ होने पर भी सुलसा यही समझती थी कि मेरे जीवित बच्चे ही पैदा होते हैं और देव-कृपा से मुझे भी जीवित बच्चों की जननी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। सुलसा ने यह सौभाग्य अपने सतत-परिश्रम द्वारा ही प्राप्त किया था, अतः यह मानना पड़ेगा कि परिश्रम में बड़ा बल है वह असंभव को भी संभव बना देता है।

सेठानी सुलसा ने हरिनैगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे ये भली भान्ति सिद्ध हो जाता है कि देवता का किया हुआ अनन्य चिन्तन-साधक की कामना पूर्ण बनाने में सहायक बन सकता है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने में सशक्त होता है।

जो लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव पूजन करते हैं और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य-कर्म के सहयोगी होने के कारण पुत्रादि की प्राप्ति कर लेने पर भक्तिसातिरेक से देवदत्त ही मान लेते हैं। पुत्रादि की प्राप्ति में देव को उपादान कारण मान लेते हैं, वे भूल करते है, क्योंकि यदि पूर्वोपार्जित कर्म विद्यमान है तो उसके फल को प्रकट करने में देव निमित्त कारण बन सकता है। इसके विपरीत, यदि पूर्व कर्म सहयोगी नही है तो एक बार नहीं, अनेकों बार देवपूजा की जावे या देव की अनेकों मनौतिएं मान ली जायें तो देव कुछ नहीं कर सकता। वस्तुतः किसी भी कार्य की सिद्धि में देव केवल निमित्त कारण बन सकता है, उपादान कारण नही।

प्रश्न हो सकता है कि यदि कार्य-सिद्धि में देव निमित्त कारण बन सकता है और उसमें कोई सैद्धान्तिक बाधा नही है तो फिर स्थानकवासी परम्परा में देव-पूजन का निषेध क्यो किया जाता है? उत्तर में निवेदन है कि संसार में दो प्रकार की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। प्रथम संसार-मूलक, दूसरी मोक्ष-मूलक। संसार-मूलक प्रवृत्ति सांसारिक जीवन का पोषण करती है जबकि मोक्ष-मूलक संसार (जन्म-मरणरूप) के शोषण का तथा आत्मा को परमात्मा का पद प्राप्त करवाने का कारण बनती है। जैन-धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है, वह आध्यात्मिकता की प्राप्ति के लिये सर्वतोमुखी प्रेरणा प्रदान करता है। आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम लक्ष्य परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करना होता है।

सांसारिक जीवन उसके लिये बंधन रूप होता है, इसलिये वह उसे अपनी प्रगति में बाधक समझता है, सांसारिक अर्थात् जन्म-मरण रूप दुःख की सभी प्रवृत्तियां उसके लिये हेय एवं त्याज्य हैं। आध्यात्मिकता-प्रिय साधक आत्मा को परमात्मा बनाने में सहायक और मोक्ष मूलक प्रवृत्तियां को ही अपनाता है सांसारिकता की पोषक सामग्री से उसे कोई लगाव नहीं होता और इसीलिये वह उससे दूर रहता है। देव-पूजा सांसारिकता का पोषण करती है, या करने में सहायक होती है, इसीलिये स्थानकवासी जैन-परम्परा में देवपूजा का निषेध पाया जाता है।

देवपूजा सांसारिक जीवन का पोषण कैसे करती है? इसके उत्तर में इतना ही कहना है कि देवपूजा करनेवाला यही समझ कर पूजा करता है कि इससे मैं युद्ध में शत्रु को पराजित कर दूंगा, शासक बन जाऊंगा, मुझे पुत्र की प्राप्ति होगी, धन की प्राप्ति होगी, अतः अन्य परिवार आदि की उपलब्धि होगी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूजक व्यक्ति मोह-जाल को अधिकाधिक प्रसारित कर रहा है जो कि संसार-वृद्धि का कारण होता है, परन्तु यह मुमुक्षु प्राणी को इष्ट नहीं होता।

यदि कोई यह एक कहे कि देवपूजा से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा स्वर्ग की उपलब्धि होती है तो उसकी भ्रान्ति है। कारण यह है कि देव मे ऐसा करने की शक्ति नही होती। अशक्त से शक्ति की अभ्यर्थना का कुछ अर्थ नही होता। धनहीन से धन की आशा नही की जा सकती। दूसरी बात यह है कि जब देव स्वय मुक्ति मे नहीं जा सकता और देव की देवलोक की भवस्थिति पूरी होने पर—आयु की समाप्ति होने पर अनिच्छा होते हुए भी भूतल पर आना पड़ता है तो वह दूसरों को मुक्ति में कैसे पहुचा सकता है? तथा स्वर्ग का दाता कैसे हो सकता है?

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में उपस्थित हुई देवकी देवी को भगवान ने सुलसा सेठानी की जीवनी सुनाकर यह बताया कि यह छहों मुनि सुलसा सेठानी के पुत्र नहीं है, ये तो तुम्हारे ही पुत्र हैं। इस प्रकार भगवान के मुख से उक्त वृत्तान्त सुनकर देवकी ने जो कुछ किया अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

मूल—तते णं सा देवती देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठजाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ। ते छप्पि अणगारा वंदति, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता आगतपण्हुता, पप्फुतलोयणा, कंचुयपडिक्खित्तया, दरियवलयबाहा धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमसाए दिट्ठीए पेहमाणी २ सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वंदति णमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति, करित्ता वन्दति, णमंसति, वन्दित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणं दुरूहति, दुरूहित्ता जेणेव वारवती नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वारवतिं नयरिं अणुप्पविसति, अणुप्पविसित्ता जेणेव सते गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ २ जेणेव सते वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयति ॥

छाया—**ततः खलु सा देवकी देवी अर्हतोऽरिष्टनेमेः अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा, निशम्य हृष्ट-तुष्टयावद्हृदया अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्कृत्य यत्रैव ते षडनगाराः तत्रै-वोपागच्छति. उपागत्य तान् षडप्यनगारान् वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य आगतप्रस्नुता प्रप्लुत-लोचना कञ्चुकपरिक्षिप्ता दीर्णवलयबाहू धाराहत-कदम्ब-पुष्पमिव-समुच्छ्वसितरोमकूपा तान् षडप्य-नगारान् अनिमिषया दृष्ट्या प्रेक्षमाणा प्रेक्ष्य सुचिरं निरीक्षते, निरीक्ष्य वन्दते, नमस्यति वन्दित्वा, नमस्कृत्य यत्रैव अरहन् अरिष्टनेमिः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्वा आद-क्षिणं प्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्कृत्य तमेव धार्मिकं यानं दुरूहति, दुरूह्य यत्रैव द्वारवती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य द्वारवतीं नगरीमनुप्रविशति अनुप्रविश्य यत्रैव स्वकीयं वासगृहं, यत्रैव स्वकीयं शयनीयं तत्रैवोपागच्छइ, उपागत्य स्वके शयनीये निषीदति ।**

पदार्थ—**तते**—उस के पश्चात्, **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है, **सा देवती देवी**—वह दवकी देवी, **अरहओ**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के, **अंतिए**—पास, **एयमट्ठं**—इस अर्थ अर्थात् वृत्तान्त को, **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—विचार कर, **हट्ठतुट्ठ**—बड़ी हृष्ट और सन्तुष्ट हुई, **जाव**—यावत्, **हियया**—उस का हृदय खिल गया, **अरहं**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि भगवान को, **वंदति**—वदना करती है, **नमंसति**—नमस्कार करती है, **वंदित्ता**—वदना करके, **नमंसित्ता**—नमस्कार करके, **जेणेव**—जहां पर, **ते**—वे, **छ अणगारा**—छह साधु थे, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छति**—आ जाती है और **उवागच्छित्ता**—आने के पश्चात्, **ते**—उन, **छप्पि**—छहों ही, **अणगारा**—अनगारों अर्थात् साधुओं को, **वंदति**—वन्दना करती है, **णमंसति**—नमस्कार करती है, **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दन तथा नमस्कार करने के अनन्तर, **आगतपण्हुता**—पुत्र स्नेह के कारण उसके स्तनों में दूध आ गया, **पप्फुतलोयणा**—उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से आर्द्र हो गए, **कंचुयपरि-क्खितया**—हर्षाधिक्य से उसके कञ्चुक बन्धन टूट गए, **दरियवलयबाहा**—हर्ष और रोमांच से शरीर फूल जाने के कारण कंकण तंग हो गए, **धाराहय**—मेघ-धारा से आहत हुए, **कलंबपुप्फगंपिव**—कदम्बक नामक फूल की भान्ति, **समूसमियरोमकूवा**—उस की रोमराजि विकसित हो गई, **छप्पि**—छहों, **अणगारा**—साधुओं को, **अणिमिसाते**—निर्निमेष, **दिट्ठीए**—दृष्टि से, **पेहमाणी २**—देखती हुई २, **सुचिरं**—चिरकाल तक, **निरिक्खति २**—देखती है, **निरिक्खित्ता**—देख कर, **वंदति**—वन्दना करती है, **णमंसति**—नमस्कार करती है, **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **जेणेव**—जहां पर, **अरिहा**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमि**—अरिष्टनेमि भगवान थे, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छति २**—आती है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **अरहं**—अरिहन्त, **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार—**आयाहिणं**—दक्षिण की ओर से ले कर; **पयाहिणं**—प्रदक्षिणा; **करेति**—करती है; **करित्ता**—प्रदक्षिणा करके; **वंदति**—वन्दना करती है; **णमंसति**—नमस्कार करती है; **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना तथा नमस्कार करने के अनन्तर; **तमेव**—उसी; **धम्मियं**—धार्मिक कार्यों के उपयोग में लाया जाने वाले, **जाणं**—यान पर; **दुरूहति**—चढ़ जाती है, **दुरूहित्ता**—रथ पर

चढ़कर, जेणेव—जहां, **वारावती नगरी**—द्वारिका नगरी थी, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छति**—आजाती है, **उवागच्छित्ता**—आकर, **वारवति नयरि**—द्वारिका नगरी में, **अणुप्पविसित्ता—**प्रवेश करके, **सते गिहे**—जहां अपना घर था, **जेणेव**—जहां पर; **बाहरिया**—बाहिर की, **उवट्ठाणसाला**—उपस्थान शाला, बैठने की जगह थी, **उवागच्छइ**—आती है और **उवागच्छित्ता**—आकर, **धम्मियातो**—धार्मिक, **जाणप्पवरातो**—यान प्रवर-विशेष रथ से, **पच्चोरूहति**—नीचे उतरती है, उतर कर, **पच्चोरूहित्ता**—और नीचे उतर कर, **जेणेव**—जहां पर, **सते**—अपना, **वासगिहे**—वासगृह ; **जेणेव**—जहां पर घर में निवास किया जाता था, **सए**—अपनी, **सयणिज्जे**—शय्या थी, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छइ**—आजाती है, **उवागच्छित्ता**—वहां आकर, **सयंसि**—अपनी, **सयणिज्जंसि**—शयनीय शय्या पर, **निसीयति**—बैठ जाती है।

मूलार्थ—तदनन्तर वह देवकी देवी अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान के पास से उक्त वृत्तान्त को सुनकर और उस पर चिन्तन, मनन करने पर बड़ी प्रसन्न हुई, उसका हृदय कमल की भान्ति खिल गया। उसने अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान के चरणों में वन्दना नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर जहां छहों मुनि विराजमान थे, वहां पर आई, आकर उन छहों मुनियों को उसने वन्दन किया, नमस्कार किया। तदनन्तर निर्निमेष दृष्टि से उन साधुओं को वह देखने लगी। उनको देखते-देखते उसके स्तनों में दूध भर आया, नेत्र खिल उठे, आंखों से हर्षाश्रु निकलने लगे, हर्ष के मारे कंचुक के बन्धन टूटने लगे, भुजाओं के आभूषण तंग हो गये, उसकी रोमावली मेघ-धारा से अभिताड़ित हुए पुष्प की भाँति खिल उठी।

देवकी देवी लगातार मुनियों को देखती ही चली गई। अन्त में उसने उन मुनियों को वन्दन किया, नमस्कार किया. वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर जहां पर अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे वहां आ जाती है, आकर भगवान को दक्षिण ओर से प्रारम्भ करके तीन प्रदक्षिणा देती है, वन्दन, नमस्कार करती है तदनन्तर उसी धार्मिक रथ पर सवार होकर जहाँ द्वारिका नगरी थी वहां आती है, नगरी में प्रवेश करती है जहां अपना घर था, उपस्थानशाला थी वहां आजाती है। रथ से नीचे उतरती है उतरकर जहाँ अपना वासगृह था, शैया थी वहाँ आकर उस पर बैठ जाती है।

व्याख्या—अपनी जिज्ञासा की पूर्ति हो जाने पर तथा भगवान अरिष्टनेमि से यह सुनकर कि यह छहों मुनि तुम्हारे ही पुत्र हैं सेठानी सुलसा के नहीं हैं, देवकी देवी के हृदय में जो हर्ष उत्पन्न हुआ उसका ही दिग्दर्शन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। मूल पाठ का अर्थ पदार्थ तथा मूलार्थ में लिखा जा चुका है, वह स्पष्ट ही है।

"हट्ठतुट्ठ जाव हियया" यहां पठित जाव पद **"चित्तमाणंदिया-पीइमणा-परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणा'** इन पदों का बोधक है। इन शब्दों का अर्थ पृष्ठ १०० पर लिखा जा चुका है।

"आगतपण्हुता—आगत प्रस्नुता, आगतं प्रस्नुतं यस्याः सा, स्वीयपुत्रदर्शनेन संजातस्तन्य-प्रस्रवणा—अर्थात् जिसके स्तनों में दूध आ गया है, उस नारी का नाम 'आगत प्रस्नुता' है।

"पप्फुतलोयणा"—प्रप्लुते आनन्दजलेन लोचने यस्याः सा—अर्थात् जिसके नयनों में आनन्द-जनित आंसू आ गये हैं, वह 'प्रप्लुतलोचना' कही जाती है।

"कंचुय-पडिक्खित्तया"—कञ्चुकपरिक्षिप्तका, स्वपुत्रावलोकन-जनितानन्दप्रकर्षेण स्थूल-शरीरतया त्रुटितकञ्चुकक्शेत्यर्थः—अर्थात् अपने पुत्रों को देखने से अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होने के कारण शरीर के फूलने से जिस नारी के कंचुक (अगिया) के बन्धन टूट गये हैं। उसे 'कंचुक-परिक्षिप्तका' कहते है।

दरियवलयबाहा— दीर्णवलयौ हर्षरोमाञ्चस्थूलत्वात् स्फुटित-कटकौ बाहू भुजौ यस्याः सा— अर्थात् अत्यन्त हर्ष के कारण रोमाञ्चित तथा स्थूल हो जाने के कारण जिस नारी के भुजाओं के आभूषण तथा हाथ की चूड़ियां टूटने लगी या तंग होने लगीं हों उसे 'दीर्ण-वलय-बाहू' कहते हैं।

धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा—धारया वर्षाधाराभिः आहतं यत् कदम्ब-पुष्पकं-कदम्बकुसुमं तदिव समुच्छ्वसित-रोमकूपा, समुच्छ्वसितः पुलकितः रोमकूपः—रोम राजिर्य-स्याः सा, धारानिपाताहतं कदम्बपुष्पमेकस्मिन्नेव काले विकसति तथैवेयं पुलकित-सकल-रोमा जाता—

अर्थात्—वर्षा की धारा पड़ने से जिस प्रकार कदम्ब पुष्प* एक साथ ही कुसुमित हो जाते हैं उसी प्रकार देवकी देवी के शरीर के सभी रोम पुलकित हो गए थे।

"आगतपण्हुता" आदि विशेषणों द्वारा सूत्रकार ने माता के हृदय में पुत्रों के लिये स्नेह और वात्सल्य की कितनी मात्रा होती है? और माताएं अपने पुत्रों को देखकर किस प्रकार आनन्द-विभोर हो उठती है? इन तथ्यों का परिचय कराया है।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने निर्देश किया है कि देवकी देवी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में पूर्णतया समाहित हो कर वापिस अपने वासगृह में आ गई और आकर अपनी शय्या पर बैठ गई। इसके अनन्तर देवकी देवी ने क्या विचार किया? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल— तते णं तीसे देवतीते देवीए अयं अब्भत्थिए४ समुप्पणे—एवं खलु अहं सरि-सते जाव नलकूब्बरसमाणे सत्तपुत्ते पयाता, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणते समुब्भूते, एसवि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदते हव्व-मागच्छइ, तं धन्नातो णं ताओ अम्माओ जासिं मण्णे णियगकुच्छिसंभूतयाइं थणवुद्धलुद्ध-

---

* कदम्ब नाम का एक वृक्ष होता है, इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब बादल गरजते हैं तब इसमें कलियां लगती हैं (संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ)

याइं—महुर०समुल्लावयाइं मंमणपजंपियाइं थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाति मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइ देंति, समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिते, अहं णं अधण्णा, अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एक्कतरमपि न पत्ता, ओहय० जाव झियायई ।

छाया—ततस्तस्याः देवक्याः देव्याः अयमाध्यात्मिकः (चिन्तितः, प्राथितः, मनोगतः, संकल्पः) समुत्पन्नः। एवं खलु अहं सदृशः यावद् नलकूबरसमानान् सप्तपुत्रान् प्रयाता, नो चैव मया एकस्यापि बालत्वं समनुभूतम्। एषोऽपि कृष्णो वासुदेवः षण्णां षण्णां मासानां ममान्तिके पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छति। तत् धन्यास्ताः अम्बाः, यासां मन्ये निजककुक्षिसंभूतानि स्तनदुग्धलुब्धानि मधुरसमुल्लापानि मन्मन-जल्पितानि स्तनमूलकक्षदेशभागमभिसंचरन्ति, मुग्धकानि पुनश्च कोमलकमलोपमाभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा उत्संगे निवेशितानि (सन्ति) ददति, समुल्लापकान् समधुरान् पुनः पुनः मंजुलभणितानि, अहमधन्या, अपुण्या, अकृतपुण्या। एषामेकतरमपि न प्राप्ता! उपहतमना यावत् ध्यायति।*

पदार्थ—**णं**—वाक्य-सौन्दर्य के लिये है; **तते**—उसके पश्चात्; **तीसे**—उस; **देवतीते देवीए** देवकी देवी को; **अयं**—यह इस प्रकार का; **अज्झत्थिए**—आत्माश्रित—आत्मगत विचार; **चिंतिते**—चिंतित-स्मरण रूप; **पत्थिए**—प्राथित—अभिलाषा रूप; **मणोगए**—मनोगत; **संकप्पे**—संकल्प; **समुप्पण्णे**—उत्पन्न हुआ; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **अहं**—मैंने; **सरिसते**—एक समान; **जाव**—यावत्; **नलकूब्बरसमाणे**—धनपति कुबेर के पुत्र के समान; **सत्तपुत्ते**—सात पुत्रों को; **पयाता**—जन्म दिया पर; **मए**—मैंने; **एगस्स वि**—एक के भी; **बालत्तणते**—बालत्व—बालभाव का; **नो समणुभूते**—अनुभव नहीं किया; **एसवि य णं**—यह, **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव भी; **छण्हं-छण्हं**—छह-छह; **मासाणं**—महीनों के अन्तर से; **ममं**—मुझे; **पायवन्दते**—पादवन्दन के लिये; **हव्वमागच्छइ**—शीघ्र आता है; **तं**—अतः; **मण्णे**—मैं मानती हूं, **धन्नाओ**—धन्य है; **ताओ**—वे; **अम्मयाओ**—माताएं; **यासिं**—जिनके (पुत्र); **णियगकुच्छिसंभूतयाइं**—अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए हैं; **थणदुद्धलुद्धाइं**—स्तन दुग्ध के लोभी हैं; **महुरसमुल्लावयाइं**—मधुर संलाप करते हुए; **मंमणपजंपियाइं**—तोतले और थोड़े वचन के बोलनेवाले है; **थणमूलकक्खदेसभागं**—स्तन के मूल और कक्ष प्रदेश में; **अभिसरमाणाति**—लटकते हुए विचरनेवाले है; **मुद्धाइं**—मुग्ध—अत्यन्त अव्यक्त विज्ञानवाले हैं, **य**—और; **पुणो-पुणो**—बार-बार; **कोमलकमलोवमेहिं**—कमल के समान कोमल; **हत्थेहिं**—हाथों से; **गिण्हिऊण**—ग्रहण करके; **उच्छंगे**—अंक में; **णिवेसियाइं**—स्थापित हैं; **देंति**—सुनाते हैं (क्या); **समुल्लावते**—समुल्लाप वचन; **सुमहुरे**—सुमधुर; **पुणो-पुणो**—बार-बार; **मंजुलप्पभणिते**—अति कोमल वचनों को; **अधन्ना**—मैं अधन्य हूं; **अपुण्णा**—पुण्यहीन हूं; **अकयपुण्णा**—कोई शुभ कार्य न करनेवाली हूं; **एत्तो**—इस प्रकार के पुत्रजन्म के सुखों में से; **एक्कतरमपि**—

* इत्युपहतमनःसंकल्पा भूगतदृष्टिका करतले पर्यस्तितमुखी ध्यायतीत्यर्थः।

एक भी सुख; **न पत्ता**—मुझे प्राप्त नहीं हुआ; **ओहय०**—उदासीन मनवाली; **जाव**—यावत् चिन्ता करती हुई; **झियायइ**—यह सोचती है।

मूलार्थ—तदनन्तर उस देवकी देवी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने वैश्रमण के पुत्रों के समान एक जैसे सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु मैंने एक पुत्र की भी बाल-लीला का रसास्वादन नहीं किया। यह कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आता है, अतः मैं मानती हूं कि वे माताएं धन्य हैं, जिन की सन्तति निज कुक्षि से उत्पन्न है, स्तनदुग्ध की लोभी है, मधुर तथा अव्यक्त और तुतलाती वाणी के बोलनेवाली है, स्तनों के कक्षाप्रदेश में विहरण करने वाली है, भद्रक है, सरल है और जिसको माता ने कमल के समान कोमल हाथों से उठा कर अपनी गोदी में बैठा रखा है तथा जो माताओं को मनोहर और मधुर वचन सुनाती है, किन्तु मैं अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं तथा अकृतपुण्या हूं, क्योंकि मुझे उपर्युक्त पुत्रजनित सुखों में से एक भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। इस प्रकार उदासीन मन से देवकी देवी आर्तध्यान करने लगी।

व्याख्या—अपनी गोदी में बैठे हुए बच्चे की तोतली वाणी को सुन कर तथा उसके साथ उसी प्रकार के सम्भाषण करके एक माता को कितना हर्ष होगा? और इस प्रकार की बालक्रीडा के लिये प्रत्येक माता के हृदय में कितनी उत्कण्ठा होती है? इस विषय की कल्पना देवकी देवी के उक्त कथन से भली भान्ति हो जाती है। पुत्र को उत्पन्न करके जिस माता ने उसकी बाल-चेष्टाओं का अनुभव नहीं किया, सचमुच ही वह माता अधन्य है, अकृतपुण्य है, सन्तानजन्य लोक के परम मधुर और अनिर्वचनीय सुख से मानो वह वंचित ही रह गई है। यह लौकिक सत्य भी देवकी देवी के जीवन से पूर्णतया चरितार्थ हो जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे इन्हीं बातों को ले कर प्रकाश डाला गया है। जिन्हें मूलार्थ में लिख दिया गया है।

"**अज्झत्थिते ४**"—यहां दिए गए ४ के अंक द्वारा सूत्रकार ने "**चितिते-पत्थिते-मणोगते-संकप्पे**" इन पदों की ओर संकेत किया है। इन का अर्थ पृष्ठ १०९ पर लिखा जा चुका है।

"**सरिसते जाव नलकूब्बर समाणे**" यहां पठित **जाव** पद "**सरित्तये-सरिये**"...आदि पदों का संसूचक है। इन पदों का अर्थ पृष्ठ ९३पर लिखा जा चुका है। यहां ये पद द्वितीयान्त हैं, **अतः** विभक्ति के अनुसार अर्थ की योजना कर लेनी चाहिये।

"**कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं**" इन पदों द्वारा सूत्रकार ने यह ध्वनित किया है कि त्रिखण्डाधिपति, वासुदेव श्रीकृष्ण छह-छह-महीनों के पश्चात् माता देवकी देवी को वन्दन करने आया करते थे। यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि महाराज कृष्ण माता देवकी देवी को प्रतिदिन

वन्दन न करके छह-छह महीनों के अनन्तर वन्दन क्यों किया करते थे ? वन्दन तो प्रतिदिन करना चाहिये था ?

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। वे यहां सर्वथा मौन हैं। तथापि परम्परा के आधार पर उक्त प्रश्न के उत्तर में निम्नोक्त बातें कही जा सकती हैं—

महाराज श्री कृष्ण के राज्य में कोई षाण्मासिक उत्सव होता होगा, उसके उपलक्ष्य में कृष्ण महाराज अपनी माता देवकी देवी को वन्दन करने जाया करते होंगे।

महाराज श्री कृष्ण के पिता महाराज वसुदेव की अनेकों रानियां थीं। कृष्ण सबको क्रमशः वन्दना किया करते थे। इस कारण देवकी देवी को वन्दन करने के लिये उनकी छह मास के पश्चात् बारी आती होगी।

महाराज श्री कृष्ण वासुदेव तीन खण्ड के नाथ थे। उन्हें अपने जीवन में अनेक युद्ध लड़ने पड़े थे, वे राज्यकार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते थे, अतः प्रतिदिन माता देवकी देवी के चरणों में उपस्थित होना उनके लिये कठिन था। जब कभी उन्हें मौका मिलता माता के चरणों में उपस्थित होकर उन्हें वन्दन कर लेते थे। यदि कभी अत्यधिक व्यस्त होने के कारण उन्हें अवसर नहीं मिलता था तो छह मास के बाद तो वे निश्चितरूप में माता के चरणों में उपस्थित होते ही थे। मातृ-चरणों में अपना मस्तक रखकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे। छह महीनों के पश्चात् एक दिन का भी उल्लघन नही किया जाता था, निश्चित और व्यवस्थित रूप से महाराज श्री कृष्ण देवकी देवी के चरणों का स्पर्श कर लिया करते थे।

"जासिं मण्णे"—यहां पठित **जासिं** यह पद सर्वनाम है और "जिन माताओं की" इस अर्थ का बोधक है। अर्थ की संगति के लिये **"जासिं"** के आगे "अपच्चानि" का अध्याहार किया जाता है। **"जासिं"** से **"अपच्चानि"** का अध्याहर कर लेने से—जिन माताओं की सन्तान यह अर्थ हो जायेगा और **"णियग-कुच्छिसंभूतयाइं"** से लेकर **"उच्छंगे-णिवेसियाइं"** यहा तक के पद "अपच्चाणि" के विशेषण है। इन विशेषणों का अर्थ सम्बन्धी चिन्तन इस प्रकार है—

"णियगकुच्छिसंभूतयाइं"—निजककुक्षेः सम्भूतानि निजककुक्षिसंभूतानि—स्वोदरजातानीति—अर्थात् अपने पेट से पैदा होनेवाली सन्तान—'निजक कुक्षि-संभूत' कहलाती है।

"थणदुद्धलुद्धयाइं"—स्तनदुग्धे लुब्धकानि तानि स्तनदुग्धे संजातस्पृहाणि, अर्थात् माताओं के स्तनों का दूध पीने के लिये जो लालायित हो रहे है, उन्हे 'स्तन-दुग्ध-लुब्धक' कहते हैं।

"महुरसमुल्लावयाइं"—मधुरः चित्ताकर्षकः समुल्लापकः बालभाषणं येषां तानि। स्तनपानार्थं बालाः मनोहरैः सम्भाषणैर्मातृरनुकूलयन्तीतिभावः, अर्थात्—जिन बच्चों के समुल्लाप मधुर हैं या जिन बच्चों की तोतली बोली हृदय को आकर्षित करनेवाली होती है, वे बच्चे 'मधुर समुल्लापक' कहलाते हैं।

"मंमणपजंपियाइं" मन्मनम्—अव्यक्तम्, ईषत्स्खलितं प्रजल्पितं—भाषणं येषां तानि—अर्थात् बालकों का प्रजल्पित—कथन वाणी-विलास अव्यक्त है अच्छी तरह से समझ में नहीं आ रहा है और

ईषत्स्खलित है, कुछ लड़खड़ाया हुआ है, अथवा जिन बच्चों का वाणी-विलास **मम्मण*** स्वरूप है। भाव यह है कि बच्चे जब दूध पीने के लिये इच्छुक या उत्सुक होते हैं तो उस समय **'मम्मण'** इस तरह की अव्यक्त और लड़खड़ाई हुई भाषा का प्रयोग किया करते हैं। जो बच्चे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं उनको ही 'मम्मण-प्रजल्पित' कहा जाता है।

"थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाति"—स्तनमूलात् कक्षादेशभागमभिसंचरन्ति, अभिगच्छन्ति—अर्थात् जो बच्चे स्तनों के मूल भाग से लेकर कक्ष (काँख) तक के भाग में अभिसरण करते हैं—भ्रमण करते है, उन बच्चों को सूत्रकार ने—**"थणमूलकक्खदेसभागं-अभिसरमाणाति"** इन पदों से व्यक्त किया है।

"मुद्धयाइं" व्यक्तविज्ञानानि—भद्रकाणि—अर्थात् जिन के वचनों का ज्ञान अभी बहुत अव्यक्त है, अप्रकट है या जो भद्र हैं सर्वथा सरल है, वे बच्चे "मुग्धक" कहलाते हैं।

"कोमल-कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं"—कोमल-कमलोपमाभ्यां मृदुकमलतुल्याभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा उत्संगे—क्रोड़े निवेशितानि—उपवेशितानि—अर्थात् कमल के समान कोमल हाथों के द्वारा पकड़कर या उठाकर जो बच्चे गोद में बिठा लिए गए है, उन बच्चों की ओर सूत्रकार ने उक्त पदों द्वारा संकेत किया है।

"समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिते" यह इस क्रियापद के कर्म हैं। उक्त क्रियापद का अर्थ है—देते है। प्रस्तुत में प्रसंग बच्चों के वाणी विलास का है, अतः इस का अर्थ होगा—सुनाते है, अर्थात् सूत्रकार कहना चाहते है कि देवकी देवी कह रही है कि वे माताएं धन्य हैं जिन माताओं की सन्तान अपनी कुक्षि से सम्भूत है, स्तनलुब्ध है, मधुरसंलापक है, मम्मणप्रजल्पित है, स्तनमूल से लेकर कक्ष तक के भाग में अभिसरणशील है तथा कमल के समान कोमल हाथों द्वारा जिसको उठा कर गोद मे बैठा रखा है। देवकी फिर कह रही है वे माताएं धन्य हैं जिन की सन्तान **देति**—देती है अर्थात् सुनाती है। प्रश्न हो सकता है क्या सुनाती है? इस प्रश्न का उत्तर **'समुल्लावते'** आदि पदों द्वारा दिया गया है। इन का अर्थ इस प्रकार है—

"समुल्लावते सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिते"—समुल्लपकान् सुमधुरान् पुनः पुनः प्रभणितान्, मञ्जुलं मधुरं प्रभणितं भणितिर्येषु ते तथा तान्, अर्थात् समुल्लापक बाल-भाषण का नाम है। विशेष रूप से जो सुमधुर है, चेतोहर है वचन-विलास जिस में उसे मंजुलप्रभणित कहा जाता है। **"सुमहुरे तथा पुणो पुणो मंजुलप्पभणिते"** ये दोनों **"समुल्लावते'** इस पद के विशेषण हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में मधुर और मंजुल शब्दों के प्रयोग में पुनरुक्ति की आशंका हो सकती है, परन्तु वृत्तिकार अभयदेव सूरि इस का समाधान करते हुए कहते हैं कि सम्भ्रम में यह कहा गया है, अतः यहां पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिये—

इह सुमधुराणीत्यभिधाय यन्मञ्जुलप्रभणितानीत्युक्तं तत्पुनरुक्तं न दुष्टसम्भ्रमभणितत्वादस्येति।

* मम्मणं "इत्यव्यक्तध्वनिरूपं प्रजल्पितं—भाषणं येषां तानिति। देति' यह क्रिया पद है। इसका कर्त्ता "अपत्यानि" है।

"**अधन्ना, अपुण्णा, अकयपुण्णा**" ये तीनों पद विशेषण हैं। इन तीनों का अर्थ-भेद इस प्रकार है—**अधन्या**—जिसे धन्य नहीं कहा जा सकता। **अपुण्या**—जिसके पास पुण्य की सम्पत्ति नहीं है। **अकृतपुण्या**—जिसने पुण्योत्पादक कोई आचरण नहीं किया है।

प्रस्तुत सूत्र में देवकी देवी के हृदय में उठ रहे संकल्प-विकल्पों का चित्रण किया गया है। इसके अनन्तर जो कुछ हुआ, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाते जाव विभूसिते देवतीते देवीए पायवंदते हव्वमागच्छइ। तते णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवतीए देवीए पायग्गहण करेति, करित्ता देवतीं देवीं एवं वयासी—

अण्णदा णं अम्मो! तुब्भे ममं पासेत्ता हट्ठ जाव भवह, किण्णं अम्मो! अज्ज तुब्भे ओहय० झियायह?

तए णं सा देवती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु अहं पुत्ता! सरिसए जाव समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्सवि बालत्तणे अणुब्भूते। तुमं पि य णं पुत्ता! ममं छण्हं छण्हं मासाण अंतियं पायवन्दते हव्वमागच्छसि। तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवतिं देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो! ओहय० जाव झियायह। अहण्णं तहा घत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सतीति कट्टु देवतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता ततो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ नवरं।

छाया—इदं च कृष्णः वासुदेवः स्नातः यावद् विभूषितः देवक्याः देव्याः पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छति। ततः सः कृष्णो वासुदेवः देवकीं देवीं पश्यति, दृष्ट्वा देवक्याः देव्याः पादग्रहणं करोति, कृत्वा देवकीं देवीमेवमवादीत्—

अन्यदा अम्ब! यूयं मां दृष्ट्वा हृष्टा यावद् भवथ! किमम्ब! अद्य यूयमुपहतयावद् ध्यायथ?

तदा सा देवकी देवी कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु अहं पुत्र! सदृशः यावत् समानान् सप्तपुत्रान् प्रजाता (प्रजनितवती), नो चैव मया एकस्यापि बालत्वमनुभूतम्। त्वमपि च पुत्र! मम षण्णां-षण्णां मासाणामन्तिके पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छसि। तद् धन्याः ताः अम्बाः यावद् ध्यायामि!

ततः स कृष्णो वासुदेवः देवकीं देवीमेवमवादीत्–मा यूयमम्ब ! उपहतयावद् ध्यायथ। अहं तथा यतिष्ये यथा मम सहोदरः कनीयान् भ्राता भविष्यतीति कृत्वा देवकीं देवीं ताभिरिष्टाभिः वाग्भिः समाश्वासयति, समाश्वास्य ततः प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य यथा--अभयः, नवरम्।

पदार्थ–**च**–समुच्चय अर्थ में आता है, **णं**–वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त होता है, **इमं**–इधर, **कण्हे-वासुदेवे**–कृष्ण वासुदेव, **ण्हाते**–स्नान से निवृत्त हो, **जाव**–सभी प्रकार से, **विभूसिते**–विभूषित होकर, **देवतीए देवीए**–देवकी देवी के; **पायवंदते**–चरण वन्दन के लिये, **हव्वमागच्छइ**–शीघ्र आ जाते हैं। **तते**–तत्पश्चात्, **से कण्हे वासुदेवे**–वे कृष्ण वासुदेव, **देवइं देविं**–देवकी देवी को; **पासइ**–देखते हैं और, **पासित्ता**–देखकर, **देवतीए-देवीए**–देवकी देवी के, **पायग्गहणं**–चरण वन्दन, **करेति**–करते हैं, **करित्ता**–चरण वन्दना करके, **देवतीं देवीं**–देवकी देवी को, **एवं**–इस प्रकार, **वयासी**–कहने लगे, **अम्मो**–हे माता ! **अन्नदा**–अन्य दिनों में तो, **तुब्भे**–आप, **ममं**–मुझे, **पासेत्ता**–देखकर, **हट्ठ जाव भवह**–हर्षित यावत् खुशी के मारे फूली नहीं समाती थी, परन्तु **अम्मो** !–हे माता ! **अज्ज**–आज, **तुब्भे**–आप, **किण्णं**–किस कारण से, **ओहय**–उदासीन, **जाव**–यावत्, **झियायह**–चिन्तामग्न हो रही हैं।

तए–तदनन्तर, **सा**–वह, **देवती देवी**–देवकी देवी, **कण्हं वासुदेवं**–कृष्ण वासुदेव को, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी। **एवं**–इस प्रकार, **खलु**–निश्चयार्थक है, **पुत्ता**–हे पुत्र ! **अहं**–मैंने, **सरिसए**–एक जैसे, **जाव**–यावत्, **समाणे**–नल कूबर के समान, **सत्त पुत्ते**–सात पुत्रों को, **पयाता**–जन्म दिया, परन्तु **मए** मैंने, **एगस्सवि**–एक बालक के भी, **बालत्तणे**–बचपन का; **णो चेव णं**–नहीं; **अणुब्भूते**–अनुभव किया। **तुमंपि**–तुम भी; **पुत्ता**–हे पुत्र ! **छण्हं-छण्हं**–छह छह, **मासाणं**–महीने के पश्चात्; **मम अंतियं**–मेरे पास; **पायवंदते** पादवन्दन के लिये; **हव्वमागच्छसि**–शीघ्र आते हो, शीघ्र ही चले जाते हो, **तं**–इसलिये, मैं सोचती हूं कि; **धन्नाओ**–धन्य हैं, **ताओ**–वे; **अम्मयातो**–माताएं, **जाव**–यावत् धन्य हैं जो अपने पुत्रों की बालक्रीड़ा को देखती हैं; अतः हे पुत्र ! मैं उसके अभाव के कारण; **झियामि**–चिन्तित हो रही हूं–आर्तध्यान कर रही हूं। **तत**.–तदनन्तर, **कण्हे वासुदेव**–कृष्ण वासुदेव; **देवतीं देवीं**–देवकी देवी को, **एवं वयासि**–इस प्रकार कहने लगे; **अम्मो**–हे मातः ! **तुब्भे**–आप; **मा**–मत, **ओहय०**–उदासीन हों, **जाव**–यावत्; **झियायह**–आर्त ध्यानी बनकर चिन्ता करो; **अहण्णं**–मैं; **तहा**–उस प्रकार; **घत्तिस्सामि**–यत्न करूंगा; **जहा**–जिससे; **ममं**–मेरा; **कणीयसे**–छोटा; **सहोदरे**–सहोदर-मांजाया; **भाउए**–भाई; **भविस्सति**–होगा; **त्तिकट्टु**–ऐसा कहकर; **देवतिं देविं**–देवकी देवी को; **ताहिं**–उन; **इट्ठाहिं वग्गूहिं**–इष्ट वचनों द्वारा; **समासासेति**–आश्वासन देते हैं; **समासासित्ता**–आश्वासन देकर; **ततो**–तदनन्तर, वहां से; **पडिनिक्खमति**–चल देते हैं, और; **पडिनिक्खमित्ता**–चलकर, **जेणेव**–जहां पर; **पोसहसाला**–पौषधशाला थी, **तेणेव**–वहां पर, **उवागच्छइ**–आते है और, **उवागच्छित्ता**–आकर, **जहा**–जैसे, **अभओ**–अभयकुमार तेला करते हैं वैसे तेला करते हैं, **नवरं**–पर इतना अन्तर है।

मूलार्थ—उस समय कृष्ण वासुदेव स्नान करके सभी प्रकार के वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर देवकी देवी की चरण-वन्दना करने के लिये शीघ्र पधार जाते हैं। तब वे कृष्ण वासुदेव देवकी देवी को देखकर देवकी देवी के चरणों में वन्दन करते हैं। वन्दन करने के अनन्तर इस प्रकार निवेदन करने लगे—

मातः ! अन्य दिनों में तो आप मुझे देखकर हर्षित होती थीं, पर आज क्या कारण है जो आप उदासीन होकर आर्तध्यान में लग रही हैं ?

अपने पुत्र की बात सुनकर माता देवकी देवी कहने लगी कि 'हे पुत्र ! मैंने एक जैसी आकृतिवाले नलकूबर के समान आठ पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु उनमें से एक बालक का भी मैंने बालभाव नहीं देखा। हे पुत्र ! तुम भी छह-छह महीने के अनन्तर मुझे वन्दन करने के वास्ते मेरे पास आते हो।'

आज मेरा मन दुखी है, इसीलिये मैं सोच रही हूं कि वे माताएं धन्य हैं जो अपने पुत्रों की बाल-लीलाओं का अनुभव करती हैं। इसलिये हे पुत्र ! आज मैं उदासीन तथा चिन्तामग्न हूं।'

तदनन्तर कृष्णवासुदेव देवकी देवी को इस प्रकार कहने लगे—हे मातः ! आप किसी प्रकार भी चिन्ता मत करें। मैं ऐसा यत्न करूंगा जिससे मेरा मां जाया छोटा भाई और उत्पन्न हो जायेगा। इस प्रकार कह कर तथा देवकी देवी को इष्ट वचन विलास से आश्वासन देते हैं, आश्वासन देने के पश्चात् कृष्ण महाराज वहां से निकलते हैं, निकल कर जहां पौषधशाला है वहां आते हैं, आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया था उसी प्रकार वे भी तेला आरंभ कर देते हैं, परन्तु इतना इस में अन्तर है।

व्याख्या—देवकी देवी भगवान अरिष्टनेमि के मुख से सारा वृत्तान्त सुनने और उक्त छहों पुत्रों को देखने के पश्चात् घर में आने पर पुत्र-स्नेह से विह्वल हो गई। उसे ध्यान आया कि वैसे तो मैं सात पुत्रों की जन्म-दात्री हूं, सात पुत्रों को जन्म देने का मुझे सौभाग्य मिला है जो वर्ण-त्वचा एवं लावण्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं, आज जगत में कोई दूसरा उनकी समता करनेवाला नहीं है पर मुझे उनमें से किसी एक बालक के भी प्यार भरे बचपन को देखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। देवकी पुनः कहने लगी कि मैं तो पुण्यहीन हूं, मैंने कोई ऐसा पुण्यकर्म नहीं किया जिससे मुझे ऐसा सुअवसर प्राप्त होता। कहने को मैं कृष्ण की मां हूं, सात पुत्रों की जननी हूं, पर मैं तो कहती हूं कि मैं किसी की भी मां नहीं हूं। जब मैंने मां का कोई कार्य ही नहीं किया, फिर मां कहलाने का मुझे

अधिकार भी क्या है ? कृष्ण मेरे पास अवश्य आते हैं, पर वे छह महीनों के अनन्तर आने पर भी मेरे पास ठहरते नहीं हैं। आते पीछे हैं जाने की तैय्यारी पहले होती है। सौ बातों की एक बात कि मेरे जैसा पुण्यहीन जीवन किसी नारी का नहीं होगा। इस तरह शोकग्रस्त होकर आर्त्तध्यान करने लगी।

इधर देवकी देवी इस प्रकार आर्तध्यान कर रही थी, उधर श्रीकृष्ण उन्हें वहां चरण-वन्दन करने के लिये आ गए। श्रीकृष्ण ने अपनी माता को शोकातुर देखा तो आश्चर्यचकित रह गए। सर्वप्रथम मातृचरणों में प्रणाम किया, तदनन्तर माता से सादर निवेदन करने लगे—मां ! आज क्या बात है ? पहले मै आया करता था, तो आप प्रसन्नता से झूम उठती थीं, पर आज तो उदासीनता ने आप को घेर रखा है। न मेरे आने की आप को खुशो हुई है—और न मुझे आशीर्वाद ही प्राप्त हुआ है। यह उदासीनता क्यों पैदा हुई है ?

तब माता देवकी ने अपने मनोगत विचारों को श्रीकृष्ण के सामने रखा। वे समस्त विचार ऊपर की पंक्तियों में लिखे जा चुके हैं। माता के चिन्तातुर होने के कारण को सुन कर श्रीकृष्ण ने उसकी निवृत्ति के लिये प्रयत्न करने का पूरा-पूरा आश्वासन दिया और मातृ-चरणों में विनय-पूर्वक निवेदन किया :-

मां ! आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मेरे होते हुए आप आर्त्तध्यान में बैठें, उदासीनता को धारण करें, यह मेरे लिये लज्जा का स्थान है। मा ! आप सर्वथा निश्चिन्त रहें, मैं प्रयत्न करूंगा कि मेरे अवश्य छोटा भाई हो। आप के हृदय की कामना अवश्य पूर्ण होगी। यदि पुत्र अपनी जननी की मनोकामना भी पूरो न कर सके तो वह पुत्र कहलाने का अधिकारी ही नहीं हो सकता। जननि ! बिलकुल मन को शान्त रखो ! प्रसन्नता के साथ रहो मैं जाता हूं, आप की इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

योग्य और भाग्यशाली सन्तान भी जन्म-जन्मान्तर के किसी विशिष्ट पुण्य के प्रताप से प्राप्त होती है। बिना सौभाग्य के आज्ञाकारी विनीत पुत्र की प्राप्ति का होना सर्वथा असम्भव है। देवकी देवी को जहां अपने दुर्भाग्य का खयाल आ रहा है वहां उस का सौभाग्य भी हमारे सामने है। वह त्रिखण्डाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण की जननी है। ऐसे पुत्र की मां बन कर उसने मातृजीवन की महत्ता को चार चान्द लगा दिये है।

श्रीकृष्ण बड़े विनीत और मातृभक्त महापुरुष थे। माता की सुख शान्ति के लिये सभी सम्भव उपाय करने में उन्होंने कभी कसर नहीं रखी। वस्तुतः पुत्र वही है जो माता-पिता का पूर्ण भक्त होता है। उनके कष्टों को दूर करने तथा उनको प्रसन्न रखने के लिये वह अधिक से अधिक जो कुछ भी कर सकता है करने के लिये सदा तैयार रहता है।

जैनागम स्थानांग सूत्र में वासुदेव को 'कर्म-उत्तम-पुरुष' माना गया है। प्रस्तुत वर्णन के अनुसार जब 'कर्म-उत्तम-पुरुष' भी मातृभक्ति से पराङ्‌मुख नहीं हुए और उन्होंने मातृ-हृदय को प्रसन्न बनाये रखने के लिये तन मन का पूर्णतया योगदान किया, तब वर्तमान युग के साधारण व्यक्तियों को सेवा भगवती की आराधना करने के लिये विशेष कहने की आवश्यकता ही

नहीं रहती। उन को तो माता की सेवा-भक्ति से कभी भी पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। माता-पिता की सेवा करनेवाला पुत्र ही देव, गुरु और धर्म की आराधना करनेवाला होता है।

कृष्ण महाराज माता देवकी देवी को आश्वासन देने के अनन्तर सीधे पौषधशाला में गये। वहां पहुंच कर हरिनैगमेषी देव की आराधना करने के लिये तीन दिन का लगातार उपवास प्रारम्भ कर दिया।

"ण्हाते जाव विभूसिते" "हट्ठ जाव भवइ" "ओहय० जाव झियायह" "सरिसए जाव समाणे" अम्मयाओ जाव झियामि" इन वाक्यों में पठित **जाव** पद जिन पदों के संसूचक हैं उनके अर्थ पीछे यथा स्थान पर निर्दिष्ट किये जा चुके हैं।

"पोसहसाला" का अर्थ है—पौषधशाला। जहां बैठ कर पौषधव्रत किया जाता है उसे पौषधशाला कहा जाता है। जैसे भोजन करने के स्थान को भोजनशाला, पढ़ने के स्थान को पाठशाला कहते हैं इसी प्रकार पौषधशाला के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिये। जिससे आध्यात्मिक विकास को पोषण अर्थात् पुष्टि मिले उसे पौषध कहते हैं। यह श्रावक का एक धार्मिक अनुष्ठान विशेष है, यह पौषधशाला में बैठ कर प्रायः अष्टमी चतुर्दशी पक्खी आदि पर्व-तिथियों में सम्पन्न होता है।

"जहा अभओ" का अर्थ है--जैसे अभय कुमार। भाव यह है कि जिस प्रकार 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' में अभय कुमार का वर्णन आता है वहां बताया गया है कि अभय कुमार ने अपने मित्र देव को आराधित करने के लिये तेला किया था, इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी तेला किया। दोनों के तेले में सामान्य सा अन्तर यह है कि अभयकुमार ने अपने मित्र देव का आराधन किया था जबकि श्रीकृष्ण ने हरिनैगमेषी देव का। इसी अन्तर को ध्वनित करने के लिये ही **'नवरं'** -इतना विशेष है—(इतना अन्तर है) इस पद का प्रयोग किया गया है। इस अन्तर का परिचय सूत्रकार अगले सूत्र में स्वयं करा रहे है।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि माता देवकी देवी को महाराज श्रीकृष्णने पूरा-पूरा आश्वासन दिया और पौषधशाला में चले गये। वहां जाकर उन्होंने अपनी तीन दिन की तपस्या आरम्भ कर दी। इस के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं परिणमइ, जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

तते णं से हरिणेगमेसी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिति णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुते सहोदरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्क जाव अणुप्पत्ते अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वतिस्सइ, कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदति, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगते।

तते णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव देवती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवतीए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एवं वयासी— होहिति णं अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

छाया—**हरिनैगमेषिणः** अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति यावदञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्—**इच्छामि देवानुप्रिय !** सहोदरं कनीयसं भ्रातृकं वितीर्णम् ।

ततः स हरिनैगमिषी कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—भविष्यति देवानुप्रिय ! तव देवलोकच्युतः सहोदरः कनीयान् भ्रातृकः। स उन्मुक्तो यावत् अनुप्राप्तोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्डः यावत् प्रव्रजिष्यति । कृष्णं वासुदेवं द्वितीयमपि तृतीयमपि एवं वदति, वदित्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततः सः कृष्णः वासुदेवः पौषधशालायाः प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव देवकी देवी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य देवक्याः देव्याः पादग्रहणं करोति, कृत्वा एवमवादीत्—भविष्यति अम्ब ! मम सहोदरः कनीयान् भ्रातृकः इति कृत्वा देवकीं देवीं ताभिरिष्टाभिर्यावदाश्वासयति, आश्वास्य च यस्याः दिशः प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ।

पदार्थ—**हरिणेगमेसिस्स**—हरिनैगमेषी को उपलक्षित करके; **अट्ठमभत्तं**—तेला; **पगेण्हइ**—ग्रहण करते है; जाव—यावद्; **अंजलिं**—अञ्जलि—करबद्ध; **कट्टु**—करके; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—बोले; **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय !; **इच्छामि**—मैं चाहता हूं कि आप; **सहोदरं**—मांजाया; **कणीयसं**—छोटा; **भाउयं**—भाई; **विदिण्णं**—दें ।

तते—तदनन्तर; **से**—वह; **हरिणेगमेसी**—हरिनैगमेषी देव; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—कहने लगे; **देवाणुप्पिया** ! हे देवानुप्रिय !; **होहिति**—हो जायेगा; **तव**—तेरे; **देवलोयचुते**—देवलोक से च्यव कर; **सहोदरे**—मांजाया; **कणीयसे**—छोटा; **भाउए**—भाई, किन्तु; **से**—वह; **उम्मुक**—बालावस्था में ही मुक्त होकर; **जाव**—यावत्; **अणुप्पत्ते**—युवावस्था को पाकर; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि भगवान के; **अंतियं**—पास; **मुण्डे**—मुण्डित; **जाव**—यावत्; **पव्वतिस्सइ**—दीक्षित हो जायेगा; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **दोच्चंपि**—दो बार; **तच्चंपि**—तीसरी बार; **एवं**—इस प्रकार; **वदइ**—कहता है, और **वइत्ता**—कहकर; **जामेव दिसं**—जिस दिशा से; **पाउब्भूते**—आया था; **तामेव दिसं**—उसी दिशा में; **पडिगते**—चला गया ।

तते—तदनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है; **से**—वह; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **पोसहसालाओ**—पौषधशाला से; **पडिनिक्खमइ**—निकलते हैं और; **पडिनिक्खमित्ता**—वहां से निकलकर; **जेणेव**—जहां पर; **देवती देवी**—देवकी देवी थी; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—

आते हैं; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **देवतीए देवीए**—देवकी देवी के; **पायग्गहणं करेति**—चरणों में वन्दना करते हैं; **करित्ता**—और वन्दना करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **अम्मो !**—हे जननि !; **ममं**—मेरे, **सहोदरे**—सहोदर; **कणीयसे**—छोटे; **भाउए**—भाई, **होहिति**—हो जायेगा; **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कहकर; **देवतिं देविं**—देवकी देवी को; **ताहिं इट्ठाहिं**—उन इष्ट अभिलषित वचनों द्वारा; **जाव**—यावत्; **आसासेइ**—आश्वासन देते हैं और **आसासिता**—आश्वासन देकर; **जामेवदिसं**—जिस ओर से; **पाउब्भूते**—आये थे; **तामेव दिसं**—उसी ओर; **पडिगते**—चले गए।

मूलार्थ- कृष्ण वासुदेव ने हरिनैगमेषी देव की आराधना के लिये अष्टम भक्त-तेला किया। यावत् देव के प्रसन्न और प्रकट हो जाने पर श्रीकृष्ण वासुदेव हाथ जोड़कर उनके चरणों में निवेदन करने लगे—हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि आप मुझे एक छोटा सहोदर भाई दें। तब हरिनैगमेषी देव ने श्रीकृष्ण वासुदेव को उत्तर देते हुये कहा कि हे देवानुप्रिय ! देवलोक से च्यव कर तुम्हारे एक छोटा सहोदर भाई हो जायेगा, परन्तु वह बालक जब बड़ा होगा—यौवन अवस्था को प्राप्त होगा, तब अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित होकर दीक्षित हो जायेगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव को दो बार तीन बार कहकर हरिनैगमेषी जिस दिशा से आया था उसी दिशा की ओर चला गया।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण पौषधशाला से बाहर निकले और निकलकर जहां देवकी देवी थी, वहाँ पर आये और देवकी देवी के चरणों में वन्दन करके बोले—माता! मेरा छोटा सहोदर भाई हो जायेगा। इस प्रकार देवकी देवी को इष्ट-प्रिय वचनों द्वारा आश्वासन दिया और आश्वासन देकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर चले गये।

व्याख्या—पिछले सूत्र मे बताया गया था कि जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया था वैसे ही श्रीकृष्ण महाराज ने भी तेला किया। वहां यह भी बताया गया था कि दोनों के तेलों में थोड़ा अन्तर था। प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने सर्वप्रथम उस अन्तर की ओर सकेत किया है, सूत्रकार ने 'हरिणेगमेसिस्स'' इस पद द्वारा उस अन्तर को स्पष्ट कर दिया है।

ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र के प्रथम अध्याय में लिखा है कि—अभयकुमार* ने पूर्वसंगतिकर (जो पहले मित्र रह चुका है) देव का आराधन किया था, तेले की तपस्या द्वारा उसका आह्वान किया था, तदनन्तर उससे अपना अभीष्ट कार्य सम्पन्न करवाया था, किन्तु श्रीकृष्ण ने लगातार तीन दिनों

* देखो, 'ज्ञाता-धर्म कथाङ्ग सूत्र' प्रथम अध्ययन अभयकुमार द्वारा देवाराधन प्रकरण।

के तप द्वारा हरिनैगमेषी देवता का आह्वान किया और उसका आराधन किया था, इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। अभयकुमार के अष्टम-भक्त (तेले) द्वारा उसके पूर्व संगतिक देव का आसन कम्पित होना और उसके पास उपस्थित होना आदि सभी बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र में किया गया है। जिस प्रकार अभयकुमार के तपोऽनुष्ठान से पूर्व-संगतिक देव का आसन कम्पित हुआ था और वह अभयकुमार के पास आया था, इसी प्रकार श्रीकृष्ण महाराज के तपोऽनुष्ठान से हरिनैगमेषी का आसन प्रकम्पित हुआ और वह उनके पास उपस्थित हुआ। आदि बातों की समानता के कारण ही सूत्रकार ने पिछले सूत्र में "**जहा अभओ**" वाक्य प्रयुक्त किया है।

दिव्यरूपधारी हरिनैगमेषी देव के प्रकट होने पर कृष्ण महाराज ने अपने अनुष्ठान का उद्देश्य बतलाते हुए उनसे हाथ जोड कर विनम्र निवेदन किया—हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि मुझे एक छोटा भाई मिल जाये, अतः आप मुझे एक छोटा भाई देने की कृपा करें। श्रीकृष्ण को उत्तर देते हुए—हरिनैगमेषी देव बोले—देवानुप्रिय ! देवलोक से एक देवता आयुष्य पूर्ण करके तुम्हारे घर में जन्म लेगा और वह तुम्हारा भाई बनेगा, पर युवावस्था आने पर तुम्हारे घर में नहीं रह सकेगा। भगवान अरिष्टनेमि की जन-कल्याणकारिणी अमृतमयी वाणी उस पर ऐसा अपूर्व प्रभाव डालेगी कि वह भरी जवानी में ही मोह-माया के बंधनों को तोड़कर भगवान के चरणों में दीक्षित हो जायेगा—साधु बनेगा। हरिनैगमेषी देव ने अपनी यह बात एक बार या दो बार नहीं, प्रत्युत तीन बार श्रीकृष्ण महाराज के सामने दोहराई, ताकि श्रीकृष्ण का हृदय पूर्णतया समाहित हो जाये। अपनी बात तीसरी बार कहने के अनन्तर-हरिनैगमेषी देव जिधर से आया था उधर ही चल दिया।

हरिनैगमेषी देव के द्वारा पूर्णतया समाहित हो जाने पर त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण महाराज ने पौषध का पारण किया और पौषधशाला से निकलकर वे जहां माता देवकी विराजमान थी वहां आए और मातृ-चरणों में सविनय वन्दना करने के अनन्तर कहने लगे—

मां ! चिन्ता और निराशा को छोडो, किसी भी प्रकार की उदासीनता मन में न रखो। हरिनैगमेषी देव की मैंने आराधना की थी। उन्होंने कहा है कि तुम्हारा एक छोटा सहोदर भाई जन्म लेगा और तुम्हारी जननी की समस्त कामनायें पूर्ण हो जायेंगी।

शान्तिदायक एवं हृदयप्रिय वाणी द्वारा श्रीकृष्ण ने माता देवकी को आश्वासन देकर उनके अशान्त हृदय को शान्त किया। माता के हृदय को प्रफुल्लित कमल की भांति खिला जानकर तथा अन्य सन्तोष-जनक वचनों द्वारा मां को शान्ति पहुंचा कर श्रीकृष्ण अपनी माँ से विदा लेते हैं और वहां से वापिस लौट कर अपने राज्यकार्यों में लग जाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में मुख्यतया श्रीकृष्ण की अनन्य मातृ-भक्ति श्रद्धा और विश्वास द्वारा की गई साधना की सफलता तथा देव-शक्ति में भविष्यत्कालीन बातों को प्रकट करने की क्षमता, इन तीनों बातों का वर्णन उपलब्ध होता है। प्रस्तुत में इन बातों पर भी कुछ विचार कर लेते हैं:—

श्रीकृष्ण महाराज के विशाल—एवं अनन्त वैभव से सभी परिचित हैं। तीन खण्डों में उनका निष्कण्टक राज्य था, सोलह हजार नरेश उनके चरण-सेवक थे, अन्य दास-दासियों की तो गणना ही क्या ? आकाश के देव भी उनकी सेवा किया करते थे। यह सब कुछ होने पर भी श्रीकृष्ण सर्वथा

निरभिमानी महापुरुष थे। अस्मिता—अहंभाव उनके निकट नहीं था। यही कारण था कि अवसर आने पर स्वयं सेवक बनने में भी उन्होंने कभी सकोच नहीं किया। प्रस्तुत सूत्र इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है। माता देवकी देवी की चिन्ता को दूर करने और उसके अभीष्ट को सिद्ध करने के लिये उन्होंने अपने सब कार्य छोड़ दिए, अपने सुख-दु:ख को भुला दिया और बड़ी श्रद्धा तथा आस्था के साथ उन्होंने तपस्या का कठोर पथ अपनाया, तेला करके हरिनैगमेषी देवता की आराधना की। इस प्रकार आज्ञाकारी, सुशील, विनीत पुत्र बनकर उन्होंने क्रियात्मक अनन्य मातृ-भक्ति तथा मातृ-सेवा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया। मातृभक्ति, मातृ-सेवा तथा माता की इच्छा की पूर्ति करने का जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है? यह समझने के लिये प्रस्तुत सूत्र का कथानक पर्याप्त है। पुत्र-जगत को इस कथानक से शिक्षा प्राप्त करके मातृभक्ति एवं मातृसेवा की महत्ता को समझना चाहिये और इसे जीवन में अंगीकार करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो कार्य मनुष्य को अशक्य प्रतीत होता है, कठिन दिखाई देता है उसको यदि श्रद्धा और विश्वास के साथ किया जाए तो वह भी एक दिन अवश्य सफल होता है। उसके सम्पादन में मनुष्य तो क्या देवता भी सहायक बन जाते हैं। वस्तुत: पूरी लगन तथा अखण्ड निष्ठा से की गई साधना कभी निष्फल नहीं जा सकती, वह सदा सफल होती है। प्रस्तुत सूत्र में इस सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है।

यहां लिखा है कि श्रीकृष्ण ने तेला किया और हरिनैगमेषी देव को प्रसन्न कर लिया। केवल तीन दिनों में देव की आराधना कर लेना, उसे प्रसन्न कर लेना बच्चों का खेल नहीं है। बहुत कठिन कार्य है, पर जिस साधना के पीछे विश्वास और श्रद्धा की महान शक्ति काम कर रही हो वह साधना कभी निष्फल नहीं होती। वह देवताओं के सिंहासनों को कम्पित करके ही छोड़ती है। वर्षों साधना करने पर असफल रहनेवाले साधक वर्ग को प्रस्तुत कथानक से शिक्षा प्राप्त करके अपनी आस्था और निष्ठा को सशक्त बनाने का प्रयास करना चाहिये!

श्री नन्दी सूत्र मे ज्ञान के ५ प्रकार लिखे गए हैं :—

१. आभिनिबोधिक ज्ञान (मति) २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मन:पर्यवज्ञान और ५. केवल ज्ञान। इसमे तीसरा ज्ञान अवधि ज्ञान है। इसका अर्थ है इन्द्रियों की और मन की अपेक्षा न रखते हुए केवल आत्मा के द्वारा मूर्त-पदार्थों का बोध प्राप्त करनेवाला ज्ञान। यह ज्ञान मुख्यतया दो प्रकार का होता है। पहला भव-प्रत्ययिक है। दूसरा—क्षायोपशमिक। जो अवधिज्ञान जन्म लेते ही प्रकट होता है जिसके लिये अहिंसा-संयम आदि अनुष्ठानों की अपेक्षा नहीं होती, ऐसा जन्मसिद्ध ज्ञान भव-प्रत्ययिक-अवधिज्ञान कहलाता है। अहिंसा संयम तपादि कठोर साधनों के बल पर जो अवधिज्ञान प्राप्त होता है उसका नाम क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है। इनमें से भव-प्रत्ययिक अवधिज्ञान देवों और नारकीय जीवों को होता है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि हरिनैगमेषी देव ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा था कि हे देवानुप्रिय! देवलोक से च्यव कर आपके एक सहोदर छोटा भाई होगा, परन्तु वह युवा होने पर भगवान अरिष्ट-नेमि के चरणों में दीक्षित हो जायेगा। देवलोक से च्युत होना और भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होना आदि भविष्यत्कालीन जितनी भी बातें कहीं हैं ये सब हरिनैगमेषी देव ने अपने

अवधिज्ञान द्वारा ही कही हैं। सूत्रकार ने इस कथानक द्वारा देवों में भविष्यकालीन बातों को प्रकट करने की क्षमता प्रकट की है।

"पगेण्हइ जाव अंजलि" **"उम्मुक जाव अणुप्पत्ते"** **"मुंडे जाव पव्वतिस्सइ"** **"इट्ठाहिं जाव आसासेति"** यहां पढ़े गए **जाव** पद अन्य स्थानों पर दिए गए मध्यगत पाठों के बोधक हैं, इस पद्धति से सूत्रकार ने पाठों को संक्षिप्त कर दिया है। ग्रन्थ का शरीर बड़ा न हो इस दृष्टि को आगे रख कर ही इस पद्धति को अपनाया गया है।

"हरिणेगमेसी"—हरिनैगमेषी"—यह शब्द हरिनैगमेषी नामक देवता का बोधक है। यह देवता शक्रेन्द्र महाराज की पैदल सेना का स्वामी है तथा इन्द्र का सन्देश लेकर कार्य करता है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था। हरिनैगमेषी देव द्वारा कही गई आवश्यक बात माता देवकी को कहकर श्रीकृष्ण अपने इष्ट स्थान की ओर चले गए। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तए ण सा देवती देवी अन्नया कदाइ तंसि तारिसगंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा, जाव पाढया, हट्ठहियया परिवहइ। तते णं सा देवती देवी नवण्हं मासाणं जासुमणा-रत्तबंधुजीवगंलक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवाकरसमप्पभं सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुय-समाणं दारयं पयाया। जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारते गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एतस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले २। तते ण तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेंति गयसुकुमालोत्ति। सेस जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाते यावि होत्था।**

छाया—ततः खलु सा देवकी देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशके यावत् सिंहंस्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, यावत् पाठकाः, हृष्टहृदया परिवहति,। ततः खलु सा देवकी देवी नवानां मासानां जयासुमना-रक्तबंधुजीवक-लाक्षारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवाकरसमप्रभं, सर्वनयनकान्तं सुकुमारं यावत् सुरूपं गजतालुक-समानं दारकं प्रयाता, जन्म यथा मेघकुमारः, यावत् यस्माद् खलु आवयोरेतस्य दारकस्य नामधेयं गजसुकुमालः २। ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नाम कुरुतः गजसुकुमालं, इति शेषं यथा मेघं यावत् अलं भोगसमर्थो जातश्चाप्यभवत्।

पदार्थ—**तए**—तदनन्तर; **णं**—वाक्यसौन्दर्य के लिये प्रयुक्त होता है; **सा**—वह; **देवती देवी**—देवकी देवी; **अन्नया कदाइ**—अन्य किसी समय; **तंसि**—उस; **तारिसगंसि**—सुकोमल शय्या पर; **जाव**—यावत्; **सुमिणे**—स्वप्न में; **सीहं**—शेर को; **पासेत्ता**—देख कर; **पडिबुद्धा**—जाग उठी; **जाव**—यावत्; **पाढया**—स्वप्नपाठक बुलवाए गए; **हट्ठहियया**—हृदय में प्रसन्न हुई माता देवकी ने; **परिवहइ**—गर्भ धारण किया; **तते**—तदनन्तर; **सा**—वह; **देवती देवी**—देवकी देवी; **नवण्हं**—नौ; **मासाणं**—महीनों के बाद; **जासुमणा**—जासु के फूल के समान, **रत्तबंधुजीवग**—रक्त बंधु जीवक, रक्त-

वर्णीय वीर बहूटी जीव विशेष के समान; **लक्खारस**—लाक्षारस—लाख के रंग के समान; **सरसपारिजातक**—खिले हुए पारिजात पुष्प जैसे; कल्पवृक्ष नामक—देववृक्ष विशेष के समान; **तरुणदिवाकर**—प्रातः कालीन सूर्य के; **समप्पभं**—समान प्रभा कान्ति वाले; **सव्वनयणकंतं**—सब के नेत्रों को प्यारे लगने वाले; **सुकुमालं**—सुकुमार—अत्यधिक कोमल; **जाव**—यावत्; **सुरूवं**—सुन्दर रूप वाले; **गयतालुयसमाणं**—रक्त या कोमलता में हाथी के तालु के समान; **दारयं**—पुत्र को, **पयाया**—जन्म देती है; **जम्मणं**—बालक का जन्म संस्कार; **जहा**—जैसे; **मेघकुमारे**—मेघ कुमार का हुआ था वैसे ही हुआ; **जाव**—यावत्; **जम्हा**—जिस से; **अम्हं**—हमारा; **इमे दारते**—यह बालक; **गयतालुसमाणे**—हाथी के तालु के समान रक्त और कोमल है; **अम्ह**—हमारे; **एतस्स**—इस; **दारगस्स**—बालक का; **नामधेज्जे**—नाम; **गयसुकुमालोत्ति**—गजसुकुमाल; **होउ**—हो; **तते**—तदनन्तर; **तस्स दारगस्स**—उस बालक के; **अम्मापियरे**—माता-पिता; **गयसुकुमालोत्ति**—गज सुकुमार यह; **नामं**—नाम; **करेति**—रखते हैं; **सेसं**—शेष वर्णन; **जहा मेहे**—जैसे मेघकुमार का है; वैसे जानना; **जाव**—यावत्; **अल भोग समत्थे यावि**—और भोग भोगने मे पूर्ण रीति से समर्थ भी; **जाते यावि होत्था**—हो गया।

मूलार्थ—तदनन्तर किसी अन्य समय माता देवकी देवी अपने शयनागार में बड़ी ही कोमल एवं सुखद शय्या पर सो रही थी, उसने स्वप्न में सिंह को देखा। स्वप्न देखने के अनन्तर वह जाग उठी। उस ने स्वप्न का सारा वृत्तान्त अपने पति वसुदेव को सुनाया। महाराज वसुदेव ने स्वप्न-पाठकों को बुला कर उन से स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नपाठकों ने उस का फल एक सुयोग्य पुण्यात्मा पुत्र की प्राप्ति बतलाया। माता देवकी स्वप्नपाठकों से स्वप्न का फल सुन कर बड़ी ही प्रसन्न हुई। समय आने पर उसने गर्भ को धारण किया और वह उस का उचित रीति से पालन-पोषण करने लगी।

तदनन्तर नौ मास हो जाने के पश्चात् माता देवकी ने जया-कुसुम तथा रक्तबंधु-जीवक—वीरबहूटी के समान, लाख के रंग, विकसित पारिजात, तथा प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाले, सब के नेत्रों को आनन्द देनेवाले, सुकुमार अङ्गोंवाले तथा सुन्दर रूपवाले हाथी के तालु के समान रक्त तथा कोमल पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का जन्मसंस्कार 'ज्ञाताधर्म-कथाँग सूत्र' में वर्णित मेघकुमार के समान किया गया।

नामसंस्कार करते समय कहा गया कि हमारा यह बालक हाथी के तालु के समान रक्त वर्णवाला है, तथा कोमल अङ्गोंवाला है, इसलिये इस बालक का नाम

गजसुकुमाल होना चाहिये। अपने इस कथन के अनुसार माता-पिता ने बालकका नाम "गजसुकुमाल" उद्घोषित कर दिया।

राजकुमार गजसुकुमाल की बालवास्था तथा विद्याप्राप्ति का समस्त वर्णन मेघकुमार के समान समझ लेना चाहिये। विद्याध्ययन के अनन्तर गजसुकुमाल भोगों के भोगने में पूर्णतया समर्थ हो गए।

व्याख्या—इस सूत्र में संक्षेप से माता देवकी का स्वप्न में सिंह को देखना, जागने पर पतिदेव को अपने स्वप्न का हाल कहना, पतिदेव द्वारा स्वप्न-पाठकों को बुलवाना, स्वप्न-पाठकों द्वारा स्वप्न का फल बतलाना, समय आने पर गर्भ का धारण करना, उसका संरक्षण करना, नौ मास व्यतीत हो जाने पर हाथी के तालु के समान रक्त एवं कोमल पुत्र का जन्म होना और उसका गजसुकुमाल नाम-संस्कार करना, अन्त में गजसुकुमाल का बालावस्था से युवावस्था में पदार्पण करना, इन सब बातों का वर्णन किया गया है। सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जन्म कालीन सभी वृत्तान्तों को विस्तार में न लिखकर "**जहा मेहकुमारे**" इन पदों द्वारा मेघकुमार के तुल्य सूचित कर दिया है। "**जहा मेहकुमारे**" का अर्थ है जिस प्रकार राजकुमार मेघकुमार का जन्म होने पर माता-पिता ने हर्ष मनाया, नागरिकों ने प्रमोदानुभव किया, तथा राज्य भर में खुशियां मनाई गईं, उसी प्रकार राजकुमार गज-सुकुमाल का जन्म होने पर जन्म-उत्सव मनाया गया, घर घर में खुशियां नाच उठीं। श्री मेघकुमार का जीवन "**श्रीज्ञाताधर्मकथांग सूत्र**" में वर्णित हुआ है।*

"**तारिसगंसि जाव सीहं**" "**पडिबुद्धा जाव पाढया**" "**मेहकुमारे जाव जम्हा**" तथा "**मेहे जाव अलं**" उन वाक्यों में पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर लिखे गए सम्पूर्ण पाठों के परिचायक समझने चाहियें। जैनागमों की यह शैली रही है कि एक स्थान पर या एक सूत्र में जिस बात का वर्णन कर दिया है उसी बात का यदि फिर उल्लेख करना इष्ट हो तो वहां सम्पूर्ण पाठ न लिखकर आदि **और अन्त** के पाठ का ही उल्लेख करके मध्य में **जाव** पद दे दिया जाता है। यह **जाव** पद मध्य में पढ़े गए सभी पदों का संसूचक होता है।

प्रस्तुत सूत्र में जो "**हट्ठहियया**" आदि समस्त पद दिए गए हैं उनका अर्थ इस प्रकार है—

"**हट्ठहियया**"—**हृष्टं प्रमुदितं हृदयं मानसं यस्याः सा**—जिसका हृदय प्रसन्न हो, उसे "**हृष्टहृदया**" कहते हैं। माता देवकी ने स्वप्न में जब शेर को देखा तो जागने पर उसने अपने पति-देव वसुदेव के पास जाकर अपना स्वप्न बतलाया, पतिदेव से स्वप्न का उत्तम फल सुनकर उसे अनुभव होने लगा कि तेरी चिराभिलषित पुत्र-प्राप्ति तथा लाडले से लाड लडाने की कामना अब अवश्य पूर्ण हो जायेगी। ऐसा विचार आते ही माता देवकी आनन्द विभोर हो उठी, उसका रोम-रोम खुशी के कारण पुलकित हो गया। माता देवकी की इसी असीम हर्षानुभूति को सूत्रकार ने "**हट्ठहियया**" इस पद द्वारा अभिव्यक्त किया है।

---

* "ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र का प्रथमाध्ययन" देखना चाहिये।

"जासुमणा-रत्तबंधुजीवग-लक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवाकर-समप्पभं—जया वनस्पति-विशेषः, तस्य सुमनानि पुष्पाणि, रक्तबंधु लोहितबंधुकं, तदपि च रक्तवर्णमपि भवतीति रक्तग्रहणम्, लाक्षारसः आवकः, सरसपारिजातकः अम्लान् (अभिनव) सुरद्रुमविशेषकुसुमं, तरुणदिवाकरः—उदीयमान सूर्यः—एतैः समः एतत्प्रभातुल्यप्रभा—वर्णो यस्य सः तमिति ।

इस पद में १.—जया सुमन, २—रक्तबन्धु-जीवक, ३—लाक्षारस, ४—सरस-पारिजात, ५—तरुण दिवाकर इन पांच वस्तुओं का उल्लेख किया गया है। जया—एक वनस्पति विशेष का नाम है। इसे जासु या अडहुल भी कहते हैं। संस्कृत—शब्दार्थ कौस्तुभ नामक संस्कृत कोष में **जया** का **अर्थ**—"सदा बहार गुलाब का फूल या पौधा" ऐसा लिखा है। **जया** के फूलों को **"जासुमन"** कहा जाता है, ये फूल रक्त वर्णीय होते हैं।

रक्त-बन्धु-जीवक—यह शब्द रक्त और बंधुजीवक इन दो पदों से बना है। रक्त लाल वर्ण को कहते हैं, बंधुजीवक शब्द का अर्थ होता है—गुल्म विशेष—दुपहरिया का पौधा, जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं और जो बरसात में फूलता है। दोनों का सम्मिलित अर्थ है—लाल रंग का दुपहरिया नामक एक गुल्म विशेष। एक स्थान पर रक्तबंधु-जीवक का अर्थ रक्त पुष्प विशेष लिखा है। आचार्य-प्रवर अभयदेव सूरि के अनुसार बन्धुजीवक पांच वर्णवाले पुष्प विशेष होते हैं। प्रस्तुत में रक्तवर्ण वाले अभीष्ट हैं, इसलिये सूत्रकार ने बन्धुजीवक के साथ रक्त शब्द का प्रयोग किया है। सचित्र अर्धमागधी कोष में रक्त-बंधु-जीवक शब्द का अर्थ लिखा है—वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला, गोगलगाय, देवगाय, इन्द्रगोप, नामक लाल रंग का जीव। अर्धमागधी कोषकार ने रक्तबन्धु-जीवक शब्द का जो अर्थ लिखा है, उसे ग्राम भाषा में इन्द्रगोप या वीरबहूटी कहते है। यह जीव रक्त वर्ण का तथा मखमल जैसा नरम होता है।

लाक्षारस—महावर को कहते हैं। महावर लाख के रंग का नाम है यह रक्त होता है, इससे स्त्रियां अपने पांव रंगती हैं।

सरस-पारिजातक—में सरस शब्द विकसित—खिला हुआ इस अर्थ का बोधक है। पारिजातक शब्द के अनेकों अर्थ उपलब्ध होते हैं, १—पुष्प-विशेष, २—फरहद का फूल जो रक्त वर्ण का और अत्यन्त शोभायमान होता है, ३—देववृक्ष विशेष, ४—कल्प-तरु विशेष। प्रस्तुत में पारिजातक का अर्थ रक्त वर्णीय पुष्प ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

तरुण-दिवाकर—इस पद में प्रयुक्त 'तरुण' शब्द युवा अर्थ का बोधक है और मध्याह्न काल में ही सूर्य तरुण-युवा अवस्था को प्राप्त हुआ माना जाता है, अतः मध्याह्न के सूर्य को ही तरुण-दिवाकर कह सकते हैं, परन्तु प्रस्तुत में यह अर्थ इष्ट नहीं है। राजकुमार गजसुकुमाल का वर्ण रक्त होने से दोपहर के सूर्य के साथ उसका अन्वय नहीं हो सकता। यही कारण है कि आचार्यवर अभयदेव सूरि ने तरुण-दिवाकर का अर्थ—उदीयमान—उदय होता हुआ सूर्य किया है। यह अर्थ उचित भी है, क्योंकि उदीयमानसूर्य का वर्ण लाल होता है, अतः राजकुमार गजसुकुमाल के रक्त वर्ण के साथ इसका सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त तरुण शब्द रक्त अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। उत्तराध्ययन

सूत्र के ३४वें अध्ययन के तेजोलेश्या प्रकरण में लिखा है—

"हिंगुलधाउसंकासा, तरुणाइच्चसंनिभा।
सुयतुंडपइवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ॥"

अर्थात् हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच, और दीपशिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है। प्रस्तुत सूत्र में तरुण शब्द रक्त अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेश्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की संगति नहीं हो सकती।

जयासुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरसपारिजातक और तरुण दिवाकर इनके समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जया-सुमन- रक्तबंधुजीवक-लाक्षारस-सरस-पारिजातक-तरुणदिवाकर समप्रभ' कहते है।

सव्वनयणकंतं—सर्वस्य जनस्य नयनानां कान्तः कमनीयोऽभिलषणीयः सर्वनयनकान्तस्तमिति। यहां सर्व शब्द सभी लोगों की, नयन शब्द आंखों को तथा कान्त शब्द प्यारा लगनेवाला—सुख देनेवाला इस अर्थ का परिचायक है। सभी मनुष्यों की आंखों को प्रिय लगनेवाले को **"सर्व-नयन-कान्त"** कहा जाता है।

"गय-तालुय-समाणं"—गज-तालुक-समानम्, गजस्यतालुः गजतालुः तत्समानम् कोमल-रक्तत्वाभ्यां तत्सदृशम्—अर्थात् गज हाथी का नाम है। तालु का अर्थ है—ऊपर के दांतों और कौवे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते हैं। गज के तालु के समान जिस का तालु हो वह 'गज-तालु-समान' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियों का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विशेष रूप से रक्त और कोमल माना गया है। सूत्रकार कहते हैं कि राजकुमार गजसुकुमाल का तालु हाथी के तालु के समान रक्त और कोमल था, इसीलिए गजसुकुमाल को गज-तालु, इस विशेषण से विशेषित किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में गजसुकुमाल के नाम-संस्कार का जो वर्णन किया गया है इस से यह सिद्ध होता है कि उस समय बालक का नामकरण उस में व्यक्त होनेवाले किसी गुण-विशेष को लक्ष्य में रख कर ही किया जाता था।

"अलं भोगसमत्थे"—अलं भोगसमर्थः। अलं शब्द का अर्थ है—पूर्ण रूप से प्रत्येक दृष्टि से। स्पर्श, रस, गन्ध आदि उपभोग्य पदार्थों का उपभोग करना, इस अर्थ का ग्रहण भोग शब्द से होता है। समर्थ शक्तिशाली को कहते हैं। तीनों को मिला कर अर्थ होगा—उपभोग्य पदार्थों के भोगने में जो पूर्णतया समर्थ है। उसे ही 'अलं भोगसमर्थ' कहते हैं।

राजकुमार गजसुकुमाल के युवक हो जाने पर उस के विवाह आदि के सम्बन्ध में क्या किया गया? अब सूत्रकार इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहते हैं:—

मूल—**तत्थ णं बारवतीए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अड्ढे रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिते यावि होत्था। तस्स सोमिलमाहणस्स सोमसिरि नामं माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स णं सोमिलस्स धूता सोमसिरिए माहणीए अत्तया सोमानामं दारिया होत्था। सोमाला जाव सुरूवा। रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि**

होत्था । तते णं सा सोमा दारिया अन्नया कदाइ ण्हाता जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता सतातो गिहातो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिन्दूसएणं कीलमाणी २ चिट्ठइ ।

छाया—तत्र द्वारवत्यां नगर्यां सोमिलो नाम माहनः (ब्राह्मणः) परिवसति । आढ्यः, ऋग्वेदे यावत् सुपरिनिष्ठितश्चाप्यभवत् । तस्य सोमिलमाहनस्य सोमश्री नाम्नी माहनी अभवत् सुकुमारा । तस्य सोमिलस्य दुहिता सोमश्रियो माहन्या आत्मजा सोमा नाम्नी दारिकाभवत् । सुकुमारा यावत् सुरूपा, रूपेण यावत् लावण्येन उत्कृष्टा, उत्कृष्ट-शरीरा चाप्यभवत् । ततः सा सोमा दारिका अन्यदा कदाचिद् स्नाता यावत् विभूषिता बहुभिः कुब्जिकाभिः यावत् परिक्षिप्ता स्वस्मात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव राजमार्गस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कनकतिन्दूषकेण क्रीडमाना २ तिष्ठति ।

पदार्थ—**तत्थ**—उस; **णं**—वाक्य-सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया गया है; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में, **सोमिले**—सोमिल; **नामं**—नाम का, **माहणे**—माहन ब्राह्मण; **परिवसइ**—रहता था; **अड्ढे**—वह बडा धनवान था; **रिउव्वेद**—ऋग्वेद. **जाव**—यावत् (अन्य वेदों मे); **सुपरिणिट्ठिते**—निष्णात, पारंगत; **यावि होत्था**—भी था, **तस्स**—उस, **सोमिल माहणस्स**—सोमिल ब्राह्मण की; **सोमसिरी**—सोमश्री; **नामं**—नाम की; **माहणी होत्था**—ब्राह्मणी (धर्मपत्नी थी); **सूमाल०**—वह कोमल थी; **तस्स**—उस; **सोमिलस्स**—सोमिल की; **धूता**—पुत्री; **सोमसिरिए माहणीए**—सोमश्री नामक ब्राह्मणी की, **अत्तया**—आत्मजा—बेटी; **सोमा नामं**—सोमा नाम की; **दारिया**—लड़की; **होत्था**—थी; **सोमाला**—वह कोमल थी, **जाव**—यावत्, **लावण्णेणं**—लावण्य-सौन्दर्य से; **उक्किट्ठा**—उत्तम, **उक्किट्ठसरीरा**—इन्द्रियों की निर्दोषता के कारण, शारीरिक अवयवों की उचित स्थिति के कारण प्रशस्त शरीरवाली, **यावि होत्था**—भी था । **तते**—तदनन्तर; **अन्नया कदाइ**—किसी अन्य समय; **सा**—वह, **सोमा दारिया**—बालिका सोमा, **ण्हाता**—स्नान से निवृत्त हो; **विभूसिया**—भूषणों से विभूषित होकर, **बहूहिं**—बहुत सी; **खुज्जाहिं**—कुब्जाओं—बौनी दासियों; **जाव**—यावत्, अन्य अनेकविध दासियों द्वारा, **परिक्खित्ता**—घिरी हुई; **सतातो** अपने, **गिहातो**—घर से; **पडिनिक्खमइ**—निकलती है; **पडिनिक्खमित्ता**—और निकल कर; **जेणेव**—जहां पर; **रायमग्गे**—राजमार्ग (शाही सड़क) था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आती है; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **रायमग्गंसि**—राज-पथ में, **कणगतिंदूसएणं**—सोने की गेंद से; **कीलमाणी २ चिट्ठइ**—खेलने लगी ।

मूलार्थ—उस द्वारिका नगरी में सोमिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था । वह ऋद्धि-सम्पन्न, ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि वेदों के ज्ञान में पूर्णतया निष्णात अर्थात् पारंगत था । उस सोमिल ब्राह्मण की धर्मपत्नी का नाम सोमश्री था । सोमश्री अंगोपांग के सौंदर्य तथा स्वभावकी दृष्टिसे बड़ी कोमल थी ।

सोमिल ब्राह्मण की पुत्री तथा सोमश्री ब्राह्मणी की बेटी का नाम सोमा था। सोमा बालिका बड़ी कोमल तथा रूपवती थी। रूप, आकार तथा लावण्य--सौन्दर्य की दृष्टि से उस में कोई दोष नहीं था, अतएव वह उत्तम तथा उत्तम शरीरवाली थी।

एक समय की बात है। सोमा बालिका ने स्नान किया, आभूषणों से अपने शरीर को आभूषित किया। कुब्जा-बौनी आदि अनेकविध दासियां अपने साथ लीं। इस प्रकार पूरी सज-धज के साथ वह घर से निकली और राज-पथ पर आ गई। राज-पथ पर पहुच कर वह अपनी दासियों के साथ सोने की गेन्द के साथ खेलने लगी।

व्याख्या--इस सूत्र मे सूत्रकार ने द्वारिका-नगरी के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण सोमिल, उसकी धर्म-पत्नी सोमश्री तथा उसकी परम सुन्दरी सोमा नामक लड़की का संक्षेप से वर्णन किया है। सोमिल ब्राह्मण का परिचय कराते हुए सूत्रकार ने उसे वैभव-सम्पन्न एक महान विद्वान् सूचित किया है। जन साधारण में यह कहा जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मी—विद्या और सम्पत्ति का आपस में कोई सान्निध्य नहीं होता। दोनों एक दूसरे से दूर रहती है। जहां विद्या भगवती हो वहां लक्ष्मी नहीं रहती और जहां लक्ष्मी की छाया हो वहां विद्या देवी निवास नहीं करती। इस तरह लक्ष्मी और विद्या दोनों कभी एक आसन पर विराजमान नही हो पातीं। लौकिक-व्यवहार भी इस सत्य का गवाह है। विद्वानों से प्रायः लक्ष्मी रूठी ही रहती है और धनवान लोग प्रायः विद्या से वञ्चित देखे जाते हैं। यह सब कुछ होने पर भी द्वारिका नगरी का सोमिल ब्राह्मण इस लौकिक मान्यता से बहुत ऊपर उठा हुआ था। वह वैभव-सपन्न था और साथ में बहुत ऊचा विद्वान् भी था। यहां लक्ष्मी और सरस्वती का मधुर सगम दिखाई दे रहा था। यही सोमिल की अपनी एक विशेषता थी!

सूत्र मे पढ़े गए **'अड्ढे'** तथा **"रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिते"** ये पद सोमिल ब्राह्मण को वैभव-शाली तथा विद्वान अभिव्यक्त कर रहे है। आढ्य का अर्थ है—समृद्ध व्यक्ति सोमिल ब्राह्मण के घर मे सेवा के लिये दास-दासिया थी। चल-अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति का अक्षय भण्डार था, द्वारिका नगरी के जन-गण-मान्य धनी-पुरुषों मे उसका प्रतिष्ठित स्थान था, इसीलिये सूत्रकार ने उसे **आढ्य** कहा है। सोमिल लक्ष्मीपति होने के साथ-साथ धर्मशास्त्रों का भी पण्डित था। वेदों का उसे विशेष बोध था। वैदिक परम्परा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद तथा व्याकरण आदि छह अंग माने जाते है। सोमिल ब्राह्मण इन सभी का पूर्ण ज्ञान रखता था। **"रिउव्वेद"** के आगे पढ़ा गया **जाव**-यावत् पद ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य वेदों तथा व्याकरण शिक्षा, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त और कल्प नामक वेद के छह अंगों का बोधक है।

सोमिल ब्राह्मण की तरह उसकी धर्म-पत्नी सोमश्री ब्राह्मणी का भी बड़ा सम्मानित जीवन था, वह व्यवहारज्ञा थी, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को वह खूब समझती थी। विशिष्ट गुण-सम्पदा के कारण ही सूत्रकार ने **सुमाल०** के आगे दिए बिन्दु से अन्य सूत्रों में दिए गए नारी-जीवन-सम्बन्धी

पाठ को संसूचित किया है, इसका अर्थ यह है कि सोमश्री की गुण-सम्पदा महान थी। उसका जीवन नारी-योग्य सभी सद्‌गुणों का भण्डार था।

सोमश्री की पुत्री का नाम सोमा था। सूत्रकार ने सोमा का वर्णन करते हुए उसे सोमिल ब्राह्मण की दुहिता—पुत्री और सोमश्री की आत्मजा कहा है। प्रश्न हो सकता है कि अकेले दुहिता शब्द से ही काम चल सकता था तो फिर सूत्रकार ने आत्मजा शब्द का प्रयोग किस कारण किया है ? उत्तर में निवेदन है कि आत्मजा शब्द के पीछे एक रहस्य विद्यमान है। आत्मजा का अर्थ है अपने पेट से उत्पन्न होनेवाली। यह शब्द देकर सूत्रकार यह प्रकट करना चाहते हैं कि सोमा बालिका सोमश्री की अपने पेट से पैदा की हुई सन्तति थी उसे गोद नहीं लिया हुआ था। **"सोमाला जाव सुरूवा"** तथा **रूवेणं जाव लावण्णेणं"** इन वाक्यों मे पठित **जाव**—यावत् पदों द्वारा सूत्रकार अन्य सूत्रों में दिये गए लडकियों का वर्णन करनेवाले पाठों की ओर संकेत कर रहे हैं। सूत्रकार कहना चाहते है कि सोमा बालिका के सम्बन्ध में यदि विशेष जानकारी प्राप्त करनी इष्ट हो तो अन्य सूत्रों में दिए गए वर्णन पाठकों को देख लेना चाहिये।

सोमा का परिचय कराते हुए सूत्रकार ने रूप और लावण्य से उसे उत्तम बतलाया है। रूप और लावण्य दोनों में क्या अन्तर है ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। कोषकार इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि रूप शब्द—वर्ण आकृति शरीर के आकार आदि का बोधक है और लावण्य शब्द से शरीर-सौन्दर्य की विशेष शारीरिक कान्ति का ग्रहण होता है।

सोमा के सम्बन्ध में **"उक्किट्ठा"** तथा **"उक्किट्ठसरीरा"** ये दो विशेषण भी दिए हैं। इन में जो अन्तर है उन्हें भी समझ लेना चाहिये। उत्कृष्ट शब्द श्रेष्ठ उत्तम शब्द का संसूचक है। जिस लड़की के शरीर मे श्रोत्र चक्षु, आदि पांचों इन्द्रियाँ सर्वथा निर्दोष हों तथा जिसमें अवयवों की औचित्य पूर्ण आकर्षक स्थिति हो उसे 'उत्कृष्ट-शरीरा' कहते हैं।

'ण्हाता जाव विभूसिया" तथा **"खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता"** इन वाक्यों में पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए मध्यगत पाठों का परिचायक है।

"रायमग्गंसि कणगतिन्दूसएणं कीलमाणी" का अर्थ है राजमार्ग में सोने की गेन्द से खेलती हुई। यहां राजमार्ग से उसके समीपवर्ती किसी उद्यान या क्रीडास्थान का ग्रहण समझना चाहिये। आजकल भी राजमार्ग के एक ओर किसी विशिष्ट स्थान पर नागरिक लोगों के लिये क्रीडा-उद्यान बने हुए देखे जाते हैं। सोमा बालिका भी अपनी सहेलियों तथा दासियों को साथ लेकर राजमार्ग के समीपवर्ती किसी विशिष्ट स्थान में सोने की गेन्द से खेल रही थी। राजमार्ग शब्द से "लोगों के आने-जाने का पथ" यह अर्थ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि जहाँ लोगों का गमनागमन हो ऐसे स्थान पर खेलना तो वैसे भी अव्यावहारिक है तथा नियम-विरुद्ध है।

सोमा राजमार्ग में खेल रही थी, इस वर्णन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि उस समय बालकों की भांति बालिकाओं में भी राजमार्ग में खेलने की प्रथा थी। लड़कियों के खुले स्थानों

पर खेलने को अनादर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इसके अतिरिक्त इस वर्णन से लड़कियां अपने ढंग से शारीरिक-व्यायाम किया करती थीं, यह भी प्रमाणित हो जाता है।

सोमा बालिका अपनी दासियों के साथ राजमार्ग में क्रीड़ा कर रही थी, इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं:—

मूल—**तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे। परिसा निग्गया।**

छाया—**तस्मिन् काले, तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमिः समवसृतः। परिषत् निर्गता।**

पदार्थ—**तेणं**—उस; **कालेणं**—काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठ-नेमि**—अरिष्टनेमि भगवान्; **समोसढे**—पधारे; **परिसा**—परिषद्—जनता; **निग्गया**—दर्शनार्थ नगरी से बाहिर आई।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् पधारे। उनका दर्शन करने के लिये जनता अपनी नगरी से निकली।

व्याख्या—जैन जगत ने तीर्थंकर २४ माने हैं। इनमें सबसे पहले भगवान "आदिनाथ" हैं और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। मध्य के तीर्थंकरों में २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि हैं। भगवान अरिष्टनेमि महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे और मातेश्वरी शिवा देवी के अंगज थे। त्रिखण्डाधिपति महाराज श्रीकृष्ण के ये छोटे भाई थे। राजकुमारी राजमती से विवाहित होने के लिये जब ये बरात लेकर अपने सुसराल पहुंचे तो इन्होंने बरातियों के भोजनार्थ पिञ्जरों तथा बाड़ों में बंद पशु-पक्षियों को देखा। पशु-पक्षियों की आकुलता एवं व्याकुलता को देखकर ये सिहर उठे, इनका हृदय दया से भर आया। अपनी शादी से अनेक जीवों की बरबादी इनको अच्छी नहीं लगी। इन्होंने तत्काल सब पशु-पक्षियों को मुक्त कर दिया और स्वयं संयम-साधना के महापथ पर चल दिए—साधु बन गए। संयम की कठोर साधना द्वारा उन्होंने अरिहन्त पद प्राप्त किया। चतुर्विध संघ की स्थापना की। तीर्थंकर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि एक बार द्वारिका नगरी में पधारे। नगरीवालों को जब इनके पधारने का शुभ समाचार मिला तो वे अपने आराध्य भगवान का दर्शन तथा इनका मंगलमय उपदेश सुनने के लिये अपने-अपने घरों से निकल पड़े।

"**तेणं कालेणं तेणं समएणं**" इन पदों में काल और समय, शब्दों का प्रयोग किया गया है, दोनों शब्द समानार्थक हैं, परन्तु प्रश्न उठता है फिर इन दोनों का एक साथ प्रयोग क्यों किया गया है ? टीकाकार ने इसका समाधान करते हुए लिखा है कि काल शब्द अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का बोधक है तथा समय शब्द से चौथे आरे के उस भाग का ग्रहण करना है जिस समय यह बात कही जा रही है।

अथ कालसमयोः को विशेषः ? उच्यते, सामान्यो वर्तमानावसर्पिणी चतुर्थारक-लक्षणः काल-विशिष्टः पुनस्तदेकदेशभूतः समयः।

"**अरहा**" शब्द का अर्थ है—अरिहन्त। काम, क्रोध, मान, माया आदि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करनेवाले को अरिहन्त कहते हैं। अरिहन्त आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने के कारण ही वीतराग कहलाते हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते है, सर्वथा निर्विकार और प्रकाश-स्तम्भ होते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि के द्वारिका नगरी में पधार जाने के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है :—

मूल—**तते णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाते जाव विभूसिए। गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थि-खंध-वरगते सकोरंटमल्लदामेणं धरिज्जमाणेण सेयवर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं बारवइए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहतो अरिट्ठनेमिस्स पाय-वंदते णिगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेणं य जोव्वणेण य लावण्णेण य जाव विम्हिए। तए णं कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कन्नंतेउरंसि पक्खिवह। तते णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सति, तते णं कोडुंबिय जाव पक्खिवंति।**

छाया—ततः सः कृष्णो वासुदेवः अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् स्नातो यावद् विभूषितः। गजसुकुमालेन कुमारेण सार्धं हस्तिस्कन्धवरगतः, सकोरण्ट-मल्ल-दाम्नाछत्रेण ध्रियमाणेन, श्वेत-वर-चामरैरुद्धूयमानैः, द्वारवत्याः नगर्याः मध्यंमध्येन अर्हतोऽरिष्टनेमेः पादवन्दनाय निर्गतः सन् सोमां दारिकां पश्यति, दृष्ट्वा सोमायाः दारिकायाः रूपेण च, यौवनेन च, लावण्येन च यावद् विस्मितः। ततः कृष्णः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—

गच्छत यूयं देवानुप्रियाः! सोमिलं ब्राह्मणं याचित्वा सोमां दारिकां गृह्णीत, गृहीत्वा कन्यान्तःपुरे प्रक्षिपत। ततः एषा गजसुकुमालस्य कुमारस्य भार्या भविष्यति। ततः कौटुम्बिकाः यावत् प्रक्षिपन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है; **से**—वह; **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **इमीसे**—इस; **कहाए**—कथा-वृत्तान्त को; **लद्धट्ठे समाणे**—जानकर; **ण्हाते**—स्नान किये हुए; **जाव**—यावत्; **विभूसिए**—शृंगारित हुए; **गयसुकुमालेणं**—गज सुकुमाल; **कुमारेणं**—कुमार के; **सद्धिं**—साथ; **हत्थि-खंध-वर-गते**—हाथी के कन्धे पर बैठकर; **सकोण्टमल्लदामेणं**—कोरण्ट वृक्ष की माला से युक्त, **छत्तेणं धरिज्जमाणेणं**—छत्र को धारण करते हुए; **सेयवरचामराहिं**—सफेद चंवरों को; **उद्धुव्वमाणीहिं**—झुलाते हुए; **बारवइए नयरीए**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—बीचोंबीच; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि के; **पायवंदते**—चरण वन्दन के लिये; **णिगच्छमाणे**—निकलते हुए; **सोमं दारियं**—सोमा बालिका को; **पासति**—देखते हैं; **पासित्ता**—और देखने के अनन्तर; **सोमाए दारियाए**—सोमा बालिका के;

रूवेण—रूप—आकृति से; **य**—और; **जोव्वणेण**—यौवन से; **य**—और; **लावण्णेण**—लावण्य—शरीर की कान्ति से; **य**—और; **जाव**—यावत्—अन्य अंग-प्रत्यंग देखने से; **विम्हिए**—विस्मय को प्राप्त हुए; **तए णं**—तदनन्तर; **कण्हे**—कृष्ण महाराज; **कोडुंबियपुरिसे**—दास पुरुषों को; **सद्दावेइ**—बुलाते हैं; **सद्दावित्ता**—और बुलाकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **देवाणुप्पिया !** हे भद्र-पुरुषों ! **तुब्भे**—तुम लोग; **गच्छह**—जाओ; **सोमिलं**—सोमिल; **माहणं**—ब्राह्मण से; **जायित्ता** याचना करके; **सोमं दारियं**—सोमा बालिका को; **गेण्हह**—ग्रहण करो, **गेण्हित्ता**—ग्रहण कर, उसे; **कन्नंतेउरंसि**—कन्याओं के अन्तःपुर में; **पक्खिवह**—लेजाकर रखो; **तते**—तदनन्तर; **एसा**—यह बालिका; **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजमुकुमाल कुमार की; **भारिया**—धर्मपत्नी; **भविस्सति**—होगी; **तते**—तदनन्तर; **कोडुंबिय**—दास पुरुष; **जाव**—यावत्—सोमिल ब्राह्मण से सोमा बालिका की याचना करके उसे कन्याओं के अन्तःपुर में; **पक्खिवन्ति**—स्थापित कर देते हैं।

मूलार्थ—उसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव इस वृत्तान्त को जानकर स्नान करते हैं वस्त्राभूषणादि से अपने को अलंकृत करके राजकुमार गजसुकुमालको अपने साथ लेकर हाथी के कन्धे पर बैठ जाते हैं। उन्होंने कोरण्ट वृक्ष के फूलों से युक्त छत्र धारण कर रखा था। श्वेत चंवर झुलाए जा रहे थे। इस प्रकार महाराज कृष्ण द्वारिका नगरी के बीचों-बीच होते हुए अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के दर्शनों को चलदेते हैं।

श्रीमहाराज कृष्ण जब राजमार्ग पर पहुंचे तो उन्होंने वहां सोनेकी गेंद से खेलती हुई सोमा दारिका को देखा। सोमा बालिका के रूप यौवन तथा लावण्य को देखकर वे आश्चर्य-चकित रह गए। तत्काल उन्होंने अपने कर्मचारियों को बुला कर कहा—

भद्रपुरुषो ! आप सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ, जाकर उससे सोमा बालिका के लिये याचना करो, यदि सोमिल माहन मान जाये तो उसे कन्याओं के अन्तःपुर में पहुंचा दो। समय पर इस बालिका का राजकुमार गजसुकुमाल से विवाह कर दिया जायेगा।

महाराज श्री कृष्ण की इस आज्ञा को सुनते ही राज्य-कर्मचारी सोमिल ब्राह्मण के पास जाते हैं, गजसुकुमाल से विवाहित करने के लिये सोमा बालिका की याचना करते हैं तथा सोमिल ब्राह्मण से स्वीकृति मिलने पर सोमा बालिका को कन्याओं के अन्तःपुर में पहुंचा देते हैं।

व्याख्या—इस सूत्र में बतलाया गया है कि द्वारिकाधीश महाराज श्री कृष्ण को जब अहिंसा, संयम तथा तप की पवित्र त्रिवेणी शासनेश भगवान अरिष्टनेमि जी महाराज के द्वारिका में पधारने

का शुभ समाचार मिला तो उनका अंतःकरण प्रसन्नता से नाच उठा, वे आनन्द-विभोर हो गए, भगवान के दर्शन की लालसा के कारण उन्होंने प्रस्थान की तैय्यारी प्रारम्भ कर दी। सर्व प्रथम वे स्नान करते हैं, स्नानादि से निवृत्त हो उन्होंने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप वस्त्र तथा आभूषणों द्वारा अपने को शृंगारित किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर उन्होंने अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को साथ लिया। वे हाथी पर बैठ गए। दर्शन-यात्रा आरम्भ हो गई। द्वारिका के मध्य में से होते हुए ये जब राजपथ पर आये तो उन्होंने दूर से राजपथ के समीपवर्ती एक क्रीडा-स्थान में लड़कियों को खेलते हुए देखा। जब निकट आए तो पता चला कि लड़कियों का नेतृत्व सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा बालिका कर रही है। सोमा अपने युग की एक होनहार लड़की थी, उसके आकृति, रूप, वर्ण यौवन तथा शारीरिक सौन्दर्य ने महाराज श्री कृष्ण का मन जीत लिया। कृष्ण महाराज को ऐसा लगा मानो विधाता ने उस बालिका को ही सारी सुन्दरता दे दी है। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि इस बालिका का गजसुकुमाल के साथ यदि सम्बन्ध हो जाये तो सोने में सुहागे जैसी बात होगी अपने विचार को मूर्त रूप देने के लिये उन्होंने अपने सेवकों को बुला कर कहा—'भद्रपुरुषो ! सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर कहो कि कृष्ण वासुदेव गजसुकुमाल के लिये सोमा बालिका को चाहते हैं।' कृष्ण महाराज ने अपनी बात को चालू रखते हुए फिर कहा—'यदि सोमिल ब्राह्मण इस बात से सहमत हो और सहर्ष इस बात को स्वीकार करे तो सोमा बालिका को राजमहल में जहां कन्याओं का निवास-स्थान है, वहां पहुंचा दो। महाराज कृष्ण यह आदेश देकर इधर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होने के लिये चल दिए। उधर सेवक-पुरुषों ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर गजसुकुमाल के लिये सोमा बालिका की याचना की और उसे राज-महलों में पहुंचा दिया।

प्रस्तुत सूत्र के कथा-संदर्भ से अनेकों बाते जानने को मिली है, उन पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है। भगवान अरिष्टनेमि के द्वारिका में पधारने पर कृष्ण महाराज का स्वय पूरी सजधज के साथ उनके चरणो मे उपस्थित होना इस बात को प्रकट करता है कि भगवान अरिष्टनेमि अपने लोक के माने हुए महापुरुष थे। राजा-प्रजा सभी उनके चरणों के उपासक थे। उनका व्यक्तित्व किसी एक वर्ग या समाज तक सीमित न था, प्रत्युत आकाश की भांति असीम था, सभी जातियों तथा कुलों के हृदयों के वे आराध्य देवता थे।

कृष्ण महाराज स्वयं जहां राजनीति के अग्रदूत थे, वहां वे धर्म-नीति के भी पुण्य-सरोवर थे। साधु-सन्तों का मान करना उनके उपदेशादि का श्रवण करना, उनकी सेवा-भक्ति करना आदि सब गुण उनमें उपस्थित थे। राजा का धार्मिक होना, प्रजा के सौभाग्य का सबसे बड़ा प्रतीक माना गया है, आध्यात्मिकता के प्रकाश से विहीन भूप अंधकार में ही भटकता रहता है। उसकी प्रजा भी अन्धेरे में ही रहती है। द्वारिका नगरी के लोगों का यह सौभाग्य था कि उन्हें कृष्ण महाराज जैसा आध्यात्मिक शासक प्राप्त हुआ था। कृष्ण महाराज की आध्यात्मिकता भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर उनके धर्मोपदेश सुनने की लालसा से स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

सूत्रकार कहते हैं कि कृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी से बाहिर निकल कर जब राजमार्ग पर खेल रही सुन्दरी सोमा को देखा, तो वे सौन्दर्य के उत्कर्ष को देख कर विस्मित रह गए और उन्होंने उसका गजसुकुमाल के साथ विवाह कर देने का निश्चय किया। इस कथन से कृष्ण महाराज की महानता तथा सच्चरित्रता का बोध होता है। यदि ये कामुक वासनाप्रिय या चरित्र-हीन होते तो सोमा के रूप, यौवन तथा लावण्य पर मोहित हो कर अपने लिये उस की याचना करते, उसे अपनी रानी बनाते, पर उन्होंने ऐसा न करके गजसुकुमाल के साथ उसे विवाहित करने का पवित्र संकल्प किया उनके चरित्र की महानता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

सूत्रकार कहते हैं कि कृष्ण महाराज ने सोमा बालिका को गजसुकुमाल के अनुरूप समझ कर उसके पिता से गजसुकुमाल के लिये उस की याचना की। इस की याचना से यह सिद्ध होता है कि उस समय के शासक लोग अपनी प्रजा के साथ किसी प्रकार का बलात्कार नहीं किया करते थे, अपने लिये प्रजा की कोई वस्तु यदि उन्हें अपेक्षित होती थी तो वे उस वस्तु को उसके स्वामी से सप्रेम मांगा करते थे, इस पर यदि स्वामी की अनुमति होती थी तभी उसे स्वीकार किया करते थे अन्यथा नहीं। यही कारण है कि सोमिल ब्राह्मण की ओर से सहर्ष स्वीकृति मिलने के अनन्तर ही उसकी पुत्री सोमा बालिका को राजमहल में पहुंचा दिया गया।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि कृष्ण महाराज ने सहर्ष सोमा को अपने छोटे भाई गजसुकुमाल से विवाहित करने की इच्छा से उसके लिये सोमिल ब्राह्मण से याचना की और सोमिल ने भी सादर अपनी प्रिय पुत्री सोमा को गजसुकुमाल से विवाह करने की स्वीकृति दे कर उसे अपना दामाद बनाना अंगीकार किया है। इस तरह क्षत्रिय और ब्राह्मण उन दोनों परिवारों में आपसी सम्बन्ध स्थापित हुए। इस कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनों जातियों में परस्पर विवाह होना निषिद्ध नहीं था। क्षत्रियों का ब्राह्मणों और ब्राह्मणों का क्षत्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध चलता था, अन्यथा सोमिल अपनी कन्या को कृष्ण वासुदेव के कहने पर भी उनके लघु भ्राता गजसुकुमाल को देने के लिये कभी सहमत नहीं होता।

"इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे" इस वाक्य का अर्थ है—इस कथा का अर्थ प्राप्त किए हुए। भाव यह है कि भगवान—अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में विराजमान हो गए है, यह वृत्तान्त वासुदेव कृष्ण महाराज को ज्ञात हो गया था।

"कोडुंबिय पुरिसे—कौटुम्बिक पुरुष। इस शब्द के अनेकों अर्थ उपलब्ध होते हैं वे अर्थ इस प्रकार हैं—कौटुम्बिक मनुष्य, हजूरी सेवक, राजसेवक, कुटुम्ब का स्वामी, परिवार का स्वामी, परिवार का मुखिया, ग्राम प्रधान, गाँव का मुखिया, कुटुम्ब में उत्पन्न, कुटुम्ब से सम्बन्ध रखनेवाला, पिता, घर का बड़ा या बूढ़ा। प्रस्तुत प्रकरण में कौटुम्बिक पुरुष के—"राजसेवक या कुटुम्ब का स्वामी या कुटुम्ब से सम्बन्ध रखने वाला" ये सभी अर्थ संगत हैं।

"कन्नंतेउरंसि" इस पद में कन्या और अन्तःपुर ये दो शब्द हैं, कन्या—कुमारी अविवाहिता लड़की का नाम है। अन्तःपुर राजप्रासाद अर्थात् जनान खाने को कहते हैं। दोनों शब्दों के मिलने पर अर्थ होगा—वह राजमहल जिसमें अविवाहित लड़कियां रहती हैं। प्रस्तुत सूत्र में—**"कन्नंतेउरंसि"**

शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उस समय गजसुकुमाल के विवाहार्थ अनेक कुमारियां एकत्रित की गई थीं।

"ण्हाते जाव विभूसिए" "लावण्णेण जाव विम्हिए" तथा "कोडुंबिय जाव पक्खिवंति" यहां पठित जाव पदों द्वारा अन्य स्थानों पर पढ़े गए मध्यगत पाठों का ग्रहण किया जाता है।

वासुदेव कृष्ण अपने कौटुम्बिक पुरुषों के आदेश देने के अनन्तर जब आगे चल दिए तब आगे क्या हुआ ? अब—सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

मूल——तते णं से कण्हे वासुदेवे बारवतीए नयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तते णं अरहा अरिट्ठनेमि कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहाए, कण्हे पडिगते। तते णं से गयसुकुमाले अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा, ज नवरं, अम्मापियरं आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्जं जाव वड्ढियकुले। तते ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं आलिंगइ, उच्छंगे निवेसइ निवेसित्ता एवं वयासी—

तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया, तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं अरहतो मुंडे जाव पव्वयाहि, अहण्ण बारवतीए नयरीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि। तते णं से गयसुकुमाले कण्हेण वासुदेवेण एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से गयसुकुमाले कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए। तते णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएंति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तते ताहे अकामा चेव एवं वयासी—

तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए। निक्खमणं जहा महाबलस्स जाव तमाणाते तहा संजमित्तए, से गयसुकुमाले अणगारे जाते ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

छाया—ततः सः कृष्णो वासुदेवः द्वारवत्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवनमुद्यानं यावत्पर्युपास्ते। ततोऽर्हन् अरिष्टनेमि : कृष्णस्य वासुदेवस्य गजसुकमालस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा, कृष्णः प्रतिगतः। ततः सो गजसुकुमालः अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके धर्मं श्रुत्वा यन्नवर-

मम्बापितरमापृच्छामि । यथा मेघः । महिलावर्ज्यं यावत् वर्धितकुलम्, ततः स कृष्णो वासुदेवः अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् यत्रैव गजसुकुमालस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य गजसुकुमालमालिंगति, आलिंग्य उत्संगे निवेशयति, निवेश्य एवमवदत्:—

त्वं मम सहोदरः कनीयान् भ्राता । तत् मा त्वं देवानुप्रिय ! इदानीमर्हतः मुण्डो यावत् प्रव्रजत । अहं द्वारवत्याः नगर्याः महता महता राज्याभिषेकेण अभिषेक्ष्यामि । ततः सो गजसुकुमालः कृष्णेन वासुदेवेन एवमुक्तः सन् तूष्णीकः संतिष्ठते । ततः सो गजसुकुमालः कृष्णं वासुदेवम्, अम्बापितरौ च द्वितीयमपि, तृतीयमपि एवमवदत्:—

एवं खलु देवानुप्रियाः ! मानुष्यकाः कामाः खेलाश्रवाः, यावत् विप्रहातव्याः भविष्यन्ति । तस्मात् इच्छामि देवानुप्रियाः ! युष्मद्भिरभ्यनुज्ञातः, अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके यावत् प्रव्रजितुम् ।

ततस्तं गजसुकुमालं कृष्णो वासुदेवः, अम्बापितरौ च यदा न शक्नुवंति बहुभिरनुलोमैः, यावद् आख्यातुम्, तदा अकामाश्चैव एवमवदत्—तद् इच्छामः ते जात ! एक दिवसमपिराज्यश्रियं द्रष्टुम् । निष्क्रमणं यथा महाबलस्य, यावत् तदाज्ञया तथा संयमितः सो गजसुकुमालोऽनगारः जातः ईर्यासमितः यावद् गुप्तब्रह्मचारी ।

पदार्थ—**तते णं**—तदनन्तर; **से**—वे; **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—बीचोंबीच; **णिग्गच्छइ**—निकलते हैं; **णिग्गच्छित्ता**—निकल कर; **जेणेव**—जहां पर; **सहसंबवणे**—सहस्राम्रवन नाम का; **उज्जाणे**—उद्यान था, वहां जाकर; **जाव**—यावत् **पज्जुवासइ**—भगवान की पर्युपासना एवं सेवा-भक्ति करने लगे; **तते**—तत्पश्चात्; **णं**—वाक्य सौन्दर्यार्थ; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि ने; **कण्हस्स**—**वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को; **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार को; **तीसे य०**—और आई हुई अन्य जनता को; **धम्मकहा**—धर्मकथा, सुनाई; **कण्हे**—श्रीकृष्ण; तदनन्तर-**पडिगते**—चले गए; **तते**—तदनन्तर;**से**—वह; **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल कुमार; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के; **अंतियं**—पास; **धम्मं**—धर्मोपदेश, **सोच्चा**—सुनकर; **जं**—जो; **नवरं**—विशेष, बात यह है कि वे बोले, **अम्मापियरं**—माता-पिता को; **आपुच्छामि**—पूछता हूं, शेष वर्णन; **जहा मेहो**—जैसे मेघकुमार का है वैसे ही जानना चाहिये, अर्थात् जैसे मेघकुमार ने दीक्षित होने की आज्ञा माता-पिता से मांगी थी वैसे ही गजसुकुमाल ने अपने माता-पिता से आज्ञा मांगी । आज्ञा मागने पर उससे माता-पिता बोले पुत्र !, **महेलियावज्जं**—तू अभी महिलावर्ज महिलारहित अर्थात् अविवाहित है,पहले विवाहित हो; **जाव**—यावत्; **वड्ढियकुले**—कुल की वृद्धि कर;. **तते**—इसके पश्चात्; **से**—वे; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **इमीसे**—इस; **कहाए**—वृत्तान्त को; **लद्धट्ठे समाणे**—जान कर; **जेणेव**—जहा पर; **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते हैं; **उवागच्छित्ता**—और आकर; **गयसुकुमालं**—गजसुकुमाल को; **आलिंगइ**—आलिंगन करते हैं; **उच्छंगे**—गोद में; **निवेसेइ**—बैठाते हैं, **निवेसित्ता**—गोद में बैठाकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे :—

तुमं—तू; **ममं**—मेरा; **सहोदरे**—सहोदर, मां जाया; **कणीयसे**—छोटा; **भाया**भाई है; **तं**—**देवानुप्पिया !**—अतः देवानुप्रिय ! ; **तुमं**—तू; **मा**—मत; **इयाणि**—इस समय; **अरहतो**—अरिष्टनेमि भगवान

के पास; **मुंडे**—केश रहित होकर; **जाव**—यावत्; **पव्वयाहि**—प्रव्रजित—दीक्षित हो; **अहण्णं**—मैं; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के भूपति के रूप में तेरा; **महया महया**—महान् से भी महान्; **रायाभिसेणं**—राज्यभिषेक राजगद्दी पर; **अभिसिंचिस्सामि**—अभिषेक करूंगा अर्थात् तुम्हें राजगद्दी दूंगा। **तते णं**—तत्पश्चात्; **से**—वह; **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल; **कण्हेणं वासुदेवेणं**—कृष्ण वासुदेव द्वारा; **एवं वुत्ते समाणे**—इस प्रकार कहे जाने पर; **तसिणीए**—मौन; **संचिट्ठइ**—रहते हैं; **तए णं**—तदनन्तर; **से**—वह; **गयसुकुमाले**—गजसुकुमाल; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **य**—और; **अम्मापियरो**—माता-पिता को; **दोच्चंपि**—दो बार; **तच्चंपि**—तीन बार; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे।

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **देवाणुप्पिया!** हे देवानुप्रियो! **माणुस्सया**—मनुष्य जीवन सम्बन्धी; **कामा**—काम भोग के आधाररूप पुरुषों के शरीर; **खेलासवा**—खेलाश्रव (जिस से कफ बहता है) है। **जाव**—यावत्; **विप्पजहियव्वा**—छोड़ने योग्य; **भविस्संति**—होंगे ही; **तं**—इसलिये; **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो! **इच्छामि**—मैं चाहता हूं, कि; **तुब्भेहिं**—आप के द्वारा; **अब्भणुण्णाए**—आज्ञा मिल जाने पर; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के; **अंतिए**—पास; **जाव**—यावत्; **पव्वइत्तए**—दीक्षित हो जाऊ, **तते**—तदनन्तर; **तं गयसुकुमालं**—उस गजसुकुमाल को; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **य**—और; **अम्मापियरो**—माता-पिता; **बहुयाहिं**—बहुत सी; **अणुलोमाहिं**—अनुकूल बातो द्वारा; **जाव**—यावत्; **आघवित्तते**—कहने समझाने मे; **नो संचाएंति**—समर्थ नही हो सके; **ताहे**—तब; **अकामा**—अकाम, निराश हुए; **च**—समुच्चयार्थक है; **एव**—निश्चयार्थक है; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—कहने लगे।

तं—सो; **जाया**—हे पुत्र! **ते**—तेरी; **एगदिवसमवि**—एक दिन को ही; **रज्जसिरिं**—राज्य-श्री, राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने पर प्राप्त हुई शोभा को, **पासित्तए**—देखना; **इच्छामो**—चाहते है; **निक्खमणं**—निष्क्रमण—दीक्षा; **जहा**—जैसे; **महाबलस्स**—महाबल की थी, वैसीही जानना; **जाव**—यावत्; **तमाणाते**—गजसुकुमार की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण की सब सामग्री; **तहा**—वैसे ही, महाबल की तरह लाई गई; **संजमिते**—संयमित—दीक्षा ग्रहणकी; **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल कुमार; **अणगारे जाते**—साधु बन गए; **ईरिया समिए**—ये ईरिया समिति का पालन करनेवाले थे; **जाव**—यावत्; **गुत्त**—जितेन्द्रिय थे; **बंभयारि**—ब्रह्मचारी थे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य में से निकल कर जहाँ सहस्राम्र नामक उद्यान था वहां पर पहुंचे। अरिहंत भगवान् अरिष्टनेमि का साक्षात्कार होने पर हाथी से नीचे उतरे, भगवान् के चरणों में उपस्थित हुए और विनय-भक्ति के साथ उनकी सेवा करने लगे। भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, राजकुमार गजसुकुमाल तथा अन्य उपस्थित जनता को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर कृष्ण महाराज चले गये। राजकुमार गजसुकुमाल अरिहंत भगवान अरिष्टनेमि जी महाराज का उपदेश सुनकर उनके चरणों में निवेदन करने लगे—भगवन्! आपकी अमृतवाणी

ने मेरे हृदय में वैराग्य पैदा कर दिया है, मैं साधु बनना चाहता हूं, इसके लिये मैं अपने माता-पिता से पूछता हूं, आज्ञा मिलने पर मैं आपके चरणों में आकर दीक्षा ग्रहण करूंगा।

भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने के अनन्तर राजकुमार गजसुकुमाल अपने घर गए और राजकुमार मेघकुमार की तरह अपने मातापिता को अपने वैराग्य की बात कह कर उन से दीक्षित होने की आज्ञा मांगी। पुत्र की यह बात सुन कर माता-पिता कहने लगे–

पुत्र! तुम अभी अविवाहित हो, सर्व-प्रथम तुम्हारा विवाह होना चाहिये। सन्तति (सन्तान) होने के अनन्तर उस पर अपना दायित्व डाल कर फिर तुम्हारा दीक्षा ग्रहण करना उचित हो सकता है, इससे पहले नहीं।

राजकुमार गजसुकुमाल साधु बनना चाहते हैं, यह समाचार जब श्री कृष्ण वासुदेव को मिला, तब वे गजसुकुमाल के पास आते है, और उसका आलिंगन करते हैं–उसे गले लगाते हैं और उसे अपनी गोद में बैठा कर वे गजसुकुमाल को कहते हैं:—

हे देवानुप्रिय! देव के समान प्रिय! तू मेरा माँजाया छोटा प्रिय भाई है, अत तुम्हें मेरा कहना अवश्य मानना चाहिये, अतः मेरी इच्छा है कि तुम इस समय अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का विचार छोड़ दो। मैं तुझे बड़े समारोह के साथ द्वारका नगरी का नरेश बना दूँगा। वासुदेव महाराज श्री कृष्ण के ऐसा कहने पर गजसुकुमाल मौन रहे, इन्होंने अपने बड़े भाई कृष्ण महाराज की बात का कोई उत्तर नही दिया।

कुछ विचार करने के अनन्तर गजसुकुमाल वासुदेव महाराज श्री कृष्ण तथा माता-पिता को कहने लगे—

देवानुप्रियो! आदरणीय पूज्य पुरुषो! मनुष्य का शरीर कफ-मल-मूत्र आदि का घर है, एक न एक दिन इसे छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिये मेरी हार्दिक इच्छा है कि यदि आप मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दे दें तो मैं अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में पहुंच कर साधु बन जाऊं। राजकुमार गजसुकुमाल ने अपनी इस बात को दो-तीन बार दोहराया।

गजसुकुमाल की बात सुन कर वासुदेव श्रीकृष्ण तथा माता-पिता ने इनको मनाने समझाने की बड़ी कोशिश की, अनुकूल प्रतिकूल वचनों द्वारा इन कोबहुत कुछ कहा,

पर ये अपना पथ छोड़ने को तैयार न हुए। इनकी इस दृढ़ता को देख कर सब निराश हो गए। अन्त में उन्होंने कुमार से कहा—हे पुत्र ! हम तुझे एक बार राजसिंहासन पर बिराजमान देखना चाहते हैं। अधिक नहीं तो एक दिन की ही राज्यशोभा दिखला दो।

माता-पिता तथा बड़े भाई की बात सुन कर गजसुकुमाल मौन हो गए। इसके अनन्तर इनका राज्याभिषेक किया गया। उन को राज्यसिंहासन पर बैठाया गया, ये राजा बन गए। तत्पश्चात् इन से पूछा गया—'क्या आज्ञा है ? इस के उत्तर में गज-सुकुमाल ने महाबल कुमार की तरह दीक्षा-सामग्री लाने का आदेश दिया और उनके आदेशानुसार दीक्षा की सामग्री आ गई। दीक्षा लेने के अनन्तर श्रीगजसुकुमाल जी अनगारसाधु बन गए। ईर्या समिति, भाषा समिति आदि समितियों का पालन करने लगे, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की और ब्रह्मचर्यव्रत की आराधना करने लगे।

व्याख्या—इस सूत्र में श्रीकृष्ण महाराज तथा राजकुमार गजसुकुमाल का भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होना, भगवान का मंगलमय उपदेश सुनकर चरमशरीरी श्रीगजसुकुमालजी के हृदय में वैराग्य का उत्पन्न होना, फिर दीक्षित होने के लिये माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करना, कृष्ण महाराज द्वारा दीक्षा न लेने के लिये इनको समझाना, एक दिन के लिये द्वारिकाधीश बनकर राज्य की शोभा दिखलाने को कहना, राजा बन जाना, अन्त में अरिष्टनेमि भगवान के चरणों मे साधु बन कर इनका ईर्यासमिति आदि साधु मर्यादा का पालन करना, आदि बातो का वर्णन किया गया है।

सूत्रकार ने कथा-संदर्भ को विस्तार से न लिखकर संक्षेप मे ही रखने का यत्न किया है। माता-पिता से होनेवाले गजसुकुमाल के प्रश्नोत्तरो को **"जहा मेहो"** यह कहकर केवल उसकी सूचना मात्र दी है। भाव यह है कि गजसुकुमाल की माता-पिता से जो चर्चा हुई एक दूसरे को समझाने तथा मनाने के लिये जो प्रश्नोत्तर हुए, उनकी जानकारी प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु पाठकों को मेघकुमार का जीवन देखना चाहिये। राजकुमार मेघकुमार के सम्पूर्ण जीवन चरित का उल्लेख **"श्रीज्ञाता-धर्मकथांग सूत्र"** के प्रथमाध्ययन मे किया गया है।

इसमें मेघकुमार ने दीक्षा ग्रहण करने के लिये माता पिता से जो चर्चा की है उसका सम्पूर्ण वर्णन विद्यमान है। उसी प्रकार गजसुकुमाल का वर्णन भी जान लेना चाहिये। इस बात को सूचित करने के लिये सूत्रकार ने **"जहा मेहो"** इन शब्दों द्वारा सकेत मात्र कर दिया है।

सूत्रकार ने गजसुकुमाल के दीक्षा प्रकरण का उल्लेख करते हुए **"जहा महाबलस्स"** ये पद देकर गजसुकुमाल के दीक्षोत्सव को महाबल कुमार के दीक्षोत्सव के समान अभिव्यक्त किया है। महाबल जी का दीक्षा सम्बन्धी सभी वर्णन व्याख्याप्रज्ञप्ति भगवती सूत्र के शतक ११ और उद्देश्य ११ में किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने की तीव्र भावना से प्रेरित होकर गजसुकुमाल जब अपने माता-पिता से दीक्षित होने के लिये आज्ञा मांगते हैं तो माता-पिता ने उनका संयम-साधना की कठोरता एवं दुष्करता की ओर प्रत्येक दृष्टि से ध्यान दिला दिया। इस वर्णन से यह ध्वनित होता है कि प्रत्येक साधक को साधना-क्षेत्र में आने से पूर्व अपनी शक्ति का सन्तुलन अवश्य कर लेना चाहिये। जिस अनुष्ठान को सम्पन्न करने की जीवन में क्षमता हो, उसी को जीवन में लाने का प्रयत्न करना उचित है, अन्यथा अपने ह्रास और लोगों द्वारा कृत उपहास के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता, अतः प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी को संयम-साधना के महामार्ग पर प्रस्थान करने से पूर्व अपने सामर्थ्य को अवश्य देख लेना चाहिये। संभव है इसीलिये हिन्दी के एक कवि को यह कहना पड़ा—

जो मत पाछे उपजे, सो मत पहले होय।
काम न बिगड़े आपणो, जग में हंसे न कोय॥

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि गजसुकुमाल वैराग्य-भावना से विचलित नहीं हुए—गृहस्थ-जीवन को अपनाने के लिये किसी भी तरह तैय्यार न हुए, तो निराश होकर वासुदेव कृष्ण तथा माता-पिता ने गजसुकुमाल से एक दिन के लिये राज्य-सिंहासनारूढ़ होने के लिये निवेदन किया और अन्त में उन्हें एक दिन के लिये द्वारिका के सिंहासन पर बिठला दिया। जब ये सिंहासनारूढ़ हो गए तो इनसे कहा गया—'द्वारिकाधीश! हमारे लिये क्या आज्ञा है?' इस प्रश्न का उत्तर देते समय गजसुकुमाल ने इतना ही कहा कि मुझे दीक्षा ग्रहण करनी है, अतः दीक्षा की समस्त सामग्री उपस्थित की जाये इत्यादि। इस कथानक से यह ध्वनित होता है कि वासुदेव श्रीकृष्ण तथा इनके माता-पिता गंभीर विचारक तथा अत्यधिक दूरदर्शी थे। इन्होंने यह बात कह कर गजसुकुमाल के अन्तर्जगत को समझने का यत्न किया है। इससे दो बातें सामने आती हैं—१—गजसुकुमाल राज्य को श्रेष्ठ समझता है या संयम-साधना को २—राज्य को त्याग कर संयम लेने से जनता में धर्म की प्रभावना बढ़ेगी और संयम-साधना के महत्त्व का संसार को पता चलेगा।

द्वारिका नगरी के सिंहासन पर बैठ जाने के अनन्तर वैराग्यमूर्ति गजसुकुमाल ने दीक्षा की सामग्री लाने का जो आदेश दिया, इससे श्रीकृष्ण वासुदेव तथा माता-पिता को पूर्ण विश्वास हो गया कि गजसुकुमाल अपनी परीक्षा में पास हो गया है। इसे अब सांसारिक विषय-भोगों में उलझाया नहीं जा सकता। अब तो यह विश्ववन्द्य करुणा के सागर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षा ग्रहण करके ही रहेगा। तब उन्होंने दीक्षा की पूरी तैय्यारी करके गजसुकुमाल को भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित कर दिया। द्वारिका नगरी का कण-कण गजसुकुमाल के वैराग्य-प्रधान त्याग की सराहना कर रहा था और सर्वत्र "गजसुकुमाल जी महाराज की जय हो" के जय-जयकार गूंज रहे थे।

इस कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांसारिक प्रलोभन और संयम का आपस में कोई मेल नहीं है, वस्तुतः संयम-साधना के महासाधक को सांसारिक प्रलोभनों का परित्याग करना ही पड़ता है, अतः संसार से विरक्त होकर संयम ग्रहण करनेवाले व्यक्ति को त्याग वैराग्य के अग्रदूत तथा देवकी के लाल गजसुकुमाल की भांति किसी भी प्रकार के सांसारिक प्रलोभन में नहीं आना

चाहिये। महाराज श्रीकृष्ण तथा माता-पिता के द्वारा राजसिंहासन का प्रलोभन मिलने पर भी जैसे गजसुकुमाल जी अपने निश्चय से नहीं गिरे—वैराग्य-पथ पर दृढ़ता से खड़े रहे, वैसे ही संयम के यात्री को प्रलोभनों की वर्षा होने पर भी अपने निश्चय में अडिग रहना चाहिये। इसीमें उसका कल्याण निहित है।

"उज्जाणे जाव पज्जुवासइ", **'तीसे य धम्मकहाए"**;**"जाव वड्ढियकुले"**,**"मुंडे जाव पव्वयाहि" खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा"** **"अंतिए जाव पव्वइत्तए"** **"अणुलोमाहिं जाव आघवित्तते"** **"महाबलस्स जाव तमाणाते** तथा **"ईरिया समिए जाव गुत्तबंभयारी"** यहां पठित जाव पदों के द्वारा अन्य स्थानों पर दिए गए मध्यगत पाठों की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार पाठों को संक्षिप्त करके सूत्रकार ने उनके विस्तार को कम कर दिया है। **"पज्जुवासइ"** का अर्थ है—पर्युपासना करना, पर्युपासना शब्द का प्रयोग—सेवा, भक्ति, सत्संग आदि अर्थों में किया जाता है।

"धम्मकहा" इस पद का अर्थ है—धर्मकथा। धर्मकथा धर्म की देशना—धर्म के व्याख्यान को कहते हैं। भगवान अरिष्टनेमि ने क्या धर्मदेशना दी थी ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। उत्तर में निवेदन है कि धर्म-देशना का विवरण औपपातिक सूत्र में दिया गया है, पाठकों को उसका अध्ययन कर लेना चाहिए। यह सत्य है कि औपपातिक सूत्रीय धर्म-देशना भगवान महावीर द्वारा दी गई धर्म-देशना है, और स्थूल दृष्टि से देखने पर भगवान अरिष्टनेमि का उस धर्म-देशना के साथ कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन करेंगे तो औपपातिक सूत्र में वर्णित धर्मदेशना के साथ भगवान अरिष्टनेमि का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दिखाई देगा क्योंकि—

"नवरं"-- यह अव्ययपद है इस का अर्थ है—विशेषतः अन्तर। भाव यह है कि भगवान अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश सुन कर कृष्ण महाराज चले गए, दूसरे लोग भी चले गए। रह गए श्रीगजसुकुमाल। भगवान की वाणी सुनकर श्री गजसुकुमाल जी के हृदय पर उस वाणी का क्या प्रभाव पड़ा ? इस बात को सूत्रकार विशेष रूप से कहना चाहते हैं। इसीलिये सूत्रकार ने गजसुकुमाल जी का वर्णन करते हुए नवरं शब्द का प्रयोग किया है, अर्थात भगवान की वाणी सुनकर गजसुकुमाल जी ने जो विशेष बातें कहीं वे इस प्रकार हैं। इसी बात को **"अम्मापियरो – आपुच्छामि"** इत्यादि पदों द्वारा व्यक्त किया गया है।

"महेलियावज्जं"—महिलावर्जम्" इस पद के दो अर्थ किए जाते हैं। महिलारहित, अविवाहित। जिस का विवाह नहीं हुआ वह महिलावर्ज है। सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को **"जहा मेहो"** यह कह कर मेघकुमार के समान बताया है। मेघकुमार के जीवन का 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' के प्रथमाध्ययन में उल्लेख किया गया है। वहां मेघकुमार को विवाहित लिखा है, परन्तु गजसुकुमाल का विवाह नहीं हुआ था, अतः दोनों राजकुमारों के जीवन में विवाह-सम्बन्धी जो भिन्नता है उसको **"महेलियावज्जं"** इस पद से सूचित किया गया है इसका भाव यह है गजसुकुमाल के जीवन में स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना, क्योंकि उसका विवाह हुआ ही नहीं था।

'वड्ढियकुले"—**वर्धितं सन्तानोत्पत्त्या कुलं येन सः वर्धितकुलः**, अर्थात् सन्तानोत्पत्ति करके जिस ने कुल-वंश की वृद्धि की है उसे 'वर्धित-कुल' कहते हैं। दीक्षार्थी श्रीगजसुकुमाल के माता-पिता

ने इनसे कहा था कि 'हे पुत्र ! तू अभी अविवाहित है, अतः पहले विवाह करके सांसारिक विषय-भोगों का उपभोग कर, भोगों के जगत से सर्वथा निवृत्त हो कर और सन्तानोत्पत्ति द्वारा अपने वंश की वृद्धि के अनन्तर दीक्षा लेने की बात करना। सन्तति उत्पन्न करके वंश की वृद्धि करने की इस बात को सूत्रकार ने **"वड्ढियकुले"** इस पद से सूचित किया है।

"मुंडे" का अर्थ है मुण्डित। इस के द्रव्य और भाव से दो भेद है। सिर के केशों को काट देने या उनकी लोच करनेवाले व्यक्ति को द्रव्यमुण्डित तथा क्रोध-मान-माया-लोभादि विकारों का परिहार करनेवाले व्यक्ति-मुण्डित कहलाते हैं।

"रायाभिसएणं"—राज्याभिषेकेण। राजा के अभिषेक को राज्याभिषेक कहते हैं। अभिषेक के अर्थ हैं—सब औषधियों से युक्त पवित्र जल द्वारा मन्त्रोपचारपूर्वक राजादि पदवी का आरोपण करने के लिये मस्तक पर जल छिड़कने की क्रिया—राज्याभिषेक की क्रिया, राजगद्दी पर बैठने का महोत्सव, राजा का सिंहासनारोहण, राजतिलक।

"कामा खेलासवा"—काम शब्द सामान्य रूप से सुन्दर रूप, रस आदि विषयों का बोधक है, परन्तु प्रस्तुत में यह शब्द विषयों का बोधक न हो कर विषयों के आधार-भूत, स्त्री पुरुषों के शरीर का परिचायक है। **"खेलासव"** इस शब्द का अर्थ है—कफ निकलने का स्थान। गजसुकुमाल इन शब्दों का प्रयोग कर के महाराज श्रीकृष्ण तथा अपने माता-पिता से यह कहना चाहते हैं कि जिस शरीर को लोग सुन्दर समझ रहे है, वास्तव मे यह शरीर सुन्दर है ही नहीं। यह शरीर तो कफ का स्रोत है—कफ निकलने का ठिकाना है—कफ का घर है, फिर इस शरीर पर आसक्ति कैसी ?

"विप्पजहियव्वा भविस्संति" का अर्थ है—अवश्य छोड़ने पड़ेगे। गजसुकुमाल अपने माता-पिता से कह रहे हैं कि यह शरीर एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा, यह सदा रहनेवाला नहीं है। अज्ञानी मनुष्य समझता है कि मैं सदा यही बैठा रहूँगा, इसलिये घर की दीवारों को स्थायी बनाने के विचार से वह इनमें लोहा-सीमेण्ट भरता है, इन्हे सुदृढ़ बनाता है, पर कितना आश्चर्य है कि उसे अपने जीवन की दीवारों का कुछ पता ही नही, जो ये कभी भी धराशायी हो सकती हैं।

इसके विपरीत ज्ञानी मनुष्य जीवन की इस क्षणभगुरता, अस्थिरता एवं विनाशशीलता को खूब समझता एवं जानता है। यही कारण है कि वह इस शरीर में कभी भी आसक्त नहीं होता, परम वैरागी गजसुकुमाल की तरह शरीरादि के ममत्त्व से सदा विरक्त रहता है।

"रज्जसिरिं"—का अर्थ है राज्य-लक्ष्मी, राज्य-शोभा, राज्य-शासनरूप लक्ष्मी। वैभव राज्य लक्ष्मी है तथा राजसिंहासन पर बैठने पर हजारों नरेशों द्वारा जब मस्तक नत होंगे और हजारों नर-नारियों द्वारा जय-जयकारों से आकाश को गुंजाया जायेगा तब वह शोभा कुछ निराली ही होगी। उस निराली शोभा को ही **"रज्जसिरिं"** इस पद से व्यक्त किया गया है।

'निक्खमणं—निष्क्रमणम्"—इसका अर्थ सामान्य रूप से निकलना होता है, पर प्रस्तुत प्रकरण में यह एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है—दीक्षा-जगत की मोहमाया को छोड़कर वीतरागता के महापथ पर चलना, साधु बनना।

"तमाणाते तहा—तदाज्ञया तथा"—इन पदों के दो अर्थ किए जाते है—**तमाणाए-तदाज्ञया दीक्षाग्रहणसामग्रीसमानयनादिकं, तहा-तथैव,** अर्थात् गजसुकुमाल को जब द्वारिका के सिंहासन पर बैठा दिया गया तब उनसे पूछा गया 'कि महाराज ! हमारे लिये क्या आज्ञा है ?' तब उन्होंने कहा—'मुझे दीक्षा ग्रहण करने के लिये रजोहरण पात्र आदि चाहिये, अतः दीक्षा की सामग्री उपस्थित करो।' सूत्रकार कहते हैं कि गजसुकुमाल की **तमाणाते** इस आज्ञा से **तहा**—तथा वैसा कर दिया गया, अर्थात् दीक्षा की सब समग्री लाकर गजसुकुमाल जी को दे दी गई। आचार्य अभयदेव सूरि अपनी टीका में लिखते हैं—

"तमाणाए तहा"—तस्य प्रव्रजितस्य किल भगवानुपदिशति स्म—एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, चिट्ठियव्वं, निसीयव्वं, तुयटियव्वं, भासयिव्वं एवं उट्ठाए २ पाणेहिं भूतेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएव्वं, तए णं गयसुकुमारे अणगारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए तह गच्छति, तह चिट्ठति, तह निसीयति, तह तुयट्टति, तह भुंजति, तह उट्ठाए २ पाणेहिं ४ संजमेणं संजमइ।

अर्थात् जब गजसुकुमाल दीक्षित हो गए तब भगवान अरिष्टनेमि ने उन्हें साधु-धर्म की शिक्षा देते हुए कहा—'भद्र ! ऐसे चलना चाहिए, ऐसे खड़े होना चाहिए, ऐसे बैठना चाहिए, ऐसे सोना चाहिए, ऐसे खाना चाहिए, इस प्रकार उठ कर प्राण (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव), भूत (वनस्पति काय के जीव), जीव (पांच इन्द्रियोंवाले प्राणी) और सत्व (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय ये चार स्थावर जीव) की सयम पूर्वक रक्षा करनी चाहिये। कभी प्रमाद का सेवन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार भगवान अरिष्टनेमि के ऐसे धार्मिक उपदेश को अनगार राजसुकुमार भली भांति ग्रहण करते हैं।

तमाणाए—उस आज्ञा से (भगवान अरिष्टनेमि ने जो आज्ञा दी थी उससे) **तहा**—वैसे (आज्ञा के अनुरूप चलते है, वैसे ही खड़े होते है, वैसे ही बैठते है, वैसे ही सोते है, वैसे ही भोजन करते है, वैसे ही उठ कर प्राण-भूत-जीव-सत्व की सयमपूर्वक रक्षा करते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हो गए। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस बात का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

मूल—तए णं से गयसुकुमारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदति, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! तते णं से गयसुकुमाले

अणगारे अरहता अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति णमंसति, वंदित्ता, णमंसित्ता अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेति, पडिलेहित्ता, उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेति, पडिलेहित्ता ईसिपब्भारगएणं काएणं जाव दोवि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

छाया—ततः सो गजसुकुमारो यच्चैव दिवसं प्रव्रजितस्तस्यैव दिवसस्य पूर्वापराह्णकालसमये यत्रैवार्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति, कृत्वा च वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—

इच्छामि भदन्त ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् महाकाले श्मशाने एकरात्रिकीं महाप्रतिमामुपसम्पद्य विहर्तुम् । यथासुखं देवानुप्रिय ! ततः सो गजसुकुमालोऽनगारोऽर्हतारिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञातः सन् अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकात् सहस्राम्रवनादुद्यानात् प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव महाकालं श्मशानं तत्रैवोपागतः, उपागत्य स्थंडिल प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ईषत्प्राग्भारगतेन* कायेन यावद् द्वावपि पादौ संघट्य एकरात्रिकीं महाप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति।

पदार्थ—**तते**—तत्पश्चात्; **णं**—वाक्य सौन्दर्यार्थ प्रयोग किया जाता है; **से गयसुकुमारे**—वह गजसुकुमाल; **जं चेव दिवसं**—जिस दिन ही; **पव्वइए**—दीक्षित हुए थे; **तस्सेव दिवसस्स**—उसी दिन ही; **पुव्वावरण्हकालसमयंसि**—सायंकाल के समय; **जेणेव**—जहां; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते है; **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **तिक्खुत्तो**—तीन बार; **आयाहिणपयाहिणं**—दाहिनी ओर से आवर्तन कर फिर दाहिनी ओर तक परिक्रमा; **करेइ**—करते है; **करित्ता**—परिक्रमा करके; **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने —लगे

भंते—हे भगवन् !, **तुब्भेहिं**—आपश्री के द्वारा; **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त करके; **महाकालंसि**—महाकाल; **सुसाणंसि**—श्मशान में; **एगराइय**—एक रात्रि की—जिस मे तेला करके श्मशान भूमि में एक रात के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है; **महापडिमं**—महान प्रतिज्ञा; **उवसंपज्जित्ता**—धारण करके; **विहरित्तए**—विहरण करना, **इच्छामि**—मैं चाहता हूं। तब भगवान बोले; **देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रिय !; **अहासुहं**—जैसे तेरी आत्मा को सुख हो; **तते णं**—तदनन्तर; **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमाल; **अणगारे**—अनगार मुनि; **अरहता**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिना**—अरिष्टनेमि द्वारा; **अब्भणुण्णाए समाणे**—आज्ञा प्राप्त होने पर; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—अरिष्टनेमि को; **वंदति णमंसति**—वन्दमा नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार

*"ईसिपब्भारगएणंति" ईषदवनतवदनेति वृत्तिकारः।

करके; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के; **अन्तियाओ**—पास से, **सहसंबणाओ**—सहस्राम्रवन नामक; **उज्जाणाओ**—उद्यान से; **पडिणिक्खमइ**—निकलते हैं; **पडिणिक्खमित्ता**—और निकल कर; **जेणेव**—जहां पर; **महाकाले सुसाणे**—महाकाल श्मशान था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागए**—आ गए; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **थंडिल्लं**—स्थंडिल—भूमि—जन्तुरहित प्रदेश—शुद्ध भूमि; **उच्चार-पासवणभूमि**—मलोत्सर्गार्थ तथा लघुशंका की निवृत्त्यर्थ भूमि को; **पडिलेहेति**—प्रतिलेखना-निरीक्षण करते हैं; **पडिलेहित्ता**—प्रतिलेखना करके, **ईसि**—कुछ; **पब्भारगएणं**—झुके हुए; **काएणं**—शरीर से; **जाव**—यावत्; **दोवि**—दोनों ही; **पाए**—चरणों को; **साहट्टु**—सकुचित करके; **एगराइं**—एक रात्रि की; **महापडिमं**—महान प्रतिज्ञा को; **उवसंपज्जित्ताणं**—धारण करके; **विहरइ**—विहरण करते हैं।

मूलार्थ—उसके अनन्तर श्री गजसुकुमाल जी जिस दिन दीक्षित हुए थे, उसी दिन सायंकाल के समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरणों में उपस्थित होते हैं। दक्षिण की ओर से आवर्तन कर फिर दक्षिण की ओर तीन बार भगवान को परिक्रमा देते है, वंदन, नमस्कार करते हैं। इसके अनन्तर भगवान के चरणों में निवेदन करते हैं—

भगवन्! मेरी इच्छा है, यदि आप आज्ञा दें तो मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिमा (तीन उपवासों के साथ श्मशान भूमि में एक रात के लिये ध्यान करना) की आराधना करूं। इसपर भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जैसे तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो वैसे करो।

भगवान् से स्वीकृति सूचक वाक्य सुनकर मुनि गजसुकुमाल भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार करते है और सहस्राम्रवन नामक उद्यान से बाहिर निकलकर जहां महाकाल श्मशान था वहां आ जाते हैं। श्मशान में प्रासुक–शुद्ध भूमि तथा मलोत्सर्गार्थ एवं लघुशंका निवृत्त्यर्थ योग्य भूमि देखकर कुछ झुके हुए शरीर से दोनों पांवों को संकुचित करके एक रात्रि की महाप्रतिज्ञा की आराधना करना आरम्भ कर देते हैं।

व्याख्या—इस सूत्र में महामहिम श्री गजसुकुमार जी महाराज के दीक्षित होने के अनन्तर विश्ववन्द्य भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा से एक रात्रि की महाप्रतिमा को अंगीकार करके द्वारिका नगरी के सुप्रसिद्ध एवं विशाल महाकाल नामक श्मशान में ध्यानस्थ हो जाने का उल्लेख किया गया है। इस कथानक से साधकवर्ग को निम्नोक्त शिक्षाप्रद प्रेरणाएं प्राप्त होती हैं—

किसी भी कार्य को करने से पूर्व गुरुजनों की आज्ञा का प्राप्त करना अत्यावश्यक होता है।

गुरुजनों की आज्ञा के बिना किसी भी क्रिया में प्रवृत्त होना शास्त्रीय मर्यादा के विरुद्ध है, अतः प्रत्येक कल्याणाभिलाषी साधक को मुनिराज गजसुकुमाल की तरह गुरु महाराज की आज्ञा से ही प्रत्येक धार्मिक क्रिया का सम्पादन करना चाहिये। ऐसा करने से ही जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है।

मुनि श्रीगजसुकुमाल जी ने जब भगवान अरिष्टनेमि से महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना के लिये आज्ञा मांगी तो भगवान ने उनको **"जहासुहं देवाणुप्पिया"** इन शब्दों द्वारा एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना की आज्ञा दी। इन शब्दों का अर्थ है—'हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो।' भगवान के ऐसा कहने का अभिप्राय यही है कि 'हे गजसुकुमाल ! एक रात्रि की महाप्रतिमा को आराधना साधारण कार्य नहीं है, यह कठोर व्रत है, इसकी पालना के लिये बड़ी दृढ़ता और स्थिरता की आवश्यकता है। ऐसी कठोर साधना में पशुकृत, मनुष्यकृत तथा देवकृत उपसर्ग भी हो सकते हैं। भीषण से भीषण दुःखों के भूचाल भी आ सकते हैं। अतः सोच लो ! विचार लो ! दुखों के आने पर मन को डांवाडोल नहीं होने देना होगा। आर्तध्यान, रौद्र ध्यान से दूर रहना होगा, मेरु पर्वत की तरह अन्तःकरण को अचल एवं अटल बनना होगा, गजसुकुमाल ! प्रतिकूल वातावरण में भी यदि आत्मिक शान्ति को सुरक्षित रखने की क्षमता अनुभव करते हो तो मेरी आज्ञा है।

इस कथानक से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को आरम्भ करने से पहले अपनी आन्तरिक शक्ति तथा सामर्थ्य का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन कर लेना चाहिये। बिना सोचे, बिना समझे अपने बल को जाने बिना ही यदि धर्माराधना में प्रवृत्ति की जायेगी तो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना रहेगी। जोश के साथ होश रखना आवश्यक होता है। इसी दृष्टि को आगे रख कर भगवान अरिष्टनेमि ने श्री गजसुकुमालजी को कहा था—'राजकुमार ! अपनी आत्मा का सुख देखो ?

"पुव्वावरण्हकाल समयंसि"—**अह्नः अपरः दिवसस्य पश्चिमोऽर्धभागः तस्य यः पूर्वः प्रहरः सः पूर्वापराह्णः, कालस्य समयः कालसमयः कालो सामान्यो भवति, समयश्च तद्विशेषः, एवमेव प्रहः सामान्यः तस्य प्रहराः तद्विशेषाः। अनेनैव क्रमेण सर्वान्तिमो विभागः समयः कथ्यते। पूर्वापराह्णश्चासौ कालः समयः पूर्वापराह्णकालसमयः तस्मिन्निति,** अर्थात् दिन के पिछले आधे भाग, दोपहर से लेकर सूर्यास्त तक के काल को अपराह्ण कहते है। दिन के पिछले दोपहरों में से पूर्व (प्रथम) प्रहर दिन का तीसरा प्रहर पूर्वापरह्ण कहा गया है। काल सामान्य और समय विशिष्ट होता है। प्रस्तुत में काल शब्द से तृतीय प्रहर तथा समय शब्द से उसके विशिष्ट क्षण ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है जिसमें यह घटना घटित हुई है।

"आयाहिणपयाहिणं"—आदक्षिणात् दक्षिणपार्श्वादारभ्य क्रियमाणं प्रदक्षिणं परितो भ्रमणं, "आदक्षिण-प्रदक्षिणम्" अनयोः पदयोः मध्यपदलोपी समासः, अर्थात् दक्षिण की ओर से की गई प्रदक्षिणा, परिक्रमा को आदक्षिण-प्रदक्षिणा कहा गया है।

"एगराइयं महापडिमं" का अर्थ है—एक रात्रि की महाप्रतिमा। जैनाचार्यों ने भिक्षु की बारह प्रतिमा बतलाई हैं। साधु के अभिग्रह विशेष को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमाधारी मुनिराज अपने शारीरिक संस्कारों तथा शारीरिक ममत्व को छोड़ देता है। किसी भी प्रकार की दीनता न दिखलाते हुए देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को समानभाव से सहन करता है।

एक मास से लेकर सात मास तक सात प्रतिमाएं होती हैं, आठवीं, नौवीं और दसवीं इन प्रतिमाओं में प्रत्येक सात दिन-रात की होती है। ११वीं एक दिन रात की और १२वीं केवल एक रात्रि की होती है। मुनिराज गजसुकुमाल ने १२वीं भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था। इसका समय केवल एक रात है। इसका आराधन बेले के अनन्तर चौविहार तेला करके किया जाता है। इसके आराधक को ग्राम आदि से बाहिर जाकर शरीर को थोड़ासा आगे की ओर झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रों से निश्चलतापूर्वक सब इन्द्रियों को गुप्त रख कर दोनों पैरों को संकुचित कर, हाथों को घुटनों तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना होता है। कायोत्सर्ग करते समय देव, मनुष्य या तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो तो दृढ़ता के साथ उसे सहन करना पड़ता है। मलमूत्र की आशंका हो तो उसे रोकने का निषेध है। यदि प्रतिमाधारी को किसी समय मलमूत्र की शंका उत्पन्न हो तो पहले देखे स्थान पर उसकी निवृत्ति कर वापिस अपने स्थान पर आकर कायोत्सर्ग में लग जाना होता है। इस प्रतिमा की यदि सम्यग् आराधना हो जाये तो साधक को अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान इन में से किसी एक ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसके विपरीत यदि इसका सम्यक् पालन न हो तो साधक का अहित भी हो जाता है। साधनाकाल में देवादि द्वारा किए गये अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गादि को समभाव के साथ सहन न करने से उन्माद अर्थात् पागलपन की या लम्बे समय तक रहनेवाले रोगादि की प्राप्ति हो जाती है अथवा साधक धर्म से हो गिर जाता है।

इस के अतिरिक्त शास्त्र कहता है कि १२वीं भिक्षु पडिमा के धारक मुनि की दीक्षा-पर्याय १९ वर्षों की तथा आयु कम से कम २९ वर्ष की होनी चाहिये। एव उसका अष्टम भक्त (तेला) भी होना चाहिये। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि मुनिराज गजसुकुमार के जीवन में उक्त तीनों बातें दिखाई नहीं देतीं, तब उन्होंने १२वीं प्रतिमा को धारण क्यों किया? तथा भगवान् ने ऐसा करने की उन्हें आज्ञा क्यों दी? उत्तर में निवेदन है कि उक्त तीनों बातें सूत्र-व्यवहारियों के लिये हैं, आगम-व्यवहारियों के लिये नहीं। तीर्थंकर भगवान के होते हुए या उन की आज्ञा से जो कार्य किया जाता है वह आगमव्यवहार है। चार ज्ञान के धारक तथा १४ पूर्वों के पाठी मुनियों की उपस्थिति में जो व्यवहार चलता है वह सूत्रानुसारी होने से सूत्र-व्यवहार कहा जाता है।

"थंडिल्लं"—स्थण्डिलम् शब्द का अर्थ है प्रासुक भूमि, जीव-जन्तु रहित प्रदेश, संथारा करने के लिये योग्य स्थान, निवृत्तिपूर्ण स्थान, जहां किसी भी प्रकार की कोई बाधा न हो। साधु के शौच जाने की जगह। प्रस्तुत में स्थण्डिल शब्द प्रासुक भूमि का बोधक है, मुनिराज श्री गजसुकुमाल जी ने जहां रहकर एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना करनी है, उस भूमि का प्रासुक होना—जीवजन्तु से रहित होना अत्यावश्यक है।

"उच्चारपासवणभूमि" का अर्थ है—जहां उच्चार एवं प्रस्रवण का परित्याग किया जाता है वह स्थान "उच्चार-प्रस्रवण भूमि" कहलाती है। उच्चार मल का तथा प्रस्रवण मूत्र का नाम है।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि भगवान अरिष्टनेमि से आज्ञा ले कर मुनिराज श्री गज-सुकुमार महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना चालू कर देते हैं। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते कहते हैं :—

मूल—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाते बारवतीओ नयरीओ बहिया पुव्व णिग्गते समिहातो य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च गेण्हइ, गेण्हित्ता ततो पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे २ संझा-कालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते ५ एवं वयासी–

एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अप्पत्थिय जाव परिवज्जिए जे णं ममं धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणिं विप्पजहेत्ता मुंडे जाव पव्वइए। तं सेयं खलु ममं गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दिसा पडिलेहणं करेइ, करित्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुय समाणे खयरंगारे कहल्लेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूते, तामेव दिसं पडिगए।

छाया—इतश्च खलु सोमिलो माहनः सामिधेयस्य (समित् समूहस्य) अर्थाय द्वारवत्याः नगर्याः बहिः पूर्वं निर्गतः समिधश्च दर्भांश्च कुशांश्च पत्रामोटश्च गृह्णाति, गृहीत्वा ततः प्रतिनिवर्तते, प्रतिनिवृत्य महाकालस्य श्मशानस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन् २ संध्याकालसमये प्रविरलमनुष्येषु गजसुकुमालमनगारं पश्यति, दृष्ट्वा तं वैरं स्मरति, स्मृत्वा च आशुरुप्तः ५ एवमवदत् :—

एष भो ! स गजसुकुमालकुमारः अप्रार्थितो यावत् परिवर्जितः यो मम दुहितरं सोमश्रियाः भार्यायाः आत्मजां सोमां दारिकामदृष्टदोषपतितां कालवर्तिनीं विप्रहाय मुण्डो यावत् प्रव्रजितः।

तच्छ्रेयः खलु मम गजसुकुमालस्य कुमारस्य वैर-निर्यातनं कर्तुम्। एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य दिशा प्रतिलेखनं करोति, कृत्वा सरसां मृत्तिकां गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव गजसुकुमारोऽनगार-स्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य गजसुकुमारस्य कुमारस्य मस्तके मृत्तिकायाः पालिं बध्नाति, बध्वा ज्वलन्त्या चितायाः विकसित-पलाश-कुसुम समानान्, खदिरंगारान् कर्परेण गृह्णाति गृहीत्वा गज-

सुकुमारस्य कुमारस्य मस्तके प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य भीतः ततः क्षिप्रमेव अपक्रामति, अपक्रम्य यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः।

पदार्थ—**इमं**—इधर; **च**—समुच्चयार्थक है; **सोमिले माहणे**—सोमिल ब्राह्मण; **सामिधेयस्स**—समिधाओं के; **अट्ठाते**—लिये; **बारवतीओ**—द्वारिका; **नयरीओ**—नगरी से; **बहिया**—बाहर **पुव्व**—पहले ही; **णिग्गते**—गया हुआ था; **समिहातो**—समिधाएं; **य**—और; **दब्भे**—दर्भ; **य**—और; **कुसे**—कुशा; **य**—और; **पत्तामोडं**—पत्तों को; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है और **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके; **ततो**—उसके बाद; **पडिनियत्तइ**—लौटता है; **पडिनियत्तित्ता**—लौटते हुए; **महाकालस्स सुसाणस्स**—महाकाल श्मशान के; **अदूरसामतेणं**—अत्यन्त निकट से; **वीइवयमाणे**—निकलते हुए; **संझाकालसमयंसि**—सन्ध्या के समय; **पविरलमणुस्संसि**—मनुष्यों का आवागमन कम होने पर; **गयसुकुमालं**—गजसुकुमाल; **अणगारं**—अनगार—मुनि को; **पासइ**—देखता है; **पासित्ता**—और देख कर; **तं वेरं**—उस वैर को; **सरइ**—याद करता है; **सरित्ता**—और याद करके; **आसुरुत्ते**—अत्यन्त क्रुद्ध; ५—इस अंक से— **रुट्ठे**—रुष्ट; **कुवित**—क्रुद्ध; चंडिक्किए—अति क्रोधी; **मिसिमिसिमाणे**—दान्त पीसने वाला हो कर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा।

एस भो!—ओह!—यह; **से**—वही; **गयसुकुमाले कुमारे**—गजसुकुमाल कुमार है; **अपत्थिय**—जिसकी कोई इच्छा नहीं करता उस मृत्यु को चाहने वाला। **जाव**—यावत्; **जे**—जो; **परिवज्जिए**—श्री और लज्जा से रहित है; **ममं धूयं**—मेरी लड़की, **सोमसिरीए भारियाए**—सोम श्री भार्या की; **अदिट्ठ-दोस-पइयं**—अदृष्ट-दोष-पतित—जिसमें कोई दोष नहीं है और जो जाति आदि से बहिष्कृत भी नहीं है ऐसी निष्कलंक; **कालवत्तिणि**—युवति विवाह योग्य; **अत्तयं**—पुत्री; **सोमं—दारियं**—सोमा बालिका को; **विप्पजहेत्ता**—छोड़कर, **मुंडे**—मुण्डित होकर; **जाव**—यावत् **पव्वइए**—दीक्षित हो गया है;। **ममं**—मुझे; **खलु**—निश्चय ही, **सेयं**—योग्य है; **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार के; **वेरनिज्जायणं करेत्तए**—वैर का बदला लेना, **एव**—इस प्रकार; **संपेहेइ**—विचार करता है; **संपेहित्ता**—विचार करके; **दिसापडिलेहणं करेइ**—दिशा प्रतिलेखन करता है—चारों ओर देखता है, **करित्ता**—चारों ओर देखकर; **सरसं मट्टियं**—गीली—भीगी हुई मिट्टी को; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है; **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके; **जेणेव**—जहां पर; **गयसुकुमाले अणगारे**—गजसुकुमार मुनि थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आता है; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **गयसुकुमालस्स कुमारस्स**—गजसुकुमाल कुमार के; **मत्थए**—मस्तक पर; **पालि**—पाल; **मट्टियाए**—माटी को; **बंधइ**—बांधता है; **बंधित्ता**—और बांध कर; **जलंतीओ**—जलती हुई; **चियगाओ**—चिता से; **फुल्लियकिंसुयसमाणे**—खिले हुए पलाश के फूलों के समान, लाल-लाल; **खयरंगारे**—खदिर नामक लकड़ी के अंगारों को; **कहल्लेणं**—ठीकरे से; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है; **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके **गयसुकुमालस्स अणगारस्स**—गजसुकुमाल मुनि के; **मत्थए**—मस्तक पर, **पक्खिवइ** २—डाल देता है, **पक्खिवित्ता**—और डाल कर; **तओ**—तदनन्तर; **भीए**—भयभीत—डरा हुआ; **खिप्पामेव**—शीघ्र ही; **तओ**—वहां से; **अवक्कमइ**—भाग जाता है; **अवक्कमित्ता**—और भागकर; **जामेव दिसं**—जिस दिशा से, जिस तरफ से; **पाउब्भूते**—आया था; **तामेव दिसं**—उसी दिशा की ओर; **पडिगते**—चला जाता है।

मूलार्थ—इधर सोमिल ब्राह्मण पहले ही हवन के निमित्त सूखी लकड़ियां लाने के लिए द्वारिका नगरी से बाहिर गया हुआ था। वह लकड़ियां, दाभ, कुशा और पत्ते लेकर जब वापिस लौटा, तब सायंकाल हो चुका था। लोगों का आना जाना भी बहुत कम हो गया था। उस समय महाकाल श्मशान के पास से जाते हुए उसने (ध्यान में खड़े) मुनि गजसुकुमाल को देखा। देखते ही उसके हृदय में बैर जाग उठा। और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने (मन ही मन) कहा—

ओह ! यह मृत्यु को चाहने वाला पुण्य एवं लज्जा से हीन वही गजसुकुमाल कुमार है जो किसी दोष से रहित-निर्दोष तथा जात्यादि से अबहिष्कृत सम्मानित और विवाह योग्य, मेरी पुत्री सोमश्री भार्या की आत्मजा—लड़की को छोड़ कर मुण्डित हो कर प्रव्रजित—दीक्षित हो गया है। अतः मुझे चाहिए कि मैं इस गजसुकुमाल कुमार से इस बैर का बदला लूं। सोमिल ब्राह्मण उक्त विचार-विमर्श के अनन्तर चारों ओर देखता है। जब उसे निश्चय हो गया कि मुझे कोई नहीं देखता है, तब उसने (पास के तालाब से) गीली मिट्टी उठाई, जहां मुनि गजसुकुमाल थे वहां आकर उसके मस्तक पर मिट्टी की पाल बनाता है, तत्पश्चात् धधकती चिता से खिले हुये पलाश के फूलों के समान रग वाले लाल-लाल खदिर लकड़ी के अंगारे एक ठीकरे में उठा कर वह मुनि गजसुकुमाल के मस्तक पर डाल देता है। उसके बाद उसकी अन्तरात्मा काँपने लगी, वह डर गया, और उसी समय वहां से भाग गया, जिधर से आया था उधर ही चला गया।

व्याख्या—इस सूत्र में हवनोपयोगी सूखी लकड़ियां आदि सामग्री ग्रहण करने के लिये सोमिल ब्राह्मण के द्वारिका नगरी से बाहिर जाने, यज्ञीय लकड़ियां आदि सामग्री लेकर वहा से लौटते हुए महाकाल श्मशान भूमि में ध्यान लगा कर खड़े हुए मुनि श्रीगजसुकुमाल को देखकर, अपनी निरपराध कन्या को बिना किसी भी कारण के त्याग कर दीक्षित हो जाने से क्रोधावेश में आने, और क्रोध के वशीभूत हो कर उसके सिर पर गीली मिट्टी की पाल बांधकर उसमे धधकते खदिर लकड़ी के अंगारों को रख कर वापिस लौट जाने आदि का बड़ा ही हृदयविदारक, मार्मिक उल्लेख किया गया है।

इस कथानक से क्रोध की भयंकरता का स्पष्ट रूप से पता चल जाता है। क्रोध की अवस्था में मनुष्य पागल हो जाता है। जिस प्रकार नदी के बढ़े हुए जल-वेगके आगे तृण-काष्ट आदि बह जाते हैं, उसी प्रकार क्रोध के प्रबल वेग के सामने मनुष्य की विचार, विवेक आदि सभी शक्तियां बह जाती हैं, उसको अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य हानि-लाभ का कुछ भी भान नहीं रहता। क्रोधावेश में आकर सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि के साथ जो अमानुषिक व्यवहार

किया है, उससे मनुष्य प्रकृति की क्रोध मूलक दुर्भावना का सहज में ही परिचय प्राप्त हो जाता है इसीलिए शास्त्रकारों ने मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में क्रोध को एक भयंकर प्रतिबंधक माना है। यही क्रोध मनुष्य को नरकादि दुर्गतियों की दुःखाग्नि में अनादि काल से जलाता चला आ रहा है। यही क्रोध मनुष्य को आंखों के रहते अन्धा बना देता है। अतः सुखाभिलाषी तथा कल्याण-कामुक मनुष्य को इस क्रोध-पिशाच से सदा दूर रहना चाहिये।

"**सामिधेयस्स**"—की व्याख्या करते हुए टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि लिखते हैं—"**सामिधेयस्सत्ति—समित्-समूहस्य**" अर्थात् समिध् शब्द से हवन मे जलाई जाने वाली लकड़ी का ग्रहण किया जाता है। इन लकड़ियों के समुदाय का नाम **सामिधेय** है।

"**समिहातो य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च**" यहां पर समिध्, दर्भ, कुशा और आमोटितपत्र इन चार शब्दों का प्रयोग है। इन्धनभूत लकड़ी या हवन में जलाई जाने वाली लकड़ी को समिध्, मूल सहित डाभ जड़ों वाली कुशा जैसी घास को दर्भ, डाभ के अग्रभाग को कुशा तथा देवपूजन के लिये वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग से तोड़े हुए पत्रों को आमोटित पत्र कहते है। आचार्यवर अभयदेवसूरि के शब्दों मे समिध् आदि की व्याख्या इस प्रकार है।

"समिहाउत्ति" **इन्धनभूता काष्ठिकाः**, "दब्भेत्ति" **समूलान् दर्भान्**, "कुसेत्ति" **दर्भाग्राणीति**, "**पत्तामोडयं चत्ति**" शाखि-शाखा—**शिखामोटितपत्राणि देवतार्चनार्थानीत्यर्थः।**

एक स्थान पर—**पत्तामोडयं** "का अर्थ—**पत्रामोटम्-पत्राणामामोटः पत्रामोटस्तंपत्रामोटम्—पत्रसमूहमित्यर्थः**" ऐसा लिखा है। इसके अनुसार "पत्तों" के समूह को **पत्रामोट** कहते हैं।

"**अदूरसामन्तेणं**" यहां पठित अदूर-सामन्त शब्द का अर्थ है—वह प्रदेश जो न तो बहुत दूर हो और न बहुत पास हो। सूत्रकार यह पद देकर यह ध्वनित करना चाहते हैं कि सोमिल ब्राह्मण महाकाल श्मशान के इतना पास भी नहीं था कि श्मशान का धूआं उसको खेद-खिन्न कर रहा हो और वह श्मशान से इतना दूर भी नहीं था कि श्मशान के दृश्यों को वह देख ही न सकता हो।

"**पविरलमणुस्संसि**"—**प्रविरला मानुषा यस्मिन्, तस्मिन्, क्वचित्-क्वचिद् दृष्टिगोचरी भवजनने प्रायो मानुष्यागमनरहिते,** अर्थात् जहाँ मनुष्यों का आना जाना विशेष रूप से समाप्त हो गया हो, उसे 'प्रविरल-मानुष्य' कहते है।

"**आसुरुत्ते ५**" यहां ५ के अङ्क से—**रुट्ठे—कुविए-चंडिक्किए** और **मिसिमिसीमाणे इन अवशिष्ट** चार पदों का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है। **आसुरुत्त**" इस शब्द के आशुरुप्त तथा आसुरोक्त ये दो संस्कृत रूप होते हैं दोनों का अर्थ विभेद इस प्रकार है—

जो शीघ्र ही क्रोध से विमोहित हो जाए, कृत्य-अकृत्य, के विवेक से रहित हो जाये, वह **आशुरुप्त** या जिसकी वाणी क्रोधी राक्षसों जैसी हो उसे आसुरोक्त कहते हैं। रोष करने वाला रुष्ट, मन से क्रोध करने वाला कुपित क्रोधाधिक्य के कारण भीषणता को प्राप्त चाण्डिक्यित तथा क्रोधाग्नि से जल कर दान्त पीसने बाला **मिसिमिसीमान** कहलाता है।

"अप्पत्थिए जाव परिवज्जिए" यहां पठित **जाव** पद से—**पत्थए दुरंत पंतलक्खणे, हीनपुन्न-चाउद्दस-हिरि-सिरि"** इन पदों का ग्रहण किया जाता है। अप्रार्थित—जिस की याचना नहीं की गई उस मृत्यु की प्रार्थना-याचना करने वाले को—अप्रार्थित तथा प्रार्थक, दुष्टावसान (जिसका अन्त दुष्ट—दुःखप्रद हो) होने से खराब लक्षणों वाले को दुरन्त-प्रान्त-लक्षण, जिस का पुण्यहीन हो गया हो तथा चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ हो, उसको पुण्यहीन चातुर्दश-पापात्मा, लज्जा तथा लक्ष्मी से रहित को—ह्री-श्री—परिवर्जित* कहते हैं।

"अविट्ठ-दोस-पइयं" दुष्टो दोषश्चौर्यादिर्यस्याः सा दृष्टदोषा, सा चासौ पतिता—जात्यादेर्बहिष्कृता, दुष्टदोषपतिता न तथेत्यदृष्ट-दोषपतिता अथवा न दृष्टदोषपतिता इत्यदृष्टदोषपतिता अथवा अदृष्टं दोषप्रकृतिम् न दृष्टो दोषो यया सा अदृष्टदोषा, तादृशी प्रकृतिर्यस्या सा तां मरणवांच्छक इति भावः। दुरन्त-प्रान्त-लक्षणः, दुरन्तं दुष्टावसानम् अत एव प्रान्तम्—अमनोज्ञं लक्षणं यस्य सः—भाग्यहीनः इत्यर्थः। हीनपुण्यश्चातुर्दशः चातुर्दश्यां जातः चातुर्दशः, हीनं पुण्यं यस्यासौहीनपुण्यः। हीनपुण्यश्चासौ-चातुर्दशश्च हीनपुण्यचातुर्दशः—पापात्मा इत्यर्थः। ह्री-श्री-परिवर्जितः—लज्जालक्ष्मी रहित इत्यर्थः। अदुष्ट स्वभावभावामित्यर्थः।

अर्थात् **"अविट्ठ-दोस-पइयं"** इस पद के **"अदृष्ट-दोषपतितां"** तथा **अदृष्टदोष-प्रकृतिम्"** ये दो संस्कृत रूप बनते हैं। अदृष्ट दोष पतित के दो अर्थ होते हैं—१. जिस लड़की में चोरी आदि करने का कोई अवगुण-दोष न हो अथवा जो लड़की जाति आदि से बहिष्कृत—बाहिर निकाली हुई न हो अथवा बिना दोष देखे ही जिस लड़की को छोड़ दिया गया हो, उसे अदृष्टदोष पतित कहते हैं, किसी में दोष देखने का जिस लड़की का स्वभाव न हो, वह बालिका—**अदृष्टदोषप्रकृतिः** कही गई है।

"कालवत्तिणी—काले-भोगकाले यौवने वर्तते इति कालवर्तिनी।" अर्थात् जो लड़की युवति होने के कारण विवाह योग्य हो रही हो उसे कालवर्तिनी कहते हैं।

"वेरनिज्जायणं—वैरनिर्यातनम्—इस पद का अर्थ है—वैर का निकालना, शत्रुता का बदला लेना। इस पद द्वारा सोमिल ब्राह्मण ने मुनिराज गजसुकुमाल को अपना शत्रु अभिव्यक्त किया है शत्रुता के कारण उसने—**"अविट्ठदोसपइयं"** अथवा **कालवत्तिणी**—इन पदों द्वारा शत्रुता के भाव प्रगट किये हैं।

सोमा का पिता होने के नाते सोमिल ब्राह्मण गजसुकुमार को ध्यानस्थ मुनि के रूप में खड़े देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह सोचने लगा—यह क्या अनर्थ हो गया? सोमा का भावी पति तो साधु बन गया है। सोमा युवती है एवं विवाह योग्य है, इसके सम्बन्ध का सब को पता लग गया है अब इसका दूसरे स्थान पर सम्बन्ध कैसे होगा? फिर यह सम्बन्ध मैंने तो नहीं किया। द्वारिकाधीश ने स्वयं लड़की की याचना करके यह सम्बन्ध जोड़ा है। कितना खेद है कि आज इसे तोड़ दिया गया है जैसे कोई बात ही न हुई थी।

सोमिल की विचारधारा गंभीर होने लगी वह कहने लगा—हां! मैं यह स्वीकार करता हूं कि यदि लड़की में कोई दोष होता या चरित्र-हीनता का कोई अपयश होता या उसको और कोई

***अप्रार्थित—प्रार्थकः—अप्रार्थितस्य—अयाचितस्य मृत्योः प्रार्थकः।**

अंगुलि उठाता, किसी ने इससे सम्बन्ध विच्छेद कर रखा होता तो इस सम्बन्ध को भले ही तोड़ दिया जाता, मैं कभी खेद प्रकट न करता, स्वयं ही विवाह करने से इन्कार कर देता पर बिना किसी दोष के बताये यूं ही लड़की छोड़ देना कितनी बुरी बात है और मेरा कितना अपमान किया है दुनियां को क्या मुख दिखलाऊगा, मेरे लिये तो डूब मरनेवाली बात है।

यह सोचकर सोमिल तिलमिला उठा, उसकी आंखों से रक्त बरसने लगा, उसकी त्योरियां चढ़ गई, क्रोध के मारे वह दाँत पीसने लगा। अन्त में उसने, निश्चय किया कि गजसुकुमाल ने सर्वथा निर्दोष और सोने जैसी निष्कलंक मेरी सोमा को छोड़ कर मेरे से जो वैर कमाया है—शत्रुता ठानी है, जब तक उसका बदला न ले लू तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूंगा।

गजसुकुमार को इस शत्रुता का दण्ड अवश्य दूंगा। सोमिल के इस द्वेषपूर्ण आन्तरिक निर्णय को ही सूत्रकार ने **"वेर निज्जायणं करेसए"** इन पदों से अभिव्यक्त किया है।

जब हम सोमिल ब्राह्मण की द्वेषपूर्ण मानसिक स्थिति का ऊपर-ऊपर से अध्ययन करते हैं, तो यह तर्क-संगत दिखाई देता है। पर जब सूक्ष्म दृष्टि से इसका परिशीलन करते है तो मानना पड़ेगा कि सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार पर द्वेष करना निर्मूल है; निराधार है, इसमें कोई सत्यता नहीं है, क्योंकि गजसुकुमार सर्वथा निर्दोष हैं, उनमें कोई दोष दिखाई नहीं देता। पिछला प्रकरण बतलाता है कि गजसुकुमार की ओर से सोमा के साथ विवाह करने का कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया, न सोमा के विवाहित होने का उन्होने कोई वचन दिया था। गजसुकुमार जी को तो विवाह से कोई लगाव ही नहीं था। यह अधिक सम्भव है कि गजसुकुमार को कन्याओं के अन्तःपुर का पता ही न हो। संयम साधना के परमाराधक मनुष्य को वासना-प्रधान जीवन की सामग्री से प्रयोजन ही क्या हो सकता है? विष और अमृत, प्रकाश और अन्धकार का नाता कैसा? इसके अतिरिक्त यदि गजसुकुमार सोमा को छोड़ कर किसी दूसरी लड़की से विवाह करवाने का प्रस्ताव रखते या उसकी स्वीकृति देते तब तो सोमिल का रुष्ट होना कुछ जंचता था पर गजसुकुमार तो विवाह की दुनिया से ही संन्यास ले रहे हैं, कञ्चन, कामनी के सर्वथा त्यागी बन कर ब्रह्मचर्य जैसे असिधारा व्रत के भयंकर साधना-पथ पर चल रहे है, ऐसी दशा में उनपर रोष करना उनको हानि पहुंचाने का हृदय में संकल्प भी लाना बहुत बड़ी भूल करना है, ब्रह्मचर्य के महादेव का धृष्टतापूर्वक अपमान करना है।

"दिसापडिलेहणं--दिशाप्रतिलेखनम्—का अर्थ हैं—दिशाओं को देखना, कोई आता या जाता तो नहीं, इस दृष्टि से चारो ओर अवलोकन करना। सोमिल ब्राह्मण का गजसुकुमार के सिर पर अंगीठी बनाकर उसमें अंगारे डालने से पूर्व जो चारों ओर देखना है यह प्रकट करता है कि हिंसक हिंसा करता हुआ सदा डरता है, उसकी अन्तरात्मा एक बार कांप उठती है। वस्तुतः हिंसात्मक पापमयी प्रवृत्ति का इस जीव पर महान् प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की प्रवृत्ति पतन की ओर जाते हुए उस आत्मा को कितना प्रबल संकेत करती है और भय कंपादि के द्वारा उसकी परिणाम-भयंकरता को कितना स्पष्ट करती है, आदि सभी बातों का अनायास ही स्पष्ट बोध प्राप्त हो जाता है। हिंसा और अहिंसा में यही अन्तर होता है। हिंसा भय और पतन की जननी है। इसके विपरीत अहिंसा दयामय-प्रवृत्ति निर्भयता और उत्थान की उत्पादिका है। अहिंसक आत्मा में

उत्साह, प्रसन्नता, शान्ति और गंभीरता आदि गुणों का उत्तरोत्तर विकास होता है, जबकि हिंसक आत्मा में इन सद्गुणों का ह्रास होता है।

"फुल्लिय-किंसुय समाणे" का अर्थ टीकाकार अभयदेव सूरि के शब्दों में इस प्रकार है—

विकसित-पलाश-कुसुम-समानान् रक्तानित्यर्थः। अर्थात् खिले हुये पलाश—टेसू के फूलों के समान। जैसे टेसू के फूलों का रंग अत्यधिक लाल होता है ऐसे अत्यधिक लाल वर्णवाले।

"खयरंगारे"—का अर्थ है—खैर नामक वृक्ष की लकड़ी के अंगारे।

सूत्रकार कहते हैं कि सोमिल ब्राह्मण ने जलती हुई चिताओं से जिन अंगारों को उठाकर गजसुकुमार के मस्तक पर डाला था वे अंगारे खैर लकड़ी के थे। इस वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि उस युग में शवदाह के लिए मृतकों को जलाने के लिए खदिरकाष्ट—खैर वृक्ष की लकड़ियों का अधिक प्रयोग होता होगा या इस लकड़ी की मुख्यता होगी।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि मुनि गजसुकुमार के मस्तक पर जलते हुए अंगारों को रख कर सोमिल ब्राह्मण भाग जाता है। इसके अनन्तर क्या हुआ। अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयसि वेयणा पाउब्भूता, उज्जला जाव दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसावि अप्पदुस्समाणे त उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे। ततो पच्छा सिद्धे जाव पहीणे। तत्थ णं अहासंनिहितेहिं देवेहिं "सम्म आराहितंत्ति" कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिते, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीय-गंधव्व-निनाये कए यावि होत्था।

छाया—ततस्तस्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता। उज्ज्वला यावद् दुरधिसहा। ततः स गजसुकुमालोऽनगारः सोमिलस्य माहनस्य मनसापि अप्रद्विष्यन्* तामुज्ज्वलाम-धिसहते। ततस्तस्य गजसुकुमालस्यानगारस्य तामुज्ज्वलां यावद् अधिसहमानस्य शुभेन परिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन तदावरणीयानां कर्मणां क्षयेण कर्म-रजोविकिरणकरमपूर्वकरणमनुप्रविष्टस्य अनन्तम-नुत्तरं यावद् केवल-वर-ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्, ततः पश्चात् सिद्धो यावत् प्रहीणः। तत्र यथासंनिहितैः देवैः "सम्यग् आराधितम्" इति कृत्वा दिव्यं सुरभिः गन्धोदकं वर्षितं, दशार्द्धवर्णानि कुसुमानि निपाति-तानि, चैलोत्क्षेपः कृतः, दिव्यश्च गीत-गंधर्व-निनादकृतश्चाप्यभवत्।

पदार्थ—**तते**—उस के पश्चात्; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है; **तस्स**—उस; **गयसुकुमालस्स**—गजसुकुमाल; **अणगारस्स**—मुनि के; **सरीरयंसि**—शरीर में, **उज्जला**—अत्यधिक दुःखमयी; **जाव**—यावद्; **दुरहियासा**—अत्यन्त असह्य; **वेयणा**—वेदना, पीड़ा; **पाउब्भूता**—उत्पन्न हुई; **तते**—तदनन्तर; **से गयसुकुमाले**—वह गजसुकुमार; **अणगारे**—अनगार—मुनि; **सोमिलस्स**—

* द्वेषमगच्छन्नित्यर्थः

सोमिल; **माहणस्स**—ब्राह्मण पर; **मणसावि**—मन से भी; **अप्पदुस्समाणे**—द्वेष न करते हुए; **तं उज्जलं**—उस उज्ज्वल; **जाव**—यावद्—वेदना को; **अहियासेमाणस्स**—सहन करते हुए; **तस्स गयसुकुमालस्स**—उस गजसुकुमाल; **अणगारस्स**—मुनि के; **सुभेणं**—शुभ; **परिणामेणं**—परिणाम विचार से; **पसत्थज्झवसाणेणं**—प्रशस्त अध्यवसान—आत्म समाधि द्वारा; **तदावरणिज्जाण**—कर्मों के; **खएणं**—क्षय होने पर; **कम्म-रय-विकिरण-करं**—ज्ञानावरणीयादि कर्मों के मल को नष्ट करने वाले; **अपुव्वकरणं**—आत्मा के अपूर्व (अभूतपूर्व) शुभ परिणाम को; **अणुपविट्ठस्स**—प्राप्त मुनि गजसुकुमार को; **अणंते**—अनन्त—जिसका अन्त न हो; **अणुत्तरे**—अनुत्तर—जिससे उत्तर—प्रधान कोई न हो; **जाव**—यावत्; **केवल-वरणाण-दंसणे**—श्रेष्ठ केवल ज्ञान और केवल दर्शन; **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हो गया; **तत्तो पच्छा**—उसके पश्चात्; **सिद्धे**—सिद्ध—कृतकृत्य; **पहीणे**—सर्व दुःखों से रहित; **जाव**—यावत्; **तत्थ णं**—वहाँ पर; **अहासंनिहितेहिं**—समीपवर्ती, **देवेहिं**—देवों ने; **सम्मं आराहितं**—चारित्र का पालन ठीक ढंग से किया है; **त्ति कट्टु**—ऐसा कह कर; **दिव्वे**—दिव्य—दैविक शक्ति से सम्पादित **सुरभिगन्धोदए**—सुगन्धित जल की '**वुट्ठे**—वर्षा की; **दसद्धवण्णे**—पांच वर्ण वाले; **कुसुमे**—फूलों की; **निवाडिते**—वर्षा की; **चेलुक्खेवे कए**—वस्त्रों की वृष्टि की; **दिव्वे य**—और; देवसम्बन्धी; **गीय**—गीत-स्वर ताल से युक्त गायन, **गंधव्व**—गांधर्व मृदंग आदि का बजाना; **निनाये**—गीत और गांधर्व के निनाद ध्वनियें; **कए यावि होत्था**—भी किए गए।

मूलार्थ—सोमिल ब्राह्मण के द्वारा गजसुकुमाल के मस्तक पर माटी की पाल बना कर उसमें जाज्वल्यमान अंगारे डालने के पश्चात् उनके शरीर में अत्यधिक दुःखमयी असह्य वेदना उत्पन्न हुई तथापि मुनि गजसुकुमाल सोमिल ब्राह्मण के ऊपर मन से भी किसी प्रकार का द्वेष न लाते हुए उस भयंकर असह्य वेदना को सहन करने लगे। इस प्रकार महावेदना को सहन करने वाले उस गजसुकुमार मुनि के शुभ परिणाम और प्रशस्त अध्यवसाय—आत्मिक चिंतन के कारण आत्मिक गुणों के घातक ज्ञानावरणीयादि कर्ममल को नष्ट करनेवाले अपूर्वकरण (अभूतपूर्व आत्मिक शुभपरिणाम) में प्रवेश करके उन्होंने सर्वप्रधान, अनन्त सदा बने रहने वाले, ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त कर लिया। उसके अनन्तर आयुष्यकर्म के क्षीण होने से वह सिद्ध—कृतकृत्य, बुद्ध—सकल पदार्थों के ज्ञाता, मुक्त—सकल कर्मों और सर्व प्रकार के दुःखों से रहित हो गए।

महामुनि गजसुकुमार के मुक्त हो जाने के अनन्तर समीपवर्ती देवताओं ने "चारित्र की सम्यक् आराधना की है" यह कह कर दिव्य—वैक्रियमय-सुगन्धित जल की वर्षा की, पांच प्रकार के फूल बरसाये, वस्त्रों की वर्षा की, दिव्य गीतों तथा मृदंगों के स्वरों से आकाश को गुंजा दिया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में श्री गजसुकुमार मुनि के मस्तक पर अंगारे डालने से उन को होने वाली भीषणातिभीषण, हृदय विदारक महावेदना से सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी किसी प्रकार का द्वेष न रखते हुए पूर्ण शान्ति के साथ उस महावेदना को सहन करने के कारण केवलज्ञान तथा केवल-दर्शन को प्राप्त करके मोक्ष में पहुंच जाने का, एवं समीपवर्ती देवताओं द्वारा निर्वाणोत्सव मनाने का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत कथानक में यदि सबसे अधिक ध्यान देने योग्य कोई बात है तो वह मंगलमूर्ति, धीरशिरोमणि, मुनिराज श्री गजसुकुमाल जी महाराज द्वारा की गई क्षमा तथा लोकोत्तर धीरता की विलक्षण आराधना की बात है। मस्तक पर अंगारे रख कर उसे अंगीठी बना देने पर गजसुकुमाल जी को कितना भयंकर कष्ट हुआ होगा? यह केवली भगवान के अतिरिक्त कौन बता सकता है? अल्पज्ञ व्यक्ति तो केवल अनुमान लगा कर कुछ कह सकता है। देखा गया है अधिक उष्ण पानी का मनुष्य के हाथ को यदि कभी स्पर्श हो जाये तो छाले पड़ जाते हैं, असह्य वेदना होने लगती है, मनुष्य तड़प उठता है—पर सिर को ही अंगीठी बना देने जैसे विकटतम परीषह के उपस्थित होने पर बड़े साहस के साथ उस पर पूर्णरूप से विजय प्राप्त करना किसी धीर, वीर एवं गंभीर पुरुष का ही काम हो सकता है। इसके अलावा जिस व्यक्ति ने सिर को अंगीठी बना देने की दुष्टता की हो तथा जो जीवन का सर्वनाश करने पर तुला हो, सामर्थ्य होने पर भी उसके लिये किसी प्रकार का अनिष्ट न सोचना, न करना, राग-द्वेष से बिल्कुल दूर रहना यह और भी विलक्षण बात है। प्रस्तुत कथानक में जहां सोमिल ब्राह्मण हमें क्रूरता, निर्दयता, पिशाचता की चलती-फिरती प्रतिमा दिखाई देती है वहां मुनि गजसुकुमार जी महाराज हमे आदर्श साधुता, अद्भुत, धीरता विलक्षण-क्षमा अनुपम सहिष्णुता के महासागर दिखाई देते हैं। यह बिना किसी सकोच के कहना पड़ेगा कि धीरशिरोमणि मुनि गजसुकुमार ने सयम साधना के दिव्य आदर्श का जो परिचय दिया है उसका अन्यत्र मिलना बड़ा कठिन है।

पर—ऊपर से जब लोग इस कथानक को पढते हैं, सिर को अंगीठी बनाने से होने वाली महा-वेदना को सहन करने की बात का परिशीलन करते है तो सहसा उन्हें अतिशयोक्ति सी दिखाई देती है। उन्हें अनुभव होता है कि इतनी भयकर वेदना होने पर हृदय कैसे शान्त रखा जा सकता है? ऐसी असह्य वेदना तो जीवन की जड़ें हिला देती हैं। गजसुकुमार इस महावेदना के समय शान्त रह सके होंगे? यह संदिग्ध है। ऐसे विचार साधारण मनुष्यों के हृदयों में आ सकते हैं। विशेष रूपेण वह मनुष्य जिन्होंने कभी जीवन-दर्शन के दर्शन नही किए उनको गजसुकुमार जी की सहिष्णुता में सन्देह हो सकता है, परन्तु जो अनुभवी हैं, वेदना के क्षेत्र में पले हैं, वेदना जिन की जीवन-संगिनि रही है तथा जो आदि मध्य अन्त तक वेदना से ही प्यार करते रहे हैं उन को गजसुकुमार मुनि की सहनशीलता तथा सहिष्णुता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। वे अच्छी तरह यह जानते हैं समझते हैं कि अग्निदाह की भीषण वेदना का सहन करना कठिन अवश्य है पर असंभव नहीं। इतिहास इस बात का गवाह है। हजारों वर्ष पुराने इतिहास को यदि न दोहराएं तो वर्तमान कालिक स्वतन्त्रता-युद्ध के इतिहास को ही देख लें।

बंगाल में एक क्रान्तिकारी दल था, भारत से अंग्रेज का बहिष्कार केवल हिंसा के बल से ही हो सकता है, अहिंसा से नहीं ऐसा उस का विश्वास था। अंग्रेज स्वयं भी इस दल की हिंसा-

पूर्ण नीति से बड़े भयभीत थे, सतर्क थे। इस दल का सदस्य बनने के लिये एक बड़ी कड़ी शर्त थी। जो व्यक्ति इस का सदस्य बनना चाहता हो उसे सदस्य बनने से पूर्व एक परीक्षा देनी पड़ती थी। परीक्षा का रूप यह था कि परीक्षक परीक्षार्थी के सामने जलता हुआ दीपक रख देता था। परीक्षार्थी को उस की शिखा पर अपनी अंगुली रख देनी होती थी। शिखा की आग जब अंगुली को जलाती थी उसे नष्ट करती थी, तब परीक्षार्थी को बिल्कुल शान्त रहना पड़ता था वह मुख से उफ़ तक नहीं कह सकता था। यदि परीक्षार्थी अपनी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाए तब परीक्षक उसे अपने क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनाता था, अन्यथा नहीं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कोई काल्पनिक बात नहीं है।

इस ऐतिहासिक सत्य से हम यह देख सकते हैं अच्छी तरह समझ सकते हैं कि अग्निदाह को सहन किया जा सकता है। अग्निदाह का सहन करना कठिन अवश्य है पर असंभव बात नहीं है। पर इस सत्य से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह सब उसके लिये संभव है जिस के हृदय में सच्ची लगन हो, जिस के कण-कण में सच्चा विश्वास हो, पूर्ण निष्ठा हो, मेरु जैसी अटलता हो। जिस मनुष्य में विश्वास ही नहीं ज़रा स्थिरता एवं दृढ़ता ही नहीं मारणान्तिक कष्ट तो कहां सामान्य कष्ट सहन करना भी उस के वश की बात नहीं होती। मुनि गजसुकुमार के सच्चे विश्वास में कहीं कोई कमी दिखाई नहीं देती। इन का विश्वास मेरु पर्वत से भी बढ़ना सुदृढ़ था। यही कारण है, कि कृष्ण महाराज द्वारा द्वारिका का मुकुट सर पर रख देने पर भी यह मोह-माया में नहीं फंसे। अपने विश्वास पर दृढ़ रहे, सयम साधना के महापथ पर चल दिए और अब जबकि इन के सिर पर सोमिल ब्राह्मण ने अंगीठी रख दी तब भी इन के दृढ़ विश्वास में कोई कम्पन नहीं आया। महावेदना के होने पर भी बिल्कुल शान्त रहे, आत्मचिन्तन में मस्ती से लगे रहे। इस के अलावा इन्होंने सोमिल ब्राह्मण के सम्बन्ध में द्वेषपूर्ण किसी भी विचार को अपने हृदय में आने नहीं दिया। इस से बढ़ कर गजसुकुमार जी के अटल एवं सुदृढ़ विश्वास का क्या प्रमाण हो सकता है?

संस्कृत के एक विद्वान आचार्य कितनी सुन्दर बात कहते हैं —

क्षमा वीरस्य भूषणम्—क्षमा वीर पुरुषों का ही भूषण हो सकता है कमज़ोरों का नहीं। वस्तुतः अध्यात्मिक जीवन में क्षमा का बहुत ऊंचा स्थान है। इस की उपासना किए बिना अध्यात्मिक जगत में सफलता के दर्शन नहीं हो सकते, क्षमा भगवती है, इस भगवती की आराधना से ही मोक्ष का महापथ मिल सकता है। अतः मोक्षाभिलाषी साधक वर्ग को क्षमा-वीर गजसुकुमार की भान्ति क्षमा-प्रधान जीवन द्वारा परमसाध्य मोक्ष को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

उज्जला जाव दुरहियासा—यहां पठित **जाव** पद **"विउला-कक्खडा-पगाढा-चंडा-रुद्दा-दुक्खा"** इन पदों का परिचायक है। उज्ज्वल, विपुल आदि पदों की व्याख्या वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

वेदना किं विधा? उज्ज्वला-विपक्षलेशेनापि अकलंकिता, विपुला-शरीरव्यापकत्वात्। क्वचित् "तिउलेहिं" पाठ है, तत्र त्रीनपि मनोवाक् कायलक्षणान् अर्थान् तुलयति, जयति तुलाव्हवाभिवाकरोति

त्रितुला, कर्कशा—कर्कशद्रव्यमिवानिष्टेत्यर्थः, प्रगाढा—**प्रकर्षवती, चण्डा—रौद्रा, दुःखा—दुःखरूपा न सुखेत्यर्थः, किमुक्तं भवति ? दुरधिसह्या।**

गजसुकुमाल मुनि के सिर पर जब अंगारे रखे गए तब उन को जो वेदना हुई उसी की भयंकरता को सूत्रकार ने उज्ज्वल आदि शब्दों द्वारा संसूचित किया है। **उज्ज्वल आदि** पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१—**उज्ज्वला**—अत्यधिक दुःख, जिस में सुख का चिह्न भी न हो।

२—**विपुला**—महान, जो सारे शरीर को पीड़ित कर रही हो। वृत्तिकार कहते हैं कि किसी किसी प्रति मे विपुला के स्थान पर त्रितुला यह शब्द भी देखा जाता है। **त्रितुला** का अर्थ है—वह वेदना जिस में मन, वचन और शरीर इन तीनों की दुरवस्था हो जाए।

३—**कर्कशा**—कर्कश—कठोर द्रव्य की तरह अनिष्ट-अप्रिय।

४—**प्रगाढा**—अत्यधिक भयकर।

५—**चण्डा**—उग्र, तीव्र।

६—**रौद्रा**—भीषण।

७—**दुःखा**—जिस में दुःख ही दुःख है।

८—**दुरधिसह्या**—जिस का सहन करना बहुत ही कठिन है।

उज्ज्वल आदि पद प्रायः समानार्थक से ही हैं। सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर जो अन्तर उपलब्ध होता है उस का दिग्दर्शन करा दिया गया है। सब पदों का भाव इतना ही है कि मुनिराज गजसुकुमार की वेदना अत्यधिक हृदयविदारक थी, भयकर थी, असह्य थी। साधारण मनुष्य इसको सहन नहीं कर सकता है।

"सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं"* इस पाठ में दो बातें बताई हैं—१—शुभ परिणाम तथा २—प्रशस्त अध्यवसाय। दोनों का अर्थ विभेद इस प्रकार है—१—सामान्य रूप से शुभनिष्पाप विचारों को शुभ परिणाम कहते हैं। २—विशेष रूप से आत्मसमाधि में लग जाने या सूक्ष्म आत्म-चिन्तन में संलग्न होने की दशा को प्रशस्त अध्यवसाय कहा गया है।

"तदावरणिज्जाणं कम्माणं"—तत्तदात्मगुणावरकाणां कर्मणाम्"। यहां कर्म विशेष्य है और तदावरणीय यह उस का विशेषण है। कर्म शब्द आत्म प्रदेशों से मिले कर्माणुओं का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणों को ढकने वाले, इस अर्थ का सूचक—तदावरणीय शब्द है।

"कम्म-रय-विकिरण-करं-कर्मरजो विकिरणकरम्—कर्म ज्ञानावरणादि, तदेवरजः मलिन-कारकत्वात्, तस्य यद् विकिरणं—पृथक्करणं ध्वंसनमिति, तस्य करं-कारकम्—अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज—मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कर्मरजो-विकिरण-कर कहते हैं।

* **शुभेन परिणामेन-शुभात्मक-परिणतिलक्षणेन। प्रशस्ताध्यवसानेन उत्कृष्टतया सूक्ष्मात्मचिन्तनेन।**

अपुव्वकरणं—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्वं शुभपरिणामम्। यहां पठित **"अपूर्वकरणं"** जिसकी कभी पहले प्राप्ति नहीं हुई—इस अर्थ का बोधक है। यह आठवें **निवृत्तिबादर गुणस्थान*** का भी परिचायक माना गया है। जिस जीव के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध, मान-माया तथा लोभ ये चारों कषाय निवृत्त हो गये हों, उसके स्वरूप-विशेष को निवृत्तिबादर गुण-स्थान कहते हैं। इस गुणस्थान से उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दो श्रेणियां आरम्भ होती हैं। उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियां उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान पर जाकर रुक जाता है और क्षपक श्रेणीवाला जीव दसवें गुणस्थान से सीधा बारहवें गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाति (जिसमें पतन न हो) हो जाता है। आठवें गुणस्थान में आरूढ़ हुआ जीव क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो कर जब बारहवें गुणस्थान में पहुंच जाता है तब उसकी **अपूर्वकरण** दशा होती है। इस अवस्था में जाकर जीव समस्त-घाती कर्मों का क्षय करता हुआ कैवल्य को प्राप्त करके परम-कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत में सूत्रकार ने **"अपुव्वकरणं"** ये पद देकर गज-सुकुमार के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है। भाव यह है कि गजसुकुमार मुनि ने आठवें गुणस्थान में प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था।

"अणंते-अणुत्तरे जाव केवल वर-नाण-दंसणे" यहां पठित **जाव** पद से **"निव्वाघाए-निरावरणे-कसिणे-पडिपुण्णे"** इन पदों का ग्रहण करवाना सूत्रकार को इष्ट है। अनन्त आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. **अनन्त**—अन्त रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा बना रहे। २. **अनुत्तर**—प्रधान—जिससे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, सबसे ऊंचा ३. **निर्व्याघात**—व्याघात—रुकावट रहित। जिसको दीवार वृक्ष-पहाड़ादि की कोई बाधा नहीं होती। ४. **निरावरण**—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नहीं है, चारों ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्षा करनेवाला। ५. **कृत्स्न**—सम्पूर्ण, जो अपूर्ण नहीं है। ६. **प्रतिपूर्ण**—संसार के सब पदार्थों को अपना विषय बनानेवाला, जिससे संसार का कोई पदार्थ ओझल नहीं है।

"केवल-वर-नाण-दंसणे" का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—**केवल-वर-ज्ञानदर्शनं, केवल इति नाम्ना प्रसिद्धम्। एकमात्रं-सजातीय-द्वितीय-रहितं वरं मतिश्रुतज्ञानाद्यपेक्षया श्रेष्ठं ज्ञानं चक्षुर्दर्शनाद्यपेक्षया च श्रेष्ठं दर्शनम्। अनयोः सकल-द्रव्य-पर्याय-विषयकत्वात्।** अर्थात् केवल शब्द जिस का कोई सजातीय नहीं है, इस अर्थ का बोधक है। वर का अर्थ है-श्रेष्ठ। मति श्रुत आदि ज्ञानों की अपेक्षा जो श्रेष्ठ है। वह केवल ज्ञान और चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनादि की अपेक्षा जो श्रेष्ठ है वह केवल वर-दर्शन कहलाता है। केवलज्ञान और केवलदर्शन संसार के समस्त पदार्थों तथा इनकी समस्त पर्यायों—दशाओं को अपना विषय बनाते है, इनको जानते हैं, देखते हैं।

"सिद्धे जाव पहीणे" यहां पठित **जाव** यह पद **बुद्धे-मुत्ते-परिनिव्वाए—सव्वदुक्ख** इन अवशिष्ट पदों का संसूचक है। सिद्ध आदि पदों की अर्थ विचारणा इस प्रकार है—

१. सिद्ध—जो कृतकृत्य हो गया है, जिसके समस्त कार्य सिद्ध—पूर्ण हो चुके हैं। २. **जो लोक अलोक के सर्व पदार्थों का ज्ञाता है। ३. मुक्त-जो समस्त कर्मों से रहित हो चुका है। ४. परिनिर्वात—**

* "अपुव्वकरणंति" अष्टमगुणस्थानकरवृत्तिकरोऽभयदेवसूरिः।

समस्त कर्मगत के विकारों के नष्ट होने से जो शान्त है। ५. सर्व दुःख प्रहीण---जिसके शारीरिक तथा मानसिक दुःख नष्ट हो चुके है।

"अहासंनिहिते देवेहिं सम्मं आराहितं" त्ति कट्टु—यथा संनिहितैर्देवैः—तत्समयसमीपवर्तिदेवैः सम्यक् आराधितम्। अनेन गजसुखमालेन मुनिना चारित्रं सम्यक् आराधितम्, इति कृत्वा—एवं मनसि निधाय। अर्थात् जहां गजसुकुमार मुनिने निर्वाण प्राप्त किया था वहां के समीपवर्ती प्रदेश के देवों ने विचार किया कि गजसुकुमाल मुनि ने चारित्र की सम्यक् आराधना की है। यहां जिन देवों का सूत्रकार ने वर्णन किया है, वे व्यंतर देव ही समझने चाहिएं, क्योंकि उस समय श्मशान भूमि के समीपवर्ती वृक्षादि स्थानों में वे ही विद्यमान हो सकते है। अतः उन्होंने ही मिलकर गजसुकुमाल मुनि का निर्वाणोत्सव मनाया था उन देवों ने हो १. सुगन्धित जल की वृष्टि २. पांच रंग के फूलों की वर्षा ३. वस्त्रों की वर्षा ४. गीतों तथा ५. मृदंगों की ध्वनियों से आकाश को गुंजाया था।

"गीय-गंधव्व-निनाये"—गीत-गान्धर्व-निनादः। गीतं स्वरः तालयुक्तं गानं, गान्धर्वमृदंगादि-वादनम्, अनयोः निनादः ध्वनिः, अर्थात् गीत और गाधर्व की ध्वनि। स्वर और ताल से युक्त गायन को गीत तथा मृदंग आदि बाजे बजाने को गाधर्व कहते है।

गजसुकुमार मुनि के निर्वाण पद को प्राप्त होने पर देवी देवताओं ने निर्वाणोत्सव मनाया, संगीत के मधुर स्वरों से वातावरण को सरस और मधुर बनाया, मृदग (ढोल की तरह का एक बाजा मुरज) बजा कर आकाश को गूजा दिया। इस वर्णन से ध्वनित होता है कि गजसुकुमार के निर्वाण को प्राप्त होने पर देवी-देवताओं ने शोक न मना कर हर्ष मनाया। यहां यह प्रश्न होना स्वभाविक है कि गजसुकुमार की दुःखद् घटना को सुनने वाले श्रोता जनों के साधारण मानस भी जब सहानुभूति के कारण हृदय कांप उठते हैं तब समीपवर्ती देवी देवताओं के हृदयों मे दुःखानुभूति अवश्य होनी चाहिए थी, पर वह क्यों नही हुई ? उन्होंने खेद-खिन्न होने की बजाय हर्ष क्यों मनाया ? उत्तर मे निवेदन है कि गजसुकुमार मुनि की दुःखद घटना से वहां के समीपवर्ती देवी-देवताओं को कोई सहानुभूति नही थी और उन्होंने सोमिल ब्राह्मण द्वारा रखे अंगारों से गजसुकुमार के जलते हुए तथा खिचड़ी की तरह पकते हुए मस्तक को देखकर कोई दुःखानुभव नही हुआ, ऐसा कोई उल्लेख सूत्रकार ने नही किया। यह भी सत्य है कि सूत्रकार ने देवी देवताओं के खेदखिन्न होने का भी कोई वर्णन नहीं किया। पर इसका यह अर्थ नही समझना चाहिए। गजसुकुमार की दु.ख-पूर्ण दशा को देखकर देवी देवताओं को दुःख नही हुआ। मनोविज्ञान के नियमानुसार यह मानना पड़ेगा कि गजसुकुमार की दु.खद स्थिति को देखकर ये भी दुःखी थे, उनको भी इन से पूर्ण सहानुभूति थी। उनका खेदखिन्न होना—सिहर उठना स्वभाविक है क्योंकि देवी देवता निवार्णोत्सव मनाकर गजसुकुमार के चरणों में अपना श्रद्धा-सुमन समर्पित कर रहे हैं, वे उनकी पहले की दुःखपूर्ण दशा से प्रभावित न हों, आकुल-व्याकुल न हों यह कैसे हो सकता है ?

रही निर्वाणोत्सव मनाने की बात। इसके सम्बन्ध में इतना ही निवेदन है कि ऐसा होना स्वभाविक है और उचित भी है। गजसुकुमार जिस लक्ष्य को लेकर संसार की मोह माया छोड़कर साधु बने थे, एक रात्रि की महाप्रतिमा की आराधना के लिए श्मशानमें आकर खड़े थे, वह लक्ष्य आज

इनका पूर्ण हो गया है। पर सफल सैनिक की भान्ति उन्होंने इस धर्म-युद्ध में विजय प्राप्त की है। इस विजय के उपलक्ष में यदि देवताओं ने उत्सव मनाकर गजसुकुमार की सफलता की सराहना कर दी तो यह किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि मुनि गजसुकुमार ने श्मशान में निर्वाणपद प्राप्त किया। समीपवर्ती देवी देवताओं ने इस उपलक्ष्य में निर्वाणोत्सव मनाया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन इस प्रकार करते है—

मूल—तते णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते ण्हाते जाव विभूसिए हत्थि-खंध-वरगते-सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज० सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महया-भडचडगर-पहकर-वंद-परिक्खित्ते बारवतिं नगरिं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छमाणे जेणेव अरहा अरिट्ठनेमि तेणेव पहारेत्थ गमणाय। तते णं से कण्हे वासुदेवे बारवतीए नगरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं पासति, जुन्न-जरा-जज्जरिय-देहं जाव किलंतं महति-महालयाओ इट्टग-रासीओ एगमेगं इट्टग गहाय-बहिया-रत्था-पहातो-अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासति। तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणु-कंपणट्ठाए हत्थिखंधवर-गते चेव एगं इट्टगं गेण्हति २ बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेति। तते णं से कण्हेणं वासुदेवेणं एगाते गहिताते समाणीते अणेगेहिं पुरिस-सतेहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहातो अंतोघरसि अणुप्पवेसिए।

छाया—ततः सः कृष्णो वासुदेवः कल्ये प्रादुःप्रभातायां यावत् ज्वलति स्नातो यावद् विभूषितः, हस्ति-स्कन्ध-वर-गतः सकोरण्ट-माल्य-दाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेत-वर-चामरैः उद्धूयमानैः महता भट-चटकर-प्रहकर-वृन्दपरिक्षिप्त-द्वारावत्याः नगर्याः मध्यमध्येन यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैव स संप्रधारितवान् गमनाय। ततः स कृष्णो वासुदेवो द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छन् एकं पुरुषं पश्यति, जीर्ण-जरा-जर्जरित-देहंयावत् क्लान्तम्। महातिमहतः इष्टकाराशे एकैकामिष्टकां गृहीत्वा बहीरथ्या-पथात् अन्तोगृहमनुप्रविशमानं पश्यति। ततः स कृष्णो वासुदेवः तस्य पुरुषस्य अणुकम्पनार्थाय हस्ति-वर-स्कन्ध गतश्चैव एकामिष्टकां गृह्णाति, गृहीत्वा बहिःरथ्यापथात् अन्तोगृह-मनुप्रविशति। ततः कृष्णेन वासुदेवेन एकस्यामिष्टकायां गृहीतायां सत्यां अनेकैः पुरुषशतैः स इष्ट-काया: राशिः बहीरथ्यापथात् अन्तर्गृहे अनुप्रवेशितः।

पदार्थ—**तते**—तदनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त किया गया है; **से**—वह (उस;) **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव ने; **कल्लं**—दीक्षा से अगले दिन; **पाउप्पभायाए**—प्रभात हो जाने पर; **जाव**—यावत्; **जलंते**—सूर्योदय हो जाने पर; **ण्हाते**—स्नान किया; **जाव**—यावत्; **विभूसिए**—शरीर को विभूषित किया; **हत्थि-खंध-वर-गते**—हाथी के उत्तम कन्धे पर बैठे; **सकोरेण्ट मल्ल**

दामेणं—कोरण्ट नाम के फूलों की माला से युक्त; **छत्तेणं धरिज्ज०**—छत्र को धारण किया। **सेयवरचामराहिं**—श्रेष्ठ श्वेत चंवर; **उद्धुव्वमाणीहिं**—झुलाए जाने लगे; **महया**—महान; **भड-चड-गर-पहकर-वंद-परिक्खित्ते**—योद्धाओं के विस्तृत समूहों के वृन्द या समुदाय से आवृत्त; **बारवति नगरिं**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—मध्य में से हो कर; **जेणेव**—जहां पर; **अरहा**—अरिहन्त; **अरिट्ठ०**—अरिष्टनेमि भगवान थे; **तेणेव**—वहाँ पर; **पहारेत्थ गमणाए**—जाने का निश्चय किया; **तते**—तदनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेवे; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—मध्य में से **एक्कं**—एक; **पुरिसं**—पुरुष को; **पासति**—देखते हैं। वह पुरुष; **जुन्नं**—जीर्ण—वृद्ध था; **जरा-जज्जरियदेहं**—बुढापे ने उसके शरीर को जर्जरित—पीड़ित कर रखा था। **जाव**—यावत्; **किलंतं**—जो थका होने से कुम्हलाया हुआ था, ऐसे वृद्ध को; **महतिमहालयो** बहुत बड़ी; **इट्टगरासीओ**—ईटों की राशि (ढेर) से; **एगमेगं**—एक २; **इट्टग**—ईट को, **गहाय**—लेकर; **बहिया-रत्था-पहातो**—गली के बाह्य प्रदेश से; **अन्तोगिहं**—घर के भीतर; **अणुप्पविसमाणं**—अनुप्रवेश करते हुए; **पासति**—देखते है; **तते णं**—तदनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव; **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष की; **अणुकंपणट्ठाए**—अनुकम्पा—दया के लिए; **हत्थि-खंध-वर-गते-चेव**—हाथी के श्रेष्ठ कधे पर बैठे २ ही; **एगं**—एक; **इट्टगं**—ईट को; **गेण्हति** २—ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके; **बहियारत्थापहाओ**—गली के बाह्य प्रदेश से; **अंतोगिहं**—घर के भीतर; **अणुप्पवेसेति**—रख देते है; **तते णं**—तदनन्तर; **कण्हेणं वासुदेवेणं**—कृष्णवासुदेव द्वारा; **एगाते इट्टगाते-गहिताते**—एक ईट के ग्रहण करने पर; **अणेगेहिं पुरिससतेहिं**—सैकड़ो पुरुषों ने; **से महालए**—वह महान; **इट्टगस्स**—ईटों की; **रासी**—राशी—ढेर; **बहियारत्थापहातो**—गली के बाह्य प्रदेश से; **अंतोघरंसि**—घर के अन्दर, **अणुप्पवेसिए**—रख दी।

मूलार्थ—दीक्षा के अगले दिन प्रातःकाल प्रभात के समय सूर्य के उदित होने पर कृष्ण वासुदेव ने स्नान किया, वस्त्राभूषणादि से अपने शरीर को अलंकृत किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर कृष्ण महाराज हाथी के श्रेष्ठ कंधे पर बैठ गए। कोरण्ट नामक फूलों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण करने पर श्वेत चंवर झुलाए जाने लगे, योद्धाओं के विस्तृत समूहों के वृन्द ने उनको घेर लिया। इस तरह पूरी सज-धज के साथ भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होने के लिए कृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी के मध्य में से जाने का निश्चय किया। अपने निश्चयानुसार कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के बीचों-बीच होकर जारहे थे तो उन्होंने एक वृद्ध पुरुष को देखा। वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर जर्जरित—पीड़ित हो रहा था, परिश्रम करने से उसका मुख भी मुरझाया हुआ था, वह वृद्ध गली के बाह्य प्रदेश में पड़े बहुत बड़े ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर के अन्दर रख रहा था।

कृष्ण वासुदेव ने जब उस वृद्ध को देखा तो उनको उस पर बड़ी दया आई। दयार्द्र हुए कृष्ण महाराज ने हाथी पर बैठे-बैठे ही गली के बाह्य प्रदेश से एक ईंट उठाकर घर के अन्दर रख दी। कृष्ण वासुदेव के ऐसा करने पर अन्य सैंकड़ों पुरुषों ने भी वहां से ईंटें उठा कर ईंटों की राशि को गली के बाह्य प्रदेश से घर के अन्दर रख दिया।

व्याख्या—राजकुमार गजसुकुमाल का बडे समारोह के साथ दीक्षा संस्कार-सम्पन्न हो जाने के अनन्तर महाराज वासुदेव माता देवकी कृष्ण वासुदेव आदि सभी द्वारिका निवासी लोग अपने अपने स्थान को वापिस लौट गए थे, यह वर्णन पीछे किया जा चुका है। इससे आगे का पारिवारिक वृत्तान्त सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र में वर्णित करते रहे हैं। कृष्ण महाराज अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित करके चले तो गए पर उनका हृदय वहीं पड़ा था, भाई की ममता में महलों के स्वर्गतुल्य ऐश्वर्य में मन को लगने नहीं दिया। प्रयत्न करने पर भी मन पर नियन्त्रण नही किया जा सका। अन्त में बड़ी मुश्किल से रात्रि व्यतीत की गई। प्रातःकाल होते ही उन्होंने भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर मुनि गजसुकुमाल के दर्शन करने का निश्चय किया।

कृष्ण महाराज ने स्नान किया शाही वस्त्राभूषण शरीर पर सजाये एवं आवश्यक कामों से निवृत्त हो कर उन्होंने अपने सेवकों को दर्शनयात्रा का कार्यक्रम चालु करने का आदेश दिया। आदेशानुसार कर्मचारियों ने भी दर्शनयात्रा का कार्यक्रम आरंभ कर दिया। बड़ा सुन्दर दृष्य था उस समय का। कृष्ण महाराज हाथी पर विराजमान थे, सिर पर छत्र था, चंवर झुलाए जा रहे थे बहुत बड़ी संख्या में अंगरक्षक साथ थे। इस तरह कृष्ण महाराज द्वारिका नगरी के मध्यमार्ग से हो कर चलने लगे। अभी कुछ ही दूर गए थे कि उन की आँखों ने एक बूढ़े को देखा। बूढ़े की दशा बड़ी दयनीय थी। शरीर पर बुढापे के आक्रमण अपना पूर्ण प्रभाव दिखला रहे थे। शरीर लड़खड़ा रहा था, मुख आभा समाप्त हो चुकी थी। शक्ति न होने पर भी विवशता के कारण वह ईंटों के बहुत बड़े ढेर में से एक २ ईंट उठा कर घर में अन्दर रख रहा था। वृद्ध की इस शोचनीय अवस्था को देखकर कृष्ण महाराज का दयालु हृदय तडप उठा। वह सोचने लगे यह बूढ़ा एक २ ईंट उठा कर ईंटों के इस विशाल ढेर को कैसे समाप्त करेगा? फिर इसकी शारीरिक दशा बड़ी दयनीय है, इस जरा-जीर्ण शरीर से यह काम कैसे होगा? कहीं ढेर समाप्त होने से पहले यही न समाप्त हो जाये। कृष्ण महाराज की अन्तर्चेतना गंभीर हो गई। अन्त में निश्चय किया इस बूढ़े की सहायता करनी चाहिए। इसे इस कष्ट से बचाना चाहिए। कृष्ण महाराज यह विचार ही कर रहे थे कि उनका हाथी ईंटों के ढेर के पास आ गया। ईंटों का ढेर इतना ऊंचा था कि हाथी पर बैठे कृष्ण महाराज उसके बराबर आ गए। अपने बराबर ईंटें देखकर कृष्ण महाराज ने तत्काल एक ईंट उठा ली और हाथी पर बैठे बैठे ही वह ईंट उस बूढ़े के घर में डाल दी।

महाराज श्रीकृष्ण ने ईंट उठाकर जब बूढ़े के घर में रखी, तब श्रीकृष्ण महाराज के साथ चलने वाले सभी लोगों को इनके अभिप्राय को समझने में देर नहीं लगी, तत्काल सब समझ गये कि कृष्ण महाराज इस वृद्ध की सहायता करना चाह रहे हैं, फिर क्या था, **"महाजनो येन गतः स पंथा"** का अनुसरण करते हुए सभी लोगों ने ईंटें उठालीं और कुछ ही क्षणों में ईंटों का ढेर बूढ़े के घर में पहुंचा दिया गया।

कृष्ण महाराज के दर्शन से तथा इनके ईंटों के ढेर को घर में पहुंचाने के सद्‌व्यवहार से वृद्ध का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा, उसके नयन खुशी के मारे भर आए। उसका रोम-रोम अपने हृदय-सम्राट् महाराज कृष्ण के चरणों में कृतज्ञता प्रकट करता हुआ उनके जयकारों से आकाश को गुँजाने लगा।

इस सूत्र में सूत्रकार ने महाराज कृष्ण द्वारा एक वृद्ध और असहाय पुरुष पर की गई अनुकम्पा के उल्लेख से उनकी परोपकार-परायणता, सुहृदयता, दुःखी जनों के प्रति वत्सलता का दिग्दर्शन कराने के साथ-साथ राजामहाराजा और धनाढ्य व्यक्तियों के कर्त्तव्य का भी भान करा दिया है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रकट कर दिया है कि महान पुरुष, देश के नेता, मुखिया लोग जिस कार्य में प्रवृत्त होते हैं उनका अनुयायी वर्ग भी उनके आचरण में अपना सौभाग्य समझता है, अतः अधिकारी वर्ग को चाहिए कि वह देश-जाति के कल्याण का मार्ग अपनाये ताकि उनका अनुयायी वर्ग भी देश-जाति के कल्याण-मार्ग पर चलकर देश-जाति के भविष्य को समुज्ज्वल बना सके।

"पाउप्पभायाए जाव जलंते" **"ण्हाते जाव विभूसिए"** तथा **"जरा-जज्जरिय-देहं जाव किलंतं"** यहां पठित जाव पद अन्य सूत्रों में पढ़े गए अवशिष्ट पदों के संसूचक हैं।

"सकोरेंटमल्लदामेणं"—सकोरेण्ट माल्यदाम्ना-कोरण्ट-माल्यस्य दाम कोरण्टमाल्यदाम तेन सह वर्तते यत्तेन-पीतवर्णपुष्पमाला-सहितेन। यह पद छत्र का विशेषण है। इसका अर्थ है कोरण्टक वृक्ष के फूलों की मालाओं से युक्त। कोरण्ट वृक्ष के फूल पीतवर्ण के होते हैं। बात यह है कि महाराज कृष्ण के सर पर जो छत्र था उस में पीले फूलों की मालायें लगी हुई थी।

"भड-चडगर-पहकर-परिक्खित्ते" **भटानां ये चडकरप्रहकराः—विस्तृतसमूहास्तेषां यः वृन्दः समुदायः तेन परिक्षिप्तः संवेष्टितः**। यहां प्रयुक्त भट शब्द का अर्थ योद्धा, चटकर का विस्तृत, प्रहकर का समूह, वृन्द का समुदाय और परिक्षिप्त शब्द का अर्थ है घिरा हुआ। जो व्यक्ति योद्धाओं के विस्तृत समूहों के समुदाय से घिरा हुआ हो उसे 'भट-चटकर-प्रहकर-वृन्द परिक्षिप्त' कहते हैं। बात यह है कि महाराज कृष्ण जब भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होने के लिये जा रहे थे उस समय उनके साथ बहुत बड़ी संख्या में योद्धा लोग थे।

"पहारेत्थ गमणाए"—गमनार्थं प्राधारयत् यः संप्रधारितवान् अरिष्टनेमिसन्निधौ गमनाय निश्चयमकरोत्। यहां पढ़ा गया **गमन** शब्द जाने तथा **पहारेत्थ** शब्द निश्चय करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है दोनों का सम्मिलित अर्थ है "जाने के लिये निश्चय किया"।

"जरा जज्जरिय-देहं"—जराजर्जरितदेहम्, जरसा जर्जरीकृतं देहं यस्य तम्—अर्थात् वृद्धावस्था ने जिसके शरीर को जर्जरित कर दिया है उसे 'जरा-जर्जरित देह' कहते हैं।

सूत्रकार को "महतिमहालयाओ"—महातिमहतः—अर्थात् बहुत विशाल। ढेर आदि की जहां अत्यधिकता, महानता, विशालता अभिव्यक्त करनी इष्ट होती है, वहाँ यह विशालता "महतिमहालयाओ" इस शब्द से प्रकट की जाती है।

'बहिया-रत्थ-पहातो—बहीरथ्यापथात्—बाह्यरथ्यापथात्।" रथ्या, गली का नाम है पथ शब्द मार्ग, प्रदेश तथा बहिर् शब्द बाह्य का बोधक है। इस तरह गली के बाह्य प्रदेश स्थान को 'बहीरथ्या-पथ' कहते है।

"अंतोगिहं"—अन्तर्गृहं, गृहमध्ये—अर्थात् घरके मध्यमें। इस अर्थका बोधक अन्तर्गृहशब्द है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि महाराज कृष्ण ने एक ईंट उठाकर एक वृद्ध पुरुष की सहायता की। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते है।

मूल—तते णं कण्हे वासुदेवे बारवतीए नयरीए मज्झं मज्झेणणिगच्छति णिगच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागते, उवागित्ता जाव वदति णमंसति वंदित्ता णमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

कहि णं भंते! से ममं सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे, जा णं अहं वंदामि, नमंसामि तते णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेव एवं वयासी—

"साहिए णं कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेण साहिते अप्पणो अट्ठे" तते ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—कहण्णं भंते! गयकुसुमालेणं अणगारेण साहिते अप्पणो अट्ठे? तते णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेव एव वयासी—

एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेण मम कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि ण जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं त गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासति पासित्ता आसुरत्ते ५ जाव सिद्धे, तं एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिते अप्पणो अट्ठे।

छाया—ततः स कृष्णो वासुदेवो द्वारवत्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव अर्हन्नरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागतः, उपागत्य यावद्, वंदते नमस्यति, वंदित्वा नमस्कृत्य गजसुकुमालमनगारमपश्यन् (न दृष्ट्वा) अर्हन्तमरिष्टनेमिं वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—क्व भवन्त! स मम सहोदरः कनीयान् भ्राता गजसुकुमालोऽनगारः यमहं वन्दे, नमस्यामि? ततोऽर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—

साधितः कृष्ण ! गजसुकुमालेन अनगारेण आत्मनोऽर्थः। ततः स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तम-रिष्टनेमिमेवमवदत्—कथं भदन्त ! गजसुकुमालेन अनगारेण साधितः आत्मनोऽर्थः ? ततोऽर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—एवं खलु कृष्ण ! गजसुकुमालोऽनगारः, मां कल्यं पूर्वापराण्ह-कालसमये वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य एवमवदत्—इच्छामि यावद् उपसंपद्य विहरति। ततस्तं गजसुकुमालमनगारमेकः पुरुषः पश्यति, दृष्ट्वा-आशुरुप्तो यावत् सिद्धः। तदेवं खलु कृष्ण ! गजसुकुमालेनानगारेण साधितः आत्मनोऽर्थः।

पदार्थ—**तते**—उस के अनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये है; **से**—वह; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—बीचों बीच होते हुए; **णिगच्छति**—जाते हैं; **णिगच्छित्ता**—जाकर; **जेणेव**—जहां पर; **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्ट-नेमि थे; **तेणेव**—वहां पर, **उवागते**—आते है, आकर; **जाव**—यावत्, तीन बार परिक्रमा दे कर; **वंदति नमसति**—वन्दना करते हैं नमस्कार करते है, **वंदित्ता, णमंसित्ता**—वंदना नमस्कार करके; **गयसुकुमालं अणगारं**—मुनि गजसुकुमाल को; **अपासमाणे**—न देखते हुए; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमी को; **वंदति नमंसति**—वंदना नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता, णमंसित्ता**—वंदना एवं नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले;

भंते ! भगवन्!; **कहि**—कहां है; **से**—वह; **ममं**—मेरे; **सहोदरे**—सहोदर-माँ जाए; **भाया**—भाई; **कणीयसे**—छोटे, **गयसुकमाले अणगारे**—मुनि गजसुकुमाल, **अहं**—मै; **जाणं**—जिन को; **वंदामि णमंसामि**—वन्दना-नमस्कार करू; **ततेणं**—इसके बाद; **अरहाअरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्ट-नेमि; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासि**—इस प्रकार बोले —

कण्हा !—हे कृष्ण !; **गयसुकुमालेणं अणगारेणं**—मुनि गजसुकुमार ने; **अप्पणो**—अपना; **अट्ठे**—मोक्ष प्राप्ति रूप अर्थ—प्रयोजन, लक्ष्य; **साहिए**— **साधित**—सिद्ध कर लिया है; **ततेणं**—तदनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिन्त अरिष्टनेमी को; **एवं वयासि**—इस प्रकार कहने लगे—

भंते !—हे भगवन् !; **गयसुकुमालेणं अणगारेणं**—मुनि गजसुकुमाल ने; **अप्पणो अट्ठो**—अपना प्रयोजन; **कहण्णं**—किस प्रकार; **साहिते**- सिद्ध कर लिया ? **ततेणं**—उसके पश्चात्; **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमी भगवान; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**— इस प्रकार बोले—

खलु—निश्चयार्थ बोधक है, यह अव्यय पद है; **एवं**—इस प्रकार; **कण्हा**—हे कृष्ण; **गयसुकु-मालेणं अणगारेणं**—मुनि गजसुकुमाल; **कल्लं**—दीक्षावाले दिन, गत दिन; **पुव्वावरण्हकालसमयंसि**—सन्ध्याकाल के समय; **वंदइ नमंसति** वन्दना नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता, णमंसित्ता**—वंदना नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

इच्छामि—हे भगवन् ! मैं चाहता हूं एक रात्रि की महाप्रतिमा की—आराधना करना; **जाव**—यावत् महाकाल श्मशान में एक रात्रिकी; **उवसंपज्जित्ताणं विहरति**—धारण करके वह विचरने लगा; ध्यानस्थ होगया; **त एणं**—उसके अनन्तर; **तं गयसुकुमालं अणगारं**—उस गजसुकुमाल मुनि को; **एगे पुरिसे पासति**—एक पुरुष ने देखा; **पासित्ता**—देखकर वह; **आसुरुत्ते**—वह क्रोध से तमतमा उठा;

जाव—यावत्—उसने उसके सिर पर मिट्टी की पाल बांधी, उसमें जलते हुए अंगारे रखे, ऐसा करने पर भी वह ध्यान से विचलित न हुए अन्त में उसने; **सिद्धे**—सिद्ध गति को प्राप्त किया; **तं—सो; खलु**—निश्चयार्थ में; **एवं**—इस प्रकार; **कण्हा !**—हे कृष्ण ! ; **गयसुकुमालेणं अणगारेणं**—गजसुकुमाल अनगार ने; **अप्पणो अट्ठो**—अपना का प्रयोजन; **साहिते**—सिद्ध कर लिया है।

मूलार्थ—वृद्ध पुरुष की सहायता करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य में से होते हुए जहां भगवन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे वहां पर आ गए। महाराज कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरंभ करके तीन बार भगवान को प्रदक्षिणा-परिक्रमा दी, वंदन नमस्कार किया। इसके पश्चात् मुनि गजसुकुमार को वहां न देखकर वे अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार करने के बाद निवेदन करने लगे—

भगवन् ! मेरे मां जाए छोटे भाई मुनि गजसुकुमार कहां हैं ? मैं उनको वन्दना नमस्कार करना चाहता हूं।

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—कृष्ण ! मुनि गजसुकुमार ने मोक्ष प्राप्त करने का अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है। गजसुकुमार मुक्ति में चला गया है।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में फिर निवेदन करने लगे—भगवन् ! मुनि गजसुकुमार ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया है ? महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण ! दीक्षा के अनन्तर कल ही सायंकाल के समय मुनि गजसुकुमार ने वंदना करने के अनन्तर मुझ से कहा—'हे भगवन् ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं साधु की १२वीं पडिमा—एक रात्रि की महाप्रतिमा (महान प्रतिज्ञा) की आराधना करने के लिये महाकाल श्मशान में जा कर ध्यान लगा लूं ? मुनि जी की इस विनती को मैंने स्वीकार कर लिया, तब मुनि जी ने महाकाल श्मशान में जाकर महाप्रतिमा की आराधना आरम्भ कर दी। महाकाल श्मशान में ध्यानारूढ हो कर खड़े हुए मुनि जी को वहां से जाते हुए एक पुरुष ने जब देखा, तब देखते ही वह क्रोध से तमतमा उठा, दांत पीसने लगा, अन्त में उसने गजसुकुमार के सिर पर आर्द्रमिट्टी की पाल बांध कर चिता से जलते हुए अंगारे ला कर उसमें डाल दिए। स्वयं वहां से भाग गया, परन्तु

गजसुकुमाल मुनि ने उस अग्निजन्य भयंकर दाह की असह्य वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करते हुए उस पुरुष पर अणुमात्र भी द्वेष नहीं किया। प्रत्युत शुभ भावना द्वारा आत्मगुण घातक कर्मों का नाश कर के केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। केवल ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर ही अवशिष्ट कर्मों का समूल घात करके सिद्ध पद को वह प्राप्त हो गया है। हे कृष्ण ! इस प्रकार मुनि गजसुकुमार ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव का भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर वन्दन नमस्कार करना अपने छोटे सहोदर भाई मुनि गजसुकुमार को मुनिमण्डल में बैठे न देखकर उनके सम्बन्ध में "वह कहां हैं ?" यह पूछना "मुनि गजसुकुमार ने अपना कार्य-प्रयोजन सिद्ध कर लिया है" ऐसा भगवान का उत्तर देने पर महाराज कृष्ण का फिर "एक रात में ही प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया?" यह पूछना, भगवान द्वारा इस प्रश्न का भी समाधान करते हुए समस्त घटना का वर्णन करना, इन बातों का उल्लेख किया गया है। इस कथानक में कृष्ण वासुदेव के द्वारा गजसुकुमार मुनि विषयक किये प्रयोजन-सिद्धि के प्रश्न का भगवान अरिष्टनेमि ने जो समाधान किया है वह कितना मार्मिक है ? उसमें साधुता के दिव्य आदर्श की कितनी झलक है ? इसके समझने या समझाने के लिये किसी प्रकार की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। सोमिल ब्राह्मण के इतने बड़े अपकार को भी उपकार समझ कर उसका सहर्ष स्वागत करके उस अग्निदाह द्वारा अपने अन्तरंगमल को जलाकर सिद्ध गति को प्राप्त होनेवाले मुनि गजसुकुमार के विषय में कृष्ण वासुदेव को उत्तर देते हुए करुणा-मूर्ति भगवान अरिष्टनेमि ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे सचमुच ही शोक और सन्ताप से संतप्त हृदयों को शान्ति के अगाध समुद्र में स्थापित कर सब प्रकार से शान्त कर देने वाले हैं। कृष्ण वासुदेव के पूछने पर भगवान यह नहीं कहते कि गजसुकुमार मुनि को एक ब्राह्मण ने आग लगाकर मार डाला, किन्तु वीतराग भगवान कहते हैं कि हे कृष्ण ! गजसुकुमार मुनि ने अपने अभीष्ट को सिद्ध कर लिया। जिस कार्य या जिस प्रयोजन के लिये उसने सांसारिक वैभव को छोड़कर दीक्षा को अंगीकार किया था उसको उसने प्राप्त कर लिया, कर्म-बन्धन को तोड़ कर वह परम-कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त हो गया है। अहा ! कितनी शान्ति है ? कितनी निर्द्वन्द्वता है ? अपकारी के अपकार की ओर ध्यान न देकर उसके अपकार में भी उपकार के दर्शन करना समभाव की पराकाष्ठा है। वास्तव में वीतरागता का यही सजीव चित्र है।

शास्त्रकारों ने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग् चारित्र इस रत्नत्रयी को आत्मा का धन या अर्थ या प्रयोजन माना है, इन्हें सम्यग् रूप से प्राप्त कर लेना ही आत्मा का वास्तविक प्रयोजन या कार्य की सिद्धि कहा गया है। जब यह जीव कर्म-मल से सर्वथा रहित होकर स्व-स्वरूप की यथार्थानुभूति करता है, कर्म-जन्य जन्म-मरण-परम्परा को विच्छेद करके परम आनन्द स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है। आत्मा से परमात्मा बन कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और निरंजन आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। तब उसके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं, उस समय वह कृत-

कृत्य बन जाता है। प्रत्येक साधक जब साधना के क्षेत्र में उतरता है तब उसका ध्येय भी इसी प्रयोजन को सिद्ध करना होता है। यह सत्य है कि इस प्रयोजन को सिद्ध करना बच्चों का खेल नहीं है। इसके लिये भयंकरातिभयंकर कष्टों को झेलना होता है। ज़हर भरे प्याले पीने पड़ते है, सरसों की भांति कोल्हू में अपने को पिलवाना पड़ता है, शरीर की खाल उतरवानी पड़ती है, अधिक क्या सिर पर अंगीठी रखवानी होती है। यह सब कुछ होने पर भी मन को शांत रखना पड़ता है, राग-द्वेष के झञ्झा-वातों से अपने को सर्वथा सुरक्षित रखना होता है। तब कहीं, साधक की साधना सफल होती है, तब उसे मुक्तपुरी के द्वार मिलते है तब वह जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा प्राप्त करके सदा के लिये आत्मिक शाश्वत सुख में निमग्न होता है। महामुनि गजसुकुमार का क्षमा-प्रधान संयमी जीवन इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है।

"**उवागते उवागितो जाव वंदति**" तथा "**इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं**" यहां पठित **जाव** पद अन्य स्थानो पर दिए अन्य अवशिष्ट पदो का संसूचक है।

"**आसुरुत्ते ५** " यहां दिए गए ५ के अंक से जिन अवशिष्ट पदों का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है, उनका वर्णन पीछे पृष्टों पर दिया गया है तथा "**जाव सिद्धे**" यहां पठित **जाव** पद से सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमार के मस्तक पर माटी की पाल बनाकर तथा चिता से अंगारे निकाल कर उस में डाल दिए, इससे गजसुकुमार मुनि को असह्य वेदना हुई, तथापि मनमें किसी प्रकार का द्वेष न लाकर उस असीम वेदना को उन्होंने शान्तिपूर्वक सहकर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त किया। इन भावो का परिचायक है। इन भावों का ससूचक आगम पाठ पीछे आ चुका है।

"**साहिते अप्पणो अट्ठे**" **साधित आत्मनोऽर्थः, गजसुकुमाल. आत्म-सिद्धिरूप स्वकीयमभि-लषितं प्राप्तवानिति।** यहां पर प्रयुक्त **अर्थ** शब्द का अर्थ है --आत्म कल्याण या मोक्षप्राप्ति रूप प्रयोजन-लक्ष्य। साधित शब्द--सिद्ध कर लिया, पूर्ण कर लिया, इस अर्थ का बोधक है।

प्रस्तुत सूत्र मे लिखा है कि मुनि गजसुकुमार ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया? इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते है—

मूल—तते णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी--के सणं भंते! से पुरिसे अपत्थिय--पत्थिए जाव परिवज्जिते जे ण ममं सहोदरे कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियातो ववरोविते। तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—मा णं कण्हा! तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि, एवं खलु कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

छाया—**ततः स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवदत्--को भदन्त! स पुरुषः अप्रार्थित-प्रार्थित यावत् परिवर्जितः, यो मम सहोदरं कनीयसं भ्रातरं गजसुकुमालमनगारमकाले चैव जीवितात् व्यपरोपितवान्? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्--मा कृष्ण! त्वं तस्य पुरुषस्य प्रद्वेषमाप द्यस्व, एवं खलु कृष्ण! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य अनगारस्य साहाय्यं दत्तम्।**

पदार्थ—**तते**—तदनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये; **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **एवं वयासी**—इस प्रकार, कहनेलगे; **भंते**—हे भगवन ! **अपत्थिय-पत्थिए**—मौत चाहनेवाला; **जाव**—यावत्; **परिवज्जिए**—लज्जा-विहीन; **से पुरिसे**—वह पुरुष; **के सणं**—कौन है ?; **जेणं**—जिसने; **ममं सहोदरं कणीयसं भायरं**—मेरे सहोदर छोटे भाई को; **गयसुकुमालं अणगारं**—मुनि गजसुकुमाल को; **अकाले चेव**—अकाल में ही; **जीवियातो ववरोविते**—जीवन से रहित कर दिया; **तए णं**—उसके पश्चात्; **अरहा अरिट्ठनेमि**—अरिहन्त अरिष्टनेमी; **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी**—कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहने लगे; **कण्ह !**—हे कृष्ण !; **तुमं**—आप; **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष पर; **मा णं पदोसमावज्जाहि**—द्वेष मत रखो; **कण्हा !**—हे कृष्ण !; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **तेणं पुरिसेणं**—उस पुरुष ने; **गयसुकुमालस्स अनगारस्स**—गजसुकुमाल मुनि को; **साहिज्जे दिन्ने**—सहायता दी है।

मूलार्थ—उसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में निवेदन किया—

भगवन् ! मृत्यु का इच्छुक, तथा लज्जाविहीन वह वह कौन पुरुष है ? जिसने मेरे माँजाए छोटे भाई गजसुकुमाल को अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया। कृष्ण महाराज की रोषपूर्ण यह बात सुन कर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित कर के कहने लगे—

कृष्ण ! तुम्हें उस पुरुष पर द्वेष नहीं रखना चाहिए, क्योंकि उस पुरुष ने मुनि गजसुकुमार को सहायता दी है।

व्याख्या—इष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग से क्षोभ का प्राप्त होना तथा प्रतिकार की भावना से वैर का प्रतिशोध करना सामान्य मानव-प्रकृति के नैसर्गिक कार्य हैं। तथापि इष्ट का वियोग होने पर जीवन में जो भूचाल आता है वह कुछ विलक्षण ही होता है। उस समय शान्ति और धीरता का संसार को सन्देश देनेवाली बड़ी से बड़ी मानव-प्रकृति भी क्षुब्ध हो उठती है यही कारण है कि भगवान अरिष्टनेमि के मुख से निर्वाण-प्राप्त मुनि गजसुकुमार के देहान्त का दु:खद समाचार सुनते ही कृष्ण वासुदेव एकदम तिलमिला उठे और वैर प्रतिशोध के लिये तत्काल उद्यत हो गये। तभी तो उन्होंने भगवान से सरोष भाषा में कहा कि भगवन् ! वह लज्जाविहीन, अधमपुरुष कौन है, जिसने मेरे छोटे भाई मुनि गजसुकुमार को समाप्त कर दिया है ? उस दुष्ट ने यह नीच कार्य करके अपनी मृत्यु को आमंत्रण दिया है। अब वह बच नहीं सकता। उसे प्राण दण्ड दिया ही जायेगा।

कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमार मुनि के हत्यारे को प्राण दंड देने को जो बात कही है उसमें मानव-प्रकृति-सिद्ध-प्रतिकार की भावना के अतिरिक्त नीति का भी कुछ समावेश है। अपराधी को यदि किसी प्रकार का दण्ड न दिया जाये तो इससे लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावना रहती

है। दण्ड न देने से उसको प्रोत्साहन मिलता है, उसकी अनर्थमूलक प्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है उसकी देखा-देखी अन्य उच्छृंखल आततायी एवं दुश्शील प्राणियों को भ्रष्टाचार में प्रवृत्त होने का साहस होता है, परिणाम स्वरूप निर्बल और निरपराधी जीवों का सबल एवं दुष्ट लोगों से संरक्षण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन सब दृष्टियों को आगे रख ही शान्तिप्रिय और नीतिज्ञ व्यक्तियों ने नीतिशास्त्र का निर्माण और उसके अनुसार शासन की व्यवस्थाका सूत्रपात किया। इस नीतिशास्त्र के निर्माण तथा शासनव्यवस्था के सूत्रपात के पीछे एक ही दृष्टि रही है, वह यह है कि प्रजा में सुख शान्ति बनी रहे, सबल निर्बल को सताने से रुके, सामाजिक व्यवस्था और लोक-मर्यादा का भली भांति संचालन हो।

यह सत्य है कि नीतिशास्त्र या नीतिधर्म का शासन केवल लौकिक मर्यादा तक ही सीमित है और उसका क्षेत्र केवल संघव्यवस्था या ऐहिक अभ्युदय तक ही मर्यादित है। शुद्धधर्म या मुनिधर्म का सिंहासन इस से कहीं अधिक ऊंचा है। इसके हाथ में पारलौकिक अभ्युदय और उसकी मर्यादा को स्थिर रखना होता है, इसलिये उसमें न तो प्रतिकार की भावना के लिये स्थान है और न ही प्रतिशोध के विचारों को अवकाश है। फिर वहां दूसरों को दण्ड देने की तो चर्चा ही व्यर्थ है।

मुनिधर्म का एकमात्र लक्ष्य आत्मा की शुद्धि करना है। आत्मा के साथ लगे हुए कर्ममल को जलाकर उसे शुद्ध, निर्मल निष्कर्म बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये जितने भी साधन अपेक्षित हैं उन सब का प्रयोग केवल अपने लिये ही किया जाता है किसी दूसरे के लिये नहीं। यदि प्रायश्चित रूप कोई दण्ड है तो वह अपनी आत्मा के लिए संयम है, यदि आत्मलिप्त कर्मों का कोई प्रतिशोध है तो वह आत्मगत-दोषों का ही है, किसी अन्य का नहीं।

मुनिधर्म की मर्यादा बड़ी विलक्षण है। उसके सभी विधि-विधान स्व-पर-कल्याण के ही निमित्त हैं। दूसरे को कष्ट देना वहां सर्वथा निषिद्ध है। मुनिधर्म का प्राणी मात्र के लिये सब से बड़ा आदेश, उपदेश एवं संदेश मैत्री भावना की आराधना करना है। मुनिधर्म के शासन में छोटे-बड़े सभी जीवों के लिए समान स्थान है उसमें शत्रु या मित्र, ऊंच या नीच, लघु या गुरु की विषमता के लिये अंशमात्र भी अवकाश नहीं है। राग-द्वेष की पाषाणमयी दुर्गम भूमि को पार करके वीतरागता के सर्वोच्च समतलस्थान पर विराजमान आत्मा ही वास्तव में मुनि अथवा मुनिधर्म का सच्चा अनुगामी, हो सकता है। इसलिये सच्चे मुनि की साम्यमयी दृष्टि में उसके अंगोंपर * चन्दनादि का लेप करनेवाला तथा शस्त्र से उसके अंगादि को काटने वाला, ये दोनों समान कोटि में ही है। सच्चे मुनि कभी चन्दन-लेप करनेवाले से राग और

*—निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु य थावरेसु य ॥९०॥
लाभालाभे सुहेदुक्खे, जीविए मरणे तहा,।
समो निंदा-पसंसासु, तहा माणावमाणयो ॥९१॥
अणिस्सिओ इहं लोए परलोए अणिस्सिओ।
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९२॥
उत्तराध्ययन सूत्र अ० १९

शस्त्र से काटनेवाले पर द्वेष नहीं करते। वे तो अपकार करनेवाले को भी अपना उपकारी समझते हैं। लौकिक दृष्टि रखनेवाले जीवों को जिसमें अपकार या हानि दिखाई देती है, उनकी दिव्य दृष्टि में वह उपकार की जीती जागती मूर्ति होती है, इसीलिये भगवान अरिष्टनेमी ने वासुदेव कृष्ण से कहा था कि हे कृष्ण! मुनि गजसुकुमाल के हत्यारे पर तू द्वेष मत कर, वह उसका घातक नहीं, किन्तु उपकारी है, जैसे कुबड़े को मारी गई लात उसके लिये लाभदायक बन जाती है, इसी तरह उस पुरुष ने जो कार्य किया है वह गजसुकुमाल मुनि के निर्वाण-पद का कारण बन गया है, अतः उसने उस मुनि के आत्मविकास में बड़ी सहायता की है। यह समझ कर तुम्हें उस पर द्वेष नहीं करना चाहिए।

भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को गजसुकुमार के हत्यारे पर जो द्वेष न करने की बात कही है उससे मुनिधर्म की विशिष्टता का सहज में ही बोध हो जाता है। मुनि-जीवन चन्दन के समान बतलाया गया है। चन्दन को जिस शस्त्र से काटा जाता है, चन्दन उस शस्त्र के मुख को भी सुगन्धित कर देता है, अपकारी पर भी उपकार करता है। इसी तरह मुनि भी अपने विरोधी का अनिष्ट न सोच कर इष्ट ही सोचता है, उसने जो दुःख दिया है उसे भी आत्मशुद्धि में सहायक मानता है, यही उस की वीतरागतापूर्ण विलक्षणता है।

एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि नीति-धर्म और विशुद्ध-धर्म दोनों सापेक्ष हैं, दोनों ही अपना अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। लौकिक मर्यादा को सुव्यवस्थित रखना नीतिधर्म का काम है और पारलौकिक अभ्युदय-निश्रेयस का सम्पादन करना विशुद्ध धर्म या मुनिधर्म का कार्य है। जो कर्मोत्तम पुरुष होते हैं उन की दृष्टि नीतिप्रधान होती है और जो धर्मोत्तम पुरुष होते हैं उनकी दृष्टि में धर्म की प्रधानता रहती है। इसी कारण कर्मोत्तम पुरुष होने से वासुदेव कृष्ण तो मुनि गजसुकुमार के घातक को नीतिधर्म के अनुसार प्राणदण्ड देना उचित समझते हैं। इसके विपरीत मुनि-धर्म के सजीव आदर्श भगवान अरिष्टनेमि धर्मोत्तम पुरुष होने से उसको (मुनि गजसुकुमार के हत्यारे को) दण्ड के अयोग्य बतलाते हैं। जैनदर्शन अनेकान्तवादप्रधान दर्शन है। वस्तु में स्थित सभी धर्मों पर दृष्टिपात करके सत्य का अन्वेषण करना, अनेकान्तवाद का प्रधान उद्देश्य है। इस व्यापक अनेकान्त दृष्टि के अनुसार पर्यालोचन करने पर उक्त दोनों ही विचारों में अपेक्षाकृत सत्यता के दर्शन होते हैं। इसलिये दोनों ही विचार समुचित एवं समादरणीय हैं।

"अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिते" यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित पदों का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"अकाले चेव जीवितातो ववरोविते" इन पदों का अर्थ है—अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया। अकाल शब्द असमय की मृत्यु के लिये प्रयुक्त होता है। जो मृत्यु समय पर हो व्यावहारिक दृष्टि में अपना समय पूरा कर लेने पर हो, उसे अकाल मृत्यु नहीं कहते, वह कालमृत्यु है। अकाल मृत्यु क्यों होती है? इसका क्या कारण है? यह भी समझ लेना उचित रहेगा।

जैन-शास्त्रों ने आयु के दो प्रकार बतलाये हैं—

एक अपवर्तनीय और दूसरा अनपवर्तनीय। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले

ही शीघ्र भोगी जासके वह **अपवर्तनीय** और जो आयु बंधकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके वह **अनपवर्तनीय है।** इस आयुद्वय का बन्ध स्वाभाविक नहीं है यह परिणामों के तारतम्य पर आधारित है। आयु बांधते समय अगर परिणाम मंद हों तो आयु का बंध शिथिल पड़ेगा, अगर परिणाम तीव्र हों तो आयु का बंध तीव्र पड़ेगा। शिथिल बंधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है—एक साथ ही भोग ली जाती है और तीव्र बंधवाली आयु निमित्त मिलने पर भी नहीं घटती और न एक साथ भोगी जा सकती है। श्री स्थानांगसूत्र में आयुभेद के सात निमित्त बताए गये हैं जो इस प्रकार हैं—

१. **अज्झवसाण-अध्यवसान**—स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त हो जाती है।
२. **निमित्त**—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।
३. **आहार**—अधिक भोजन कर लेने पर आयु घट जाती है।
४. **वेदना**—किसी भी अंग में असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही आत्मा से झड़ जाते हैं।
५. **पराघात**—गड्ढे में गिरना, छत्त का ऊपर गिर जाना आदि बाह्य आघात पाकर आयु का अन्त हो जाता है।
६. **स्पर्श**—सर्प आदि जहरीले जीवों के काट लेने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर में विष फैल जाए, आयु असमय में ही खतम हो जाती है।
७. **आण-पाण**—सांस की गति बन्द होजाने पर आयु-भेद हो जाता है।

निमित्तों को पाकर जो आयु नियतकाल समाप्त होने से पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र में भोग ली जाती है, उस आयु का नाम **अपवर्तनीय** आयु है इसे सोपक्रम आयु भी कहते है। उपक्रमसहित सोपक्रम है, तीव्र शस्त्र, तीव्र विष, तीव्र अग्नि आदि जिन निमित्तों से आयु घट जाती है उनका प्राप्त होना उपक्रम है। सोपक्रम आयु—अपवर्तन आयु ही अकाल मृत्यु है। इसमे आयु को शीघ्र भोग लिया जाता है। अतः अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम इन भेदों से दो प्रकार की होती है। दूसरे शब्दों में इस अनपवर्तनीय आयु को अकाल मृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तो का संनिधान होता भी है और नहीं भी होता। उक्त निमित्तों का संनिधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल से पहले पूर्ण नहीं होती। सक्षेप में कहें तो अपवर्तनीय आयुवाले प्राणियों को अध्यवसान आदि कोई न कोई निमित्त मिल ही जाता है, जिससे वे अकाल में ही मर जाते हैं और अनपवर्तनीय आयुवाले को कैसा भी प्रबल निमित्त क्यों न मिले पर वे अकाल में नहीं मरते। तीर्थंकर, चरमशरीरी, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि उत्तम पुरुष, असंख्य वर्षजीवी मनुष्य और तिर्यञ्च अपवर्तनीय आयुवाले हो जाते हैं।

शास्त्र कहता है कि औपपातिक (नारक तथा देव) चरमशरीरी (इसी भव में मुक्ति में जाने वाला), उत्तमपुरुष (वासुदेव बलदेव) असंख्य वर्षजीवी ये सब अनपवर्तनीय आयुवाले होते हैं। इस दृष्टि से गजसुकुमार चरमशरीरी होने से अनपवर्तनीय आयुवाले महापुरुष हैं, अतः इनकी अकालमृत्यु

नहीं हो सकती, परन्तु श्री वासुदेव कृष्ण इनके जीवनान्त को **"गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियातो ववरोविते"** इन पदों के द्वारा अकालमृत्यु कह रहे हैं ऐसा क्यों ? उत्तर में निवेदन है कि सिद्धान्तानुसार मुनि गजसुकुमार की मृत्यु अनपवर्तनीय मृत्यु है, अकाल मृत्यु नहीं है। श्रीवासुदेव कृष्ण ने जो इनकी मृत्यु को अकाल मृत्यु कहा है वह व्यावहारिक प्रयोग है। सोमिल ब्राह्मण द्वारा इनको मारा गया था, इस दृष्टि से उन्होंने इसे **"अकाल मृत्यु"** कह दिया है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण ! मुनि गजसुकुमार के घातक पर द्वेष न करो। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स णं साहिज्जे दिन्ने ? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कण्हा ! ममंतुमं पाय वंदए हव्व-मागच्छमाणे बारवतीए नयरीए पुरिसं पाससि जाव अणुपविसिते, जहा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिन्ने, एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सय-सहस्स-संचियं कम्मं उदीरमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिन्ने।**

छाया—**कथं भवन्त ! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य साहाय्यं दत्तम् ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—अथ नूनं कृष्ण ! मम त्वं पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छन् द्वारवत्यां नगर्यां पुरुषं पश्यसि यावत् अनुप्रवेशितः, यथा कृष्ण ! त्वया तस्य पुरुषस्य साहाय्यं दत्तमेव, कृष्ण ! तेन पुरुषेण गजसुकुमारस्य अनगारस्य अनेकभव शत-सहस्र-संचितं कर्म उदीरयता बहुकर्मनिर्जरार्थं साहाय्यं दत्तम्।**

पदार्थ—**भन्ते**—हे भगवन् ! **तेणं पुरिसेणं**—उस पुरुष ने; **गयसुकुमालस्स णं**—मुनि गजसुकुमार को; **कहण्णं**—किस प्रकार; **साहेज्जे**—सहायता। **दिन्ने**—दी ? **अरहा अरिट्ठनेमि**—भगवान अरिहन्त अरिष्टनेमि; **तए णं**—तदनन्तर; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **कण्हा**—हे कृष्ण ! **से**—अब; **नूणं**—निश्चय हो; **तुमं**—तुम ने; **ममं**—मेरे; **पायवंदए**—पाद वन्दन के लिये; **हव्वमागच्छमाणे**—शीघ्र आते हुए; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **पुरिसं**—एक पुरुष को; **पाससि**—देखा; **जाव**—यावत्, इंटें उस के घर में; **अणुपविसिते**—रख दीं; **जहा णं**—जिस प्रकार; **कण्हा !**—हे कृष्ण ! **तुमं**—तुम ने; **तस्स पुरिसस्स**—उस पुरुष को **साहिज्जे**—सहायता; **दिन्ने**—दी है; **एवमेव**—ठीक इसी प्रकार; **कण्हा !**—हे कृष्ण ! **तेणं पुरिसेणं**—उस पुरुष ने; **गयसुकुमालस्स अणगारस्स**—गजसुकुमार अनगार को; **अणेग-भव-सय-सहस्स**—लाखों जन्मों के; **संचियं कम्मं**—इकट्ठे किए हुए कर्म की; **उदीरमाणेणं**—उदीरणा करने से, उदय में न आये कर्म को उदय में लाने से; **बहुकम्मणिज्जरत्थं**—अनेक कर्मों की निर्जरा के लिये; **साहिज्जे दिन्ने**—सहायता दी है।

मूलार्थ—भगवान अरिष्टनेमी की बात सुन कर कृष्ण वासुदेव ने उन के चरणों में निवेदन किया—'भगवन् ! उस पुरुष ने मुनि गजसुकुमार को कैसे सहायता प्रदान की ? महाराज श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण ! अभी तुम मुझे चरण-वन्दन करने के लिये आ रहे थे तो द्वारिका नगरी के मध्य में तुम ने एक वृद्ध पुरुष को ईंटें उठाते हुए देखा, उस की दयनीय दशा से तुम्हारा हृदय दयार्द्र हो उठा, फलतः ईंटें उठा कर तुम ने उसके घर में रख दीं, तुम्हारे ईंटें उठाने से तुम्हारे सेवक-पुरुषों ने तत्काल सारी ईंटें उठा कर उस के घर में रख दीं। हे कृष्ण ! जैसे ईण्ट उठा कर तुमने उस पुरुष की सहायता की, ठीक उसी प्रकार उस पुरुष ने भी मुनि गजसुकुमार के लाखों जन्मों के संचित किए हुए कर्मों की उदीरणा (काल प्राप्त न होने पर भी प्रयत्न विशेष से किया जाता कर्म का अनुभव) द्वारा बहुत से कर्मों की निर्जरा करने में सहायता दी है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में वासुदेव कृष्ण के प्रश्न के उत्तर में भगवान अरिष्टनेमी ने जो कुछ कहा है उसका अभिप्राय इतना ही है कि ईंटों के बड़े भारी ढेर में से एक-एक ईण्ट को उठा कर अन्दर रखने में उस पुरुष को बहुत अधिक समय लगता और इतने भारी ढेर को अन्दर ले जा कर रखने में उसे महान परिश्रम करना पड़ता, परन्तु हे कृष्ण ! तुम्हारी सहायता से वह ईण्टों का ढेर बहुत ही जल्दी समाप्त हो गया—उस वृद्ध के घर के अन्दर रखा गया। जैसे तुम्हारी सहायता से उस पुरुष का कार्य बहुत ही शीघ्र सिद्ध हो गया, ठीक वैसे ही अनेकानेक जन्मों के उपार्जित किए हुए कर्मों को क्षय करने में गजसुकुमाल को बहुत समय लगाना पड़ता, जन्म-जन्मान्तर के संचित किए हुए कर्मों की निर्जरा के लिये उस को अत्यधिक समय तक परिश्रम करना पड़ता, परन्तु उस पुरुष ने अपने पूर्वोक्त आचरण से (सिर पर अंगारे रख कर) मुनि गजसुकुमार के अनेक जन्मोपार्जित सत्तागत कर्मों को उदय में लाकर समाप्त करवा दिया। भाव यह है कि कर्मों की निर्जरा के द्वारा जिस स्थिति को मुनि गजसुकुमाल ने बहुत समय के अनन्तर प्राप्त करना था, वह स्थिति उस को कल रात्रि को ही प्राप्त हो गई, अथवा यूं कहें कि मोक्ष-प्राप्ति या आत्मकल्याण या निर्वाणपद की प्राप्ति रूप जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये गजसुकुमार मुनि को अनेकानेक वर्ष अपेक्षित थे, उस प्रयोजन को उस पुरुष के निमित्त ने कम से कम समय में सिद्ध कर दिया, इसलिये हे कृष्ण ! वह पुरुष तुम्हारे रोष का पात्र नहीं होना चाहिये, किन्तु हमारी दृष्टि में अभिलषित कार्य की सिद्धि में सहायक होने से वह क्षमा का पात्र है।

भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को गजसुकुमार मुनि के घातक पुरुष पर द्वेष न रखने की जो बात कही है, वह उनकी वीतरागता के अनुरूप ही है। प्रतिद्वन्दी तथा जीवन-नाशक मनुष्य

पर भी समता की वर्षा करना, उसका अहित या अनिष्ट न सोच कर उस के हित ही चिन्तना करना, वीतरागता का वास्तविक स्वरूप होता है। भगवान अरिष्टनेमि में इसी वीतरागता के स्पष्ट रूप से दर्शन हो रहे हैं।

अध्यात्म-साधना का अन्तिम ध्येय वीतरागता की प्राप्ति करना होता है। वीतरागता प्राप्त किये बिना अध्यात्म-साधना सदा अपूर्ण ही रहती है। सम्भव है, इसीलिये जैनाचार्यों ने साधक-वर्ग को वीतरागता की समुच्च भूमि पर विराजमान होने के लिये निम्नोक्त भावना से भावित होने की मधुर प्रेरणा प्रदान की है :—

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव !!

हे जिनेन्द्रदेव ! मैं चाहता हूं कि मेरी यह आत्मा सदैव प्राणिमात्र के प्रति मित्रता का भाव गुणिजनों के प्रति प्रमोद का भाव, दुःखीजीवों के प्रति करुणाभाव और धर्म से विपरीत आचरण करनेवाले अधर्मी तथा विरोधी जीवों के प्रति राग द्वेष से रहित उदासीनता का भाव धारण करे।

सोमिल ब्राह्मण तथा मुनि गजसुकुमार के अतीत कालीन कर्म-सम्बन्ध को लेकर वृद्ध परम्परा मे एक कथा पाई जाती है, जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :—

कहते हैं कि एक पुरुष की दो पत्नियां थी, एक की गोद में बच्चा था दूसरी किसी बच्चे की मां नही थी। बच्चेवाली नारी साधारण थी वह विशेष चतुर न थी, परन्तु दूसरी नारी पटु थी और कुटिल भी। उसने मां बनने के लिये अनेकों प्रयत्न किए, पर उसकी कामना पूर्ण नहीं हो सकी। उसने निश्चय किया कि यदि मैं मां बन गई तो ठीक है, अन्यथा अपनी सौत के बच्चे को भी जीवित नहीं रहने दूंगी, उसके बच्चे को मार कर उसे अपने जैसी बना दूंगी।

पुत्र-प्राप्ति की कामना पूर्ण न होने पर उसने अपनी सौत के बच्चे को मारने का निश्चय कर लिया। वह बच्चे को मारने का अवसर टटोलने लगी। दुर्भाग्य से बच्चे के सिर में फुंसियां निकल आईं, फुंसियों से बच्चा बहुत दुःखी था। वैद्यों का इलाज करने पर भी जब फुंसियां ठीक न हो सकीं तब निराश होकर बच्चे की मां ने अपनी सौत को कहा—'बहिन ! बच्चा बहुत दुःखी हो रहा है इसका कोई इलाज तो बता ?'

इलाज की बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई, बिल्ली के भाग्य से मानों छींका टूट गया। उसने बड़ी प्रसन्न मुद्रा में कहा—'बहिन ! यह तो साधारण सी बात है। फुंसियों का इलाज मैं कर दूंगी। बच्चे के सिर पर गरम पूड़ा बांधना पड़ेगा। पूड़े को बांधने से फुंसियां खतम हो जायेंगी। यदि तुझे स्वीकार है तो मैं इलाज कर देती हूं। बच्चे की मां की ओर से स्वीकृति मिलते ही उसने सोचा, यह सुनहरी अवसर है इससे लाभ उठाना चाहिए। गर्म पूड़ा बच्चे के सिर पर बांध दूंगी।

पूड़े की गर्मी बच्चा सहन न सकने के कारण मर जायगा। बच्चे की मृत्यु का स्वप्न देखकर वह आनन्द-विभोर हो उठी।

बच्चे की मां जब इधर-उधर हुई, तब उसने पूड़ा पकाया और गरम-गरम पूड़ा बच्चे के सिर पर बांध दिया। एक तो बच्चे का सिर फुंसियों से पहले ही पिलपिला हो रहा था, दूसरे पूड़े की भयंकर गर्मी थी। पूड़ा सिर पर रखने की देर थी कि बच्चा तड़प उठा, बहुत रोया, बहुत चिल्लाया, पर उस निर्दयी को कोई तरस नहीं आया। बच्चा उस वेदना को सह न सका। अन्त में उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। अपनी सौत को अपने जैसी बनाकर मानों उसे सब कुछ मिल गया। उसका रोम-रोम प्रसन्न हो उठा।

कथाकार कहते हैं उस बच्चे को मारकर उसने अत्यधिक हर्ष मनाया था, उसीसे उसने निकाचित कर्मों का बंध बांध लिया था। हज़ारों जन्म-जन्मान्तर की घाटियां पार करती हुई वही नारी एक दिन माता देवकी के घर गजसुकुमाल के रूप में पैदा हुई और जिस बच्चे के सिर पर गरम-गरम पूड़ा बांध कर मारा गया था, वह बच्चा द्वारिका नगरी में सोमिल ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुआ। राजकुमार गजसुकुमार मुनि बनकर जब महाकाल श्मशान में ध्यान लगाकर खड़े थे, तब सोमिल ब्राह्मण ने उन्हें देखा, देखते ही वह तमतमा उठा, उस की आंखों में रक्त उतर आया, उसके रोम-रोम में द्वेषाग्नि भड़क उठी, अन्त में उसने मुनि गजसुकुमार के सिर पर अंगीठी बनाई और उस में अंगारे डाल कर वह चला गया।

कथाकार कहते हैं कि निन्यानवें लाख जन्म पहले गजसुकुमार के जीव ने किसी समय सोमिल ब्राह्मण के जीव के सिरपर गरम-गरम पूड़ा बांधकर उसे मारा था। उसके बदले में गजसुकुमाल के भव में उसको सोमिल ब्राह्मण से अगीठी रखवानी पड़ी। उसके हाथों से मरणान्तिक कष्ट सहना पड़ा।

"पासंसि जाव अणुपविसित्ते"—यहां पठित **जाव** पद पीछे पढ़े गए—**"जुन्नं जरा-जज्जरिय देहं" "बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं"** इस पाठका परिचायक है। इसका अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"अणेग-भव-सय-सहस्स-संचितकम्मं—अनेक-भव-शत-सहस्र-संचितं कर्म, भवस्य शतसहस्राणि, भव-शतसहस्राणि, अनेकानि च भव शतसहस्राणि अनेकभवशतसहस्राणि तेषु संचितं, अनेक भवशतसहस्रजन्मोपार्जितं कर्म—अर्थात् अनेक शब्द एक से अधिक, अर्थ का, भव शब्द जन्म का, शत-सहस्र शब्द लाखों का और संचित शब्द उपार्जित किए हुए, अर्थ का बोधक है। कर्म उस पौद्‌गलिक शक्ति का नाम है जो आत्मा को ससार-अटवी में भ्रमण करवाने वाली है। सब पदों का सम्मिलित अर्थ है—लाखों जन्मों में उपार्जित किया हुआ कर्म।

"उदीरेमाणेणं"—उदीरणां प्राप्तेन—अप्राप्तेऽपिकाले भोक्तुमुदयावलिकायां प्रवेशयता—अर्थात् उदीरणा करके। जैन-शास्त्रों में कर्म की चार अवस्थायें बतलाई गई हैं—बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता। मिथ्यात्वादि के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि के रूप में परिणत हो कर कर्म-पुद्‌गलों का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना बंध है। उदय-काल—फलदान का समय आने पर

कर्मों का शुभाशुभ फल देना **उदय** है। अबाधाकाल (बंधे हुए कर्मों का जब तक आत्मा को फल नहीं मिलता) वह काल व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दलिक पीछे से उदय में आनेवाले हैं उनको प्रयत्न विशेष से खींच कर उदय-प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना **उदीरणा** है। बंधे हुए कर्मों का अपने स्वरूप को न छोड कर आत्मा के साथ लगे रहना **सत्ता** है।

प्रस्तुत प्रकरण में उदीरणा अपेक्षित है। कर्मों के फल का समय न होने पर भी प्रयत्न विशेष से उन कर्मों का उपभोग करना **उदीरणा** है। उदय और उदीरणा में इतना ही अन्तर होता है कि उदय में किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना स्वभाविक क्रम से कर्मों के फल का भोग होता है और उदीरणा में प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है। प्रस्तुत में मुनि गजसुकुमाल ने जो कर्मफल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक क्रम से नहीं किया, किन्तु सोमिल ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष से कर्मों का उपभोग कराया गया है, अतः यहां कर्मों की उदारणा की गई है, ऐसा करना उचित भी है और शास्त्र-सम्मत भी है।

"बहु कम्मणिज्जरत्थं—बहु-कर्म निर्जरार्थम्—बहुकर्म विनाशाय अर्थात् बहुत कर्मों की निर्जरा —विनाश के लिये। इस अर्थ का बोधक **"बहुकर्म-निर्जरार्थं"** यह शब्द है।

प्रस्तुत सूत्र में वासुदेव कृष्ण के प्रश्न का भगवान अरिष्टनेमि ने समाधान किया है। इस समाधान को सुन कर महाराज श्रीकृष्ण ने क्या कहा? अब सूत्रकार इस बात का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

मूल—**तते णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—**

सेणं भंते! पुरिसे मते कहं जाणियव्वे? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

जे णं कण्हा तुमं बारवतीए नयरीए अणुपविसमाणं पासेत्ता ठितए चेव ठितिभेएणं कालं करिस्सति, तण्णं तुमं जाणेज्जासि एस णं से पुरिसे। तते णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वन्दति नमंसति, वन्दित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी जेणेव सते गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं पायवन्दए निग्गते तं नायमेयं अरहता, विन्नायमेयं अरहता, सुतमेयं अरहता सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणवि कुमारेणं मारिस्सइ त्तिकट्टु भीए ४ सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स बारवतिं नयरिं अणुपविसमाणस्स पुरतो सपक्खिं सपडिदिसिं हव्वमागए।

छाया—ततः स कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवदत्—

सो भवन्त ! पुरुषो मया कथं ज्ञातव्यः ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—यः कृष्ण ! द्वारावत्यां नगर्यामनुप्रविशन्तं दृष्ट्वा स्थितश्चैव स्थितिभेदेन (आयुक्षयेण) कालं करिष्यति ! तं त्वं ज्ञास्यसि, एषः सः पुरुषः । ततः सः कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं वंदते नमस्करोति, वन्दित्वा नमस्कृत्य यत्रैव आभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य हस्तिनमारोहति, आरुह्य यत्रैव द्वारावती नगरी यत्रैव स्वकं गृहं, तत्रैव संप्रधारितवान् गमनाय, तस्य सोमिल-ब्राह्मणस्य कल्ये यावत् ज्वलति सति अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः समुत्पन्नः— एवं खलु कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं पाद-वन्दनाय निर्गतः, तदेवं ज्ञातमेतद् अर्हता, विज्ञातमेतद् अर्हता, श्रुतमेतद् अर्हता, शिष्टम् (प्रतिपादितम्) एतद् भविष्यति कृष्णस्य वासुदेवस्य (कृष्णाय वासुदेवाय) तत् न ज्ञायते कृष्णो वासुदेवो मां केनापि कुमारेण मारयिष्यति इति कृत्वा भीतः ४ स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य कृष्णस्य वासुदेवस्य द्वारावतीं नगरीमनुप्रविशतः पुरतः सपक्षं सप्रतिदिक् शीघ्रमागतः ।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सुन्दरता के लिये; **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव प्रयोगशाला में गये और; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले—

भंते !—हे भगवन् !; **से**—वह (जिसने मुनि गजसुकुमार का प्राणान्त किया है); **पुरिसे**—पुरुष; **मते**—मेरे द्वारा; **कहं**—किस प्रकार; **जाणियव्वे**—जाना जा सकेगा; **तएणं**—उसके अनन्तर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—

कण्हा!—हे कृष्ण !; **जेणं**—जो; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **अणुपविसमाणं**—प्रवेश करते हुए; **तुमं**—तुमको; **पासेत्ता**—देखकर; **ठितए एव**—खड़ा खड़ा ही; **च**—पुन; **ठितिभेएणं**—स्थिति-भेद—आयु की स्थिति समाप्त होने से; **कालं करिस्सति**—काल करेगा; **तण्णं**—उसको; **तुमं जाणेज्जासि**—तुम जान लेना कि; **से पुरिसे**—यह वही पुरुष है । **तते णं**—उसके पश्चात् **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **वंदति-नमंसति**—वन्दना-नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके; **जेणेव**—जहां पर; **आभिसेयं**—आभिषेक्य—प्रधान; **हत्थिरयणं**—हस्तिरत्न अर्थात् अपना उत्तम हाथी था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते हैं; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **हत्थिं दुरूहति**—हाथी पर सवार हो जाते हैं; **दुरूहित्ता**—और सवार होकर; **जेणेव**—जहां पर; **बारवती नयरी**—द्वारिका नगरी थी; **जेणेव सते गिहे**—जहां पर, अपना घर था; **तेणेव**—वहां पर; **गमणाए**—जाने का; **पहारेत्थ**—निश्चय किया । (दूसरी ओर); **तस्स सोमिलस्स माहणस्स**—उस सोमिल ब्राह्मण को; **कल्लं**—अगले दिन; **जाव**—यावत्; **जलंते** सूर्योदय होने पर; **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का; **अब्भत्थिए ४**—आध्यात्मिक-हृदयगत तर्क; **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ; "४"—इस अंक से—**कप्पिए**—कल्पित, अनेक विध कल्पनाओं से युक्त; **चिन्तित**—चिन्तित, बार-बार किया गया विचार; **मनोगए**—मनोगत—जो विचार अभी प्रकट नहीं किया केवल मन में ही है; **संकप्पे**—संकल्प—हृदयगत उतार-चढ़ाव, इन

पदों का ग्रहण करना इष्ट है। **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चय ही; **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण, वासुदेव; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **पायवंदते**—चरण-वन्दना के लिये; **णिग्गते**—गए हैं; **तं**—सो; **अरहता**—अरिहन्त भगवान को; **एयं**—यह, मुनि गजसुकुमार का मरण-वृत्तान्त; **नायं**—ज्ञात है, पता है; **अरहता**—अरिहन्त भगवान को; **एयं**—यह, गजसुकुमार सम्बन्धी वृत्तान्त; **विण्णायं**—विज्ञात है, अच्छी तरह से पता है; **अरहता**—अरिहन्त भगवान ने; **एयं**—यह वृत्तान्त; **सुयं**—किसी देवता आदि से सुन लिया होगा; **अरहता**—अरिहन्त भगवान् ने; **कण्हस्स—वासुदेवस्य**—कृष्ण वासुदेव को; **एयं**—यह वृत्तान्त; **सिट्ठं भविस्सइ**—कह दिया होगा; **तं**—सो; **न नज्जइ**—पता नहीं है; **ममं**—मुझको; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **केणावि कुमारेणं**—किस कुमृत्यु—किस भयंकर मरण से; **मारिस्सति**—मारेंगे; **त्ति कट्टु**—ऐसा विचार कर; **भीते**—डर गया; ४—इस अंक से; **तत्थे**—त्रास को प्राप्त, **उव्विग्गे**—उद्विग्न—व्याकुल; **संजातभये**—भय के कारण कम्पन को प्राप्त, इन पदों का ग्रहण करना है। **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से; **पडिनिक्खमइ**—बाहिर निकलता है, **पडिनिक्खमित्ता**—बाहर निकल कर; **बारवतिं णयरिं**—द्वारिका नगरी में; **अणुपविस्समाणस्स**—प्रवेश करते हुए; **पुरतो**—आगे; **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव के; **सपक्खिं**—सामने; **सपडिदिसिं**—सप्रतिदिक अर्थात् अत्यन्त संमुख; **हव्वं**—शीघ्र, अचानक; **आगए**—आ गया।

मूलार्थ—भगवान अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वासुदेव फिर भगवान के चरणों में निवेदन करने लगे—

भगवन् ! मैं उस पुरुष को किस तरह जान सकता हूं ? महाराज श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—

कृष्ण ! यहां से चलने के अनन्तर जब तुम द्वारिका नगरी में प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हें देख कर भयभीत होगा, वह वहां पर खड़ा खड़ा ही गिर जायेगा। आयु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है जिस ने गजसुकुमार के प्राण लिये हैं।

भगवान अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर भगवान अरिष्टनेमि को वंदन एवं नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहां से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर बैठ कर अपने घर की ओर चलने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण अपने निश्चयानुसार इधर अपने घर की ओर आ रहे थे। उधर अगले दिन सूर्योदय होने पर सोमिल ब्राह्मण के हृदय में यह विचार आया कि निश्चय ही सूर्योदय होने पर कृष्ण वासुदेव अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में वन्दन एवं नमस्कार करने

गए हैं। भगवान वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, अतः उनसे कुछ अनजाना नहीं। मुनि गजसुकुमार को मैंने मार दिया है, इस बात का उनको पता है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि गजसुकुमार का जीवनान्त करनेवाला सोमिल ब्राह्मण है, ऐसा भी हो सकता है कि किसी देवादि से भगवान ने इस वृत्तान्त को सुन लिया हो।

सोमिल ब्राह्मण विचार करता हुआ फिर कहने लगा—'यह निश्चित है कि यह सब वृत्तान्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को बतला देंगे। अपने छोटे भाई का हत्यारा मुझे जान कर कृष्ण वासुदेव न जाने मुझे किस प्रकार मरवायेंगे! इतना विचार आते ही सोमिल ब्राह्मण भयभीत हो उठा, त्रास और उद्वेग की अधिकता के कारण वह कांपने लगा। भय और त्रास से व्याकुल हुआ सोमिल अपने घर से निकला इधर वह घर से भागने के लिये निकल पड़ा, उधर द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए कृष्ण वासुदेव उसके सामने आ गये, इस प्रकार सोमिल ब्राह्मण और कृष्ण वासुदेव का अचानक ही परस्पर सामना हो गया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने पांच बातों का विवेचन किया है—सर्व प्रथम सूत्रकार ने श्रीकृष्ण की उस जिज्ञासा का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा है कि मुनि गजसुकुमार के घातक पुरुष की मुझे जानकारी प्राप्त हो सकती है या नहीं?

दूसरी बात—महाराज श्रीकृष्ण की उक्त जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—'कृष्ण! तुम्हारी यह इच्छा तब पूर्ण हो जाएगी जब द्वारिका नगरी में प्रवेश करोगे। उस समय एक पुरुष तुम्हें देखते ही खड़ा-खड़ा मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। समाप्त होनेवाला वही मनुष्य गजसुकुमार का हत्यारा है, यह तुम समझ लेना।

तीसरी बात—श्री कृष्ण अपने प्रश्न का उत्तर पाकर भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने के अनन्तर वापिस अपने घर को लौट जाने का निश्चय करते हैं।

चौथी बात—गजसुकुमार का प्राणान्त करने के अनन्तर अगले दिन सूर्योदय होने पर सोमिल विचार करता है कि श्रीकृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में प्रतिदिन की तरह वन्दन करने आज भी गये हैं। भगवान अन्तर्यामी हैं, घट-घट के ज्ञाता हैं, उनसे संसार की कोई घटना अज्ञात नहीं है, वे जानते हैं कि सोमिल ब्राह्मण ने मुनि गजसुकुमार का प्राणान्त किया है, भगवान को ज्ञान-प्रकाश में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गजसुकुमार के सिर पर अंगीठी रखकर उसकी जीवन-लीला समाप्त करनेवाला सोमिल के बिना और कोई नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि भगवान के चरण-कमलों के भ्रमर किसी देव ने भगवान के सामने मेरे पाप का भण्डाफोड़ किया हो। कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि भगवान अरिष्टनेमि को मेरे सब पापों का पूर्णतया बोध है। इसके साथ-साथ यह भी

निश्चित है कि भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को मेरे पाप की सब कथा सुना देंगे। कृष्ण वासुदेव का छोटा भाई मारा गया है, उसका कृष्ण के सामने कथन न हो यह कभी हो नहीं सकता, अतः भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण के सामने गजसुकुमार के घातक सोमिल ब्राह्मण की अवश्य चर्चा करेंगे।

पांचवीं बात—कृष्ण वासुदेव को जब पता चलेगा कि सोमिल ने उनके मांजाए सहोदर भाई मुनिराज गजसुकुमार को मार दिया है, उसके सिर पर अंगीठी रखकर उसका निर्दयता से प्राणान्त कर दिया है तो कृष्ण अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं कर सकेंगे, वे मेरे अपराध का मुझे दण्ड देने के लिये एक क्षण भी नहीं रुकेंगे। पता नहीं कैसे मरवायेंगे? कुत्तों से मुझे नुचवायेंगे? या भूमि में गड़वायेंगे? या अग्निकुण्ड में फिकवायेंगे या वनस्पति की तरह मेरे शरीर के खण्ड करके मेरा प्राणान्त करेंगे? या वृक्ष से उलटा बांध कर पत्थरों से मुझे मरवायेंगे? इस तरह अपने भावी अनिष्ट का विचार करते हुए सोमिल ब्राह्मण की आँखों के आगे अंधेरा छा गया, वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। अन्त में उसने घर से भाग जाने का निश्चय किया। उसने सोचा श्रीकृष्ण भगवान के पास से वापिस आते ही मुझे पकड़ने के लिये राजपुरुषों को भेजेंगे, अतः मुझे यहां से भाग जाना ही उचित है। कृष्ण के क्रोध-प्रहारों से बचने का सर्वोत्तम उपाय भागना ही है। अन्त में सोमिल ब्राह्मण अपने घर से भाग निकला, पर समय की बात समझिए कि सोमिल श्रीकृष्ण से बचने के लिये घर से भागा जा रहा था, पर जब वह द्वारिका नगरी के मध्य में गया तो सामने क्या देखता है कि श्रीकृष्ण की सवारी आ रही है। उसने श्रीकृष्ण को देखा और श्रीकृष्ण ने उसे देखा।

"**ठितिभेएणं**"—**स्थिति-भेदेन, आयुषः स्थितिक्षयेण**—आयु की स्थिति के नाश का नाम स्थिति-भेद है। जिस प्रकार जल के संयोग से मिश्री या बताशा अपनी कठिनता को छोड़कर जल में विलीन हो जाता है तथा जैसे अग्नि का सम्पर्क पाकर घृत पतला हो जाता है, उसी प्रकार सोपक्रमी जीव का आयुष्यकर्म भी* अध्यवसान आदि निमित्त विशेष के मिलने पर क्षय हो जाता है, इसीलिये व्यवहार-नय के अनुसार ससारी जीवों के आयु-क्षय को अकाल मृत्यु के नाम से व्यवहृत किया जाता है।

भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को यह कहा है कि द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए तुम्हें देखकर तुम्हारे भय से एक पुरुष मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसमें उस पुरुष की मृत्यु में निमित्त कारण भयाधिक्य ही प्रमाणित होता है, इसी भयाधिक्य के कारण इस पुरुष की स्थिति-भेद अर्थात् आयु की स्थिति का नाश होगा।

"**आभिसेयं हत्थिरयणं**"—यहां पठित **आभिषेक्य** शब्द का अर्थ है—मुख्य—प्रधान। जो हाथी विशिष्ट एवं विलक्षण गुणोंवाला हो उसे "**हस्तिरत्न**" कहते हैं। हस्तिरत्न हाथियों में भी जो मुख्य हो वह **आभिषेक्य** कहलाता है। यहाँ हस्तिरत्न विशेष्य है और **आभिषेक्य** उसका विशेषण है।

"**कल्लं जाव जलंते**"—यहां पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर दिये गये अवशिष्ट पाठ का संसूचक है।

---

* अध्यवसान आदि आयुभेदक निमित्तों की चर्चा पीछे पृष्ठ १८६ पर की जा चुकी है।

"अज्झत्थिए ५"—यहां के ५ अंक से—"कप्पिय, चिन्तिय, पत्थिय, मणोगय, संकप्पे" इन पदों का ग्रहण करना अभीष्ट है। इस समस्त पाठ में अज्झत्थिए आदि पाँचों पद संकप्पे के विशेषण हैं। इनका अर्थ-भेद इस प्रकार है—

आध्यात्मिक संकल्प—वह संकल्प जो आत्मगत है, आत्मा में पैदा हुआ है। कल्पित संकल्प—वह संकल्प जिसकी कल्पना की गई है, जिसे सोचा गया है। प्रार्थित संकल्प—वह संकल्प जिस पर बार-बार विचार किया गया है। मनोगत संकल्प—वह संकल्प जो अभी मन में ही है, जिसे प्रकट नहीं किया गया है।

नायमेयं अरहता, विन्नायमेयं अरहता, सुतमेयं अरहता, सिट्ठमेयं अरहया"—प्रस्तुत पाठमें ज्ञात, विज्ञात, श्रुत और शिष्ट ये चार पद हैं। सामान्य रूप से यह जानना कि गजसुकुमार मुनि का प्राणान्त हो गया है, यह ज्ञात है। विशेष रूप से जानना कि सोमिल ब्राह्मण ने अमुक अभिप्राय से गजसुकुमार का अग्नि द्वारा घात किया है, विज्ञात है। भाव यह है कि सामान्य बोध और विशेष बोध के समूचक ज्ञात और विज्ञात ये दोनों शब्द है। इन दोनों पदों का अर्थ वृत्तिकार अभयदेव-सूरि के शब्दो में इस प्रकार है—

"तं नायमेयं अरहया" तदेवं ज्ञातं सामान्येन एतद् गजसुकुमालमरणमर्हता जिनेन विज्ञातं विशेषतः सोमिलेनैवमभिप्रायेण कृतमेतदित्येवम्।

'सुयमेयं'—इस पद के संस्कृत-रूप दो बनते हैं—१—स्मृतमेतद्। २—श्रुतमेतद्। आचार्य अभयदेव सूरि ने प्रथम रूप अंगीकार किया है, इसी कारण उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"सुयमेयं" स्मृतं पूर्वकाले ज्ञातं सत् कथनावसरे स्मृतं भविष्यति -अर्थात् सोमिल-ब्राह्मण ने विचार किया, भगवान अरिष्टनेमि सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं, अतः उन्हे गजसुकुमार मुनि का मरण-वृत्तान्त अवगत ही है। जब यह घटना सघटित हुई थी, उसी समय उन्होंने इस घटना को अपने ज्ञान के प्रकाश में देख लिया था। कृष्ण वासुदेव के आने पर जब गजसुकुमार मुनि का प्रसंग आयेगा तब भगवान को प्रथम काल का जाना वृत्तान्त, सुय—स्मृतं—स्मरण हो आएगा।

'सुयं' शब्द का दूसरा संस्कृत रूप 'श्रुतम्' है। "सुयमेयं अरहया" इन पदों की व्याख्या इस प्रकार है—

श्रुतमेतद् अर्हता कस्मादपि देवविशेषाद्वा भगवता श्रुतम् भविष्यति। इन पदों का भाव यह है कि सोमिल ब्राह्मण विचार करता हुआ कहता है कि मुनि गजसुकुमार का मरण-वृत्तान्त किसी देव विशेष से भगवान अरिष्टनेमि ने सुयं—श्रुतं—सुन लिया होगा।

'सिट्ठ"—शिष्टम्, शिष्ट शब्द का अर्थ है—कह दिया। भाव यह है कि सोमिल ब्राह्मण ने विचार किया कि भगवान अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को मुनि गजसुकुमार का देहान्त-वृत्तान्त सिट्ठं—शिष्टं—कह दिया होगा।

"भीते ४" यहां दिये गए ४ के अंक से, "तत्थे, उव्विग्गे, संजायभये" इन अवशिष्ट पदों का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है। भीत आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

"**भीत**—डरा हुआ। **त्रस्त**—त्रास को प्राप्त; 'मेरे प्राण लूट लिये जाएंगे' इस विचार से; **त्रस्त**—घबराया हुआ। **उद्विग्न**—विचलित मनवाला। **संजातभय**—डर के मारे जिसका हृदय धड़क रहा हो।

"**पुरतो सपक्खि सपडिदिसिं**" **पुरतः अग्रतः, सपक्षं सप्रतिदिशम्-सर्वथा संमुखम्**—अर्थात् 'पुरतः' शब्द का अर्थ है—आगे। 'सपक्ष' सामने और 'सप्रतिदिक्' शब्द अत्यन्त निकट, बिल्कुल सामने, अर्थ का बोधक है।

"**हव्वमागते—शीघ्रमागतः, अकस्मादागतः**। यहां पढ़ा गया '**हव्व**' पद सामान्य रूप से 'शीघ्र' अर्थ में प्रयुक्त होता है, परन्तु प्रस्तुत में इसका अर्थ अकस्मात् अचानक यही उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि सोमिल ब्राह्मण श्रीकृष्ण से अपने जीवन को सुरक्षित रखने के विचार से द्वारिका नगरी से बाहिर भागा जा रहा था, परन्तु आगे से श्रीकृष्ण की ही अचानक उससे भेंट हो गई। इस के अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

मूल—तते णं से सोमिले कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीते ४ ठिते य चेव ठिति-भेयं कालं करेइ, धरणितलंसि सव्वगेहिं धस त्ति संनिवडिते, तते णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासति, पासित्ता एवं वयासी—

एस णं देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिए, जेण मम सहोदरे कनीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए। त्तिकट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सते गिहे तेणेव उवागते, सयं गिहं अणुपविट्ठे। एवं खलु जंबू! समणेण जाव सम्पत्तेणं अन्तगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

छाया—**ततः सः सोमिलो ब्राह्मणः कृष्णं वासुदेवं सहसा दृष्ट्वा भीतः ४, स्थितश्चैव स्थिति-भेदं कालं करोति। धरणितले सर्वाङ्गैः धस इति सन्निपतितः। ततः सः कृष्णो वासुदेवः सोमिलं ब्राह्मणं पश्यति दृष्ट्वा चैवमवदत्—एष देवानुप्रियाः! सः सोमिलो ब्राह्मणः, अप्रार्थितः यावत् परिवर्जितः, येन मम सहोदरः कनीयान् भ्राता गजसुकुमालोऽनगारोऽकाले चैव जीवितात् व्यपरोपितः। इति कृत्वा सोमिलं ब्राह्मणं पाणैः—(चाण्डालैः) कर्षयति, कर्षयित्वा तां भूमिं पानीयेन अभ्युक्षयति, अभ्युक्ष्य च यत्रैव स्वकीयं गृहं तत्रैव उपागतः, स्वकं गृहमनुप्रविष्टः। एवं खलु जंबू! यावत् श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सम्प्राप्तेन अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य अष्टमाध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।**

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयोग में लाया जाता है; **से सोमिले माहणे**—वह सोमिल ब्राह्मण; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **सहसा**—एकदम—अचानक;

पासित्ता—अपने सामने देखकर; **भीते**—डर गया; **य**—और; **ठिते एव**—खड़ा हुआ ही; **च**—समुच्चयार्थक है; **ठितिभेयं**—आयुष्यकर्म की स्थिति का क्षय करके; **कालं करोति**—मृत्यु को प्राप्त होता है; **धरणितलंसि**—भूमि तल पर; **सव्वंगेहिं**—सब अंगों से; **धस त्ति**—धस, ऐसा शब्द करता हुआ, अर्थात् धड़ाम से; **संनिवडिते**—गिर पड़ा; **तते णं**—इसके अनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव, (गिरते हुए) **सोमिलं माहणं**—सोमिल ब्राह्मण को; **पासति**—देखते है; **पासित्ता**—देखकर; **एवं वयासी**—(साथियों से) इस प्रकार कहने लगे; **देवाणुप्पिया!**—हे भद्र पुरुषो; **एसणं**—यह सामने भूमि पर गिरा हुआ व्यक्ति; **अपत्थिय-पत्थिए**—मृत्यु को चाहनेवाला; **जाव**—यावत् **परिवज्जिए**—श्री एवं लज्जाविहीन; **से सोमिले माहणे**—वह सोमिल ब्राह्मण है; **जेण**—जिसने; **ममं**—मेरे; **सहोदरे**—मां जाए; **कनीयसे भायरे**—छोटे भाई; **गयसुकुमाले अणगारे**—मुनि गजसुकुमार को; **अकाले चेव**—अकाल में ही; **जीवियाओ**—जीवन से; **ववरोविए**—रहित कर दिया है; **त्ति कट्टु**—ऐसा कह कर; **सोमिलं माहणं**—सोमिल ब्राह्मण को; **पाणेहिं**—चाण्डालों द्वारा; **कड्ढावेइ**—पैरों को रस्सी से बंधवाकर तथा घसोटवा कर नगर से बाहिर गिरवा देते हैं; **कड्ढावित्ता**—गिरवाने के बाद; **तं भूमिं**—उस भूमि को जहा सोमिल ब्राह्मण का शव पड़ा था; **पाणिएणं**—जल से; **अब्भोक्खावेइ**—शुद्ध करवाते है; **अब्भोक्खावेत्ता**—शुद्ध करवा कर; **जेणेव**—जहा पर; **सते गिहे**—अपना घर था; **तेणेव उवागते**—वहां पर आ गए, उसके अनन्तर वे; **सयं**—अपने; **गिहं**—घर में; **अणुपविट्ठे**—प्रविष्ट हुए। **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **जंबू !**—है जम्बू ! **समणेणं**—श्रमण; **जाव सम्पत्तेणं**—यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने; **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद्दशा के; **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग के; **अट्ठमज्झयणस्य**—आठवें अध्ययन का; **अयमट्ठे**—यह अर्थ, **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण श्रीकृष्ण को अचानक अपने सामने देखकर भय के मारे घबरा गया, उसका हृदय धड़कने लगा। अधिक भय के कारण आयुष्यकर्म की समाप्ति होने पर वहां खड़ा-खड़ा ही समाप्त हो गया और धड़ाम से उसका शरीर भूमितल पर गिर पड़ा।

भूमितल पर गिरे सोमिल ब्राह्मण को देख कर श्रीकृष्ण ने अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भद्रपुरुषो ! सामने भूमितल पर पड़ा हुआ, मृत्यु का प्रार्थी श्री एवं लज्जा से विहीन यह वही सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे मांजाए छोटे भाई मुनि गजसुकुमाल को अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया है। ऐसा कहने के पश्चात् श्री वासुदेव कृष्ण चाण्डालों को बुलवाते हैं, सोमिल ब्राह्मण के पैरों को रस्सी से बंधवा कर उनसे ही घसीटवा कर उसे द्वारिका नगरी के बाहिर फिंकवा देते हैं। यह सब कुछ करने के अनन्तर जहां सोमिल ब्राह्मण का शव पड़ा था, उस भूमि को जल से साफ करवाते हैं और अन्त में अपने घर चले जाते हैं।

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

व्याख्या—पुण्य का आचरण न करना, परन्तु पुण्य के मधुर फल की आकांक्षा बनाए रखना और पापाचार में निमग्न रहना एवं पापों के दुःखान्त परिणाम से सदा उन्मुक्त रहने का विचार रखना, यह जन साधारण का स्वभाव-सिद्ध सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की आराधना करनेवालों की संख्या थोड़ी नही है। द्वारिका नगरी का सोमिल ब्राह्मण भी इसी सिद्धान्त का अनुयायी था। उसने श्रीकृष्ण के मांजाए छोटे भाई गजसुकुमार का प्राणान्त कर दिया। गजसुकुमार एक तो त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे, दूसरे एक महान तपस्वी थे। ऐसे उच्च महान् व्यक्तित्व के स्वामी महापुरुष के सिरपर अंगीठी रखकर मरणान्तिक कष्ट पहुंचाना—उनकी जीवन-लीला समाप्त कर देना कितना भयंकर अक्षम्य अपराध है—पाप है ? तथापि सोमिल इसके फल से बचना चाहता है। उसका विचार है कि यदि द्वारिका नगरी से भाग जाऊंगा तो श्रीकृष्ण की आंखों से ओझल हो जाऊंगा और इस प्रकार गजसुकुमार की हत्या के अपराध के फल से बच जाऊंगा। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिये वह अपने घर से चल भी देता है, बड़ी शीघ्रता के साथ अपने पांव उठाता है, ताकि वह शीघ्र ही द्वारिका नगरी की सीमा से बाहिर होजाने में सफल होजाये, पर लाखों प्रयत्न करलेने पर भी पाप-कर्म जीव का पिण्ड नहीं छोड़ता। जब पाप-कर्म का उदय आ जाए तो फिर वह अपने फल का भुगतान करके ही छोड़ता है। सोमिल ब्राह्मण के पाप कर्म का उदय-काल आ चुका था, परिणाम स्वरूप वह अपनी योजना को मूर्तरूप देने में सफल नहीं हो सका। सूत्रकार कहते हैं कि जब सोमिल ब्राह्मण द्वारिका नगरी से बाहिर हो रहा था, तब उस समय श्रीकृष्ण द्वारिका नगरी में प्रवेश कर रहे थे। इस तरह अचानक दोनों का मेल हो गया। श्रीकृष्ण को देखते ही उसकी आंखों के आगे अंधकार छा गया, जीवन सुरक्षा की सब योजनाएं समाप्त हो गई, श्रीकृष्ण को देखते ही वह जीवन से सर्वथा निराश हो गया। मृत्यु-भय के मारे उसका रोम-रोम कांप उठा, उसके हृदय को ऐसा धक्का लगा, जिसे वह सहन नहीं कर सका, परिणाम स्वरूप वह खड़ा-खड़ा ही समाप्त हो गया। आयुष्य-कर्म की पूंजी समाप्त होने से उसका प्राणान्त हो गया। निर्जीव होने से उसका शरीर मिट्टी के ढेले की तरह धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। हिन्दी के एक अनुभवी विद्वान् कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

पाप छुपाया न छुपे, छुपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी न रहे, रुई लपेटी आग॥

कथाकारों की ऐसी भी मान्यता है कि श्रीकृष्ण जब वापिस द्वारिका नगरी की ओर आ रहे थे तो उस समय वे छोटे भाई गजसुकुमार की अकाल मृत्यु की दुःखद घटना से बड़े व्याकुल थे—अत्यधिक खिन्न थे। उसी खिन्नावस्था के कारण उन्होंने राज-सेवकों को आदेश दिया कि आज हम द्वारिका नगरी के मध्य में से होकर नहीं जायेंगे, जिस मार्ग में लोगों का यातायात कम है उसी एकान्त शान्त मार्ग से घर पहुंचेंगे। आदेशानुसार सेवकों ने मध्य मार्ग छोड़कर एकान्त गली का मार्ग ले लिया।

श्रीकृष्ण गली में से होकर जा रहे थे। समय की बात समझिए कि उधर भागते समय सोमिल ब्राह्मण के मन में विचार आया कि श्रीकृष्ण द्वारिका के मध्य मार्ग से आया करते हैं, अतः मैं मध्यमार्ग को छोड़कर गली के मार्ग से चलता हूं। यह सोचकर सोमिल गली के मार्ग से जाने लगा। आगे बढ़ा तो महाराज श्रीकृष्ण के दर्शन हो गये। अपने ही पाप के कारण आज उसे महाराज श्रीकृष्ण यमराज दिखाई दिये। बस फिर क्या था, सोमिल भावी अनिष्ट की कल्पना से कांप उठा, उसके रोम-रोम में मृत्यु का भय नाचने लगा। अन्त में, भयाधिक्य से उसके प्राण पंखेरू उड़ गये और वह धड़ाम से भूमि-तल पर गिर पड़ा।

कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से पूछा था कि प्रभो! मैं गजसुकुमार मुनि के घातक पुरुष को कैसे जान सकता हूं। इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा था कि हे कृष्ण जब तुम द्वारिका नगरी में प्रवेश करोगे तब तुम्हें देखते ही एक मनुष्य का प्राणान्त हो जाएगा तब तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है, जिसने मुनि-गजसुकुमार की हत्या की है यह सब वार्ता श्रीकृष्ण को याद थी। इसीलिये अपने सन्मुख भूमि तल पर मरे पड़े सोमिल को देखकर वे अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए तत्काल बोल उठे—भद्र पुरुषो! भाग्यहीन, अधम लज्जा-विहीन तथा नीच यह वह सोमिल ब्राह्मण है, जिसने गजसुकुमार मुनि का अकाल मे जीवन समाप्त कर दिया है।

सोमिल ब्राह्मण के शव को देख कर श्रीकृष्ण को मार्मिक वेदना हुई। ब्राह्मण-कुल मे जन्म ले कर धर्म-शास्त्रों का संसार को सन्देश देनेवाला सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार का नीच कुकृत्य करेगा, उनको स्वप्न में भी यह आशा नही थी। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जो भी व्यक्ति सोमिल ब्राह्मण द्वारा की गई मुनि गजसुकुमार की हत्या की बात सुनता वही आश्चर्य चकित रह जाता। सभी उसकी भर्त्सना करते और उसके शव पर थूकते। अन्त में श्रीकृष्ण ने सोमिल ब्राह्मण के शव को चाण्डालों द्वारा खिचवा कर द्वारिका नगरी से बाहिर फिंकवा दिया।

"भीते ४" यहां दिये गये ४ के अंक से तथा **"अपत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिते"** यहां पठित **जाव—**यावत् पद से अभीष्ट पदों का वर्णन क्रमशः पृष्ठ १९६ तथा पृष्ठ १६५ पर कर दिया गया है।

"एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं" यहां पठित जाव पद **भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सिवमयलमरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगई नामधेयं ठाणं"** इन पदों का संसूचक है। इनका विवेचन पीछे पृष्ठ १३ पर किया जा चुका है।

"पाणेहिं कड्ढावेइ—पाणैः-चाण्डालैः कर्षयति, चरणे रज्जु बन्धयित्वा चाण्डालैः नगराद् बहिर्निष्कासयति। यहां **प्रयुक्त पाणं** शब्द चाण्डाल का बोधक है। सोमिल के पैरों को रस्सी से बंधवाकर तथा घसीटवा कर नगर से बाहिर फिकवा दिया जाता है। इन भावों का संसूचक **'कड्ढा-वेइ'** यह पद है।

"तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ"—इन पदों का भावार्थ है--सोमिल के शव को उठाए जाने के पश्चात् उस भूमि को जल के द्वारा शुद्ध कराया जाता है।

सोमिल ब्राह्मण के शव को चण्डालों से खिचवाना तथा शववाले स्थान को जल से धुलवाना ये सब बातें जन साधारण को शिक्षित करने के लिये कही गई हैं। लोग यह समझ लें कि दुष्ट कर्म

का आचरण करने वाला व्यक्ति प्रत्येक दृष्टि से निन्दित होता है, उसका किसी भी दशा में सम्मान नहीं हो सकता, उसे सर्वत्र अपमानित होना पड़ता है। नीति-धर्म के अनुसार आततायी व्यक्ति के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना उचित होता है ? इस प्रश्न का समाधान भी उक्त वर्णन में प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त सोमिल ब्राह्मण के अन्य कुटुम्बी जनों के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न करना यह श्रीकृष्ण की न्याय-प्रियता का सुन्दर एवं समर्थ उदाहरण है।

कहा जा चुका है कि पांच सौ शिष्यों के साथ आर्य सुधर्मा स्वामी चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक उद्यान में विराजमान थे। इनके विनीत शिष्य आर्य जम्बू स्वामी ने इनके चरणों में निवेदन किया था कि भगवन् ! अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के सातवें अध्ययन में श्रमण भगवान महावीर ने जिस महापुरुष का जीवन-चरित वर्णित किया है उसका मैंने श्रवण कर लिया है। मेरी इच्छा है कि गुरुदेव ! अब आप अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का वर्णन सुनाएं—भगवान महावीर ने इस अध्ययन में किस महापुरुष की जीवनी वर्णित की है, उसे सुनाने की कृपा करें। अपने प्रिय शिष्य आर्य जंबू की इस प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी ने इनको तृतीय वर्ग का आठवां अध्ययन सुनाना आरम्भ किया था। इसमें उन्होंने गजसुकुमार मुनि का जीवन-चरित सुनाया। मुनि गजसुकुमार का जीवन-चरित समाप्त होने पर वे अपने शिष्य जम्बू से बोले—जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का वर्णन किया है। इसी बात को सूत्रकार ने '**एवं खलु जम्बू !**' आदि पदों से अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यतया तीन बातों पर प्रकाश डाला गया है :—

पहली बात मातृ-ममता की है। माता देवकी के हृदय में बाल-क्रीड़ाएं देखने की महान उत्कण्ठा उसके मातृ-हृदयगत ममत्वभाव का पर्याप्त परिचय करवा रही है।

दूसरी बात, मुनि गजसुकुमार की दृढ़ता की है। सोमिल ब्राह्मण द्वारा सिर पर अंगीठी रख देने पर भी उसके लिये मन में ज़रा भी द्वेष नहीं आने दिया, प्रत्युत बड़ी शान्ति और धीरता से उस असीम संकट को सह कर मुनि गजसुकुमार ने अपनी संयम-साधनागत निष्ठा का आदर्श परिचय दिया है और संसार को बतला दिया है कि मोक्ष-सम्पदा को हस्तगत करने के लिये अग्नि-दाह जैसे कष्टों को सहन करने की क्षमता भी अपेक्षित है।

तीसरी बात सोमिल ब्राह्मण के कर्मों के विपाक की है। सोमिल चाहता था कि मैं श्रीकृष्ण की आंखों से ओझल हो जाऊं, द्वारिका-नगरी से भाग कर ऐसे ठिकाने पर अपने को छिपा लूं जो श्रीकृष्ण की पहुंच से बहुत दूर हो, पर हुआ इससे बिल्कुल विपरीत। सोमिल अभी नगरी से बाहिर ही हुआ था कि श्रीकृष्ण उसे मिल गए। श्रीकृष्ण के रूप में मानों यमराज उसके सामने आगए। श्रीकृष्ण उसके वध का कोई आदेश दें, इससे पहले ही उसके कर्म ने उसे दण्ड दे डाला और वह सदा के लिये मृत्यु की गोद में सो गया। इससे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि कर्म-फल से मनुष्य बच नहीं सकता। कर्म जब उदयोन्मुख होते हैं तो उस समय स्थान, काल की चिन्ता किये बिना ही वे मनुष्य को अपना फल दे डालते हैं, अतः सुखाभिलाषी सहृदय मानव को दुःखान्त कर्मों से सदा पृथक् रहना चाहिये।

आठवां अध्ययन समाप्त

नवम अध्ययन

तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन के अनन्तर नौवें अध्ययन का स्थान है। नौवें अध्ययन में किन महापुरुषों के जीवन-चरित हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं :-

मूल—नवमस्स उ उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवतीए नयरीए जहा पढमए जाव विहरइ। तत्थ णं बारवतीए बलदेवे नामं राया होत्था। वण्णओ। तस्स ण बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। वण्णओ। तते णं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, नवरं सुमुहे नामं कुमारे पन्नासं कन्नाओ पन्नासदाओ। चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, बीसं वासाइं परियाओ, सेसं तं चेव सेत्तुञ्जे सिद्धे ! निक्खेवओ।

छाया—नवमस्य तु उत्क्षेपकः। एवं खलु जम्बु !तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवत्यां नगर्यां यथा प्रथमको यावद् विहरति। तत्र द्वारवत्यां बलदेवो नाम राजा बभूव। वर्णकः। तस्य बलदेवस्य राज्ञो धारिणी नाम्नी देवी बभूव। वर्णकः। ततः सा धारिणी सिंहं स्वप्ने, यथा गौतमः, नवरं सुमुखो नाम्ना कुमारः, पञ्चाशत् कन्याः, पञ्चाशत् दायाः, चतुर्दशपूर्वाणि अधीते, विंशति वर्षाणि पर्यायः, शेषं तच्चैव, शत्रुञ्जये सिद्धः। निक्षेपकः।

पदार्थ—**नवमस्स**—नवम अध्ययन की, **उ**—समुच्चयार्थक है। **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना पहले की भांति जान लेना; **एवं खलु**—इस प्रकार, निश्चय ही; **जंबू !**—हे जम्बू !; **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेण समएणं**—उस समय; **बारवतीए नयरीए**—द्वारिका नगरी में; **जहा**—जिस प्रकार; **पढमए**—प्रथम अध्ययन में वर्णन किया जा चुका है। **जाव**—यावत् कृष्ण वासुदेव राज्य किया करते थे; **तत्थणं**—उसी नगरी में; **बलदेवे नाम**—बलदेव नाम का; **राया**—राजा; **होत्था**—था; **वण्णओ**—उसका वर्णन औपपातिक सूत्र की भांति जानना; **तस्स णं**—उस; **बलदेवस्स रन्नो**—बलदेव राजा की; **धारिणी नामं**—धारिणी नाम की; **देवी होत्था**—रानी थी; **वण्णओ**—रानी का वर्णन भी पहले की भांति जान लेना; **तते णं**—इसके अनन्तर; **सा धारिणी**—उस धारणी देवी ने; **सुमिणे**—स्वप्न में; **सीहं**—सिंह देखा; **जहा**—जिस प्रकार; **गोयमे**—गौतम कुमार का जन्म हुआ था, वैसे ही इसका एक कुमार हुआ; **नवरं**—अन्तर केवल इतना है कि इसका; **नामं**—नाम; **सुमुहे कुमारे**—सुमुख कुमार था; **पन्नासं**—सुमुख कुमार का पचास; **कन्नाओ**—कन्याओं के साथ विवाह किया गया। तथा; **पन्नासं दाओ**—पचास-पचास वस्तुओं का दहेज दिया गया। फिर दीक्षा ग्रहण की, फिर वह; **चोद्दस पुव्वाइं**—चौदह पूर्वों का; **अहिज्जइ**—अध्ययन करता है; **बीसं वासाइं**—बीस वर्ष; **परियाओ**—दीक्षा का पालन

करता है; **सेसं**—शेष वर्णन; **तं चेव**—वैसा ही है, अन्त में; **सेत्तुंजे**—शत्रुञ्जय पर्वत पर वह; **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त करता है; **निक्खेवओ**—निक्षेप—उपसंहार पहले को तरह जानना।

मूलार्थ—नवम अध्ययन की प्रस्तावना पहले की तरह जान लेना। आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि जम्बू! उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी में त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण राज्य किया करते थे, परन्तु द्वारिका नगरी के एक विभाग का आधिपत्य महाराज बलदेव कर रहे थे। औपपातिक सूत्र में वर्णित राज्य-वैभव की भाँति महाराज बलदेव का भी राज्य-वैभव था।

महाराज बलदेव की रानी का नाम धारिणी था। धारिणी नारी स्त्री-उचित सभी गुणों को भण्डार थी। एक बार महारानी धारिणी ने स्वप्न में सिह को देखा। समय आने पर उसने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजकुमार गौतम कुमार की भांति बालक का जन्मोत्सव मनाया गया। अन्तर केवल इतना है कि बालक का नाम सुमुख कुमार रखा गया। युवावस्था आने पर उसका पचास राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। पचास-पचास प्रकार का इनको दहेज मिला। वैराग्य होने पर ये साधु बन गये। इन्होंने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्षों की दीक्षा का पालन किया, अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर उन्होंने कर्मों का आमूल-चूल क्षय करके सिद्ध-पद प्राप्त किया।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के इस नवम अध्ययन मे सूत्रकार ने राजकुमार सुमुख कुमार के जीवन का उल्लेख किया है। सुमुख कुमार द्वारिका नगरी मे पैदा हुए थे, पिता महाराज बलदेव और माता धारिणी देवी थी। कुमार जब गर्भ में आए थे तो उस समय माता ने स्वप्न में एक सिह को देखा था। सिह-दर्शन का अर्थ था—गर्भ में आनेवाला जीव शौर्यादि गुणों में सिंह के समान होगा। स्वप्न-पाठकों द्वारा स्वप्न का मंगलमय सुखद फलादेश सुन कर माता-पिता को बहुत प्रसन्नता हुई थी। बालक के जन्म होने पर राज्य भर में प्रसन्नता छा गई। माता-पिता ने दिल खोल कर याचकों को दान दिया। बालक का नाम सुमुख कुमार रखा गया। जब राजकुमार सुमुख युवक हो गया तब माता-पिता ने उसका अनुपम सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। पचास-पचास प्रकार का दहेज दिया। विवाहित होने पर राजकुमार सांसारिक सुखों का आनन्द भोगने लगा।

एक बार द्वारिका नगरी में विश्ववन्द्य मंगलमूर्ति भगवान अरिष्टनेमि पधारे। राजकुमार सुमुख को भगवान के मंगलमय उपदेश सुनने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ। भगवान की कल्याणमयी वाणी ने सुमुख की सोई हुई अन्तर्चेतना जगा डाली और उसे वैराग्य हो गया। माता-पिता के समझाने पर भी वह वैराग्य का महापथ छोड़ने को तैयार न हुआ। शुभ दिन देखकर एक दिन उसने भगवान

के चरणों में दीक्षा-व्रत अंगीकार कर लिया। संयम-साधना की बड़ी कठोरता के साथ आराधना करने लगा, साथ में चौदह पूर्वों का अध्ययन भी किया। इस तरह बीस वर्ष तक संयम-साधना तथा ज्ञानाराधना में लगा रहा। अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर विराजमान होकर मुनि सुमुख ने निर्वाण-पद को प्राप्त कर लिया।

"उक्खेवओ"—उत्क्षेपकः। उत्क्षेपक, प्रस्तावना, प्रारंभिक वक्तव्य, या उपोद्घात का नाम है। सूत्रकार की भाषा में प्रस्तुत नवम अध्ययन की प्रस्तावना इस प्रकार है—

जइ णं भंते! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अन्तगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में निवेदन करते हैं कि हे भगवन्! यदि मोक्षप्राप्त यावत् श्रमण भगवान ने अन्तगड़ सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन्! मोक्ष प्राप्त यावत्, श्रमण भगवान महावीर ने नवम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है? यह नवम अध्ययन की प्रस्तावना है। जिसे सूत्रकार ने मूल सूत्र में **"नवमस्स उक्खेवओ"** इन पदों से सूचित किया है।

"जहा पढमए जाव विहरइ" इन पदों का अर्थ है—जैसे पहले अध्ययन में श्रीकृष्ण के वैभव का तथा आधिपत्य का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण तीन खण्ड पर अपना शासन चला रहे थे। अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में **तत्थ णं बारवतीए नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया राय वण्णतो। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं···आहेवच्चं जाव विहरइ।"** यह पाठ आता है। प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने **"बारवतीए नयरीए जहा पढमए जाव विहरइ"** ये पद लेकर प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में पठित उक्त पाठ के ग्रहण करने की ओर संकेत किया है।

"वण्णओ" का अर्थ है—वर्णन-प्रकरण या वर्णनप्रकार। सूत्रकार ने यह पद राजा तथा रानी दोनों के साथ जोड़ा है। पहला **"वण्णओ"** पद—**महया-हिमवंत-महंत-मलय-मन्दर-महिंद-सारे··· पसन्तडिम्ब-डमरं रज्जं पसासेमाणे विहरइ** इन पदों का संसूचक है। औपपातिक सूत्र में इन पदों की व्याख्या देखी जा सकती है। द्वितीय **"वण्णओ"** पद औपपातिक सूत्र में वर्णित **"—सुकुमाल-पाणिपाया, अहीण पडिपुण्ण-पंचिंदिय सरीरा···पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरति"** इन पदों का परिचायक है। इनकी व्याख्या भी औपपातिक सूत्र में ही देखनी चाहिए।

"जहा गोयमे"का अर्थ है—जैसे प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में गौतम कुमार का जन्म-सम्बन्धी वर्णन पीछे किया गया है। वैसे ही सुमुख कुमार का जन्म-वर्णन भी समझ लेना चाहिए। स्वप्न-पाठकों का बुलाना, समय पर गर्भ का धारण करना, नवमास पूर्ण होने पर बालक का जन्म लेना, माता-पिता का जन्मोत्सव मनाना, ये सब बातें जैसे राजकुमार गौतमकुमार के प्रकरण में बतलाई गई हैं, ठीक उसी प्रकार सुमुख कुमार के प्रकरण में भी जान लेनी चाहिए। इसी बात की सूचनार्थ सूत्रकार ने 'जहा गोयमे' इन शब्दों का प्रयोग किया है।

'पन्नासं दाओ' का अर्थ है, पचास-पचास का दहेज दिया गया। राजकुमार सुमुख का विवाह ५० राजकुमारियों के साथ सम्पन्न हुआ था; अतः माता-पिता ने पुत्रवधुओं को कुण्डल आदि जो दहेज में दिए उनकी संख्या पचास-पचास थी, ताकि प्रत्येक पुत्रवधू को प्रत्येक वस्तु मिल सके। यह सब कुछ देने के पीछे माता-पिता की यही भावना थी कि एक वस्तु एक के पास रहे और एक के पास न रहे ऐसी विषमता न हो, प्रत्युत एक जैसी वस्तु प्रत्येक पुत्रवधू को प्राप्त हो।

"चोद्दस पुव्वाइं" का अर्थ है—चौदह पूर्व। तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान जिस अर्थ का पहले-पहल गणधरों को उपदेश देते हैं, अथवा गणधर पहले-पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप में गूंथते हैं, उसे पूर्व कहते हैं। उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व आदि चौदह पूर्व हैं। इन्हीं चौदह पूर्वों का मुनिराज सुमुख कुमार ने अध्ययन किया था।*

"सेसं तं चेव" इन पदों का अर्थ है—सुमुख मुनिवर का शेष वर्णन वही है। भाव यह है कि जैसे गौतम कुमार के प्रकरण में गौतम मुनि के जीवन का अन्तिम भाग वर्णित हो चुका है, वही वर्णन सुमुख मुनि का भी समझ लेना चाहिए।

'निक्खेवओ'—**निक्षेपक**—इस पद का अर्थ है—उपसंहार, समाप्ति-सूचक वाक्य। शास्त्रीय भाषा में इस नवम अध्ययन का उपसंहार वाक्य इस प्रकार है—

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। अर्थात् हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष-प्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का यह (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूं।

नवम अध्ययन समाप्त

* चौदह पूर्वों का वर्णन पढ़िए पृ० ८५ पर।

चार अध्ययन

(१० से १३)

अन्तगडसूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का वर्णन किया जा चुका है। अब क्रम प्राप्त अगले अध्ययनों का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**एवं दुम्मुहेवि, कूवदारएवि तिन्निवि बलदेव-धारिणी सुया, दारुएवि एवं चेव, नवरं वसुदेवधारिणीसुते। एवं अणाधिट्ठीवि वसुदेवधारिणीसुते। एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।**

छाया—एवं द्विमुखोऽपि, कूपदारकोऽपि त्रयोऽपि बलदेवधारिणीसुताः, दारुकोऽपि एवं चैव. नवरं वसुदेवधारिणीसुतः। एवमनाधृष्टयपि वसुदेवधारिणीसुतः। एवं खलु जम्बु! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य त्रयोदशस्य अध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार; **दुम्मुहेवि**—द्विमुख कुमार भी; **कूवदारएवि**—कूपदारक कुमार भी; **तिन्निवि**—तीनों ही; **बलदेवधारिणीसुया**—बलदेव और धारिणी के पुत्र थे; **एवं चेव**—और इसी प्रकार; **दारुएवि**—दारुक कुमार का भी वर्णन समझ लेना; **नवरं**—अन्तर केवल इतना है; **वसुदेवधारिणीसुया**—ये वसुदेव राजा और धारिणी देवी के पुत्र थे; **एवं**—इसी प्रकार; **अणाधिट्ठीवि**—अनाधृष्टि कुमार का भी वर्णन है; **वसुदेवधारिणीसुते**—यह वसुदेव तथा धारिणी के पुत्र थे; **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चय ही; **जंबू !**—हे जम्बू !; **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष सम्प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण; **भगवया**—भगवान; **महावीरेणं**—महावीर ने; **अट्ठमस्स अंगस्स**—आठवें अंग; **अन्त-गडदसाणं**—अन्तकृद्दशा के; **तच्चस्स वग्गस्स**—तृतीय वर्ग के; **तेरसमस्स**—तेरहवें; **अज्झयणस्स**—अध्ययन का; **अयमट्ठे**—यह अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—जिस प्रकार सुमुख कुमार के जीवन का उल्लेख किया गया है, इसी प्रकार द्विमुख और कूपदारक इन दो राजकुमारों के विषय में भी जान लेना चाहिये। सुमुख, द्विमुख और कूपदारक ये तीनों ही राजा बलदेव के पुत्र और माता धारिणी के आत्मज थे। इन की तरह ही दारुककुमार की जीवनी है, अन्तर केवल इतना है कि

पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। दारुक कुमार के भाई अनाधृष्टि कुमार के जीवन की भी ऐसी ही कथा है।

आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष सम्प्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के तृतीय वर्ग के तेरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में चार अध्ययनों का वर्णन किया गया है। इन में क्रमशः द्विमुख, कूपदारक, दारुक तथा अनाधृष्टि, इन चार राजकुमारों के जीवन-वृत्तों का उल्लेख है। इन में द्विमुख और कूपदारक ये दोनों इसी वर्ग के नवम अध्ययन में वर्णित सुमुख कुमार के मां जाए भाई थे। तीनों के पिता महाराज बलदेव थे। इनको जन्म देनेवाली माता धारिणी थी।

दारुक और अनाधृष्टि ये दोनों सगे भाई थे, पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। इन चारों कुमारों की जीवनी सुमुख की तरह जाननी चाहिये।

इनकी तथा सुमुख की जीवनी में कोई विशेष अन्तर न होने के कारण सूत्रकार ने केवल इनका तथा इनके माता-पिता के नाम का उल्लेखमात्र कर दिया है। केवल नामोल्लेख करने के पीछे सूत्रकार की यही भावना प्रतीत होती है कि द्विमुख आदि राजकुमारों का जन्म, शैशवकाल, युवावस्था, विवाह, दीक्षा-ग्रहण, ज्ञान-प्राप्ति तथा निर्वाण-प्राप्ति आदि सभी बातें सुमुख कुमार की तरह ही जान लेनी चाहिए।

'दुम्मुहे' इस पद की संस्कृतच्छाया—**"दुर्मुखः"** ऐसी भी देखने में आती है।

"तिन्निवि" यह पद तीन का बोधक है। इसी सूत्र में वर्णित श्री द्विमुखकुमार तथा श्री कूपदारक दो ये तथा तीसरे नवम अध्ययन में वर्णित श्रीसुमुख कुमार हैं। इस प्रकार इन तीनों का सूचक **'तिन्नि'** यह पद है।

प्रस्तुत सूत्र का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि उस युग में 'धारिणी' यह नाम अत्यधिक लोकप्रिय था। जनता में राजकुमारियों का 'धारिणी' नाम रखने की अधिक प्रथा थी। इसीलिये वसुदेव राजा की रानी का नाम धारिणी था, तथा बलदेव राजा की रानी का नाम भी धारिणी था। प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के नायक राजकुमार गौतम कुमार की जननी का नाम भी धारिणी था। परन्तु धारिणी नाम की ये सभी रानियां अलग-अलग थीं। नाम की समानता होने से इनको एक समझने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिये।

"समणेणं जाव संपत्तेणं" यहां पठित **'जाव—यावत्'** पद से अभीष्ट पदों का संकेत पीछे पृष्ठ पर कर दिया गया है।

सूत्र का उपसंहार सूत्रकार ने स्वयं कर दिया है जिसका अर्थ स्पष्ट ही है।

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

चतुर्थ वर्ग

अब सूत्रकार चतुर्थ वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य, वारिसेणे य, पज्जुन्न, संब, अनिरुद्धे, सच्चनेमि य, दढनेमि ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती नयरी, तीसे जहा पढमे कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।

तत्थ णं बारवतीए नयरीए वसुदेवे राया, धारिणी वण्णओ, जहा गोयमो, नवरं जालिकुमारे । पन्नासं दातो, बारसंगी सोलस वासा परिताओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे ।

एवं मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य । एवं पजुन्नेवित्ति, नवरं कण्हे पिया, रुप्पिणी माता । एवं संबेवि, नवरं जंबवती माता । एवं अनिरुद्धेवि नवरं पज्जुन्ने पिया वेदब्भी माया । एवं सच्चनेमी, नवरं समुद्दविजये पिता, सिवा माता । दढनेमीवि, सव्वे एग गमा । चउत्थवग्गस्स निक्खेवओ ।

छाया—यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन तृतीयस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, चतुर्थस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, तस्यां यथा प्रथमे कृष्णो वासुदेवः आधिपत्यं यावद् विहरइ ।

तत्र द्वारवत्यां नगर्यां वसुदेवो राजा धारिणी । वर्णकः । यथा गौतमः, नवरं जालिकुमारः । पञ्चाशत् दायाः । द्वादशांगी । षोडश वर्षाणि पर्यायः । शेषं यथा गौतमस्य, यावत् शत्रुञ्जये सिद्धः ।

एवं मयालिः, उपयालिः, पुरुषसेनश्च, वारिषेणश्च, एवं प्रद्युम्नोऽपि इति, नवरं कृष्णः पिता रुक्मिणी माता, एवं शाम्बोऽपि नवरं, जाम्बवती माता । एवमनिरुद्धोऽपि, नवरं प्रद्युम्नः पिता, वैदर्भी माता । एवं सत्यनेमिः, नवरं समुद्रविजयः पिता, शिवा माता, दृढनेमिरपि । सर्वे एकगमाः, चतुर्थवर्गस्य निक्षेपकः ।

पदार्थ—जइ—यदि; णं—वाक्य सौंदर्यार्थ है; भंते!—हे भगवन्!; समणेणं—श्रमण; जाव—यावत्; संपत्तेणं—मोक्ष-सम्प्राप्त महावीर स्वामी ने; तच्चस्स वग्गस्स—तृतीय वर्ग का; अयमट्ठे—यह अर्थ; पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है तो हे भगवन्! ; चउत्थस्स—चतुर्थ वर्ग का; के अट्ठे पण्णत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? (श्री सुधर्मा स्वामी बोले); एवं—इस प्रकार; खलु—निश्चयार्थक है; जंबू!—हे जम्बू!; समणेणं—श्रमण; जाव—यावत्; सम्पत्तेणं—मोक्ष-प्राप्त महावीर ने; चउत्थस्स वग्गस्स—चतुर्थ वर्ग के; दस अज्झयणा—दस अध्ययन; पण्णत्ता—कथन किए हैं; तं जहा—जैसे कि :—

जालि—जालि कुमार; मयालि—मयालि कुमार, उवयालि—उपयालि कुमार; पुरिससेणे य—और पुरुषसेन; वारिसेणे य—और वारिषेण; पज्जुन्न—प्रद्युम्नकुमार; संब—शाम्बकुमार; अनिरुद्धे—अनिरुद्धकुमार;सच्चनेमी य—और सत्यनेमिकुमार; दढ़नेमी—दृढ़नेमिकुमार; जइ णं—यदि; भंते!—हे भगवन्!; समणेणं—श्रमण;जाव—यावत्; संपत्तेणं—मोक्षप्राप्त महावीरने;चउत्थस्स वग्गस्स—चौथे वर्ग के; दस अज्झयणा—दस अध्ययन; पण्णत्ता—प्रतिपादन किए हैं तो हे भगवन्! ; पढमस्स णं अज्झयणस्स—प्रथम अध्ययन का; के अट्ठे पण्णत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? (श्री सुधर्मा स्वामी बोले) एवं—इस प्रकार; खलु—निश्चय ही; जंबू!—हे जम्बू!; तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल तथा उस समय में; बारवती णयरी—द्वारिका नगरी थी; तीसे—उस नगरी में; जहा—जिस प्रकार; पढमे—प्रथम अध्ययन में कहा जा चुका है, वैसे हो; कण्हे वासुदेवे—कृष्ण वासुदेव; आहेवच्चं—राज्य करते हुए; जाव—यावत्; विहरइ—विहरण कर रहे थे।

तत्थ णं—वहा; बारवतीए णयरीए—द्वारिका नगरीमें; वसुदेवे राया—राजा वसुदेव भी राज्य करते थे, उनकी; धारिणी—धारिणी नाम की रानो थी; वण्णओ—उस का वर्णन औपपातिक सूत्र की भांति समझ लेना चाहिये। (इन के घर एक बालक ने जन्म लिया); जहा गोयमो—जिस प्रकार गौतम कुमार का जन्मोत्सव मनाया गया था; (उसी प्रकार इसका भी जन्मोत्सब मनाया गया; नवरं—इतना अन्तर है कि इस बालक का नाम; जालिकुमारे—जालिकुमार रखा गया। इसका पचास राजकन्याओं से विवाह किया गया, विवाह में इनको; पन्नासतो दातो—पचास-पचास प्रकार का दहेज दिया गया। इन्होने भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली और; बारसंगी—बारह अंगों का अध्ययन किया; सोलस वासा परितायो—सोलह वर्षो तक दीक्षा पाली; सेसं जहा गोयमस्स—शेष वर्णन गौतम कुमार के समान समझ लेना चाहिये; जाव—यावत्; सेतुञ्जे—शत्रुञ्जय पर्वत पर; सिद्धे—सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं—इसी प्रकार; मयालि—मयालि कुमार; उवयालि—उपयालि कुमार; पुरिससेणे य—और पुरुष सेन; वारिसेण य—और वारिसेण, एवं—इसी प्रकार; पज्जुन्नेवि—प्रद्युम्न कुमार का जीवन भी समझ लेना चाहिये; नवरं—अन्तर इतना है कि; कण्हे पिया—इन के पिता कृष्ण थे; रुप्पिणी माता—माता रुक्मिणी थी, एवं—इसी प्रकार; संबेवि—शाम्ब कुमार का जीवन भी समझ लेना चाहिये, नवरं—इतनी विशेषता है कि इनकी, जंबवती माता—माता का नाम जाम्बवती था; एवं अनिरुद्धेवि—इसी प्रकार राजकुमार अनिरुद्ध का जीवन भी जान लेना चाहिये, नवरं—इतना

अन्तर है कि इनके; **पज्जुन्ने पिया**—पिता प्रद्युम्न थे, **वेदब्भी माया**—माता का नाम वैदर्भी था; **एवं सच्चनेमी**—इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का कथानक है; **नवरं**—अन्तर इतना है कि उनके; **समुद्दविजये पिता**—पिता समुद्रविजय थे और; **सिवा माता**—माता का नाम शिवा था; **दढनेमीवि**—इसी तरह दृढनेमि कुमार की जीवनी भी समझ लेनी चाहिये, **सव्वे**—इन सब का, **एगगमा**—एक जैसा पाठ अर्थात् वर्णन है, **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग का, **निक्खेवओ**—निक्षेपक उपसंहार समझ लेना चाहिये।

मूलार्थ— अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में निवेदन करते हुए आर्य अनगार जम्बू बोले—'भगवन् ! यावत् मोक्ष सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के तीसरे वर्ग का यह अर्थ बताया है तो हे भगवन् । उन्होंने चतुर्थ वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?'

अपने शिष्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे-

'जम्बू ! मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर नै अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्गके दश अध्ययन कथन किये हैं। उन अध्ययनों के नाम इस प्रकार हैं–

१. जालिकुमार, २. मयालिकुमार, ३. उपयालिकुमार, ४. पुरुषसेण कुमार, ५. वारिषेण कुमार, ६. प्रद्युम्न कुमार, ७. शाम्ब कुमार, ८. अनिरुद्ध कुमार, ९. सत्यनेमि कुमार, १०. दृढनेमि कुमार।

अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके आर्य जम्बू अनगार ने अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में पुन: निवेदन किया—

'भगवन् ! मोक्ष सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीरने यदि अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं तो भगवन्, उन्होंने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?'

आर्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा–

'जम्बू ! उस काल तथा उस समय में द्वारिका नगरी थी उसमें वासुदेव कृष्ण राज्य किया करते थे। नगरी की लम्बाई-चौड़ाई तथा कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव आदि का परिचय प्रथम अध्ययन में दिया जा चुका है। इसी द्वारिका नगरी के एक भाग के शासक महाराज वसुदेव थे। महाराज वसुदेव की रानी का नाम धारिणी था। समय आने पर माता धारिणी ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का लालन-पालन प्रथम अध्ययन में वर्णित राजकुमार गौतम के समान किया गया। अन्तर केवल इतना

है कि नामसंस्कार करते समय इस बालक का नाम जालिकुमार रखा गया। युवक हो जाने पर जालिकुमार का पचास राजकन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न हुआ, इनको पचास-पचास प्रकार का दहेज मिला।

एक बार द्वारिका नगरी में भगवान अरिष्टनेमि पधारे, जालि कुमार भगवान की सेवा में उपस्थित हुए, भगवान के धर्मोपदेश से उनके हृदय में वैराग्यभाव जागा और वे माता पिता से आज्ञा लेकर भगवान के चरणों में दीक्षित हो गए। इन्होंने बारह अंगों का अध्ययन किया। सोलह वर्ष तक संयम-साधना की आराधना की। जिस प्रकार प्रथम अध्ययन में वर्णित गौतम मुनिराज ने भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षु-प्रतिमाओं का आराधन किया, गुणरत्न तप किया, स्थविरों के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर तपस्या की, उसी प्रकार मुनि जालिकुमार ने भी यह सब कुछ किया और अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध-पद को प्राप्त कर लिया।

जालिकुमार की भांति मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरिषसेन कुमार और वारिषेणकुमार ने भी संयम-साधना द्वारा सिद्ध-पद की प्राप्ति की। इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार, शाम्बकुमार, अनिरुद्धकुमार, सत्यनेमिकुमार तथा दृढनेमि कुमार भी सिद्ध-पद को प्राप्त हुए। अन्तर केवल इतना है कि प्रद्युम्न कुमार के पिता श्रीकृष्ण और माता रुक्मिणी थी। शाम्बकुमार की माता जाम्बवती, अनिरुद्ध के पिता प्रद्युम्न माता वैदर्भी तथा सत्यनेमि कुमार तथा दृढ़नेमि कुमार इन दोनों के पिता समुद्रविजय और माता शिवा थी। इन सब का शेष वर्णन समान ही है। संयम-साधना करके सभी शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हो गये।

आर्य सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि हे जम्बू ! मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र का तृतीय वर्ग सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार के मन में चतुर्थ वर्ग के श्रवण करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में विनयपूर्वक निवेदन करते हुए कहा—'गुरुदेव ! मेरी प्रार्थना है कि अब आप मुझे अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का वर्णन सुनाने की कृपा करें। विश्ववन्द्य मंगल-मूर्ति भगवान महावीर ने चतुर्थ वर्ग में जिन महापुरुषों के जीवन की व्याख्या की है उन्हें सुनाने का

अनुग्रह करें। अपने विनीत शिष्य जम्बू की जिज्ञासा भरी प्रार्थना को सुन कर महामहिम आर्य सुधर्मा स्वामी बोले कि जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययन बतलाए हैं। जिस अध्ययन में जिस महापुरुष के जीवन का उल्लेख किया गया है, उस अध्ययन का वही नाम रक्खा गया है। इन दस महापुरुषों मे जालि कुमार, मयालि कुमार, उपयालि कुमार, पुरुषसेन कुमार तथा वारिषेण कुमार ये पांच महापुरुष वासुदेव श्री कृष्ण के भाई थे। अन्तर केवल इतना है कि वासुदेव कृष्ण की माता देवकी थी और जालिकुमार आदि की माता का नाम धारिणी था। इन पांचों महापुरुषों का अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में वर्णित गौतम कुमार की भान्ति पालन-पोषण हुआ था, प्रत्येक का ५०-५० राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ था, इन को ५०-५० प्रकार का दहेज मिला था, इन पाचो ने भगवान अरिष्टनेमि के चरणों मे दीक्षा ली थी। बारह अंगों का अध्ययन किया था, सोलह वर्ष तक इन्होंने संयम साधना की थी और अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर जप-तप के साथ निर्वाण-पद पाया था।

चतुर्थ वर्ग में वर्णित छटे महापुरुष का नाम प्रद्युम्न कुमार था। ये वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे, इनकी माता का नाम रुक्मिणी था। सातवे महापुरुष शाम्ब कुमार थे, ये भी श्रीकृष्ण के पुत्र थे। इनकी माता का नाम जाम्बवती था। आठवे महापुरुष अनिरुद्ध कुमार थे, इन के पिता का नाम प्रद्युम्न* और माता का नाम वैदर्भी था। नौव महापुरुष सत्यनेमि कुमार और दसवे दृढ़नेमि कुमार थे। ये दोनो श्रीकृष्ण के ताऊ महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे, इनकी माता का नाम शिवा देवी था। ये महापुरुष भी गौतम कुमार की तरह राजपाट छोड़ कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में साधु बने थे। तथा गौतम कुमार की भाति सयम-साधना की आराधना के अनन्तर शत्रुञ्जय पर्वत पर इन्होने निर्वाणपद प्राप्त किया था।

सूत्रकार ने चतुर्थ वर्ग मे वर्णित जालि कुमार आदि सभी महापुरुषों के जीवनों को एक समान बतलाया है। यह समानता केवल चारित्रपर्याय को ले कर ही समझनी चाहिये। संसारी जीवन सब का विभिन्न था, विभिन्न राजकुमारियो के साथ ही इनका विवाह हुआ था। यह सत्य है कि सूत्रकार ने प्रस्तुत वर्ग मे इन महापुरुषो के सासारिक जीवन का कोई उल्लेख नही किया, क्योंकि शास्त्रकार का मुख्य ध्येय मोक्ष और उस के साधनों का वर्णन है, अत. चारित्रवर्णन में इसी की प्रधानता रखनेवाले अंशों को ही शास्त्रकार मुख्य स्थान देते है। कही-कहीं पर गृहस्थ-जीवन का जो वर्णन प्राप्त होता है वह आनुषंगिक है।

जालि कुमार आदि दसों महापुरुषो के जीवनो के अध्ययन से यह भली भान्ति प्रमाणित हो जाता है कि ये सब यदुवंशी थे, राज-परिवार से सम्बन्धित थे, उच्च व्यक्तित्व के धनी पुरुष थे, ये बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली गण्य-मान्य पुरुष भी अपने राज्यवैभव को त्याग कर साधना के कठोरतम

* श्री अनिरुद्ध कुमार के पिता श्री प्रद्युम्न कुमार भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होनेवाले तथा श्रीकृष्ण के पुत्र ही प्रतीत होते है। आज के युग मे भी पिता-पुत्र साधु बनते हैं, माता-पुत्री साध्वी बनती हैं। फिर भगवान अरिष्टनेमि का युग तो साक्षात् धर्म का युग था। उस समय पिता-पुत्र का साधु बनना तो एक साधारण बात रही होगी।

मार्ग पर चलते हैं और मार्ग में आनेवाले सभी परीषहों को सहर्ष सहन करते हैं। यह वर्णन भारतीय जनवृत्ति के आध्यात्मिकता के प्रति आकर्षण का ज्वलन्त उदाहरण है। वस्तुतः ऐसे ऐसे अध्यात्म-निष्ठ महापुरुषों के प्रताप से ही धर्म जीवित रहा है और संसार में धर्म की प्रभावना होती रही है। धन्य हैं वे महापुरुष ! जो आध्यात्मिकता के पावन मार्ग पर चलते हुए अपने परमसाध्य, मोक्ष को प्राप्त करते हैं, तथा अन्य संसारी जनों को इस महामार्ग पर चलने की प्रेरणा दे कर उन के जीवन को कल्याणोन्मुख बनाते हैं।

"समणेणं जाव संपत्तेणं" यहां पठित **'जाव'** पद से अभीष्ट पदों की सूचना पीछे पृष्ठ १३ पर दी जा चुकी है।

"आहेवच्चं जाव विहरइ" यहां पठित **जाव** पद—**"पोरेवच्चं, भट्टित्तं, सामित्तं, महत्तरगत्तं आणा-ईसर सेणावच्चं करेमाणे, पालेमाणे"** इन पदों का परिचायक है। इनका भाव यह है कि श्रीकृष्ण सब में प्रधान एवं अग्रसर थे सबका पालन-पोषण करने वाले थे, सबके साथ उनका स्वामी सेवक जैसा सबंध था। (देखिए पृ० ३७)

"गोयमस्स जाव सिद्धे" यहां पठित **"जाव"** पद गौतम मुनि के प्रकरण में निर्वाणपद प्राप्त करने के निमित्त शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण करने से पूर्व का जो वर्णन है, उसकी ओर संकेत करता है।

"तीसे जहा पढमे कण्हे" का अर्थ है—अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में द्वारिका नगरी तथा महाराज कृष्ण के राज्य-वैभव का जिस प्रकार वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहां भी समझ लेना। अर्थात् जिस प्रकार प्रथम अध्ययन में वर्णित द्वारिका नगरी में महाराज श्रीकृष्ण राज्य करते थे, उसी प्रकार उनके राज्य-वैभव का वर्णन यहां भी समझ लेना चाहिए।

"धारिणी" के साथ पठित वर्णक शब्द से अभीष्ट पदों के लिये पीछे पृष्ठ ४० देखिए।

"जहा गोयमो नवरं जालि कुमारे" इन पदों का अर्थ है—जिस प्रकार गौतमकुमार का जन्मोत्सव मनाया गया, वैसे ही जालिकुमार का भी मनाया गया। अन्तर केवल इतना है कि नाम-संस्कार करते समय बालक का नाम जालिकुमार रखा गया।

"सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुञ्जे सिद्धे" इन पदों का अर्थ है—जिस प्रकार संध्याकाल में गौतममुनि ने भगवान अरिष्टनेमि से भिक्षु-प्रतिमाओं की आराधना एवं तपस्या की उपासना और शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण करने की आज्ञा लेकर स्थविर मुनियों के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर आरोहण किया था, उसी प्रकार ये समस्त साधना-कार्य जालिकुमार ने भी किए।

"सव्वे एगगमा"—सर्वे एकगमाः—सर्वाणि अध्ययनानि समानपाठानीति—अर्थात् चतुर्थ वर्ग के जो दश अध्ययन हैं, इनमें वर्णित राजकुमारों के जीवन की व्याख्या करनेवाले पाठ एक जैसे ही हैं। नाम आदि का जो अन्तर था उसे स्पष्ट करने के अनन्तर सूत्रकार कहते हैं कि जालिकुमार आदि राजकुमारों का शेष जीवन एक जैसा ही समझना चाहिए—सभी के घटनावृत्त एक समान हैं।

'**निक्खेवओ**'' का अर्थ है—निक्षेपक। निक्षेपक उपसंहार या समाप्ति-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में वह समाप्ति-वाक्य इस प्रकार है—

एवं खलु जंबू। समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। अर्थात् हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय ही मोक्ष—सम्प्राप्त यावत् भगवान महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशांगसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। ऐसा मैं कहता हूं।

चतुर्थ वर्ग समाप्त

पञ्चम वर्ग

अब सूत्रकार पञ्चम वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं :—

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

पउमावई य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य ।
जंबवई सच्चभामा, रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता वि ॥१॥

जइ णं भंते ! पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती णयरी, जहा पढमे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावती नामं देवी होत्था । वण्णओ । तेणं कालेणं, तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव विहरइ । कण्हे वासुदेवे णिग्गते, जाव पज्जुवासइ, तते णं सा पउमावती देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणो हट्ठ० जहा देवती जाव पज्जुवासइ । तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावतीए य धम्म कहा, परिसा पडिगया ।

छाया—यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन चतुर्थस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, पञ्चमस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन पञ्चमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

पद्मावती च गौरी, गन्धारी लक्ष्मणा, सुसीमा च ।
जाम्बवती सत्यभामा, रुक्मिणी मूलश्रीः मूलदत्तापि ॥१॥

यदि भदन्त ! पञ्चमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, यथा प्रथमे यावत् कृष्णो वासुदेवः, आधिपत्यं यावद् विहरति । तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावती नाम्नी देवी अभव, वर्णकः ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हन्नरिष्टनेमिः समवसृतो यावत् विहरति। कृष्णो वासुदेवो निर्गतः, यावत् पर्युपासति। ततः सा पद्मावती अस्याः कथायाः लब्धार्था हृष्ट-तुष्टा सती यथा देवकी यावत् पर्युपासति, ततोऽर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावत्याश्च धर्मकथा, परिषत् प्रतिगता।

पदार्थ—**भंते !**—हे भगवन् !; **जइ**—यदि; **णं**—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयुक्त है; **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण भगवान् महावीर ने; **चउत्थस्स वग्गस्स**—चतुर्थ वर्ग का; **अयमट्ठे**—यह अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है तो; **अन्तगडदसाणं**—अन्तगड सूत्र के; **पंचमस्स वग्गस्स**—पंचम वर्ग का; **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण भगवान ने; **के अट्ठे**—क्या अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है ? **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **जम्बू**—हे जम्बू ! **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण भगवान ने; **पंचमस्स**—पांचवे; **वग्गस्स**—वर्ग के; **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए है, **तं जहा**—जैसेकि

पउमावती—पद्मावती देवी; **य**—और; **गोरी**—गौरी देवी; **गंधारी**—गांधारी देवी; **लक्खणा**—लक्ष्मणा देवी; **य**—और; **सुसीमा**—सुसीमा देवी; **जंबवइ**—जाम्बवती देवी; **सच्चभामा**—सत्यभामा देवी; **रुप्पिणी**—रुक्मिणी देवी; **मूलसिरि**—मूलश्री देवी; **मूलदत्ता**—मूलदत्ता देवी, **वि**—यह अव्ययपद पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त होता है।

भंते—हे भगवन् !; **जइ णं**—यदि; **पंचमस्स वग्गस्स**—पांचवे वर्ग के; **दस अज्झयणा**—दस अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं तो; **भंते!**—हे भगवन् ! **पढमस्स णं अज्झयणस्य**—पहले अध्ययन का; **के अट्ठे**—क्या अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है।

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **जंबू !**—हे जम्बू; **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी, **जहा**—जिस प्रकार, **पढमे**—प्रथम अध्ययन में वर्णन किया है; **जाव**—यावत् वैसे ही; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **आहेवच्चं**—राज्य, **जाव-विहरइ**—यावत् कर रहे थे; **तस्स णं**—उस; **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को; **पउमावती नाम देवी**—पद्मावती देवी नाम की रानी; **होत्था**—थी; **वण्णओ**—उसका वर्णन अन्य सूत्रों में वर्णित स्त्री वर्णन जैसा जानना चाहिए; **तेणं कालेणं**—उस काल; **तेणं समएणं**—उस समय; **अरहा**—अरिहन्त, वीतराग भगवान; **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि; **समोसढे**—पधारे; **जाव**—यावत् नन्दनवन में तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए, **विहरइ**—विचरण करने लगे; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव, **णिग्गते**—द्वारिका से निकले, प्रभु चरणों में वन्दन करने गये; **जाव**—यावत् भगवान को; **पज्जुवासइ**—पर्युपासना—भक्ति करने लगे; **तते णं**—उसके अनन्तर, **सा पउमावती देवी**—वह पद्मावती देवी; **इमीसे-कहाए**—इस कथा वृत्तान्त को; **लद्धट्ठा समाणी**—जानकर; **हट्ठ०**—बहुत प्रसन्न हुई; **जहा**—जिस प्रकार; **देवती**—देवकी देवी धार्मिक रथ पर चढ़ कर भगवान की सेवा में गई थी उसी प्रकार पद्मावती भी गई और भगवान की; **पज्जुवासइ**—पर्युपासना-भक्ति करने लगी; **तए णं**—उसके अनन्तर; **अरहा**—अरिहंत; **अरिट्ठनेमी**—अरिष्टनेमि; **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव को; **य**—और; **पउमावतीए**—पद्मावती देवी को; **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते हैं, धर्म कथा सुन कर; **परिसा पडिगता**—जनता चली जाती है।

मूलार्थ—आर्य जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जम्बू अनगार की इस प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मास्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए बोले—कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग के दस अध्ययन बताए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—पद्मावती देवी २—गौरी देवी ३—गान्धारी देवी ४—लक्ष्मणा देवी ५—सुसीमा देवी ६—जाम्बवती देवी ७—सत्यभामा देवी ८—रुक्मिणी देवी ९—मूलश्री देवी १०—मूलदत्ता देवी।

अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर अनगार आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में पुनः निवेदन करते हैं कि 'भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने यदि पंचम वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं तो भगवन् ! भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?'

आर्य जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी कहने लगे—'हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में द्वारिका नगरी थी। प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में जैसे वर्णन किया गया था उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव वहां पर राज्य किया करते थे। कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी का नाम पद्मावती था। पद्मावती देवी नारी-योग्य सभी सद्गुणों से सम्पन्न थी। उस का गुण-वर्णन औपपातिक सूत्र की भांति समझ लेना चाहिये।

उस काल तथा उस समय वीतराग भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। नगरी के बाहिर नन्दनवन नामक उद्यान में वे विराजमान हो गए। तप एवं संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

"भगवान नगरी में पधार गए हैं," इस बात की सूचना जब श्रीकृष्ण को मिली

तो वे भगवान के दर्शन करने के लिये अपने घर से चले और द्वारिका नगरी के बाहिर उद्यान में विराजमान भगवान की सेवा में उपस्थित हो कर उनकी सेवा-भक्ति करने लगे ।

श्रीकृष्ण की पट्टरानी पद्मावती देवी ने भी भगवान के आगमन के शुभ संवाद को सुना । इस शुभ समाचार को सुन कर पद्मावती आनन्दविभोर हो उठी । उसका रोम-रोम पुलकित हो गया । उसने तत्काल अपने राजसेवकों को धार्मिक रथ तैयार करने की आज्ञा प्रदान की । माता देवकी की तरह वह भी भगवान के चरणों में उपस्थित होकर उनकी सेवा करने लगी ।

वासुदेव श्रीकृष्ण, महारानी पद्मावती तथा अन्य श्रद्धालु जनता के यथास्थान बैठ जाने पर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि ने सब को धर्म-कथा सुनाई । धर्मकथा सुनने के अनन्तर वासुदेव कृष्ण तथा महारानी पद्मावती को छोड़ कर अन्य श्रोता-मण्डल वहाँ से चला गया ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में पंचम वर्ग के विषय का वर्णन किया गया है । इस वर्ग में दस अध्ययन हैं जिनमें दस सन्नारियों के आध्यात्मिक जीवन की गाथाएं प्रस्तुत की गई हैं । जिस अध्ययन में जिस नारी के जीवन का वर्णन हुआ है, उस नारी के नाम से ही उस अध्ययन का नाम रखा गया है । जैसे पहले अध्ययन में श्रीकृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती की जीवन-कथा वर्णित हुई है, इसलिये सूत्रकार ने इस पहले अध्ययन का नाम 'पद्मावती' रखा है । इसी प्रकार आगे के नौ अध्ययनों का नाम-करण किया गया है । इस वर्ग में जिन दस नारियों के जीवन का उल्लेख किया गया है । उनमें से आठ तो श्रीकृष्ण की रानियां है और दो इन की पुत्रवधुएं हैं । इस प्रकार इस पचम वर्ग में श्रीकृष्ण के ही नारी-परिवार की जीवन कथाएं वर्णित की गई हैं ।

"**समणेणं जाव संपत्तेणं**, **जहा पढमे जाव कण्हे**" तथा "**आहेवच्चं जाव विहरइ**" इन वाक्यों में पठित **जाव** पद और '**देवी होत्था वण्णओ**" यहां पठित वर्णक पद से अभिमत पाठ का संकेत पीछे किया जा चुका है ।*

"**समोसढे जाव विहरइ**" "**णिग्गते जाव पज्जुवासइ**" इन वाक्यों में पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए अवशिष्ट पदों का बोधक है । (इन पदों की व्याख्या पृष्ठ १०० पर देखिए)

"**हट्ठ०**" यहां दिया गया विंदु **तुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा, परमसोमणस्सिया, हरिस-वस-विसप्पमाणहियया**—आदि पदों का सूचक है ।‡

* देखिए पृष्ठ ४०-४१ पर देवी धारिणी का वर्णन ।

‡ हृष्ट-तुष्ट-चित्तानन्दिता—हृष्टा हर्षिता, तुष्टा-संतुष्टा धन्याहं द्वारिकायां भगवन्तः समागतवन्तः, इति कृतकृत्या, हृष्ट-तुष्ट-चित्तेन आनंदिता, प्रीतिमना तृप्तचित्ता, परमसौमनस्यिता सातिशयप्रमोदभावमापन्ना, हर्षवश-विसर्पद्हृदया हर्षातिशय-प्रवर्द्धमान-मना ।

"जहा देवती जाव पज्जुवासइ" इन पदों का अर्थ है—तृतीय वर्गीय आठवें अध्ययन में जिस प्रकार माता देवकी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर उनको सेवा-भक्ति करती है, ठीक उसी प्रकार महारानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर भगवान की सेवा-भक्ति करती है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि की धर्म-कथा समाप्त होने के अनन्तर श्रीकृष्ण और पद्मावती को छोड़कर द्वारिका की अन्य जनता वापिस अपने-अपने घर को चली गई। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तते णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—**

इमीसे णं भंते ! बारवतीए णयरीए नवजोयणा जाव देवलोगभूयाए किं मूलाते विणासे भविस्सइ ?

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! इमीसे बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

कण्हस्स वासुदेवस्स अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एवं सोच्चा निसम्म एयं अब्भत्थिए ४ समुप्पन्ने—

धन्ना णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पजुन्न-संब-अनिरुद्ध-दढनेमि-सच्चनेमिप्पभियओ कुमारा जेणं चइत्ता हिरण्णं जाव परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडा जाव पव्वइया अहण्णं अधन्ने, अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य मणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए ४, नो संचाएमि अरहतो अरिट्ठनेमिस्स जाव पवइत्तए।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासीसे नूणं कण्हा ! तव अयं अब्भत्थिए ४ समुपन्ने—धन्ना णं ते जाव पव्वइत्तए। से नूणं कण्हा ! अयमट्ठे समट्ठे ? हन्ता अत्थि। तं नो खलु कण्हा ! तं एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जन्नं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्सन्ति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—न एयं भूयं वा जाव पव्वतिस्संति ? कण्हाइ !

अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा, से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चति न एयं भूयं जाव पव्वइस्संति।

छाया—ततः कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं वदन्ते, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवमवदत् अस्याः भदन्त ! द्वारवत्याः नगर्याः नवयोजनायाः यावत् देवलोकभूतायाः किं मूलको विनाशो भविष्यति ? कृष्ण ! इति, अर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—

एवं खलु कृष्ण ! अस्याः द्वारवत्याः नगर्याः नवयोजनायाः यावत् भूतायाः सुराग्निद्वैपायनमूलको विनाशो भविष्यति।

कृष्णस्य वासुदेवस्य अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके एतत् श्रुत्वा निशम्य अयमाध्यात्मिकः ४ समुत्पन्नः —धन्यास्ते जालि-मयालि-उपयालि-पुरुषषेण-वारिषेण-प्रद्युम्न-शाब-अनिरुद्ध-दृढनेमि-सत्यनेमि-प्रभृतयः कुमाराः, ये त्यक्त्वा हिरण्यं यावत् परिभाज्य अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्डाः यावत् प्रव्रजिताः। अहमधन्यः, अकृतपुण्यः राज्ये च यावत् अन्तःपुरे च मानुष्यकेषु च कामभोगेषु मूर्च्छितः ४. न शक्नोमि अर्हतोऽरिष्टनेमेः यावत् प्रव्रजितुम्।

कृष्ण इति, अर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—अथ नूनं कृष्ण ! तवायमाध्यात्मिकः ४ समुत्पन्नः—धन्यास्ते यावत् प्रव्रजितुम् ? अथ नूनं कृष्ण ! अयमर्थः समर्थः ? हन्त, अस्ति। तन्नो खलु कृष्ण ! तदेवं भूतं वा भव्यं वा भविष्यति वा यद् वासुदेवाः त्यक्त्वा हिरण्यं यावत् प्रव्रजिष्यन्ति।

अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-न एतद् भूतं वा यावत् प्रव्रजिष्यन्ति ? कृष्ण इति, अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्—एवं खलु कृष्ण ! सर्वेऽपि च वासुदेवाः पूर्वभवे निदानकृताः, अथ एतेनार्थेन कृष्ण ! एवमुच्यते न एतद् भूतं यावत् प्रव्रजिष्यन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सौंदर्य के लिये है; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त-वीतराग अरिष्टनेमि भगवान को; **वंदइ णमंसति**—वन्दन एवं नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वन्दन एवं नमस्कार कर के; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे।

भंते !—हे भगवन् !; **इमीसे णं**—इस; **नवजोयण**—नौ योजन चौड़ी; **जाव**—यावत्; **देवलोग भूयाए**—देवलोक के समान; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का; **विणासे**—विनाश; **किंमूलाते**—किंमूलक—किस कारण से; **भविस्सति**—होगा; **कण्हाइ !**—कृष्ण ! ऐसा कह कर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले—

एवं खलु—इस प्रकार; **कण्हा !**—हे कृष्ण !; **इमीसे**—इस; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का जो कि; **नवजोयण**—नौ योजन चौड़ी; **जाव**—यावत्; **भूयाए**—स्वर्ग लोक के समान है; **विणासे**—विनाश; **सुरग्गिदीवायणमूलाए**—सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण; **भविस्सइ**—होगा।

कण्हस्सं वासुदेवस्स—कृष्ण वासुदेव को; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के; **अन्तिए**—पास; **एयं**—यह बात; **सोच्चा**—सुन कर; **निसम्म**—विचार कर; **अयं**—यह; **अब्भत्थिए**—आध्यात्मिक विचार; ४—यह चार का अंक **कप्पिए**—कल्पना; **चिन्तिए**—पुनः-पुनः विचार किया; **मणोगए**—हार्दिक चिन्तन; **संकप्पे**—संकल्प इन पदों का संसूचक है; **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ—

ते—वे; **जालि**—जालिकुमार, **मयालि**—मयालिकुमार; **उवयालि**—उपयालिकुमार; **पुरिससेण**—पुरुषषेण कुमार, **वारिषेण**—वारिषेण कुमार, **पज्जुन्न**—प्रद्युम्न कुमार; **संब**—शाम्ब कुमार **अनिरुद्ध**—अनिरुद्ध कुमार; **दढनेमि**—दृढनेमि कुमार; **सच्चनेमि**—सत्यनेमि कुमार **पभियओ**—आदि; **कुमारा**—कुमार; **धन्ना णं**—धन्य हैं; **जेणं**—जो; **हिरण्णं**—सोना आदि; **जाव**—यावत् अपने धन को; **चइत्ता**—छोड़ कर; **परिभाएत्ता**—अपने भाइयों तथा याचकों में बांट कर; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के; **अंतिय**—पास, **मुंडा**—मुण्डित साधु, **जाव**—यावत्; **पव्वइया**—प्रव्रजित अर्थात् दीक्षित हो गए हैं; **अहं णं**—मैं; **अधन्ने**—अधन्य हूं; **अकयपुण्णे**—पुण्य न करनेवाला हूं; **रज्जे य**—और राज्य में; **जाव**—यावत्; **अंतेउरे**—अन्तःपुर में, **य**—समुच्चयार्थक है; **य**—और; **माणुस्सएसु**—मनुष्य जीवन सम्बन्धी, **कामभोगेसु**—काम भोगों में, **मुच्छिए**—मूर्छित—उन्हीं के ध्यान में लगा हुआ, ४—इस अंक से, **गिद्धे**—आकांक्षावाला, **गढिए**—स्नेह जाल में बंधा हुआ, **अज्झोवन्ने**—आसक्त, इन अवशिष्ट पदों का ससूचक है, **नो संचाएमि**—मैं समर्थ नही हूं कि; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के पास, **जाव**—यावत्, **पव्वइत्तए**—दीक्षित हो जाऊ।

कण्हाइ !—हे कृष्ण ! ऐसा कह कर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले; **से**—सो; **नूणं**—निश्चय ही **कण्हा**—हे कृष्ण ! **तव**—तेरे हृदय में, **अयमब्भत्थिए**—यह; आध्यात्मिक—विचार; **समुप्पन्ने ?**—उत्पन्न हुआ है कि, **धन्ना णं ते**—वे धन्य हैं; **जाव**—यावत् जालिकुमार आदि; **पव्वइत्तए**—जो दीक्षित हो गए हैं और मैं अधन्य हूं जो दीक्षा नहीं ले सका; **से**—सो; **नूणं**—निश्चय ही; **कण्हा !**—हे कृष्ण ! **अयमट्ठे**—यह बात; **समट्ठे ?**—ठीक है ? **हंता अत्थि**—हां भगवन् ! यह ठीक है; **तं**—सो, **खलु**—निश्चय ही; **कण्हा !** हे कृष्ण !; **तं**—यह; **एवं**—इस प्रकार; **नो**—नहीं; **भूतं वा**—पीछे हुआ है; **भव्वं वा**—अथवा हो रहा है; **भविस्सइ वा**—अथवा भविष्य में होगा; **जण्णं**—जो; **वासुदेवा**—वासुदेव; **हिरण्णं**—सुवर्ण आदि को; **चइत्ता**—छोड़कर; **जाव**—यावत्; **पव्वइस्सन्ति**—दीक्षा लेंगे।

भंते !—हे भगवन् !; **से**—वह; **केणट्ठेणं**—किस कारण से; **एवं**—इस प्रकार; **वुच्चइ**—कहा जाता है; **एयं**—यह; **न भूयं वा**—कभी पहले नहीं हुआ कि; **जाव**—यावत् वासुदेव; **पव्वइस्संति**—दीक्षित हो सकेंगे; **कण्हाइ**—हे कृष्ण ! ऐसा कह कर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले; **एवं**—इस प्रकार **खलु**—निश्चय ही; **कण्हा !**—हे कृष्ण; **सव्वे वि य णं**—सभी; **वासुदेवा**—वासुदेव; **पुव्वभवे**—पूर्व भव में;

नियाणकडा—निदान (किसी व्रतानुष्ठान की फल प्राप्ति की अभिलाषा—संकल्प विशेष) किए हुए होते हैं; **से**—सो; **एतेणट्ठेणं**—इस कारण से; **कण्हा !**—हे कृष्ण; **एवं**—इस प्रकार; **वुच्चति**—कहा जाता है कि; **एयं**—यह; **न भूयं**—पहिले कभी नहीं हुआ कि; **पव्वइस्संति**—वासुदेव दीक्षा ले सकेंगे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वासुदेव कृष्ण अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना नमस्कार करने के पश्चात् उनसे यह निवेदन करने लगे—

भगवन् ! बारह योजन लंबी और नौ योजन चौड़ी देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारिका नगरी का अन्त किस प्रकार होगा ? और इसके विनाश का कौन कारण बनेगा ?

वासुदेव कृष्ण के इस प्रश्न पर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित करते हुए बोले:—

हे कृष्ण ! बारह योजन लंबी, नौ योजन चौड़ी, देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारिका नगरी के विनाश के कारण १. सुरा, २. अग्नि तथा ३. द्वैपायन ऋषि ये तीनों होंगे। सुरा-पान करके यदुवंशीयुवक द्वैपायन ऋषि का अपमान करेंगे, मारपीट करेंगे, फिर द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार देव बन कर द्वारिका नगरी को अग्नि से दग्ध कर देंगे।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर श्रीकृष्ण विचार में पड़ गए, उनके हृदय में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि जालिकुमार, मयालि कुमार, पुरुषसेन कुमार, वारिषेणकुमार प्रद्युम्न कुमार, शाम्बकुमार, दृढनेमिकुमार तथा सत्यनेमि कुमार आदि धन्य है, जिन्होंने सुवर्ण आदि अपने वैभव को छोड़ कर तथा उसे अपने भाइयों और याचकों में बाँट कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षा ग्रहण कर ली है, परन्तु मेरे जीवन में धन्य बनने का वह अवसर कहाँ ? मैं तो अकृत-पुण्य हूं, राज्य-वैभव और अन्तःपुर में तथा मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में मूर्छित हो रहा हूं। मेरी शक्ति कहां कि मै भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हो जाऊं ?

कृष्ण वासुदेव को इस तरह विचार-निमग्न देखकर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

कृष्ण ! अभी-अभी तुम्हारे हृदय में यह संकल्प उठा है कि जालि, मयालि,

तथा पुरुषसेन आदि राजकुमार धन्य हैं, जो कञ्चन-कामिनी को छोड़कर तथा अपनी सम्पत्ति को अपने भाइयों तथा याचकों में बाँट कर भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हो गए हैं, परन्तु मैं अधन्य हूं, पुण्यरहित हूं, जो राज्य एवं रनिवास तथा काम-भोगों में मूर्च्छित हो रहा हूं। मुझ में भगवान के पास दीक्षित हो जाने की शक्ति नहीं है। कृष्ण ! यह सत्य है, तुम्हारे हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है ?

भगवान अरिष्टनेमि की इस बात को सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण ने तत्काल उत्तर दिया—हां भगवन् ! यह सत्य है, आपने जो कुछ कहा है, वही विचार मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है।

वासुदेव श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव कृष्ण को फिर कहने लगे कि कृष्ण ! यह निश्चय रखो, भूत, वर्तमान, और भविष्यत् इन तीन कालों में ऐसा नहीं हो सकता कि वासुदेव राजपाट छोड़ कर साधु बन जाए, दीक्षा अंगीकार कर ले।

भगवान अरिष्टनेमि की यह बात सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान के चरणों में फिर निवेदन करने लगे कि भगवन् ! वासुदेव भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में दीक्षा नही ले सकते, यह किस कारण से कहा जाता है ?

वासुदेव श्रीकृष्ण का यह प्रश्न सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए फिर कहा—कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्वभव में निदान किए हुए होते हैं, इस कारण भूत, वर्तमान और भविष्यत्काल में कोई भी वासुदेव राजपाट छोड़कर दीक्षित नहीं हो सकता।

व्याख्या—उदय के साथ अस्त तथा विकास के साथ ह्रास का अनादि कालीन सम्बन्ध है। जो वस्तु बनी है एक दिन उसका अन्त अवश्यंभावी है। जन्म लेनेवाले को एक दिन मरना ही पड़ता है। जन्म के साथ मृत्यु के इस अटल नियम को संसार की कोई शक्ति खण्डित नहीं कर सकती। इस विश्वास को आगे रखकर द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से पूछा कि भगवन् ! जिस द्वारिका की आज संसार में धाक है, स्वर्गपुरी भी जिसके सामने नगण्य है, संसार जिसके वैभव तथा रचनागत वैलक्षण्य को देखकर आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहता, वह द्वारिका नगरी भी क्या एक दिन अतीत के गर्भ में चली जाएगी ? इसका यह समस्त सौंदर्य नष्ट हो जाएगा ? ये ऊंचे-ऊंचे गगन-चुंबी प्रासाद भूमिसात् हो जाएंगे ? भगवन् ! कृपा करके यह बतलाने का भी अनुग्रह करें कि

इस द्वारिका नगरी का अन्त कैसे होगा ? इसका विनाश किस कारण से होगा ? मेरी सानुरोध प्रार्थना है, कि आपश्री इस सम्बन्ध में कुछ मार्ग दर्शन करें ?

वासुदेव श्रीकृष्ण की इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये भगवान अरिष्टनेमि ने उनके सामने तीन बातें रखीं, भगवान बोले—'कृष्ण ! द्वारिका का अन्त तीन कारणों से होगा। इन कारणों का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान ने बताया कि कृष्ण ! द्वारिका के विनाश का सबसे पहला कारण मदिरा है, दूसरा कारण द्वैपायन ऋषि का क्रोध है, तीसरा कारण अग्नि है। इन कारणों से द्वारिका नष्ट हो जाएगी। इसका समस्त वैभव जलकर राख हो जाएगा।

द्वारिका नगरी के विनाश के तीन कारणों में सर्व प्रथम कारण मदिरा है। इसे शराब भी कहते हैं। शराब शब्द दो पदों से बना है—शर और आब। शर शरारत अर्थात् धूर्तता का नाम है, आब पानी को कहते हैं। जो पानी पीनेवाले को इन्सान न रहने दे, उसे शरारती बना दे—शैतान बना दे, माँ और बहिन के अन्तर को भुलादे, हानि और लाभ के विवेक से शून्य कर दे तथा इन्सान को इन्सान के वेष में हैवान बना दे उसे शराब कहते है। शराब शब्द की इस अर्थ-विचारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन का निर्माण एवं कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को इससे सदा दूर ही रहना चाहिये।

आचार्य हरिभद्र ने मदिरा के अनिष्ट परिणामों का बड़ी सुन्दरता से वर्णन करते हुए कहा है :—

"वैरूप्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो।
विद्वेषो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्च सद्भिः॥
पारुष्यं नीचसेवा कुलबलविलयो धर्मकार्यार्थहानिः।
कष्टं वै षोडशैते निरुपचयकराः मद्यपानस्य दोषाः॥"

—हरिभद्रीयाष्टक, १८ वां श्लोक टीका।

—मदिरा के सेवन से शरीर कुरूप और बेडोल हो जाता है, शरीर व्याधियों का घर बन जाता है, घर के लोग तिरस्कार करते हैं, कार्य का उचित समय हाथ से निकल जाता है, द्वेष की उत्पत्ति, ज्ञान का नाश, स्मरण-शक्ति एवं बुद्धि का नाश हो जाता है, सज्जनों से जुदाई हो जाती है, वाणी में कठोरता आती है, नीच लोगों की सेवा करनी पड़ती है, कुल की हीनता होती है, शक्ति का ह्रास होता है, धर्म, काम एवं अर्थ की हानि होती है। इस प्रकार आत्म-पतन करनेवाले मद्यपान के सोलह दोष होते है। भक्तराज कबीर के शब्दों में मदिरा-सेवन का दुःखान्त परिणाम देखिए—

"औगुन कहौं शराब का, ज्ञानवन्त सुन लेय।
मानस से पसुआ करे, द्रव्य गांठ का देय॥
अमला अहारी आतमा, कबहूं न पावे पार।
कहे कबीर पुकार के, त्यागो ताहि विचार॥"

मदिरा के अनिष्ट परिणामों की कहां तक चर्चा की जाये ? मदिरा वैयक्तिक, पारिवारिक, समाजिक तथा राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से अहितकर एवं हानिप्रद है। राजाओं को आपस में लड़ानेवाली

यही मदिरा है, जिसने दैवी प्रकृतिवालों को भी राक्षसी प्रकृति का बना दिया। इसकी बदौलत असंख्य मनुष्य सुखमय जीवन से हाथ धो बैठे। अधिक क्या, इसीने स्वर्ग जैसी द्वारिका नगरी को जलाकर राख बना दिया था।

द्वारिका नगरी के विनाश का दूसरा कारण द्वैपायन ऋषि था। द्वैपायन ऋषि के सम्बन्ध में कोषों में अनेकों अर्थ लिखे हैं।

१—महाभारत, पुराणों आदि के रचयिता वेदव्यास, इनका जन्म द्वीप में हुआ था, इसीसे इनका नाम द्वैपायन पड़ गया।

२—एक प्राचीन ऋषि जिसने द्वारिका जलाने का निदान किया था और जो आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में एक तीर्थंकर होगा।

३—इस नाम का एक महर्षि जिसने यादव कुमारों की हंसी दिल्लगी से उत्पन्न क्रोध के कारण नियाणा करते हुए अग्निकुमार देव के रूप में उत्पन्न होकर द्वारिका पुरी को जलाकर भस्म कर दिया था। प्रस्तुत प्रकरण में द्वैपायन ऋषि शब्द से अन्तिम दोनों अर्थों का ग्रहण करना चाहिये।

द्वारिका नगरी के विनाश का तीसरा कारण अग्नि है। भगवान कहते हैं कि अग्निकुमार द्वारिका को आग लगावेगा और उससे द्वारिका दग्ध हो जावेगी।

सुरा, द्वैपायन ऋषि तथा अग्नि किस तरह द्वारिका का नाश करेंगे ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है, इसका उत्तर देते हुए कथाकार कहते हैं कि जब वासुदेव श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से यह सुन लिया कि सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण द्वारिका नगरी का विनाश होगा, तब उन्होंने सुरा-निर्माण तथा सुरा-पान पर प्रतिबन्ध लगा दिया और द्वारिका नगरी में जहां-कहीं सुरा पड़ी थी, उसे भी उठवा कर बाहिर फिंकवा दिया। अधिक क्या खोजने पर भी द्वारिका में सुरा प्राप्त नहीं की जा सकती थी। सुरा का सर्वथा बहिष्कार कर देने पर श्रीकृष्ण बिल्कुल निश्चित हो गये।

समय की बात है कि एक बार कुछ यादव कुमार भ्रमणार्थ बाहिर जा रहे थे, मार्ग में गिराई गई मदिरा को देखकर उनका मन मचल उठा, सब ने तृप्त होकर मदिरा पान किया। मदोन्मत्त राजकुमार जब आगे बढ़े तो सामने ही द्वैपायन ऋषि दिखाई दिए। द्वैपायन ऋषि एक विरक्त उदासीन तपस्वी सन्त थे। प्रभु-भक्ति तथा तपस्या की आराधना में लगे रहते थे। मदोन्मत्त राजकुमार ऋषिराज का उपहास करने लगे, उनकी साधना-सामग्री को उठाकर इधर-उधर फेंकने लगे। समझाने पर भी जब नहीं समझे तो ऋषि क्रोध से तमतमा उठे। उन्होंने राजकुमारों को बहुत बुरा भला कहा और मार भगाने की चेष्टा की। इस पर यादव कुमार बिगड़ गये और उन्होंने ऋषि को मारना, पीटना आरम्भ कर दिया। इतना अधिक मारा कि उनकी हड्डियां तक तोड़ दीं। अन्त में ऋषि बेहोश हो गये लड़कों ने समझा कि ये मर गए हैं। वे भागे हुए सीधा द्वारिका में गये। बड़े हर्ष के साथ उन्होंने द्वैपायन ऋषि को मारने का वृत्तान्त श्रीकृष्ण को सुनाया। यह सुनते ही श्रीकृष्ण सन्न रह गये और बोले—पागलो ! तुमने यह क्या कर दिया, यह तो तुमने द्वारिका के नाश के बीज बो दिये। श्रीकृष्ण

तत्काल वहां से चल दिये। बलराम (बलदेव) को साथ लेकर द्वैपायन ऋषि के चरणों में उपस्थित हुए। द्वैपायन उस समय होश में आ चुके थे और मारणान्तिक कष्ट से कराह रहे थे। ऋषि की यह शोचनीय दशा देखकर श्रीकृष्ण को मार्मिक वेदना हुई। उन्होंने उनसे क्षमा मांगी, अनुनय-विनय की, पर ऋषि का दुःखी मानस शान्त नहीं हुआ। श्रीकृष्ण की अधिक विनीतता देखकर उन्होंने इतना ही कहा कि तुम दोनों पर मुझे कोई रोष नहीं है, तुम दोनों का मैं कोई अनिष्ट नहीं करूंगा। श्रीकृष्ण निराश होकर लौट गये। ऋषि ने निदान किया कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारिका का नाश करूं। परिणाम-स्वरूप ऋषि मर कर अग्निकुमार देव बने और समय आने पर उन्होंने द्वारिका नगरी को आग लगा दी। कृष्ण बलराम को छोड़कर वहां से किसी को जीवित नहीं जाने दिया। इस तरह द्वारिका के नाश में सुरा, द्वैपायन ऋषि और अग्नि ये तीनों कारण बन गये।

द्वारिका नगरी का विनाश होगा और वह सुरा, द्वैपायन ऋषि तथा अग्नि के द्वारा होगा। यह सुन कर श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि यह संसार असार है, प्रभात के तारे की तरह क्षणभंगुर है। प्रतिक्षण क्षीणता की ओर बढ़ रहा है। वे लोग धन्य हैं, जो इस असार संसार में भी जीवन का सार प्राप्त कर लेते हैं। जालि कुमार, मयालि कुमार, उवयालि कुमार आदि यादव कुमार कितने अच्छे हैं, तरणहार जीव हैं, धन्य हैं, जिन्होंने भरी जवानी में मोह-माया को छोड़ दिया है, कञ्चन-कामिनी को ठोकर मार कर वीतरागता के महापथ पर चलना आरंभ कर दिया है—साधु बन गए हैं। श्री कृष्ण गंभीर होते गए, अन्तर्मुखी होकर विचार करने लगे कि एक मैं हूं, सब कुछ जानता हुआ भी अन्धकार में फिर रहा हूं। राज्य रनिवास एवं कामभोगों में आसक्त हो रहा हूं, मोहमाया को छोड़ कर संयम-साधना को अपनाने का कभी विचार तक नहीं करता। अहह ! मैं जीवन-कल्याण से बहुत दूर बैठा हूं। मालूम होता है पिछले जन्म में मैंने कोई पुण्य नहीं किया, अकृत पुण्य हूं, अन्यथा परमसाध्य मोक्ष-मार्ग पर मैं अवश्य चलता, जालि कुमार आदि कुमारों की भांति आत्म-कल्याण कर लेता, संसार में धन्य बन जाता। इस प्रकार विचार करते हुए श्री कृष्ण को कुछ ग्लानि की अनुभूति हुई और वे उदासीन हो गए। अन्दर की निराशा मुख पर झलकने लगी।

भगवान अरिष्टनेमि अपने ज्ञानालोक में श्रीकृष्ण के अन्तर्जगत को अच्छी तरह देख रहे थे। कृष्ण को सर्वथा निराशा एंव उदासीन देख कर उन्होंने अपना मौन भंग किया। वे वासुदेव कृष्ण को कहने लगे—

कृष्ण ! आज निराश हो रहे हो, दिल छोड़ बैठे हो, वासुदेव होकर इतनी उदासीनता ? अपने हाथों से बीज बोलिए हैं, तो उनके फलों को देख कर व्याकुलता क्यों ? विश्वास रखो, वासुदेव कभी संयमसाधना के मार्ग पर चल नहीं सकते, न कभी पहले ऐसा हुआ है और न भविष्य में ऐसा कभी हो सकता है। पिछले जन्म में निदान करने के कारण वासुदेव को संयम की साधना का अवसर नहीं मिल पाता। अनादि कालीन इस नियम को संसार की कोई शक्ति तोड़ नहीं सकती।

निदान जैन-जगत का अपना एक पारिभाषिक शब्द है। मोहनीय कर्म के उदय से काम-भोगों की इच्छा होने पर साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका का अपने चित्त में संकल्प कर लेना कि मेरी तपस्या से मुझे अमुक फल की प्राप्ति हो, उसे निदान कहते हैं। जन साधारण में इसे नियाणा कहा

जाता है। निदान को लेकर 'श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्र' में बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। वहां लिखा है—

एक समय राजगृही नगरी में भगवान महावीर पधारे। महाराज श्रेणिक तथा महारानी चेलना बड़े समारोह के साथ भगवान को वन्दन करने आए। श्रेणिक नरेश की समृद्धि देख कर कुछ साधुओं ने विचार किया—'कौन जानता है, देवलोक कैसा है? श्रेणिक राजा सब तरह से सुखी है, देवलोक इससे बढ़ कर नहीं हो सकता। उन्होंने मनमें निश्चय किया कि हमारी संयम-साधना का फल यही हो कि हम भी श्रेणिक के समान राजा बनें।'

भगवान महावीर के पास विराजमान साध्वियों ने जब महारानी चेलना के नारी-ऐश्वर्य को देखा तो उन्होंने विचार किया कि 'हमारी तपस्या का यदि कोई फल हो तो वह यही हो कि हम अगले जन्म में चेलना रानी के समान नारी-ऐश्वर्य को प्राप्त करें।'

अन्तर्यामी भगवान महावीर ने साधु-साध्वियों की आन्तरिक स्थिति को देख कर उन्हें अपने पास बुलाया। उनको निदान का स्वरूप समझाते हुए भगवान कहने लगे—

आर्यो! निदान कल्याण-साधक नहीं, जो व्यक्ति निदान करके मरता है, उसका फल प्राप्त करने पर भी उसे निर्वाण नहीं मिलता। वह बहुत काल के लिये संसार में भटक जाता है, निदान करने के ९ प्रकार हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. एक पुरुष किसी समृद्धिशाली पुरुष को देखकर निदान करता है।
२. स्त्री अच्छा पुरुष प्राप्त करने के लिये निदान करती है।
३. पुरुष सुन्दर स्त्री के लिये निदान करता है।
४. स्त्री किसी सुखी एवं सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है।
५. कोई जीव देवगति में देवरूप से उत्पन्न हो कर अपनी तथा दूसरी देवियों को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है।
६. कोई जीव देवभव में सिर्फ अपनी देवी को वैक्रिय करके भोगने के लिये निदान करता है।
७. कोई जीव अगले भव में श्रावक बनने का निदान करता है।
८. कोई जीव देवभव में अपनी देवी को बिना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है।
९. कोई जीव अगले भव में साधु बनने का निदान करता है।

भगवान महावीर अपने साधु-साध्वियों को बतला रहे हैं—'आर्यो! इनमें से पहले चार निदान करनेवाला जीव केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म को सुन भी नहीं सकता। पांचवां निदान करनेवाला जीव धर्म को सुन तो लेता है, पर दुर्लभबोधि होता है और बहुत काल तक संसार में परि-भ्रमण करता है। छठे निदानवाला जीव जिन-धर्म को सुनकर और समझ कर भी दूसरे धर्म की ओर रुचि रखता है। सातवें निदानवाला जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, धर्म पर श्रद्धा कर सकता है, किन्तु व्रत अंगीकार नहीं कर सकता। आठवें निदानवाला श्रावक का व्रत ले सकता है, पर साधु नहीं हो सकता। नवें निदानवाला जीव साधु हो सकता है, पर उसी भव में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। *

* दशाश्रुतस्कंध १०वीं दशा।

"कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा !" इस पाठ में **कण्हाइ, कण्हा** ! ये दो सम्बोधन पद हैं। जबकि एक ही सम्बोधन पद से काम चल सकता था। प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यह दो सम्बोधन पद क्यों ? उत्तर में निवेदन है कि उस समय इसी तरह की पद्धति थी। सर्वप्रथम सामान्य रूप से मनुष्य को सम्बोधित किया जाता था। जब वक्ता अपनी बात कहनी आरम्भ करता था, फिर उस समय वह श्रोता को सम्बोधित किया करता था। **'कण्हाइ'** यह पद केवल प्राचीन शैली के कारण है, पुनरुक्ति की यहां कोई बात नहीं है।

"नव जोयण जाव देवलोगभूयाए" यहां पठित **जाव** पद प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में पठित —**'वित्थिण्णा धणवइमतिनिम्माया···पच्चक्खं'** इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ पृष्ठ २४-२५ पर किया जा चुका है।

प्रथम वर्गीय प्रथम अध्ययन में द्वारिका-वर्णन का जो पाठ आता है, उसको देखने से प्रतीत होता है कि प्रस्तुत सूत्र में **"नव-जोअण जाव देवलोगभूयाए"** इस पाठ के स्थान पर यदि—**दुवालस जोयण-जाव देवलोगभूयाए"** यह पाठ होता तो यह अधिक उचित था, क्योंकि द्वारिका-वर्णक पाठ में **दुवालसजोयणायामा** यह पाठ पहले है और इसके बाद **नवजोअणवित्थिण्णा** यह पाठ है।

"सुरग्गिदीवायणमूलए"—**सुराग्निद्वैपायनमूलकः, सुरा मदिरा, अग्निः अनलः, द्वैपायनः ऋषि-विशेषः, एते मूलं कारणं यस्मिन् सः सुराग्निद्वैपायननिमित्तः इत्यर्थः।** जिसमें सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि ये कारण हों, उसे 'सुराग्नि-द्वैपायन-मूलक' कहते हैं। अर्थात् 'सुरापान से मदोन्मत्त हुए राज-कुमार द्वैपायन ऋषि को पीडित करेंगे और उनके पीड़ा-जन्य संताप से मृत्यु को प्राप्त हुआ द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार नाम का देव होगा और वह अग्नि द्वारा इस द्वारिका नगरी को भस्म करेगा। यह पद विनाश का विशेषण है।

"अब्भत्थिए ४ समुपन्ने" यहां दिए गये ४ के अंक से अभिमत पदों को पीछे पृष्ठ १९६ लिखा जा चुका है। **"हिरण्णं जाव परिभाएत्ता" मुंडा जाव पव्वइया" "रज्जे य जाव अंतेउरे" "अरिट्ठ जाव पव्वतित्तए" "हिरण्णं जाव पव्वइस्संति" "भूयं वा जाव पव्वतिस्संति"** इन वाक्यों में पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए अवशिष्ट पाठों के द्योतक हैं।

"परिभाएत्ता"—परिभाज्य—बान्धवेभ्यो याचकेभ्यश्च दत्त्वा।" का अर्थ है—भाइयों और याचकों में बांटकर।

"मुच्छिए ४" यहां दिए ४ के अंक से अभीष्ट पदों की सूचना पीछे पृष्ठ २२१ पर दी जा चुकी है।

"निदाण कडा" का अर्थ है—जिस ने निदान कर रखा है। किसी प्रकार के अच्छे या बुरे फल की इच्छा से क्रियानुष्ठान करने का नाम निदान कर्म है। दूसरे शब्दों में सकाम कर्म का नाम सनिदान कर्म और निष्काम कर्म को निदान-रहित कर्म कहते हैं। जैन-शास्त्रों में सनिदान का सार्व-त्रिक निषेध है। जिनधर्म में साधु अथवा गृहस्थ दोनों के लिये ही सकाम कर्म को त्याज्य बतलाया गया है। यद्यपि गृहस्थ के लिये पापानुबन्धी पुण्य का ही अधिकतया निषेध देखने में आता है, पुण्या-नुबन्धी पुण्य का नहीं, परन्तु वह भी निदान रहित अर्थात् निष्काम ही प्रशस्त माना गया है, सनिदान

अर्थात् सकाम नहीं। साधु के लिये तो पुण्यानुबन्धी पुण्य कर्म भी त्याज्य ही है। अशुभ कर्म की तरह शुभ कर्म को भी शास्त्रकारों ने बन्धन का ही हेतु कहा है, अतः सर्व-विरतिरूप साधुधर्म का अनुष्ठान करनेवाले व्यक्ति का जितना भी क्रियानुष्ठान है वह सब शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों की निर्जरा के लिये है, उसका एक मात्र प्रयोजन कर्मों की निर्जरा करना है, ऐसी अवस्था में उसके लिये निदान कर्म की तो कोई चर्चा ही शेष नहीं रह जाती।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने साधक-वर्ग के लिये दो बातों को छोड़ देने की प्रेरणा प्रदान की है। एक है—मदिरा-सेवन, यदि विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार किया जाये तो मद्यपान अनर्थों का मूल है, इसी के प्रभाव से द्वारिका जैसी स्वर्गतुल्य विशाल नगरी का विनाश हुआ, यद्यपि अन्य मादक पदार्थों का भी मनुष्य की बुद्धि पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु इन सब में मदिरा विशेष है, अतः विचारशील पुरुषों को मदिरा जैसे विनाशकारी पदार्थ से सदा ही दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

सूत्रकार ने जिस दूसरी बात को छोड़ने पर बल दिया है, वह है निदान। निदान चारित्र-धर्म की प्राप्ति में बाधक माना गया है। निदान की प्रतिबन्धकता भगवान अरिष्टनेमि के कृष्ण वासुदेव को दिये गए उत्तर से स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है। भगवान कहते है कि सभी वासुदेव पूर्वभव में निदान किये हुए होते हैं, यही कारण है कि वासुदेव को सर्वविरति रूप चारित्रधर्म की कभी प्राप्ति नहीं हो सकती। पिछले निदान कर्म के प्रताप से उसे चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षय करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता और बिना चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम किये चारित्र उदय में नही आता, इसलिये मुमुक्षु जनों को सनिदान कर्म से सदा दूर ही रहना चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव तथा भगवान अरिष्टनेमि के मध्य में हुए प्रश्नोत्तरों का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार श्रीकृष्ण महाराज द्वारा कृत एक अन्य प्रश्न तथा भगवान द्वारा दत्त उस के उत्तर का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी— अहं णं भंते ! इतो कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?

तते णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! बारवतीए नयरीए सुरदीवायणकोवनिद्दड्ढाए अम्मापिइनियगविप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेलाए अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पांडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीतवत्थपच्छाइयसरीरे जरकुमारेणं तिक्खेणं कोदंडविप्पमुक्केणं इसुणा वामे पावे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।

तते णं कण्हे वासुदेवे अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंन्तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव झियाइ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उवट्टित्ता इहेव जम्बूदीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवतेसु सयदुवारे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि, तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवल-परियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि।

तते णं से कण्हे वासुदेवे अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गई, वग्गइत्ता तिवतिं छिंदइ, छिंदइत्ता सीहनायं करेइ, करित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति णमंसति, वंदित्ता, णमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिं दुरुहई, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी, जेणेव सते गिहे तेणेव उवागए, अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चारूहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सते सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

छाया—ततः खलु सः कृष्णो वासुदेवोऽर्हन्तमरिष्टनेमिमेवमवादीत्—

अहं भवन्त ! इतः कालमासे (मृत्युसमये) कालं कृत्वा कुत्र गमिष्यामि ? कुत्र उत्पत्स्ये ? ततोऽर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवं (प्रति) एवमवदत्—

एवं खलु कृष्ण ! द्वारवत्यां नगर्यां सुराद्वैपायनकोपनिदग्धायामम्बापितृनिजकविप्रहीनः रामेण बलदेवेन सार्द्धं दक्षिणवेलायाः अभिमुखः युधिष्ठिरप्रमुखानां पञ्चानां पाण्डवानां पाण्डुराजपुत्राणां पार्श्वे पाण्डु-मथुरां सम्प्रस्थितः कौशाम्बवनकानने न्यग्रोधवरपादपस्य अधः पृथिवीशिलापट्टके पीतवस्त्रप्रच्छादितशरीरः जराकुमारेण तीक्ष्णेन कोदण्डविप्रमुक्तेन इषुणा वामे पादे विद्धः सन् कालमासे कालं कृत्वा तृतीयां वालुकाप्रभायां पृथिव्यामुज्ज्वलितायां नरके नैरयिकत्वेन उत्पत्स्यसे।

ततः कृष्णो वासुदेवोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकात् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य उपहतो यावद् ध्यायति।

कृष्ण ! इति, अर्हन्नरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवं (प्रति) एवमवदत्—

मा त्वं देवानुप्रिय ! उपहतः यावद् ध्यायस्व। एवं खलु त्वं देवानुप्रिय ! तृतीयायाः पृथिव्याः उज्ज्वलितायाः अनन्तरमुद्वृत्य इहैव जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे द्वादशमो अममः नाम्ना अर्हन् भविष्यसि। तत्र त्वं बहूनि वर्षाणि केवलपर्यायं प्राप्य सेत्स्यसि।

ततः कृष्णो वासुदेवोऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिकाद् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट-तुष्ट० आस्फोटयति, आस्फोटित्वा वल्गति, वल्गित्वा त्रिपदीं छिनत्ति, छित्त्वा सिंहनादं करोति, कृत्वा अर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य तमेव आभिषेक्यं हस्तिनमारोहति, आरुह्य यत्रैव द्वारवती नगरी यत्रैव स्वकीयं गृहं तत्रैव उपागतः, आभिषेक्यहस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव बाह्यउपस्थानशाला, यत्रैव स्वकं सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरे पूर्वाभिमुखः निषीदति, निषद्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—

पदार्थ—**तते**—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये; **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव, **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त वीतराग अरिष्टनेमि भगवान को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **भंते !**—हे भगवन् !; **अहं णं**—मैं; **इतो**—यहां से; **कालमासे**—मृत्यु के समय; **कालं किच्चा**—काल करके, **कहिं**—कहां पर, **गमिस्सामि ?**—जाऊंगा ?, **कहिं**—कहां पर; **उववज्जिस्सामि**—उत्पन्न होऊंगा।

तते णं—इसके अनन्तर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले—

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **कण्हा !**—हे कृष्ण !; **बारवतीए**—द्वारिका; **नयरीए**—नगरी के; **सुरग्गीदीवायणकोवनिद्दड्ढाए**—अग्निकुमार देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध से भस्म हो जाने पर; **अम्मापिइनियगविप्पहूणे**—माता-पिता तथा निजक सम्बन्धियों से वियुक्त होकर; **रामेण बलदेवेण**—राम बलदेव के साथ—अपने बड़े भाई राम के साथ; **दाहिणवेलाए अभिमुहे**—दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर; **जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं**—जिन में युधिष्ठिर बड़े हैं, ऐसे; **पंडुरायपुत्ताणं**—पाण्डु राजा के पुत्र; **पंचण्हं पांडवाणं**—पांच पाण्डवों के; **पासं**—पास; **पंडुमहुरं**—पाण्डु मथुरा—पाण्डवों की राजधानी मथुरा की ओर; **संपत्थिते**—जाते हुए; **कोसंबवनकाणणे**—कौशाम्ब नामक फलों के वृक्षों के वन में; **नग्गोहवरपायवस्स**—अत्यन्त विशाल न्यग्रोध नामक वृक्ष के; **अहे**—नीचे; **पुढवि-सिलापट्टए**—पृथ्वी पर पड़ी हुई तखत जैसी शिला पर; **पीतवत्थपच्छाइयसरीरे**—शरीर पर पीत वस्त्र को ओढ़े हुए; **जरकुमारेणं**—जरा कुमार के; **कोदंडविप्पमुक्केणं**—धनुष से निकले हुए; **तिक्खेणं**—तीक्ष्ण; **इसुणा**—बाण से; **वामपादे**—बाएं पांव के; **विद्धे समाणे**—बिंध जाने पर; **कालमासे**—मृत्यु के समय; **कालं किच्चा**—मर कर; **उज्जलिए**—उज्ज्वलित—भयंकर अथवा तीसरी नरक भूमि का सातवां नरकेन्द्र नरक स्थान विशेष; **वालुयप्पभाए**—बालुका प्रभा नामक; **तच्चाए पुढवीए**—तीसरी पृथ्वी रूप; **नरए**—नरक में; **नेरइयत्ताए**—नरक रूप से; **उववज्जिहिसि**—उत्पन्न होवोगे; **तते णं**—उसके अनन्तर; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **अरहतो**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिस्स**—अरिष्टनेमि भगवान के; **अन्तिए**—पास से; **एयमट्ठं**—इस बात को; **सोच्चा**—सुनकर; **निसम्म**—उस पर विचार करके; **ओहय**—निराश हो गए; **जाव**—यावत्; **झियाइ**—आर्तध्यान करने लगे।

कण्हाइ—'हे कृष्ण !' ऐसा कह कर, **अरहा अरिट्ठनेमी**—अरिहन्त अरिष्टनेमि, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे,

देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिय ! हे भद्र !, **तुमं**—तुम्हें, **मा णं**—नहीं; **श्रोहय**—निराश होना चाहिये; **जाव**—यावत्; **झियाहि**—आर्तध्यान नहीं करना चाहिये; **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चय ही; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !; **तुमं**—तुम; **उज्जलियाश्रो**—उज्ज्वलित, **तच्चाश्रो**—तीसरी, **पुढवीश्रो**—पृथ्वी—नरक से, **श्रणंतरं**—अनन्तर, बिना व्यवधान के सीधे, **उवट्टित्ता**—निकल कर, **इहेव**—इसी, **जंबूदीवे**—जम्बू द्वीप के अन्तर्गत, **भारहे वासे**—भारतवर्ष में, **श्रागमेसाए**—आनेवाले, **उस्सप्पिणीए**—उत्सर्पिणी काल में, **पुण्डेसु जणवतेसु**—पुण्ड् नामक जनपद में, **सयदुवारे**—शतद्वार नामक नगर में, **बारसमे**—बारहवाँ, **श्रममे**—अमम, **नामं**—नाम का, **श्ररहा**—अरिहन्त—तीर्थकर; **भविस्ससि**—होवोगे, **तत्थ**—वहां पर, **तुमं**—तुम, **बहूइं**—बहुत; **वासाइं**—वर्ष, **केवलपरियायं**—केवलपर्याय अर्थात् केवलज्ञान की अवस्था को, **पाउणित्ता**—प्राप्त कर के, **सिज्झिहिसि**—सिद्ध हो जावोगे; ५—इस अंक से, **बुज्झिहिसि**—केवल ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानोगे; **मुच्चिहिसि**—संपूर्ण कर्मों से रहित हो जावोगे, **परिनिव्वहिसि**—सकल कर्म-जन्य संतापों से मुक्त हो जावोगे और **सव्वदुक्खाणमंतं करिहिसि**—सब प्रकार के दुःखों का अन्त कर दोगे, इन पदों का ग्रहण किया जाना चाहिये;

तते णं—उस के अनन्तर, **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव; **श्ररहतो श्ररिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **श्रन्तिए**—पास; **एयमट्ठं**—यह बात; **सोच्चा**—सुन कर, **निसम्म**—उस पर विचार कर; **हट्ठ-तुट्ठ०**—अत्यधिक प्रसन्न हुए; **श्रप्फोडेइ**—अंगों का आस्फोटन करते है, अपनी भुजा फड़काते हैं, **श्रप्फोडित्ता**—फड़का कर; **वग्गइ**—जोर से आवाज़ करते हैं, **वग्गइत्ता**—शब्द करके; **तिवतिं**—त्रिपदी—भूमि में तीन बार पांव का न्यास, या गति विशेष अर्थात् मल्ल की भांति—वहां पर तीन बार पैरों को मारते हैं उछलते हैं; **सीहनायं**—सिंह के समान गर्जन; **करेइ**—करते है, **करित्ता**—गर्जन करके; **श्ररहं श्ररिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान को; **वंदति णमंसति**—वन्दना नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके; **तमेव**—उसी (जिस पर सवार हो कर आए थे); **श्रभिसेक्कं**—सर्व प्रधान; **हत्थि**—हाथी पर; **दुरूहइ**—चढ़ते हैं, **दुरूहित्ता**—चढ़ कर; **जेणेव**—जहां पर; **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी; **जेणेव**—जहां पर **सिते गिहे**—अपना घर था, **तेणेव**—वहां पर, **उवागए**—आ गए; **श्रभिसेयहत्थिरयणाश्रो**—प्रधान हस्ति-रत्न से; **पच्चोरुहति**—उतरते हैं; **पच्चोरुहित्ता**—उतर कर; **जेणेव**—जहां पर; **बाहिरिया**—बाहिर की; **उवट्ठाणसाला**—सभास्थान था; **जेणेव**—जहां पर; **सते सीहासणे**—अपना सिंहासन था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते हैं; **उवागच्छित्ता**—आ कर; **सिहासणवरंसि**—उत्तम सिंहासन पर; **पुरत्थाभिमुहे**—पूर्वाभिमुख हो कर—पूर्व दिशा की ओर मुंह कर के; **निसीयति**—बैठ जाते हैं; **निसीइत्ता**—बैठ कर; **कोडु बिय पुरिसे**—राज-सेवकों को; **सद्दावेइ**—बुलाते हैं; **सद्दावित्ता**—बुला कर; **एवं**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

मूलार्थ—अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त कर के कृष्ण वासुदेव अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में निवेदन करने लगे—

भगवन् ! मृत्यु की घड़ी आने पर, काल करके मैं किस दिशा में जाऊंगा और किस स्थान पर जन्म लूंगा ?

कृष्ण वासुदेव के प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कहने लगे—कृष्ण ! सुर और देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध-रूप अग्नि से द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर, माता-पिता और निज सम्बन्धियों से रहित केवल राम अर्थात् बलदेव के साथ, दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर युधिष्ठिर-प्रधान, पाण्डुराज के पुत्र पांच पाण्डवों के पास पाण्डु-मथुरा (पाण्डवों की राजधानी) की ओर जाते हुए कोशाम्रवृक्षों के वन में न्यग्रोध-वट वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला के पट्ट पर पीतवस्त्र से अपने शरीर को ढांपे हुए, जराकुमार के द्वारा धनुष से छोड़े तीक्ष्ण बाण से बाँए पांव के विंध जाने पर मृत्यु के समय काल करके तीसरी बालुकाप्रभा के उज्जवलित (नरक-स्थान विशेष) नरक में नारक रूप में उत्पन्न होवोगे ।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर महाराज कृष्ण विचार में पड़ गए । नरक का विचार आते ही हृदय में निराशा जाग उठी, आर्तध्यान से वे विह्वल हो गए ।

कृष्ण वासुदेव की यह दशा देखकर अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित करते हुएं पुनः बोले—

कृष्ण ! निराश क्यों होते हो ? आर्तध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इससे आगे का काल सुन्दर ही सुन्दर है । उज्ज्वलित तीसरे नरक से बिना व्यवधान के निकल कर अनागतकालीन उत्सर्पिणी में इसी जम्बू द्वीपान्तर्गत भारतवर्षीय पुण्ड्र-देश के शतद्वार नामक नगर में अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे, वहां पर अनेकों वर्षों तक केवली दशा को प्राप्त करके तुम सिद्ध बन जावोगे, ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जान जावोगे, सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जावोगे, सकल कर्म-जन्य संतापों से छूट जाओगे, जन्म-मरण-जन्य समस्त दुःखों का अन्त कर डालोगे ।

अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास से भविष्यत् कालीन निर्वाणपद की प्राप्ति की सुखद वार्त्ता सुन कर कृष्ण-वासुदेव आनन्दविभोर हो उठे, उनकी भुजाएं फड़कने

लगीं, हर्षाधिक्य के कारण वे उच्च स्वर से बोलते हुए, मल्ल की भांति उछलने लगे, सिंहनाद कर उठे। इस तरह आन्तरिक प्रमोदातिरेक को अभिव्यक्त करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन एवं नमस्कार करते हैं, तत्पश्चात् जिस उत्तम हाथी पर चढ़ कर आए थे, उसी पर बैठ कर द्वारिका नगरी में जहां अपना घर था, वहां आ जाते हैं। आकर पूर्व-दिशा की ओर मुख कर के बैठ जाते हैं और राज-सेवकों को बुलवा कर वे इस प्रकार कहते हैं—

व्याख्या—शुभाशुभ कर्म के विपाक की अवश्यंभाविता से इन्कार नहीं किया जा सकता। शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के कर्मों का फल अवश्य मिलता है, ये उदय में आए हुए अपनी स्थिति के अनुसार फल दिये बिना कभी निवृत्त नहीं होते। कर्मों की फल-प्रदायक शक्ति का वर्णन जैन एवं जैनेतर सभी शास्त्रों में बड़े विस्तार के साथ मिलता है। जैनागम श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर कर्मों की शक्ति का मनोहारी शब्दों में विवेचन करते हुए कहते हैं—

"कडाण कम्माण न मुक्खु अत्थि"

भगवान कहते हैं, कृत-कर्मों को भोगे बिना किसी का छुटकारा नहीं हो सकता, राजा हो या रंक, योगी हो या भोगी, कर्म सभी को भोगने ही पड़ते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का निम्नलिखित श्लोक भी इसी सत्य का पूर्णरूप से समर्थन कर रहा है—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि॥"

अर्थात्—उपार्जन किया हुआ अथवा अशुभ कर्म बिना भोगे कभी क्षय नहीं होता, किन्तु उसका फल अवश्यमेव भोगना ही पड़ता है। कर्म तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि किसी का पक्ष-पात नहीं करते, सभी को ये अपना प्रभाव दिखलाते हैं। तीर्थंकर भगवान को भी इनके प्रहार सहन करने पड़ते हैं। भगवान महावीर के जीवन में आनेवाली दुःख पूर्ण घड़ियां इस सत्य की ज्वलन्त उदाहरण हैं। प्रस्तुत सूत्र के अनुसार द्वारिकाधीश वासुदेव श्रीकृष्ण भी इनके दुःखद प्रहारों से नहीं बच सके। वे आज भी तीसरी नरक में कर्मों के अनिष्ट परिणाम का फल भोग रहे हैं।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है, वह कृष्ण कौन है? वैदिक परम्परा के अनुयायी सनातनधर्मी बन्धु जिस कृष्ण को मानते हैं, क्या ये कृष्ण वही हैं या उनसे भिन्न हैं?

उत्तर में निवेदन है कि माता-पिता आदि सम्बन्धियों के नामों की दृष्टि से जब प्रस्तुत सूत्र में वर्णित श्रीकृष्ण का अध्ययन करते हैं तो सनातन धर्मावलंबियों और प्रस्तुत प्रकरण के कृष्ण में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता, परन्तु पौराणिक-परम्परा तथा जैन-परम्परा दोनों के कृष्णों का जब

सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो इन में महान अन्तर दिखाई देता है और यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि ये दोनों कृष्ण भिन्न हैं। जहां तक नामों की एकता का सम्बन्ध है, यह भी कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है, एक नाम के सैंकड़ों हजारों मनुष्य आज भी उपलब्ध होते हैं।

वैदिक शास्त्रों का अध्ययन करने से पता चलता है कि मनु नाम के कई महापुरुष हो चुके हैं। सनातनधर्मी परम्परा में श्रीशंकराचार्य की गद्दी पर जो भी बैठता है, उसे अब भी शंकराचार्य के नाम से ही स्मरण किया जाता है। इसी तरह और भी कई गद्दियां हैं, जिन पर विराजमान होनेवाले महात्मा अपने पूर्व पुरुष के नाम से ही व्यवहृत होते हैं।

कृष्ण नाम के अनेकों महापुरुष हो गये हैं।* पौराणिक परम्परा के श्रीकृष्ण तथा जैन-परम्परा के वासुदेव श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न हैं उनमें क्या-क्या अन्तर है? इसके सम्बन्ध में नीचे पंक्तियों में निवेदन कर रहे हैं—

१—हमारे सनातनधर्मी बन्धुओं की दृष्टि में कृष्ण भगवान, विष्णु भगवान के आठवें अवतार हैं। अवतार का अर्थ है—ईश्वर का मनुष्यादि रूप में जन्म लेना। इस तरह सनातनधर्मी कृष्ण को पुरुष या मनुष्य न मानकर पुरुष के रूप में साक्षात् भगवान मानते हैं, किन्तु जैन-दर्शन अवतारवाद को नहीं मानता है। उसका विश्वास है—भगवान इन्सान के रूपमें अवतरित नहीं होता—जन्म नहीं लेता, प्रत्युत इन्सान ही तप एवं संयम की अखण्ड साधना द्वारा भगवत्स्वरूप हो जाता है—भगवान बन जाता है। इन्सान का भगवान बनना ही जैन दर्शन का अवतारवाद है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सनातनधर्मी बन्धु भगवत्स्वरूप कृष्ण को मानते हैं, उसका स्वरूप जैन दर्शन द्वारा वर्णित कृष्ण में प्राप्त नहीं होता है। जैन-दर्शन का कृष्ण मनुष्य है, महामनुष्य है, तीन खण्ड का शासक एक नीतिज्ञ वासुदेव है। यह दर्शन कृष्ण को भगवत्स्वरूप स्वीकार नहीं करता, अतः पौराणिक परम्परा द्वारा माने गए भगवत्स्वरूप कृष्ण पृथक् हैं और जैन-दर्शन द्वारा मान्य महान् तेजस्वी कृष्ण पृथक् हैं।

२—सनातनधर्मी बन्धुओं का विश्वास है कि महाभारत के युद्ध को हुए पांच हजार वर्ष हो गए हैं, इससे स्पष्ट है कि जो कृष्ण महाभारत के काल में थे, अर्जुन के सारथी बने थे, उनको भी हुए पांच हजार वर्ष ही हुए हैं। अब हमें यह देखना है कि जैन-शास्त्रों में जिस कृष्ण का उल्लेख मिलता है उनका समय कौनसा है? जैन-दर्शन का परिशीलन करने से पता चलता है कि श्रीकृष्ण २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के चाचा के लड़के थे, अतः दोनों आपस में भाई-भाई थे। जैन-दृष्टि से भगवान अरिष्टनेमि के ८३७५० वर्षों के अनन्तर भगवान पार्श्वनाथ हुए हैं। भगवान पार्श्वनाथ

* इस सम्बन्ध में लाहौर (वर्तमान में पाकिस्तान) से निकलनेवाले दैनिक प्रभात के १३, १४, १६, १७, १८ और १९ अगस्त सन् १९४४ के अंकों में एक लेखमाला निकली थी, पाठकों को उस लेखमाला का अवश्य अध्ययन करना चाहिये। इस लेखमाला को धर्मप्रेमी ला० काशीराम जी चावला ने एक पुस्तिका के रूप में सम्पादित किया है। पुस्तिका का नाम "एक भूल का सुधार" है। यह पुस्तिका एस० एस० जैन सभा लुधियाना ने प्रकाशित की है और यह लाला काशीराम जी चावला, सिविल लाइन लुधियाना से प्राप्त की जा सकती है।

से २५० वर्षों के पश्चात् भगवान महावीर का जन्म हुआ था। भगवान महावीर का निर्वाण सम्वत् आजकल २४९३ चल रहा है। इस तरह जिस कृष्ण का जैन-शास्त्रों में वर्णन मिलता है, उनको हुए छियासी हजार चार सौ वष हो गए हैं। इसके विपरीत महाभारत के कृष्ण को पांचहजार वर्ष हुए हैं। इस तरह काल की दृष्टि से महाभारत और जैन-शास्त्र के दोनों कृष्णों में इक्कासी हजार चार सौ वर्षों का अन्तर मिलता है। यह काल सम्बन्धी अन्तर समुचित रूप से प्रकट कर रहा है कि दोनों कृष्ण एक नहीं थे, पृथक्-पृथक् थे। अन्तगड सूत्र में जिस कृष्ण के तीसरे नरक में जाने का उल्लेख किया गया है वे कृष्ण महाभारत काल के कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं। जिनके काल में इक्कासी हजार वर्षों का अन्तर हो उन्हें एक कहा भी कैसे जा सकता है?

३—कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—**'वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः'** वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, इसलिये इनको वासुदेव कहते हैं। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जैन-दर्शन में वासुदेव नौ हैं—१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुष-पुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण (लक्ष्मण), ९. कृष्ण। इनमें कृष्ण का अन्तिम स्थान है। वासुदेव का अर्थ है—जो सात रत्नों, तीन खण्डों का स्वामी हो तथा जो अनेक विध ऋद्धियों से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एवं मारकर तीन खण्ड पर राज्य किया करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन-दर्शन ने २८लब्धियों में से वासुदेव की एक लब्धि मानी है। तीन खण्ड तथा सात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं; इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव में महान बल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि कूप में बैठे हुए वासुदेव को जंजीरों से बांध कर यदि हाथी, घोड़े, रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा भी खींचने लगें तो भी उसे वे खींच नही सकते, किन्तु उसी जंजीर को बाए हाथ से पकड़ कर वासुदेव अपनी ओर आसानी से खींच सकता है।

जैन-दर्शन में जिस कृष्ण का उल्लेख है वे यही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न हैं। वासुदेव अपने युग के सर्वोत्कृष्ट योद्धा होते हैं। चक्रवर्ती स्वयं नहीं लड़ता, उसकी सेना लड़ती है, पर वासुदेव स्वयं लड़ते हैं। अकेले कृष्ण वासदेव ने ३६० युद्ध लड़े थे और उनमें विजय प्राप्त की थी। इन्हीं वासुदेव कृष्ण का वर्णन अन्तगड सूत्र में किया गया है। सनातनधर्मियों के साहित्य में वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने में नही आती। वैदिक साहित्य में वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। इससे भी जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण वैदिक साहित्य में वर्णित कृष्ण से विभिन्न ही प्रमाणित होते हैं।

४—अन्तगडसूत्र का परिशीलन करने से प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु थे, उपासक थे, यही कारण है कि भगवान के द्वारिका में पधारने पर वे बड़ी

सज्जनों के साथ स्वयं उनके दर्शनार्थ उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं, अपने परिवार को साथ लेजाते हैं, उनकी धर्म-देशना सुनते हैं। भगवान से द्वारिकादाह की बात सुनकर स्वयं भगवान के चरणों में दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते हैं, आर्तध्यान करते हैं। जालिकुमार आदि राजकुमारों के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने से उनकी प्रशंसा करते हैं। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान के अनुयायी थे वे उनके विश्वास को अपना विश्वास समझते थे, उनके मार्ग पर चलनेवालों को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वयं चलने की अभिलाषा रखते थे। संक्षेप में कहा जाय तो ये कृष्ण महाराज जैनधर्मावलम्बी थे। जैनदर्शन को अपना आराध्य मान कर अपनी जीवन-यात्रा चला रहे थे, परन्तु वैदिक साहित्य में ऐसा कोई वर्णन नहीं है। वैदिक साहित्य कृष्ण को जैन धर्मानुयायी नहीं मानता और न ही उनको भगवान अरिष्टनेमि का भक्त मानता है। इससे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण वैदिक साहित्य में वर्णित कृष्ण नही है। आचार-विचार को लेकर दोनों में महान अन्तर दिखाई देता है।

५—अन्तगड सूत्र में लिखा है कि भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के छः पुत्र जो भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में साधु बने थे, ये छहों भाई वासुदेव कृष्ण के मांजाए भाई थे तथा गजसुकुमार भी वासुदेव कृष्ण के भाई ही थे, ये भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हो गए थे। इस तरह महाराज कृष्ण के मां जाए ये सात भाई भगवान अरिष्टनेमि के पास जैन साधु बने थे। इनमें से किसी का उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं मिलता।

जालिकुमार, मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरिषषेणकुमार और वारिसेनकुमार ये पांचों महाराज वसुदेव के पुत्र थे, अतः वासुदेव कृष्ण के भाई थे, इनकी माता धारिणी थी, राजकुमार सत्यनेमी तथा दृढ़नेमी ये दोनों राजकुमार वासुदेव कृष्ण के ताऊ के लड़के थे। प्रद्युम्नकुमार तथा शाम्ब कुमार ये दोनों वासुदेव कृष्ण के अपने लड़के थे। राजकुमार अनिरुद्ध वासुदेव कृष्ण का पोता था। ये सभी राजकुमार भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में जैन साधु बने थे। पर इनके जैन साधु बनने का किसी भी वैदिक ग्रन्थ में उल्लेख देखने में नहीं आता।

महारानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जांबवती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठों महाराज कृष्ण की रानियां थीं। मूलश्री तथा मूलदत्ता ये दोनों कृष्ण महाराज के पुत्र शाम्बकुमार की रानियां थीं। ये सब भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर जैन साध्वी बन गई थीं। दीक्षामहोत्सवादि का सब कार्य कृष्ण महाराज ने अपने नेतृत्व में करवाया था। अथवा यूं कहें इन्होंने स्वयं इनको दीक्षा दिलवाई थी। पर इनके जैन साध्वी बनने का कोई वर्णन वैदिक साहित्य में देखने में नहीं आता।

महाराज कृष्ण की रानियां, पुत्रवधुएं साध्वी बन रही हैं, इनके पुत्र जैन साधु हो रहे हैं, इनके पोते मोह-माया के बंधनों को तोड़ कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षा अंगीकार कर रहे हैं, ऐसी दशा में महाराज कृष्ण के जैनधर्मानुयायी होने में सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता है, यही सत्य जैन-साहित्य के कृष्ण को वैदिक साहित्य के कृष्ण से पृथक् सिद्ध करता है।

६—अन्तगड़ सूत्र में लिखा है कि वासुदेव कृष्ण अपने राजसेवकों द्वारा द्वारिका नगरी के सभी प्रदेशों में एक उद्घोषणा कराते हैं। घोषणा में कहा जाता है कि द्वारिका निवासियो! बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी स्वर्गपुरी के समान हमारी यह द्वारिका नगरी एक दिन द्वैपायनऋषि द्वारा जला दी जायेगी, अतः जो भी व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर अपना कल्याण करना चाहे, उसे महाराज कृष्ण की आज्ञा है कि वह दीक्षित हो सकता है, साधु बन कर परम साध्य निर्वाणपद की आराधना कर सकता है। यदि किसी को पीछे की कोई चिन्ता हो तो उसे वह छोड़ देनी चाहिए, पीछे की सब व्यवस्था महाराज कृष्ण स्वयं करेंगे। इसके अतिरिक्त घोषणा में यह भी कहा गया था कि जो भी व्यक्ति साधु बन कर अपना कल्याण करना चाहे, उसके दीक्षा-समारोह की सब व्यवस्था महाराज श्रीकृष्ण की ओर से होगी। यह घोषणा एक बार नहीं, तीन-तीन बार की गई थी।

इस घोषणा से स्पष्ट ध्वनित होता है कि वासुदेव कृष्ण परम धर्मात्मा एवं श्रद्धालु व्यक्ति थे और अपने नगर-निवासियों को धर्म में दीक्षित करने के लिये सभी प्रयत्न कर रहे थे। ध्यान रहे जिस धर्म में द्वारिका निवासियों को दीक्षित करवाने की योजना हमारे सामने आ रही है यह कोई अन्य धर्म नहीं, जैन धर्म ही है, भगवान अरिष्टनेमि का निर्ग्रन्थ धर्म है। द्वारिका-निवासियों को जैन-धर्म में दीक्षित करवाने का यह उल्लेख वैदिक साहित्य के किसी ग्रन्थ में देखने में नहीं आता। जैन शास्त्रों के इन स्पष्ट उल्लेखों के अनन्तर भी यदि कोई जैन-साहित्य में वर्णित कृष्ण वासुदेव को, वैदिक साहित्य का कृष्ण समझने का प्रयास करे, तो इस से बढ़ कर अन्य कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती।

७—श्रीमद्भागवत के **'समुद्रः सप्तमेऽह्न्येनां पुरीञ्च प्लावयिष्यति'**—इस वाक्य से सिद्ध होता है कि वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण की द्वारिका को समुद्र ने डुबोया था और उसकी पूर्व सूचना स्वयं श्रीकृष्ण ने दी थी। जब जैन श्रीकृष्ण की द्वारिका को द्वैपायन ऋषि की क्रोधाग्नि ने जलाया था और इस अग्नि-दाह की पूर्व सूचना भगवान अरिष्टनेमि ने दी थी।

कुछ लोग यह कहते हैं कि जैन साहित्य में कृष्ण को नरकवासी बतला कर सनातनधर्मी कृष्ण एवं उनके भक्तों का अपमान किया गया है, उन के मानस को परिपीड़ित करने का यह ढंग अपनाया गया है।

परन्तु कृष्ण भक्तों का ऐसा सोचना व्यर्थ है, क्योंकि जैनधर्म का अनुयायी कहलानेवाला कोई भी व्यक्ति अपमान करने की बुद्धि से किसी का अपमान करे, यह सर्वथा असम्भव है। जैनधर्म और पर-अपमान का कोई सम्बन्ध नहीं है। जैनधर्म प्राणिमात्र के मानस को परिपीड़ित करने का निषेध करता है तो स्वयं किसी का अपमान करे यह कैसे हो सकता है?

दूसरी बात—जैन साहित्य कृष्ण के केवल नरक-गमन की बात कह कर मौन नहीं हो जाता वह उनके भावी तीर्थंकर बनने की भी बात बतलाता है। तीर्थंकर का अर्थ है—जैन जगत् का सब से बड़ा आध्यात्मिक नेता, जैन जगत् में इस से बड़ा कोई पद नहीं है। जैन-जगत् जैसे श्रीऋषभदेव,

शान्तिनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर को तीर्थंकर मान कर उन का सम्मान करता है, यही सम्मान वह भावी तीर्थंकर होने से श्रीकृष्ण को देता है। इसी दृष्टि से अन्तगड सूत्र में भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव कृष्ण को कहते हैं कि हे कृष्ण ! आगामी उत्सर्पिणी में तुम भारतवर्ष के शतद्वार नगर में अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण वासुदेव को जहां नरकगामी बतलाया गया है वहां उन्हें तीर्थंकर बन जाने के अनन्तर मोक्षगामी बतला कर परम सम्मान भी प्रदान किया गया है।

तीसरी बात—जिस कृष्ण को जैनशास्त्रों ने नरकगामी बतलाया है, वह कृष्ण जैनशास्त्रों का कृष्ण है, जैनधर्मानुयायी कृष्ण है। हज़ारों नर-नारियों को जैनसाधु तथा जैनसाध्वी बनवानेवाला कृष्ण है। वह वैदिक परम्परा का भगवत्स्वरूप कृष्ण नहीं है। भगवान से इन्सान बन कर जगत् को अपनी लीला दिखलानेवाला कृष्ण नहीं है।

"कालमासे"—इस पद में काल और मास इन दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से **काल** शब्द समय और **मास** शब्द महीने का बोधक है, पर प्रस्तुत में **काल** शब्द मृत्यु और **मास** शब्द समय का सूचक है। इस तरह मृत्यु के समय को **'कालमास'** कहते हैं।

"सुरदीवायणकोवनिद्दड्ढाए"—सुर-द्वैपायनन-कोप-निदग्धायाम् का अर्थ है—देवरूप द्वैपायन ऋषि के क्रोध के कारण (द्वारिका के) दग्ध हो जाने पर।

कहा जा चुका है, कि मदोन्मत्त यादवकुमारों से प्रताडित द्वैपायन ऋषि ने निदान कर लिया था कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारिका नगरी को जला कर भस्म कर दूं। निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार नाम के देव बने। इधर वे पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारिकादाह का अवसर देख रहे थे, उधर द्वारिकानिवासियों ने अग्निकुमार देव से अपनी सुरक्षा के लिये अमल तपस्या आरम्भ करदी। कोई घर ऐसा नहीं था जिसमें अमल तप का अनुष्ठान न होता हो, सर्वत्र अमलतप की ही आराधना चल रही थी। कथाकार कहते हैं कि अग्निकुमार द्वैपायन ऋषि द्वारिका-नगरी में प्रतिदिन चक्कर लगाता था, परन्तु अमल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई वश नहीं चलता था, वह द्वारिका नगरी को जलाने में असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा, लगातार बारह वर्षों तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा।

नीतिकार कहते हैं कि मनुष्य के जब दुर्दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है, उसको कितनी भी हितदायक बात समझा दी जाये, पर उसकी समझ में वह नहीं बैठती। सत्पथ छोड़कर कुपथ पर चलना ही उसे प्रिय लगता है। यही दशा द्वारिका-निवासियों की हुई। बारह वर्षों के बाद द्वारिका के कुछ लोग सोचने लगे—अमल तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए हैं, अब अग्निकुमार हमारा क्या बिगाड़ सकता है? दूसरी बात कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि—

द्वारिका के सभी लोग तो अमल कर ही रहे हैं, यदि हम लोग न भी करें तो इससे क्या अन्तर पड़ता है ? समय की बात समझिए कि द्वारिका में एक दिन ऐसा आ गया जब किसी ने भी अमल तप नहीं किया। आपसी स्वार्थ के कारण संकट-मोचक अमल-तप से सभी विमुख हो गए। अग्नि-कुमार द्वैपायन ऋषि के लिये इससे बढ़कर और कौन सा अवसर हो सकता था, उसने द्वारिका को आग लगा दी। चारों ओर भयंकर शब्द होने लगे, जोर की आंधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि ने सारी द्वारिका को अपनी लपेट में ले लिया। वासुदेव कृष्ण ने आग शान्त करने के अनेकों यत्न किए, पर कर्मों का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेल का काम कर रहा था। पानी डालने से आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यों-ज्यों पानी डाला जाता था त्यों-त्यों अग्नि और अधिक भड़कती थी, अग्नि की भीषण ज्वालायें मानों गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थी। कृष्ण वासुदेव, बलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारिका जल गई, पर ये उसे बचा नहीं सके।

द्वारिका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और बलराम वहां से जाने की तैय्यारी करने लगे इसी बात को सूत्रकार ने "सुर-दीवायण-कोवनिद्दड्ढाए" इस पद से अभिव्यक्त किया है।

"अम्मा-पिइ-नियग-विप्पहूणे"—अम्बापितृ-निजक-विप्रहीणः मातृपितृभ्यां स्वजनेभ्यश्च विहीनः—अर्थात् माता-पिता और अपने सम्बन्धियों से रहित व्यक्ति को 'अम्बापितृ-निजक-विप्रहीण' कहते हैं। कथाकारों का कहना है कि जब द्वारिका नगरी जल रही थी तो उस समय कृष्ण वासुदेव और इनके बड़े भाई बलराम दोनों आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब ये सफल नहीं हुए तब ये अपने महलों में पहुंचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी कठिनाई से माता-पिता को महल में से निकालने में ये सफल हुये। इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर बैठा कर किसी सुरक्षित जगह पर पहुंचा दिया जाये, अपने विचार की पूर्ति के लिये वासुदेव श्रीकृष्ण जब अश्वशाला में पहुंचे तो देखते है, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है। ये वहां से चले, रथशाला में आए रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हें सुरक्षित दिखाई दिया। वे तत्काल उसी को बाहिर ले आये, उस पर अपने माता-पिता को बैठाया, घोड़ों के स्थान पर दोनों भाई लगे, पर जैसे ही सिंहद्वार को पार करने लगे, उस समय रथ का जूआ और दोनों भाई द्वार से बाहिर आये ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए और उनका देहान्त हो गया। वासुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक, भयंकर दृश्य देखा नहीं गया, वे माता-पिता के वियोग से ये अधीर हो उठे। जैसे-तैसे इन्होंने अपने मन को संभाला, माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न महान संताप को धैर्यपूर्वक सहन किया। माता-पिता तथा अन्य निज सम्बन्धियों की इसी विहीनता को सूत्रकार ने "अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणं" इस पद से संसूचित किया है।

"रामेण बलदेवेण सद्धिं"—का अर्थ है—राम बलदेव के साथ। महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था, रोहिणी ने एक पुण्यवान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह परम अभिराम

सुन्दर था, इसलिये उसका नाम "राम" रखा गया। आगे चलकर अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होने के कारण राम के साथ बल विशेषण और लग गया और ये राम, बलराम, बलभद्र और बल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हो गये। जैनशास्त्रों के अनुसार वलदेव एक पद विशेष भी है। वासुदेव के बड़े भाई बलदेव कहलाते हैं, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते हैं। बलराम नौवें बलदेव थे। बलदेव और वासुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है। महाराज कृष्ण के बड़े भाई बलदेव राम को ही सूत्रकार ने **"रामेण बलदेवेण"** इन पदों से व्यक्त किया है।

"दाहिणबेलाए अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं", "पंचण्हं पांडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडु-महुरं संपत्थिए" का अर्थ है—दक्षिणसमुद्र के किनारे पांडुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रधान पांचों पांडवों के पास पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये।

कथाकार कहते हैं कि महाभारत के युद्ध के अनन्तर पांडवों का समय आनन्दपूर्वक हस्तिनापुर में व्यतीत हो रहा था। एक बार वहां नारद मुनि आगए; भाग्यवश वह सीधे द्रौपदी देवी के महल में पहुंच गये, परन्तु अव्रती समझ कर द्रौपदी देवी ने उनका सम्मान नहीं किया, जिससे क्रुद्ध होकर और बदले की भावना से नारदमुनि वहां से लौट गए। बहुत सोच विचार के बाद वे धातकीखण्ड की अमर-कंका नगरी में पहुंचे। वहां के नरेश पद्मनाभ ने उनका स्वागत किया। वे भोजनार्थ जब उनको महल में लाए तब उन्होंने अपने अन्तःपुर का उनसे परिचय कराया। अवसर देखकर नारद बोले—'राजन्! भरत क्षेत्रीय हस्तिनापुर में पांडव राज्य करते है, उनकी द्रौपदी के सामने तुम्हारा यह रनिवास नगण्य है। एक बार भी उसे देख लो तो आश्चर्यचकित रह जाओ। भरतक्षेत्र में स्वयं जाना असम्भव समझ कर परस्त्री लंपट पद्मनाभ ने द्रौपदी को लाने के लिये अपने मित्र देव की आराधना आरम्भ कर दी। देव के प्रसन्न होने पर उसने द्रौपदी को लाने को कहा। 'द्रौपदी महासती है, इस से तुम्हारी कामना पूर्ण नहीं हो सकेगी', यह सब समझाने पर भी जब पद्मनाभ नहीं माना, तब उस देव ने सोई हुई द्रौपदी को पलंग सहित उठा कर पद्मनाभ के महल में पहुंचा दिया। प्रातःकाल होने पर द्रौपदी ने जब आंखे खोली तो वह चकित रह गई। पद्मनाभ ने अपने हृदय की सारी बातें सुना कर उसके आश्चर्य को दूर करते हुए उसे अपनी अर्धांगिनी बनाने का प्रस्ताव रखा। द्रौपदी समझदार थी, उसने समय देख कर एक मास के बाद निर्णय देने को कहा।

इधर हस्तिनापुर में द्रौपदी को न देखकर पाण्डव घबरा गए। चप्पा-चप्पा छान मारा, जब द्रौपदी नहीं मिली तो कुन्ती द्वारिका पहुंची और महाराज कृष्ण को सब घटना सुनाई। घटना को सुनते ही महाराज कृष्ण विचार में पड़ गए। इतने में अचानक नारद मुनि के आने की सूचना मिली। महाराज कृष्ण ने उनका स्वागत किया।

कृष्ण को उदास देख कर नारद बोले—वासुदेव! उदास क्यों हो? उत्तर में कृष्ण बोले—द्रौपदी का पता नहीं लग रहा, आप ही कुछ बतलाने की कृपा करें?

कृष्ण की बात सुन कर नारद ने कहा—धातकी खण्ड की अमरकंका नगरी में पद्मनाभ नरेश के महल में द्रौपदी जैसी एक नारी देखी तो थी, मैं भी विस्मित था कि द्रौपदी यहां कैसे आ गई?

नारद मुनि की बात सुनकर कृष्ण समझ गए, यह सब माया नारद मुनि की है। उन्होंने तत्काल पाण्डवों को सूचना दी। समुद्र के तट पर आ जाओ, मैं भी वहां आरहा हूं। सब के एकत्रित हो जाने पर श्री कृष्ण ने तेला करके समुद्र के अधिनायक का स्मरण किया और उससे द्रौपदी-हरण की सब घटना सुन कर कहा—'हमारे रथ पृथ्वी के समान ही समुद्र को लांघ जायें।' देव ने 'तथास्तु' कहा। छहों रथ अमरकंका नगरी के उद्यान में जा पहुँचे।

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा द्रौपदी को वापिस करने का पद्मनाभ को संदेश भिजवाया। अभिमानी पद्मनाभ नहीं माना, लड़ाई आरम्भ हो गई। पांडव लड़ाई में हार गए, फिर महाराज कृष्ण स्वयं मैदान में आ गए। महाराज कृष्ण के पराक्रम को देख कर पद्मनाभ घबरा गया। इनके प्रहारों के सामने वह टिक न सका। रणभूमि से भाग कर अपनी नगरी के द्वार बन्द करा कर वह दुर्ग में जा पहुंचा, पर महाराज कृष्ण के पाद-प्रहार ने नगरी की दीवारें तोड़ दीं और वे नगरी में प्रविष्ट हो गए। किसी भी तरह अपनी रक्षा का उपाय न देख कर पद्मनाभ ने द्रौपदी की शरण में जा कर उससे जीवनरक्षा की भिक्षा मांगी। द्रौपदी ने एक ही उपाय बताया—वह था—"स्त्री का वेष बना कर वासुदेव के चरणों में गिर पड़ो।" पद्मनाभ के ऐसा करने पर महाराज कृष्ण शान्त हो गए और द्रौपदी को ले कर वापिस लौट गए। समुद्र के किनारे आने पर कृष्ण समुद्र के अधिनायक देव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे और पांचों पांडव महानदी गंगा के तट पर आकर नाव के द्वारा उसे पार कर के महाराज कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे। पाण्डवों को चाहिये था कि महाराज कृष्ण के लिये वह नाव वापिस भेज देते, पर उन्होंने महाराज कृष्ण के बल की परीक्षा के लिये नाव वापिस नहीं भेजी।

महाराज कृष्ण देव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के अनन्तर सहर्ष गंगा तट पर पहुंचे। वहां नाव नहीं थी, बड़ी टेढ़ी समस्या थी, पर महाराज कृष्ण को समाधान करते कोई देर नहीं लगी। एक हाथ से उन्होंने अश्वसहित संग्रामी रथ उठाया, दूसरे हाथ से गंगा महानदी को तैरना आरंभ किया। नदी विशाल थी, अतः मध्य में महाराज कृष्ण थक गए। 'पाण्डव इस विशाल नदी को कैसे पार कर गए', यह सोच कर वे उनकी प्रशंसा करने लगे। अपनी थकावट से उन्हें कुछ दुविधा नज़र आने लगी। अभी-अभी युद्ध भूमि लौटने के कारण एवं पाण्डवों के व्यवहार से समुत्पन्न विक्षोभ के कारण श्री कृष्ण की थकान अस्वाभाविक नहीं। तभी नदी की अधिष्ठात्री देवी सहायता उनकी के लिये आ गई। उसने उनके विश्राम के लिये शुष्क स्थल बना दिया, विश्राम करने के अनन्तर महाराज कृष्ण फिर तैरने लगे और किनारे पर पहुंच गए। पाण्डवों ने उन का स्वागत किया।

महाराज कृष्ण बोले—'मैं समझ नहीं सका महानदी गंगा के विशाल महाप्रवाह को बिना साधन के पार करनेवाले पांडव पद्मनाभ से कैसे हार गए? यह सुन कर पांडव बोले—'हमने भुजाओं से गंगा पार नहीं की, हमें नाव मिल गई थी, उसी से हम पार हो गए थे।'

पांडवों की बात सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे—फिर तुम ने यह नाव मेरे लिये क्यों नहीं भेजी? इसका उत्तर देते हुए पाण्डव कहने लगे—हमने सोचा कृष्ण के भुजबल की परीक्षा ली जाये, इसी कारण हमने नाव वापिस नहीं भेजी।

इतना सुनना था कि महाराज श्रीकृष्ण क्रोध से तमतमा कर बोले—'तुमने अमरकंका में मेरा भुजबल नहीं देखा ? मेरे जीवन के साथ खिलवाड़ करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ? कृष्ण ने आवेश में आकर अपने लोह-दण्ड से पांचों पांडवों के रथों को खण्ड-खण्ड कर दिया और पांडवों को आदेश दिया कि तुम जैसे नीच मेरे राज्य में नहीं रह सकते अतः मेरे राज्य से बाहिर हो जाओ ।'

पाण्डवों को अपनी भूल का बड़ा दुःख था, पर कृष्ण का भयंकर रूप देखकर वह डर गये और वापिस हस्तिनापुर पहुंचे, और माता कुन्ती को सब वृत्तान्त सुनाया। कुंती ने पांडवों के इस अपराध को अक्षम्य-अपराध बताया, तथापि वह द्वारिका में श्रीकृष्ण के पास पहुंची। द्रौपदी को वापिस लाने की उनके सामने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने श्रीकृष्ण से कहा—'बेटा ! पाण्डवों को जो तुमने दण्ड दिया है वह तो उनके अपराध के अनुरूप ही है, परन्तु यह तो बताओ कि वे रहें कहाँ ? तीन खण्ड से बाहिर जाने की उनकी क्षमता नहीं है।

महाराज श्रीकृष्ण कुंती का बड़ा मान करते थे, कुंती वासुदेव की बहिन थी, अतः श्रीकृष्ण इन्हें माता तुल्य ही समझते थे। कुंती की बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'माता ! आपके होते हुए कोई समस्या सुलझे बिना नहीं रह सकती। आप पाण्डवों से कह दें कि दक्षिण-समुद्र के तट पर 'पाण्डुमथुरा' नाम की नगरी बसा लें और उसीमें निवास करें, मैं उस प्रदेश को आज से तीन खण्ड से पृथक् घोषित कर देता हूं।

कुंती सन्तोषजनक उत्तर पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने हस्तिनापुर जाकर सारी बात कह दी। पाण्डव कृष्ण के आदेशानुसार दक्षिण-समुद्र के तट पर पाण्डुमथुरा नाम की नगरी बना कर सानन्द रहने लगे।

द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बड़े चिन्तित थे, उसी दशा में उन्होंने बलराम से कहा कि औरों को शरण देनेवाला कृष्ण आज किस की शरण में जाये ? इसके उत्तर मे बलराम कहने लगे—पाण्डवों की आपने सदा सहायता की है, उन्ही के पास चलना ठीक है।

यह सुनकर कृष्ण बोले—जिनको सहारा दिया हो, उनसे सहारा लेना लज्जास्पद है, फिर सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) अपनी बहिन है। बहिन के घर रहें ये भी शोभास्पद नहीं हैं।

कृष्ण की तर्क-संगत बात सुनकर बलराम कहने लगे—भाई ! कुंती तो अपनी बूआ है, बूआ के घर जाने में अपमान जनक कोई बात नहीं। अन्त में कृष्ण अनिच्छा होने पर भी बलराम कृष्ण को साथ लेकर दक्षिण समुद्र के तट पर बसाई पांडवों की राजधानी पाण्डुमथुरा की ओर चल दिए। सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में जो **"दाहिणवेलाए अभिमुहे पांडुमहुरं संपत्थिए"** ये पद दिये हैं ये उक्त कथानक की ओर ही संकेत कर रहे हैं।

"कोसंब-वण-काणणे"—कोशाम्रवन-कानने, कोशाम्रनामकफलविशेषवृक्षाणामारण्ये—अर्थात् कोशाम्र एक फल विशेष का नाम है, उस फल के वृक्ष-समुदाय के जंगल में।

"पुढविसिलापट्टए"—पृथ्वीशिलापट्टके, भूमिस्थित-शिलापट्टके अर्थात्—जमीन पर पड़ी शिलारूप पट्ट अर्थात् तख्त पर।

"पीत-वत्थ-पच्छाइय-सरीरे"—पीतवस्त्र प्रच्छावित शरीरः पीताम्बरेणप्रच्छादितं शरीरं यस्य—अर्थात् जिसका शरीर पीतवस्त्र से ढका हुआ हो उसे पीतवस्त्र प्रच्छादित शरीर कहते हैं। भाव यह है कि जिस समय महाराज श्रीकृष्ण कोशाम्रवन में वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिलापट्टक पर विश्राम कर रहे थे, उस समय उन्होंने शरीर पर एक पीला वस्त्र ओढ़ रखा था।

"जरा कुमारेणं—का अर्थ है जरा कुमार ने। जरा कुमार यादव वंशीय एक राजकुमार था, जो महाराज श्रीकृष्ण का भाई था। भगवान अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी करते हुए यह कहा था कि जराकुमार के बाण से आहत होने पर वासुदेव श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। जराकुमार को महाराज श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से बड़ा दु.ख था। अन्त में, उसने निश्चय किया कि मैं द्वारिका छोड़ कर कोशाम्रवन में चला जाता हूं, वहाँ जीवन के शेष क्षण व्यतीत कर दूंगा, इससे श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से मैं बच जाऊगा। अपने निश्चय के अनुसार वह कोशाम्रवन में रहने लगा था। पर भवितव्यता को कौन टाल सकता था। द्वारिका के जल जाने पर श्री कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ पाण्डुमथुरा जा रहे थे। रास्ते में कोशाम्रवन आया। महाराज श्रीकृष्ण को प्यास लगी, बलराम पानी लेने चले गये। पीछे श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे पीतवस्त्र ओढ़कर विश्राम करने लगे। उन्होंने एक पाव पर दूसरा पाव रखा हुआ था। वासुदेव के पांव में पद्म चिन्ह होता है, उनका यह चिन्ह अपनी छटा दिखला रहा था, दूर से जैसे मृग की आँख चमकती है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के पाँव में पद्म-चिन्ह चमक रहा था। इधर इस दशा मे ये विश्राम कर रहे थे, उधर जराकुमार उसी वन मे भ्रमण कर रहा था, उसे किसी शिकार की खोज थी। जब वह वट वृक्ष के निकट आया तो उसे दूर से ऐसे लगा जैसे कोई मृग बैठा है। उसने तत्काल धनुष पर एक बाण चढाया, मृगनयन का लक्ष्य करके जोर से खीचकर वह बाण छोड़ दिया। बाण लगते ही कृष्ण छटपटा उठे। महाराज श्रीकृष्ण को ध्यान आया कि बाण कही जराकुमार का तो नहीं ? जराकुमार को सामने देख कर उनका विचार सत्य प्रमाणित हुआ। जराकुमार के क्षमा मागने पर वे बोले—

जराकुमार ! तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? भवितव्यता ही ऐसी थी। भगवान अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी अन्यथा कैसे हो सकती थी ? बलराम के आने का समय निकट देखकर कृष्ण बोले—जराकुमार ! तुम यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा बलराम के हाथों से तुम बच नही सकोगे। जिस अधम कार्य से जराकुमार बचना चाहता था, जिस पाप से बचकर उसने द्वारिका नगरी का वास छोड़कर कोशाम्रवन का वास अगीकार किया था, उसी पाप को अपने हाथों से होते देखकर उसका हृदय रो पड़ा, पर क्या कर सकता था ? श्रीकृष्ण की वेदना उग्र हो गई, साथ ही उनकी शान्ति भग हो गई। कहने लगे—मेरा घातक मेरे हाथों से बचकर निकल गया, मुझे तो उसे समाप्त कर ही देना चाहिए था, रौद्रध्यान अपने यौवन पर आ गया और उसी रौद्रध्यानपूर्ण स्थिति में महाराज श्रीकृष्ण का देहान्त हो गया। वे प्यासे ही इस पार्थिव शरीर को छोड़कर नरकधाम में चले गये।

"कोदंडविप्पमुक्केणं"—कोदण्ड-विप्रमुक्तेन, कोदण्डात् विप्रमुक्तस्तेन—अर्थात् कोदण्ड धनुष का नाम है, विप्रमुक्त—छूटे हुए को कहते हैं, अतः इसका अर्थ है धनुष से छूटे हुए।

"तच्चाए बालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए"—तृतीयस्यां बालुकाप्रभायां पृथिव्यामुज्ज्वलिते नरके—अर्थात् बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक में।

जैन-दृष्टि से यह जगत् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक इन तीन लोकों में विभक्त है। अधोलोक में सात नरक हैं। अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होकर जीव अपने पापों का फल भोगते हैं, वे स्थान नरक कहलाते हैं। ये सात पृथ्वियों में विभक्त हैं जिनके नाम हैं—घम्मा, वंसा, शैला, अंजना, रिट्ठा, मघा तथा माघवइ। इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमप्रभा ये सात गोत्र हैं।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखनेवाली अनादि काल से प्रचलित संज्ञा को नाम कहते हैं और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है वह गोत्र कहलाता है। प्रस्तुत में बालुकाप्रभा, तीसरी भूमि का प्रसंग है। बालु—रेत अधिक होने से इसका नाम बालुकाप्रभा है। क्षेत्र-स्वभाव से इसमें उष्ण वेदना होती है। यहां की भूमि जलते हुए अंगारों से भी अधिक तप्त होने से भयकर उष्ण वेदना का कारण बनती है। इस तीसरी पृथ्वी में नौ प्रतर (नरक के एक-एक परदे के बाद जो स्थान होता है—उसी तरह के स्थान) हैं। पहले प्रतर की प्रत्येक दिशा में पच्चीस और विदिशा मे चौबीस आवलिका प्रविष्ट (जो नरकावास चारों दिशाओं में पंक्तिरूप से अवस्थित है वे) नरकावास है। बीच में एक नरकेन्द्रक है। कुल मिलाकर एक सौ सतानवे नरकावास है। बाकी आठ प्रतरो मे क्रम से आठ-आठ कम होते हैं। सभी प्रतरों में कुल मिलाकर एक हजार चार सौ पच्चासी नरकावास है, शेष चौदह लाख, अट्ठानवें हजार पांच सौ पन्द्रह प्रकीर्णक (इधर उधर बिखरे हुए नरकावास) है। दोनों को मिलाकर तीसरी नरक में १५ लाख नरकावास हैं।

प्रस्तुत सूत्र के वर्णन से पता चलता है कि कृष्ण वासुदेव बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में पैदा हुए है। उज्ज्वलित शब्द के दो अर्थ होते हैं—पहला तीसरे भूमि का सातवां नरकेन्द्रक नरक-स्थान विशेष और दूसरा भीषण-भयंकर। उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है।

पौरणिक साहित्य मे भी कृष्ण महाराज के प्राणान्त का वर्णन किया गया है। वहां भी भगवान कृष्ण जीवन-लीला समाप्त करने के अनन्तर पाताललोक में बलि के द्वार पर चले जाते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करें तो जैन-साहित्य तथा वैदिक-साहित्य के इस वर्णन मे कोई महत्व पूर्ण अन्तर दिखाई नही देता है। वैदिक साहित्य जिसे पाताल लोक कहाता है, जैन साहित्य उसे अधोलोक कहता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य जिसे बलि का द्वार कहता है जैन साहित्य उसे बालुकाप्रभा कहता है अन्तर केवल नरक का है तथा उसमें उपभुक्त की जानेवाली वेदना का है।

"उस्सप्पिणीए"—उत्सर्पिण्याम्—अर्थात् उत्सर्पिणीकाल में। जैन शास्त्रकारों ने काल को दो विभागों में विभक्त किया है, एक का नाम अवसर्पिणी और दूसरे का उत्सर्पिणी है, जिस काल में जीवों के संहनन (अस्थियों की रचनाविशेष) और संस्थान (शरीर का आकार) क्रमशः हीन होते चले जायें आयु और अवगहना घटती चली जाए वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, रस, गंध और स्पर्श हीन होते चले जाते जाते हैं। शुभ भाव घटते हैं, अशुभ भाव बढ़ते हैं। यह काल दस कोडा-कोडी सागरोपम है।

इसके विपरीत जिसकाल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते चले जाते हैं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है। जीवों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। यह काल भी दस कोडाकोडी सागरोपम का है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा, कृष्ण! आने वाली उत्सर्पिणी काल में पुण्ड्र देश के शतद्वार नगर में अमम नाम के बाहरवें तीर्थकर बनोगे।

प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में भारतवर्ष में साढे २५ देशों को आर्य माना गया है। तथा आर्य देश में ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, और वासुदेव की उत्पत्ति बताई गई है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन साढे २५ देशों के नाम शास्त्रों में बतलाए गए है उनमें पुण्ड्र देश का नाम देखने को नहीं मिलता, ऐसी दशा में उसको आर्यदेश कैसे कह सकते है? भगवान अरिष्टनेमि के कथनानुसार वहां कृष्ण वासुदेव बाहरवें तीर्थकर बनेंगे, इस दृष्टि से विचार करते हैं तो उस पुण्ड्र देश को अनार्य भी नहीं कह सकते। इस तरह प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार साढे २५ देशों को आर्य माने तो उनमे पुण्ड्र देश का नाम नही आता तो फिर वहां तीर्थकर का जन्म कैसे? यदि तीर्थकर की उत्पत्ति होने से उसे आर्य देश मानें तो फिर साढे २५ की गणना असंगत हो जाती है। यह पूर्वापर का विरोध सगति चाहता है। उत्तर में निवेदन है कि जहां पर तीर्थकर आदि महापुरुषों का जन्म होता है, वे देश आर्य हैं, यह सिद्धान्त युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत प्रतीत होता है। रही बात, साढे २५ देशों को गणना को, वह तो भगवान महावीर स्वामी के समय की अपेक्षा से की गई प्रतीत होती है। अतः पुण्ड्र देश को आर्य देश मानने में किसी प्रकार का विरोध दिखाई नही देता।

"अरहा"—शब्द का सामान्य रूप से अर्थ होता है अरिहन्त। राग-द्वेष आदि आत्म-शत्रुओं का हनन करनेवाले, महापुरुष अरिहन्त कहलाते है। प्रत्येक अरिहन्त तीर्थकर हो यह आवश्यक नही। तीर्थंकर का अरिहन्त होना तो सुनिश्चित है, पर अरिहन्त तीर्थकर हो भी सकता है और नही भी, अतः प्रस्तुत सूत्र में जो "अरहा" शब्द उपयुक्त है, वह सामान्य रूप से अरिहन्त का बोधक नहीं है, प्रत्युत इस शब्द से प्रस्तुत में तीर्थकर शब्द का ही ग्रहण होना चाहिये।

"ओहय जाव झियाइ—यहां पठित **जाव** पद **"मणसंकप्पे, करतल-पल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए"**—इन पदों का बोधक है। जिसके मनोगत संकल्प-विकल्प रह जाएं वह—**'उपहतमनः-संकल्पः'**, जिसका मुख हाथ पर स्थापित हो वह **'कर-तल पर्यस्तमुख'** और आर्तध्यान करनेवाले को **आर्तध्यानोपगत** कहते हैं।

"अप्फोडेइ, अप्फोडइत्ता वग्गइ, वग्गइत्ता तिवतिं छिंदइ, छिंदित्ता सीहनायं करेइ"—आस्फोटयति—हृष्ट-तुष्ट-हृदयः सन् बाहुमास्फालयति, आस्फोट्य—बाहुमास्फाल्य वल्गति—उच्चैः शब्दं करोति, वल्गित्वा त्रिपदीं छिनत्ति, त्रयाणां पदानां समाहारस्त्रिपदी, मल्लस्येव रंगभूमौ पदत्रयविन्यासविशेषतां छिनत्ति करोति, अथवा त्रिपदीं छिनत्ति पश्चात् पादत्रयमुल्लंघते समवसरणे पदत्रयं समुच्छलतीत्यर्थः। सिंहनादं सिंहस्य नादः गर्जनं करोति, कृत्वेति—अर्थात् इस पाठ से सूत्रकार ने चार बातें ध्वनित की

हैं। महाराज कृष्ण भविष्य में बारहवें तीर्थंकर बनने की शुभ वार्ता सुनकर आनन्द विभोर हो उठते हैं, अपनी अनेक विध चेष्टाओं द्वारा अपने आन्तरिक हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी वे चेष्टाएं चार भागों में विभाजित की गई हैं—१. भविष्य में तीर्थंकर जैसे महान आध्यात्मिक पद को प्राप्त करूंगा यह सुनकर श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अपनी भुजाएं फड़काते हैं, उनके अंगों में स्फुरणा आरम्भ हो जाती है। २. श्रीकृष्ण उच्च स्वर से प्रसन्नता प्रकट करनेवाले शब्दों का उच्चारण करते हैं। ३. पहलवानों की तरह भूमि पर तीन बार पैंतरे बदलते हैं या भगवान के समवसरण में तीन बार उछलते हैं। ४. शेर की तरह गर्जते हैं।

"**सिज्झिहिइ ५**" यहां दिए गए ५ के अंक से अभिमत पदों का निर्देश पदार्थ में कर दिया गया है।

"हट्ठतुट्ठ" यहां का बिंदु **चित्तमाणंदिए, पीइमणे, परमसोमणस्सिये हरिसवसविसप्पमाण-हियये**" इन पदों का ग्राहक है। भाव यह है कि महाराज श्रीकृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हुए। कहने लगे कि मैं धन्य हूं जो भविष्य में तीर्थंकर पद को प्राप्त करूंगा, इस कारण सन्तुष्ट चित्त होने से वे आनन्द विभोर हो उठते हैं, उनका हृदय तृप्त हो गया, उन्हें अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगा। हर्षातिरेक से उनका हृदय उछलने लगा।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि श्री कृष्ण सिंहासन पर बैठकर अपने राजसेवकों को बुलाते हैं। इसके अनन्तर क्या हुआ, अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—**गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए सिंघाडग जाव उवघोसे-माणे एवं वयह—**

एवं खलु देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए, सुरग्गि-दीवायणमूलए विणासं भविस्सइ। तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवतीए णएरीए राया वा, जुवराया वा, ईसरे, तलवरे, मांडबिये, कोडुंबिये, इब्भे, सेट्ठी वा, देवी वा, कुमारो वा, कुमारी वा, अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेति। पच्छातुरस्सवि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ, महया इड्ढि-सक्कारसमुदऐण य से निक्खमणं करेइ। दोच्चंपि तच्चंपि घोसणायं घोसेह, घोसइत्ता मम एवं माणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिय जाव पच्चपिणंति।

छाया—**एवं खलु देवानुप्रियाः! द्वारवत्याः नगर्याः सुराग्निद्वैपायनमूलकः विनाशो भवि-ष्यति। तस्माद् यो देवानुप्रियाः! इच्छति द्वारवत्यां नगर्यां राजा वा, युवराट् वा, ईश्वरः, तलवरः, माण्डविकः, कौटुम्बिकः इभ्यः श्रेष्ठी वा, देवी वा, कुमारो वा, कुमारी वा अर्हतोऽरिष्टनेमेः अन्तिके मुण्डो यावत् प्रव्रजितुम्, तं कृष्णो वासुदेवः विसर्जयति, पश्चादातुरस्यापि च तस्य यथाप्रवृत्तां वृत्तिमनु-**

जानाति, महता ऋद्धि-सत्कार-समुदयेन च तस्य निष्क्रमणं करोति, द्वितीयवारमपि, तृतीयवारमपि घोषणां घोषयत, घोषयित्वा ममैतत् प्रत्यर्पयत--निवेदयत। ततस्ते कौटुम्बिकाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति।

पदार्थ—**देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रियो !; **तुब्भे**—तुम; **गच्छह**—जाओ; **णं**—वाक्यसौन्दर्य के लिये; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी के; **सिंघाडगं**—सिंघाटक (त्रिकोण मार्ग); **जाव**—यावत्; **उवघोसेमाणे**—उद्घोषणा करते हुए; **एवं**—इस प्रकार; **वयह**—बोलो—

खलु—निश्चय ही; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रियो !; **नवजोयण**—नवयोजन चौड़ी; **भूयाए**—सुरपुरी के समान; **जाव**—यावत्; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी का; **विणासे**—विनाश; **सुरग्गिदीवायणमूलए**—सुरा अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण अथवा अग्निकुमार नामक सुरहप द्वैपायन ऋषि के कारण; **भविस्सइ**—होगा; **तं**—सो; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रियो !; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी में; **जो णं**—जो कोई; **राया**—राजा हो; **वा**—अथवा; **जुवराया**—युवराज हो (राजा का उत्तराधिकारी हो); **वा**—अथवा; **ईसरे**—ईश्वर—ऐश्वर्ययुक्त हो, **तलवरे**—तलवर—राजा ने सन्तुष्ट हो कर जिसे पट्टबध दिया हो। **माडंबिय**—माडम्बिक—मडम्ब (जो बस्ती भिन्न-भिन्न हो); **कोडुम्बिक**—कुटुम्बो का पालन करनेवाला; **इब्भ**—इभ्य हो (हाथी के बराबर जिस के पास धन हो); **सेट्ठी**—नगर का प्रधान व्यापारी हो; **वा**—अथवा; **देवी**—महारानी हो; **वा**—अथवा; **कुमारी**—कुमारी—लड़की हो; **कुमारो**—कुमार—लड़का हो, **वा**—अथवा, **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के; **अन्तिए**—पास; **मुंडे**—मुण्डित; **जाव**—यावत्; **पव्वइत्तए**—प्रव्रजित—दीक्षित होना; **इच्छइ**—चाहता हो, तो; **त**—उस को; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **विसज्जेइ**—आज्ञा देते है; **य**—समुच्चयार्थक है; **पच्छातुरस्स वि**—पीछे आतुर-रोगी-निराश्रित की भी; **से**—वे; **अहापवित्तं**—यथायोग्य; **वित्ति**—आजिविका का; **अणुजाणाइ**—प्रबन्ध करेंगे; **महता**—बड़े **इड्ढी**—ऋद्धि; **सक्कार**—सत्कार के; **समुदएणं**—समुदाय के साथ, **से**—उसका; **निक्खमणं**—निष्क्रमण अर्थात् दीक्षा-सत्कार, **करेइ**—करेंगे, **दोच्चंपि**—दो बार; **तच्चंपि**—तीन बार; **घोसणायं**—घोषणा को; **घोसेह**—उद्घोषणा करो, ; **घोसेइत्ता**—घोषणा करके; **मम**—मुझे, **एयं**—इसकी; **पच्चप्पिणह**—सूचना दो; **तए णं**—तदनन्तर, **ते कोडुंबिय**—वे सेवक पुरुष; **जाव**—यावत्—उद्घोषणा करके, उसकी; **पच्चप्पिणंति**—सूचना दे देते हैं।

मूलार्थ—कृष्ण वासुदेव अपने सेवकों को कहने लगे कि—हे भद्र पुरुषो ! आप लोग जायें और द्वारिका नगरी के त्रिकोणमार्ग त्रिपथ (जहां तीन मार्ग मिलते है) चत्वर (जहां पर चार से अधिक मार्गो का संगम हो) आदि सभी मार्गो पर जाकर लोगों को सूचना दें कि बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के हाथों से विनाश होगा, अतः द्वारिका नगरी का कोई भी निवासी राजा,युवराज,ईश्वर (ऐश्वर्य युक्त) तलवर (राजा सन्तुष्ट होकर जिन्हें पट्ट बंध देता है) माडम्बिक (मडम्ब—बिखरी हुई बस्ती का अधिनायक) इभ्य (जिस के

पास हाथी के बराबर धन हो) श्रेष्ठी (नगरी का प्रधान व्यापारी) देवी—रानी, कुमार अथवा कुमारी अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास मुण्डित एवं प्रव्रजित होना चाहें तो कृष्ण वासुदेव की ओर से उनको मुण्डित एवं प्रव्रजित होने की आज्ञा है, किसीके पीछे यदि कोई उसका सम्बन्धी आतुर–निराश्रित होगा, तो उसकी रक्षा तथा आजीविका का यथोचित प्रबंध किया जावेगा। प्रव्रजित होनेवाला कोई भी अपने पीछे की चिन्ता न करे। इसके अतिरिक्त प्रव्रजित होनेवाले व्यक्तियों का दीक्षा-संस्कार कृष्ण वासुदेव सम्मानपूर्वक बड़े समारोह के साथ स्वयं करायेंगे। इस प्रकार यह दो बार, तीन बार घोषणा करके मुझे उसकी सूचना दो।

कृष्ण वासुदेव का आदेश सुनकर राज-सेवकों ने द्वारिका नगरी के सभी प्रदेशों में महाराज श्रीकृष्ण का आदेश घोषणा द्वारा पहुंचा दिया और वापिस आकर उसकी सूचना वासुदेव श्रीकृष्ण को दे दी।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में श्रीकृष्ण वासुदेव की धार्मिकश्रद्धा की महानता का उल्लेख किया गया है। श्रीकृष्ण ने जबसे भगवान अरिष्टनेमि द्वारा द्वारिका-दाह की बात सुनी है तभी से उनका मन विरक्त हो गया। उनकी इच्छा थी कि जब द्वारिका ने एक दिन जल ही जाना है तो द्वारिका-निवासी क्यों न संयम-साधना में लग कर अपने जीवन को सफल बनाएं? इसी विचार से उन्होंने अपने राज-सेवकों द्वारा द्वारिका-निवासियों को भावी अनिष्ट की सूचना देते हुए उनको आत्म-कल्याण सम्पादन के लिये कल्याणकारी प्रेरणा प्रदान की श्रीकृष्ण ने द्वारिका-निवासियों को यहां तक कहलवा दिया कि किसी व्यक्ति को पीछे की कोई चिंता नहीं रखनी चाहिये। दीक्षित व्यक्ति के पीछे जो कोई बाल, वृद्ध, रोगी होगा उसकी देख-रेख की सब व्यवस्था राज्य की ओर से होगी। किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। श्रीकृष्ण ने यह सूचना एक बार नहीं, दो बार नहीं, बल्कि तीन-तीन बार देने का आदेश राजसेवकों को दिया था। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने सेवकों को यह भी आज्ञा दी कि यह सूचना द्वारिका के सभी प्रदेशों में दी जाए। संघाटक (त्रिकोणमार्ग), त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलते हैं), चतुष्क (जहां चार मार्ग एकत्रित होते हैं), चत्वर (जहां चार से अधिक मार्ग मिलते हैं), महापथ (राजमार्ग) आदि किसी भी मार्ग को छोड़ा न जाये। सभी मार्गों पर यह सूचना प्रसारित कर दी जाए, ताकि द्वारिका का कोई व्यक्ति भावी अनिष्ट से अज्ञात रह कर आत्म-कल्याण की पावन-सम्पदा से वञ्चित न रह जाये।

कुछ विचारक कहते हैं कि भगवान अरिष्टनेमी को द्वारिका के विनाश का कारण श्रीकृष्ण को नहीं बतलाना चाहिए था। क्यों नहीं बतलाना चाहिये था? उस प्रश्न का वे उत्तर देते हैं कि द्वारिका-दाह की बात जान कर लोगों को बहुत दुःख हुआ था।

वस्तुतः यहां दुःखवाली कोई बात नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्ण के मुख से द्वारिका-दाह की बात सुन कर भयभीत द्वारिका-निवासियों ने सुरा-पान करना छोड़ दिया और हजारों व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में दीक्षित हो कर संयम-साधना के महापथ पर चलते हुए जीवन को कल्याणकारी बना पाए थे। अतः यह जानकारी समाज और राष्ट्र तीनों के लिये वरदान बन गई थी।

"सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा"—इस वाक्य में पठित **जाव** पद **तिय-चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु-महया सद्देणं"** इन पदों का बोधक है। इन का अर्थ है—**त्रिक**—जहां तीन रास्ते मिलते हों। **चतुष्क**—जहां चार रास्ते मिलते हों। **चत्वर**—जहां चार से अधिक रास्ते मिलते हों। **महापथ**—राजमार्ग—जहां बहुत से मनुष्यों का यातायात हो और **पथ**—साधारण मार्ग, इन पर 'महान' शब्द से घोषणा करते हुए।

"नव-जोयण जाव भूयाए"—इस वाक्य के **जाव** पद से गृहीत पदों का संकेत पीछे पृष्ठ २४-२५ पर किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में पठित राजा आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—किसी देश के शासक को राजा, राजा के उत्तराधिकारी को युवराज और ऐश्वर्यवाले को ईश्वर कहते हैं। राजा सन्तुष्ट हो कर जिसे पट्टबन्ध देता है, वे राजा के समान पट्टबन्ध से विभूषित लोग तलवर कहलाते है अथवा नगररक्षक कोतवाल को तलवर कहते हैं। जो बस्ती भिन्न-भिन्न स्थानों पर बसी हो उसे मडंब और उसके अधिकारी को माडंबिक कहा जाता है। जो कुटुम्ब का पालन-पोषण करते हैं या जिन के द्वारा बहुत से कुटुम्बों का पालन होता है, उन्हें कौटुम्बिक कहा जाता है। इभ हाथी का नाम है, हाथी के समान धन या हाथी आदि जिस के पास हों वह इभ्य कहलाता है, जो नगर का प्रधान व्यापारी हो वह श्रेष्ठी। राजमहिषी, पट्टरानी, शील एवं सदाचार से युक्त स्त्री देवी, युवावस्था या उस से पहले की अवस्था का पुरुष राजकुमार, अविवाहित लड़का कुमार तथा १० से १२ वर्ष तक की अविवाहिता कन्या, कुमारी कहलाती है।

मुंडे जाव पव्वइत्तए—यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित पदों की सूचना पीछे पृष्ठों पर दी जा चुकी है। **अहापवित्तं—यथाप्रवृत्तं**, का अर्थ है यथायोग्य, यथोचित।

"इड्ढी-सक्कार-समुदएण—" ऋद्धया वस्त्रसुवर्णादिसम्पदा, सत्कारः पूजाविशेषस्तस्य समुदायः। ऋद्धि शब्द वस्त्र सुवर्ण आदि सम्पत्ति का, सत्कार पूजाविशेष एवं आदर विशेष का तथा समुदाय शब्द समूह का बोधक है। भाव यह है कि महाराज कृष्ण ने लोगों को सूचना दी है कि जो लोग दीक्षित होंगे उन के दीक्षा-संस्कार में वस्त्र, सुवर्ण आदि अपेक्षित पदार्थों की सत्कार सहित पूर्ति की जाएगी। दूसरे शब्दों में पूरे समारोह के साथ दीक्षा संस्कार सम्पन्न किया जायेगा।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार द्वारिका नगरी में घोषणा कर दी गई। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तते णं सा पउमावई देवी अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, से जहेतं तुब्भे वदह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि । तते णं अहं देवाणुप्पियाणां अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि ।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

तते णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवती णयरी जेणेवसते गिहे तेणेव, उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरूहइ, पच्चोरूहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल कट्टु एवं वयासी-

इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाता समाणी अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि । अहासुहं० ।

छाया—ततः सा पद्मावती देवी अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्टा-तुष्टा यावत् हृदया, अर्हन्तमरिष्टनेमिं वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवमवादीत्—

श्रद्दधे भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं, तद् यथा यूयं वदथ, यन्नवरं देवानुप्रिय ! कृष्णं वासुदेव-मापृच्छामि । ततोऽहं देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डिता यावत् प्रव्रजामि ।

'यथा सुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबंधं कुरुष्व ।

ततः सा पद्मावती धार्मिकं यानप्रवरमारोहति, आरुह्य च यत्रैव द्वारिका नगरी, यत्रैव स्वकं गृहं, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकाद् यानात् प्रत्यारोहति, प्रत्यारुह्य, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपा-गच्छति, करतल० कृत्वा एवमवादीत्—

इच्छामि देवानुप्रिय ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तिके मुण्डिता यावत् प्रव्रजामि । यथा सुखम्० ।

पदार्थ—**तते णं**—उसके अनन्तर; **सा पउमावई देवी**—वह पद्मावती देवी; **अरहतो अरिट्ठ-नेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के; **अंतिए**—पास; **धम्मं**—धर्म-कथा; **सोच्चा**—सुनकर और; **निसम्म**—उस पर विचार करके; **हट्ठ-तुट्ठ०**—आनन्द विभोर हो उठी; **जाव**—यावत्; **हियया**—प्रसन्न हृदयवाली होकर; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **वंदति णमंसति**—वन्दना-नमस्कार करती है; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगी—

भंते !—हे भगवन् !; **णिग्गंथं पावयणं**—निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् आप की वाणी पर; **सद्दहामि णं**—मैं श्रद्धा रखती हूं; **से**—वह; **जहेतं**—जैसे; **तुब्भे**—आप; **वदह**—प्रतिपादन करते हैं;

वह सब सत्य है; **जं**—जो; **नवरं**—इतना विशेष है कि; **देवाणुप्पिया**—देवानुप्रिय !; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **आपुच्छामि**—पूछती हूं; **तते णं**—उसके पश्चात्; **ग्रहं**—मैं; **देवाणुप्पियाणं**—आपश्री के; **अंतिए**—पास; **मुंडा**—मुण्डित; **जाव**—यावत्; **पव्वयामि**—दीक्षा ग्रहण करूंगी। भगवान बोले—

देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिये; **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो; **मा पडिबंधं करेह**—विलंब मत करो !

तते णं—उसके पश्चात्; **सा पउमावई देवी**—वह पद्मावती देवी; **धम्मियं**—धार्मिक, जिसका प्रयोग केवल धार्मिक कार्य में ही होता हो; **जाणप्पवरं**—उस प्रधान रथ पर; **दुरूहइ**—चढ़ती है; **दुरूहित्ता**—और रथ पर चढ़ कर; **जेणेव**—जहां पर; **बारवती णयरी**—द्वारिका नगरी थी; **सते गिहे**—अपना घर था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—जाती है; **उवागच्छित्ता**—और जाकर; **धम्मियाओ**—धार्मिक; **जाणाओ**—रथ से; **पच्चोरुहइ**—उतरती है; **पच्चोरुहित्ता**—और उतर कर; **जेणेव**—जहां पर; **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आती है; **उवागच्छित्ता**—आकर; **करयल कट्टु**—दोनों हाथ जोड़ कर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगी; **इच्छामि**—मैं चाहती हूं कि; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !; **तुब्भेहिं**—आपके द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त हो जाने पर; **अरहतो अरिट्ठनेमिस्स**—अरिहन्त अरिष्टनेमि के; **अंतिए**—पास; **मुंडा**—मुण्डित; **जाव**—यावत्; **पव्वयामि**—दीक्षा ग्रहण कर लूं (कृष्ण वासुदेव बोले—) **अहासुहं**—जैसे तुम्हें सुख हो।

मूलार्थ—कृष्ण वासुदेव के चले जाने के अनन्तर महारानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि के पास धर्म-प्रवचन सुनकर उस पर चिन्तन करने के अनन्तर बड़ी प्रसन्न हुई। प्रसन्न हृदय हो वह अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में वंदना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगी—

भगवन् ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् आपकी वाणी पर श्रद्धा है, आपके कथन पर पूर्ण आस्था है, केवल आस्था ही नहीं, भगवन् ! मैं आपके चरणों में दीक्षित होना चाहती हूं, पर यह सब कुछ कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेने के अनन्तर करना चाहती हूं।

महारानी पद्मावती का श्रद्धापूर्ण निवेदन सुनकर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि उसे कहने लगे—देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर एक बात का ध्यान रखना, शुभ कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए।

भगवान अरिष्टनेमि की यह आज्ञा सुन कर महारानी पद्मावती वहाँ से चल दी अपने धार्मिक—धर्म-स्थानों पर जाने के लिये ही उपयोग में आनेवाले प्रधान रथ पर सवार होकर द्वारिका नगरी में जहाँ अपना घर था, वहां आई और रथ से उतर

कर कृष्ण वासुदेव के पास पहुंची और उनके चरणों में दोनों हाथ जोड़ कर उसने निवेदन किया—

देवानुप्रिय ! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मेरी इच्छा है कि मैं वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर दीक्षित हो जाऊं ?

महारानी पद्मावती का निवेदन सुनकर कृष्ण वासुदेव कहने लगे—देवानुप्रिये ! जिस तरह तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो, वैसा करो॰! मेरी ओर से तुम्हें दीक्षित होने की आज्ञा है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में, भगवान के प्रवचनों से प्रभावित महारानी पद्मावती देवी का अपने पतिदेव कृष्ण वासुदेव से महामहिम भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में दीक्षित होने के लिये आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना करना तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उसकी वैराग्य-भावना का स्वागत करते हुए उसे दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करना, इन दो बातों का उल्लेख किया गया है।

द्वारिका-वासियों को द्वारिका-दाह की सूचना दी जा चुकी है। साथ ही उन्हें यह भी कह दिया गया था कि जो व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में दीक्षित होना चाहे, वह सहर्ष दीक्षा अंगीकार कर सकता है, परन्तु कहना जितना आसान होता है करना उतना ही कठिन हुआ करता है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति सामान्य जन-जीवन में अधिकतर देखी जाती है। उपदेश को स्वयं अपने जीवन में उतारनेवाले विरले ही होते हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण जो कहते थे वह करते भी थे, अतः उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को भगवान अरिष्टनेमी के चरणों में दीक्षित होने की सहर्ष आज्ञा देदी, इससे श्रीकृष्ण की धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा व्यक्त होने के साथ-साथ अपने और पराए के भेद के प्रति उपरामता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। धर्म के महापथ पर चलने के लिये कोई भी तैयार हो कृष्ण महाराज उसी का स्वागत करते थे और पूर्णप्रसन्नता के साथ उसे पूर्ण अभिलषित सहयोग देते थे। यही कृष्ण वासुदेव की महत्ता और लोक-प्रियता का कारण है।

"हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया"—यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित पदों का संकेत पीछे पृष्ठ १०० पर कर दिया गया है।

"णिग्गंथं पावयणं॰" यहां दिया गया बिंदु—**"पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, एवं रोएमि णं भंते ! णिग्गथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! णिग्गथं पावयणं, एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते, पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छितपडिच्छियमेयं भंते !** इन पदों का बोधक है। इन का अर्थ है—

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर प्रीति रखती हूं, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे अच्छा लगता है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता हूं, हे भगवन् ! जैसा आपने

कहा है वैसा ही है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन "जैसी वस्तु है" उसी के अनुसार है। हे भगवन् ! आपका प्रवचन सत्य है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन सन्देह-रहित है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन इष्ट है, हे भगवन् ! आपका प्रवचन बारम्बार इष्ट है, हे भगवन् ! आप जो कहते हैं वह इष्ट तथा अत्यधिक इष्ट है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा गया है कि श्रीकृष्ण ने महारानी पद्मावती देवी को दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। उसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस सम्बन्ध मे वर्णन करते हुए कहते हैं :—

मूल—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते जाव पच्चप्पिणंति । तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरूहेइ, अट्ठसतेणं सोवण्णकलसेणं जाव महानिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिवियं रयावेइ, बारवतीए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता, जेणेव रेवतए पव्वते, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव गच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ, पउमावई देवी सीताओ पच्चोरुहइ । तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पुरओ कट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करित्ता वदंइ, णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी, इट्ठा-कंता-पिया-मणुन्ना-मणामा-अभिरामा जाव किमंग पुण-पासणायाए ? तन्नं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणी-भिक्खं दलयामि, पडिच्छतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणी-भिक्खं । अहा सुहं ०।

छाया—ततः सः कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—

क्षिप्रमेव देवानुप्रियाः ! पद्मावत्यै महार्थ–महार्हं निष्क्रमणाभिषेकमुपस्थापयत, उपस्थाप्य एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत ।

ततस्ते यावद् (निष्क्रमणाभिषेकं समुपस्थाप्य) प्रत्यर्पयन्ति । ततः सः कृष्णो वासुदेवः पद्मावतीं देवीं पट्टकमारोहयति, अष्टशतैः सौवर्णकलशैः यावत् महानिष्क्रमणाभिषेकमभिषिञ्चति, अभिषिच्य, सर्वालंकारविभूषितां करोति, कृत्वा पुरुष-सहस्रवाह्यां शिविकां रचयति, रचयित्वा द्वारवत्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव रैवतकः पर्वतः यत्रैव सहस्राम्रवनमुद्यानं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, शिविकां स्थापयति, पद्मावती देवी शिविकायाः प्रत्यारोहति । ततः स कृष्णो वासुदेवः पद्मावतीं देवीं पुरतः कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति, वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवादीत्—

एषा भदन्त ! मम अग्रमहिषी पद्मावती देवी इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा, अभिरामा, यावत् किमंग पुनः द्रष्टुम् ? तन्निश्चयमहं देवानुप्रिय ! शिष्याभिक्षां ददामि, प्रतीच्छन्तु देवानुप्रियाः ! शिष्याभिक्षां । यथासुखम्० ।

पदार्थ—**तए णं**—उसके अनन्तर; **से**—वे; **कण्हे-वासुदेवे**—कृष्ण वासुदेव; **कोडुंबियपुरिसे**—राजसेवकों को; **सद्दावेइ**—बुलाते है; **सद्दावित्ता**—और बुलाकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **देवाणुप्पिया** !—हे देवानुप्रियो ! **खिप्पामेव**—शीघ्र ही; **पउमावइए**—पद्मावती के लिये; **महत्थं**—विशाल; **निक्खमणाभिसेयं**—निष्क्रमणाभिषेक—दीक्षामहोत्सव की; **उवट्ठवेह**—तैय्यारी करो; **उवट्ठवित्ता**—तैयारी करके और; **एयमाणत्तियं**—इस आज्ञा का पालन करके; **पच्चप्पिणेह**—मुझे सूचित करो ।

तते णं—उसके अनन्तर; **ते**—वे दास पुरुष; **जाव**—यावत् महाराज कृष्ण की आज्ञा का पालन करके उसकी उन्हें; **पच्चप्पिणंति**—सूचना दे देते हैं; **तए णं**—उसके अनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वह कृष्ण वासुदेव; **पउमावइं देविं**—पद्मावती देवी को; **पट्टयं**—स्नान पाट पर **दुरूहइ**—विठलाते है; **अट्ठसतेणं**—एक सौ आठ; **सोवण्णकलसेणं**—सोने के घड़ों से; **जाव**—यावत् **महानिक्खमणाभिसेएणं**—महानिष्क्रमणाभिषेक—दीक्षा महोत्सव सम्बन्धी स्नान; **अभिसिंचइ**—अभिषेक कराते है, **अभिसिंचित्ता**—स्नान करा कर; **सव्वालंकारविभूसियं**—सब प्रकार के अलंकारों—आभूषणों से आभूषित—शृङ्गारित; **करेइ**—करते हैं; **करित्ता**—करके; **पुरिससहस्सवाहिणि**—पुरुष सहस्र-वाहिनी नामवाली; **सिवियं**—शिविका—पालकी में; **रयावेइ**—बिठलाते है; **बारवतीए णयरीए**—द्वारिका नगरी के; **मज्झंमज्झेणं**—बीचों बीच; **णिग्गच्छइ**—निकलते हैं; **णिग्गच्छित्ता**—निकलकर, **जेणेव**—जहां पर; **रेवतए पव्वए**—रैवतक पर्वत था; **जेणेव**—जहां पर; **सहसंबवणे**—सहसाम्र वन नामक; **उज्जाणे**—बाग था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते हैं; **उवागच्छित्ता**—आकर; **सीयं**—पालकी को; **ठवेति**—रखवा देते हैं. **पउमावई देवी**—पद्मावती देवी; **सीताओ**—पालकी से; **पच्चोरूहइ**—उतरती है; **तए णं**—उसके अनन्तर; **से कण्हे वासुदेवे**—वे कृष्ण वासुदेव; **पउमावइं देविं**—पद्मावती देवी को, **पुरओ**—अपने आगे; **कट्टु**—करके; **जेणेव**—जहां पर; **अरहा**—अरिहन्त वीतराग; **अरिट्ठनेमी**—भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आते हैं; **उवागच्छित्ता**—आकर; **अरहं**—अरिहन्त; **अरिट्ठनेमिं**—भगवान अरिष्टनेमि को; **तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं**—तीन बार दक्षिण की ओर से प्रारंभ की गई प्रदक्षिणा-परिक्रमा; **करेइ**—करते हैं, **करित्ता**—करके; **वंदइ णमंसइ**—वन्दना एवं नमस्कार करते हैं; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वंदना नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार निवेदन करने लगे—

भंते !—हे भगवन् !; **एस णं**—यह (पद्मावती की ओर संकेत कर के); **अग्गमहिसी**—अग्र-महिषी—पट्टरानी; **पउमावई नामं देवी**—पद्मावती देवी नाम वाली; **इट्ठा**—इष्ट है, इच्छित है; **कंता**—कान्त है, सुन्दर है, **पिया**—प्रिया है, प्रीति की उत्पादिका है; **मणुन्ना**—मनोज्ञ है; **मणामा**—मनोऽमा है, (जिस की सुन्दरता को बारंबार स्मरण किया जाय) ऐसी है, **अभिरामा**—अभिरामा

है, जाव—यावत् उदुम्बर पुष्प की तरह इसका तो सुनना भो कठिन है; **किमंग पुण पासणयाए**—फिर देखना तो बड़ा ही दुर्लभ है; **तण्णं**—उसे ही; **अहं**—मैं; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !; **सिस्सिणीभिक्खं**—शिष्या के रूप में भिक्षा; **दलयामि**—देता हूँ; **देवाणुप्पिया !**—आपश्री; **सिस्सिणीभिक्खं**—शिष्या रूप भिक्षा को; **पडिच्छंतु णं**—स्वीकार करें। कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर भगवान बोले; **अहासुहं**—हे कृष्ण ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो अर्थात् हम इस भिक्षा को स्वीकार करते हैं।

मूलार्थ—महारानी पद्मावती को दीक्षित हो जाने की आज्ञा देने के अनन्तर वासुदेव कृष्ण राजसेवकों को बुला कर कहने लगे—

भद्र पुरुषो ! आप लोग शीघ्र ही पद्मावती के विशाल दीक्षामहोत्सव के लिये अपेक्षित सब सामग्री एकत्रित करके यावत् उसकी सूचना मुझे दें। दीक्षामहोत्सव की पूरी तैयारी हो जाने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव पद्मावती को एक स्नान-पाट (जिस पट्टे पर बैठ कर स्नान किया जाता है) पर बिठलाते हैं और एक सौ आठ सोने के घड़ों से उस को स्नान कराते हैं। अन्य अनेक प्रकारों से दीक्षा-स्नान हो जाने के अनन्तर उन्होंने उसे सब प्रकार के आभूषणों से आभूषित किया, सहस्रपुरुष-वाहिनी नामक पालिका पर बिठलाया तथा द्वारिका नगरी के मध्य में से निकल कर रैवतक पर्वत पर जहां सहस्राम्र वन नामक उद्यान था वहां आए, पालकी को रख दिया, तब पद्मावती देवी उससे नीचे उतरी।

कृष्ण वासुदेव पद्मावती देवी को आगे करके जहाँ वीतराग भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहां पर आए। आकर उन्होंने दक्षिण ओर से आरम्भ करके तीन बार भगवान की प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया, अन्त में वे भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में निवेदन करने लगे—

भगवन् ! यह पद्मावती नाम की देवी मेरी पट्टरानी है। मेरे लिये यह इष्ट-इच्छित है, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, सुन्दर, मणाम, संस्मरणीय तथा अभिराम है। कहां तक निवेदन करूं ? उदुम्बर पुष्प के समान इसका सुनना भी दुर्लभ है देखने की तो बात ही कहां ? भगवन् ! उसी पद्मावती देवी की शिष्या के रूप में आपको भिक्षा देने लगा हूं। आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें।

कृष्ण वासुदेव के द्वारा पद्मावती देवी की शिष्या के रूप में भिक्षा देने की बात सुन कर वीतराग भगवान अरिष्टनेमि बोले—

देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो अर्थात् यदि तुम्हारी आत्मा को इसी तरह शान्ति है तो तुम्हारे द्वारा दी गई भिक्षा मुझे स्वीकार है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी श्रीमती पद्मावती देवी के दीक्षा समारोह का उल्लेख किया गया है। दीक्षा एक संस्कार विशेष है। किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये आत्म-समर्पण करना ही दीक्षा है, इसीलिये इसके उपलक्ष्य में किया गया उत्सव बड़े हर्ष से मनाया जाता है। इसमें विवाह की भांति आनन्द की सर्वतोमुखी लहर दौड़ जाती है, अन्तर केवल इतना ही होता है कि विवाह में सांसारिक जीवन की प्रधानता होती है, जबकि इसमें आत्मकल्याण एवं परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने की मंगलमय भावना प्रधान रहा करती है। यही कारण है कि इस में सभी लोग बिना भेदभाव के सम्मिलित होकर पुण्योपार्जन करते हैं और यथाशक्ति अपना-अपना सहयोग देकर इसको सफल बनाने का प्रयास करते हैं।

दीक्षा-समारोह किस तरह किया जाना चाहिए ? प्रस्तुत सूत्र में इसका संक्षिप्त, किन्तु सुन्दर निर्देश किया गया है। दीक्षा-समारोह में सर्वप्रथम दीक्षार्थी को एक सुन्दर पाट पर बिठलाकर स्नान कराया जाता है, स्नान में सैंकड़ों सोने-चांदी के कलशों का प्रयोग होता है। दीक्षानिमित्त कराये गये स्नान के अनन्तर दीक्षार्थी को सब प्रकार के आभूषणों से आभूषित किया जाता है। दीक्षा-गुरु के निकट जाने पर दीक्षार्थी पालकी से उतरकर उन्हें वन्दन-नमस्कार करता है, फिर ईशानकोण में जाकर अपने हाथों से आभूषणों को उतारकर अपने केशों की लोच करता है। साधुवेष धारण करने के अनन्तर गुरुदेव से दीक्षामन्त्र पढ़कर साधु-जीवन अंगीकार करता है। इस तरह इस सूत्र तथा अग्रिम सूत्र में दीक्षा-विधिका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है।

महारानी पद्मावती का दीक्षा-समारोह इसी विधि से सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुत सूत्र के कठिन पदों की अर्थ-विचारणा इस प्रकार है—

"महत्थं निक्खमणाभिसेयं"—इस वाक्य में पठित **महत्थं** शब्द विशाल का तथा **निक्खमणा-भिसेयं** शब्द दीक्षा महोत्सव का बोधक है।

"सोवण्णकलस जाव महानिक्खमणाभिसेएणं"—इस वाक्य में पठित **जाव** पद अन्य सूत्रों में दीक्षा-स्नान को लेकर जो वर्णन किया गया है, उसको ओर संकेत करता है।

"सव्वालंकार-विभूसियं"—सर्वालंकारैः विभूषिताम्—अलंकृताम्—अर्थात् सर्वप्रकार के अलं-कारों—आभूषणों से विभूषित।

'पुरिससहस्सवाहिणिं'—सहस्रपुरुषैः उह्यमानाम्। इस पद के दो अर्थ किये जाते हैं—१. पुरुष-सहस्रवाहिनी नाम की एक पालकी विशेष। २. वह पालकी जिसको एक हजार पुरुषों द्वारा उठाया जावे। प्रथम अर्थ में पालकी को उठाने के लिये हजार पुरुष ही आवश्यक नहीं है, दूसरे अर्थ में हजार पुरुष आवश्यक हैं।

"इट्ठा, कंता, पिया, मणुन्ना, मणामा, अभिरामा"—इन पदों का अर्थ भेद इस प्रकार है—जिसे चाहा जाये उसे **इष्टा** कहते हैं। किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी हो सकती है, इष्टता के निवारणार्थ कान्त पद दिया गया है। जो देखने में कमनीय है, सुन्दर है, वह **कांत** है। सुन्दर होने पर भी कर्म के प्रभाव से कोई दूसरे में प्रीति उत्पन्न करने में असमर्थ रह सकता है, इस बात का परिहार करने के लिये प्रिय पद दिया गया है। जिस में प्रेमोत्पादन करने की क्षमता है, वह **प्रिय** है। कुछ लोग व्यावहारिक तौर पर प्रेम उत्पन्न करते हैं, पर उनमें वास्तविकता नहीं होती, इस आशंका को दूर करने के लिये मनोज्ञ शब्द का प्रयोग किया है, जिसकी सुंदरता, प्रियता, व्यावहारिक न हो, आन्तरिक हो, उसे **मनोज्ञ** कहते हैं। किसी की मनोज्ञता तात्कालिक भी हो सकती है, महारानी पद्मावती के विषय में यह न समझ लिया जाए, इसलिए कृष्ण महाराज ने उसे मनोऽमा कहा, जिसकी सुन्दरता का बार-बार स्मरण किया जाये, उसे **मनोऽमा** कहते हैं। मनोऽमा शब्द से संसूचित अर्थ की अधिक पुष्टि करने के लिये अभिराम पद का प्रयोग किया गया है। जो सदा हृदय में रमण करती रहे, वह **अभिराम** है।

"अभिरामा जाव किमंग पुण"—इस वाक्य में पठित **जाव** पद—**जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फं पिव दुल्लभा सवणयाए"**—**जीवितोछ्वासा प्राणसमाना, हृदयानन्दजनिका, उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभा श्रवणतायै**, इन पदों का परिचायक है। इन का अर्थ है—

१. **जीवित-उच्छ्वासा**—जीवन में श्वासोच्छ्वास के समान प्रिय।

२. **हृदयानन्दजनिका**—हृदय में आनन्द उत्पन्न करनेवाली।

३. उदुम्बर पुष्प की तरह जिसका सुनना भी दुर्लभ हो, उदुम्बर पुष्प का अर्थ है गूलर का फूल। "गूलर का फूल है" यह सुनना भी दुर्लभ है, क्योंकि गूलर का फूल होता ही नहीं है। पद्मावती के पास भी वह सौन्दर्य था जो अन्यत्र हो ही नहीं सकता है।

श्री कृष्ण भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में यह व्यक्त करना चाहते हैं कि पद्मावती जैसी सुन्दर एवं सद्गुणों से युक्त पत्नी का पाना अत्यन्त कठिन है, फिर भी मैं पद्मावती की आप को भिक्षा देता हूँ, उसे व्यर्थ समझ कर दीक्षा नहीं दिलवाई जा रही है, यह दीक्षाकार्य तो केवल उसकी धर्म-भावना की पूर्ति के लिये किया जा रहा है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि श्री कृष्ण द्वारा दी गई शिष्या-भिक्षा को भगवान अरिष्टनेमि ने स्वीकार कर लिया। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं सा पउमावई उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता

जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते जाव धम्ममाइक्खितं। तते णं अरहा अरिट्ठनेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मुंडा० सयं०, जक्खिणीते अज्जाते सिस्सिणिं दलयति। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयमेव पव्वावइ जाव संजमियव्वं।

तए णं सा पउमावई जाव संजमइ। तए णं सा पउमावई अज्जा जाता ईरिया-समिया जाव गुत्तबंभयारिणी। तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीते अज्जाते अंतिए-समाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं चउत्थ छट्ठ० विविह तव० भावे-माणा विहरइ। तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा५।

छाया—ततः सा पद्मावती उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागमपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेवाभरणालंकाराणि उन्मुञ्चति, उन्मोच्य स्वयमेव पंचमौष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तमरिष्टनेमिं वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य च एवमवादीत्—

आदीप्तो भवन्त ! यावद् धर्ममाख्यातम्। ततोऽर्हन् अरिष्टनेमिः पद्मावतीं देवीं स्वयमेव प्रव्राजयति, स्वयमेव मुण्डापयति, स्वयमेव यक्षिण्यै आर्यायै शिष्यां ददाति। ततः सा यक्षिणी आर्या पद्मावतीं देवीं स्वयं प्रव्राजयति यावद् संयमितव्यम्। ततः सा पद्मावती यावत् संयमयति। ततः सा पद्मावती आर्या जाता, ईर्यासमिता यावद् गुप्त ब्रह्मचारिणी। ततः सा पद्मावती आर्या यक्षिण्याः आर्यायाः अन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते। बहुभिः चतुर्थ-षष्ठ० विविध तपः कर्मभिरात्मानं भावयन् विहरति।

ततः सा पद्मावती आर्या बहुप्रतिपूर्णानि विंशति वर्षाणि श्रामण्यं पर्यायं पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयति, जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्वा यस्यार्थं क्रियते नग्नभावः यावत् तमर्थमाराधयति, चरमोच्छ्वासैः सिद्धा ५।

पदार्थ—तए णं—उसके अनन्तर; सा पउमावई—वह पद्मावती देवी; उत्तरपुरच्छिमं—उत्तर पश्चिम ईशानकोण के; दिसीभागं—प्रदेश में; अवक्कमति—जाती है; अवक्कमित्ता—जा करके; सयमेव—स्वयं ही; आभरणालंकारं—छोटे-बड़े सभी आभूषणों को; ओमुयइ—उतारती है; ओमुइत्ता—उतारकर; सयमेव—स्वयं ही; पंचमुट्ठियं—पञ्च मुष्टिक, पञ्च मुष्टियों से पूर्ण होने वाला; लोयं—लोच; करेइ—करती है, करित्ता—लोच करके; जेणेव—जहां पर; अरहा—अरिहन्त;

अरिट्ठनेमी—अरिष्टनेमि थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आती है; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **अरहं अरिट्ठनेमिं**—अरिहन्त अरिष्टनेमि को; **वंदइ णमंसइ**—वन्दना-नमस्कार करती है, **वंदित्ता, नमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगी—भगवन् !;

आलित्ते—प्रादीप्त—यह संसार जरा-मरण आदि दुःख रूप अग्नि से जल रहा है; **जाव**—यावत्—मैं आपसे दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूं। आप मुझे; **धम्ममाइक्खित्तं**—धर्म का उपदेश सुनायें; **तए णं**—उसके अनतर; **अरहा अरिट्ठनेमी**—भगवान अरिहन्त अरिष्टनेमि; **पउमावइं देविं**—पद्मावती देवी को; **सयमेव**—स्वयं ही; **पव्वावेइ**—प्रव्रजित—दीक्षित करते हैं; **सयमेव**—स्वयं ही; **मुंडा०**—भाव से मुण्डित करते हैं; **सयमेव**—स्वयं ही; **अज्जाते जक्खिणीते**—यक्षिणी आर्या को; **सिस्सिणि**—शिष्या रूप से; **दलयति**—देते हैं; **तए णं**—उसके अनन्तर; **सा जक्खिणी अज्जा**—वह यक्षिणी आर्या **पउमावइं देविं**—पद्मावती देवी को; **सयमेव**—स्वयं ही; **पव्वावेइ**—प्रव्रजित—केशलुञ्चन रूप दीक्षा देती है; **जाव**—यावत्—उसे समझाती है कि; **संजमियव्वं**—संयम-यात्रा में पूर्णरूपेण प्रयत्नशील रहना चाहिए।

तए णं—उसके अनन्तर, **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी; **जाव**—यावत्; **संजमइ**—संयम साधना में यत्न करती है; **तए णं**—उसके बाद; **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी; **अज्जा**—आर्या, महासती; **जाता**—हो गई; **ईरियासमिया**—ईर्यासमिति का पालन करनेवाली; **जाव**—यावत्; **गुत्ता**—जितेन्द्रिय एवं; **बंभचारिणी**—ब्रह्मचारिणी बन गई; **तए णं**—उसके पश्चात्; **सा पउमावई**—वह पद्मावती देवी; **अज्जा**—आर्या, साध्वी; **जक्खिणीते अज्जाते**—यक्षिणी आर्या के, **अंतिए**—पास; **सामाइमाइयाइं**—सामायिक आदि; **एक्कारस**—ग्यारह; **अंगाइं**—अगों का; **अहिज्जइ**—अध्ययन करती है; **बहूहिं**—अनेक; **चउत्थछट्ठ०**—व्रत-बेले आदि; **विविह तव**—अनेक प्रकार के तप से अपनी आत्मा को; **भावेमाणा**—भावित करती हुई; **विहरइ**—विचरण करती है; **तए णं**—उसके अनन्तर; **सा पउमावइ अज्जा**—वह पद्मावती आर्या; **बहुपडिपुण्णाइं**—पूरे; **बीसं वासाइं**—बीस वर्ष; **सामण्णपरियागं**—साधुवृत्ति—श्रामण्यपर्याय; **पाउणित्ता**—पालकर; **मासियाए**—मासिक—एक मास की; **संलेहणाए**—संलेखना, अनशन व्रत से शरीर-त्याग के अनुष्ठान द्वारा; **अप्पाणं**—आत्मा को; **झोसेइ**—आराधित करती है; **झोसेइत्ता**—आराधित करके; **सट्ठिं भत्ताइं**—साठ भोजनों को; **अणसणाए**—अनशन—व्रत द्वारा; **छेदेइ**—छोड़ती है; **छेदित्ता**—छोड़कर; **जस्सट्ठाये**—जिस उद्देश्य के लिये; **नग्गभावे**—नग्नभाव-साधुजीवन अंगीकार किया था; **जाव**—यावत्; **तमट्ठं**—उस उद्देश्य को; **आराहेइ**—सिद्ध कर लेती है; **चरिमुस्सासेहिं**—अन्तिम श्वासों द्वारा; **सिद्धा**—सिद्ध गति को प्राप्त होती है। "५" इस अंक से, केवलज्ञान के द्वारा सर्वपदार्थों को जान लेती है, सम्पूर्ण कर्मों से रहित हो जाती है, सकल कर्मजन्य संतापों से मुक्त हो जाती है, सब दुखों का अन्त कर देती है, इन भावों का ग्रहण किया जाता है।

मूलार्थ—वीतराग भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पद्मावतीदेवी को शिष्यारूप में भिक्षा स्वीकार करनेकी अनुमति मिलजाने पर पद्मावतीदेवी ईशानकोण में जाकर अपने छोटे-

बड़े समस्त आभूषणों को उतारती है, उतार कर अपने हाथों से पंचमुष्टि लोच करती है। साध्वी वेष धारण करने के अनन्तर वह अरिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर उन्हें वंदन एवं नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करने के अनन्तर उसने भगवान के चरणों में निवेदन किया—

भगवन् ! यह जगत् जरा और मरण की अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। मेरी इच्छा है कि आपके चरणों में दीक्षित हो जाऊं, आप मुझे धर्म का उपदेश देने की कृपा करें। धर्माचरण की विधि का बोध कराने का अनुग्रह करें।

पद्मावती देवी को सर्वथा योग्य देखकर भगवान अरिष्टनेमि उसे स्वयं दीक्षित करते हैं—दीक्षा-पाठ पढ़ाते हैं। भावरूप से मुण्डित करने के अनन्तर शिष्यारूप से यक्षिणी नामक साध्वी को उसे सौंप देते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि द्वारा पद्मावती देवी के सौंप देने पर यक्षिणी साध्वी पद्मावती आर्या को अपने हाथों से दीक्षित करती है—केशलुञ्चन रूप दीक्षा देती है और संयमाराधना में प्रयत्नशील होने की उसे शिक्षा देती है।

यक्षिणी साध्वी से शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर आर्या पद्मावती शिक्षानुसार संयम का पालन करती है। इस प्रकार आर्या पद्मावती ईर्या, भाषा, एषणा आदि समितियों का पालन करके जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारिणी बन जाती है।

आर्या पद्मावती ने आर्या यक्षिणी के पास रहकर सामायिक—आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अनेकों व्रत, बेले-तेले आदि का तप किया, अन्य अनेकविध तपः-कर्म से अपनी आत्मा को भावित करती हुई वह जीवन व्यतीत करने लगी।

आर्या पद्मावती ने पूरे बीस वर्षों तक संयम की आराधना की, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को आराधित किया। अनशन द्वारा साठ भोजनों का परित्याग किया, जिस प्रयोजन के लिये उसने दीक्षा ली थी, अंत में उसे सिद्ध कर लिया और वह सिद्ध, मुक्त, सकल कर्मजन्य संतापों से रहित एवं सब प्रकार के दुःखों से विमुक्त हो गई।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव की प्रिय महारानी पद्मावती देवी की दीक्षा-साधना का, निर्वाण-पद की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। चारित्र-शुद्धि में ज्ञानाराधना की कितनी आवश्य-

कता है? और ज्ञानपूर्वक किया गया तपोऽनुष्ठान कितनी शीघ्रता से फलप्रद होता है इस सत्य ज्ञान पर भी यहां प्रकाश डाला गया है।

"उत्तरपुरच्छिमं"—का अर्थ है—उत्तर और पूर्व दिशा के बीच का प्रदेश—ईशान कोण।

आभरणालंकारं—इस पद में आभरण और अलंकार ये दो शब्द हैं। दोनों समानार्थक हैं, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में ये सामान्य और विशेष के बोधक प्रतीत होते हैं।

"पंचमुट्ठियं"—का अर्थ है—पंचमौष्टिक। यह लोच का विशेषण है। जो लोच पांच मुष्टियों से पूर्ण किया जाये, या सिर के चारों ओर के केशों को चार बार और बीच के केशों को एक बार इस प्रकार पांच मुष्टियों से किया जानेवाला लोच पञ्चमौष्टिक लोच कहलाता है।

"आलित्ते जाव धम्ममाइक्खित्तं—इस वाक्य में पठित **जाव** पद ज्ञातासूत्रीय अग्रिम पाठ का संसूचक है—

आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्त—पलित्ते णं भंते! लोए, जराए मरणेण य, से जहानामए केई गाहावती आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवति, अप्पभारे मोल्लगुरुए, तं गहाय, आयाए एगंतं अवक्कमति, एस मे नित्थारिए समाणे पच्छापुरा हियाए, सुहाए, खमाए, णिस्सेसाए, आणुगामियत्ताए, भविस्सति। एवामेव ममवि एगे आयाभंडे इट्ठे, कंते, पिए, मणुन्ने, मणामे, एस मे नित्थारिए समाणे संसार वोच्छेयकरे भविस्सति। तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-माया वत्तियं। इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

भगवन्! यह संसार जरा और मरण की आग से जल रहा है। जैसे कोई गृहस्थ घर में आग लगने पर भार में हलके और मूल्य में भारी पात्रों को अलग निकाल कर रखता है ताकि वह उसके सुख-हित-क्षेम आदि में काम आसकें। इसी प्रकार आत्मा रूपी मेरा एक पात्र है, यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन-आम है, इसे मैं बाहिर निकलना चाहती हूं ताकि मैं जन्म-मरण का अन्त कर सकूं। अतः भगवन्! मेरी इच्छा है कि आप मुझे स्वयं दीक्षित करें, स्वयं ही मुण्डित करें, स्वयं ही शिक्षित और स्वयं ही आचार-गोचर ज्ञानादि आचार या साधुवृत्ति सम्बन्धी विनय-वैनयक—विनयफल, चरण-संयम करण-पिण्डविशुद्धि-आदि ७० बोल. यात्रा—मात्रा संयम-निर्वाह की मर्यादा रूप धर्म का व्याख्यान सुनाएं।

"पउमावइं देविं सयमेव पव्वावइ जाव संजमियव्वं" इस वाक्य में **जाव** पद पद्मावती की गुरुणी महासती श्री यक्षिणीजी महाराज ने उसे संयम सम्बन्धी जो शिक्षाएं दी थीं, उन सबका बोधक है।

अज्जा—का अर्थ है आर्या। जैनागमों में कर्मभूमि के मनुष्यों को आर्य और अनार्य इन दो विभागों में विभक्त किया गया है। इन में जो अहिंसा आदि शुभ कार्यों में प्रवृत्त हो रहे हैं, वे आर्य तथा जो दुष्ट भावनाओं से प्रेरित हुए हिंसा आदि जघन्य कार्यों में प्रवृत्त हो रहे हैं वे अनार्य कहलाते हैं। अहिंसकता, आर्यत्व की विभूति है और हिंसापरायणता, अनार्यता का चिन्ह है। वास्तविक आर्यत्व तो विद्या तथा चरित्र-सम्पन्न संयमशील व्यक्ति में ही चरितार्थ होता है। इसी

लिये संयम ग्रहण करने के अनन्तर सती धुरीणा पद्मावती को **अज्जा** आर्या शब्द से अलंकृत किया गया है।

"ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी"—यहां पठित **जाव—"भासासमिया, एसणासमिया, आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणा-समिय, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणियासमिया, मण-समिया, वयसमिया, कायसमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया"** इन पदों का परिचायक है। इनका अर्थ इस प्रकार है—

१. **ईर्यासमिति**—युगप्रमाण भूमि को एकाग्रचित्त से देखकर जीवों को बचाते हुए यतना-पूर्वक गमन करने का नाम ईर्यासमिति है।

२. **भाषा समिति**—सदोष वाणी को छोड़कर निर्दोष वाणी अर्थात्—हित-मित-सत्य एवं स्पष्ट वचन बोलने का नाम **भाषा समिति** है।

३. **एषणा-समिति**—आहार के बयालीस दोषों को टाल कर शुद्ध आहार तथा वस्त्र-पात्र आदि सामग्री का ग्रहण करना—एषणा (गवेषणा) द्वारा भिक्षा एवं वस्त्र पात्र आदि को ग्रहण करने का नाम **एषणा समिति** है।

४. **आदान-भण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति**—आसन-संस्तारक, पाट, वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को उपयोग पूर्वक देखकर एवं रजोहरण से पूंछ कर लेना एवं उपयोगपूर्वक देखी हुई और प्रतिलेखित (जिस भूमि को जीवों से रहित कर दिया गया हो) भूमि पर रखने का नाम—**आदान-भण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति** है।

५. **उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति**—उच्चार—मल, प्रस्रवण—मूत्र, खेल—थूक, सिंघाण—नाक का मल, जल्ल—शरीर का मल, इनकी परिष्ठापना अर्थात् परित्याग करने में सम्यक् प्रवृत्ति का नाम **उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्लपरिष्ठापनिका समिति'** है।

६. **मनः-समिति**—पापों से निवृत्त रहने के लिये एकाग्रता पूर्वक की जानेवाली आगमोक्त, सम्यक् एवं प्रशस्त मानसिक प्रवृत्ति का नाम **मनः-समिति** है।

७. **वचः-समिति**—पापों से बचने के लिये एकाग्रतापूर्वक की जानेवाली, आगमोक्त सम्यक् एवं प्रशस्त वाचनिका-प्रवृत्ति का नाम **वचः-समिति** है।

८. **काय-समिति**—पापों से सुरक्षित रहने के लिये एकाग्रतापूर्वक की जानेवाली, आगमोक्त-सम्यक् एवं प्रशस्त कायिक प्रवृत्ति का नाम—**काय-समिति** है।

९. **मनोगुप्ति**—आर्त्त तथा रौद्र ध्यान रूप मानसिक अशुभ व्यापार को रोकने का नाम **मनोगुप्ति** है।

१०. **वचनगुप्ति**—वाचनिक अशुभ व्यापार को रोकना, विकथा न करना, झूठ न बोलना, निंदा चुगली आदि दूषित वचन विषयक व्यापार को रोक देना **वचन गुप्ति** कही गई है।

११. **काय गुप्ति**—काया के अशुभ व्यापारों को रोकना, उठने, बैठने, हिलने, चलने, सोने आदि में अविवेक न करने का नाम **काय-गुप्ति** है।

पूर्वोक्त आठ समितियों और तीन गुप्तियों से युक्त और गुप्ता, मन, वचन और काया की सावद्य प्रवृत्तियों से इन्द्रियों को रोकने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भान्ति इन्द्रियों को वश में करनेवाली।

"**सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ**"—का अर्थ है सामायिक है आदि में जिनके, ऐसे ग्यारह अंगों का अध्ययन करती है। जैनवाङ्मय अंग, उपांग, मूल और छेद इन चार विभागों में विभक्त है। इनमें आचारांग सूत्रकृतांग आदि ग्यारह अंग, औपपातिक, राजप्रश्नीय, आदि बारह उपांग उत्तराध्ययन सूत्रादि चार मूल और दशाश्रुतस्कन्ध आदि चार छेद सूत्र हैं। ग्यारह अग, बारह उपांग, चार मूल, और चार छेद ये सब मिलकर इकतोस सूत्र होते हैं इन में आवश्यक सूत्र का संयोजन होने से इनकी संख्या बत्तीस होती है। प्रस्तुत में सामायिक का अर्थ आचारांग सूत्र है। ग्यारह अंगों में अन्तगडसूत्र का भी निर्देश मिलता है। उसके पंचम वर्ग के प्रथम अध्ययन में पद्मावती रानी की जीवनी का उल्लेख किया गया है। तो क्या वह पद्मावती यही थी या कोई अन्य थी ? यदि यही थी और उसीने अन्तगड़ सूत्र पढा, इसका क्या मतलब ? जिस जीवन की रचना ही बाद में हुई हो उसका अध्ययन कैसे संभव हो सकता है ?

उत्तर में निवेदन है कि अन्तगडसूत्र के पंचम वर्गीय पचम अध्ययन में जिस पद्मावती का जीवन वर्णित है, वह यही कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती है। उसके द्वारा अन्तगड नामक अग पढ़ने की बात का समाधान यह है कि भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे, उनकी नौ वाचनाएं (आगमसमुदाय) थीं, जो इन्हीं अंगों उपांगों आदि के नाम से प्रसिद्ध थीं, प्रत्येक में विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न था। वर्तमान काल में जो वाचना उपलब्ध है, वह भगवान महावीर स्वामी के पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी की है। प्रस्तुत सूत्र में जिन अग-शास्त्रों का वर्णन किया गया है वे महावीर के काल के नहीं हैं ये तो २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के काल के हैं। अंग-शास्त्रों के नाम उस समय भी यही थे, पर उनमें वर्णित विषय भिन्न था, अतः आर्या पद्मावती ने जो ग्यारह अंग पढ़े थे, वे वर्तमान में उपलब्ध श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के नहीं थे, प्रत्युत वे इससे भिन्न थे। तात्कालिक किसी गणधर की वाचना के थे। नाम के अतिरिक्त इनमें कोई सम्बन्ध नहीं था।

प्रस्तुत सूत्र में जो यह लिखा है कि पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से एकादश अंगों का अध्ययन किया। इससे यह प्रकट होता है कि—पुरुषों की भांति स्त्री-जाति को भी अंग-शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक दर्शन की "**न स्त्री शूद्रो वेदमधीयेताम्**" इस मान्यता के लिये जैन-दर्शन में कोई अवकाश नहीं था।

"**चउत्थ-छट्ठ० विविह तव० भावेमाणा**"—यहां के बिंदू—**छट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं, विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा**" इस अवशिष्ट पाठ के संसूचक हैं। इस

का अर्थ है—तेला, चौला, पंचौला, पन्द्रह-पन्द्रह और महीने-महीने तक की विविध तपस्याओं से आत्मा को भावित करती हुई।

"मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ"—का अर्थ है—मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को आराधित करती है। जिस तप के द्वारा शरीर तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायोंको निर्बल किया जाता है उस तप के अनुष्ठान को संलेखना कहते हैं। संलेखना द्वारा आत्मा को आराधित करने का तात्पर्य है—संलेखना द्वारा अपने को मोक्षमार्ग के अनुकूल बनाना। एक महीने की संलेखना को स्पष्ट करने के लिये सूत्रकार ने **"सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ"** ये पद दिये हैं—अर्थात् एक महीने की संलेखना का अर्थ है—साठ भक्तों—भोजनों का परित्याग।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने **"मासियाए संलेहणाए"** इन पदों का उल्लेख करके फिर **"सट्ठिं भत्ताइं"** ये पद क्यों दिये हैं? जब कि पहले पदों से ही काम चल सकता था। मासिक संलेखना और साठ भोजनों का परित्याग दोनों एक ही अर्थ के तो सूचक हैं?

उत्तर में निवेदन है—शास्त्र का कोई वचन व्यर्थ नहीं होता, केवल अपने समझने की त्रुटि होती है। प्रत्येक ऋतु में मासगत दिनों की संख्या एक नहीं होती विभिन्न होती है। कभी मास के दिन ३१, कभी ३० और कभी २६ होते हैं। जिस मास के दिन २९ हों उसका ग्रहण करने की सूचना देने के लिये सूत्रकार ने **"मासियाए संलेहणाए"** ये पद दे कर भी **"सट्ठिं भत्ताइं"** ये पद प्रयुक्त किये हैं, क्योंकि २६ दिनों के व्रतों में ही ६० भोजन छोड़े जा सकते हैं अन्य में नहीं।

"जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठं"—यहां पठित **जाव** पद वृत्तिकार के मतानुसार—**मुंडभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणगं, अच्छत्तयं, अणुवाहणयं, भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिंसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति"**। इन पदों का परिचायक है। इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव-साधुवृत्ति मुण्डभाव द्रव्य से सिर को मुंडित करना, भाव से परिग्रह का त्याग करना, केशलोच अर्थात् बालों का हाथों से उखाड़ना, ब्रह्मचर्यवास—ब्रह्मचर्य की आराधना, अस्नानक—स्नान न करना, अछत्रक—छत्र का प्रयोग न करना, अनुवाहनक—सवारी का उपयोग न करना, भूमिशय्या—भूमिपर शयन करना, फलक शय्या—तख्त पर शयन करना, पर घर प्रवेश—दूसरों के घरों में भिक्षार्थ प्रवेश करना, लाभालाभ—किसी समय वस्तु का प्राप्त होना किसी समय न होना, मानापमान—कहीं मान प्राप्त होना, कहीं अपमान। दूसरों द्वारा की गई हीलना-अवहेलना, निंदा, खिंसना—लोगों के सामने जाति आदि का गुप्त रहस्य प्रकट करना, ताड़ना–मारना गर्हा, गुरु के सम्मुख अपने अतिचारों-दोषों की निंदा करना, पश्चात्ताप करना, ऊंच-नीच नाना प्रकार के २२ परीषह इन्द्रियों के दुःखदायक उपसर्ग सहन किए।

इन विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधुमार्ग में प्रवृत्त होनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को इन पूर्वोक्त नियमों का यथाविधि, यथाशक्ति समतापूर्वक पालन करना होता है और साधनाकाल में

उपस्थित होनेवाले दैविक, मानुषिक या पाशविक सभी उपसर्गों को शान्ति पूर्वक सहन करना पड़ता है। संयम-मार्ग में प्रवृत्त हुआ पुरुष इन्हीं नियमों के सम्यग् अनुष्ठान से निर्वाण-पद प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं।

"सिद्धा ५"—यहां के **५** के अंक से संसूचित अवशिष्ट पाठ का संकेत पदार्थ में कर दिया गया है।

प्रस्तुत पंचमवर्गीय प्रथम अध्ययन में वासुदेव श्रीकृष्ण की अग्रमहिषी पद्मावती देवी के संयम प्रधान जीवन का उल्लेख किया गया है। श्री कृष्ण जैसे पतिदेव के प्यार भरे—आमोद-प्रमोद को छोड़ देना, किसी भी प्रकार की वस्तु की कमी न होने पर भी त्याग भावना से ओत-प्रोत हो कर समस्त ऐश्वर्य का परित्याग कर देना साधारण बात नहीं है। सच्चे त्याग का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। मोह-माया की दल-दल में सदा फसे रहनेवाले व्यक्तियों को महासती पद्मावती के जीवनरूप-प्रकाशस्तम्भ से प्रकाश ले कर अपने अन्तर्जगत के अन्धकार को दूर करने का प्रयास करना चाहिये। यही इस प्रथम अध्ययन के पठन-पाठन का पवित्र सार है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

सात अध्ययन

(दो से आठ तक)

अब पञ्चम वर्ग के दूसरे अध्ययन का आरंभ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**उक्खेवग्रो य ग्रज्झयणस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी, रेवतए, उज्जाणे नंदणवने। तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरीदेवी, वण्णग्रो। ग्ररहा ग्ररिट्ठनेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए, गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया। धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा।**

एवं गंधारी लक्खणा, सुसीमा, जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, ग्रट्ठ वि पउमावई सरिसाग्रो ग्रट्ठ ग्रज्झयणा।

छाया—**उत्क्षेपकश्च अध्ययनस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नगरी, रैवतकः (पर्वतः) उद्यानं नंदनवनम्। तत्र द्वारवत्यां नगर्यां कृष्णो वासुदेवो राजाऽभूत्तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य गौरीदेवी वर्णकः। अर्हन्नरिष्टनेमिः समवसृतः। कृष्णो निर्गतः। गौरी यथा पद्मावती तथा निर्गता। धर्मकथा। परिषत् निर्गता। कृष्णोऽपि प्रतिगतः। ततः सा गौरी यथा पद्मावती तथा निष्क्रान्ता यावत् सिद्धा।**

एवं गांधारी-लक्ष्मणा-सुसीमा-जाम्बवती-सत्यभामा-रुक्मिणी अष्टावपि पद्मावती सदृशानि (जीवन-चरितानि) एवम् अष्ट अध्ययनानि (समाप्तानि)।

पदार्थ—**ग्रज्झयणस्स**—इस द्वितीय अध्ययन के; **उक्खेवग्रो य**—प्रारंभ वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये; **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल तथा उस समय में; **बारवई णयरी**—द्वारिका नाम की नगरी थी; **रेवतए**—वहां रैवतक नाम का एक पर्वत था; **नंदणवने**—नंदन वन नाम का; **उज्जाणे**—उद्यान था। **तत्थ णं**—वहां; **बारवईए णयरीए**—द्वारिका नगरी में; **कण्हे वासुदेवे**—कृष्ण सुदेव; **राया होत्था**—राजा होता था; **तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स**—उस कृष्ण वासुदेव को; **गोरीदेवी, वण्णग्रो**—गौरी देवी नाम की रानी थी; ग्रौपपातिक—सूत्र के नारीवर्णन की तरह उस का वर्णन जानना; **ग्ररहा ग्ररिट्ठनेमी**—ग्ररिहन्त वीतराग भगवान अरिष्टनेमि; **समोसढे**—द्वारिका

नगरी में पधारे; **कण्हे णिग्गए**—कृष्ण वासुदेव दर्शनार्थ नगरी से बाहिर निकले; **जहा पउमावई**—जिस प्रकार पद्मावती भगवान के दर्शनार्थ गई थी; **तहा गोरी णिग्गया**—उसी प्रकार रानी गौरी भी दर्शनार्थ गई; **धम्मकहा**—भगवान ने धर्मकथा सुनाई; **परिसा पडिगया**—जनता धर्मकथा सुन कर चली गई; **कण्हे वि पडिगए**—कृष्ण वासुदेव भी चले गए; **तए णं सा गोरी**—उस के अनन्तर वह गौरी रानी, **जहा पउमावई**—जिस प्रकार पद्मावती दीक्षित हुई थी; **तहा णिक्खंता**—उसी प्रकार दीक्षित हो गई; **जाव**—यावत्, उसने, संयम-साधना करके अन्त में; **सिद्धा**—सिद्ध-पद प्राप्त किया; **एवं**—इसी प्रकार; **गंधारी-लक्खणा-सुसीमा-जंबवई, सच्चभामा**—गांधारी देवी, लक्ष्मणा देवी, सुसीमा देवी, जाम्बवती, सत्यभामा देवी, **रुप्पिणी**—रुक्मिणी देवी, **अट्ठ वि**—पद्मावती सहित ये आठों ही जीवन-चरित; **पउमावई सरिसाओ**—पद्मावती के समान है, **अट्ठ अज्झयणा**—ये आठों ही अध्ययन समाप्त हुए।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्रीय पंचम वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर के द्वारा निरूपित पंचम वर्गीय प्रथम अध्ययन के अर्थ का श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन् ! भगवान महावीर ने पचमवर्गीय द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ वर्णित किया है अब उसे सुनाने की कृपा करें।

आर्य जम्बू अणगार की अभ्यर्थना सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस काल एवं उस समय में द्वारिका नगरी थी। उस के बाहिर रैवतक नामक एक पर्वत था। उस पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। द्वारिका नगरी में वासुदेव कृष्ण राज्य किया करते थे। इनकी गौरी नाम की एक सुन्दर रानी थी। रानी की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-सम्पदा के समान समझना चाहिये।

एक बार द्वारिका नगरी में वीतराग भगवान अरिष्टनेमि पधारे। वासुदेव कृष्ण इनके चरणवंदन के लिये सेवा में उपस्थित हुए। महारानी पद्मावती की भांति गौरीदेवी भी भगवान की सेवा में पहुंची। भगवान ने सब को धर्म-कथा सुनाई। धर्म-कथा सुनने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव तथा अन्य लोग अपने-अपने स्थानों को वापिस चले गए।

गौरी देवी ने महारानी पद्मावती की तरह भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होने को प्रार्थना की और महाराज श्रीकृष्ण द्वारा दीक्षा-समारोह सम्पन्न करने पर उसने भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षा अंगीकार करके पद्मावती की भांति सिद्ध-पद प्राप्त किया।

गौरी देवी की तरह गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी नामक रानियों ने भी भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित हो कर सिद्धगति प्राप्त की। पद्मावती गौरी तथा गांधारी आदि इन आठों सन्नारियों के जीवन-चरित एक जैसे ही हैं। इनमें अन्तरवाली कोई विशेष बात नहीं है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने संक्षेप से सात अध्ययनों का उल्लेख किया है। गौरी, गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी इन सात देवियों की जीवनियों को पंचमवर्गीय प्रथम अध्ययन में वर्णित पद्मावती देवी की जीवनी के समान ही बताया गया है। इस प्रकार पद्मावती से ले कर रुक्मिणी पर्यन्त इन आठ देवियों का दीक्षा से ले कर सिद्ध-गति को प्राप्त करने तक का समस्त वृत्तान्त एक समान ही है। ये आठों ही कृष्ण वासुदेव की पट्टरानियां थीं। दीक्षित होने के अनन्तर इन्होंने एक जैसी संयम-साधना की थी, एक जैसी तपस्या की थी, एक जैसी त्याग-भावना से प्रेरित हो कर धर्माराधना की थी, इसलिये सूत्रकार ने इन आठों के जीवन-चरितो को एक समान बतला दिया है।

'उक्खेवओ'—उत्क्षेपक—यह पद प्रस्तावना का संसूचक है। शास्त्रीय भाषा में प्रस्तावना की रूपरेखा इस प्रकार है:—

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

इन पदों का अर्थ मूलार्थ में दे दिया गया है।

वण्णओ—यह वर्णक पद गौरी देवी की गुण-सम्पदा का औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा जैसा होने का संकेत कर रहा है।

प्रस्तुत सूत्र में **"जहा पउमावई तहा"** इस प्रकार जो **जहा** और **तहा** शब्दों का प्रयोग किया गया है वह गौरी और पद्मावती की जीवन-गत समानता का संसूचक है।

"णिक्खंता जाव सिद्धा" यहां पठित **जाव** पद पद्मावती ने दीक्षित होने के अनन्तर जैसी संयम-साधना की थी, गौरी ने भी दीक्षित होने के अनन्तर वैसी ही साधना की इस तथ्य को अभिव्यक्त कर रहा है।

"**अट्ठ वि पउमावई सरिसयाओ-अट्ठ अज्झयणा**"—**अष्टावपि पद्मावतीमारभ्य रुक्मिण्यन्ताः अष्टावपि कृष्णपट्टमहिष्यः** समानचरिताः। **एवं अष्टाध्ययनानि समाप्तानि**। अर्थात् यहां पठित प्रथम **अष्ट** पद पद्मावती आदि आठों कृष्ण की रानियों की ओर संकेत करता है।

"**समाप्तानि**" इस पद का अध्याहार किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में सात अध्ययनों का निर्देश प्राप्त होता है।

॥ सात अध्ययन समाप्त ॥

दो अध्ययन

(नौ और दस)

अब सूत्रकार नवम अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—**उक्खेवओ य नवमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए रेवयए पव्वए, नंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया। तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्तए जंबवइए देवीए अत्तए संब नामं कुमारे होत्था। अहीण०। तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भारिया होत्था। वण्णओ। अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए मूलसिरी वि णिग्गया। जहा पउमावई, नवरं, देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, जाव सिद्धा। एवं मूलदत्ता वि।**

छाया—उत्क्षेपकश्च नवमस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवत्यां नगर्यां रैवतकः पर्वतः, नन्दनवनमुद्यानम्, कृष्णो राजा। तत्र द्वारवत्यां नगर्यां कृष्णस्य वासुदेवस्य पुत्रो जाम्बवत्याः देव्याः आत्मजः शाम्बो नाम कुमार आसीत्। अहीनः०। तस्य शाम्बस्य कुमारस्य मूलश्रीः नाम्नी भार्याऽऽसीत्, वर्णकः। अर्हन् अरिष्टनेमिः समवसृतः। कृष्णो निर्गतः, मूलश्रीरपि निर्गता, यथा पद्मावती, नवरं-देवानुप्रिय! कृष्णं वासुदेवमापृच्छामि, यावत् सिद्धा। एवं मूलदत्ताऽपि।

पदार्थ—**नवमस्स य**—और नवम अध्ययन के; **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये। **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल एवं उस समय में; **बारवईए णयरीए**—द्वारिका नगरी के; **रेवयए पव्वए**—रैवतक नामक पर्वत पर; **नंदणवण उज्जाणे**—नंदनवन नाम का उद्यान था। **तत्थ**—वहां; **कण्हे राया**—कृष्ण वासुदेव राजा थे; **बारवईए णयरीए**—द्वारिका नगरी के राजा; **कण्हस्स वासुदेवस्स**—कृष्ण वासुदेव के; **पुत्तए**—पुत्र; **जंबवतीए देवीए**—जाम्बवती देवी के; **अत्तए**—आत्मज; **संबं नामं**—शाम्ब कुमार नाम का; **कुमारे होत्था**—कुमार था—जो कि; **अहीण०**—निर्दोष—पञ्चेन्द्रिय शरीरवाला था। **तस्स णं**—उस; **संबस्स कुमारस्स**—शांब कुमार के; **मूलसिरी नामं**—मूलश्री नाम की; **भारिया होत्था**—भार्या (धर्मपत्नी) थी, उसकी गुण-सम्पदा **वण्णओ**—औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा के समान जाननी चाहिए। **अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे**—अरिहन्त अरिष्टनेमि वहां पधारे; **कण्हे णिग्गए**—कृष्ण वासुदेव (भगवान के दर्शनार्थ) नगर से निकले; **मूलसिरी वि**— मूल श्री भी; **जहा**—जिस प्रकार; **पउमावई णिग्गया**—पद्मावती नगरी से दर्शनार्थ गई थी उसी प्रकार वह भी गई; **नवरं**—इतना अन्तर है, (वह भगवान से बोली);

देवाणुप्पिया !—हे भगवन् !; **कण्हं वासुदेवं**—कृष्ण वासुदेव को; **आपुच्छामि**—पूछती हूँ; **जाव**—यावत्; **सिद्धा**—सिद्ध गति प्राप्त की; **एवं**—इसी प्रकार; **मूलदत्ता वि**—मूलदत्ता का भी वर्णन समझ लेना चाहिए।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्र के पंचम वर्गीय अष्टम अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! अन्तगड सूत्र के पंचम वर्गीय अष्टम अध्ययन का मैं अर्थ श्रवण कर चुका हूं, अतः अब आप कृपा करके बताएं कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के पंचमवर्गीय नवम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जम्बूकुमार का निवेदन सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस काल तथा उस समय द्वारिका नगरी के रैवतक नामक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक सुन्दर उद्यान था। नगरीमें महाराज कृष्ण राज्य करते थे। इसी नगरी में कृष्ण वासुदेव के पुत्र जाम्बवती देवी के आत्मज शाम्ब नाम के राजकुमार थे। ये सर्वाङ्ग सुन्दर थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम मूलश्री था। मूलश्री की गुणसम्पदा औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुणसम्पदा के समान थी।

एक बार वीतराग भगवान अरिष्टनेमि नन्दनवन में पधारे। कृष्ण वासुदेव भगवान के दर्शनार्थ गए, मूलश्री भी वहां पहुंची। पद्मावती की तरह उन्होंने दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की। केवल अन्तर इतना है कि वह कहने लगी—भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव से पूछकर दीक्षाव्रत अंगीकार करूंगी। अन्त में दीक्षित हो कर उसने सिद्ध-गति प्राप्त की।

मूलश्री की तरह मूलदत्ता ने भी दीक्षित होकर सिद्ध-गति उपलब्ध की।

व्याख्या—जिस प्रकार गत अध्ययनों में वर्णित पद्मावती आदि आठों सन्नारियां द्वारिकाधीश कृष्ण वासुदेव की पट्टरानियां थी, उसी प्रकार मूलश्री और मूलदत्ता ये दोनों सन्नारियां कृष्ण वासुदेव के सुपुत्र तथा जाम्बवती के आत्मज शाम्बकुमार की धर्मपत्नियां थीं।

पद्मावती आदि आठों महासतियों का जैसे सयम-प्रधान जीवन एक समान था, उसी प्रकार इन दोनों महासतियों का संयमी जीवन भी मिलता-जुलता है।

पञ्चम वर्ग के दस अध्ययनों में दस नारियों के जीवनों का उल्लेख किया गया है। नारी-जीवन के वर्णन के पीछे शास्त्रकारों का यही आशय प्रतीत होता है कि जिस प्रकार संयमाराधन द्वारा

पुरुष मोक्ष की साधना सम्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार नारी भी अहिंसा, संयम एवं तप के आचरण से इस पद को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता रखती है। पद्मावती आदि राजरानियों के जीवन इस सत्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

यहां एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह जीव शरीर से चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री अथवा नपुंसक हो, वह उसी लिंग से मोक्ष में जा सकता है। मोक्ष-साधना में लिंग की कोई बाधा नहीं है। मोक्ष का बाधक तो वेद है। जीव में जब तक वेद का उदय भाव रहता है, तब तक वह मोक्षाधिकारी नहीं बन सकता। स्त्री-वेद, पुरुष-वेद और नपुंसक-वेद ये तीनों मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं; अतः जब तक मोहनीय कर्म की सत्ता रहती है, तब तक केवल ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। केवल ज्ञान प्राप्त किए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये जिस जीव का वेद क्षीण नहीं हुआ ५८ कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।

शास्त्र कहता है कि स्त्री-पुरुष और नपुंसक के शरीर की जो आकृति है वह नामकर्मजन्य है। उसका निर्माण नामकर्म के उदय से होता है। यह नामकर्म केवल ज्ञान की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं डालता। इस विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीव कोई भी लिंग रखता हो, वह निरतिचार चारित्र का सम्यक् पालन करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान-दर्शन तथा चारित्ररूप रत्नत्रय की सम्यक्तया आराधना करते हुए सभी जीव मुक्त हो जाते हैं। पहले हो चुके हैं, वर्तमान में हो रहे है और भविष्य में होते रहेंगे।

'उक्खेवओ'—का अर्थ है—उत्क्षेपक। उत्क्षेपक प्रस्तावना का नाम है। शास्त्रीय भाषा में प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है—

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ? नवमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अन्तगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?" इन पदों का अर्थ पदार्थ में दिया जा चुका है।

'अहीण०' यहां का बिन्दु—**पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे' लक्खण-वंजणगुणोववेये माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगे, ससिसोमाकारे, कंते, पियदंसणे, सुरूवे**—इन पदों का बोधक है, अर्थात् शाम्बकुमार की पांचों इन्द्रियां निर्दोष थीं, उसका शरीर लक्षण (स्वस्तिक आदि), व्यंजन (शरीरगत मस्सा, तिल आदि चिन्ह) और विनय आदि अन्य गुणों से युक्त, मान (जिसके द्वारा पदार्थ मापा जाए), उन्मान (मान से अधिक या अर्द्धभार) और प्रमाण (अपनी अंगुली से एक सौ आठ अंगुली पर्यन्त ऊंचाई) से परिपूर्ण एवं अंगोपांगों के सौन्दर्य से भरपूर था। वह चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त (मनोहर) और प्रियदर्शन (जिसके देखने से मन में आकर्षण पैदा हो) था।

"वण्णओ"—पद औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा की ओर संकेत करता है।

"जहा पउमावई" में **'जहा'** पद समानता का बोधक है। जिस प्रकार पद्मावती भगवान का उपदेश सुनकर उससे प्रभावित हुई और उसने दीक्षित होने का संकल्प किया उसी प्रकार मूलश्री भी प्रभावित होकर दीक्षित हो गई। यही इनकी समानता है।

"नवरं"—का अर्थ है—इतना अन्तर है । यह अन्तर किस कारण हुआ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है ? पद्मावती के प्रकरण में लिखा है, "नवरं देवाणुपिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि" तथा मूलश्री के प्रकरण में भी यही शब्द प्रयुक्त हुए हैं, फिर अन्तर किस बात का ?

उत्तर में निवेदन है कि पद्मावती कृष्ण वासुदेव की धर्मपत्नी थी, अतः उसका अपने पतिदेव से आज्ञा प्राप्त करना न्यायसंगत है, इसी प्रकार मूलश्री यदि अपने पतिदेव शाम्बकुमार से आज्ञा प्राप्त करती तो यह न्यायसंगत था, पर उसने अपने पतिदेव से आज्ञा प्राप्त न करके अपने श्वसुर कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त की, यही पद्मावती से इसका अन्तर है । यह अन्तर क्यों हुआ ? इसका कारण यह है कि शाम्बकुमार पहले ही भगवान के चरणों में दीक्षित हो गये थे, इसलिये उनसे आज्ञा प्राप्त करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । फलतः मूलश्री ने अपने श्वसुर कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त करके भगवान के चरणों में दीक्षा अंगीकार की थी।

"जाव सिद्धा" यहां पठित जाव पद कृष्ण वासुदेव से आज्ञा प्राप्त करना, दीक्षा समारोह के अनन्तर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होकर संयम-आराधना करना, व्रत, बेले, तेले आदि के रूप में तपस्या करना और संलेखना द्वारा आत्मा को भावित करके अन्त मे निष्कर्मता प्राप्त करना, इन सभी बातों का संसूचक है ।

॥ दो अध्ययन समाप्त ॥

॥ पंचम वर्ग सम्पूर्ण ॥



षष्ठ वर्ग

सूत्रकार अब छठे वर्ग का आरम्भ करते हैं। उसका आदिम सूत्र इस प्रकार है—

मूल—जइ णं भंते ! छट्ठस्स उक्खेवग्रो। नवरं सोलस ग्रज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—

मंकाई किकम्मे चेव, मोग्गरपाणी य कासवे।
खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे ॥१॥
वारत्त-सुदंसण-पुण्णभद्द-सुमणभद्द-सुपइट्ठे मेहे।
ग्रइमुत्ते ग्र ग्रलक्खे, ग्रज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

जइ सोलस ग्रज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ग्रज्झयणस्स के ग्रट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए। सेणिय राया। तत्थ णं मंकाई नामं गाहावई परिवसइ। ग्रड्ढे जाव ग्रपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे ग्राइगरे गुणसिलए जाव विहरइ। परिसा निग्गया। तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव। इमो वि जेट्ठपुत्तं कुटुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव ग्रणगारे जाए। ईरियासमिए जाव गुत्ते बंभयारी। तते णं से मंकाई ग्रणगारे समणस्स भगवग्रो महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं ग्रंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस ग्रंगाइं ग्रहिज्जइ। सेसं जहा खंदगस्स, गुणरयणं तवोकम्मं। सोलस वासाइं परियाग्रो तहेव विपुले सिद्धे।

दोच्चस्स उक्खेवग्रो। किकम्मेवि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे।

छाया—यदि षष्ठस्य उत्क्षेपकः। नवरं षोडशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

मंकाति किङ्कर्माचैव मुद्गरपाणिश्च काश्यपः।
क्षेमको धृतिधरश्चैव, कैलाशो हरिचन्दनः ॥१॥

वारत्त-सुदर्शनपुण्यभद्रसुमनोभद्रसुप्रतिष्ठाः मेघः ।
अतिमुक्तश्च अलक्षोऽध्ययनानां तु षोडशकम् ॥२॥

यदि षोडशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य अध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ।

एवं खलु जंबू । तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा, मंकातिर्नाम गाथापतिः परिवसति, आढ्यो यावदपरिभूतः । तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः आदिकरः गुणशिलके यावत् विहरति । परिषत् निर्गता । ततः सो मंकातिर्गाथापतिः अस्याः कथायाः लब्धार्थः यथा प्रज्ञप्तौ गंगदत्तः तथैव अयमपि ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा पुरुष-सहस्रवाहिन्या शिविकया निष्क्रान्तः, यावदनगारो जातः, ईर्यासमितः यावद् गुप्तब्रह्मचारी । ततः सः मंकातिरनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादिकानि एकादशांगानि अधीते, शेषं यथा स्कन्दकस्य, गुणरत्नं तपःकर्म, षोडशवर्षाणि पर्यायः । तथैव विपुले सिद्धः ।

द्वितीयस्य उत्क्षेपकः । किंकर्मापि एवं चैव यावत् विपुले सिद्धः ।

पदार्थ—**जइ**—यदि; **णं**—वाक्य सौन्दर्यार्थ; **भंते**—हे भगवन् !; **छट्ठस्स**—छठे वर्ग का क्या अर्थ है; **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना करलेना; **नवरं**—अन्तर इतना है कि; **सोलस अज्झयणा**— सोलह अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए है; तंजहा—जैसे कि—

मंकाइ—मङ्काति; **च**—और; **एवं**—निश्चयार्थक है; **किंकम्मे**—किंकर्मा; **य**—और; **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि (जिस के हाथ में मुद्गर हो अर्थात् अर्जुनमाली); **कासवे**—काश्यप; **खेमए**—क्षेमक; **धितिधरे**—धृतिधर; **एवं**—निश्चयार्थक है। **च**—और; **केलासे**—कैलाश; **हरिचंदणे**—हरिचन्दन; **वारत्त**—वारत्त; **सुदंसण**—सुदर्शन; **पुण्णभद्द**—पूर्णभद्र; **सुमणभद्द**—सुमनभद्र; **सुपइट्ठे**—सुप्रतिष्ठ; **मेहे**—मेघ; **अइमुत्ते**—अतिमुक्त; **अ**—और; **अलक्खे**—अलक्ष; **तु**—पादपूर्ति में हैं। **अज्झयणाणं**—यह अध्ययनों का; **सोलसयं**—षोडशक है—अर्थात् ये १६ अध्ययन हैं। **जइ**—यदि (छठे वर्ग के); **सोलस अज्झयणा**—सोलह अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किए हैं; **पढमस्स अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का; **के अट्ठे पण्णत्ते** ?—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? ।

एवं खलु—इस प्रकार; **जंबू** !—हे जम्बू !; **तेणं कालेणं, तेणं समएणं**—उस काल, उस समय में; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर था; **गुणसिलए चेइए**—गुणशिलक नामक चैत्य था। **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा था ; **तत्थ णं**—वहां पर; **मंकाई नामे**—मंकाति नाम का; **गाहावई**—गाथापति—गृहस्थ; **अड्ढे**—समृद्ध; **परिवसइ**—रहता था जो कि; **जाव**—यावत्; **अपरिभूए**—अपरिभूत—तिरस्कार से रहित, सम्मानित समझा जाता था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल, उस समय में; **समणे भगवं**—श्रमण-तपस्वी भगवान, ऐश्वर्यादि गुण सम्पन्न; **महावीरे आइगरे**—महावीर, आदिकर—धर्मतीर्थ का आरंभ करनेवाले; **गुणसिलए**—गुणशिलक नाम उद्यान में पधारे; **जाव**—यावत्; **विहरइ**—विचरण करने लगे; **परिसा-णिग्गया**—परिषद् (जनता) भगवान के दर्शनार्थ निकली; **तए णं से मंकाई**—उसके अनन्तर, वह

मंकाति नामक; **गाहावई, इमीसे कहाए**—गाथापति गृहस्थ-इस कथा वृत्तान्त को; **लद्धट्ठे**—जान कर **जहा**—जिस प्रकार; **पण्णत्तीए**—प्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्र में; **गंगदत्ते**—गंगदत्त का वर्णन किया गया है; **तहेव**—उसी प्रकार; **इमो वि**—यह भी अर्थात् मंकाति भी; **जेट्ठपुत्तं**—अपने बड़े लड़के को; **कुडुंबे ठवेत्ता**—कुटुम्ब में स्थापित कर, कुटुम्ब का मुख्य बना कर; **पुरिससहस्सवाहिणीए**—पुरुषसहस्रवाहिनी नामक, या हजार पुरुषों द्वारा उठाई जानेवाली; **सीयाए**—शिविका—पालकी में बैठ कर; **णिक्खंते**—दीक्षा के वास्ते नगर से निकला; **जाव**—यावत्; **अणगारे जाए**—साधु बन गया; **ईरियासमिए**—ईरिया समिति की, पालना करनेवाला; **जाव**—यावत्; **गुत्ते, बंभयारी**—गुप्त जितेन्द्रिय बना और ब्रह्मचर्य महाव्रत की आराधना करने लगा; **तते णं**—उस के बाद; **से मंकाइ अणगारे**—वह मंकाति नामक अनगार साधु; **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के; **तहारूवाणं**—तथारूप शास्त्रानुसार साधुमर्यादा का पालन करनेवाले; **थेराणं**—स्थविरों—ज्ञानवृद्ध महापुरुषों के; **अंतिए**—पास; **सामाइयमाइयाइं**—जिनके आदि, आरम्भ में सामायिक—आचारांग सूत्र है; **एक्कारस्स अंगाइं**—११ अंगों का अध्ययन करता है; **सेसं जहा**—शेष—अवशिष्ट, जिस प्रकार; **खंदगस्स**—भगवती सूत्र में वर्णित स्कदक मुनि का वर्णन है वैसा ही इनका भी जान लेना; **गुणरयणं**—उसने गुणरत्न नामक; **तवोकम्मं**—तप की आराधना की; **सोलस वासाइं**—सोलह वर्षो तक; **परियाओ**—दीक्षा का पालन किया; **तहेव**—स्कन्दक कुमार की भांति; **विपुले**—विपुल नामक पर्वत पर; **सिद्धे**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

दोच्चस्स—द्वितीय अध्ययन का; **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये; **किंकम्मे वि**—किंकर्मा गाथापति का जीवन भी; **एवं चेव**—इसी प्रकार मंकाति जी के समान जान लेना चाहिये; **जाव-विपुले-सिद्धे**—यावत् वे विपुल गिरि पर्वत पर, सिद्ध हो गए।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्र का पंचम वर्ग सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अंतगड सूत्र के पंचम वर्ग का जो अर्थ बतलाया है, उसका श्रवण मैंने कर लिया है। अब भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, उसका श्रवण करना चाहता हूं।

आर्य जम्बू अनगार की प्रार्थना सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करके कहने लगे—

जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड़ सूत्र के छठे वर्ग के सोलह अध्ययन बताए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. मंकाति, २.किंकर्मा, ३. मुद्गरपाणि, ४. काश्यप, ५. क्षेमक, ६. धृतिधर, ७. कैलाश, ८. हरिचंदण, ९. वारत्त, १०. सुदर्शन, ११. पूर्णभद्र, १२. सुमनभद्र १३. सुप्रतिष्ठ, १४. मेघ, १५. अतिमुक्त, १६. अलक्ष।

छठे वर्ग के इन सोलह अध्ययनों के नाम सुनकर आर्य जम्बू अनगार आर्यसुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन्! यदि श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग में सोलह अध्ययन बताए हैं तो भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है?

आर्य जम्बू अनगार की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, वहां पर गुण-शिलक नामक एक (चैत्य) उद्यान था। नगर-नरेश का नाम श्रेणिक था। इस नगर में मंकाति नाम का एक गृहस्थ रहता था। यह बड़ा धनवान था, उसकी नगर में बड़ी प्रतिष्ठा थी।

एक बार उस नगर में धर्मतीर्थ के संस्थापक श्रमण भगवान महावीर पधारे और गुणशिलक उद्यान में विराजमान हो गए। भगवान के दर्शनार्थ नगर-निवासी लोग नगर से चले। सेठ मंकाति भी भगवान के आने के शुभ समाचार को सुनकर भगवती सूत्र में वर्णित गंगदत्त की भांति भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ। प्रभु-चरणों में वन्दन-नमस्कार करने के अनन्तर उसने भगवान की वाणी सुनी, वाणी सुनकर उसके हृदय में वैराग्य हो गया। गंगदत्त की तरह भगवान के चरणों में उसने निवेदन किया—

भगवन्! आपकी वाणी सुनकर मेरे हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया है, मैं अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब का सब दायित्व संभाल कर आप के चरणों में दीक्षित होना चाहता हूं। भगवान् ने कहा—'भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो।' यह उत्तर सुनकर मंकाति अपने घर लौट गए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र को घर का मुखिया बनाया और इसके अनन्तर पुरुष-सहस्रवाहिनी नामक पालकी में बैठकर दीक्षाग्रहण करने के लिये नगर से प्रस्थान किया। वह साधु बन गया। ईर्या, भाषा आदि समितियों की आराधना करने लगा। इन्द्रियों का दमन कर ब्रह्मचर्य की साधना में लग गया।

मंकाति मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप—शास्त्रोक्त मर्यादा के परिपालक, स्थविरों—ज्ञानवृद्धों के पास आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। भगवती सूत्र में वर्णित श्री स्कन्दक मुनि के समान गुणरत्न तप का आराधन किया। सोलह वर्ष तक दीक्षा-पर्याय का पालन करके अन्त में स्कन्दक मुनि की तरह विपुल नामक पर्वत पर उसने सिद्ध पद प्राप्त किया। जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

छठे वर्ग के प्रथमाध्ययन का अर्थ सुनकर आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के प्रथम अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, वह मैंने सुन लिया है। अब भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन का जो अर्थ बताया है, उसे सुनना चाहता हूं। आर्य जम्बू अनगार की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन में किंकर्मा नामक गृहस्थ का वर्णन किया गया है। इसकी संयम-साधना तथा निर्वाण-पद की प्राप्ति मंकाति मुनि के समान ही जाननी चाहिए। मंकाति की तरह ही गाथापति किंकर्मा गृहस्थ ने विपुल गिरि पर सिद्ध-पद को प्राप्त किया था।

व्याख्या—इस छठे वर्ग में सोलह अध्ययन वर्णित हुए हैं। जिस महापुरुष का जिस अध्ययन में वर्णन किया गया है उसीके नाम से उस अध्ययन का नाम रखा गया है। इनमें से मंकाति और किंकर्म इन दो महापुरुषों का जीवन प्रस्तुत सूत्र में वर्णित हुआ है। मंकाति राजगृह नगर के एक मान्य सेठ थे। व्यापारी समाज में इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। वे धनी होने पर भी धार्मिक कार्यों में खूब रस लेते थे। सन्तों की मंगलमयी वाणी सुन कर तो वे झूम उठते थे। एक बार इनको विश्ववन्द्य मंगलमूर्ति भगवान महावीर की कल्याणकारिणी वाणी सुनने का सुअवसर मिला, बस फिर क्या था, जीवन की दिशा ही बदल गई। संसार की मोहमाया बंधन दिखाई देने लगी, अन्त में उन्होंने भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होने का दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर घर का सब दायित्व अपने लड़केको सौंपकर पारिवारिक एवं सामाजिक सभी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर भगवान महावीर से दीक्षा अंगीकार की। साधु बन कर तप-संयम का ठाठ लगा दिया। गुणरत्न तप किया। तपस्या के साथ-साथ विद्या के क्षेत्र में भी खूब प्रगति की। ग्यारह अंग पढ़े, शास्त्रों में विद्वत्ता प्राप्त की। इस प्रकार ज्ञान तथा संयम-साधना में सोलह वर्ष व्यतीत किए और एक दिन विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध-पद को प्राप्त कर लिया।

इनकी तरह किंकर्मा गाथापति ने भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होकर विपुल गिरि पर्वत पर जाकर निर्वाण पद प्राप्त किया था। इन दोनों महापुरुषों का संयमी जीवन एक जैसा ही है।

"छट्ठस्स उक्खेवओ"—का अर्थ है—छठे वर्ग के उत्क्षेपक की पहले की भांति कल्पना कर लेना। उत्क्षेपक प्रस्तावना वाक्य का नाम है। शास्त्रीय भाषा में प्रस्तावना वाक्य इस प्रकार है—

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स पंचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता—यह प्रस्तावना वाक्य है। इसकी कल्पना पहले की तरह करनी, है पर जो अन्तर है उसे सूत्रकार ने **"नवरं"** इस पद से अभिव्यक्त कर दिया है।

"अड्ढे जाव अपरिभूए" इस वाक्य में पठित जाव पद **दित्ते, वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहु-धन-बहु-जायरूव-रयए, आओग-पओग-संपउत्ते, विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूए, बहुजणस्स**—इन पदों का सूचक है। इनका अर्थ इस प्रकार है—मंकाति गाथापति दीप्त—तेजस्वी,विस्तृत-विपुल, भवन, शयन, आसन (चौकी आदि) यान—गाड़ी आदि, वाहन—घोड़े आदि धन-सुवर्ण और रजत आदि चांदी की बहुलता से युक्त था। अधमर्णों (ऋण लेने वाले) को वह अनेक प्रकार का ऋण व्याज पर दिया करता था। उसके घर पर भोजन करने के अनन्तर भी बहुत सा अन्न बाकी बच जाता था। उसके घर में दास-दासी आदि पुरुष और गाय, भैंस, बकरी आदि पशु थे तथा वह बहुतों से भी पराभव को प्राप्त नही हो पाता था तथा जनता में वह सशक्त तथा सम्माननीय था।

"आइगरे" का अर्थ है आदिकर" जैनशास्त्रानुसार प्रत्येक उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती नौ बलदेव और नौ वासुदेव होते है। इनमें तीर्थंकर धर्म के प्रवर्तक और धर्म नीति के संस्थापक होते हैं। तदनुसार इस वर्तमान अवसर्पिणी काल मे भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। इनमें पहले ऋषभदेव अन्तिम श्री महावीर स्वामी हैं। प्रत्येक तीर्थंकर अपने शुभतम अध्यवसाय से उपार्जित किये तीर्थंकर नाम कर्म के अनुसार तीर्थ की स्थापना अवश्य करते हैं, इसीलिये प्रत्येक तीर्थंकर ने अपने-अपने समय में धर्म की मर्यादा को सुव्यवस्थित किया है। यही उनकी धर्मप्रवर्तना तीर्थ-प्रवृत्ति के नाम से प्रख्यात है। इसी उद्देश्य से तीर्थंकर को आदिकर अर्थात् धर्म के आदि प्रवर्तक कहा जाता है।

"गुणसिलए जाव विहरइ—यहां पठित जाव पद—**चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहा-पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे**—इन पदों का बोधक है अर्थात् साधुवृत्ति के अनुकूल अवग्रह, आश्रय, उपलब्ध कर, संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए भावनायुक्त करते हुए।

"**जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव**"—का अर्थ है—भगवती सूत्र में जैसे गंगदत्त का वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन मंकाति गाथापति का समझना चाहिये। गंगदत्त भगवान के पास गए; उपदेश सुना, वैराग्य भावना उत्पन्न हुई, दीक्षित होने का संकल्प भगवान के सामने व्यक्त किया साथ में यह भी कहा कि 'भगवन् ! मैं अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर दीक्षा अंगीकार करूंगा।'

गंगदत्त की बिनती सुन कर भगवान बोले—'भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।'

इस के अनन्तर गंगदत्त घर गए। अपने बड़े लड़के को उन्होंने अपने घर का मुखिया बनाया आदि सभी बातें ज्यों की त्यों मंकाति के जीवन में भी जान लेनी चाहियें। इसी समानता को सूत्रकार ने "**जहा पण्णत्तीए**" आदि पदों द्वारा ध्वनित किया है।

"**णिक्खंते जाव अणगारे**"—यहाँ पठित **जाव** पद दीक्षार्थ शहर से निकले और भगवान की सेवा में उपस्थित हुए, भगवान से दीक्षित होने की प्रार्थना की, ईशानकोण में वस्त्राभूषण उतारकर केशलुञ्चन करने के अनन्तर दीक्षा-व्रत अंगीकार किया आदि सभी बातों का परिचायक है।

"**तहा रूवाणं थेराणं**"—का अर्थ है—तथारूप स्थविर। शास्त्रोक्त विधिविधान का सम्यग् रूपेण पालन करनेवाले महान सन्तों को तथारूप कहते हैं। स्थविर के तीन रूप हैं—**वयःस्थविर**, सूत्रस्थविर, प्रव्रज्या-स्थविर। साठ वर्ष की अवस्था के साधु को वयःस्थविर, स्थानांग और समवायांग सूत्र के ज्ञाता को सूत्र-स्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा-पर्यायवाले साधु को प्रव्रज्या-**स्थविर** कहा जाता है। इस सूत्र में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के द्वारा नवदीक्षित मंकाति मुनि को आचारांगादि अंग-शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन कराने का जो उल्लेख किया गया है वह वर्तमान काल के साधु-समुदाय और गच्छनायकों को ज्ञानाभ्यास की ओर अग्रसर होने की पावन-प्रेरणा प्रदान कर उन्हें ज्ञानालोक से आलोकित होने का शुभ सन्देश दे रहा है।

"**सामाइयमाइयाइं**"—का अर्थ है—सामायिक आदि में जिन के अनगार-धर्म में दीक्षित होनेवाले साधक को आचार-विधि को यथावत् समझने और यथाविधि उसका पालन करने के लिये आचार-प्रधान आध्यात्मिक शास्त्रों के ज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता होती है, इससे उसकी आचार-सम्बन्धी समस्त क्रियाएं ज्ञानपूर्वक अनुष्ठित होती हैं और उसके आत्म-विकास में सहायक बनती हैं। इसी अभिप्राय से यहां पर मंकाति के अधिकार में अनगार होने के अनन्तर आचारांगादि एकादश अंगों के अध्ययन का उल्लेख किया गया है। "**सामाइयमाइयाइं**" में सामायिक शब्द से आचार नाम के प्रथम अंग का ग्रहण अभीष्ट है। आचाराङ्गसूत्र में आचार-सम्बन्धी नियमों का बड़ा ही सुन्दरता से प्रतिपादन किया गया है।

"**सेसं जहा खंदगस्स**"—का अर्थ है—मंकाति मुनिवर का शेष वर्णन स्कन्दक कुमार के समान बताया गया है। उनकी जीवन-गाथा श्रीभगवती सूत्र में वर्णित हुई है। ग्यारह अंगों का अध्ययन करने के अनन्तर स्कन्दक मुनि ने जिस पद्धति से साधना-यात्रा सम्पन्न की थी उसी प्रकार मंकाति मुनि ने भी की।

"गुणरयण"—का अर्थ है गुण-रत्न। यह एक तप विशेष है, इसमें सोलह मास लगते हैं। इसके प्रथम मास में एक-एक उपवास दूसरे में दो-दो, यावत् सोलहवें मास में सोलह उपवास करने पड़ते हैं। जिनमें दिन को उकुडु आसन पर सूर्य के सम्मुख व रात्रि को वीरासन से वस्त्ररहित बैठने का विधान है।

"विपुले"—का अर्थ है विपुल। यह एक पर्वत विशेष का नाम है। इस पर्वत पर आरोहण करके मंकाति मुनि ने सिद्ध-पद प्राप्त किया था।

"दोच्चस्स उक्खेवओ"—का अर्थ है—द्वितीय अध्ययन के उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये। शास्त्रीय भाषा में यह प्रस्तावना वाक्य इस प्रकार है—

"जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स छट्ठस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। दोच्चस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?" इन पदों का अर्थ स्पष्ट ही है।

"एवं चेव जाव विपुले"—यहां पठित जाव पद मंकाति मुनिवर के समस्त संयमी जीवन की ओर संकेत कर रहा है। जिस प्रकार मंकाति गाथापति ने भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हो कर धर्मकथा सुनी, दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की, अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब का सारा दायित्व संभाल कर दीक्षा-व्रत अंगीकार करके संयम-साधना द्वारा अन्त में विपुल पर्वत पर सिद्ध-पद प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार किंकर्मा गाथापति ने भी अपने बड़े पुत्र को अपने घर का सारा भार सम्भाल कर, दीक्षा अंगीकार की थी और अन्त में विपुलगिरि पर निर्वाणपद प्राप्त किया था। इसी समानता को सूत्रकार ने **"एवं चेव जाव विपुले"** इन पदों द्वारा अभिव्यक्त किया है।

। दो अध्ययन समाप्त ।

तृतीय अध्ययन

अब सूत्रकार तृतीय अध्ययन का आरंभ करते हुए कहते हैं कि—

मूल—तच्चस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे, गुणसिलए चेतिए, सेणिए राया, चेल्लणा देवी। तत्थ णं रायगिहे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूते। तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स बंधुमती णामं भारिया होत्था, सूमालपाणिपाया। तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स नगरस्स बहिया, एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था। कण्हे जाव निउरंबभूते, दसद्ध-वण्ण-कुसुम-कुसुमिते पासादीए ४।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जत-पज्जत-पिति-पज्जयागए अणेगकुलपुरिसपरंपरागते मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खायतणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पल-सहस्स-णिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिति चेव मोग्गरपाणिजक्खभत्ते यावि होत्था, कल्लाकल्लिं पच्छिपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मुग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणयं करेइ, करित्ता जन्नुपायवडिए पणामं करेइ, ततो पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

छाया—तृतीयस्योत्क्षेपकः। एवं खलु जंबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं, गुणशिलकं चैत्यं, श्रेणिको राजा, चेलना देवी। तत्र राजगृहे अर्जुनको नाम मालाकारः परिवसति। आढ्यो यावद् अपरिभूतः। तस्यार्जुनकस्य मालाकारस्य बंधुमती नाम्नी भार्याऽऽसीत्, सुकुमारपाणिपादा। तस्यार्जुनकस्य मालाकारस्य राजगृहाद् नगराद् बहिः तत्र महानेकः पुष्पारामः आसीत्। कृष्णो यावद् निकुरंबभूतः। दशार्द्धवर्णकुसुमकुसुमितः प्रासादीयः ४।

तस्य पुष्पारामस्य अदूरसामंतः तत्र अर्जुनकस्य मालाकारस्य आर्यकप्रार्यकपितृपर्यायागतम् अनेककुलपुरुषपरम्परागतं मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनमासीत् । पुराणं दिव्यं सत्यं यथापूर्णभद्रः । तत्र मुद्गरपाणेः प्रतिमा एकं महान्तं पल-सहस्र-निष्पन्नमयोमयं मुद्गरं गृहीत्वा तिष्ठति । ततः सोऽर्जुनको मालाकारः बालप्रभृति चैव मुद्गरपाणियक्षभक्तश्चाप्यभूत् । कल्याकल्यि (प्रतिदिनं) पच्छिपिटकान् गृह्णाति, गृहीत्वा राजगृहनगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पुष्पारामस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुष्पोपचयं करोति, कृत्वा अग्र्याणि वराणि पुष्पाणि गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव मुद्गरपाणेः यक्षस्यायतनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मुद्गरपाणेः यक्षस्य महार्हं पुष्पार्चनं करोति, कृत्वा जानुपादपतितः प्रणामं करोति, ततः पश्चात् राजमार्गे वृत्ति कल्पयन् विहरति ।

पदार्थ—**तच्चस्स**—तृतीय अध्ययन के; **उक्खेवग्रो**—उत्क्षेपक—प्रस्तावना वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **जंबू !**—हे जम्बू !; **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल उस समय में; **रायगिहे**—राजगृह नाम का नगर था; **गुणसिलए चेतिए**—गुणशिलक नामक चैत्य था; **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा था; **चेल्लणा देवी**—चेलना नाम की रानी थी; **तत्थ णं रायगिहे**—उस राजगृह नगर में; **अज्जुणए णामं मालागारे परिवसइ**—अर्जुन नामक माली रहता था; **अड्ढे जाव अपरिभूए**—धनवान एवं जनता में सम्मानित था; **तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स**—उस अर्जुन माली का; **रायगिहस्स नगरस्स बहिया**—राजगृह नगर के बाहिर; **एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था**—एक महान पुष्पों का उद्यान था; **कण्हे**—वृक्षों की कृष्ण प्रभा से युक्त था; **जाव**—यावत्; **निउरंबभूते**—महामेघों के समुदाय के समान उस में वृक्षों का आधिक्य था; **दसद्ध-वण्ण-कुसुम-कुसुमिते**—पांच प्रकार के फूलों से सुशोभित हो रहा था; **पासादीए**—हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला था; ४—यह चार का अंक; **दरिसणिज्जे**—जिसे देख कर देखनेवाले की आंखें न थके; **अभिरूप**—जिसे एक बार देखने पर भी पुनः पुनः देखने की इच्छा निरन्तर बनी रहे; **प्रतिरूप**—जिस में देखनेवाले को सदा कुछ नवीनता ही दिखाई दे, इन अवशिष्ट पदों का बोधक है; **तस्स णं पुप्फारामस्स**—उस पुष्पोद्यान के; **अदूरसामंते**—न अति दूर और न अति निकट; **तत्थ णं अज्जुणयस्स**—वहां पर अर्जुन; **मालागारस्स**—माली का; **अज्जत-पज्जत-पिति-पज्जयागए**—आर्यक—दादा, प्रार्यक—पड़दादा तथा पिता इनके पर्यायक्रम अर्थात् परम्परा से आया हुआ; **अणेगकुलपुरिस-परंपरागते**—अनेक कुलपुरुषों की परम्परा से चला आ रहा; **मोग्गर-पाणिस्स**—मुद्गरपाणि (जिस के हाथ में मुद्गर हो) नामक; **जक्खस्स**—यक्ष का; **जक्खाययणे होत्था**—यक्षायतन अर्थात् यक्षमन्दिर था; **पोराणे**—प्राचीन था; **दिव्वे**—दिव्य—मनोहर; **सच्चे**—सत्य, उस की वाणी यथार्थ रहती थी; **जहा पुण्णभद्दे**—जिस प्रकार पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था उसी तरह का था; **तत्थ णं मुग्गरपाणिस्स**—वहां पर मुद्गरपाणि यक्ष की; **पडिमा एगं महं**—प्रतिमा—मूर्ति, एक महान; **पलसहस्सणिप्फण्णं**—हजार पल (परिमाण विशेष) से बने हुए; **अओमयं**—लोहे का; **मोग्गरं**—मुद्गर; **गहाय चिट्ठइ**—ग्रहण किये खड़ी थी ।

तए णं—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली; **बालप्पभिइं चेव**—बचपन से ही; **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि; **जक्खभत्ते यावि होत्था**—यक्ष का भक्त था; **कल्लाकल्लिं**—प्रतिदिन; **पच्छिपिडगाइं**—अनेक विध टोकरियों को; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है; **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके; **रायगिहाओ नगराओ**—राजगृह नगर से; **पडिनिक्खमइ**—निकलता है; **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर; **जेणेव पुप्फारामे**—जहां पर पुष्पोद्यान था; **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आता है; **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **पुप्फच्चयं करेइ**—पुष्पों का चयन करता है; **करित्ता**—पुष्प चयन करके; **अग्गाइं**—खिले हुए; **वराइं पुप्फाइं**—श्रेष्ठ पुष्पों फूलों को; **गहाइ गहित्ता जेणेव**—ग्रहण करता है और ग्रहण करके जहां पर; **मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे**—मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था; **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आता है; **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **मुग्गरपाणिस्स जक्खस्स**—मुद्गरपाणि यक्ष की; **महरिहं**—महार्हं—बड़ों के योग्य; **पुप्फच्चणं**—पुष्पों द्वारा पूजा; **करेइ**—करता है; **करित्ता**—पूजा करके; **जन्नुपायवडिए**—भूमि पर दोनों घुटने और पांव टेक कर (यक्ष-प्रतिमा को); **पणामं करेइ**—प्रणाम करता है; **करित्ता**—प्रणाम करके; **ततो पच्छा**—उसके पश्चात्; **रायमग्गंसि**—राजमार्ग—राजपथ पर; **वित्तिं**—आजीविका; **कप्पेमाणे विहरइ**—करता हुआ समय बिताता है।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्रीय छठे वर्ग के द्वितीय अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है उसका श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है अब मैं उसे सुनना चाहता हूं।

जम्बू अनगार की प्रार्थना सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

जम्बू ! उस समय उस काल में राजगृह नगर था, उसके बाहिर गुणशिलक नामक एक उद्यान था, नगर में महाराज श्रेणिक राज्य किया करते थे। इनकी पट्टरानी का नाम चेलना था।

राजगृह नगर में अर्जुन नाम का एक माली रहता था जो बड़ा धनवान था। नगर में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। उसकी धर्मपत्नी का नाम बंधुमती था। बंधुमती के हाथ-पांव बड़े कोमल थे। राजगृह नगर के बाहिर अर्जुनमाली का एक महान पुष्पोद्यान था, वृक्षों की कृष्णप्रभा उसकी शोभा बढ़ा रही थी। वृक्षों का उसमें इतना आधिक्य था

कि वह महामेघों का समुदाय ही दिखाई देता था। उसमें पांच वर्ण के पुष्प खिल रहे थे, उसे देखकर हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, एक बार देख लेने पर भी दर्शकों की आंखें उसे देखकर थकती नहीं थीं, एक बार देख लेने पर भी उसे देखने की लालसा निरन्तर बनी रहती थी। जब भी उसे देखा जाता था तभी देखनेवालों को उसमें कुछ नवीनता ही दिखलाई देती थी।

पुष्पोद्यान के पास मुद्गरपाणि नामक यक्ष का एक मन्दिर था। वह अर्जुनमाली के दादा, परदादा एवं पिता—इस प्रकार अनेक कुल-पुरुषों की परंपरा से चला आ रहा था। यह मन्दिर प्राचीन, दिव्य मनोहर और सत्य प्रभाववाला था। औपपातिक सूत्र में जैसे पूर्णभद्र का वर्णन किया गया है, वैसा ही इसका वर्णन समझ लेना चाहिए। इस मन्दिर में मुद्गरपाणि नामक यक्ष की एक मूर्ति थी। उस मूर्ति के हाथ में लोहे का एक मुद्गर था जिसका परिमाण हजार पल था।

अर्जुनमाली बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था। वह प्रतिदिन बेंत की बनी टोकरियां लेकर राजगृह नगर से निकलता और अपने पुष्पोद्यान में पहुंचता, वहां फूलों का चयन करके एक ढेर लगा लेता। उस ढेर में जो फूल विशेष रूप से खिले हुए तथा श्रेष्ठ होते थे उनको उठा लेता और मुद्गरपाणि के मन्दिर में जाकर मुद्गरपाणि यक्ष की महार्ह—बड़ों के योग्य, फूलों से पूजा करता था और भूमि पर घुटनों और पांवों को टेक कर नतमस्तक हो प्रणाम करता था, उसके अनन्तर राजपथ पर जाकर अपनी आजीविका किया करता था।

व्याख्या—इस सूत्र से प्रस्तुत छठे वर्ग के तृतीय अध्ययन का आरंभ होता है। इसमें अर्जुनमाली के जीवन का उल्लेख किया गया है। अर्जुनमाली राजगृह नगर का एक वैभव-सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वह पुष्पों का व्यापार किया करता था। उसके पास एक बहुत विशाल पुष्पवाटिका थी। जिसमें पांचों वर्णों के पुष्प पैदा होते थे। वह प्रतिदिन प्रातः उठता था अपनी पुष्पवाटिका में जाकर पुष्प तोड़कर उनका ढेर लगा लेता था, उनमें जो सुन्दर फूल होते थे उनको लेकर वह अपने इष्टदेव के मन्दिर में जाता था। उसका इष्टदेव मुद्गरपाणि नाम का एक यक्ष था जो उसका कुल देवता था। इसी यक्ष का पुष्पवाटिका में एक मन्दिर था। मन्दिर प्राचीन, सुन्दर और सत्य प्रभाव वाला था। इसी मन्दिर में अर्जुनमाली फूल लेकर पहुंचता और अपने इष्टदेव की उन फूलों से पूजा करता, भूमि पर घुटने टेक कर वह नतमस्तक होकर उसको नमस्कार करता। यह सब कुछ करने के अनन्तर फिर वह फूलों से भरी टोकरियां लेकर बाजार में जाता और उन फूलों को बेचकर अपनी

आजीविका चलाता। अर्जुनमाली के विवरण से यह पता चलता है कि उस समय कुल-परम्परागत देवों—कुलदेवों की पूजा का विशेष प्रचार था और लोग कुलदेवों की पूजा करने के अनन्तर ही अपने व्यापार आदि कार्यों में प्रवृत्त होते थे। यह सब कुछ करने के पीछे लोगों की केवल लोकैषणा ही होती थी। कोई धन की इच्छा से देव-पूजा करता था, कोई पुत्र की इच्छा से, किसी के मन में सम्मान की लालसा होती थी तो किसी के मन में ऐहिक सुखों की। इस तरह संसारी जीवन के उत्कर्ष के लिये ही देवपूजा की जाती थी। आत्मा के उत्थान एवं कल्याण के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। यही कारण है कि आत्म-कल्याण का संसार को सन्देश देनेवाला जैनधर्म आत्म-कल्याण की दृष्टि से देवपूजा को कोई महत्व नहीं देता। इसे यह संसार का मार्ग कहता है। मोक्षमार्ग को तो अहिंसा संयम और तप की आराधना तथा सम्यग्-दर्शन ज्ञान एवं चारित्र की उपासना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

"उक्खेवओ"—का अर्थ है—उत्क्षेपक, प्रस्तावना-वाक्य की कल्पना। शास्त्रीय भाषा में प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है—

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेण अट्ठमस्स अंगस्स छट्ठस्स वग्गस्स बोयस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?" इन पदों का भावार्थ मूलार्थ में दिया जा चुका है—

"अड्ढे जाव अपरिभूते"—यहां पठित जाव पद से विवक्षित पदों का संकेत पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर दिया गया है।

पुप्फारामे—का अर्थ है—पुष्पों का आराम अर्थात् उद्यान।

"किण्हे जाव निउरंबभूते"—इस वाक्य में पठित जाव पद औपपातिक सूत्र में पठित—किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए, सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए नीले, नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण कडिय कडिच्छाए रम्मे महामेहे—इन पदों का सूचक है। इन का अर्थ है—वह पुष्पोद्यान कहीं कृष्ण वर्ण का था, श्याम कान्तिवाला था, कहीं मोरके गले की तरह नील कान्तिवाला था, कहीं तोते की चोंच की तरह हरी कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कहीं शीत कान्तिवाला, कहीं स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणों की अधिकता के कारण कहीं तीव्र कान्तिवाला, कहीं कृष्ण छायावाला, कहीं नील हरित स्निग्ध शीत एवं तीव्र छायावाला, शाखाओं के आपस में अधिक मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघों के समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था।

"दसद्धवण्ण-कुसुम-कुसुमिते"—दशार्द्धवर्णानि पञ्चवर्णानि यानि कुसुमानि तैः कुसुमितः पुष्पितः अर्थात् दशार्द्ध (दश का अर्धभाग) पांच वर्ण के कुसुमों से युक्त था।

"पासातीए ४"—यहां के चार के अंक से सूत्रकार ने जिन पदों की ओर संकेत किया है, उनको पदार्थ में दे दिया गया है।

"अदूरसामंते"—नातिदूरे नातिनिकटे—अर्थात् जो न अति दूर हो और न अधिक निकट हो उसे अदूर-सामन्त कहते हैं।

"अज्जय-पज्जय-पिइ-पज्जयागए"—आर्यकः पितामहः, प्रार्यकः प्रपितामहः, पिता जनकः, आर्यकश्च प्रार्यकश्च पिता च आर्यक-प्रार्यक-पितरः, तेषां पर्यायः क्रमः, तेन आगतम्—अर्थात् आर्यक बाबा को कहते हैं, प्रार्यक परदादे को कहते हैं। इनके क्रम से अर्थात् पहले परदादे से, फिर दादे से, फिर पिता से इस प्रकार के क्रम से जो चला आ रहा हो उसे 'आर्यक-प्रार्यक-पितृ-पर्यायागत कहते हैं।

"अणेगकुलपुरिस-परंपरागते" अनेक पूर्वपुरुष-परम्परया समागतं—यह पद यक्ष के यक्षायतन का विशेषण है। यह विशेषण **"अज्जय"** इस विशेषण का ही स्पष्टीकरण कर रहा है। इसका भाव यह है कि जो अनेक पूर्व पुरुषों की परम्परा से चला हुआ हो उसे 'अनेक-पुरुष परम्परागत' कहा जाता है।

"मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स"—का अर्थ है—मुद्गरपाणि नामक यक्ष। यक्ष एक प्रकार का व्यन्तर देव माना जाता है जिसके हाथ में मुद्गर (एक प्राचीन अस्त्र) हो उसे मुद्गरपाणि कहते हैं। अर्जुनमाली के उपवन में जिस यक्ष का मन्दिर था उस यक्ष की प्रतिमा के हाथ में हजार पल का एक मुद्गर था। प्रतीत होता है इसी कारण से इस यक्ष का नाम **मुद्गरपाणि** विख्यात हो गया था।

"पोराणे-दिव्वे-सच्चे"—ये तीनों शब्द यक्ष-मन्दिर के विशेषण हैं। पुराण शब्द प्राचीन का बोधक है, दिव्य—सुन्दर और सत्य शब्द सत्यता से युक्त को कहते हैं। इन विशेषणों से ध्वनित होता है कि अर्जुनमाली के उपवन में जो यक्ष का मन्दिर था वह बहुत पुराना था, उसका निर्माण बहुत सुन्दर ढंग का था तथा उस यक्ष के समक्ष जो मनौती मानी जाती थी वह पूर्ण हो जाती थी।

"जहापुण्णभद्दे"—का अर्थ है—जिस प्रकार पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था वैसा ही मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था। औपपातिक सूत्र में पूर्णभद्र यक्ष के यक्षायतन का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है।

"पलसहस्सणिप्फण्णं—पलसहस्र-निष्पन्नम्" इसका अर्थ है—जिसका निर्माण हजार पलों से किया गया है। पल शब्द के निम्नोक्त अर्थ हैं—दो कर्ष प्रमाण (कर्ष १० माशे का होता है) **कर्षाभ्यां पलं प्रोक्तं, कर्षः स्याद्दशमाषकः।** शार्ङ्गधरसंहिता। ४ कर्ष [कर्ष १६ माशे का एक मान] मान का एक प्राचीन तोल (बृहत् हिन्दी कोष)। एक बहुत छोटी तोल, चार तोला (प्राकृत शब्द महार्णव—पाइयसद्दमहण्णवो) एक तोल—मान विशेष—अर्द्धमागधी कोष)। इसमें चार तोले का यदि एक पल माना जाय तो यक्ष के हाथ में १ मन १० सेर का विशाल मुद्गर था।

"पच्छिपिडगाइं"—पच्छिपिटकान्-वेत्रनिर्मित-पिटकान्, यहां पच्छि और पिटक ये दो शब्द हैं। पच्छी यह देशीय भाषा का शब्द है। जो छोटी टोकरी के लिये प्रयुक्त होता है। पिटक शब्द भी पिटारी का बोधक है। दो समानार्थक पदों का प्रयोग अनेकविध पिटारियों अर्थात् टोकरियों का बोधक है। भाव यह है कि अर्जुनमाली अनेक प्रकार की टोकरियां लेकर पुष्पवाटिका में जाया करता था।

"पुप्फुच्चयं"—पुष्पोच्चयं—पुष्पराशिं। यहां प्रयुक्त पुष्पोच्चयं शब्द पुष्पों की राशि अर्थात् पुष्पों के ढेर का बोधक है।

"अग्घाइं वराइं"—अग्र्याणि अग्रे भवानि विकसितानि, वराणि श्रेष्ठानि। आगे होनेवाले को अग्र्य कहते हैं, यह पुष्प का विशेषण है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं— १. जो पहले चुने हुए हों या खिले हुए हों। प्रस्तुत में दोनों ही अर्थ संगत हैं। वर उत्तम को कहते हैं।

"महरिहं पुप्फच्चणयं"—महार्हं पुष्पार्चनकम्—महर्हं, शब्द का अर्थ है बड़ों के योग्य। पुष्पों द्वारा की गई पूजा को **पुष्पार्चनक** कहते हैं।

"जन्नुपायवडिए"—जानुपादपतितः—भूमौ उभे जानुनी पादौ च पातयित्वा प्रणतः सन्—अर्थात् जो भूमि पर दोनों घुटने और पांव टेककर नतमस्तक हो रहा है उसे **'जानुपादपतित'** कहते हैं।

"वित्तिं कप्पेमाणे"—वृत्तिं जीविकां कल्पयन्—जीविकार्थं पुष्पविक्रयं कुर्वाणः, अर्थात् वृत्ति जीविका, रोजी का नाम है। पुष्प-विक्रय करता हुआ इस अर्थ का बोधक कल्पयन् शब्द है।

प्रस्तुत सूत्र में अर्जुनमाली का जीवन परिचय कराने के साथ-साथ उसकी आजीविका के साधन का उलेख भी किया गया है। अब उससे आगे के जीवन का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**तत्थ णं रायगिहे नगरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ। अड्ढा जाव अपरिभूता, जंकयसुकया यावि होत्था। तए णं रायगिहे णयरे अन्नदा कदाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जमिति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धि पच्छियपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णगरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बन्धुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ। तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागता अभिरममाणा चिट्ठंति।**

छाया—तत्र राजगृहे नगरे ललिता नाम्नी गोष्ठी परिवसति। आढ्या यावदपरिभूता। यत्कृतसुकृता चाप्यासीत्। तत्र राजगृहे नगरे अन्यदा कदाचिद् प्रमोदः घुष्टश्चाप्यभवत्। ततोऽर्जुनको मालाकारः कल्ये प्रभूततरैः पुष्पैः कार्यमिति कृत्वा, प्रत्यूषकालसमये बन्धुमत्या भार्यया सार्धं पच्छिपिटकान् गृह्णाति, गृहीत्वा स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहन्नगरात् मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पुष्पारामस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य बन्धुमत्या भार्यया सार्धं पुष्पोच्चयं करोति। ततस्तस्याः ललितगोष्ठ्याः षट् गोष्ठिकाः पुरुषाः यत्रैव मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनं तत्रैवोपागताः अभिरममाणास्तिष्ठन्ति।

पदार्थ—**तत्थ णं**—वहां; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर में; **ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ**—ललित नामक समान आयुवाले मित्रों की मण्डली निवास करती थी; **अड्ढा**—यह मण्डली

अत्यन्त समृद्ध थी आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न थी; **जाव अपरिभूता**—यावत् नगर में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई उसका तिरस्कार न कर सकता था; **य**—और राजा का अनुग्रह प्राप्त होने से; **जंकयसुकया**—यत्कृतसुकृता—जो कर लिया जाए उसे ही ठीक समझनेवाली; **होत्था**—थी; **तए णं रायगिहे णयरे**—उस के अनन्तर राजगृह नगर में; **अन्नदा कदाइ**—किसी अन्य समय; **पमोदे घुट्ठे यावि होत्था**—एक प्रमोद महोत्सव की घुष्ट—घोषणा हुई; **तए णं से अज्जुणए—माला-गारे**—उसके बाद, वह अर्जुन माली सोचने लगा कि; **कल्लं**—आगामी दिन; **पभूयतराएहिं**—अधिक; **पुप्फेहिं कज्जं**—फूलों की आवश्यकता होगी; **इति कट्टु**—ऐसा विचार करके, **पच्चूसकालसमयंसि**—प्रातः काल हो; **बंधुमईए भारियाए**—अपनी बंधुमती पत्नी के; **सद्धिं**—साथ; **पच्छिपिडगाइं**—अनेक विध टोकरियां; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है; **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके; **सयाओ गिहाओ**—अपने घर से; **पडिनिक्खमइ**—निकलता है; **पडिनिक्खमित्ता**—और निकल कर; **रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं**—राजगृह नगर के बीचों बीच से; **णिगच्छइ**—निकलता है; **णिगच्छित्ता**—निकल कर; **जेणेव**—जहां पर; **पुप्फारामे**—पुष्पोद्यान था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आता है; **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर; **बंधुमईए भारियाए**—बंधुमती पत्नी के; **सद्धिं**—साथ; **पुप्फुच्चयं करेइ**—पुष्पों का संचय करता है; **तए णं**—उस के अनन्तर; **तीसे ललियाए गोट्ठीए**—उस ललित नामक मित्र मण्डली के; **छ**—छः; **गोट्ठिल्ला पुरिसा**—मण्डली के साथी पुरुष; **जेणेव**—जहां पर; **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि; **जक्खस्स**—यक्ष का; **जक्खाययणे**—यक्षायतन अर्थात् मन्दिर था; **तेणेव उवागता**—वहा पर आते है; **अभिरममाणा चिट्ठंति**—और क्रीडा करते हुए ठहरते हैं।

मूलार्थ—राजगृह नगर में ललित नामक एक मित्र-मण्डली निवास करती थी। इसकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी तथा नगर में उसको बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई इस मण्डली का अपमान न कर सकता था। यह मंडली जो कुछ कर दे उसे ही यथार्थ माना जाता था। उस पर किसी द्वारा की गई आलोचना को वह अनधिकार चेष्टा मानती थी।

एक बार राजगृह नगर में एक महोत्सव की घोषणा हुई। इस घोषणा को सुन कर अर्जुन माली ने विचार किया—उत्सव के कारण कल बहुत से पुष्पों की आवश्यकता होगी। ऐसा विचार कर अपनी धर्मपत्नी बंधुमती के साथ अनेकों टोकरियां ले कर अर्जुनमाली प्रातःकाल ही अपने घर से चला, राजगृह नगर के बीचों-बीच होता हुआ, अपने पुष्पोद्यान में पहुंचा और अपनी धर्मपत्नी बंधुमती के साथ पुष्प-संचय करने लगा।

इधर उस ललित नामक मित्रमण्डली के छः गोष्ठिक अर्थात् सदस्य पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर में आये और यथेच्छ क्रीड़ा करने लगे ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में राजगृह नगर की ललित नामक एक मित्रमण्डली द्वारा महोत्सव की घोषणा, तदर्थ पुष्पों की अधिक आवश्यकता के कारण अर्जुनमाली का अपनी भार्या के साथ पुष्प-संचयार्थ पुष्प-वाटिका में जाना, पुष्प-संचय करना तथा वहां मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास राजगृह नगर की विख्यात मित्र मण्डली के छः सदस्यों का पहुँच कर यथेच्छ क्रीड़ा करना, इन बातों का उल्लेख किया गया है ।

इस सूत्र में पठित कठिन पदों की व्याख्या इस प्रकार है—

"**ललिया नामं गोट्ठी**"*—की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

"**ललिय त्ति—दुर्ललितगोष्ठी, भुजंगसमुदायः**"—दुर्ललित—शब्द लाड-प्यार से बिगड़ा हुआ, दुलार से खराब किया हुआ, नटखट, उपद्रवी, दुष्ट इन अर्थों का बोधक है । भुजग शब्द जार, आशिक इस अर्थ का तथा समुदाय समूह का परिचायक है । इस तरह वृत्तिकार अभयदेव सूरी के शब्दों में राजगृह की ललित-गोष्ठी व्यभिचारी पुरुषों की एक टोली थी । यदि केवल 'ललित' शब्द की ओर देखते है तो इसका अर्थ—क्रीड़ाशील, कामी, सुन्दर रमणीय, सरल, निर्दोष, ईप्सित, प्रिय, ऐसा मिलता है ।

अर्द्धमागधी-कोषकार ललिता शब्द का अर्थ करते हैं—राजगृह की छः मनुष्यों की एक मण्डली का नाम ।

जिस राजगृह नगरी में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का शासन रहा हो, जिसमें महात्मा गौतम बुद्ध की मधुर वाणी मुखरित हुई हो और जिस नगरी में गोशाल के व्याख्यानों की धाक जमी हो, उस नगरी में व्यभिचारी पुरुषों की निरंकुश मण्डली का होना नितान्त असम्भव जान पड़ता है । यह सत्य है कि मनुष्य भूल कर सकता है, वह आचार-विचार से किसी समय भटक सकता है, अक्षम्य अपराध भी उससे बन सकते हैं, पर उसकी दोष-मूलक प्रवृत्ति का नागरिकों की ओर से सर्वत्र सम्मान एवं समर्थन होना यह असंभव ही प्रतीत होता है ।

किसी-किसी हस्तलिखित प्रति में "**ललिया नामं गोट्ठी**" के स्थान पर "**ललिया नामं छ गोट्ठी**" यह पाठ देखने में आता है, परन्तु यह पाठ ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रस्तुत सूत्र में आगे चल कर—"**तीसे ललियाते गोट्ठीते छ गोट्ठिल्ला**" ऐसा पाठ आता है । यहां प्रयुक्त 'छ' शब्द की फिर आवश्यकता ही नहीं रहती ।

---

* विद्वद्वर्य श्रीघासीलाल जी महाराज अपने अन्तगडसूत्र में '**ललियानामं गोट्ठी**' इन पदों का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"**ललिता नाम्नी गोष्ठी—समानवयस्कमित्रमण्डली**"—अर्थात् ललिता नाम की समान आयुवाले मित्रों की एक मण्डली ।

"अड्डा जाव अपरिभूता"—यहां पठित **जाव** पद से अभिप्रेत पदों की सूचना पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर दी जा चुकी है। अन्तर केवल लिंग का है। वहां पुल्लिंग पदों का प्रयोग हुआ है और प्रस्तुत में स्त्रीलिंग शब्दों का ग्रहण किया गया है।

"जंकयसुकया"—यत्कृतं तदेव सुकृतं श्रेष्ठं यस्याः सा यत्कृतसुकृता, राजाज्ञावशात् स्वविचारानुकूलाचरणपरायणेत्यर्थः—जिसके सभी कार्य श्रेष्ठ समझे जाते हो उसे **यत्कृत-सुकृता** कहते हैं, यह मित्रमण्डली का विशेषण है। टीकाकार कहते है कि राजा की ओर से उसे पूरी छूट मिली हुई थी, अतः वह मण्डली अपने विचारों के अनुकूल मनमाने कार्य करनेवाली थी। आचार्य अभयदेव के शब्दों में इस पद की व्याख्या इस प्रकार है—

"जंकयसुकयत्ति—यदेव कृतं तदेव शोभनं व तदेव सुष्ठु-कृतमित्यभिन्यते, पितृपौरादिभिर्यस्याः सा यत्कृतसुकृता"—अर्थात् वह मित्र मण्डली जो कुछ भी अच्छा-बुरा काम करती थी उनके माता-पिता तथा नगर वालों की ओर से उसको अच्छा ही माना जाता था।

एक दल किसी नगर में अच्छा बुरा जो चाहे करता रहे, उस पर कोई आपत्ति न करे, उसकी कोई आलोचना न करे, उसकी दुष्प्रवृत्तियों को शान्तिपूर्वक सब देखते रहें, या उसका समर्थन करते रहें या बिल्कुल मौन रहें, इस के दो ही कारण हो सकते हैं—पहला यह कि वह इतनी विश्वास पात्र एवं प्रामाणिक है कि उस पर किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता। दूसरा कारण यह हो सकता है कि—वह दल आचार-विचार से गिरा हुआ हो, परन्तु उस दल के सदस्य शासन से सम्बन्धित हैं, उनकी पहुंच बहुत दूर तक है, जन, धन, बल के प्रकर्ष से उस दल का सर्वत्र आतंक छाया हुआ है, परिणामस्वरूप भावी अनिष्ट के भय के कारण कोई व्यक्ति उसका विरोध नही करता और दल की सन्तुष्टि के लिये समय-समय पर उसका समर्थन भी कर देता है।

राजगृह नगरी की मित्रमण्डली के प्रभाव में उक्त दोनों कारणों में से कौन-सा कारण काम कर रहा है, इसके सम्बन्ध में असंदिग्ध रूप में कुछ कहना कठिन है। अर्जुनमाली की धर्मपत्नी बंधुमती के साथ जब अनाचार सेवन की घटना को देखते हैं तब तो यह मित्रमण्डली व्यभिचारी ही दिखाई देती है, पर इस घटना के अतिरिक्त इस प्रकार की अन्य किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। केवल एक भूल को लेकर एक मण्डली को सर्वथा व्यभिचारिणी, भ्रष्टाचारिणी कहना न्याय-संगत नहीं है।

"पमोदे"—प्रमोद—सामान्य रूप से इस शब्द का अर्थ 'हर्ष' किया जाता है, परन्तु यहां **'प्रमोद'** शब्द महोत्सव का बोधक है।

"पच्छियपडियाइ"—पच्छिपिटकान्—यहां पर भी **पच्छिक-पिटक** शब्द टोकरियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

"पुप्फुच्चयं"—पुष्पोच्चयम्—एकत्र स्थले पुष्पपुञ्जम्—अर्थात् एक स्थान पर एकत्रित पुष्पों के समुदाय को 'पुष्पोच्चय' कहते हैं।

"अभिरममाणा"—अभिरममाणाः—क्रीडन्तः, अर्थात् क्रीड़ा करते हुए।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि अर्जुन माली अपनी बंधुमती भार्या के साथ पुष्पोद्यान में पुष्प-संग्रह कर रहा था और उधर राजगृह नगर की ललित नामक प्रसिद्ध मित्रमण्डली के ६ सदस्य वहां आकर क्रीड़ा में लग गए। इस के अनन्तर क्या हुआ? इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए णं छ गोट्ठिला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी—

एस णं देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडयबंधणयं करित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए, त्ति कट्टु, एयमट्ठं अन्नमन्नस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति, निच्चला, निप्फंदा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणि-जक्खाययणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, जन्नुपायपडिए पणामं करेइ। तए णं छ गोट्ठिला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति गेण्हित्ता अवओडयबंधणं करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विपुलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

छाया—ततः सोऽर्जुनको मालाकारः बंधुमत्या भार्यया सार्द्धं पुष्पोच्चयं करोति, कृत्वा अग्र्याणि वराणि पुष्पाणि गृहीत्वा यत्रैव मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनं तत्रैव उपागच्छति। ततः षट् गोष्ठिकाः पुरुषाः अर्जुनकं मालाकारं बंधुमत्या भार्यया सार्धमागच्छन्तं पश्यन्ति, दृष्ट्वा अन्योन्यमेवमवदन्—

एष देवानुप्रियाः! अर्जुनको मालाकारः बंधुमत्या भार्यया सार्द्धमिह शीघ्रमागच्छति, तच्छ्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अर्जुनकं मालाकारमवकोटकबंधनकं कृत्वा बंधुमत्या भार्यया सार्धं विपुलानि भोगभोगानि भुंजमानानां विहर्तुम्, इति कृत्वा एतमर्थमन्योन्यं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य कपाटान्तरेषु निलीयन्ते, निश्चलाः निष्पन्दाः तूष्णीकाः प्रच्छन्नास्तिष्ठन्ति। ततः सोऽर्जुनको मालाकारः बन्धुमत्या भार्यया सार्धं यत्रैव मुद्गरपाणियक्षायतनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आलोकयन् प्रणामं करोति, कृत्वा महार्हां पुष्पार्चनिकां करोति, कृत्वा जानुपादपतितः प्रणामं करोति। ततस्ते गोष्ठिकाः पुरुषाः द्रुतं द्रुतं कपाटान्तरेभ्यः निर्गच्छन्ति, निर्गत्य अर्जुनकं मालाकारं गृह्णन्ति, गृहीत्वा अवकोटकबन्धनं कुर्वन्ति, कृत्वा बन्धुमत्या मालाकारिण्या सार्धं विपुलान् भोगभोगान् भुंजानाः विहरन्ति।

पदार्थ—**तते**—उसके अन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये; **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली अपनी; **भारियाए बंधुमईए सद्धि**—भार्या बंधुमती के साथ; **पुप्फुच्चयं करेइ**—पुष्पों को एकत्रित करता है; **करित्ता**—करके; **अग्गाइं वराइं**—अग्र-खिले हुए एवं श्रेष्ठ; **पुप्फाइं गहाय**—फूलों को ग्रहण करके; **जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स**—जहां पर मुद्गरपाण यक्ष का; **जक्खायणे**—यक्षायतन था; **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आता है; **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **तए णं छ गोट्ठिला पुरिसा**—उसके बाद ६ गोष्ठिक पुरुष; **अज्जुणयं मालागारं**—अर्जुनमाली को; **बंधुमईए भारियाए सद्धि**—बंधुमती भार्या के साथ; **एज्जमाणं पासंति**—आते हुए को देखते हैं, **पासित्ता**—देखकर; **अन्नमन्नं**—एक दूसरे को; **एवं**—इसप्रकार; **वयासी**—कहने लगे—

देवाणुप्पिया !—साथियो !; **एस अज्जुणए मालागारे**—यह अर्जुनमाली; **बंधुमईए भारियाए सद्धि**—बंधुमती भार्या के साथ; **इहं हव्वमागच्छइ**—यहां पर शीघ्र आ रहा है; **तं खलु देवाणुप्पिया !** अतः दोस्तो !; **अम्हं सेयं**—हमें चाहिए कि; **अज्जुणयं मालागारं**—अर्जुनमाली को; **अवओडय-बंधणं**—अवकोटक बधन से बांध; **करित्ता**—करके; **बंधुमईए भारियाए सद्धि**—बधुमती भार्या के साथ; **विपुलाइं भोगभोगाइं**—भोगने योग्य भोगोंको यथेच्छ; **भुंजमाणाणं विहरित्तए**—उपभोग करते हुए विहरण करे; **त्तिकट्टु एयमट्ठं**—ऐसा विचार करके, इस अर्थ—बात को; **अन्नमन्नस्स पडिसुणेंति**—परस्पर स्वीकार करते हैं; **पडिसुणित्ता**—स्वीकार करके; **कवाडंतरेसु**—मन्दिर के दरवाजे के पीछे; **निलुक्कन्ति**—छुप जाते हैं; **निच्चला**—निश्चल रूप से; **निप्फंदा**—निष्पन्द—कम्पन रहित; **तुसिणीया**—बिलकुल मौन; **पच्छण्णा**—छिपकर; **चिट्ठन्ति**—खड़े हो जाते है। **तते णं**—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली; **बंधुमतीए भारियाए सद्धि**—बंधुमती भार्या के साथ; **जेणेव मोग्गरपाणि जक्खायणे**—जहां पर मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था; वहां पर, **उवागच्छइ**— आता है, **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **आलोए पणामे करेइ**—यक्ष की मूर्ति को देखकर, नमस्कार करता है; **करित्ता**—नमस्कार करके; **महरिहं**—महार्ह—बड़ों के योग्य; **पुप्फच्चणं**—पुष्पार्चन, पुष्पों द्वारा पूजन; **करेइ**—करता है; **करित्ता**—करके; **जन्नुपायपडिए**—घुटने और पांव टेक कर; **पणामं करेइ**—प्रणाम करता है; **करित्ता**—करके; **तए णं**—उसके बाद; **छ गोट्ठिल्ला पुरिसा**—६ गोष्ठिक पुरुष; **दवदवस्स**—बड़ी शीघ्रता से; **कवाडंतरेहिंतो**—दरवाजों के पीछे से; **णिग्गच्छंति**—निकलते है; **णिग्गच्छित्ता**—निकलकर; **अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति**—अर्जुनमाली को पकड़ लेते हैं; **गेण्हित्ता**—पकड़कर; **अवओडगबंधणं**—अवकोटक बंधन (जिस बंधन में गली में रस्सी डालकर पीठ के पीछे से ले जाकर भुजाओं को बांधा जाये) से युक्त; **करेंति**—करते हैं; **करित्ता**—करके; **बंधुमईए मालागरीए सद्धि**—बंधुमतीमालन के साथ; **विपुलाइं-भोगभोगाइं**—विपुल यथेच्छ शब्दादि विषयों का; **भुंजमाणा विहरंति**—भोग करने लगे।

मूलार्थ—उसके अनन्तर अपनी धर्मपत्नी बंधुमती के साथ अर्जुनमाली ने पुष्पों का संग्रह किया, उसमें जो पुष्प प्रधान एवं श्रेष्ठ थे, उनको लेकर वह मुद्गरपाणि यक्ष

के मन्दिर की ओर चल पड़ा। बंधुमती भार्या के साथ अर्जुनमाली को आते देखकर मित्रमण्डली के सदस्य आपस में इस प्रकार कहने लगे।

मित्रो! अर्जुनमाली अपनी बंधुमती पत्नी के साथ इधर आ रहा है सो आज हमें अर्जुनमाली को अवकोटक-बंधन से बांधकर उसकी बंधुमती पत्नी के साथ यथेच्छ भोग भोगने चाहिए। सभी साथियों ने इस बात को स्वीकार किया और वे सब के सब यक्ष-मन्दिर के दरवाजे के पीछे छुपकर. निश्चल, निष्पन्द और मौन भाव से खड़े हो गए। अर्जुनमाली ने बंधुमती भार्या के साथ यक्ष-मन्दिर में प्रवेश किया और यक्षमूर्ति के दर्शन और उसे प्रणाम करके पुष्पों द्वारा उसका पूजन करगे लगा। पूजासे निवृत्त होकर घुटने और पांव टेककर उसने यक्ष को नमस्कार किया, जब अर्जुनमाली घुटने एवं पांव टेक कर यक्ष-मूर्ति को प्रणाम कर रहा था तब वे छ पुरुष बड़ी शीघ्रता से दरवाजों के पीछे से निकले और उन्होंने अर्जुनमाली को पकड़कर अवकोटकबंधन से बांध दिया। अर्जुनमाली से सर्वथा निश्चिन्त हो जाने पर वे छहों साथी बंधुमती मालिन के साथ यथेच्छ विषयभोग करने लगे।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में अर्जनमाली का पुष्पों को चुनकर मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर में अपनी बंधुमती भार्या को साथ लेकर यक्ष-पूजा करने के लिये आना, उसके पूजन में संलग्न होजाने पर राज-गृह नगरी के प्रसिद्ध मित्रमण्डल के ६ साथियों द्वारा अवकोटकबंधन द्वारा उसका बांधा जाना तथा उसकी बंधुमती पत्नी के साथ उनका अनाचार सेवन करना, इन बातों का उल्लेख किया गया है। नीति-शास्त्र में लिखा है—

"यौवनं धनसम्पत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

यौवन, धन, सम्पत्ति प्रभुत्व तथा अविवेक, यह एक एक बात भी अनर्थों का कारण है फिर जहां ये चारों ही एकत्रित हो जायें, वहां तो कहना ही क्या है? वहां तो सर्वतोमुखी विनाश अवश्यंभावी होता है।

राजगृह नगर के प्रसिद्ध मित्रमण्डल का परिचय दिया जा चुका है। इसी मण्डल के छः साथी अर्जुनमाली के पुष्पोद्यान में पहुंचे हुए थे, इन्होंने जब बंधुमती को देखा तो उन पर वासना का भूत सवार हो गया, परिणाम स्वरूप उन्होंने बंधुमती को पकड़ कर उसके साथ अनाचार का सेवन करना आरंभ कर दिया। मन्दिर जैसे पवित्र धार्मिक स्थान में किसी नारी पर बलात्कार करना कितनी

अधम एवं जघन्य चेष्टा है ? पर जहां अंधी जवानी हो, धन का नशा हो, अधिकारों का घमण्ड हो तथा हानि-लाभ के लिये सोचने की शक्ति का अभाव हो वहां यह सब कुछ हो जाता है।

"अगाइं वराइं"—इन शब्दों का अर्थ पीछे पृष्ठ २८१ पर दिया जा चुका है।

"अवओडयबंधणयं—अवकोटकबंधनम्" गले रज्जुं कृत्वा बाहू पृष्ठदेशे आनीय यद् बन्धनं तदवकोटकमुच्यते, तादृशं बंधनं यस्य सः—अर्थात् गले में रस्सी डालकर उसे पीछे मोड़ना तथा दोनों भुजाओं को पीठ के पीछे ले जाकर बांधना **अवकोटक** बन्धन कहलाता है। जन साधारण की भाषा में इसी को मुश्कें बांधना कहते हैं।

"अवओडय"—इस शब्द के संस्कृत भाषा में—अवमोटन और अवकोटक ये दोनों ही प्रतिरूप बन सकते हैं।

"भोग-भोगाइं"—शब्द में भोग शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है इनमें प्रथम भोग शब्द भोगार्ह—'भोग के योग्य' इस अर्थ का बोधक है तथा दूसरा भोग शब्द 'शब्द-रूप-रस-गंध आदि विषय' इस अर्थ का परिचायक है।

"कवाडंतरेसु"—कपाटान्तरेषु—यक्षायतनकपाटपृष्ठभागेषु—अर्थात् यक्ष के मन्दिर के कपाटों—दरवाजों के पिछले भागों में। इस शब्द से प्रकट होता है कि यक्ष का मन्दिर बड़ा विशाल था और उसके दरवाजे इतने विशाल थे कि उनके पीछे छः आदमी छिप कर बैठ गये। इसके अतिरिक्त इससे यह भी पता चलता है कि अर्जुनमाली का पुष्पोद्यान और यक्ष-मन्दिर सभी के लिये खुले थे, उनमें किसी के आने जाने पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं था।

"निच्चला, निप्फंदा, तुसिणीया, पच्छण्णा—निश्चलाः शरीरव्यापाररहिताः, निष्पन्दाः स्पन्दनरहिताः अवरुद्धश्वासोच्छ्वासाः, तूष्णीकाः मौनाः, प्रच्छन्नाः कपाटान्तर्हिताः। यहां निश्चल, निष्पंद, तूष्णीक और प्रच्छन्न, ये चार शब्द हैं। शरीर के व्यापार से रहित को निश्चल, कम्पन से रहित को निष्पन्द, मौन रहनेवाले व्यक्ति को तूष्णीक और छिपे हुए को प्रच्छन्न कहा जाता है। तो इन छ गोष्ठी-पुरुषों ने अपने आप को ऐसा बना रखा था मानो मन्दिर में हैं ही नहीं।

"आलोए"—आलोकयन्—मुद्गरपाणिं यक्षं पश्यन्—अर्थात् यक्ष को देखते ही। अर्जुन माली जब यक्ष-मन्दिर में गया तो अपने आराध्य यक्ष को देखते ही उसके चरणों में अपना मस्तक झुका दिया। इस से अर्जुन माली की यक्ष के प्रति अगाध निष्ठा एवं श्रद्धा की अभिव्यक्ति हो रही है।

"दवदवस्स"—द्रुतद्रुतेन, अतित्वरया गत्या, अर्थात् 'दवदव' शब्द का प्रयोग अत्यधिक शीघ्रता-पूर्ण गति के लिये किया जाता है। जब अर्जुन माली अपने इष्टदेव की पूजा करके तथा घुटने टेक कर उसे प्रणाम कर रहा था उस समय दरवाजों के पीछे छुपे हुए छहों पुरुष बड़ी शीघ्र गति से निकले। उन्होंने अर्जुन माली की मुश्कें बाँध दीं और बन्धुमती को पकड़ कर कुकृत्य में प्रवृत्त हो गए।

यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि उक्त घटना से पूर्व अर्जुनमाली की बन्धुमती मालिन का मित्र-मंडल के पुरुषों के साथ कोई उचित या अनुचित सम्बन्ध नहीं था, यह तो जब वह

पुष्पोद्यान से यक्ष मन्दिर की ओर आ रही थी, उस समय उसे देख कर ही उन गोष्ठी पुरुषों के हृदय में उस के प्रति दुष्ट भाव उत्पन्न हुआ। इस कथानक से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि नगरों से बाहिर निर्जन प्रदेशों में स्त्रियों का भ्रमण करना ठीक नहीं होता। वहां अनेक प्रकार के उपद्रवों की सम्भावना रहती है, अतः निर्जन प्रदेश में स्त्रियों को साथ ले कर जाना अनेकविध आपदाओं को निमन्त्रण देना है।

प्रस्तुत में लिखा है कि अर्जुन माली को धर्मपत्नी बंधुमती के सतीत्व पर ६ पुरुषों ने आक्रमण कर दिया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस का वर्णन करते हैं :—

मूल—तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए ४ समुप्पण्णे। एवं खलु अहं बालप्पभिति चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव कप्पेमाणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह संनिहिए होंते से णं किं ममं एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते ? तं नत्थि णं मोग्गरपाणी जक्खे इह संनिहिए। सुव्वत्तं तं एस कट्ठे। तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुपविसति, अणुपविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्सनिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएइ। तए णं अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लि छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ। रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहपहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ ४—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे णयरे बहिया छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ।

छाया—ततस्तस्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य अयमाध्यात्मिकः ४ समुत्पन्नः—एवं खलु अहं बालप्रभृति चैव मुद्गरपाणेर्भगवतः कल्याकल्यि (प्रतिदिनं) यावत् वृत्तिं कल्पमानः विहरामि। तद्यदि खलु मुद्गरपाणियक्षः इह सन्निहितो भवेत्, सः किं मामेतद् रूपामापत्तिं प्राप्नुवन्तं पश्येत् ? तस्माद् नास्ति मुद्गरपाणियक्षः इह सन्निहितः। सुव्यक्तं तदेतत् काष्ठम्। ततः स मुद्गरपाणियक्षः, अर्जुनकस्य मालाकारस्य इममेतद्रूपमाध्यात्मिकं यावद् विज्ञाय अर्जुनकस्य मालाकारस्य शरीरकमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य तड-तड इति शब्देन बन्धनानि छिनत्ति, छित्वा तं पलसहस्र-निष्पन्नमयोमुद्गरं गृह्णाति, गृहीत्वा तान् स्त्रीसप्तान् पुरुषान् हन्ति, ततः सोऽर्जुनको मालाकारः मुद्गरपाणिना यक्षेण अन्वाविष्टः (अधिष्ठितः) सन् राजगृहस्य नगरस्य परिपर्यन्ते कल्याकल्यि षट् स्त्रीसप्तान् पुरुषान् घातयन् विहरति। राजगृहे नगरे शृंगाटकयावन्महा-पथ-पथेषु बहुजनोऽन्योऽन्यस्य एवमाख्याति-४—

एवं खलु देवानुप्रियाः ! अर्जुनको मालाकारः मुद्गरपाणिना अन्वाविष्टः सन् राजगृहाद् नगराद् बहिः षट् स्त्रीसप्तमान् पुरुषान् घातयन् विहरति ।

पदार्थ—**तए णं**—उस के अनन्तर; **तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स**—उस अर्जुन माली के; **अयमज्झत्थिए**—यह आध्यात्मिक आत्मगत विचार; **समुप्पन्ने**—उत्पन्न हुआ; ४—इस अंक से; १ **कप्पिए**—कल्पित हृदय में उठनेवाली अनेकविध कल्पनायें, **चिंतिए**—चिंतित—बार बार किया गया चिंतन; **पत्थिए**—प्रार्थित—मूल कारण को ढूंढने की जिज्ञासा का पुनः पुनः होना; **मणोगए**—मनोगत—वह विचार जिसको अभी प्रकट नहीं किया गया; **संकप्पे**—संकल्प—सामान्य विचार, इनका ग्रहण होता है; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **अहं**—मैं; **बालप्पभिंति चेव**—बचपन से ले कर ही; **मोग्गरपाणिस्स**—मुद्गरपाणि; **भगवओ**—भगवान इष्टदेव की; **कल्लाकल्लि**—प्रतिदिन; **जाव**—यावत् पूजा करता आ रहा हूं और पूजा करने के अनन्तर; **वित्तिं कप्पेमाणे**—पुष्पों की बिक्री रूप आजोविका कमाता हुआ; **विहरामि**—विहरण करता हूँ; **तं**—सो; **जइ णं**—यदि; **मोग्गरपाणि जक्खे**—मुद्गरपाणि नामक यक्ष; **इह**—यहां पर; **संनिहिए होंते**—मूर्ति में साक्षात् रूप से विद्यमान होते तो; **से किं**—वह क्या; **एया रूवं**—इस प्रकार की; **आवइं**—प्रापत्ति में; **पावेज्जमाणं**—प्राप्त हुए को; **पासंते**—देखते ? **तं**—अतः; **मोग्गरपाणि जक्खे**—मुदगरपाणि यक्ष; **इह संनिहिए**—यहां विद्यमान **नत्थि णं**—नहीं है; **सुव्वत्तं तं**—अतः सुव्यक्त स्पष्ट रूप से; **एस कट्ठे**—यह काष्ठ मात्र है ।

तए णं—उसके पश्चात्; **से मोग्गरपाणि जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष; **अज्जुणयस्स**—अर्जुन; **मालागारस्स**—माली का; **अयमेयारूवं**—इस प्रकार का; **अज्झत्थियं**—आत्मगत विचार को; **जाव**—यावत्; **वियाणेत्ता**—जान कर; **अज्जुणयस्स मालगारस्स**—अर्जुन माली के; **सरीरयं**—शरीर में; **अणुपविस्सइ**—प्रवेश करता है; **अणुपविसित्ता**—और प्रवेश करके; **तडतडस्स**—तड़ तड करके; **बंधाइं**—बन्धनों को; **छिंदइ**—तोड़ देता है, फिर; **तं पलसहस्स-निप्फण्णं**—हजार पल से रचित उस **अयोमयं मोग्गरं**—लोहमय मुद्गर को; **गेण्हइ**—ग्रहण करता है; **गेण्हित्ता**—ग्रहण करके; **ते इत्थिसत्तमे**—जिनमें सातवीं स्त्री है ऐसे उन; **पुरिसे**—छः पुरुषों को; **घाएइ**—मार देता है; **तए णं से अज्जुणए**—उसके बाद, वह अर्जुन; **मालागारे**—माली; **मोग्गरपाणिणा**—मुद्गरपाणि यक्ष से; **अणाइट्ठे समाणे**—देवता के प्रवेश से परवश हुआ; **रायगिहस्स नगरस्स**—राजगृह नगर के; **परिपेरंतेणं**—बाह्य प्रदेश में; **कल्लाकल्लि**—प्रतिदिन; **इत्थिसत्तमे**—स्त्री है सातवीं जिनमें ऐसे **छ पुरिसे**—छह पुरुषों को; **घाएमाणे विहरइ**—मारता हुआ विचरण कर रहा था; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर में; **सिंघाडग**—शृंगाटक, सिंघाडे के समान त्रिकोण मार्गों पर; **महापहपहेसु**—सामान्य मार्गों पर; **बहुजणो**—बहुत से व्यक्ति; **अन्नमन्नस्स**—एक दूसरे को; **एवमाइक्खइ**—इस प्रकार कहते हैं कि; **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुषो !; **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चय ही; **अज्जुणए मालागारे**—अर्जुन माली; **मोग्गरपाणिणा**—मुद्गरपाणि यक्ष के द्वारा; **अण्णाइट्ठे समाणे**—प्रविष्ट होकर; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर के; **बहिया**—बाहिर; **इत्थिसत्तमे**—स्त्री है सातवीं जिनमें ऐसे; **छ पुरिसे**—छह पुरुषों को; **घाएमाणे**—मारता हुआ, **विहरइ**—विहरण कर रहा है ।

मूलार्थ—राजगृह नगर की मित्र-मंडली के छः पुरुषों द्वारा अपनी धर्मपत्नी बन्धुमती की दुर्दशा होती देखकर अर्जुनमाली के मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं बालपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त रहा हूं। इसे अपना भगवान मानता आ रहा हूं, प्रतिदिन घर से निकल कर पुष्पोद्यान में पहुंचना, वहां से उत्तम और सुन्दर फूल ले कर इसका पूजन करना, इसके अनन्तर बाज़ार में जाकर पुष्पविक्रय करना, यह मेरा सदा का कार्य रहा है, परन्तु यदि इस मन्दिर में मुद्गरपाणि यक्ष होता तो क्या इस प्रकार की आपत्ति में मुझे फंसे हुए देख सकता था? मालूम पड़ता है कि मुद्गरपाणि नाम का कोई यक्ष नहीं है, यह केवल काष्ठ ही है।

मुद्गरपाणि यक्ष ने जब अर्जुन माली की आन्तरिक स्थिति को देखा तो उसने उसी समय अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश किया। यक्ष के प्रविष्ट होते ही अर्जुनमाली के तडाक-तडाक करके सब बन्धन टूट गए और हज़ार पल के लोहमय मुद्गर को हाथ में पकड़ कर उसने उन छहों पुरुषों और सातवीं बंधुमती को मार डाला। यह सब कुछ होने के अनन्तर मुद्गरपाणि यक्ष से अधिष्ठित परवश हुआ वह अर्जुनमाली प्रतिदिन छः मनुष्य और एक स्त्री इस प्रकार सात प्राणियों को मारता हुआ राजगृह नगर के बाहिर भ्रमण करने लगा। राजगृह नगर के त्रिकोण, चतुष्कोण, चत्वर, महापथ तथा सामान्य मार्गों पर लोग एक दूसरे से कहने लगे—'भद्र पुरुषो ! अर्जुनमाली में मुद्गरपाणि यक्ष प्रविष्ट हो गया है और वह राजगृह नगर के बाहिर छः आदमी और एक स्त्री इस प्रकार से वह सात प्राणियों का घात करता हुआ घूम रहा है।

व्याख्या—राजगृह नगर की विख्यात ललित नामक मित्रमण्डली के ६ पुरुषों ने अर्जुन माली को बांधकर उसकी धर्मपत्नी बंधुमती के साथ अनाचार करना आरम्भ कर दिया, यह सब कुछ देखकर अर्जुनमाली का हृदय रो उठा। मुद्गरपाणि यक्ष के सम्बन्ध में उसकी जो आस्था थी वह डांवाडोल हो गई।

जो पुरुष दिनरात श्रद्धा तथा आस्था के साथ देवता की पूजा भक्ति करनेवाला हो, फिर उस पर किसी घोर संकट के आजाने पर यदि वह देवता उसकी किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करता तो उसके लिये वह देवमूर्ति पत्थर या काठ के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाती। अर्जुनमाली बचपन से ही भगवान समझ कर यक्ष की पूजा किया करता था, किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले वह यक्ष के मन्दिर में उपस्थित होकर उसकी आराधना किया करता था। पर आज उसी मन्दिर में और उसी यक्षमूर्ति के सन्मुख उसकी पत्नी पर अत्याचार और उसकी शक्ति पर प्रहार

हो रहा है। राजगृह के ६ पुरुष उसकी बंधुमती स्त्री के सतीत्व को भंग कर रहे हैं तथापि यक्ष की ओर से उसे कोई सहायता प्राप्त नहीं हो रही, इससे बढ़कर और दुःखद घटना क्या हो सकती है ? ऐसी दशा में उसका निराश होना और मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा को काष्ठमात्र कहना स्वाभाविक ही है।

परन्तु जब उसकी पत्नी पर बलात्कार हो रहा था और यक्ष के प्रति उसके हृदय में अश्रद्धा जाग रही थी तो अपने परमभक्त अर्जुनमाली की यह दुर्दशा और उसकी आस्था को डांवाडोल होते देखकर यक्ष ने तत्काल अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश किया और उसके बंधनों को तोड़ दिया और अपनी शक्ति से अर्जुनमाली के द्वारा अत्याचारियों को समाप्त करवाकर देव-शक्ति की सत्यता को प्रमाणित कर दिया।

राजगृह नगर के ६ पुरुषों और सातवी अपनी पत्नी को मार देने के अनन्तर भी अर्जुनमाली का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह मुद्गर लेकर राजगृह नगर के बाहर घूमने लगा। वह प्रतिदिन ६ पुरुष और एक स्त्री को मार देता था। नगर के बाहिर हो रहे इस हत्याकाण्ड को देख व सुनकर नगर-निवासी लोग घबरा गये, सर्वत्र हाहाकार मच गया, नगर के कोने-कोने में हत्याकाण्ड की चर्चा फैल गई।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अर्जुनमाली ने आततायी ६ पुरुषों को मार दिया वह तो उचित था, परन्तु बेचारी बंधुमती का क्या अपराध था ? उसको क्यों मार दिया गया ?

इसके तीन कारण हो सकते हैं—अर्जुनमाली ने सोचा बंधुमती को इन नीच पुरुषों ने भ्रष्ट कर दिया है, अतः ये मेरे योग्य नहीं रही, इसे रखकर अब क्या करना है, अतः इसे भी साथ ही समाप्त कर देना उचित है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अर्जुनमाली को जब उन ६ पुरुषों ने अवकोटक-बंधन में बांध दिया तब उस बंधुमती ने अपने पति के पकड़े जाने के पश्चात् तथा अपने पकड़े जाने पर किसी प्रकार का कोई भी विरोध या कोलाहल नहीं किया, किन्तु उन व्यभिचारी ६ पुरुषों की इच्छा के अनुकूल ही आचरण करना आरम्भ कर दिया, इस कारण व्यभिचारिणी जानकर उसे भी मार डाला होगा।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि अपनी बंधुमती पत्नी के साथ हो रहे बलात्कार को देखकर अर्जुनमाली क्रोध से उत्तेजित होकर इतना विवेकहीन हो गया कि उसने क्रोधावेश में अपने आपे से बाहिर होकर निर्दोष अपनी पत्नी को भी मार डाला।

"अज्झत्थिए-५"—यहां के ५ अंक से **कप्पिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे**—इस पाठ का ग्रहण किया जाता है। इसकी व्याख्या पृ० १०९ पर की जा चुकी है।

"कल्लाकल्लिं जाव कप्पेमाणे"—यहां पठित **जाव** पद पीछे पढ़े गए—**'पच्छियपिडगाइं गेण्हइ रायमग्गंसि विंसि'** इस पाठ का संसूचक है। इसका अर्थ पीछे पृ० २८८ पर लिखा जा चुका है।

"**इहं संनिहिते होंते**"—**इह सन्निहितो भवेत्** का अर्थ है—यहां पर संनिहित—समीपवर्ती अर्थात् विद्यमान होता । अर्जुनमाली अपनी दुःखावस्था को देखकर सोचते हैं कि जिस यक्ष की मैं बचपन से लेकर आज तक पूजा करता आ रहा हूं यदि वह यहां पर होता तो वह—**ममं एयारूवं आवइं-पावेज्जमाणं पासंते ?—मां एतद् रूपामापत्ति प्राप्नुवन्तं पश्येत्**"—मेरी इस संकटापन्न अवस्था को देखता ? उत्तर स्पष्ट है कि कभी नहीं। अर्जुनमाली के कहने का भाव यह है कि आराध्यदेव का आराधक को संकटाग्रस्त देखकर मौन रहना असम्भव है, वह अपने आराधक की अवश्य सहायता करता है।

"**सुव्वत्तं ते एस कट्ठे**"—**सुव्यक्तं स्फुटं एषःयक्षः प्रतिमारूपः काष्ठं दारु तन्मयत्वाद्देवताशून्यत्वे-नाकिञ्चित्करत्वादिति**—अर्थात् यह स्पष्ट है इसमें सन्देहवाली कोई बात नहीं है कि प्रतिमारूप यह यक्ष केवल काष्ठ ही है। देवत्व शक्ति का इसमे सर्वथा अभाव है और इसीलिये यह सब कुछ करने मे सर्वथा असमर्थ है।

"**अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता**"—यहां पठित **जाव** पद प्रस्तुत सूत्र के ही एवं "**खलु अहं बालप्प-भिंत्ति चेव—तं एस कट्ठे**" इस पाठ का संसूचक है।

"**तडतडस्स**"—यहां पठित तडतड शब्द उस ध्वनि का संसूचक है जो अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष के प्रविष्ट होने पर बन्धनों के टूटते समय हुई थी।

"**पल-सहस्स-णिप्फण्णं**"—**पलसहस्रनिष्पन्नं, पलानां सहस्रं पलसहस्रं, पलं च आधुनिकरूप्य-पंचकपरिमितं भवति । षोडशभिः पलैरेकः शेटको भवति, एकपलसहस्रं सार्द्धद्विषष्टिशेटकपरि-मितं भवति। तेन पलसहस्रेण निष्पन्नं—निर्मितम्**—अर्थात् आजकल के पांच रुपयों के प्रमाण जितना एक पल होता है, १६ पलों का एक सेर होता है, इस तरह १००० पल के साढ़े ६२ सेर बनते हैं। इन से बने हुए को पलसहस्र-निष्पन्न कहते हैं।

"**इत्थिसत्तमे पुरिसे**"—**स्त्रीसप्तमान् पुरुषान्। स्त्री सप्त संख्यायाः पूरणी येषां तान् स्त्री-सप्तमान् पुरुषान् इदमत्रहार्दम्, षड् गौष्ठिकपुरुषान् एकां बन्धुमतीं स्त्रियं च, एवं स्त्रीसप्तमान् पुरुषान्**—अर्थात् जहाँ स्त्री सात की संख्या को पूर्ण करनेवाली हो उसे "स्त्रीसप्तम" कहते हैं। यह पुरुष का विशेषण है। इस तरह स्त्री है सातवीं जिन में ऐसे ६ पुरुष यह अर्थ सम्पन्न होता है।

"**अण्णाइट्ठे समाणे**"—**अन्वाविष्टः सन्**, यहां प्रयुक्त अन्वाविष्ट शब्द का अर्थ है—देवता के प्रवेश के कारण परवश।

प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह पता चलता है कि देवपूजा में बड़ी शक्ति है और वह पुजारी की कामना को पूरी करती है। ऐसी दशा में प्रश्न उपस्थित होता है कि स्थानकवासी जैन-परम्परा में मूर्तिपूजा का विरोध क्यों किया जाता है ? प्रश्न विचारणीय है।

उत्तर में निवेदन है कि जैन-धर्म निवृत्ति-प्रधान धर्म है, वह आध्यात्मिकता की प्राप्ति का ही संसार को संदेश देता है। आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम लक्ष्य परम साध्य मोक्ष को प्राप्त करना

है। संसार की मोह-ममता उसके लिये बन्धन रूप होती है, उसे वह अपनी प्रगति में बाधक समझता है। जन्म-मरण बढ़ानेवाली सभी प्रवृत्तियां उसके लिये त्याज्य एवं हेय होती हैं। वह सदा उन से दूर रहता है। देवी देवताओं की पूजा, मढ़ी-मसानी आदि की उपासना सांसारिकता का सम्वर्धन करती है, इसीलिये जैनधर्म देवी-देवता मढ़ी-मसानी आदि की पूजा पर बल नहीं देता, आध्यात्मिक दृष्टि से उसका विरोध करता है।

शास्त्र कहता है कि धन-जन परिवार आदि की लालसा मोह को जन्म देती है, मोह का सम्वर्धन करती है। मोह से संसार की वृद्धि होती है। संसार की वृद्धि का अर्थ है—जन्म, मरण रूप दुःखों का बढ़ जाना। मुमुक्षु प्राणी को जन्म-मरण की वृद्धि कभी इष्ट नहीं हो सकती। वह तो आत्मा को मोह-माया की बेड़ियों में जकड़नेवाली प्रत्येक प्रवृत्ति से दूर भागता है, कोई भी ऐसा काम नहीं करता जो उसकी आत्मा को मोक्ष से दूर ले जाए। इसीलिये आध्यात्मिक दृष्टि से मढ़ी-मसानी की पूजा मोह-रूप एवं मोह-वर्धक होने से त्याज्य मानी जाती है।

यह सत्य है कि शुभाशुभ कर्म-फल की प्राप्ति में अनेकों निमित्त होते हैं—उनमें एक देव भी है। देव की निमित्तता के शास्त्रों में अनेकों उदाहरण मिलते हैं। कल्पसूत्र के अनुसार हरिनैगमेषी देव ने गर्भस्थ भगवान महावीर को देवानन्दा की कुक्षि से निकाल कर महारानी त्रिशला के गर्भ में पहुंचाया था। अन्तगडसूत्र का कहना है कि देव ने सेठानी सुलसा की सन्तति को माता देवकी के यहां, माता देवकी की सन्तति को सेठानी सुलसा के यहाँ पहुँचाया। श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र में लिखा है कि राजा श्रेणिक के प्रधान मंत्री श्री अभयकुमार को मित्रदेव ने अकाल में मेघ बना कर मेघ कुमार की माता धारिणी का दोहदपूर्ण किया था। सगम देव भगवान महावीर को लगातार ६ महीने कष्ट देता रहा। ऐसे अन्य भी अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे देव की कर्मफलगत निमित्तता सुचारु रूपेण स्पष्ट होती है। देव को कर्मफल में निमित्त मान कर यदि कोई देवपूजा करता है तो भी उसका आध्यात्मिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि देवपूजा—सांसारिक मोह-ममता को बढ़ाती है, उसका पोषण करती है, अतः मोक्ष का साधक देवपूजा को मोह संवर्धिका मान कर उससे दूर ही रहता है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि यक्ष के प्रविष्ट होने से परवश हुए अर्जुनमाली के द्वारा होने वाले हत्याकाण्ड की राजगृह नगर के कोने-कोने में चर्चा फैल गई। इसके अनन्तर क्या हुआ उसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं :—

मूल—तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ। तं मा णं तुब्भे केइ तणस्स वा, कट्ठस्स वा, पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं णिगच्छतु, मा णं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ, त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेह, घोसित्ता

खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

छाया—**ततः सः श्रेणिको राजा अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् कौटुम्बिकान् पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—**

एवं खलु देवानुप्रियाः ! अर्जुनको मालाकारो यावत् विहरति । तस्माद् मा यूयं कोऽपि तृणस्य वा काष्ठस्य वा पानीयस्य वा, पुष्फफलानां वार्थाय स्वैरं निर्गच्छतु । मा तस्य शरीरस्य व्यापत्तिर्भविष्यति । इति कृत्वा द्विवारं त्रिवारमपि घोषणां घोषयत, घोषयित्वा क्षिप्रमेव मां प्रत्यर्पयत । ततस्ते कौटुम्बिकाः पुरुषाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति ।

पदार्थ—**तए णं**—उसके अनन्तर; **से सेणिए राया**—वह श्रेणिक राजा; **इमीसे कहाए**—इस कथा (बात) से; **लद्धट्ठे समाणे**—अवगत होने पर; **कोडुंबियपुरसे**—सेवक पुरुषों को; **सद्दावेइ**—बुलाते हैं; **सद्दावित्ता**—बुलाकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार करने लगे; **एवं खलु**—इस प्रकार (तुम्हें भी ज्ञात होगा); **देवाणुप्पिया** !—हे भद्र पुरुषो !; **अज्जुणए मालागारे**—अर्जुनमाली; **जाव**—यावत्—प्रतिदिन सात प्राणियों को; **घाएमाणे विहरइ**—मारता हुआ भ्रमण कर रहा है; **तं मा तुब्भे केइ**—इसलिए (यह घोषणा कर दो कि नगर निवासियों) मत तुम में से कोई भी; **कट्ठस्स वा तणस्स वा**—काठ लकड़ी अथवा-तृण-घास फूस; **पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा**—अथवा जल-पानी एवं फल-फूल के; **अट्ठाए सइरं**—वास्ते यथेच्छ; **निग्गच्छतु**—नगर से बाहिर निकले, इससे; **तस्स सरीरस्स**—उसके शरीर को; **वावत्ती मा णं भविस्सइ**—कष्ट नहीं होगा । **त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि**—ऐसा कह कर दो बार, तीन बार; **घोसणयं**—घोषणा को; **घोसेह**—प्रचारित करो; **घोसित्ता**—घोषणा करके; **खिप्पामेव**—शीघ्र ही; **ममेयं पच्चप्पिणह**—मुझे इसकी सूचना दो; **तए णं**—उसके अनन्तर; **ते कोडुंबियपुरिसा**—वे सेवक पुरुष; **जाव**—यावत्—नगर में सर्वत्र घोषणा करने के अनन्तर **पच्चप्पिणन्ति**—महाराज को सूचना दे देते हैं ।

मूलार्थ—यक्ष-प्रवेश के कारण परवश अर्जुनमाली नगर से बाहिर लोगों की हत्या कर रहा है, इस वृत्तान्त का पता लगते ही नगर-नरेश श्रेणिक अपने राज-सेवकों को बुलाते हैं और उन्हें आदेश देते हैं कि भद्रपुरुषो ! (यह सर्वत्र घोषणा कर दो कि) नगर के बाहिर अर्जुन माली लोगों की हत्या कर रहा है, इसलिये लकड़ी, तृण, पानी फूल तथा फलों के लिये तुम में से कोई भी व्यक्ति नगर के बाहर मत जाये । ऐसा न हो कि बाहिर जाने से किसी के शरीर को कोई हानि पहुंच जाये । यह घोषणा दो बार, तीन बार करदो ताकि कोई इस सूचना से अज्ञात न रह जाये । तथा मेरी इस आज्ञा का पालन करके मुझे इस की सूचना दो । महाराज श्रेणिक की आज्ञा के अनुसार राज-सेवकों ने नगर में घोषणा करके उसकी सूचना उनको दो ।

व्याख्या—जैन-शास्त्रों की मान्यता के अनुसार अनेक विध-शक्तियों में दैवी-शक्ति का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। अपने को छुपा लेना, किसी दूसरे व्यक्ति में प्रवेश कर जाना, अपने शरीर को बहुत छोटा बना लेना, छोटे शरीर को बहुत बड़ा बना लेना आदि ऐसी अनेकों शक्तियां हैं जो दैवी-शक्तियों के द्वारा उपलब्ध होती हैं। दैवी-शक्ति के मनुष्य के सामने बड़ी से बड़ी भौतिक शक्ति भी कुण्ठित हो जाती है। प्रस्तुत सूत्र में वर्णित कथानक इस सत्य का पूर्णतया समर्थक है। राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक के पास सैनिक बल की कोई कमी नहीं थी, अपने युग के वे शक्तिशाली शासक माने जाते थे, तथापि वे इस सैनिक शक्ति से यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का दमन न कर सके। अतः सैनिक शक्ति का प्रयोग न करके उन्होंने नगर-निवासियों का नगर से बाहिर जाना बंद कर दिया। मनुष्य की भौतिक शक्ति ने दैवी शक्ति के आगे मस्तक झुका दिया।

यह सत्य है कि मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति देव-जगत् को सदा-सर्वदा नतमस्तक करती आई है, परन्तु भौतिक शक्ति की दृष्टि से देव सदा ही मनुष्य से ऊपर रहा है।

उत्तराध्ययन सूत्र के १२व अध्ययन में लिखा है कि देव-शक्ति ने तप की सजीव मूर्ति हरि-केशीबल जी मुनि पर आक्रमण करने वाले ब्राह्मण छात्रों को नीचे गिरा कर उनकी उदण्डता के लिये उनको दण्ड दिया। श्री भगवती सूत्र कहता है कि महाराजा कूणिक की सहायता ने विपक्षियों के अपार सैनिक दल को नष्ट भ्रष्ट-कर दिया। इस प्रकार के उदाहरण शास्त्रों मे यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं जो दैवी शक्ति का प्राबल्य प्रमाणित करते हैं। प्रस्तुत कथानक भी दैवी शक्ति की इस प्रबलता एवं महत्ता को अभिव्यक्त कर रहा है।

दैवी शक्ति को इस महत्ता को श्रेणिक नरेश खूब समझते थे। यही कारण है कि अर्जुन माली में मुद्गरपाणि यक्ष की शक्ति को काम करते देख कर नगर की जनता को उसके समीप न जाने देने की घोषणा करा कर महाराजा श्रेणिक ने जनता की भलाई के लिये एक अच्छी नीति का अनुसरण किया। वास्तव में वही नीति सराहनीय एवं श्लाघनीय होती है जिससे प्रजा का हित सुरक्षित हो और उसे किसी भी प्रकार की पारिवारिक आर्थिक तथा सामाजिक क्षति न उठानी पड़े।

"मालागारे जाव घाएमाणे"—यहां पठित जाव पद **मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नगरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं छ इत्थिसत्तमे पुरिसे**—इन पदों का सूचक है। इनका अर्थ पिछले सूत्र में लिखा जा चुका है।

"सइरं णिग्गच्छतु"—स्वैरं—यथेष्टं निर्यातु, अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार जाओ। भाव यह है कि महाराजा श्रेणिक ने नगरनिवासियों को यह सूचना दी कि नगर के बाहिर यक्षाविष्ट हुआ अर्जुन माली घूम रहा है। वह जिस को देखता है उसी को मुद्गर मार कर समाप्त कर देता है इसलिये कोई भी व्यक्ति लकड़ियों, घासफूस, पानी और फलों एवं फूलों के लिये अपनी इच्छानुसार नगर से बाहिर न जायें।

"वावत्ती—"व्यापत्ति"—यहां प्रयुक्त व्यापत्ति शब्द का अर्थ है—कष्ट। महाराज श्रेणिक ने नगरनिवासियों को सावधान कर दिया कि नगर से बाहिर जाने से अर्जुनमाली का मुद्गर शारी-रिक कष्ट पहुँचा सकता है, अतः इस कष्ट से बचने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि नगर से बाहिर

कोई न जाये। शास्त्रकारों ने शरीर को धर्माराधन का आदि साधन बताया है। इसी अभिप्राय से श्रेणिक नरेश ने शरीर-सुरक्षा का यह सरल उपाय किया था।

"कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणन्ति"—यहां पठित **जाव** पद 'कौटुम्बिक पुरुषों ने राजगृह नगर के सभी ठिकानों पर घोषणा कर दी कि श्रेणिक महाराज आदेश देते हैं कि मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट हुआ अर्जुनमाली लोगों का घात करता फिर रहा है, अतः नगर का कोई भी व्यक्ति काष्ठ आदि के लिये नगर से बाहिर न जाये। यह घोषणा करने के अनन्तर कौटुम्बिक पुरुषों ने वापिस आकर महाराज श्रेणिक को सूचना दे दी,' इन भावों का परिचायक है।

राजा श्रेणिक की आज्ञा के अनुसार राज-सेवकों ने नगर में घोषणा कर दी। इस के अनन्तर क्या हुआ? उसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—**तत्थ णं रायगिहे णयरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे ०। तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।**

छाया—**तत्र खलु राजगृहे नगरे सुदर्शनो नाम श्रेष्ठी परिवसति। आढ्यस्ततः खलु सः सुदर्शनः श्रमणोपासकश्चाप्यासीत्। अधिगतजीवाजीवः यावत् विहरति।**

पदार्थ—**तत्थ रायगिहे णयरे**—उस राजगृह नामक नगर में; **सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ**—सुदर्शन नामक सेठ रहता था; **अड्ढे**—आढ्य अर्थात् अत्यन्त धनवान था; **तए णं**—उसके अनन्तर; **से सुदंसणे समणोवासए**—वह सुदर्शन श्रमणोपासक जैन गृहस्थ; **य**—और; **अभिगयजीवाजीवे**—जीव एवं अजीव का ज्ञाता; **अवि**—भी; **होत्था**—था; **जाव**—यावत्—श्रमणोपासक की मर्यादा का पालन करता हुआ; **विहरइ**—जीवन व्यतीत कर रहा था।

मूलार्थ—राजगृह नगर में सुदर्शन नाम का एक सेठ निवास करता था, वह बड़ा धनवान, जन-गण-मान्य, प्रतिष्ठित तथा श्रमणोपासक था। उसे जीव-अजीव का सम्यग् बोध था। यह श्रावक-धर्म की मर्यादा का सम्यक् पालन करता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा था।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में राजगृह नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी श्रीसुदर्शन का परिचय कराया गया है। सुदर्शन सेठ जैन जगत् में दो प्रसिद्ध हैं—एक वे जिन्होंने अपनी सदाचार की शक्ति से सूली को सिंहासन बना दिया था। दूसरे वे जिन्होंने अर्जुन माली के शरीर में प्रविष्ट मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी आध्यात्मिक साधना से निस्तेज बना दिया था। प्रस्तुत सूत्र में जिस सेठ सुदर्शन का वर्णन किया गया है ये दूसरे अर्जुन माली के शरीर में प्रविष्ट यक्ष को पराजित करानेवाले सेठ सुदर्शन हैं। सूत्रकार कहते हैं कि ये सेठ सुदर्शन राजगृह नगर के एक जाने-माने धनी व्यक्ति थे। पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्हें सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से ही देखा जाता था।

सेठ सुदर्शन श्रमणोपासक थे, श्रमण-जगत् की उपासना करने में इनको बड़ा आनन्द आता था। जहां श्रमणों की सेवा करने का यह सौभाग्य प्राप्त किया करते थे, वहां ये उनसे तात्त्विक ज्ञान भी ग्रहण किया करते थे। यही कारण है कि इन को जीव-अजीव आदि तत्वों की पूरी-पूरी जानकारी थी। इस तरह सेठ सुदर्शन जहां सांसारिक सम्पदा के स्वामी थे वहां वे आध्यात्मिक गुण-सम्पत्ति के भी सजीव भंडार थे, इनमें लक्ष्मी और सरस्वती का मानो मधुर संगम हो रहा था।

"अड्ढे"०—यहां के बिन्दु से—**दित्ते वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णे ··बहुजणस्स अपरिभूए"** इस पाठ को ग्रहण करने की ओर संकेत कराया गया है। इस का अर्थ पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर लिखा जा चुका है।

समणोवासए—श्रमणोपासक :—का अर्थ है—श्रमण का उपासक। जो धर्म-श्रवण की इच्छा से साधुओं के पास बैठता है वह उपासक कहलाता है। जैनशास्त्रों में उपासक—द्रव्य, तदर्थ, मोह और भाव ये चार प्रकार के बताए गए हैं।

जिसका शरीर उपासक होने के योग्य है, जिसने उपासक—भाव के आयुष्य कर्म का बंध कर लिया है, तथा जिस के नाम-गोत्रादि कर्म उपासक भाव के सन्मुख आ गए है, वह **द्रव्योपासक** है।

जो सचित्ताचित्त और मिश्रित पदार्थों के मिलने की इच्छा रखता है; उनकी प्राप्ति के लिये उपासना (प्रयत्न विशेष) करता है, वह **तदर्थोपासक** है।

अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये युवती युवक की ओर युवक युवती की उपासना-सेवा कर, अन्धभाव से परस्पर एक दूसरे की आज्ञा का पालन करें तथा मिथ्यात्व की उत्तेजना आदि करे उन्हें **मोहोपासक** कहते हैं।

जो सम्यग् दृष्टि जीव शुभ परिणामों से ज्ञान, दर्शन और चारित्र के उपासक श्रमण-साधु की उपासना भक्ति करता है, उसे **भावोपासक** कहा गया है। यही भावोपासक श्रमणोपासक कहलाता है। भावोपासक और श्रमणोपासक ये दोनों शब्द समानार्थक ही समझने चाहिये। श्रमणोपासक की गुण-सम्पदा का वर्णन "श्रीसूत्रकृतांग", "श्री भगवती" और "श्री औपपातिक" आदि सूत्रों में विस्तार-पूर्वक किया गया है।

"अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ"—यहां पठित **जाव** पद से **उवलद्धपुण्णपावे, आसवसंवर-निज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्खकुसले, असहेज्जदेवतासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिं, देवगणेहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिज्जपेमाणुरागरत्ते। अयमाउसो! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरघरप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं चाउद्दस्सट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुच्छणेणं पीढफलगसिज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणं य पडिलाभे-**

माणे महापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे"— इन पदों का ग्रहण करना होता है। इन का अर्थ इस प्रकार है—

राजगृह नगर के सेठ सुदर्शन जीव-अजीव के अतिरिक्त पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया (कर्मबंध की कारण भूत पच्चीस प्रकार की क्रिया चेष्टा), अधिकरण (कर्मबंध का साधन-उपकरण या शस्त्र), बंध और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञाता थे। किसी भी कार्य में वह दूसरों की सहायता की आशा नहीं रखते थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में इतने दृढ़ थे कि देव, असुर, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरगादि देव विशेष भी उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे। उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा (इच्छा) और विचिकित्सा (फल में सन्देह) नहीं थी। उन्होंने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था। वे शास्त्र का अर्थ-रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होंने शास्त्र के सन्देह-जनक स्थलों को पूछ लिया था, उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था। उनकी हड्डियां और मज्जा सर्वज्ञ देव के अनुराग से अनुरक्त हो रही थीं। निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर उनका अटूट प्रेम था। हे आयुष्मन्! वे सोचा करते थे कि वह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है, परम सत्य है, इसके बिना अन्य सब अनर्थ (असत्यरूप) है। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊंची रहती थी, उनका द्वार सब के लिये खुला रहता था। वे जिसके घर में या अन्तःपुर में जाते उसमें प्रीति उत्पन्न किया करते थे। वे शीलव्रत (पांचों अणुव्रत) गुणव्रत विरमण (रागादि से निवृत्त प्रत्याख्यान), पौषध, उपवास, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषध-व्रत किया करते थे। श्रमणों-निर्ग्रन्थों को निर्दोष ग्राह्य अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तार, औषध और भेषज आदि देते हुए, महान लाभ प्राप्त करते थे, तथा यथागृहीत तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित—वासित करते हुए विहरण कर रहे थे।

प्रस्तुत सूत्र में राजगृह नगर के मान्य सेठ सुदर्शन का जीवन परिचय कराया गया है। अब सूत्रकार इनसे सम्बन्धित आगे के प्रकरण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए? एवं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म अयं अज्झत्थिए ५ समुप्पण्णे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव एवं वयासी—**

एवं खलु अम्मताओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि ।

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापितरो एवं वयासी–एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणे मालागारे जाव घायमाणे विहरइ । तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए णिग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । तुमण्णं इह गए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि ।

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापितर एवं वयासी–किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं, इह पत्तं, इह समोसढं इहगते चेव वंदिस्सामि ? णमंसिस्सामि ? तं गच्छामि ! तं अहं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचायंति बहूहिं आघवणाहिं ४ जाव परुवेत्तए ताहे एवं वयासी–'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेणं रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः समवसृतो यावद् विहरति । ततः राजगृहे नगरे शृङ्गाटक० बहुजनोऽन्योन्यस्मै एवमाख्याति—यावत् किमंग पुनर्विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणेन । एवं तस्य सुदर्शनस्य बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य अयमाध्यात्मिकः ५ समुत्पन्नः—एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरो यावद् विहरति । तद् गच्छामि श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे, नमस्यामि । एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावद् एवमवादीत्—

एवं खलु अम्बातातौ ! श्रमणो भगवान् महावीरो यावद् विहरति, तद् गच्छामि श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे, नमस्यामि यावद् पर्युपासते ।

ततस्तं सुदर्शनं श्रेष्ठिनमम्बापितरौ एवमवदताम्—एवं खलु पुत्र ! अर्जुनो मालाकारो यावद् घातयन् विहरति । तस्मा त्वं पुत्र ! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दनाय निर्गच्छ । मा तव शरीरकस्य व्यापत्तिर्भविष्यति । त्वमिहागते चैव श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दस्व, नमस्य ।

ततः सुदर्शनः श्रेष्ठी ग्रम्बापितरौ एवमवदत्-किमहमम्बातातौ ! श्रमणं भगवन्तं महावीर-मिहागतम्, इह प्राप्तम्, इह समवसृतम् इहगतं चैव वन्दिष्ये ? नमस्यिष्यामि ? तद्गच्छामि ग्रहमम्बातातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे यावत् पर्युपासते ।

ततस्तं सुदर्शनं श्रेष्ठिनमम्बापितरौ यदा नो शक्नुतः बहुभिः ग्राख्यापनाभिः यावद् प्रज्ञपयितुम् तदा एवमवदताम्—'यथासुखं देवानुप्रिय !'

ततः सः सुदर्शनः श्रेष्ठी ग्रम्बापितृभ्यामभ्यनुज्ञातः सन् स्नातः शुद्धप्रावेश्यानि यावच्छरीरः स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण राजगृहं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनस्य ग्रदूरसामंतेन यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं, यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैव प्राधारयत् गमनाय ।

पदार्थ—तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल एवं उस समय; समणे भगवं—श्रमण (तपस्वी) भगवान्; महावीरे—महावीर स्वामी; समोसढे—नगर में पधारे; जाव—यावत् गुणशिलक उद्यान में; विहरइ—विहरण करने लगे; त एणं—उसके ग्रनन्तर; रायगिहे णयरे—राजगृह नगर में; सिंघाडग—शृङ्गाटक ग्रर्थात् त्रिकोण ग्रादि मार्गों पर; बहुजणो—बहुत से व्यक्ति; ग्रन्नमन्नस्स—एक दूसरे से; एवमाइक्खइ—इस प्रकार कहते हैं; जाव—यावत् जिनके नाम गोत्र श्रवण से भी महाफल होता है; किमंग पुण—तो फिर; विपुलस्स—विपुल-महान्; ग्रट्ठस्स—ग्रर्थ के; गहणाए—ग्रहण करने से जो फल प्राप्त होता है, उसका तो कहना ही क्या है ? एवं—इस प्रकार; बहुजणस्स—ग्रनेक पुरुषों के; ग्रंतिए—पास से; एयं—इस वृत्तान्त को; सोच्चा—सुनकर; निसम्म—हृदय में धारण कर; तस्स सुदंसणस्स—उस सुदर्शन सेठ के हृदय में; ग्रयं—यह; ग्रज्झत्थिए ४—ग्राध्यात्मिक, ग्रात्मगत, चार के ग्रंक से कल्पित, चिन्तित, मनोगत तथा प्रार्थित संकल्प; समुप्पण्णे—उत्पन्न हुए; एवं—इस प्रकार; खलु—निश्चय ही; समणे—श्रमण; भगवं महावीरे—भगवान महावीर; जाव—यावत्; विहरइ—गुण शिलक उद्यान में विहरण कर रहे हैं; तं—सो; गच्छामि णं—मैं जाता हूं; समणं—श्रमण; भगवं महावीरं—भगवान महावीर को; वंदामि—वन्दन करता हूं; णमंसामि—नमस्कार करता हूं; एवं संपेहेइ—इस प्रकार विचार करता है; संपेहित्ता—विचार करके; जेणेव जहां पर; ग्रम्मापियरो—माता-पिता थे; तेणेव—वहां पर; उवागच्छइ—ग्राता है, उवागच्छित्ता—ग्राकर; करयलपरिग्गहियं—दोनों हाथ जोड़कर; जाव—यावत्; एवं—इस प्रकार; वयासी—कहने लगा—

एवं खलु—निश्चय ही; ग्रम्मताग्रो !—हे माता-पिता ! समणे—श्रमण; भगवं—भगवान; महावीरे—महावीर; जाव—यावत् गुण शिलक उद्यान में; विहरइ—विहरण कर रहे हैं; तं—ग्रतः ; गच्छामि णं—मैं जाता हूं; समणं—श्रमण; भगवं—भगवान, महावीरं—महावीर को, वंदामि—वंदना करूं; णमंसामि—नमस्कार करूं; जाव—यावत्; पज्जुवासामि—पर्युपासना ग्रर्थात् सेवा भक्ति करूं; तए णं—उसके ग्रनन्तर; तं—उस; सुदंसणं सेट्ठिं—सुदर्शन सेठ को; ग्रम्मापियरो—माता-पिता; एवं—इस प्रकार; वयासी—कहने लगे—

एवं—इस प्रकार; खलु—निश्चय ही; पुत्ता!—हे पुत्र! अज्जुणे मालागारे—अर्जुनमाली; जाव—यावत् लोगों का; घाएमाणे—घात करता हुआ; विहरइ—विहरण कर रहा है; तं—अतः; पुत्ता!—हे पुत्र!; तुमं—तुम; समणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान महावीर को; वंदए—वन्दना करने के लिये; मा णं—मत; णिग्गच्छाहि—निकलो; तव सरीरस्स—तेरे शरीर को; वावत्ती—कष्ट; मा णं भविस्सइ—मत हो, अर्थात् वहां जाने से तेरे शरीर को कष्ट होगा, इसलिये वहां जाने का विचार न करो; तुम णं—तुम; इहगए—यहां बैठे; चेव—ही; समणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान महावीर को; वंदाहि—वन्दन करलो; णमंसाहि—नमस्कार कर लो।

तए णं—उसके अनन्तर; से सुदंसणे सेट्ठी—वह सुदर्शन सेठ; अम्मापियरं—माता-पिता को; एवं वयासी— इस प्रकार कहने लगा—

किण्णं—क्या; अहं—मैं; अम्मायो!—माता-पिता! इहमागयं—यहां पधारे हुए; इहपत्तं—इस नगर को प्राप्त हुए—नगर में विराजमान हुए; इह समोसढे—यहाँ समवसरण लगाए हुए; समणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान महावीर को; इहगते चेव—यहां घर में बैठा हुआ ही; वंदिस्सामि—वंदन करूं? णमंसिस्सामि—नमस्कार करूं? (ऐसा कभी नहीं हो सकता); तं—इसलिये; अम्मताओ!—हे माता-पिता!; अहं गच्छामि णं—मैं जाता हूं, परन्तु तुब्भेहिं—आप लोगों द्वारा; अब्भणुण्णाए समाणे—अभ्यनुज्ञात होने पर आज्ञा प्राप्त करने पर; भगवं महावीरं—श्रमण भगवान महावीर को; वंदामि—वंदन करूं; जाव—यावत् उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनकी; पज्जुवासामि—पर्युपासना—भक्ति करूं; तए णं—उसके अनन्तर; अम्मापियरो—माता-पिता; जाहे—जब; तं सुदसणं सेट्ठिं—उस सुदर्शन सेठ को; बहूहिं—अनेकों; आघवणाहिं—वचनों से; जाव—यावत् विशिष्ट वचनों से; परुवित्तए—समझाने में; नो संचायंति समर्थ नहीं हुए; ताहे—तब; एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगे—

देवाणुप्पिया!—हे भद्र! अहासुहं—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो; तए णं—उसके अनन्तर; से सुदंसणे सेट्ठी—उस सुदर्शन सेठ ने; अम्मापिईहिं—माता-पिता द्वारा; अब्भणुण्णाए समाणे—आज्ञा प्राप्त करके; ण्हाते—स्नान किया; सुद्धप्पावेसाइं—शुद्ध वस्त्रों को धारण किया; जाव—यावत्; सरीरे—अनेक विध भूषणों से शरीर को अलंकृत करके; सयाओ गिहाओ—अपने घर से; पडिणिक्खमइ—निकलता है; पडिणिक्खमित्ता—घर से निकलकर; पायविहारचारेणं—पैदल ही; रायगिहं णगरं—राजगृह नगर के; मज्झंमज्झेणं—बीचों बीच; णिग्गच्छइ—निकलता है; णिगच्छित्ता—निकलकर; मोग्गरपाणिस्स—मुद्गरपाणि नामक; जक्खस्स—यक्ष के; जक्खाययणस्स मन्दिर के; अदूरसामंतेणं—न दूर न अति निकट; जेणेव—जहां पर; गुणसिलए चेतिए—गुण शिलक नामक उद्यान था; जेणेव—जहां पर; समणे भगवं महावीरे—श्रमण भगवान महावीर थे; तेणेव—वहीं पर; पहारेत्थ गमणाए—उसने जाने का निश्चय किया।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय में राजगृह नगरके गुणशिलक उद्यान में श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे और तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए

विहरण करने लगे। भगवान के पधार जाने पर राजगृह नगर के त्रिकोण, चत्वर आदि सभी मार्गों पर नगरनिवासी लोग आपस में कहने लगे—

भद्र पुरुषो ! नगर के बाहिर उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं, जिन के नाम गोत्र का श्रवण करने से भी महाफल होता है, तो फिर उनके दर्शन करने तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है, उसका तो कहना ही क्या है ?

नगर निवासियों में हो रही उक्त बातों को सुन कर सेठ सुदर्शन ने विचार किया—श्रमण भगवान महावीर नगर के बाहिर गुणशिलक उद्यान में विराजमान हैं, तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं, अतः मुझे श्रमण भगवान महावीर को वंदन एवं नमस्कार करने के लिये उनकी सेवा में जाना उचित है। ऐसा विचार करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन अपने माता-पिता के पास आए, दोनों हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगे—

मात-पिता ! श्रमण भगवान महावीर गुणशिलक उद्यान में विराजमान हैं, वहां तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं, अतः मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार तथा उनकी भक्ति करने के लिये उनके पास जाना चाहता हूं। आप मुझे आज्ञा दीजिए।

अपने पुत्र सेठ सुदर्शन की बात सुन कर माता-पिता कहने लगे—पुत्र ! नगर के बाहिर अर्जुन माली लोगों का घात करता हुआ भ्रमण कर रहा है, अतः पुत्र ! श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करने के लिये मत जाओ। अन्यथा तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा। यहां बैठ कर ही तुम्हें श्रमण भगवान महावीर को वंदन एवं नमस्कार कर लेना चाहिए।

अपने माता-पिता की यह बात सुन कर सेठ सुदर्शन उनसे कहने लगा—माता-पिता ! क्या मैं यहां पधारे, यहां विराजित तथा यहां आए हुए श्रमण भगवान महावीर को यहां घर में बैठ कर ही वंदन एवं नमस्कार करूं ? ऐसा कभी नहीं हो सकता, अतः आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं वहां जा कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करूं, तथा उनकी सेवा-भक्ति का लाभ उठाऊं।

सेठ सुदर्शन के विचार सुनकर उसके माता-पिता ने उसको खूब समझाया, पर वे मानने को तैयार नहीं हुए। इस तरह अनेक सामान्य तथा विशिष्ट वचनों द्वारा जब वे सुदर्शन सेठ को समझाने में असफल रहे, तब उन्होंने उस से कह दिया—'भद्र ! जैसे तुम्हें सुख हो।'

अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त कर लेने पर सेठ सुदर्शन ने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने, अनेक आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। यह सब कुछ करने के अनन्तर अपने घर से निकल कर पैदल ही राजगृह के मध्यमार्ग से होते हुए उसने मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास जहां गुणशिलक उद्यान था और जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां जाने का निश्चय किया।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में माता-पिता का सम्मान तथा धर्म पर विश्वास इन दो बातों को लेकर प्रकाश डाला गया है। पुत्र को अपने माता-पिता का आदर करना चाहिये, उनका कहना मानना चाहिये, उनसे पूछे बिना किसी कार्य को नहीं करना चाहिये। इस प्रकार माता-पिता का सम्मान सुरक्षित रखने में ही पुत्र गौरवास्पद बन सकता है। ऐसा पुत्र ही वास्तव में भाग्यवान एवं यशस्वी पुत्र कहला सकता है। राजगृह नगर के सुदर्शन सेठ अपने माता-पिता के ऐसे ही एक यशस्वी एवं सुयोग्य पुत्र थे। इन्हें जब पता चला कि नगर के बाहिर गुण शिलक उद्यान में भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं और वहां तप-संयम की भावना से भावित होते हुए जनता का कल्याण कर रहे हैं, तो उन्होंने भगवान के चरणों में उपस्थित होकर उनको वन्दन-नमस्कार करने का विचार किया। अपने विचार को क्रियात्मक रूप देने के लिये उन्होंने सर्व प्रथम अपने माता-पिता से निवेदन किया कि नगर के बाहिर श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं, मेरी इच्छा है कि मै उनके चरणों में उपस्थित होकर उनके चरणों में वन्दन एवं नमस्कार करूं, पर यह सब कुछ आपकी आज्ञा प्राप्त करके ही करना चाहता हूं। अतः आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, ताकि मैं भगवान को वन्दन करने का अपना संकल्प पूर्ण कर सकूं।

अपने माता-पिता से आज्ञा मिलने पर ही सुदर्शन सेठ का भगवान महावीर को वन्दना एवं नमस्कार करने के लिये जाना। उनकी अनुकरणीय पितृ-भक्ति का ही निदर्शन है।

मनुष्य में कितनी धर्म-प्रियता है और कितनी दृढ़ता है, धर्म में कितना विश्वास है? इस बात की परीक्षा संकट-काल में ही होती है। इस परीक्षा में जो खरा उतरता है, वही सच्चा धार्मिक है, ऐसे धार्मिक व्यक्तियों में सेठ सुदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सेठ सुदर्शन ने जब अपने माता-पिता से भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होने के लिये आज्ञा प्राप्त करने के लिये निवेदन किया था, उस समय उसको राजगृह नगर के बाहिर यक्षाविष्ट अर्जुन माली द्वारा किए जा रहे उपद्रवों का पूर्ण ज्ञान था, उसे यह भी पता था कि नगर-नरेश महाराज श्रेणिक ने नगर-निवासियों को नगर से बाहिर न जाने का आदेश दे रखा है। इन सब बातों के होने

पर भी सेठ सुदर्शन ने भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होकर उनके वन्दन एवं नमस्कार करने का संकल्प किया और इसके लिये उसने अपने माता-पिता से आज्ञा प्रदान करने के लिये सानुरोध विनती की। यह सेठ सुदर्शन की धार्मिक दृढ़ता तथा गुरुजनों के लिये सच्ची निष्ठा का एक जीता जागता उदाहरण है।

"समोसढे जाव विहरइ" यहां पठित **जाव** पद—**"अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे"** इन पदों का परिचायक है इनका अर्थ है—साधु-वृत्ति के अनुकूल अवग्रह एवं उपाश्रय उपलब्ध कर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए।

"सिंघाडग० बहुजणो" यहां का बिंदु—**तिय-चउक्क-चच्चर महापहपहेसु"** इस पाठ का बोधक है। शृंगाटक आदि शब्दों का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है।

"एवमक्खाइ जाव" यहां पठित **जाव** पद—राजगृह नगर के लोग कहते हैं कि 'भद्र पुरुषो! भगवान महावीर प्रभु इस नगर के बाहिर पधारे हैं, जिनके नाम व गोत्र के सुनने मात्र से भी महाफल होता है तो उनके दर्शन करने से जो फल होता है उसका तो वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो अवर्णनीय है।' इन भावों का परिचायक है।

"किमंग" यह अव्ययपद है जिसका अर्थ है—'क्या कहें', 'इसमें तो कहने की कुछ बात ही नहीं है।'

"महावीरे जाव विहरइ" यहां का **जाव** पद 'भगवान महावीर की गुण-सम्पदा के वर्णक पाठ तथा साधु-वृत्ति के अनुकूल स्थान प्राप्त करके तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए' इन भावों का बोधक है। भगवान महावीर की गुण-सम्पदा का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में देखना चाहिये।

"अज्जुणे मालागारे जाव घाएमाणे" यहां पठित **जाव** पद **"मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नगरस्य परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं छ इत्थीसत्तमे पुरिसे"** इन पदों का संसूचक है। इस पाठ का अर्थ पीछे पृष्ठ ३०४ पर लिखा जा चुका है।

तुमण्णं इहगते चेव समणं महावीरं वंदाहि नमंसाहि"—अर्थात् तुम यहां अपने घर में ही श्रमण भगवान महावीर को वंदना एवं नमस्कार करलो। सूत्रकार के इस उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि उस समय जिन-मन्दिरों का अस्तित्व नहीं था, यदि उस समय जिन-मन्दिर होते तो सेठ सुदर्शन के माता-पिता उसे "तुम यहाँ बैठे ही भगवान को वन्दन नमस्कार कर लो" यह कहने की अपेक्षा यह कहते कि हे पुत्र! तुम यहीं जिन-मन्दिर में जाकर भगवान को वन्दना नमस्कार करलो। मूर्ति-पूजकों की दृष्टि में जिन-प्रतिमा जिन भगवान के समान ही समझी जाती है, अतः माता-पिता सुदर्शन को जिन-मन्दिर में जाने के लिये नहीं कहते, इससे प्रमाणित होता है कि जिन-मन्दिरों की रचना उनके बहुत पीछे की है।

'किण्णं' यह अव्ययपद है। यह प्रश्न और आक्षेप अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सेठ सुदर्शन के माता-पिता ने जब उसे घर में बैठ कर ही भगवान महावीर की वन्दन एवं नमस्कार कर लेने के लिये कहा तब सुदर्शन सेठ आक्षेप-प्रधान प्रश्न की भाषा में बोलते हुए अपने मातापिता से कहते हैं—

'भगवान महावीर मेरी नगरी में विराजमान हों और मैं यहीं घर बैठा उन को वंदन कर लूं ? यह कैसे हो सकता है ? आप स्वयं ही विचार करें, मंगलमूर्ति भगवान ने यहां पधारने का अनुग्रह किया हो और मैं यहां बैठा ही उन को नमस्कार करूं ? ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

"इहमागयं, इह पत्ते" तथा **"इह समोसढे"** ये तीनों पद समानार्थक से प्रतीत होते हैं। पर टीकाकार ने इस सम्बन्ध में कुछ अर्थ-भेद संसूचित किया है जो इस प्रकार है—

"इहमागयं",-मित्यादि, इह नगरे आगतं प्रत्यासन्नत्वेऽप्येवं व्यपदेशः स्यात्, अत उच्यते—इह सम्प्राप्तं प्राप्तावपि विशेषाभिधानमुच्यते, इह समवसृतं धर्म-व्याख्यान प्रवर्तनया व्यवस्थितम् अथवा इह नगरे पुनरिहोद्याने पुनरिह साधूचितावग्रहे इति। टीकाकार कहते हैं कि **इहमागयं** का अर्थ है इस नगर में आए हुए। पर यह तो नगर के पास पहुंचने पर भी कहा जा सकता है, अतः सूत्रकार ने **इहपत्ते** —यह लिखा है। इस का अर्थ है—इस नगर में पहुँचे हुए। इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये—**इह समोसढे** यह लिखा है। इस का भाव है—धर्म-व्याख्यान में लगे हुए अथवा—**इहमागयं** का अर्थ है—इस नगर में आए हुए। **इह पत्ते** का—इस उद्यान में आए हुए तथा **इह समोसढे** का अर्थ है—साधुओं के योग्य स्थान पर ठहरे हुए।

"बहूहिं आघवणाहिं जाव परूवित्तए"—बहुभिराख्यापनाभिः सामान्यकथनैः, जाव पदेन——पण्णवणाहिं प्रज्ञापनाभिः—विशेषतः कथनैः, परूवणाहिं प्ररूपणाभिः—युक्तिप्रयुक्ति रूपाभिः आघवित्तए—आख्यापयितुं सामान्यतया बोधयितुं, पण्णवित्तए—प्रज्ञापयितुं विशेषतो बोधयितुं, परूवित्तए-प्ररूपयितुं युक्तिप्रयुक्तिभिः प्रतिबोधयितुं—अर्थात्—आख्यापना शब्द सामान्य कथन को कहते हैं और **जाव** पद से **पण्णवणाहिं** आदि पदों का ग्रहण करना अभीष्ट है। प्रज्ञापना शब्द विशेष कथन प्ररूपना शब्द सामान्य युक्तियों तथा विशिष्ट युक्तियों से युक्त कथन **आख्यापयितुं** यह क्रिया पद सामान्य रूप से बोध कराने के लिये **प्रज्ञापयितुं** यह पद विशेष रूप से बोध कराने के लिये तथा **प्ररूपयितुं** यह क्रियापद सामान्य तथा विशेष युक्तियों से बोध कराने के लिये, इन अर्थों का परिचायक है।

"सुद्धप्पवेसाइं जाव सरीरे" यहां पठित **जाव** पद—**मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्प-महग्घाभरणालंकिय**—इन पदों का संसूचक है। **"सुद्धप्पवेसाइं"** इस पद के टीकाकार ने दो अर्थ लिखे हैं। **शुद्धात्मा—स्नानेन शुचिकृतदेहः, वेश्यानि वेशे साधूनि अथवा शुद्धानि च तानि प्रवेश्यानि च धर्मसभा-प्रवेशोचितानि चेति विग्रहः।** अर्थात्—स्नान से शरीर शुद्ध कर लिया और शुद्ध वस्त्र धारण कर लिये, अथवा सभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्रों को धारण किया। **जाव** पद से विवक्षित पदों का अर्थ इस प्रकार है—मंगल रूप प्रधान वस्त्रों को पहर कर भार में हलके तथा मूल्य में अधिक आभरणों से शरीर को अलंकृत किया।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर के सेठ सुदर्शन ने भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होने का निश्चय कर लिया। इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीतीवयमाण २ पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते ५। तं पलसहस्सनिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ, करयल० एवं वयासी—

नमोऽत्थु णं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं। नमोऽत्थु णं समणस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं च णं मंते समणस्स भगवतो महावीरस्स अन्तिए थूलए पाणातिवाते पच्चक्खाते जावज्जीवाते, थूलते मुसावाते, थूलते अदिन्नादाणे, सदारसंतोसे कते जावज्जीवाते, इच्छा-परिमाणे कते जावज्जीवाते। तं इदाणिंपि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणातिवातं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं, अदत्तादाणं, मेहुणं, परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गातो मुच्चिस्सामि तो मे कप्पेति पारेत्तते, अह णो एत्तो उवसग्गातो मुच्चिस्सामि, ततो मे तहा पच्चक्खाते चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

छाया—ततः स मुद्गरपाणिर्यक्षः सुदर्शनं श्रमणोपासकमदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन्तं पश्यति, दृष्ट्वा आसुरोक्तः (आशुरुष्टः, आशुरुप्तो वा) तं पलसहस्रनिष्पन्नमयोमयं मुद्गरमुल्लालयन्नुल्लालयन् यत्रैव सुदर्शनः श्रमणोपासकस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय। ततः सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः मुद्गरपाणिं यक्षमागच्छन्तं पश्यति, दृष्ट्वा अभीतः, अत्रस्तः, अनुद्विग्नः, अक्षुभितः, अचलितः असंभ्रान्तः वस्त्रप्रान्तेन (वस्त्रांचलेन) भूमिं प्रमार्जयति, प्रमृज्य करतल० परिगृहीतः एवमवादीत्—

नमोऽस्तु अर्हद्भ्यः यावत् सम्प्राप्तेभ्यः। नमोऽस्तु श्रमणाय यावत् सम्प्राप्तकामाय। पूर्वं च मया श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अंतिके स्थूलः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातः यावज्जीवं स्थूलं मृषावादं, स्थूलं अदत्तादानं, स्वदारसन्तोषः कृतः यावज्जीवम्। इच्छापरिमाणं कृतं यावज्जीवम्। तदिदानीमपि तस्यैवान्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि, यावज्जीवं मृषावादमदत्तादानं, मैथुनं, परिग्रहं प्रत्याख्यामि यावज्जीवं। सर्वं क्रोधं यावद् मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि यावज्जीवं, सर्वमशनं, पानं, खादिमं, स्वादिमं चतुर्विधमप्याहारं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्। यदि एतस्माद् उपसर्गाद् मोक्ष्यामि, ततः मे कल्पते पारयितुम्, अथ नो एतस्माद् उपसर्गाद् मोक्ष्यामि ततो मम तथा प्रत्याख्यातमिति कृत्वा साकारां प्रतिमां प्रतिपद्यते।

पदार्थ—तए णं—उसके अनन्तर; **णं**—वाक्य सौन्दर्य के लिये; **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि नामक यक्ष; **समणोवासयं**—श्रमणोपासक साधुओं की सेवा करनेवाले; **सुदंसणं**—सुदर्शन को; **अदूरसामंतेणं**—न अति दूर और न अति निकट, **वीतीवयमाणं** २—आते हुए को; **पासइ**—देखता है; **पासित्ता**—देखकर; **आसुरुत्ते**—आशुरुप्त—जिसे बहुत शीघ्र क्रोध चढ़ जाता है; ५ इस अङ्क से; **रुट्ठे**—रोस वाला; **कुविए**—कोपवाला; **चंडिक्किए**—कोपातिरेक से भीषण बना हुआ; **मिसिमिसीमाणे**—क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, या दांत पीसता हुआ इन पदों का ग्रहण किया जाता है, ऐसा होकर; **तं**—उसने; **पलसहस्सनिप्फन्नं**—हजार पल से बने हुए; **अयोमयं**—लोहे के; **मोग्गरं**—मुद्गर को; **उल्लालेमाणे** २—उछाल-उछालकर; **जेणेव**—जहां पर; **समणोवासए**—श्रमणोपासक; **सुदंसणे**—सुदर्शन था; **तेणेव**—वहां पर; **पहारेत्थ गमणाए**—जाने का निश्चय किया; **तए णं**—उसके अनन्तर; **से सुदंसणे समणोवासए**—वह श्रमणोपासक सुदर्शन; **मोग्गरपाणि**—मुद्गरपाणि; **जक्खं**—यक्ष को; **एज्जमाणं**—अपनी ओर आते हुए को; **पासइ**—देखता है; **पासित्ता**—और देखकर; **अभीए**—भय रहित रहा; **अतत्थे**—त्रास रहित रहा; **अणुव्विग्गे** अनुद्विग्न रहा; **अक्खुभिते**—क्षोभ रहित रहा; **अचलिए**—स्थिर रहा; **असंभते**—असंभ्रान्त रहा; **वत्थंतेणं**—वस्त्र के अग्र भाग से; **भूमिं**—भूमि को; **पमज्जइ**—शुद्ध करता है; **करयल०**—दोनों हाथ जोड़कर; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला—

नमोऽत्थु णं—नमस्कार हो; **अरिहंताणं**—अरिहन्त भगवान को; **जाव**—यावत्; **संपत्ताणं**—मोक्ष को प्राप्त हुए महापुरुषों को; **नमोऽत्थु णं**—नमस्कार हो; **समणस्स**—श्रमण; **जाव**—यावत् भगवान महावीर स्वामी को;**संपाविउकामस्स**—मोक्ष को प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालों को; **जाव**—यावत्; **पुव्वि च णं**—और पहले; **मंते**—मैंने; **समणस्स भगवतो महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के; **अन्तिए**—पास; **थूलते पाणातिपाते**—स्थूल प्राणातिपात अर्थात् हिंसा का; **जावज्जीवाते**—जीवन पर्यन्त; **पच्चक्खाते**—नियम कर रखा है; **थूलते मुसावाते**—स्थूल मृषावाद का; **थूलते अदिन्नादाणे**—स्थूल अदत्तादान—चौर्य कर्म का परित्याग कर रखा है; **सदारसंतोसे कते**—स्वदार-सन्तोष अर्थात् अपनी स्त्री में ही संतुष्ट रहने का व्रत ग्रहण कर रखा है; **जावज्जीवाते**—जीवनभर के लिये; **इच्छापरिमाणे कते**—इच्छाओं को सीमित एवं मर्यादित कर रखा है; **जावज्जीवाते**—जीवन भर के लिये; **तं**—सो; **इदाणिं पि णं**—इस समय भी; **तस्सेव अंतिए**—उसी के पास, उसी भगवान महावीर को साक्षी बनाकर; **सव्वं**—सर्व प्रकार का; **पाणातिवातं**—प्राणातिपात—प्राणों के विनाश का; **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हूं; **जावज्जीवाए**—जीवनभर के लिये; **मुसावायं**—मृषावाद अर्थात् असत्य भाषण का; **अदत्तादाणं**—आज्ञा के बिना वस्तु को ग्रहण करने का; **मेहुणं**—मैथुन, व्यभिचार का; **परिग्गहं**—परिग्रह—लोभ का; **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हूं; **जावज्जीवाए**—जीवनभर के लिये; **सव्वं**—सभी प्रकार के; **कोहं**—क्रोध का; **जाव**—यावत्; **मिच्छादंसणसल्लं**—मिथ्यादर्शन शल्य—मिथ्यात्व रूप कांटों का; **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हूं; **सव्वं**—सभी प्रकार के; **असणं**—अशन—अन्न; **पाणं**—पानी; **खाइमं**—खादिम अर्थात् खाद्य पदार्थ द्राक्षा-अंगूर आदि; **साइमं**—स्वादिम अर्थात् मुख को स्वादिष्ट

बनानेवाले पान सुपारी आदि, इस प्रकार; **चउव्विहंपि—आहारं**—चारों प्रकार के आहारों का भी; **जावज्जीवाय**—जीवन भर के लिये; **पच्चक्खामि**—परित्याग करता हूं; **जइ णं**—यदि; **एत्तो**—इस; **उवसग्गातो**—उपसर्ग अर्थात् आपत्ति से; **मुच्चिस्सामि**—मुक्त हो जाऊं; **तो**—तब; **मे**—मुझे; **कप्पति**—उचित है; **पारेत्तते**—पारण करना; **अह**—अथ—यदि; **एत्तो उवसग्गातो**—इस उपसर्ग से; **णो मुच्चिस्सामि**—मुक्त न हो सकूं; **ततो**—उसके अनन्तर; **मे**—मेरा; **पच्चक्खाते**—प्रत्याख्यान भी; **तहा चेव**—उसी प्रकार रहेगा अर्थात् मैं पूर्वोक्त सभी बातों का त्यागी रहूंगा; **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कह कर; **सागार पडिमं**—सागार—छूट सहित प्रतिमा अर्थात् प्रतिज्ञा; **पडिवज्जइ**—धारण कर लेता है।

मूलार्थ—राजगृह नगर के सुदर्शन सेठ जब गुणशिलक उद्यान की ओर आ रहे थे, तब मुद्गरपाणि यक्ष श्रमणोपासक सुदर्शन को आता हुआ देखकर क्रोध से तमतमा उठा, क्रोधाधिक्य के कारण वह दांत पीसने लगा और तत्काल हजार पल के लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ वह श्रमणोपासक सुदर्शन की ओर चल पड़ा। लोह-मुद्गर को उठाए हुए मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आते हुए देखकर श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ ज़रा भी डरा नहीं, वह सर्वथा निर्भय बना रहा। उसने भय, त्रास, उद्वेग, क्षोभ, चाञ्चल्य तथा संभ्रान्ति को निकट नहीं आने दिया। शान्तभाव से उसने वस्त्र के अग्र-भाग से भूमि को शुद्ध किया और दोनों हाथ जोड़कर वह कहने लगा—

मोक्ष को प्राप्त हुए श्री अरिहन्त को तथा मोक्ष को प्राप्त करनेकी कामना रखने-वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो। मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास जीवन भर के लिये स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद तथा स्थूल अदत्तादान का परित्याग कर दिया था। जीवन पर्यन्त स्वदार-सन्तोष-व्रत अंगीकार किया और जीवन भर के लिये इच्छाओं को मर्यादित करके अपरिग्रह-अणुव्रत धारण किया था; सो अब भी इन्हीं की साक्षी से सर्वविध प्राणातिपात, मृषावाद, चौर्य, मैथुन तथा परिग्रह का जीवन भर के लिये परित्याग करता हूं तथा आजीवन सर्वविध क्रोध, मान यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य का परित्याग करता हूं एवं जीवन पर्यन्त, अशन, पान, खादिम और स्वादिम इस चतुर्विध आहार का परित्याग करता हूं। यदि इस उपसर्ग अर्थात् संकट से छूट जाऊं तो मैं पारणा कर लूंगा और यदि इस आपत्ति से मैं मुक्त न हो सका तब मेरी यह प्रतिज्ञा आजीवन रहेगी। इस प्रकार कह कर सेठ सुदर्शन सागार (छूट सहित) प्रतिज्ञा को ग्रहण कर लेते हैं।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि राजगृह नगर के मान्य सेठ सुदर्शन को गुणशिलक उद्यान की ओर आते देखकर मुद्गरपाणि यक्ष क्रोध के मारे दांत पीसते हुए उसे मारने के लिये मुद्गर को उछालता हुआ आता है, पर यक्ष की इस क्रोध पूर्ण भयंकर दशा को देख लेने पर भी सेठ सुदर्शन सर्वथा शान्त एवं निर्भय रहता है, उसने शान्त भाव से भूमि पर बैठकर सागारी संथारा अंगीकार किया।

प्रस्तुत सूत्र में वर्णित इस कथानक से निम्नलिखित शिक्षाएं प्राप्त होती हैं—

१. जिस प्रकार श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन मुद्गरपाणि यक्ष के द्वारा उपस्थित आपत्ति में जरा भी कम्पित नहीं हुआ, भय और संत्रास से बिल्कुल दूर रह कर उसने अपनी मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक शान्ति सुरक्षित रखी, उसी प्रकार धर्मप्रिय मुमुक्षु मनुष्य को आपत्ति में भी भयभीत नहीं होना चाहिये। संकट-काल में सर्वथा सुदृढ़ रह कर आनेवाले संकट का शान्ति से सामना करना चाहिये।

२. जिस प्रकार भय, त्रास या कम्पन से ऊपर उठ कर सेठ सुदर्शन ने विधिपूर्वक सागारी संथारा अंगीकार करके अपनी धार्मिक निष्ठा अभिव्यक्त की है, उसी प्रकार प्रत्येक कल्याणाभिलाषी आध्यात्मिक व्यक्ति को कष्ट के उपस्थित होने पर एक मात्र धर्म को शरण्य समझ कर उसके पालन में तल्लीन हो जाना चाहिये, क्योंकि धर्म में रक्षा की अक्षय शक्ति है।

३. जिस प्रकार मृत्यु-संकट को सामने देखकर भी सेठ सुदर्शन ने मन वचन तथा काया इन तीन योगों से हिंसा आदि आस्रवों तथा क्रोध आदि पापों का सर्वथा त्याग कर श्रावक-धर्म से साधु-धर्म में प्रवेश कर लिया, इसी प्रकार घोर कष्ट की प्राप्ति के समय परम-साध्य निर्वाण के प्राप्त करने की कामना रखनेवाले साधक मनुष्य को गृहीत श्रावक धर्म को सर्वविरति धर्म अर्थात् साधुधर्म के रूप में बदलकर अपनी आत्मा को निष्पाप बनाने का स्तुत्य प्रयास करना चाहिये।

"आसुरुत्ते ५" यहां के अंक से—**रुट्ठे, कुविए, चंडिक्किए मिसिमिसिमाणे"** इन पदों का ग्रहण किया जाता है। आसुरुत्ते के आशुरुप्त तथा आसुरोक्त ये दो संस्कृत रूप बनते है, इसलिये इस पद के दो अर्थ किये जाते हैं।

१. जो शीघ्र ही क्रोध से विमोहित हो जाए, कृत्य और अकृत्य के विवेक से रहित हो जाए।

२. जिसकी वाणी क्रोधी राक्षसों जैसी है।

रोष करनेवाला रुष्ट, हृदय से क्रोध करनेवाला कुपित, क्रोधातिरेक के कारण भीषणता को प्राप्त करनेवाला चाण्डिक्यित तथा क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, दांत पीसता हुआ "मिसिमिसी माण" कहलाता है।

"पलसहस्सनिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं" इन पदों की व्याख्या पीछे पृष्ठ २०१ में की जा चुकी है।

"समणोवासए" इस पद की व्याख्या भी पृष्ठ ३०६ पर कर दी गई है।

"अभीते, अतत्थे, अणुव्विग्गे, अक्खुभिते, अचलिए, असंभंते—अभीतः अत्रस्तः, अनुद्विग्नः, अक्षुब्धः, अचलितः, असंभ्रान्तः ।*

ये शब्द प्रायः समानार्थक से ही हैं, परन्तु कोषकारों के मत में भय आदि शब्दों में जो अन्तर पाया जाता है वह इस प्रकार है—

१. विपत्ति या अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न दुःख-जनक भाव 'भय' कहलाता है। २—खौफ़ का नाम त्रास है। ३. घबराहट या परेशानी को उद्वेग कहते हैं। ४. क्षोभ का अर्थ है—हलचल, खलबली, व्याकुलता। ५. चलन—यह शब्द हिलना, डोलना, भ्रमण गति आदि अर्थों का बोधक है। ६. घबराहट, उतावली, चकपकाहट इन अर्थों का परिज्ञापक है संभ्रान्ति शब्द।

भय से रहित अभीत, त्रास से रहित अत्रस्त, उद्वेग से रहित अनुद्विग्न, क्षोभ से रहित अक्षुब्ध, चलन से रहित अचलित और संभ्रान्ति से रहित असंभ्रान्त कहलाता है।

"वत्थंतेणं-वस्त्रान्तेन वस्त्राप्रभागेन"—अर्थात् वस्त्र के अग्रभाग को वस्त्रान्त कहते हैं।

"करतल०" यहां का बिंदु **"परिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं अंजलिं मत्थए कट्टु"**—अर्थात् सिर पर प्रदक्षिणा करते हुए दस नाखूनोंवाले दोनों हाथों को अंजलिबद्ध करके मस्तक पर रख कर।

"अरिहन्ताणं जाव संपत्ताणं"—यह पठित **जाव** पद—**भगवन्ताणं आइगराणं—मव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणं**"—इन पदों का परिचायक है। इन पदों का अर्थ पृष्ठ १७ पर लिखा जा चुका है।

"समणस्स जाव संपाविउकामस्स"—यहां पठित **'जाव'** पद **भगवओ महावीरस्स आइगरस्स ···नामधेयं ठाणं**" इन पदों का सूचक है।

"सणमस्स भगवओ महावीरस्स"—इन पदों को छोड़कर **'आदिगरस्स'** आदि अवशिष्ट पदों का उल्लेख ऊपर कर दिया गया है। अन्तर केवल एक वचन तथा बहुवचन का है। पहले पद बहुवचनान्त है, ये एक वचनान्त हैं। **"समणस्स भगवओ महावीरस्स"** का अर्थ है—श्रमण भगवान महावीर। **संपाविउकामस्स** का अर्थ है—प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले।

"थूलते पाणातिवाते" का अर्थ है—**स्थूल प्राणातिपातः**। इसमें प्रयुक्त स्थूल शब्द का अर्थ है—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय रूप त्रस जीव। गृहस्थ सूक्ष्म जीवों (स्थावरों) की हिंसा से बच नहीं पाता, इसलिये उसके लिये निरपराधी स्थूल त्रस जीवों की हिंसा के परित्याग का विधान किया गया है।

"थूलते मुसावाते"—**स्थूल मृषावादः**। मृषावाद झूठ को कहते हैं, वह स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का है— मनोरंजन के लिये असत्य बोलना, ऊंघने पर भी कहना, मैं तो जाग रहा हूं,

* विद्वद्वर्य श्री घासीलाल जी महाराज ने इनका अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है—

अभीतोऽत्रस्तोऽनुद्विग्नोऽक्षुब्धोऽचलितोऽसंभ्रान्तः, किमपि भयजनकं वस्तु दृष्ट्वा जनः पूर्वं भीतो भवति, अनन्तरं त्रस्तः, तदनुद्विग्नः पश्चात् क्षुब्धः, पुनश्चलितो भवति अयं सुदर्शनः कृतान्तसदृशं तं दृष्ट्वापि भयादिरहित एव तस्थौ।

पैसे पास होने पर भी बच्चों को इन्कार कर देना, ये सब सूक्ष्म मृषावाद हैं। कन्या, भूमि, गौ को लेकर झूठ बोलना, धरोहर के सम्बन्ध में झूठ बोलना तथा झूठी गवाही देना यह सब स्थूल मृषावाद है।

"थूलते अदिन्नादाणे–स्थूलमदत्तादानम्। खात खनना, गांठें काटना, ताले तोड़ना, मालिक की आज्ञा बिना किसी वस्तु का उठाना, स्थूल अदत्तादान कहलाता है।

"तस्सेव अंतियं—तस्यैव भगवतो महावीरस्य अन्तिकम्, भगवन्तं "साक्षी कृत्वेत्यर्थः"—उसी भगवान महावीर के पास अर्थात् भगवान को साक्षी बना कर।

"सव्वं पाणातिवातं"—अर्थात् प्राणों का अतिपात—नाश प्राणातिपात कहलाता है। यह मनसा वचसा, कर्मणा तीन प्रकार का होता है, अतः मानसिक वाचिक तथा कायिक प्राणातिपात को सर्व-प्राणातिपात कहते हैं।

"कोहं जाव मिच्छादंसणं"—यहां पठित **जाव** पद मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (झूठा कलंक लगाना); पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अरति (अनुकूल विषयों के प्राप्त होने पर चित्त में होनेवाला आनंद रति है तथा प्रतिकूल विषयों को प्राप्त होने मे उत्पन्न होनेवाले खेद को अरति कहते हैं), माया मृषा इन अवशिष्ट पापों का संग्राहक है।

"मिथ्यादर्शनशल्यं"—का अर्थ है—श्रद्धा का विपरीत होना।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रमणोपासक के जो बारह व्रत है वे सम्यक्त्वपूर्ण ही ग्रहण किये जाते हैं, उनमें मिथ्यात्व का परित्याग स्वतः ही हो जाता है तो फिर सागार प्रतिमा (सागारी संथारा) ग्रहण करते समय सेठ सुदर्शन ने मिथ्यादर्शनशल्य रूप मिथ्यात्व का जो परित्याग किया है इसकी उपपत्ति कैसे होगी ? श्रावक-धर्म को धारण कर लेने के अनन्तर मिथ्यात्व के परित्याग करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, वह तो चतुर्थ गुणस्थान में ही समाप्त हो जाता है। उत्तर में निवेदन है कि यद्यपि बारह व्रतधारी श्रावक के लिये मिथ्यात्व का परित्याग सबसे पहले करना होता है और मिथ्यात्व के परिहार पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तथापि देशविरति (श्रावक) का जो त्याग है, वह आंशिक है, सर्वतः नहीं है। मिथ्यादर्शन के देश-शंका, सर्वशंका आदि अनेकों उपभेद हैं। उन सबका सर्वथा परित्याग करना ही यहाँ पर मिथ्यादर्शन शल्य के त्याग का लक्ष्य है। भाव यह है कि देशविरति धर्म के अंगीकार में लेश मात्र रहे हुए शंका आदि दोषों का भी उक्त प्रतिज्ञा में परित्याग कर दिया गया है।

"असणं पाणं खाइमं साइमं"—का अर्थ है—अशन, पान, खादिम और स्वादिम ये चार प्रकार का आहार। आर्य और अनार्य भेद से आहार दो प्रकार का बतलाया गया है। सात्त्विक आहार को आर्य और तामस आहार को अनार्य कहते हैं। मांस, अण्डा, मदिरा आदि तामस आहार माना गया है। यह आहार आध्यात्मिक सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से निषिद्ध है। विवेक शील दयालु व्यक्ति

को इस आहार का कभी सेवन नहीं करना चाहिए । अशन, पान आदि सात्विक आहार कहे गए हैं। रोटी, चावल आदि खाने योग्य पदार्थों को अशन, दूध पानी आदि पीने योग्य पदार्थों को पान, बादाम किसमिस मेवा और फल आदि को खादिम तथा सुपारी लौंग और इलायची आदि मुखको स्वादिष्ट बनानेवाले पदार्थ को स्वादिम कहते हैं। सागारी संथारा करते समय सेठ सुदर्शन ने इसी चतुर्विध सात्विक आहार का भी परित्याग किया था।

"सागारं पडिमं पडिवज्जइ"—**साकारां प्रतिमां संस्तारकरूपां प्रतिज्ञां प्रतिपद्यते—स्वीकरोति ।** यहां पठित साकार शब्द का अर्थ है—अपवाद युक्त छूट सहित । प्रतिमा-संथारा आमरण अनशन का नाम है । **प्रतिपद्यते** यह क्रियापद स्वीकार करने अर्थ में प्रयुक्त होता है । छूट रख कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसे साकार-प्रतिमा कहते हैं । कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा करते समय उसमें जब किसी वस्तु या समय विशेष की छूट रख लेता है और "यह काम हो गया तो मैं अनशन खोल लूंगा । यदि काम न बना तो मैं अपना अनशन नहीं खोलूंगा, उसे लगातार चलाऊंगा' , इस प्रकार का संकल्प कर के यदि कोई नियम लिया जाता है तो उस नियम को साकार प्रतिमा कहा जाता है ।

राजगृह नगर के सेठ सुदर्शन ने जब अर्जुनमाली को मुद्गर उछालते हुए अपनी ओर आते देखा, तो उन्हों ने 'सागारी संथारा' ग्रहण कर लिया । इस के अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सनिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए । तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे २ जाहे णो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरतो सपक्खिं, सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं णिरिक्खइ, णिरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता पलसहस्सनिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूते, तामेव दिसं पडिगते ।**

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे धसत्ति धरणितलंसि सव्वंगेहिं निवडिए । तएणं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ ।

छाया—**ततः स मुद्गरपाणिर्यक्षः तं पलसहस्रनिष्पन्नमयोमयं मुद्गरमुल्लालयन् २ यत्रैव सुदर्शनः श्रमणोपासकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य नो चैव शक्नोति सुदर्शनं श्रमणोपासकं तेजसा समभिपतितुम् ततः स मुद्गरपाणिर्यक्षः सुदर्शनं श्रमणोपासकं सर्वतः समन्तात् परिघोलयन् २ यदा नो चैव**

शक्नोति सुदर्शनं श्रमणोपासकं तेजसा समभिपतितुं, तदा सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य पुरतः सपक्षं सप्रतिदिशं स्थित्वा सुदर्शनमनिमेषया दृष्ट्या सुचिरं निरीक्षते, निरीक्ष्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य शरीरं विप्रजहाति, विप्रहाय तं पलसहस्रनिष्पन्नमयोमयं मुद्गरं हृत्वा यस्याः दिशः प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः। ततः स अर्जुनको मालाकारः मुद्गरपाणिना यक्षेण विप्रमुक्तः सन् धस् इति कृत्वा सर्वांगैः धरणितले निपतितः। ततः स सुदर्शनः श्रमणोपासकः निरुपसर्गमिति कृत्वा प्रतिमां पारयति।

पदार्थ—**तए णं**—उस के अनन्तर; **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष; **तं पलसहस्सनिप्फन्नं**—उस हजार पल के बने हुए; **अयोमयं मोग्गरं**—लोहमय मुद्गर को; **उल्लालेमाणे २**—उछाल उछाल कर; **जेणेव**—जहां पर; **सुदंसणे समणोवासए**—सुदर्शन श्रमणोपासक था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आता है; **उवागच्छित्ता**—आकर; **सुदंसणं**—सुदर्शन ; **समणोवासयं**—श्रमणोपासक को; **तेयसा**—तेज अर्थात् अपनी दिव्य शक्ति से; **समभिपडित्तए**—आक्रांत करने में; **नो संचाएइ**—समर्थ नहीं हो सका; **च**—और; **एवं**—निश्चयार्थक है; **तए णं**—उस के अनन्तर; **से मोग्गरपाणी जक्खे**—वह मुद्गरपाणि यक्ष; **सुदंसणं समणोवासयं**—सुदर्शन श्रमण-उपासक को; —**सव्वओ**—सब तरह; **समंताओ**—चारों ओर से; **परिघोलेमाणे २**—चक्कर पर चक्कर लगा लगा कर; **जाहे**—जब; **सुदंसणं समणोवासयं**—सुदर्शन श्रमणोपासक को; **तेयसा**—अपने तेज से; **समभिपडित्तए**—आक्रान्त करने में; **नो चेव संचाएइ**—समर्थ नहीं हो सका; **ताहे**—तब; **सुदंसणस्स समणोवासयस्स**—सुदर्शन श्रमणोपासक के; **पुरओ**—आगे; **सपक्खिं**—बराबर; **सपडिदिसं**—ठीक सामने; अत्यन्त सन्मुख; **ठिच्चा**—खड़ा होकर; **सुदंसणं**—सुदर्शन; **समणोवासयं** श्रमणोपासक को; **अणिमिसाए**—निर्निमेष—बिना पलक गिराए, स्थिर; **दिट्ठीए**—दृष्टि से; **सुचिरं**—बड़ी देर तक; **णिरिक्खइ**—देखता है; **णिरिक्खित्ता**—देख कर, **अज्जुणयस्स**—अर्जुन; **मालागारस्स**—माली के, **सरीरयं**—शरीर को; **विप्पजहइ**—छोड़ देता है, **विप्पजहित्ता**—छोड़ कर, **तं पलसहस्सनिप्फन्नं**—उस हजार पल से बने; **अयोमयं मोग्गरं**—लोहमय मुदगर को; **गहाय**—ले कर; **जामेव दिसं**—जिस दिशा से; **पाउब्भूते**—आया था; **तामेव दिसं**—उसी दिशा मे, **पडिगते**—चला गया; **तए णं**—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुन; **मालागारे**—माली; **मोग्गरपाणिणा जक्खेणं**—मुद्गरपाणि यक्ष से; **विप्पमुक्के समाणे**—मुक्त होने पर, **धसिति**—धस ऐसे शब्द से या धड़ाम से, **सव्वंगेहिं**—समस्त अंगों से; **धरणितलंसि**—भूमि तल पर; **निविडए**—गिर पड़ा; **तए णं**—उस के अनन्तर; **से सुदंसणे**—वह सुदर्शन; **समणोवासए**—श्रमणोपासक; **निरुवसग्गमिति कट्टु**—विघ्न खत्म हो गया, ऐसा जान कर; **पडिमं**—प्रतिज्ञा; **पारेइ**—पार लेता है।

मूलार्थ—उस के अनन्तर वह मुद्गरपाणि यक्ष हजार पल के बने लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ श्रमणोपसक सुदर्शन के पास आया, उसने उस पर अक्रमण किया, परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक के आध्यात्मिक तेज के सामने उसका दैविक तेज (बल) सफल नहीं

हो सका—वह सुदर्शन को कोई कष्ट नहीं पहुंचा सका; फलतः उसका मुद्गर उछलता ही रह गया।

श्रमणोपासक सुदर्शन के चारों ओर मुद्गरपाणि यक्ष का दिव्य तेज जब उसकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण उस पर आक्रमण करने में निष्फल हो गया, तब श्रमणोपसक सुदर्शन के आगे बराबर बिल्कुल सामने खड़ा होकर निर्निमेष (बिना पलक हिलाए) दृष्टि से चिरकाल तक देखने के अनन्तर अर्जुनमाली के शरीर को छोड़ कर हजार पल से बने लोहे के मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

मुद्गर-पाणि यक्ष के शरीर से चले जाने पर वह अर्जुनमाली भूमितल पर धड़ाम से गिर पड़ा। अर्जुनमाली को भूमि पर गिरा देख कर श्रमणोपासक सुदर्शन ने "आया हुआ उपसर्ग चला गया—विपत्ति टल गई"—यह जान कर अपने सागारी संथारे को पार लिया। जिस छूट को लेकर उसने नियम अंगीकार किया था उस छूट के पूर्ण होने पर अपना व्रत समाप्त कर दिया।

व्याख्या--धार्मिक विश्वास मनुष्य को कितना निर्भय बना देता है तथा धार्मिक बल के समक्ष दैवी बल भी किस प्रकार कुण्ठित हो जाया करता है, इस सत्य को प्रस्तुत प्रकरण प्रमाणित करता है। मुद्गरपाणि यक्ष की जो शक्ति हजारों मनुष्यों को क्षण भर में विनष्ट कर देने की क्षमता रखती थी, वह एक धार्मिक व्यक्ति के सन्मुख सर्वथा निस्तेज हो गई, यह सब मंगलमय धर्म शक्ति की अचिन्त्य महिमा का ही शुभ परिणाम है। संभव है इसीलिये पच्चीस सौ वर्ष पहले मानव जगत के सन्मुख धर्ममहिमा का मंजुल गान करते हुए विश्ववन्द्य भगवान महावीर ने यह उद्घोष किया था—

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥"

दशवै० अ० १/१

अहिंसा, संयम तथा तप रूप धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है, जिस व्यक्ति के हृदय में यह निवास करता है उस को देवता भी नमस्कार करते है।

"देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करन्ति तं॥

उत्तरा० अ० १६/१६

जो मनुष्य दुष्कर—कठोर ब्रह्मचर्य व्रत की आराधन किया करता है उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर ये सब दैवी शक्तियां प्रणाम करती हैं।

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संवरद्वार में मंगलमूर्ति भगवान महावीर ने सत्यधर्म के परिपालक मनुष्य को अत्यन्त सुन्दर रूप में देव-वन्दनीय अभिव्यक्त किया है—

"साबेज्जाणि य देवयाओ करेन्ति सच्चवयणे रताणं"† अर्थात्—सत्यनिष्ठ पुरुष की देवगण भी रक्षा करते हैं। इन सब शास्त्रीय उदाहरणों से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि धर्म महान है, उसका आचरण करनेवाला महान है तथा उस के आराधक मनुष्य को देवता लोग भी वन्दन करते हैं, उसकी प्रत्येक कामना पूर्ण करते हुए उसकी रक्षा का पूर्ण ध्यान रखते हैं।

आध्यात्मिकता के शिखर पर विराजमान महापुरुषों ने धर्म को एक विशिष्ट अग्नि के रूप में भी स्वीकार किया है। उनका विश्वास है कि इसके तेज के सामने देव, दानव और गन्धर्व आदि का बल भी फीका पड़ जाता है तथा उस की धधकती हुई लपटें कर्ममल का सर्वनाश करने के साथ-साथ दैविक उपसर्गों (संकटों) को भी समीप आने नहीं देतीं। इसका जीवित उदाहरण प्रस्तुत सूत्र में वर्णित राजगृह नगर का धर्मप्रिय श्रावक सेठ सुदर्शन है। मुद्गरपाणि यक्ष का उसके सामने निस्तेज होकर भाग जाना, धर्मशक्ति का सजीव प्रमाण उपस्थित करता है।

"तेजसा समभिपडित्तए"—तेजसा समापतितुम् समाक्रमितुम्। इस का अर्थ है—तेज से आक्रमण करना। प्रस्तुत में तेज शब्द दैविक शक्ति का परिचायक है। भाव यह है—मुद्गरपाणि यक्ष ने अपने दिव्य तेज से सुदर्शन सेठ पर आक्रमण किया, परन्तु वह उसे नुकसान क्यों नहीं पहुंचा सका ? उत्तर स्पष्ट है कि सेठ सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति प्रबल थी; अतः यक्ष की दैविक शक्ति सेठ सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति को निस्तेज नहीं बना सकी, प्रत्युत स्वयं ही निस्तेज हो गई।

प्रस्तुत पाठ में पठित **तेज** शब्द वृत्तिकार अभयदेव सूरि के विचार में सेठ सुदर्शन के आध्यात्मिक प्रभाव का बोधक है। वे लिखते हैं—

"न शक्नोति सुदर्शनं समभिपतितुम्—आक्रमितुमित्यर्थः, केन ? तेजसा—प्रभावेन सुदर्शनसम्बंधिनेति।

अर्थ स्पष्ट है। यहां वृत्तिकार ने तेज का अर्थ प्रभाव किया है और वह सेठ सुदर्शन सम्बन्धी बतलाया है, पर यदि ऐसा ही होता तो—**"सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए"**—यहां सुदर्शन श्रमणोपासक शब्द द्वितीयान्त न होकर षष्ठ्यन्त होता। षष्ठ्यन्त होने पर ही तेज का सम्बन्ध सुदर्शन श्रमणोपासक से जुड़ सकता है। अन्यथा द्वितीयान्त पद तेज से कैसे सम्बन्ध स्थापित करेगा ? यह प्रश्न समाहित नहीं हो पाता।

"सव्वओ समंताओ"—**सर्वतः—सर्व प्रकारेण, समन्तात्—सर्वदिक्षु**—अर्थात् **सव्वओ** यह पद 'सब प्रकार से' इस अर्थ का तथा **समंताओ** यह पद 'सब दिशाओं में, चारों तरफ' इस अर्थ का बोधक है।

† सादेय्यानि—सान्निध्यानि देवताः कुर्वन्ति सत्यवचनरतानाम् वृत्तिकारोऽभयदेवसूरिः।

"पुरतो सपक्खिं सपडिदिसिं"—**पुरतः—अग्रे, सपक्षं-समानौ पक्षौ—वामदक्षिणपार्श्वौ यस्य आगमनस्य तत्सपक्षम्, सप्रतिदिक् समानाः प्रतिदिशो यस्य तत् सप्रतिदिक्-अभिमुखं यथा स्यात्तथा**—अर्थात् **पुरओ** यह पद 'आगे' इस अर्थ का '**सपक्खिं**' यह पद 'जिस आगमन में बांया और दायां भाग समान हो', इस अर्थ का तथा "**सपडिदिसं**" यह पद बिल्कुल सामने इस अर्थ का बोधक है। अर्धमागधी कोषकार के शब्दों में—"**सपक्खिं तथा सपडिदिस**" इन दोनों शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—

सपक्ष—वह स्थिति जब कि एक वस्तु के सामने दूसरी वस्तु इस तरह रखी जाय कि दोनों के पक्ष बराबर समकक्ष में रहें।

सप्रतिदिक्—वह स्थिति जब दो वस्तुओं की आमने सामने की दिशा-विदिशा एक सरीखी हो।

"सुचिरं णिरिक्खइ"—**सुचिरं निरीक्षते—बहुकाल पर्यन्तं पश्यति**। यहां प्रयुक्त सुचिर शब्द "बहुत समय तक" इस अर्थ का बोधक है।

"**निरुवसग्गमिति कट्टु**" **निरुपसर्गम्, उपसर्गाभावः, इति कृत्वा इति ज्ञात्वा**। यहां '**निरुवसग्गं**' का अर्थ है उपसर्ग का अभाव हो गया, संकट टल गया, यह कृत्वा—अर्थात् जानकर।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि मुद्गरपाणि यक्ष के भागजाने के अनन्तर जब अर्जुनमाली भूमि पर गिर पड़ा तब सेठ सुदर्शन ने 'संकट टल गया' यह समझ कर अपना व्रत समाप्त कर दिया इसके अनन्तर क्या हुआ अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेण आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—**

तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के कहिं वा संपत्थिया ? तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए, अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेतिए समणं भगवं महावीरं वंदिउं संपत्थिए, तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

'तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुब्भए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए। 'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं

महावीरे सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य० धम्मकहा सुदंसणे पडिगए ।

छाया—ततः सोऽर्जुनको मालाकारस्ततो मुहूर्त्तान्तरेण आस्वस्थः सन् उत्तिष्ठति, उत्थाय च सुदर्शनं श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

यूयं देवानुप्रियाः ! के कुत्र वा संप्रस्थिताः ? ततः सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः अर्जुनकं मालाकारमेवमवादीत् ।

एवं खलु देवानुप्रिय ! अहं सुदर्शनो नाम श्रमणोपासकोऽभिगतजीवाजीवः गुणशिलके चैत्ये श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दितुं सम्प्रस्थितः । ततः सोऽर्जुनको मालाकारः सुदर्शनं श्रमणोपासकमेवमवादीत्—

तदिच्छामि देवानुप्रिय ! अहमपि त्वया सार्द्धं श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दितुं यावत् पर्युपासितुम् । 'यथासुखं देवानुप्रिय !'

ततः सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः अर्जुनकेन मालाकारेण सार्द्धं यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं यत्रैव श्रमणो भगवान महावीरः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य, अर्जुनकेन मालाकारेण श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वः यावत् पर्युपासते, ततः श्रमणो भगवान् महावीरः सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य अर्जुनकस्य मालाकारस्य तस्याश्च धर्मकथा० सुदर्शनः पडिगतः ।

पदार्थ—**तए णं**—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए मालागारे**—वह अर्जुन माली; **तत्तो**—उसके पश्चात्; **मुहुत्तंतरेण**—अन्तर्मुहूर्त्त के बाद; **आसत्थे समाणे**—आस्वस्थ होने पर; **उट्ठेइ**—उठता है; **उट्ठित्ता**—और उठ कर; **सुदंसणं**—सुदर्शन; **समणोवासयं**—श्रमणोपासक को, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष !; **तुब्भे**—आप; **के**—कौन है; **वा**—और; **कहिं**—कहां पर; **संपत्थिया**—जा रहे हो । **तए णं**—उसके अनन्तर; **से सुदंसणे**—वह सुदर्शन; **समणोवासए**—श्रमणोपासक; **अज्जुणयं**—अर्जुन; **मालागारं**—माली को; **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले—

एवं—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र पुरुष !; **अहं**—मैं; **सुदंसणं नामं**—सुदर्शन नाम का; **समणोवासए**—श्रमणोपासक हूँ; **अभिगयजीवाजीवे**—जीव और अजीव का ज्ञाता हूं, मैं; **गुणसिलए**—गुणशिलक नामक; **चेतिए**—उद्यान में; **समण**—श्रमण—तपस्वी; **भगवं**—**महावीरं**—महावीर स्वामी को; **वंदिउं**—वन्दन करने के लिये; **संपत्थिए**—जा रहा हूं, **तए णं**—उसके अनन्तर; **से**—वह; **अज्जुणए**—अर्जुन; **मालागारे**—माली; **सुदंसणं**—सुदर्शन; **समणोवासयं**—श्रमणोपासक को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

देवाणुप्पिया !—हे भद्र पुरुष ! **तं**—सो; **अहमवि**—मै भी; **इच्छामि**— चाहता हूं; **तुमए**—तुम्हारे; **सद्धिं**—साथ; **समणं**—श्रमण—तपस्वी; **भगवं**—भगवान; **महावीरं**—महावीर को; **वंदित्तए**—वन्दन करने के लिये; **जाव**—यावत्; **पज्जुवासित्तए**—पर्युपासना—भक्ति करने के

लिये (यह सुनकर सेठ सुदर्शन कहने लगा); **अहासुहं-देवाणुप्पिया** !—हे भद्र पुरुष ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो।

तए णं—उसके अनन्तर; **से**—वह; **सुदंसणे**—सुदर्शन; **समणोवासए**—श्रमणोपासक; **अज्जुण-एणं**—अर्जुनक; **मालागारेणं**—माली के; **सद्धि**—साथ; **जेणेव**—जहां पर; **गुणसिलए चेतिए**—गुणशिलक नामक उद्यान था और; **समणे**—श्रमण; **भगवं**—भगवान; **महावीरे**—महावीर स्वामी विराजमान थे; **तेणेव**—वहां पर; **उवागच्छइ**—आता है; **उवागच्छित्ता**—और आकर; **अज्जु-णएणं**—अर्जुन; **मालागारेणं**—माली के; **सद्धि**—साथ; **समणं**—श्रमण; **भगवं**—भगवान; **महावीरं**—महावीर स्वामी को; **तिक्खुत्तो**—तीन बार दक्षिण ओर से आरंभ करके प्रदक्षिणा करता है; **जाव**—यावत् वन्दना एवं नमस्कार करता है; **पज्जुवासइ**—पर्युपासना अर्थात् सेवा-भक्ति करता है; **तए णं**—उसके अनन्तर; **समणे**—श्रमण; **भगवं**—भगवान; **महावीरे**—महावीर स्वामी; **सुदंसणस्स**—सुदर्शन; **समणोवासयस्स**—श्रमणोपासक को; **य**—और; **अज्जुणयस्स**—अर्जुन; **माला-गारस्स**—माली को; **तीसे य०**—और उस परिषद्—नगर निवासियों को; **धम्मकहा**—धर्म-कथा सुनाते हैं, धर्म कथा सुनकर; **सुदंसणे**—सेठ सुदर्शन; **पडिगए**—चले गए।

मूलार्थ—उसके अनन्तर पृथ्वी पर गिरा हुआ वह अर्जुनमाली एक मुहूर्त के बाद स्वस्थ होने पर उठा और उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार कहने लगा—

'हे देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहां पर जा रहे हो ?' अर्जुनमाली के इस प्रश्न को सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'हे देवानुप्रिय ! जीव और अजीव का ज्ञाता मैं सुदर्शन नाम का श्रमणोपासक हूं और गुणशिलक उद्यान में श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन एवं नमस्कार करने के लिये जा रहा हूं।'

श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन से अपने प्रश्न का उत्तर पाकर अर्जुन माली सेठ से बोला—हे देवानुप्रिय ! मैं भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार एवं उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करने के लिये आपके साथ जाना चाहता हूं। यह सुनकर श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली से कहने लगे–देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो।

उसके अनन्तर वह श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली को अपने साथ लेकर गुणशिलक नामक उद्यान में जहां पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे

वहां पर आते हैं। आकर अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को दक्षिण से आरम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, वन्दन एवं नमस्कार करने के अनन्तर उनकी पर्युपासना करते हैं।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन अर्जुन-माली तथा नगर से आई श्रद्धालु जनता को धर्मोपदेश सुनाया। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् श्रमणोपासक सेठ सुदर्शन भगवान को वन्दन करने के अनन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चला गया।

व्याख्या—पिछले सूत्र में बताया गया है कि मुद्गरपाणि यक्ष द्वारा होनेवाले उपद्रव के समाप्त होने पर सुदर्शन ने अपने आमरण अनशन को समाप्त कर दिया। अनशन के समाप्त करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन ने बड़ी गंभीरता एवं दूरदर्शिता से काम लिया। वे अर्जुनमाली को मूर्च्छित दशा में देखकर भयभीत नहीं हुए और इन्होंने वहां से जाने का भी प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत वे वहां बड़ी शान्ति के साथ बैठे रहे। कारण स्पष्ट है उनका हृदय दयालु था, सहानुभूति पूर्ण था। अर्जुनमाली को अचेत दशा में छोड़कर वे जाना नहीं चाहते थे। उनका विचार था कि अर्जुनमाली अब परवशता से उन्मुक्त हो गया है, अतः इसकी देखभाल करना तथा इसका मार्गदर्शन करना मेरा कर्तव्य है। इसी कर्तव्यपालन की बुद्धि से उन्होंने वहां से प्रस्थान नहीं किया।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि अर्जुनमाली अन्तर्मुहूर्त तक बेसुध पड़ा रहा, सचेत होने के अनन्तर उसने अपने सामने एक व्यक्ति को बैठे देखा, उससे वह अपरिचित था। वह राजगृह नगर का एक जन-गण-मान्य सेठ था, तथापि अर्जुनमाली उसको नहीं जानता था। इसी कारण उसने उससे पूछा—भद्र पुरुष ! आप कौन हैं ? किधर जाने का विचार है आपका ? अर्जुनमाली के इस प्रश्न का समाधान करते हुए उस व्यक्ति ने कहा—भाई ! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं श्रमणोपासक हूं, साधु-सन्तों का सत्संगी हूं। मैंने जीव-अजीव का भी अध्ययन कर रखा है। अब मैं यहां से गुणशिलक उद्यान की ओर जा रहा हूं। वहां मेरे धर्माचार्य मंगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराज-मान हैं। मुझे उनके दर्शन करने हैं और उनका धार्मिक प्रवचन सुनना है।

यह सुनकर अर्जुनमाली बोला—भाई ! यदि आज्ञा हो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूं ? मेरी भी इच्छा है कि मैं भी प्रभु के दर्शन करूं, उनकी वाणी सुनूं और अपने जीवन को धन्य बनाऊं। अर्जुनमाली का यह प्रस्ताव सुनकर सेठ सुदर्शन बड़े खुश हुए, वे आनन्द विभोर हो उठे। उससे बोले—भाई ! इससे बढ़कर और अच्छी बात क्या हो सकती है ? अवश्य चलो। मैं और आप दोनों साथ ही भगवान महावीर के चरणों उपस्थित हो कर प्रभु को वन्दन करेंगे और उनकी मंगल-मयी वाणी सुनकर जीवन सफल बनायेंगे।

सेठ सुदर्शन की ओर से स्वीकृति मिलते ही अर्जुनमाली तत्काल खड़ा हो गया और सेठ सुदर्शन को साथ लेकर गुणशिलक उद्यान में भगवान महावीर के चरणों में पहुंच गया। दोनों ने विधिपूर्वक प्रभु का वंदन किया, नमस्कार करने के अनन्तर दोनों ही भगवान की सेवा में बैठ गये। इन दोनों तथा अन्य नागरिक लोगों के यथास्थान बैठ जाने पर भगवान ने सबको धर्मोपदेश सुनाया। धर्मोपदेश सुनकर सेठ सुदर्शन अपने परम आराध्य भगवान महावीर को वंदन करने के अनन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चला गया।

"मुहुत्तंतरेणं-मुहूर्त्तान्तरेण--स्तोककालेन"—इस वाक्य में पठित मुहूर्त्त शब्द का अर्थ है—४८ मिंट। दो घड़ियों को मुहूर्त कहते हैं और दो घडी से न्यून काल को अन्तर्मुहूर्त्त कहा जाता है। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि अर्जुनमाली के शरीर से जब यक्ष निकल कर भाग गया, उसके अनन्तर अर्जुनमाली धड़ाम से भूमि तल पर गिर पड़ा और वहां पर वह अन्तर्मुहूर्त्त तक बेहोश पड़ा रहा। कुछ कम दो घड़ी का समय हो जाने के अनन्तर उसे होश आया।

"आसत्थे"--आस्वस्थः सचेष्टः—यहां पठित आस्वस्थ शब्द **"आ-समन्तात्**—हर तरह से, **आस्वस्थ**—स्वास्थ्य को प्राप्त, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुन माली बेसुध होने से वृक्ष के कटे तने की तरह निष्क्रिय पड़ा हुआ था, पर उसे जब होश आया तो उसका शरीर क्रियाएं करने लगा और धीरे-धीरे वह अपनी वास्तविक दशा में आ गया। उसका वास्तविक दशा को प्राप्त होना ही उस का आस्वस्थ होना है।

"समणोवासयं" इस पद का अर्थ पृष्ठ २०४ पर तथा अभिगयजीवाजीवे इस पद का अर्थ पृष्ठ २०६ पर लिखा जा चुका है।

"वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए" **"तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ"** यहां पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए अवशिष्ट पाठों के संसूचक हैं।

"**तीसे य० धम्मकहा**" यहां का बिन्दु 'विशाल परिषद्—जनता को' इस अर्थ का बोधक है।*

कहा जा चुका है कि "**तीसे य०**" आदि पदों द्वारा सूत्रकार ने भगवान महावीर की धर्म-सभा में उपस्थित विशाल जनसमूह की संसूचना दी है परन्तु यहा एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अर्जुन माली के भय के कारण राजगृह नगर के लोग बाहिर नहीं जा रहे थे, फिर भगवान की धर्म-देशना में इतनी जनसंख्या कहा से आ गई? उत्तर में निवेदन है कि अर्जुन माली का उपद्रव शान्त होने की सूचना विद्युत् की भांति नगर में चारों ओर फैल गई, परिणामस्वरूप अर्जुनकृत किसी उपद्रव की आशंका न रहने के कारण नागरिक शीघ्रता से भगवान की धर्मदेशना में उपस्थित हो

विद्वद्वर्य श्री घासीलाल जी महाराज इसका अर्थ करते हुए लिखते है—

"तस्यां च धर्मकथा" तस्यां च महातिमहत्याम्—अतिविशालायां परिषदि भगवान् उभाभ्यामपि धर्म-कथामबोधत्। इन पदों का अर्थ है, उस अत्यधिक विशाल परिषद्—सभा में भगवान महावीर ने सेठ सुदर्शन और अर्जुन माली इन दोनों को उपदेश सुनाया।

गए। यह भी हो सकता है कि राजगृह नगर के पार्श्ववर्ती ग्रामों तथा नगरों से जनता भगवा के दर्शनार्थ तथा उनकी धर्मदेशना के श्रवणार्थ वहां उपस्थित हो रही थी। इसके अतिरिक्त भगवा की धर्मदेशना में सुर, असुर, देवी, देवता, मनुष्य आदि सभी उपस्थित हुआ करते थे, ऐसी दशा वहां विशाल जनसमूह का हो जाना स्वाभाविक ही है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के धर्मोपदेश को सुन कर तथा सुदर्शन श्रावक के चले जाने प उस धर्मोपदेश का अर्जुन माली के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हु कहते हैं—

मूल—तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्म सोच्चा, निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० एवं वयासी—

सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि। 'अहासुहं देवाणुप्पिया

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अवक्कमइ, अवक्क मित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जाव अणगारे जाते जाव विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए, तं चेव दिवस समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए, त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ, ओगेण्हित्ता जावज्जीवाय जाव विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढम पोरिसीए सज्झाय करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ।

छाया—ततः सोऽर्जुनको मालाकारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट-तुष्ट० एवमवादीत्—

श्रद्दधे भवन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं यावत् अभ्युत्तिष्ठामि। यथासुखं देवानुप्रिय ! तत सोऽर्जुनको मालाकारः उत्तरपौरस्त्यदिग्भागमपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेव पंचमौष्टिकं लोचं करोति यावद् अनगारो जातो यावद् विहरति। ततः सोऽर्जुनकोऽनगारः यस्मिश्चैव दिवसे मुण्डो यावद् प्रव्रजित तस्मिश्चैव दिवसे श्रमणं भगवन्तं महावीरं वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमुद् गृह्णाति—कल्पते मम यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा आत्मानं भावयतः विहर्तुमिति कृत्वा, अयमेतद्रूपमभिग्रहमुद्गृह्णाति, उद्गृह्य यावज्जीवं यावद् विहरति। ततः सोऽर्जुनकोऽनगार षष्ठक्षमणकपारणके प्रथमपौरुष्यां स्वाध्यायं करोति यथा गौतमः स्वामी अटति।

पदार्थ—**तए णं**—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुनमाली; **समणस्स**—श्रमण; **भगवओ**—भगवान; **महावीरस्स**—महावीर के; **अन्तिए**—पास; **धम्मं**—धर्म को; **सोच्चा**—सुनकर; **निसम्म**—हृदय में धारण कर; **हट्ठ-तुट्ठ०**—अत्यन्त हर्षित होकर; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भंते !—हे भगवन् !; **सद्दहामि णं**—श्रद्धा करता हूं; **निग्गंथं पावयणं**—निर्ग्रन्थ प्रवचन पर; **जाव**—यावत् इसकी आराधना के लिये; **अब्भुट्ठेमि**—उपस्थित होता हूं। तब भगवान ने कहा; **देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रिय !; **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो—

तए णं—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुन; **मालागारे**—माली; **उत्तरपुरत्थिमे**—उत्तर और पूर्व दिशा के मध्यवर्ती; **दिसिभाए**—दिग् भाग में; **सयमेव**—स्वयं ही; **पंचमुट्ठियं**—पाँच मुट्ठियों से किया जानेवाला; **लोयं**—लोच—केश-लुंचन; **करेति**—करता है; **करित्ता**—लोच करके; **जाव**—यावत्; **अणगारे जाते**—साधु बन जाता है। **जाव**—यावत् संयम पूर्वक; **विहरइ**—विहरण करने लगता है।

तए णं—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुन माली; **अणगारे**—मुनि; **जं चेव दिवसं**—जिस दिन से ही; **मुंडे**—मुण्डित; **जाव**—यावत्; **पव्वइए**—प्रव्रजित—दीक्षित हुए थे; **तं चेव दिवसं**—उस दिन से ही; **समणं**—श्रमण; **भगवं**—भगवान; **महावीरे**—महावीर को; **वंदइ णमंसइ**—वंदना नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता णमंसित्ता**—नमस्कार करके; **एयारूवं**—इस प्रकार का; **इमं**—यह, **अभिग्गहं**—अभिग्रह—नियम विशेष; **उग्गिण्हइ**—ग्रहण करते हैं, **मे कप्पइ**—मुझे कल्पता है; **जावज्जीवाए**—जीवन पर्यन्त; **अनिक्खित्तेणं**—लगातार; **छट्ठं छट्ठेणं**—बेले-बेले; **तवो कम्मेणं**—तपस्या से; **अप्पाणं**—आत्मा को; **भावेमाणस्स**—भावित करते हुए; **विहरित्तए**—विहरण करना; **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर; **अयमेयारूवं**—इस प्रकार का यह; **अभिग्गहं**—अभिग्रह (नियम विशेष) **ओगिण्हइ**—धारण करता है; **ओगेण्हित्ता**—धारण करके; **जावज्जीवाए**—जीवन भर के लिये; **जाव**—यावत् बेले-बेले पारणा करता हुआ; **विहरइ**—विहरण करता है। **तए णं**—इसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुन; **अणगारे**—अनगार—मुनि; **छट्ठक्खमण-पारणयंसि**—बेले-बेले के पारणे में; **पढम पोरिसीए**—प्रथम प्रहर में; **सज्झायं**—स्वाध्याय; **करेइ**—करता है। **जहा**—जिस प्रकार; **गोयमसामी**—गौतम स्वामी भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षार्थ नगर में भ्रमण करते हैं, **जाव**—यावत्—अर्जुन मुनि भी भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षार्थ; **अडइ**—नगर में भ्रमण करते हैं।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह अर्जुनमाली श्रमण भगवान महावीर के मुख से धर्म-कथा सुनकर तथा हृदय में धारण कर परम सन्तोष एवं हर्ष को प्राप्त हुआ भगवान महावीर के चरणों में निवेदन करने लगा—

भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं और उसकी आराधना के लिये संयम-मार्ग में उपस्थित होता हूं । अर्जुनमाली की इस बात को सुनकर श्रमण भगवान महावीर बोले—भद्र ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो ।

श्रमण भगवान महावीर के स्वीकृति-सूचक उत्तर को सुनकर अर्जुनमाली ईशान कोण में जाकर अपने आप ही पंचमुष्टिक लोच करके यावत् साधु बन कर जीवन व्यतीत करने लगा ।

अर्जुन मुनि जिस दिन से दीक्षित हुए थे उसी दिन से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदना एवं नमस्कार करके उन्होंने यह अभिग्रह (नियम विशेष) अंगीकार कर लिया था कि भगवन् ! आज से लेकर जीवन-पर्यन्त मैं निरन्तर बेले-बेले तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ जीवन व्यतीत करूंगा । इस प्रकार कहकर इन्होंने यह अभिग्रह धारण करके जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दिया ।

अर्जुन मुनि पारणे के दिन प्रथम पहर में स्वाध्याय करते हैं । फिर श्री गौतम स्वामी की तरह क्रिया-कलाप करते हुए उच्च, मध्यम और साधारण सभी कुलों में आहारार्थ भ्रमण करते है ।

व्याख्या—वीतराग महापुरुष की आध्यात्मिक वाणी में एक अपूर्व प्रभाव निवास करता है । पारस का स्पर्श पाकर जैसे लोहा स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही वीतराग महापुरुषों की कल्याणकारिणी वाणी का स्पर्श पाते ही पापी से पापी व्यक्ति का हृदय भी निर्मल बन जाता है । अर्जुनमाली जैसा खूनी व्यक्ति भी मुनिराज बन जाता है, ससार की मोह ममता से मुक्त होकर आध्यात्मिक साधना के दिव्य आलोक को प्राप्त कर लेता है । भगवान महावीर की कलमषहारिणी वाणी ने अर्जुनमाली के जीवन की दिशा ही बदल दी ।

महापुरुषों की वाणी कल्याण-कारिणी, कल्मष-हारिणी, एवं जगत्-तारिणी है, परन्तु जो जीव भव्य हैं, चरम शरीरी हैं, उन्हीके हृदयों पर उसका तत्काल प्रभाव पड़ता है । अभव्य जीव तो इस वाणी के फल से वञ्चित ही रह जाता है । पाषाण पर वर्षों वर्षा होते रहने पर भी जैसे उस पर कोई असर नहीं होता, वैसे ही भाग्य-हीन जीव पर भी वीतराग की वाणी का कोई प्रभाव नही पड़ता । राजगृह नगर का अर्जुनमाली भव्य जीव था, अत एव श्रमण भगवान महावीर के समवसरण में पहुंचते ही उनके आध्यात्मिक उपदेश को सुनते ही कंचन-कामिनी का परित्याग कर वह अपने आपको उनके चरणों में अर्पित कर देता है ।

"हट्ठ०" यहां का बिन्दु 'तुट्ठे, उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवन्तं महावीरं वंदइ वंदित्ता नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासी'—इन पदोंका बोधक है। इनका अर्थ है—अत्यन्त प्रसन्न हुए अर्जुनमाली सन्तुष्ट हो कर उठते हैं, उठकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

"पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि" यहां पठित जाव पद "पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं एवं रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं" इन पदों का बोधक है। अर्थात्—भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मुझे विश्वास है निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मैं रुचि रखता हूं।

"अभिग्गहं"—यह अभिग्रह शब्द नियम-विशेष का बोधक है। वैसे अभिग्रह शब्द जैन-संस्कृति का एक पारिभाषिक शब्द है। उपवास आदि तप के बाद या बिना उपवास आदि के अपने मन में इस बात की प्रतिज्ञा कर लेना कि अमुक पदार्थ या व्यक्ति के मिलने पर ही आहार ग्रहण करूंगा, यदि अमुक बात नहीं होगी, तो संकल्पित अवधि तक आहार ग्रहण नहीं करूंगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहते हैं।

एक बार इसी प्रकार का एक अभिग्रह भगवान महावीर ने किया था कि—राजकन्या हो, अविवाहिता हो, बाजार में बिकी हो, निरपराध होने पर भी उसके पांवों में बेड़ियां तथा हाथों में हथकड़ियां पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हो, हाथ में छाज हो, न घर में हो न बाहिर हो—एक पैर देहली के अन्दर एक बाहिर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्नमुख हो, आंखों में आंसू हों, ऐसी राजकुमारी मुझे दान दे तो मैं पारणा करूंगा, नहीं तो छः मास तक व्रत रखूंगा। यही अभिग्रह था, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में अभिग्रह शब्द सामान्य प्रतिज्ञा का सूचक है, क्योंकि इसे तो अर्जुनमुनि ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि जीवन पर्यन्त बेले-बेले पारणा करूंगा। दूसरे अर्थ में तपस्वी का सकल्प किसी की जानकारी में नही होता, यही दोनों में अन्तर है।

"छट्ठंछट्ठेणं"—षष्ठषष्ठेन; यह शब्द बेले का बोधक है। जैन संस्कृति में उपवास को चतुर्थ भक्त कहते हैं, किन्तु इस में और सामान्य उपवास में थोड़ा सा अन्तर है। इसमें उपवास करने से पहले और पिछले दिन एकाशना करना पड़ता है। यदि उपवास से पहले और पिछले दिन एकाशना करना हो तो चतुर्थ भक्त (जिस में चार भोजनों का परित्याग हो) सम्पन्न होता है। इसी प्रकार दो व्रतों को षष्ठभक्त कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में षष्ठ का ग्रहण किया गया है।

"अनिक्खित्तेणं"—अनिक्षिप्तेन-अन्तररहितेन—अर्थात् अनिक्षिप्त शब्द अन्तर रहित लगातार-बिना व्यवधान के इस अर्थ का परिचायक है।

"जहा गोयमसामी जाव अडइ"—यहां पठित जाव शब्द से निम्नलिखित पाठ अभिप्रेत है—

पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसिए अतुरिय-मचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, भायणाणि पडिलेहेइ, भायणाणि पमज्जइ भायणाणि उग्गाहेइ, जेणेव समणे भगवं महावीरं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, वंदित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाते समाणे छट्ठक्खमणपारणयंसि वाणियग्गामे णयरे उच्चनीयमज्झिमकुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह। तए णं भगव गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाते समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियचवलमसंभंते जुगंतर पलोयणाए विट्ठीए पुरओ रियंसोहेमाणे" इस पाठ का बोधक है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

गौतम स्वामी पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते, दूसरे में ध्यानारूढ़ होते, तीसरे प्रहर में कायिक और मानसिक चापल्य से रहित हो कर मुखवस्त्रिका की तथा पात्रों एवं वस्त्रों की प्रतिलेखना करते है। तदनन्तर पात्रों को झोली में रखकर और झोली ग्रहण कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित होकर वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करते हैं कि भगवन ! आपकी आज्ञा से बेले के पारणे के निमित्त भिक्षार्थ वाणिजग्राम के सभी घरों मे जाना चाहता हूं। प्रभु के—"जैसा तुम को सुख हो करो, परन्तु विलंब मत करो।" ऐसा कहने पर वे गौतम स्वामी भगवान के पास से चल कर ईर्यासमिति का पालन करते हुए वाणिजग्राम में पहुंच जाते है। वहां साधुवृत्ति के अनुसार, धनी, निर्धन आदि घरों में भ्रमण करते हुए राजमार्ग में पधार जाते है।

इस पाठ में "वाणिजग्राम" का उल्लेख किया गया है। परन्तु प्रस्तुत में वाणिजग्राम के स्थान पर राजगृह का उल्लेख किया जाएगा और गौतम स्वामी के स्थान पर अर्जुन मुनि पढ़ा जाएगा।

पारणे के दिन राजगृह नगर मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए अर्जुन अणगार के साथ वहां के नागरिक लोग जिस प्रकार का व्यवहार करते है, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते है—

मूल—तए णं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्च जाव अडमाणं बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—

इमे णं मे पिया मारिते, माया मारिया, भगिणी मारिया, भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए, धूया मारिया, सुण्हा मारिया, इमेणं मे अन्नयरे सयणसंबंधिपरिजणे मारिए, त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति, निंदंति, खिसंति, गरिहंति, तज्जेंति तालेंति।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहिं य पुरिसेहिं य डहरेहिं य महल्लेहिं य जुवाणएहिं य आकोज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसावि अपउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, अहियासेइ। सम्मं सहमाणे, खममाणे, तितिक्खमाणे अहियासमाणे रायगिहे णयरे उच्चणीयमज्झिम-कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ, तो पाणं न लभइ, जइ पाण लभइ तो भत्तं न लभइ।

तए णं से अज्जुणए अदीणे, अविमणे, अकलुसे अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए अमुच्छिए ४ विलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ । तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महानुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियायं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाते कीरइ जाव सिद्धे ।

छाया—ततोऽर्जुनकमनगारं राजगृहे नगरे उच्च० यावद् अटन्तं बहवः स्त्रियश्च, पुरुषाश्च, डहराश्च (बालकाश्च) महान्तश्च, युवानश्च, एवमवादिषुः—

अनेन मे पिता मारितः, माता मारिता, भगिनी मारिता, भार्या मारिता, पुत्रो मारितः दुहिता मारिता, स्नुषा मारिता, अनेन मे अन्यतरः स्वजन-सम्बंधिपरिजनो मारितः, इति कृत्वा अप्येके आक्रोशन्ति, अप्येके हीलन्ति, निन्दन्ति, खिंसन्ति, गर्हन्ते, तर्जयन्ति, ताडयन्ति । ततः सोऽर्जुनकोऽनगारः तैः बहुभिः स्त्रीभिश्च, पुरुषैश्च, डहरैश्च, महद्भिश्च, युवाभिश्च, आक्रोश्यमानो यावत् ताड्यमानः तेषां मनसापि अप्रद्विषन् सम्यक् सहते, सम्यक् क्षमते, तितिक्षते, अधिसहते, सम्यक् सहमानः क्षममाणः, तितिक्षमाणः, अधिसहमाणः राजगृहे नगरे उच्च-नीच-मध्यम-कुलानि अटन् यदि भक्त लभते तदा पानं न लभते, यदि पान लभते तदा भक्तं न लभते । ततः सोऽर्जुनको दीनः, अविमनाः, अकलुषः, अनाविलः, अविषादी, अपरितान्तयोगी अटति, अटित्वा राजगृहान्नगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य, यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं, यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः यथा गौतमस्वामी यावत् प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः अमूर्च्छितः ४ विलमिव पन्नगभूतेनाऽऽत्मना आहारमाहारयति ।

ततः श्रमणो भगवान महावीरोऽन्यदा कदाचित् राजगृहान्नगरात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति । ततः सोऽर्जुनकोऽनगारस्तेन औदारिकेन विपुलेन प्रदत्तेन प्रगृहीतेन महानुभागेन तपःकर्मणा आत्मानं भावयन् बहुपूर्णान् षण्मासान् श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयति (शोषयति) त्रिंशद् भक्तानि अनशनया छिन्दति, छित्वा यदर्थं क्रियते यावत् सिद्धः ।

पदार्थ—तए णं—उस के अनन्तर; तं अज्जुणयं—उस अर्जुन; अणगारं—मुनि को; रायगिहे—राजगृह; णयरे—नगर में; उच्च—धनी; जाव—यावत्—मध्यम निर्धन तथा सामान्य कुलों

में आहारार्थ, **अडमाणं**—भ्रमण करते हुए को, **बहवे**—बहुत से, **इत्थीओ**—स्त्रियां, **य**—और, **पुरिसा**—पुरुष, **य**—और, **डहरा**—बालक, **य**—और, **महल्ला**—वृद्ध पुरुष, **य**—तथा; **जुवाणा य**—युवक व्यक्ति भी, **एवं**—इस प्रकार, **वयासी**—कहने लगे—

इमे णं—इसने; **मे**—मेरा; **पिया**—पिता; **मारिते**—मार दिया; **माया**—माता; **मारिया**—मारदी, **भगिणी**—बहिन; **मारिया**—मारदी; **भज्जा**—भार्या; **मारिया**—मारी, **पुत्ते**—पुत्र; **मारिए**—मार दिया; **धूया मारिया**—लड़की मार दी; **सुण्हा मारिया**—पुत्रवधू मार दी। **इमेणं**—इसने; **मे**—मेरे; **अन्नयरे**—दूसरे; **सयण**—स्वजन-पारिवारिक व्यक्ति, भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी; **संबंधि**—सम्बन्धी-रिश्तेदार; **परिजणे**—परिजन—दासदासी आदि; **मारिए**—मार दिए; **त्तिकट्टु**"—ऐसा कहकर; **अप्पेगइया**—कई एक; **अक्कोसंति**—कटु वचनों से भर्त्सना करते हैं; **अप्पेगइया**—कई एक; **हीलंति**—अनादर करते हैं; **निंदंति**—निन्दा करते हैं; **खिसंति**—दुर्वचन कहकर उसमें क्रोध पैदा कराने की कोशिश करते हैं; **गरिहंति**—दोष निकालते हैं; **तज्जेंति**—तिरस्कार करते हैं; **तालेंति**—लाठी ईंट आदि से ताड़ना करते हैं।

तए णं—उसके अनन्तर; **से अज्जुणए**—वह अर्जुन; **अणगारे**—मुनि; **तेहिं**—उन; **बहूहिं** बहुत से; **इत्थीहिं**—स्त्रियों से; **य**—और; **पुरिसेहिं**—पुरुषों से; **य**—और; **डहरेहिं**—बालकों से; **य**—और; **महल्लेहिं**—वृद्धों से; **य**—और; **जुवाणएहिं**—युवकों से; **य**—समुच्चयार्थक है, **आकोसेज्जमाणे**—आक्रोशित हुआ, **जाव**—यावत्, **तालेज्जमाणे**—ताडित हुआ, **तेसिं**—उन पर, **मणसावि**—मन से भी, **अपउस्समाणे**—द्वेष न करता हुआ, **सम्मं**—भली प्रकार से; **सहइ**—सहन करता है, **सम्मं**—सम्यक् प्रकार से, **खमइ**—क्षमा करता है, **तितिक्खइ**—अदीन भाव से सहन करता है, **अहियासेइ**—निर्जरा की भावना से शुद्धान्तःकरणपूर्वक सहन करता है। **सम्मं सहमाणे**—सम्यक् प्रकार से सहन करता हुआ, **खममाणे**—क्षमा करता हुआ, **तितिक्खमाणे**—सहन करता हुआ, **अहियासमाणे**—निर्जरा की भावना से सहन करता हुआ, **रायगिहे**—राजगृह, **णयरे**—नगर में, **उच्च**—धनी, **नीय**—निर्धन, **मज्झिम**—मध्यम आय वाले, **कुलाइं**—कुलों में, **अडमाणे**—भ्रमण करते हुए, **जइ**—अगर, **भत्तं**—भक्त—अन्न, **लहइ**—प्राप्त करता है, **तो**—तब, **पानं**—जल, **ण लभइ**—प्राप्त नहीं होता, **जइ**—यदि, **पाणं**—जल, **लभइ**—प्राप्त होता है, **तो**—तब, **भत्तं**—भक्त, अन्न, **न लभइ**—प्राप्त नही होता।

तए णं—उस के अनन्तर, **से अज्जुणए**—वह अर्जुन मुनि, **अदीणे**—अदीन—दीनता से रहित, **अविमणे**—अविमन—वैमनस्य-नाराज़गी से रहित, **अकलुसे**—अकलुष—क्रोध से रहित, **अणाइले**—अनाविल—जिस का अन्तःकरण स्वच्छ है, **अविसाई**—अविषादी—विषाद—निराशा से रहित, **अपरितंतजोगी**—अपरितान्त योगी—थकावट रहित योग समाधि वाला होकर, **अडइ**—भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं। **अडित्ता**—भ्रमण करके, **राय गिहाओ**—राजगृह, **नगराओ**—नगर से, **पडिनिक्खमइ**—निकलते हैं, **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर, **जेणेव**—जहां पर, **गुणसिलए**—गुण शिलक नामक, **चेतिए**—उद्यान था, **जेणेव**—जहां पर, **समणे**—श्रमण, **भगवं**—भगवान, **महावीरे**—

—महावीर स्वामी विराजमान थे, वहां आए, **जहा**—जिस प्रकार, **गोयमसामी**—श्री गौतम स्वामी जी महाराज, **जाव**—यावत् भगवान को आहार दिखलाते हैं, उसी प्रकार अर्जुन मुनि भी अपना लाया हुआ आहार भगवान को, **पडिदंसेइ**—दिखलाते हैं, **पडिदंसित्ता**—दिखला कर; **समणेणं भगवया महावीरेणं**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी से, **अब्भणुण्णाए**—आज्ञा प्राप्त कर के, **अमुच्छिए**—अमूच्छित—मूर्च्छाभाव से रहित, ४—यह अंक, **अगिद्धे**—गृद्धि-रहित, **अगढिए**—भोजन में राग से रहित, **अणज्झोववन्ने**—आसक्ति से रहित इन पदों का बोधक है; **बिलमिव**—जैसे बिल में; **पन्नगभूएणं**—सर्प प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार; **अप्पाणेणं**—अपने आत्मा के द्वारा अर्थात् स्वयं; **तं आहारं**—उस आहार को; **आहारेइ**—खाते हैं।

तए णं—उस के अनन्तर; **समणे भगवं महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी; **अन्नया कयाइं**—किसी अन्य समय; **रायगिहाओ नगराओ**—राजगृह नगर से, **पडिनिक्खमइ**—विहार कर जाते हैं, विहार कर के; **बहिं**—राजगृह से बाहिर किसी; **जणवयविहारं**—जनपद—देश में विहार कर के; **विहरइ**—विहरण करते हैं। **तए णं**—उस के अनन्तर; **से अज्जुणए अणगारे**—वह अर्जुन मुनि; **तेणं**—उस, **ओरालेणं**—प्रधान; **विउलेणं**—विशाल; **पयत्तेणं**—भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त; **पग्गहिएणं**—उत्कृष्ट भावना से अंगीकृत; **महाणुभागेण**—महान अनुभाग—प्रभाववाले, **तवो कम्मेणं**—तपस्या रूप कर्म के आचरण से; **अप्पाणं भावेमाणे**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए; **बहुपुण्णे**—प्रायः परिपूर्ण; **छम्मासे**—छ महीनों तक; **सामण्णपरियायं**—श्रमणपर्याय—साधु-वृत्ति; **पाउणइ**—पालन करते है; **अद्धमासियाए**—अर्ध मासिक—आधे महीने की; **संलेहणाए**—संलेखना—शरीर, कषाय का शोषण अथवा अनशनव्रत से शरीर-त्याग के अनुष्ठान द्वारा; **अप्पाणं**—अपनी आत्मा को; **झूसेइ**—शुद्ध करते हैं; **तीसं भत्ताइं**—तीस भोजनों को; **अणसणाए**—अनशन के द्वारा; **छेदेइ**—छोड़ देते है; **छेदित्ता**—छोड़ कर; **जस्सट्ठाते**—जिस प्रयोजन के लिये; **कीरइ**—साधु जीवन अंगीकार किया था; **जाव**—यावत् उस को सिद्ध कर के; **सिद्धे**—सिद्ध हो गए—मुक्ति में चले गए।

मूलार्थ—उस के अनन्तर राजगृह नगर में धनी, निर्धन तथा मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए अर्जुन अनगार—मुनि को देख कर बहुत सी स्त्रियां अनेकों पुरुष, बालक, वृद्ध तथा युवक इस प्रकार कहने लगे—

इसने मेरे पिता को मार दिया, माता को मार दिया, बहिन, स्त्री, पुत्र लड़की और मेरी पुत्रवधू को मार दिया है। इसने मेरे दूसरे स्वजनों सगे-संबंधियों, रिश्तेदारों तथा परिजन—दास-दासियों आदि का घात कर दिया है। इस प्रकार कहते हुए उन में से कई एक उस को कटु वचनों से फटकार देते थे, कई एक उस की अवहेलना करते थे। निन्दा (बदनामी या दोषों का वर्णन या झूठमूठ किसी के दोष निकालना) करते थे, कई एक देखते ही खीजते थे, झुंझलाते थे, कुढ़ते थे, कई एक गर्हा (दोषों को प्रकट

करना), तर्जना (डांटना, डपटना, भय उत्पन्न करना) तथा ताड़ना (मारपीट) आदि भी करते थे।

उसके अनन्तर अर्जुन मुनि इन अनेकों स्त्रियों, पुरुषों, बालकों, वृद्धों तथा युवकों द्वारा आक्रोशित (जिस की कटु वचनों से भर्त्सना की गई है), अवहेलित (जिस की अवहेलना की गई है), निंदित (जिस की निंदा की गई है), खिंसित (जिस पर झुँझलाया गया है), गर्हित (जिस की गर्हा की गई है), तर्जित (जिसकी तर्जना की गई है), एवं ताड़ित (जिस की मारपीट की गई है) होने पर भी, उनपर मन से भी द्वेष नहीं करते, प्रत्युत बड़ी शान्ति के साथ उस संकट को सहन करते हैं। क्रोध को निकट नहीं आने देते, दीनता प्रकट नहीं करते, आत्मशुद्धि की भावना से मन में कोई विकार नहीं आने देते। इस प्रकार शान्ति, क्षमा, तितिक्षा द्वारा आपत्तियों को सहन करते हुए राजगृह नगर में धनी, निर्धन तथा मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं, परन्तु यदि कहीं अन्न मिल जाता है तो पानी नहीं मिलता, यदि पानी मिल जाता है, तो अन्न प्राप्त नहीं होता।

पारणे के निमित्त यथेच्छ अन्न पानी न मिलने पर भी अर्जुन मुनि के हृदय में दीनता नहीं आई, वैमनस्य-नाराज़गी पैदा नहीं हुई, कालुष्य-क्रोध नही आया, वे निराशा से सर्वथा दूर रहे। उन्होंने अन्तःकरण को सर्वथा स्वच्छ रखा तथा अपने मन में संयम के प्रति कोई घबराहट नहीं आने दी, संयम-साधना के प्रति ये प्रतिपल जागरूक ही रहे। इस तरह अदीन, अविमन, अकलुष, अनाविल, अविषादी तथा अपरितान्त योगी भाव से भिक्षार्थ नगर में भ्रमण करते रहे।

व्याख्या—श्री समवायाङ्ग सूत्र में परिषह बाईस बतलाए गये है। आपत्ति आने पर संयम में स्थिर रहने के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये जो मानसिक तथा शारीरिक कष्ट साधु-साध्वियों को सहने चाहिये, उन्हें परिषह कहते हैं। परिषह बाईस हैं—

१. **क्षुधापरिषह**—भूख का परिषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर भूख का कष्ट सहन करना।

२. **पिपासा-परिषह**—प्यास का परिषह। ३. **शीत-परिषह**—ठण्ड का परिषह, ४. **उष्ण-परिषह**—गरमी का परिषह, ५ **दंशमशक-परिषह**—डांस और मच्छरों का परिषह, खटमल, जूं, चींटी आदि का कष्ट भी इसी में अन्तर्हित हो जाता है। ६. **अचेल-परिषह**—वस्त्र न मिलने पर होने वाला कष्ट। ७. **अरति-परिषह**—मन में अरति—उदासी से होनेवाला कष्ट, स्वीकृत मार्ग में कठि-

नाइयों के आने पर मन न लगे तो उसके प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है, ऐसी दशा में उसमें धैर्य-पूर्वक मन लगाना। ८. **स्त्री-परिषह**—स्त्रियों द्वारा होने वाला कष्ट। ९. **चर्या-परिषह**—ग्राम नगर आदि के बिहार में होने वाला कष्ट। १०. **नैषेधिकी-परिषह**—स्वाध्याय आदि के स्थान पर कष्ट। ११. **शय्या-परिषह**—रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होनेवाला कष्ट। १२. **आक्रोश-परिषह**—किसी के द्वारा धमकाए जाने पर दुर्वचनों से होनेवाला कष्ट। १४. **याचना-परिषह**—भिक्षा-मांगने पर होनेवाला कष्ट। १५. **अलाभ-परिषह**—वस्तु के न मिलने पर होनेवाला कष्ट। १६. **रोग-परिषह**—रोग के कारण होनेवाला कष्ट। १७. **तृण-स्पर्श-परिषह**—तिनकों पर सोते समय या मार्ग में चलते समय तृण आदि के पांव में चुभ जाने से होनेवाला दुःख। १८. **जल्ल-परिषह**—शरीर एवं वस्त्र के समल होनेपर मन में उत्पन्न उद्वेग। **सत्कार-पुरस्कार परिषह**—जनता द्वारा सम्मान मिलने पर हर्ष न करना तथा मान न मिलने पर अप्रसन्न न होना। २०. **प्रज्ञा-परिषह**—प्रज्ञा होने पर गर्व न करना। २१. **अज्ञान-परिषह**—अज्ञान के कारण होनेवाला कष्ट। २२. **दर्शन-परिषह**—दूसरे मतवालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देखकर भी अपने मत में दृढ़ रहना।

परिषह जीवन की एक बहुत बड़ी कड़ी परीक्षा है, साधक के लिये इसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। इस में उत्तीर्णता प्राप्त किये बिना साधना सफल नहीं हो पाती। जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ सुवर्ण मल को त्याग कर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार परिषह रूप भट्टी में तपाने से ही यह आत्मा शुद्ध हो सकता है। संयम-मार्ग की ओर प्रस्थित होनेवाले मानव के लिये उक्त बाईस परिषह एक दुर्गम घाटी हैं, जो इसको पार कर लेता है, वह संसार-सागर को पार कर लेता है। इतिहास इस का साक्षी है। अर्जुनमाली ने साधु-जीवन अंगीकार कर लेने के अनन्तर सर्व प्रथम इसी दुर्गम घाटी को पार किया था। बेले के पारणे के निमित्त जब वे राजगृह नगर में भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं, तो उस समय गालियां उनको दी गईं, अपमान-जनक शब्दों के प्रहार उन पर किए गये, अधिक क्या मारपीट तक की गई। इस प्रकार अपमान के विष भरे प्याले उनको पीने पड़े। पर यह सब कुछ परवशता से नहीं किया गया। संयम-साधना की भावना को आगे रख कर किया गया। बड़ी शान्ति तथा धीरता के साथ इन्होंने परिषहों पर विजय प्राप्त की। परिषहों की वर्षा होने पर भी अपने मुनि-जनोचित कर्तव्य से अणुमात्र भी विचलित न होना उपस्थित हुए कष्ट को अपने प्राक्तन कर्म का फल समझते हुए उसके विपाक में किसी प्रकार का भी आर्त्तध्यान न करना, यही परिषहों पर विजय प्राप्त करना है। यही विजय अर्जुनमाली मुनि ने प्राप्त की थी। यही कारण है कि राजगृह नगर में भिक्षा के निमित्त घूमते हुए अर्जुन मुनि को यहां की जनता के द्वारा जो कष्ट प्राप्त हुए उनके होते हुए भी वे अपनी साधु-जनोचित वृत्ति में स्थिर रहे, मन से भी किसी पर द्वेष नहीं किया, प्रत्युत जो कुछ भी कष्ट प्राप्त हुआ, उसको समभाव में रहते हुए बड़ी शान्ति और धैर्य से सहन किया। इसी समभाव का यह सत्परिणाम है कि वे समस्त कर्म-बंधनों का विच्छेद करके अपने अभीष्ट परम कल्याण स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

"णयरे उच्च जाव अडमाणे"—जहां पठित **जाव** पद **"नीयमज्झिम कुलाइं"** इस अवशिष्ट

पाठ का बोधक है। यहां उच्च, नीच, मध्यम ये तीन शब्द हैं और ये कुल के विशेषण हैं। कुल शब्द के अनेकों अर्थ पाये जाते है। 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' नामक कोष में कुल शब्द के ये अर्थ लिखे हैं—वंश, जाति, पैतृक वंश, परिवार, सजातीय समूह, गोत्र, घर, गृह। प्रस्तुत प्रकरण में कुल शब्द परिवारार्थक प्रतीत होता है। उच्च शब्द धन प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से असाधारण परिवार का, नीच शब्द धन आदि की हीनता की दृष्टि से साधारण परिवार का तथा मध्यम शब्द न विशेष प्रतिष्ठित और न विशेष अप्रतिष्ठित परिवार का बोधक है।

"डहरा य महल्ला य"—डहराः बालाः, महान्तः वृद्धाः। यहां पठित डहर शब्द बालक का तथा 'महल्ल' शब्द वयोवृद्ध व्यक्ति का बोधक है।

"इमेणं मे अण्णयरे सयणसंबंधिपरियणे मारिए"—अनेन मेऽन्यतरः स्वजनसंबंधिपरिजनो मारितः। यहां पठित स्वजन शब्द चाचा, भाई पुत्र आदि पारिवारिक व्यक्तियों का, सम्बन्धी शब्द श्वसुर, साला, बहनोई आदि रिश्तेदारों का तथा परिजन शब्द दास, दासी आदि व्यक्तियों का परिचायक है।

"अक्कोसंति, हीलंति, निंदंति, खिसंति, गरिहंति, तज्जेंति"—आक्रोशन्ति—कटुवचनैर्भर्त्सयन्ति, हेलयन्ति—अनादरं कुर्वन्ति, निन्दन्ति—निंदां कुर्वन्ति, खिसंति—दुर्वचनैः कृत्वा तस्मिन् क्रोधमावेशयितुं प्रयतन्ते, गरिहंति—दोषमाविष्कुर्वन्ति, तर्जयन्ति—तर्जनां कुर्वन्ति, तर्जनी प्रभृत्यंगुल्यादिभिर्भीतिमुत्पादयितुं प्रयतन्ते, तर्जयन्ति, ताडयन्ति—यष्ट्यादिना ताडनां कुर्वन्ति।

इन क्रियापदों का अर्थ इस प्रकार है—

अक्कोसंति—कटु वचनों से भर्त्सना करते हैं। भर्त्सना का अर्थ है—लानत मलामत, फटकार, बुरा भला। **हीलन्ति**—अनादर-अपमान करते हैं। **निन्दन्ति**—निन्दा करते है, निन्दा का अर्थ है—किसी के दोषों का वर्णन करना, झूठमूठ किसी में दोष निकालना, किसी में ऐसा दोष बतलाना जो वास्तव में न हो, अपवाद, शिकायत तथा बदनामी। **खिसंति**—खीजते हैं, झुंझलाते हैं, कुढ़ते हैं, दुर्वचन कहकर क्रोधावेश में लाने का प्रयत्न करते हैं। **गरिहंति**—दोषों को प्रकट करते है। **तज्जेंति**—तर्जना करते है, डांटते हैं डपटते है, तर्जनी आदि अंगुलियों द्वारा भयोत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। **तालेंति**—लाठियों और पत्थरों आदि से मारते हैं।

"आकोसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे"—यहां पठित **जाव** पद **"हीलेमाणे, निंदेमाणे, खिसेमाणे, गरिहेमाणे, तज्जेज्जमाणे"** इन पदों का बोधक है। अर्थ स्पष्ट ही है।

"सम्मं सहति, सम्मं खमति, तितिक्खइ, अहियासेति*"—इन पदों की व्याख्या करते हुए टीका-

---

विद्वद्वर्य श्री घासीलाल जी महाराज **'सहते'** आदि क्रिया-पदों का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

"सम्यक् सहते मुखाद्यविकारकरणेन मर्षति, सम्यक् क्षमते क्रोधाभावेन, सम्यक् तितिक्षते अदीनभावेन, सम्यक् अधिसहते निर्जरा भावनया शुद्धान्तःकरणेन सहते। इस का अर्थ है—

१—**सम्यक् सहते**—सम्यक् रीति से सहन करते हैं, मुख पर विकार का चिन्ह भी नहीं आने देते।

२—**सम्यक् क्षमते**—हृदय में पूर्णतया क्षमाभाव रखते हैं, क्रोध को निकट नहीं आने देते। **सम्यक् तितिक्षते**—दीनता छोड़ कर सम्यक्तया मध्यस्थ भाव रखते है। **सम्यक् अधिसहते**—निर्जरा की भावना से पवित्र अन्तःकरण होने के कारण परिषहों को बिना किसी संकोच के सहन करते हैं।

कार अभयदेव सूरि लिखते हैं—

'सहते इत्यादीनि एकार्थानि पदानीति केचित् । अन्ये तु सहते भयाभावेन, क्षमते क्रोधाभावेन, तितिक्षते दैन्याभावेन, अधिसहते आधिक्येन सहते इति ।' इसका अर्थ इस प्रकार है—

कुछ आचार्य सहते आदि चारों पदों को एकार्थक मानते हैं, कुछ इनका अर्थभेद करते हुए कहते हैं—**सहते**—बिना किसी भय से संकट सहन करते हैं। **क्षमते**—क्रोध से दूर रह कर शान्त रहते हैं। **तितिक्षते**—किसी प्रकार की दीनता दिखलाये बिना परिषहों को सहन करते हैं। **अधिसहते**—अच्छी तरह सहन करते हैं।

इन क्रियापदों से ध्वनित होता है कि अर्जुन मुनि की सहनशीलता क्षमा तथा तितिक्षा में भय, कोप और दीनता का अंश नहीं था। वास्तव में देखा जाय तो जो सहनशीलता, भय को लेकर होती है, वह वास्तविक सहनशीलता नहीं है। जिस क्षमा में क्रोध का अंश विद्यमान है, हृदय में क्रोध छिपा हुआ है, उसे क्षमा नहीं कहा जा सकता है और दीनतापूर्वक की गई तितिक्षा (बिना प्रतिकार या विकलता के सभी दुःखों को सहन करने की शक्ति) वास्तविक तितिक्षा नहीं कही जा सकती।

आक्रोश आदि परिषहों के सहन करने में यदि अन्तःकरण में अंशतया भी कषायों का उदय हो जाता है, तो विकास के बदले यह आत्मा पतन की ओर प्रवृत्त हो जाता है, इसलिये संयम-मार्ग में प्रवृत्त होनेवाले साधक व्यक्ति परिषहों के उपस्थित होने पर भी अपने साधु-जनोचित क्षमा आदि गुणों में किसी प्रकार की भी विकृति नहीं आने देते। अर्जुनमुनि का पवित्र जीवन इस सत्य का जीवित उदाहरण है। इन्होंने समतापूर्वक आक्रोश आदि परिषहों को सहन करते हुए अपनी अपूर्व संयमनिष्ठा का परिचय दिया है। यही कारण है कि राजगृह नगर की जनता द्वारा तर्जना तथा ताड़ना-जन्य परिषह को सहन करते हुए इन्होंने मन से भी किसी पर द्वेष नहीं किया।

'अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी'* इन पदों की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरी लिखते हैं—

'अदीणे' त्यादि तत्रादीनः शोकाभावात्, अविमना न शून्यचित्तः, अकलुषो द्वेषवर्जितत्वात्, अनाविलः अनाकुलो वा निःक्षोभत्वात्, अविषादी किं मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहितः, अत एवापरितान्तः—अविश्रान्तो योगः—समाधिर्यस्य सः तथा स्वार्थिकेनन्तत्वाच्चापरितान्तयोगी।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन में किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन—दीनता से रहित था, समाहित चित्त होने से अविमन था; द्वेष-रहित होने से मन में किसी प्रकार की कलुषता-मलिनता और आकुलता नहीं थी। क्षोभ-शून्य होने से मन में किसी प्रकार का विषाद—दुःख नहीं था। 'मेरा इस प्रकार के तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है', ऐसी ग्लानि उनके मन में नहीं थी, अत एव वह निरन्तर समाधि में लीन हो रहे थे। समाधि में सतत लगे रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्त

*अदीनः—दीनतामप्राप्तः, अविमनाः—वैमनस्यमप्राप्तः, अकलुषः—कलुषभावरहितः, अनाविलः—स्वच्छान्तःकरणः, अविषादी—विषादरहितः, अपरितान्तयोगी—अपरितान्तश्चासौ योगश्च अपरितान्तयोग, सोऽस्यास्तीति तथा भूतश्च सन्।

योगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द से स्वार्थ में 'इन' प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

जैनाचार्यों ने क्षमा, निर्ममत्व, आर्जव और मार्दव ये चार धर्म के द्वार माने हैं अथवा ये धर्म रूप प्रासाद के मूल पाए बताये हैं। इन्हीं के आधार पर धर्म का भव्य प्रासाद खड़ा है, अतः जिन महान आत्माओं ने इन चारों को अपनाया है वे ही सच्चे अर्थों में साधु कहलाने के योग्य होते हैं और ऐसे साधु ही मोक्षमन्दिर के अधिकारी हो सकते है। अर्जुन मुनि के जीवन का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्होंने उक्त चारों को जीवन में भली भांति अपना लिया था। अनेकानेक भयंकर संकटों के आने पर भी इन्होंने इनकी आराधना में कभी उदासीनता या शिथिलता नहीं दिखलाई। यही कारण है कि अर्जुनमुनि ने छ मास की साधना द्वारा ही मुक्तिपुरी के द्वार खोल लिये और उसमें जा विराजे।

"**जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेति**"—का अर्थ है अर्जुनमुनि आहार लाकर गौतमस्वामी की तरह भगवान महावीर को दिखलाते है। श्री गौतम स्वामी जी के जीवन में लिखा है कि अनगार गौतम आहार लाकर श्रमण भगवान महावीर के निकट आते हैं, पास बैठकर आने-जाने में होनेवाले दोषों की निवृत्ति के लिये प्रतिक्रमण करते हैं, तदनन्तर उन्होने एषणीय (निर्दोष) और अनेषणीय (सदोष) आहार की आलोचना (विचारणा; अथवा प्रायश्चित्त के लिये अपने दोषों को गुरु के सन्मुख निवेदन करना) की; तदनन्तर वे भगवान को पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार दिखलाते हैं। सूत्रकार—**जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेति**" ये पद देकर यह प्रकट कर रहे हैं कि जिस विधि से गौतम स्वामी ने भगवान महावीर को आहार दिखलाया था, उसी विधि से अर्जुन मुनि अपना लाया हुआ आहार भगवान महावीर को दिखलाते है।

"**अमुच्छिए ४**"—यहां पर दिए गए ४ के अंक से अभीष्ट पदों का संकेत पदार्थ में कर दिया गया है।

"**बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ**"—का अर्थ है, जिस प्रकार सांप बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदों का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

"**बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति यथा भुजंगो बिलस्य पार्श्वभागद्वयम-संस्पृशन् मध्यमार्गेन एवात्मानं बिले प्रवेशयति तथा मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारं कण्ठनालाभि-मुखं प्रवेश्याऽऽहारयतीति भावः।**'

अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल बिल के मध्यभाग से ही बिल में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन माली मुख के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल मुख में आहार रख कर गले के नीचे उतार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल में प्रवेश करते समय सर्प अपने अंगों का उस से स्पर्श नहीं करता, बड़े संकोच से उस में प्रवेश करता है, उसी

प्रकार किसी प्रकार के आस्वाद की अपेक्षा न करते हुए रागद्वेष से रहित हो कर मुख में जैसे स्पर्श ही नहीं हुआ, इस प्रकार से केवल क्षुधा की निवृत्ति के उद्देश्य से अर्जुन मुनि आहार सेवन करते हैं। इस कथन से इनकी रसविषयक मूर्च्छा के आत्यन्तिक अभाव का संसूचन किया गया है। संयमी व्यक्ति की सर्वोत्कृष्ट साधना रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस साधना के रहस्य को भली भान्ति समझ लिया था और उसे जीवन में उतार भी लिया था।

"तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं"—तेन पूर्वभणितेन उदारेण—प्रधानेन, विपुलेन—विशालेन भगवतादत्तेन, प्रगृहीतेन उत्कृष्टभावतः स्वीकृतेन, महानुभागेन —महान् अनुभागः प्रभावो यस्य यत्तेन तपः कर्मणा। यहां पर अर्जुनमुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महानता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ में तपःकर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण हैं। इनकी अर्थ विचारणा इस प्रकार है—

तेणं—यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर संकेत करता है। अर्जुन माली के साधना-प्रकरण में बताया गया था कि अर्जुनमुनि जब नगर में भिक्षार्थ जाते थे तब इनको लोगों की ओर से बहुत बुरा-भला कहा जाता था, इनका अपमान किया जाता था, इनको मार-पीट की जाती थी तथापि ये सब यातनाएं शान्तिपूर्वक सहन करते थे। इसके अतिरिक्त इनको कहीं अन्न मिल जाता था तो पानी नही मिलता था, यदि कही पानी मिल गया तो अन्न नहीं मिलता था। यह सब कुछ होने पर भी अर्जुन मुनि कभी अशान्त नहीं हुए, दो दिनों के उपवास के पारणे में भी सन्तोषजनक भोजन न पाकर इन्होंने कभी ग्लानि अनुभव नहीं की। इस प्रकार के तप को ही सूत्रकार ने **तेणं** इस पद से ध्वनित किया है।

उदार—शब्द का अर्थ है—प्रधान। प्रधान सब से बड़े को कहते हैं। भूखा रहना आसान है, रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण भी किया जा सकता है, भिक्षा द्वारा जीवन का निर्वाह करना भी संभव है पर लोगों से अपमानित हो कर तथा मार-पीट सहन कर तपस्या की आराधना करते चले जाना बच्चों का खेल नही है। यह बड़ा मुश्किल कार्य है, बड़ी कठोर साधना है, इसी कारण सूत्रकार ने अर्जुनमुनि के तप को उदार अर्थात् सब से बड़ा कहा है।

विपुल—विशाल को कहते हैं। एक बार कष्ट सहन किया जा सकता है दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जासकता है, परन्तु लगातार छः महीने तक कष्टों की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है? यह समझना कोई कठिन बात नहीं है। जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर में प्रवेश करो वहां अनादर की वर्षा, सम्मान का कहीं चिन्ह भी नहीं तो ऐसी दशा में मन को शान्त रखना क्रोध को निकट न आने देना बड़ा विलक्षण साहस है और बड़ी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। संभव है इसीलिये सूत्रकार ने अर्जुनमाली की तपः-साधना को विपुल—विशाल बड़ी, कहा है।

प्रदत्त—का अर्थ है—दिया हुआ। अर्जुनमाली जिस तप की साधना कर रहे हैं, यह तप उन्होंने बिना किसी से पूछे अपने आप ही आरम्भ नहीं किया, प्रत्युत इस तप को भगवान महावीर के आदेश से तथा उनसे आज्ञा प्राप्त करके आरम्भ किया था। अतएव सूत्रकार ने इस तप को प्रदत्त कहा है, अर्थात् यह तप भगवान द्वारा दिया हुआ है, भगवान की आज्ञा से आरम्भ किया है।

प्रगृहीत—का अर्थ है—ग्रहण किया हुआ। किसी भी व्रतग्रहण करनेवाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति एक जैसी नहीं रहती। किसी समय मन में श्रद्धा का अतिरेक होता है और किसी समय श्रद्धा कमजोर पड़ जाती है और किसी समय लोकलज्जा के कारण बिना श्रद्धा के ही व्रत का परिपालन किया जाता है। इन सब बातों को आगे रखकर सूत्रकार ने मुनि द्वारा कृत तप को प्रगृहीत विशेषण से विशेषित किया है जो उत्कृष्ट भावना से ग्रहण किया हुआ, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुनमाली की आस्था संकट काल में शिथिल नहीं हुई, वे सुदृढ़ साधक बन कर साधना-जगत् में आए थे और अन्त तक सुदृढ़ साधक ही बने रहे। उन्होंने अपने मन को कभी डाँवाडोल नहीं होने दिया।

यदि **पयत्तेणं** का संस्कृत रूप **प्रयत्नेन** किया जाय तो उदार और विपुल ये दोनों प्रयत्न के विशेषण बन जाते हैं, तब इनका अर्थ होगा—प्रधान विशाल प्रयत्न से ग्रहण किया गया है। उसके लिये बड़े बड़े ऐहिक स्वार्थों प्रलोभनों को ठुकराया गया है, तब कहीं जाकर इसे अंगीकार किया गया है। तप करना साधारण बात नहीं है इसके लिये बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी महान पुरुषार्थ को प्रधान विशाल प्रयत्न कहा गया है।

"महानुभाग" शब्द जिसका प्रभाव हो, प्रभावशाली, इस अर्थ का बोधक है। जिस तप के प्रताप से अर्जुनमुनि ने जन्म जन्मान्तर के कर्मों को नष्ट कर दिया, परम साध्य निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया; उसकी प्रभावगत महानता में क्या आशंका हो सकती है?

जैनाचार्यों का विश्वास है कि आत्मा के साथ लगे हुए कर्म-मल को जलाने के लिये तप रूप अग्नि की नितान्त आवश्यकता होती है, तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मल के भस्मसात् होने पर यह आत्मा शुद्ध स्फटिक की भांति निर्मल हो जाती है। इसलिये अर्जुनमुनि ने संयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा को निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। उसके द्वारा आत्म-लिप्त कर्म-मल को जलाकर उसे निर्मल बना डाला। जिसके परिणामस्वरूप वे कैवल्य-प्राप्ति के अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हो गये।

"संलेहणाए" आदि सभी पदों की व्याख्या पीछे की जा चुकी है।

श्रेणिक-चरित्र में लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का पांच मास १३ दिनों तक प्रवेश रहा, उससे उसने ११४१ व्यक्तियों का प्राणान्त किया, इनमें ९७८ पुरुष और १६३ स्त्रियाँ थीं। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता रहा। यहां एक आशंका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान पतन किया उस व्यक्ति को केवल ६ मास की साधना से मुक्ति प्राप्त हो गई? यह एक विलक्षण बात है। स्थानांग सूत्र के चतुर्थ स्थान के नरकायु-बन्ध प्रकरण में जीव-वध को नरकायु के

बन्ध का कारण माना है तो फिर ११४१ जीवों का घात होने पर अर्जुनमुनि मुक्त कैसे हो गए? उत्तर में निवेदन है कि ११४१ जीवों के घात का सभी दायित्व मुद्गरपाणि यक्ष पर है, अर्जुनमाली के साथ उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अर्जुनमाली की धर्मपत्नी बंधुमती को जब पकड़ा गया और उसके साथ व्यभिचार-प्रधान बलात्कार किया गया तो उस समय अर्जुनमाली के हृदय में इतना विचार आया कि मैं वर्षों से मुद्गरपाणि यक्ष का पुजारी हूं, परन्तु मेरे पर इतनी बड़ी आपत्ति आने पर भी वह कुछ नहीं कर पा रहा, इसका मतलब यह है कि यह केवल काष्ठ ही है, इसमें कोई शक्ति नहीं है। अर्जुनमाली की इस विचारणा में कहीं भी ऐसा कोई शब्द नहीं आया जिससे बंधुमती तथा उस पर बलात्कार करनेवाले पुरुषों का प्राणान्त कर दिया जाये। वह तो अपनी धर्मपत्नी के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को देखकर मुद्गरपाणि यक्ष के प्रति अपनी अश्रद्धा तथा अविश्वास प्रकट कर रहा है। इसके अतिरिक्त उसने प्राणिवध जैसी कोई बात नहीं सोची और न उसने इस प्राणिवध के लिये यक्ष को ही प्रेरित किया। अतः ११४१ व्यक्तियों के वध का दायित्व अर्जुनमाली पर डालना, शास्त्र-सम्मत या तर्क-संगत प्रतीत नहीं होता। इसका यह भी अर्थ नहीं समझ लेना चाहिये कि बंधुमती के साथ बलात्कार करनेवाले व्यक्तियोंके लिये अर्जुनमाली के हृदयमें कोई द्वेष नहीं था वह उन्हें उनके इस कुकृत्य के लिये कोई दण्ड नहीं देना चाहता था। नारी-सम्मान के साथ खिलवाड़ करनेवाले तथा उसके सतीत्व को भंग करनेवाले व्यक्तियों को दण्डित करने की भावना का पैदा होनी स्वाभाविक है, तथापि अर्जुनमाली द्वारा अपनी शक्ति या अपनी स्ववशता से ११४१ प्राणियों के वध होने का उल्लेख शास्त्र में नहीं है और ऐसा सम्भव भी नहीं है जो व्यक्ति अपने बन्धन खोलने में असमर्थ रहा हो वह इतना बड़ा हत्याकाण्ड कैसे कर सकेगा? यह सर्वथा असंभव है। वस्तुतः इतना बड़ा हत्याकाण्ड अर्जुन-माली में प्रविष्ट हुए मुद्गरपाणी यक्ष ने ही किया था यदि यक्ष उसमें प्रवेश न करता तो इस हत्या-काण्ड की संभावना भी नहीं हो सकती थी?

अन्तगड़सूत्र के छठे वर्ग के प्रस्तुत तृतीय अध्ययन में अर्जुनमाली के हिंसा-प्रधान जीवन का उल्लेख किया गया है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से इस जीवन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति बुरा नहीं होता, वस्तुतः व्यक्ति में अवस्थित बुराई ही बुरी होती है। जब तक व्यक्ति का बुराई से सम्पर्क रहता है तब तक वह बुरा है, जब बुराई से वह किनारा कर लेता है तब वही बुरा व्यक्ति अच्छा बन जाता है। यदि बुराई छोड़ने के साथ-साथ वह धर्माराधन में लग जाता है, संयम-साधन को अपना लेता है, साधना-काल में उपस्थित होनेवाले संकटों को सहर्ष बिना किसी उद्देश्य के सहन कर लेता है, फिर तो वह मुक्ति पुरी के द्वार भी खोल लेता है। अर्जुनमाली का त्याग-प्रधान जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है।

जाति को काम नहीं जिन मार्ग।
संयम को प्रभु आदर दीने॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

ग्यारह अध्ययन

(चार से ग्यारह तक)

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेतिए। तत्थ णं सेणिए राया, कासवे णामं गाहावई परिवसइ, जहा मंकाति, सोलस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं खेमतेऽवि गाहावई, नवरं कागंदी णयरो, सोलस वासा परियाओ, विपुले पव्वए सिद्धे।

एवं धितिहरेवि गाहावई, कामंदी णयरी सोलस वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे।

एवं केलासेवि गाहावई, नवरं सागेए णयरे, बारस वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं हरिचंदणे वि गाहावई, सागेए बारस वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं वारत्तते वि गाहावई, नवरं रायगिहे णयरे, बारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं सुदंसणे वि गाहावई, नवरं वाणियगामे णयरे, दूतिपलासए चेतिए, पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणियगामे णयरे, पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं सुमणभद्दे वि गाहावई, नवरं सावत्थी णयरी, बहुवासपरियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं सुपइट्ठे वि गाहावई, सावत्थी णयरी, सत्तावीसं वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे।

एवं मेहे वि गाहावई, रायगिहे णयरे, बहूइं वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं, गुणशिलकं चैत्यं। तत्र श्रेणिको राजा, काश्यपो नाम गाथापतिः परिवसति। यथा मंकातिः षोडश वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।

एवं क्षेमकोऽपि गाथापतिः, नवरं काकंदी नगरी, षोडश वर्षाणि पर्यायः, विपुले पर्वते सिद्धः।
एवं धृतिधरोऽपि गाथापतिः, कामंदी नगरी, षोडश वर्षाणि पर्यायः, यावत् विपुले सिद्धः।
एवं कैलाशोऽपि गाथापतिः, नवरं साकेतनगरं द्वादशवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं हरिचन्दनोऽपि, गाथापतिः साकेते द्वादश वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं वारत्तकोऽपि गाथापतिः, नवरं राजगृहं नगरं, द्वादश वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं सुदर्शनोऽपि गाथापतिः, नवरं वाणिज्यग्रामनगरं, द्युतिपलाशकं चैत्यं पंचवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।

एवं पूर्णभद्रोऽपि गाथापतिः, वाणिज्यग्रामनगरं, पंचवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं सुमनगा भद्रोऽपि, थापतिः श्रावस्ती नगरी, बहुवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं सुप्रतिष्ठितोऽपि गाथापतिः, श्रावस्ती नगरी, सप्तविंशतिवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।
एवं मेघः, राजगृहं नगरं, बहूनि वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः।

पदार्थ—**तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल तथा उस समय में; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर था; **तत्थ णं गुणसिलए चेतिए**—वहाँ पर गुणशिलक चैत्य अर्थात् उद्यान था; **सेणिए राया**—श्रेणिक नामक राजा राज करता था; **कासवे नामं गाहावई परिवसइ**—काश्यप नामक गाथापति रहता था; **जहा मंकाती**—जिस प्रकार सेठ मंकाति का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सेठ काश्यप का भी समझ लेना। उस की तरह इस ने भी; **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और; **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर सिद्ध पद पाया।

एवं खेमतेऽवि गाहावई—इसी प्रकार क्षेमक सेठ भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो कर सिद्ध बने; **नवरं**—इतना अन्तर है कि; **काकंदी नगरी**—नगरी का नाम काकंदी था। काश्यप की तरह इन्होंने भी; **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्ष दीक्षा पर्याय पाली; **विपुले पव्वए सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध हुए।

एवं धितिहरेऽवि गाथावई—इसी प्रकार से धृतिधर सेठ का वर्णन भी जानना; **कामंदी नगरी**—कामंदी नाम की नगरी थी; **सोलस वासा परियाओ**—सोलह वर्षों की दीक्षा पाली। **जाव**—यावत् भगवान से आज्ञा लेकर तथा स्थविर सन्तों को साथ लेकर; **जाव विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर गए और सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं केलासेवि गाहावई—इसी प्रकार कैलाश गाथापति का जीवन चरित भी समझें; **नवरं सागेएं नगरे**—अन्तर इतना है कि नगरी का नाम साकेत था; **बारस वासाइं परियाओ**—बारह वर्ष तक दीक्षा की पर्याय पाली; **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं हरिचंदणे वि गाहावई—इसी प्रकार सेठ हरिचन्दन की भी साधना समझनी चाहिये **सागेए**—साकेत नगरी में, **बारस वासा परियाओ** बारह वर्ष की दीक्षा का पालन किया और; **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं वारत्तते वि गाहावई—इसी प्रकार वारत्तक नामक गाथापति का जीवन भी समझ लेना चाहिये। **नवरं रायगिहे नयरे**—अन्तर इतना है कि नगरी का नाम राजगृह था; **बारस वासा परियाओ**—बारह वर्ष तक दीक्षा का पालन किया; **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं सुदंसणे वि गाहावई—इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति का भी जीवन समझ लेना चाहिए। **नवरं वाणिय गामे णयरे**—अन्तर इतना है वाणिज्य नाम का नगर था; **दूतिपलासए चेतिए**—दूति पलाश नामक चैत्य था; **पंच वासा परियाओ**—दोक्षा पर्याय पंच वर्ष तक पालन की; **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं पुण्णभद्दे वि—इसी प्रकार पूर्णभद्र का जीवन भी जानना; **वाणिय गामे णयरे**—वाणिज्य ग्राम नामक नगर था; **पंच वासा परियाओ**—पच वर्ष तक दीक्षा का पालन किया। **विपुले सिद्धे**—विपुल गिरि पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं सुमणभद्दे वि—इस प्रकार सेठ सुमनभद्र का भी जीवन जानना। **सावत्थी णयरी**—श्रावस्ती नामक नगर था; **बहुवास परियाओ**—बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय पाली; **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध हुए।

एवं सुपइट्ठे वि—इसी प्रकार सेठ सुप्रतिष्ठित का जीवन जानना; **सावत्थी णयरी**—श्रावस्ती नगरी थी; **सत्तावीसं वासाइं परियाओ**—सत्ताईस वर्ष तक दीक्षा पर्याय पाली; **विपुले सिद्धे**—विपुल नामक पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

एवं मेहे विगाहावई—इसी प्रकार मेघ गाथापति का भी जीवन जानना; **रायगिहे णयरे**—राजगृह नाम का नगर था; **बहूइं वासाइं परियाओ**—बहुत वर्षों तक दीक्षा पालन किया, **विपुले सिद्धे**—विपुल पर्वत पर जाकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—उस काल एवं उस समय में राजगृह नामक एक नगर था, उसमें गुणशिलक नामक उद्यान था। नगर में महाराजा श्रेणिक राज्य किया करते थे। वहां काश्यप नामक एक धनिक सेठ रहता था। सेठ मंकाती की तरह इन्होंने भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा अंगीकार की सोलह वर्षों तक संयम का पालन करते हुए अन्त में विपुल गिरि पर कर्म-निर्जरा करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

सेठ काश्यप की तरह क्षेमक ने भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा अंगीकार की, सोलह वर्ष तक संयम-साधना का पालन करके अन्त में विपुल गिरि पर सिद्ध पद प्राप्त किया। अन्तर केवल इतना था कि—इनकी नगरी काकंदी थी।

सेठ क्षेमक की तरह सेठ धृतिधर ने भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो कर सोलह वर्ष तक संयम पालकर अन्त में विपुल गिरि पर सिद्ध पद पाया। कामंदी इनकी नगरी थी।

इसी प्रकार सेठ धृतिधर की भांति सेठ कैलाश ने भी दीक्षित हो विपुल गिरि पर निर्वाण पद पाया। अन्तर केवल इतना है कि इनका नगर साकेत था (अयोध्या थी) और बारह वर्षों तक संयम पाला।

सेठ कैलाश की तरह सेठ हरिचन्दन ने भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होकर बारह वर्षों तक संयम पालन करके सिद्ध पद पाया। इनका भी नगर साकेत था।

सेठ हरिचन्दन की भान्ति सेठ वारत्तक ने भी दीक्षित होकर बारह वर्षों तक संयम पाल कर विपुल गिरि पर सिद्धपद पाया, अन्तर केवल इतना है कि इनका नगर राजगृह था।

सेठ वारत्तक की तरह सेठ सुदर्शन ने भी दीक्षित होकर विपुल पर्वत निर्वाण पद पाया। अन्तर केवल इतना है कि वे वाणिज्य नामक ग्राम के निवासी थे। दीक्षा-पर्याय पांच वर्ष तक पाली और दूतिपलाश नामक उद्यान था।

सेठ सुदर्शन की तरह सेठ पूर्णभद्र भी वाणिज्य नामक ग्राम में पांच वर्षों की दीक्षा-पर्याय पाल कर विपुल गिरि पर्वत पर सिद्ध हुए।

सेठ पूर्णभद्र की तरह सेठ सुमन भद्र ने भी श्रावस्ती नगरी में दीक्षित हो कर अनेकों वर्षों तक दीक्षा का पालन करके विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया।

सेठ सुमनभद्र की तरह सेठ सुप्रतिष्ठित भी श्रावस्ती नगरी में सत्ताईस वर्षों तक दीक्षा का पालन करके विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

सेठ सुप्रतिष्ठित की तरह सेठ मेघकुमार ने भी राजगृह नगर में दीक्षित हो कर अनेक वर्षों तक संयमपाल का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्धावस्था पाई।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में ग्यारह श्रावकों के जीवनों का उल्लेख किया गया है। ये सब मोह-ममत्व के बन्धन तोड़ कर तथा वैराग्य से नाता जोड़कर मंगलमय करुणासागर भगवान महावीर के चरणों में पहुंचकर साधु बन गये थे, अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी में गोते लगाकर एक दिन सब

ने निर्वाण पद प्राप्त कर लिया था। इनके जीवन में जो-जो अन्तर है वह निम्नोक्त तालिका में दिया जा रहा है—

नाम	नगर	उद्यान	दीक्षापर्याय	निर्वाण-स्थान
१. श्री काश्यप जी	राजगृह नगरी	गुणशिलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
२. श्री क्षेमक जी	काकंदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३. श्री घृतिधर जी	कामंदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४. श्री कैलाश जी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५. श्री हरिचन्दन जी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६. श्री वारत्तक जी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७. श्री सुदर्शन जी	वाणिज्य नगर ग्राम	दूतीपलाश	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८. श्री पूर्णभद्र जी	वाणिज्य ग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९. श्री सुमनभद्र जी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१०. श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११. श्री मेघकुमार जी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

इन सभी श्रावकों के साधु-जीवन को सूत्रकार ने सेठ मंकाति के समान बतलाया है। सेठ मंकाति राजगृह नगर के वैभवशाली और जनगण-मान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे अपने बड़े पुत्र को अपने परिवार का सारा उत्तरदायित्व संभाल कर तथा पुरुष-सहस्रवाहिनी पालकी में बैठकर भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित हुए थे और साधु बन गये थे। भगवान महावीर के तथारूप (शास्त्रोक्त मर्यादा के परिपालक) स्थविरों के पास उन्होंने ग्यारह अंग-शास्त्र पढ़े थे। विद्याध्ययन के साथ-साथ इन्होंने **गुणरत्न** नाम का तप भी किया था। सोलह वर्ष तक संयम-साधना करने के अनन्तर वे विपुलगिरि पर्वत पर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए थे। सेठ मंकाति की इस जीवन-चर्या के साथ समानता अभिव्यक्त करने के लिये ही सूत्रकार ने सेठ काश्यप के जीवन में "**जहा मंकाति**" ये पद दिए हैं।

'**विपुले**'—का अर्थ है—विपुल पर। विपुल एक पर्वतविशेष का नाम है। इसी पर्वत पर आरोहण करके मुनिवर मंकाति तथा अन्य काश्यप आदि मुनिराजों ने आमरण अनशन करके सिद्ध पद उपलब्ध किया था।

'**नवरं**'—यह अव्यय पद है। इसका अर्थ है—यह अन्तर है। जैसे क्षेमक का जीवन सेठ काश्यप के समान बताया है, पर इसमे कुछ अन्तर भी है। इसी अन्तर को **नवरं** इस अव्ययपद से ध्वनित किया गया है।

"**परियाओ जाव विपुले सिद्धे**"—यहां पठित **जाव** पद मुनिवर धृतिधर ने जीवन के सन्ध्या-काल में भगवान महावीर स्वामी से पूछकर तथारूप स्थविरों के साथ विपुल गिरि पर आरोहण किया और वहां सलेखना द्वारा आत्मशुद्धि की' आदि सभी अवशिष्ट साधना की ओर संकेत करता है।

"**बहुवासपरियाओ**"—का अर्थ है—बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया। सूत्रकार ने जैसे

काश्यप आदि मुनिराजों की दीक्षा-पर्याय का निश्चित रूप से संकेत किया है वैसे श्री सुमनभद्र जी तथा श्री मेघकुमार जी मुनिराजों की **दीक्षापर्याय** का निर्देश नहीं किया। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों? उत्तर में निवेदन है कि भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग ९८० वर्षों के अनन्तर बलभी नगरी में देवर्द्धिगण क्षमाश्रमणो के नेतृत्व में एक मुनिसम्मेलन हुआ, उसमें इन्होंने मुनिराजों को जो आगम-पाठ स्मरण थे, उनका संकलन किया और उनको अनेकों प्रतियां लिखवाकर उनको सदा के लिये सुरक्षित कर दिया। इनमें वे ही पाठ लिखे गये जो मुनियों को याद थे। जो पाठ उनको याद नही थे उनको लिखने का प्रश्न हो नहीं उपस्थित होता। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत सूत्र में वर्णित मुनिराज सुमनभद्र तथा मेघकुमार की दीक्षा-पर्याय का काल-विस्मृत हो जाने के कारण ही लिखा नहीं जा सका होगा।

इस सूत्र में ११ श्रावकों की जीवनी है इनका गृहस्थ जीवनियां हैं, वैभव को छोड़कर दीक्षित होना और अनगार-धर्म का यथाविधि पालन करके अक्षय सुख को प्राप्त करना, इनके हृदय में अवस्थित उत्कृष्ट धर्म-श्रद्धा का ही शुभ परिणाम है। जैन-शास्त्रों ने धर्म-श्रद्धा का बड़ा सुन्दर फल बतलाया है। उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन में भगवान महावीर धर्म श्रद्धा-जनित फल का कितनी मोहक पद्धति से निर्देश करते हैं—

*** धम्म सद्धाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?**

धम्मसद्धाए णं जीवे सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ। आगार-धम्मं चयइ, अणगारिए णं जीवे सरीरमाणसाण दुक्खाणं छेयणभेयणसंजोगाइणं वोच्छेयं करेइ अव्वाबाहं च णं सुहंनिव्वत्तेइ।

इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—

प्रश्न—भगवन ! धमश्रद्धा से इस जीव को क्या फल मिलता है ?

उत्तर—धर्म-श्रद्धा से जीव सातावेदनीय कर्म-जनित सुख से विरक्त हो जाता है। फिर गृहस्थ आश्रम को छोड़कर अनगार बन जाता है। अनगार बनकर शारीरिक और मानसिक दुःखों का छेदन-भेदन कर देता है तथा संयोग आदि जन्य दुखों का विच्छेद करके शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है।

धर्म-श्रद्धा की महिमा अपरम्पार है, धर्म-श्रद्धा से ही मनुष्य के अन्तर्जगत में वैराग्य के दीप जलते हैं और वैराग्यवान पुरुष ही संयम के महापथ पर चलकर अपने परमसाध्य मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेता है।

वैराग्य अवस्था को नहीं देखता। साधक चाहे बालक हो, युवा हो; या वृद्ध हो, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। साधक में वैराग्य होना चाहिये, यदि वह बढ़ता ही चला जाय तो बस बेड़ा पार है।

॥ ग्यारहवां अध्ययन समाप्त ॥

---

* धर्मश्रद्धया भदन्त ! जीवः किं जनयति ? धर्मश्रद्धया सातासुखेषु रज्यमाणो विरज्यते। आगारधर्मं च त्यजति, अनगारो जीवः शरीरमानसानां दुःखानां छेदन-भेदन-संयोगादीनां उच्छेदं करोति अव्याबाधं च सुखं निर्वर्तयति।

पन्द्रहवां अध्ययन

अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के चौदह अध्ययनों का वर्णन पीछे के पृष्ठों पर किया जा चुका है अब पन्द्रहवें अध्ययन का स्थान है, अतः सूत्रकार उसका आरंभ करते हुए कहते हैं—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे णयरे, सिरिवणे उज्जाणे, तत्थ णं पोलासपुरे णयरे विजये नामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रन्नो सिरी नामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रन्नो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था, सूमाले।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती, जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे णयरे उच्च जाव अडइ। इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाते जाव विभूसिए बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य, डिंभएहिं य डिंभियाहिं य, कुमारएहिं य कुमारयाहिं य सद्धिं संपरिवुडे सतो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए, तेहिं बहूहिं दारएहिं य ५ संपरिवुडे अभिरममाणे २ विहरइ। तते ण भगवं गोयमे पोलासपुरे णयरे उच्चनीय जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेण वीतीवयइ, तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूर सामंतेणं वीतीवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पोलासपुरं नगरं, श्रीवनमुद्यानम्। तत्र हि पोलासपुरे नगरे विजयनामा राजाऽभूत्। तस्य विजयस्य राज्ञः श्रीर्नाम्नी देव्यभूत्, वर्णकः, तस्य विजयस्य राज्ञः पुत्रः श्रियाः देव्याः आत्मजः अतिमुक्तो नाम कुमारोऽभूत्, सुकुमारः।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो यावत् श्रीवने विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिः, यथाप्रज्ञप्तौ यावत् पोलासपुरे नगरे उच्च यावत् अटति। अयञ्चातिमुक्तः कुमारः स्नातो यावत् विभूषितः बहुभिः दारकैश्च दारिकाभिश्च, डिम्भकैश्च, डिम्बिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं सम्परिवृतः स्वकाद् गृहाद् प्रतिनिष्क्रमति प्रतिनिष्क्रम्य, यत्रैव इन्द्रस्थानं तत्रैव उपागतः, तैः बहुभिः दारकैश्च ५ अभिरममाणोऽभि रममाणो विहरति।

ततः भगवान् गौतमः पोलासपुरे नगरे उच्चनीच० यावत् अटन् इन्द्रस्थानस्य अदूर-

सामन्ते व्यतिव्रजति। ततः सोऽतिमुक्तः भगवन्तं गौतममदूरसामन्ते व्यतिव्रजन्तं पश्यति, दृष्ट्वा यत्रैव भगवान् गौतमस्तत्रैव उपागतः उपागत्य, भगवन्तं गौतममेवमवदत्।

पदार्थ—**तेणं कालेणं**—उस काल तथा; **तेणं समएणं**—उस समय; **पोलासपुरे**—पोलासपुर नाम का; **नगरे**—नगर था वहां; **सिरिवणे**—श्रीवन नामक; **उज्जाणे**—उद्यान था; **तत्थ णं**—वहां; **पोलासपुरे नगरे**—पोलासपुर नगर में; **विजय नामं**—विजय नाम का; **राया**—राजा; **होत्था**—था; **तस्स णं**—उस; **विजयस्स रण्णो**—विजय राजा की; **सिरी नामं**—श्री नाम की; **देवी होत्था**—पट्टरानी थी; **वण्णओ**—इस की गुण-सम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुणसम्पदा के समान जानना चाहिये; **तस्स णं**—उस; **विजयस्स रण्णो**—विजय राजा के; **पुत्ते**—पुत्र; **सिरीए देवीए**—श्री देवी के; **अत्तए**—आत्मज; **अतिमुत्ते नामं कुमारे**—अतिमुक्त नाम का कुमार; **होत्था**—था; **सूमाले**—जो सुकुमार हाथ पाँवों वाला था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल एवं उस समय में; **समणे भगवं महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर; **जाव सिरीवणे**—यावत् श्रीवन नामक उद्यान में; **विहरइ**—विहरण कर रहे थे; **तेणं कालेणं तेणं समएण**—उस काल एवं उस समय; **भगवओ महावीरस्स**—भगवान् महावीर के; **जेट्ठे अंतेवासी**—प्रधान शिष्य; **इंदभूती**—इन्द्रभूति; **जहा पण्णत्तीए**—जिस प्रकार भगवती सूत्र में वर्णित किया गया है; **जाव**—उसी प्रकार; **पोलासपुरे णयरे**—पोलासपुर नगर में; **उच्च जाव**—सामान्य तथा मध्यम परिवारों में भिक्षार्थ; **अडइ**—भ्रमण करते हैं; **इमं च णं**—और इधर; **अइमुत्ते कुमारे**—अतिमुक्त कुमार; **ण्हाते**—स्नान करके; **जाव**—यावत्; **विभूसिए**—सर्वविध आभूषणों से विभूषित हो कर; **बहूहिं**—बहुत से; **दारएहिं य**—दारकों—सामान्य बालकों—अच्छी आयु के बच्चों के; **दारियाहिं य**—और सामान्य बालिकाओं के; **डिंभएहिं य**—और डिंभों—लघु बालकों, छोटी आयु के बच्चों के; **डिंभियाहिं य**—और छोटी आयु की लड़कियों के; **कुमारएहिं य**—और कुमार अविवाहित लड़कों के; **कुमारियाहिं य**—और अविवाहित लड़कियों के; **सद्धिं**—साथ; **संपरिवुडे**—घिरा हुआ; **सतो गिहाओ**—अपने घर से; **पडिनिक्खमइ**—निकलता है; **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर; **जेणेव**—जहां पर; **इंदट्ठाणे**—इन्द्रस्थान (बच्चों के खेलने का स्थान था); **तेणेव**—वहां पर; **उवागए**—गया, वहां पर, **तेहिं**—उन; **बहूहिं**—बहुत से; **दारएहिं य**—दारकों अच्छी आयु के लड़कों और; **५**—यह अंक अच्छी आयु वाली लड़कियों के, छोटी आयु के बालकों के, छोटी आयु की बालिकाओं के, अविवाहित लड़कों तथा अविवाहित लड़कियों के साथ इस अवशिष्ट पाठ का संसूचक है; **संपरिवुडे**—घिरा हुआ; **अभिरममाणे २**—क्रीड़ाएं करता हुआ; **विहरइ**—विहरण करने लगा; **तए णं**—उसके अनन्तर; **भगवं**—भगवान; **गोयमे**—गौतम; **पोलासपुरे नगरे**—पोलासपुर नामक नगर में; **जाव**—यावत् मध्यम परिवारों में; **अडमाणे**—भ्रमण करते हुए; **इंदट्ठाणस्स**—इन्द्र स्थान के; **अदूरसामंतेणं**—न अति निकट और न ही अति दूर; **वीतीवयइ**—जाते हैं; **तए णं**—उस के अनन्तर; **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम जी महाराज को; **अदूरसामंतेणं**—पास में; **वीतीवयमाणं**—जाते हुए को; **पासइ**—देखता है; **पासित्ता**—देख कर; **जेणेव**—जहां पर; **भगवं गोयमे**—भगवान गौतम थे;

तेणेव—वहां पर; **उवागते**—आता है; **उवागच्छित्ता**—आ कर; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम को **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय में पोलासपुर नामक एक नगर था, वहां श्रीवन नामक उद्यान था। नगर में महाराजा विजय राज्य किया करते थे। रानी का नाम श्रीदेवी था। औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी गुण-सम्पदा के समान इसकी गुण-सम्पदा थी। महाराज विजय के पुत्र, श्रीदेवी के आत्मज अतिमुक्त कुमार नाम का एक कोमलांगी लड़का था।

उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी वहां पधारे और नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान में विराजमान हो गये। भगवान महावीर के प्रधान शिष्य श्री इन्द्रभूति जी महाराज जिस प्रकार भगवती सूत्र में वर्णित हुआ है, उसी प्रकार बेले के पारणे के निमित्त पोलासपुर नगर में गये। वहां उच्च (असाधारण), नीच (साधारण) तथा मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करने लगे।

जिस समय भगवान गौतम भिक्षार्थ नगर में भ्रमण कर रहे थे, उसी समय स्नानादि से निवृत्त होकर एवं सर्वविध आभूषणों से अलंकृत होकर श्री अतिमुक्त कुमार अनेकों लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं, कुमार तथा कुमारियों के साथ एकत्रित होकर अपने घर से निकले और इन्द्रस्थान (वह स्थान जहां बच्चे क्रीड़ा करते हैं) में पहुंचे। वहां अपने सभी साथी लड़के-लड़कियों; बालक-बालिकाओं, कुमार-कुमारियों के साथ क्रीड़ा में व्यस्त हो गए।

भगवान गौतम पोलासपुर नगर के, उच्च, नीच तथा मध्यम परिवारों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए जब इन्द्रस्थान के पास से निकले तब उन्हें अतिमुक्त कुमार ने देख लिया। देखते ही वह भगवान गौतम के पास आया और भगवान गौतम से निवेदन करने लगा।

व्याख्या—इस सूत्र से अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन का आरम्भ होता है, इसमें राजकुमार अतिमुक्त के जीवन का परिचय करवाया गया है। अतिमुक्त कुमार पोलासपुर नरेश महाराजा विजय के पुत्र थे, इनकी माता का नाम श्रीदेवी था, राजकुमार के अंग बड़े कोमल थे, वह विनीत था, साधु-सन्तों के दर्शन से उसे बचपन से ही प्यार था, यही प्यार आगे चलकर उसके लिये वरदान बन गया था।

एक बार अतिमुक्त कुमार अपने समवयस्क लड़के-लड़कियों के साथ पोलासपुर के सुप्रसिद्ध क्रीड़ा-स्थान में खेल रहा था, अचानक उसकी दृष्टि पास से जाते हुए एक मुनिराज पर पड़ गई, यह मुनिराज भगवान महावीर के प्रधान शिष्य तपोमूर्ति भगवान गौतम थे। वे अपने धर्माचार्य भगवान महावीर की आज्ञा से बेले की तपस्या के पारणे के लिये भिक्षार्थ नगर में भ्रमण कर रहे थे। जब वे क्रीड़ा-स्थान के समीप होकर निकले तो अतिमुक्तकुमार ने इनको देख लिया, देखते ही उसने खेलना बन्द कर दिया और वह क्रीड़ा-स्थान से निकलकर सीधा भगवान गौतम के पास चला आया, भगवान गौतम के निकट पहुँचकर वह उनसे कहने लगा।

"वण्णओ"—वर्णकः—का अर्थ है वर्णन करने योग्य प्रकरण। भाव यह है कि पोलासपुर नरेश महाराजा विजय की पट्टरानी श्रीदेवी के शरीर तथा उसके गुणों का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-योग्य-गुण-सम्पदा के समान समझ लेना चाहिये।

"सूमाले"—सुकुमारः, यो हि सुकोमलसर्वावयवः सः—इसका अर्थ है जिसके हाथ-पांव अंगुलियां आदि सभी शारीरिक अवयव कोमल हों उसे सुकुमार कहते हैं।

महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ"—यहां पठित **जाव** पद "महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जहां पर पोलासपुर नगर था और जहां श्रीवन उद्यान था वहां आ जाते हैं। अनगार वृत्ति के अनुसार उपाश्रय स्वीकार करके तप और संयम के द्वारा आत्म-भावना से भावित होते हुए" इस अवशिष्ट अंश का बोधक है।

"जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे" का अर्थ है जिस प्रकार प्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्र में भगवान गौतम का वर्णन किया गया है,वैसा यहां भी समझ लेना। भगवती सूत्रमें लिखा है कि इन्द्रभूति गौतम बिना किसी व्यवधान के बेले बेले तप किया करते थे। पारणे वाले दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते थे, दूसरे प्रहर ध्यान लगाते, तीसरे प्रहर कायिक तथा मानसिक चपलता से रहित होकर मुख-वस्त्रिका, पात्रों और वस्त्रों की प्रति लेखना करते. फिर पात्रों को झोली में रखकर भगवान महावीर को वन्दना करके उनसे बेले के पारणे के निमित्त नगर में भिक्षार्थ जाने की आज्ञा प्राप्त करते। भगवान से आज्ञा मिल जाने पर नगर में भिक्षार्थ चले जाते थे।

"उच्च जाव अडइ"—यहां का "**जाव** पद **णीयमज्झिम कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए**" इन पदों का परिचायक है. अर्थ स्पष्ट ही है।

"ण्हाते जाव विभूसिए"—यहां का जाव पद—"**कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सव्वालंकार**" इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ है—**कृतबलिकर्मा**—शरीर की स्फूर्ति के लिये जिसने तैलादि का मर्दन कर रखा है या काकादि पक्षियों को अन्नादि दान रूप बलिकर्म से निवृत्त होने वाला, या जिसने कुल देवता के निमित्त किया जानेवाला कर्म कर लिया है। **कृतकौतुकमंगलप्रायश्चित्त** दुष्ट स्वप्नादि के फल को निष्फल करने के लिये जिसने प्रायश्चित्त रूप में कौतुक-कपाल पर तिलक तथा अन्य मांगलिक कार्य कर लिया है।

"दारएहिं य, डिंभएहिं य, कुमारएहिं य"—यहां दारक, डिंभक तथा कुमार इन तीन शब्दों

का प्रयोग किया गया है, ये तीनों समानार्थक ही प्रतीत होते हैं, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से चिंतन करने वाले विद्वानों ने **१. दारक**—सामान्य बालक अच्छी आयु वाला, २. **डिंभक**—छोटी आयुवाला, **३. कुमार**—जिसका विवाह नहीं हुआ—अविवाहित यह अर्थ-भेद संसूचित किया है।

"***इंदट्ठाणे**"—**इन्द्रस्थानम्, बालक्रीडास्थानमिति**—अर्थात् बालकों का वह क्रीड़ास्थान इन्द्रस्थान, कहलाता है जहां पर इन्द्रस्तम्भ नामक एक मोटा सा खंभा गाड़ कर बालक **और** बालिकाएं खेलते हैं।

"**दारएहिं य ५**—"यहां का ५ का अंक "**दारियाहिं, डिंभएहिं, डिंभियाहिं य, कुमारएहिं य, कुमारियाहिं य सद्धिं**"—इस पाठ का बोधक है। अर्थ पहले की ही तरह है।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि अनगार गौतम अपने पारणे के लिये स्वयं भिक्षार्थ नगर में जाते हैं। चौदह हजार साधुओं के नायक होने पर भी किसी अन्य साधु को न भेजकर स्वयं ही गोचरी के लिये जाना, भगवान गौतम की महानता का द्योतक है और साथ में साधक वर्ग को यह शिक्षा भी प्राप्त होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम के पास जाकर जो कुछ कहा तथा उन्होंने जो कुछ उसे उत्तर दिया, अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**के णं भंते! तुब्भे? किं वा अडह? तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणा णिग्गथा ईरियासमिया जाव बंभयारी उच्चनीय जाव अडामो। तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयम एवं वयासी—**

एह णं भंते! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सते गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरी देवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया, भगवं गोयमं तिखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता, वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खादिमसादिमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेई।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयम एवं वयासी—कहि णं भंते! तुब्भे परिवसह? तए णं भगवं गोयमे अइमुत्त कुमारं एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए भगवं महावीरे आदिकरे जाव संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया सिरीवणे उज्जाणे अहापडिरूवं

* इंदट्ठाणेत्ति यत्रेन्द्रयष्टि रूर्ध्वी क्रियते (वृत्तिकारो अभयदेवसूरिः)।

उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तत्थ णं अम्हे परिवसामो। तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी–

गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ? 'अहा-सुहं देवाणुप्पिया !'

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ। तए णं भगव गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए जाव पडिदंसेइ पडिदंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

छाया—के भदन्त ! यूयम् ? किं वा अटथ ? ततः खलु भगवान् गौतमोऽतिमुक्तं कुमार एवमवदत्—वय देवानुप्रिय ! श्रमणाः निर्ग्रन्था ईरियासमिता यावद् ब्रह्मचारिणः उच्चनीच यावद् अटामः, ततोऽतिमुक्तकुमारः भगवन्तं गौतममेवमवदत्—

इत भदन्त ! यूय, येनाहं युष्मभ्यं भिक्षां दापयामि, इति कृत्वा भगवन्तं गौतममंगुल्या गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागतः। ततः सा श्रीदेवी भगवन्तं गौतममायान्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्ट-तुष्टा यावद् आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय यत्रैव भगवान् गौतमः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य भगवन्तं गौतमं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा, नमस्यित्वा विपुलेन अशन-पान-खादिम-स्वादिमेन प्रतिलाभयति यावत् प्रतिविसर्जयति।

ततः सोऽतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतममेवमवदत्–क्व भदन्त ! यूयं परिवसथ ? ततो भगवान् गौतमः अतिमुक्तं कुमारमेवमवदत्।

एवं खलु देवानुप्रिय ! मम धर्माचार्यः धर्मोपदेशको भगवान् महावीरः—आदिकरो यावत् सम्प्राप्तुकामः, इहैव पोलासपुरात् नगराद् बहिः श्रीवने उद्याने यथाप्रतिग्रहमवगृह्य सयंमेन यावद् आत्मानं भावयन् विहरति, तत्र वयं परिवसामः। ततः सोऽतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतम-मेवमवदत्।

गच्छामि भदन्त ! अहं युष्माभिः सार्धं श्रमणं भगवन्तं महावीरं पादवन्दनाय। यथासुखं देवानु-प्रिय ! ततः सोऽतिमुक्तः कुमारः भगवता गौतमेन सार्द्धं यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते यावत् पर्युपास्ते। ततो भगवान् गौतमः यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैव उपागतः यावत् प्रति-दर्शयति, प्रतिदर्श्य संयमेन-तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

पदार्थ—भंते !—भगवन् ?; तुब्भे के—आप लोग कौन हैं ? णं—वाक्यसौन्दर्यार्थ प्रयुक्त किया जाता है; वा किं—अथवा, किसलिये; अडह— भ्रमण कर रहे हो; तए णं—उसके अनन्तर;

भगवं गोयमे—भगवान गौतम; **अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी**—अतिमुक्त कुमार को इस प्रकार कहने लगे; **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र ! **अम्हे ण**—हम; **समणा**—श्रमण—तपस्वी; **निग्गंथा**—निर्ग्रन्थ—राग-द्वेष की ग्रन्थियों से रहित; **ईरियासमिया**—ईरिया समिति के पालक; **जाव बंभयारी**—यावत्, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य के पालन कर्ता; **उच्चनीय**—उच्च तथा नीच; **जाव**—यावत् मध्यम परिवारों में भिक्षार्थ; **अडामो**—भ्रमण करते हैं ; **तए णं**—उसके बाद; **अइमुत्ते कुमारे**—अतिमुक्त कुमार; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भंते !—हे भगवन् !; **तुब्भ एह णं**—आप इधर आएं; **जा णं अहं**—मैं; **तुब्भं**—आपको; **भिक्खं**—भिक्षा; **दवावेमि**—दिलवाऊं; **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कह कर; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम को; **अंगुलियाए**—अंगुली से; **गेण्हइ**—पकड़ लेता है; **गेण्हित्ता**—पकड़ कर; **जेणेव**—जहां पर; **सते गिहे**—अपना घर था; **तेणेव**—वहां पर; **उवागए**—आ गया। **तए णं**—उसके अनन्तर; **सा सिरी देवी**—वह श्रीदेवी; **एज्जमाणं**—आते हुए; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम को; **पासइ**—देखती है, **पासित्ता**—देखकर; **हट्ठतुट्ठ**—अत्यन्त हर्षित हुई; **जाव**—यावत्; **आसणाओ**—आसन से; **अब्भुट्ठेइ**—उठती है; **अब्भुट्ठित्ता**—उठकर; **जेणेव**—जहा पर; **भगवं गोयमे**—भगवान गौतम थे, **तेणेव**—वहां पर; **उवागया**—आ गई; **भगवं गोयमं**—भगवान गौतम को; **तिक्खुत्तो**—तीन बार; **आयाहिणपयाहिणं**—दक्षिण ओर से लेकर प्रदक्षिणा ; **करेइ**—करती है; **करित्ता**—करके; **वंदइ**—वन्दना करती है; **णमंसइ**—नमस्कार करती है; **वंदित्ता णमंसित्ता**—वंदना नमस्कार करके; **विउलेणं**—विपुल; **असण-पाण-खादिम-साविमेणं**—अशन—अन्न, पान—पानी; खादिम—मेवा मिठाई आदि; स्वादिम—मुख को स्वादिष्ट बनानेवाले लौंग चूर्ण आदि इस चतुर्विध आहार से; **पडि-लाभेइ**—प्रतिलाभित करती है, उनको आहार बहराती है। **जाव**—यावत् उन्हें सम्मानपूर्वक; **पडि-विसज्जेइ**—विदा करती है;

तए णं भगवं गोयमे—उसके बाद, भगवान गौतम को; **से अइमुत्ते कुमारे एवं वयासी**—वह अतिमुक्त कुमार इस प्रकार कहने लगा—

भंते !—हे भगवन् ! **तुब्भे**—आप; **कहि णं**—कहां पर; **परिवसह**—रहते है ? **तए णं**—उसके बाद; **भगवं गोयमे**—भगवान गौतम; **अइमुत्तं**—अति मुक्त; **कुमारं**—कुमार को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे; **एवं खलु देवाणुप्पिया !**—हे भद्र ! इस प्रकार निश्चय ही; **मम धम्मायरिए**—मेरे धर्माचार्य; **धम्मोवतेसए**—धर्मोपदेशक; **भगवं महावीरे**—भगवान-महावीर स्वामी; **आइगरे**—आदिकर—धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले; **जाव**—यावत्; **संपाविउकामे**—मोक्ष प्राप्त करने की कामना रखनेवाले; **इहेव**—इसी; **पोलास पुरस्स**—पोलासपुर; **णयरस्स**—नगर के; **बहिया**—बाहिर; **सिरिवणे**—श्री वन; **उज्जाणे**—उद्यान में; **अहापडिरूवं**—साधुवृत्ति के अनुकूल; **उग्गहं**—अवग्रह—आश्रय; **उग्गिण्हित्ता**—स्वीकार करके; **संजमेण**—संयम से; **जाव**—यावत्; **अप्पाणं**—अपनी आत्मा को; **भावेमाणे**—भावित करते हुए; **विहरइ**—विहरण करते हैं; **तत्थ णं**—वहां पर; **अम्हे**—हम; **परिवसामो**—रहते हैं।

तए णं—उस के अनन्तर; **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार; **गोयमं**—गौतम को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा—

भंते !—हे भगवन् !; **अहं**—मैं; **तुब्भेहिं सद्धि**—तुम्हारे साथ; **समणं भगवं महावीरं**—श्रमण भगवान महावीर को; **पायवंदए**—चरण-वन्दन के लिये; **गच्छामि**—चलूं? (भगवान गौतम बोले); **अहासुहं देवाणुप्पिया !** जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, हे भद्र !, **तए णं**—उस के अनन्तर, **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार; **भगवया**—भगवान; **गोयमेणं**—गौतम के; **सद्धि**—साथ; **जेणेव**—जहां पर; **समणे**—श्रमण; **भगवं महावीरे**—भगवान महावीर विराजमान थे; **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आता है, **उवागच्छित्ता**—आकर **समणं भगवं महावीरं**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी को; **तिक्खुत्तो**—तीन बार; **आयाहिण-पयाहिणं**—दक्षिण की ओर से प्रदक्षिणा; **जाव**—यावत्; **करेइ**—करता है; **करित्ता**—करके; **वंदइ**—वन्दना करता है; **पज्जुवासइ**—भगवान की पर्युपासना—भक्ति करता है।

तए णं—उस के बाद; **भगवं गोयमे**—भगवान गौतम जी महाराज; **जेणेव समणे भगवं महावीरे**—जहां पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे; **तेणेव उवागए**—वहां पर आ गए; **जाव**—यावत् वहां आकर पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार, भगवान महावीर स्वामी को; **पडिदंसेइ**—दिखलाते हैं; **पडिदंसित्ता**—दिखला कर; **संजमेणं**—संयम तथा; **तवसा**—तप से; **अप्पाणं**—अपनी आत्मा को; **भावेमाणे**—भावित करते हुए; **विहरइ**—विचरण करने लगे।

मूलार्थ—अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम से पूछा—भगवन् ! आप कौन हैं ? तथा किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ?

राजकुमार अतिमुक्तकुमार का प्रश्न सुनकर भगवान गौतम अतिमुक्त कुमार से कहने लगे—भद्र ! 'हम श्रमण हैं, साधु हैं, निर्ग्रन्थ हैं, जैन सन्त हैं, ईर्यासमिति आदि पंचविध समितियों का पालन करना हमारा धर्म है, हम इन्द्रियदमन तथा ब्रह्मचर्य के साधक हैं, सामान्य असामान्य तथा मध्यम परिवारों में भिक्षार्थ परिभ्रमण कर रहे हैं।'

अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके राजकुमार अतिमुक्त भगवान गौतम से निवेदन करने लगे— 'भगवन् ! आप इधर आइए, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हूं।' यह कहकर राजकुमार ने भगवान गौतम की अंगुली पकड़ ली और इनको अपने घर ले गया। जब घर के निकट पहुंचे तो राजकुमार की माता श्रीदेवी ने भगवान गौतम को आते हुए देखा तो वह भगवान गौतम को देखकर आनन्द-विभोर हो उठी, वह तत्काल आसन से उठी और भगवान गौतम के पास आई। दक्षिण की ओर से आरंभ करके

उनको तीन बार प्रदक्षिणा की। वंदन एवं नमस्कार किया तदनन्तर उत्तम अन्न-पानी, खादिम (मिष्टान्न) तथा स्वादिम उनको बहराया और सम्मानपूर्वक उनको विदा दी।

भोजन लेकर भगवान गौतम जब जाने लगे तो राजकुमार अतिमुक्त उनसे कहने लगा—'भगवन् ! आप कहां रहते हो ?' राजकुमार का यह प्रश्न सुनकर उसको उत्तर देते हुए भगवान गौतम कहने लगे—'हे वत्स ! धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक यावत् मोक्ष की कामना करनेवाले धर्मोपदेशक मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर स्वामी इसी पोलासपुर नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान में साधु-वृत्ति के अनुकूल अवग्रह स्थान लेकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं। वहीं पर हम निवास करते हैं। अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके राजकुमार अतिमुक्त भगवान गौतम से फिर निवेदन करने लगे—'भगवन् ! मैं आपके साथ चलता हूं मैं भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदना कर लूँगा'। राजकुमार अतिमुक्त की दर्शनेच्छा देख कर भगवान गौतम ने उससे कहा—'वत्स ! जैसे तेरी आत्मा को सुख हो।'

भगवान गौतम से स्वीकृति मिल जाने के अनन्तर अतिमुक्त कुमार भगवान गौतम के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों में पहुंच जाते है और भगवान को विधिपूर्वक दाहिनी ओर से आरंभ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, वन्दना, नमस्कार करते है।

भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों में उपस्थित होकर भगवान के पास बैठकर गमनागमन सम्बन्धी दोषों के लिये प्रतिक्रमण करके सदोष तथा निर्दोष आहार का विचार करते हैं। तदनन्तर भगवान को भोजन दिखलाते है। संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करते हैं।

व्याख्या—बाल-क्रीड़ा में लगे हुए अतिमुक्त कुमार का भगवान गौतम को देखकर उनकी ओर झुकना, सेवा में आना, उनसे विनयपूर्वक वार्तालाप करना, आहार का निमन्त्रण देकर उनको अपने घर ले जाना आहार दिलवाने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हो जाना, ये सब वर्णन उनके पूर्वोपार्जित शुभ कर्म-तथा क्षयोपशम भाव को अभिव्यक्त कर रहा है। अन्यथा इतनी छोटी अवस्था के बालक में इस प्रकार की विनीतता का होना और एक अपरिचित महात्मा को अंगुली से पकड़ कर अपने घर ले जाकर भिक्षा दिलाना बड़ा कठिन कार्य है।

बालक के अच्छे संस्कारों का सारा दायित्व माता पर रहा करता है, **माता यदि अच्छे संस्कारों** वाली है तो उसकी संतति उन संस्कारों से **अवश्य प्रभावित होती है। छोटी अवस्था के बच्चों में जो** विनयशीलता एवं साधु-सन्तों को देखकर नतमस्तक होकर उनके पात्र में कुछ डालने की जो भावना दृष्टिगोचर होती है, उसका सारा श्रेय माता को ही होता है। भारतीय संस्कृति में तो माता को बच्चे का सबसे पहला गुरु माना गया है। मातृ-शक्ति की लोकोपकारिता को शब्दों की सीमित रेखाओं में बांधा नहीं जा सकता, वह असीम है।

राजकुमार अतिमुक्त की माता श्रीदेवी नारी-जगत् में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनकी धर्म-श्रद्धा, गुरु-भक्ति तथा अतिथिजनों के प्रति सेवा-भावना अनुपम है, विलक्षण है। राज्यश्री का उसे अहंकार नहीं था, वह सदा विनम्र भाव से रहा करती थी, साधु-सन्तों को देखकर तो उसका मानस मोर की भांति नाच उठता था। यही कारण है कि जब उसने अपने प्रियपुत्र अतिमुक्त कुमार के साथ आते हुए भगवान गौतम को देखा तो उसका मानस पुलकित हो उठा, उसे अवर्णनीय हर्षानुभूति हुई, बड़ी प्रसन्नता से वह अपने आसन से उठी और भगवान गौतम के चरणों में उपस्थित होकर सादर वन्दना नमस्कारादि के द्वारा उनका अभिनन्दन किया। अन्त में अशनादि चारों प्रकार का शुद्ध आहार देकर अपने आपको कृतकृत्य किया।

प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि बालक अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम से तीन प्रश्न किये थे। वे प्रश्न हैं—आप कौन हैं? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं? आप कहां पर रहते है? प्रस्तुत सूत्र में इन तीनों प्रश्नों का उत्तर भी दिया गया है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है। **श्रमण निर्ग्रन्थ ईरियासमित** और **ब्रह्मचारी** ये चारो शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक हैं।

तपस्वी अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करनेवाले महापुरुष **श्रमण** कहलाते है।

जो परिग्रह से रहित हैं अथवा जिनमें राग द्वेष की ग्रन्थि न हो वे **निर्ग्रन्थ** हैं।

ईरियागमन में जो समिति-विवेक से काम लेता है, जो आगे देखकर तथा सावधानी से चलता है, उसका नाम **ईरियासमित** है। ब्रह्मचर्य नामक असिधारा व्रत के परिपालक साधक को **ब्रह्मचारी** कहते हैं।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान गौतम ने राजकुमार अतिमुक्त से कहा—'वत्स! आज मेरा बेले का पारणा है, पारणे के निमित्त मैं इस नगर के सम्पन्न, साधारण और मध्यम परिवारों में आहार के लिये भ्रमण कर रहा हूं।

तीसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान गौतम राजकुमार से कहने लगे—'हे भद्र! मेरे गुरुदेव भगवान महावीर हैं, वे ही मेरे धर्माचार्य हैं, धर्मदाता गुरु हैं, धर्म के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार हैं, वर्तमान युग को धर्म का व्यवस्थित और समाहित रूप बतलानेवाले हैं, वे ही मोक्ष-प्राप्ति की कामना

लेकर संयम-साधना के महापथ पर चल रहे हैं, वे पोलासपुर नगर के बाहिर श्रीवन उद्यान में विराज मान हैं। इन्हीं के पवित्र चरणों में मैं निवास करता हूं।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में गौतम ने श्रमण भगवान महावीर का परिचय देते हुए अपनी अनुपम गुरु-भक्ति को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर दिया है। अतिमुक्त के पूछने पर वे कह सकते थे कि हम श्रीवन नामक उद्यान में रहते हैं, पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा। उन्होंने सर्वप्रथम अपने आराध्य गुरुदेव का स्मरण किया और उनके पास अपना निवास बतलाया है। इससे गौतम स्वामी की उच्चतम गुरु-निष्ठा का सहज में ही बोध हो जाता है।

"ईरियासमिया जाव बंभयारी"—यहां का **जाव** पद **भासासमिया, एसणासमिया, आयाणभंड-मत्तनिक्खेवणासमिया, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिया, मणसमिया, वयसमिया, कायसमिया। मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्तिन्दिया गुत्त**—इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ पीछे लिखा जा चुका है

"उच्चनीय जाव अडामो"—यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित अवशिष्ट पदों का संकेत पीछे पृष्ठ ३३९ पर कर दिया गया है।

"जा णं"—का अर्थ है—येन—जिससे।

"गोयमं अंगुलीए गेण्हइ"—का अर्थ है—भगवान गौतम को अंगुली से पकड़ लेता है। इस पाठ से यह स्पष्ट है कि भगवान गौतम ने राजकुमार की अंगुली नहीं पकड़ी, प्रस्तुत राजकुमार ने भगवान गौतम की अंगुली पकड़ी है। इसके अतिरिक्त इस वर्णन से यह भी स्पष्ट है कि अतिमुक्त कुमार के द्वारा अंगुली पकड़ने पर न गौतमस्वामी ने उसका निषेध किया और न ही गौतम स्वामी के इस आचरण पर भगवान महावीर ने उनको (गौतम स्वामी को) किसी प्रकार का कोई उपालंभ दिया। इससे उत्सर्ग और अपवाद ये दोनों ही मार्ग शास्त्र-सम्मत हैं।

अंगुली को पकड़कर चलने से अतिमुक्त कुमार की अवस्था अत्यन्त छोटी प्रमाणित होती है, क्योंकि इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रायः छोटी आयु के बालकों में ही पाई जाती है, वे ही अंगुली पकड़ कर साथ-साथ चला करते हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान गौतम ने अतिमुक्त कुमार से अपनी अंगुली नहीं छुड़ाई, इसका यही कारण प्रतीत होता है कि वे चार ज्ञान के धारक थे परिणाम स्वरूप वे जानते थे कि मेरी अंगुली पकड़नेवाला अतिमुक्त कुमार साधारण बालक नहीं है। यह तो चरम शरीरी तरणहार जीव है। इसने भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होकर इसी जन्म में मोक्ष को प्राप्त कर लेना है, अतः इसने जो मेरी अंगुली पकड़ी है, यह इसे कभी छोड़ेगा नहीं। एक बार अंगुली पकड़ कर उसे जो सदैव पकड़े रखे; ऐसे पुण्यात्मा तरणहार बालक से अंगुलि छुड़ा भी कौन सकता है?

"हट्ठ तुट्ठ जाव आसणाओ"— यहां पठित **जाव** पद **चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमण-**

ल्लिया, हरिसवसविसप्पमाणहियया खिप्पामेव"- इन अवशिष्ट पदों का संसूचक है। इन पदों का अर्थ पीछे पृष्ठ १०० पर किया जा चुका है।

"**विउलेणं-असण-पाण-खादिम-सादिमेण**"—यहां पठित **विपुल** शब्द के अनेकों अर्थ पाए जाते हैं— प्रभूत, प्रचुर, विस्तीर्ण, विशाल, उत्तम, श्रेष्ठ आदि। प्रस्तुत में "उत्तम", इस अर्थ को ग्रहण करना चाहिए। यदि विपुल का अर्थ प्रचुर ही कर दिया जाये तो यह प्रस्तुत में संगत नहीं बैठता, क्योंकि साधु-धर्म के विधि-विधान के अनुसार आवश्यकता से अधिक भोजन को साधु-ग्रहण नहीं कर सकता फिर भगवान गौतम प्रचुर भोजन कैसे ले सकते थे ?

दूसरी बात, एक ही घर से प्रचुर भोजन लेना अशास्त्रीय है। दाता के भाव चाहे कितने भी उदार हों तथा वह कितना भी अधिक आहार पानी देने के लिये प्रस्तुत हो, परन्तु सयम-शील साधु अपनी साधुमर्यादा के अनुसार ही अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही ले सकता है अधिक नहीं ।

उत्तम शब्द के भी "सब से अच्छा, श्रेष्ठ, प्रधान, सब से बड़ा आदि अनेकों अर्थ पाए जाते हैं। पर प्रस्तुत में उत्तम शब्द गौतम स्वामी के पारणे के लिये उपयुक्त उसका तथा स्वास्थ्य-वर्धक, श्रेष्ठ, इस अर्थ का बोधक है।

"**पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ**"— यहां का **जाव** पद '**पडिलाभित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता**" इन पदों का परिचायक है। "**धम्मायरिए धम्मोवतेसते**" का अर्थ है— धर्माचार्य, धर्मोपदेशक। आचार्य शब्द "गुरु, शिक्षक, किसी विषय का असाधारण पण्डित, पूज्यपुरुष, आदि अर्थों का बोधक है। धर्म की शिक्षा देनेवाले या धर्म के असाधारण पण्डित, धर्माचार्य कहलाते हैं। जो धर्म का उपदेश करता है, जनता को धर्म का स्वरूप समझाता है, उसे धर्मोपदेशक कहते हैं।

"**धम्मोवतेसते**"— **धर्मोपदेशकः** यह पैशाची भाषा का प्रयोग है। इस में जो दकार को तकार का आदेश कर रखा है वह पैशाची भाषा के नियमानुसान किया गया है । सिद्धहैमशब्दानुशासन के अष्टमाध्याय के चतुर्थ पाद का ३०७ वां सूत्र इस नियम का इस तरह वर्णन करता है—

तदोस्तः—८। ४।३०७। पैशाच्यां तकार-दकारयोः तो भवति । तस्य—भगवती,पव्वती, सतं। दस्य-मतन-परवसो, सतनं,तामोतरो,पतेसो, वतनकं। होतु, रमतु। तकारस्यापि तकारविधानमादेशान्तरबाधनार्थम्, तेन पताका, वेतिसो, इत्याद्यपि सिद्धं भवति।

इस का अर्थ है—पैशाची भाषा में तकार और दकार को तकार हो जाता है। प्रस्तुत में **धर्मोपदेशक** यह शब्द है, जो प्राकृत भाषा के नियमानुसार **धम्मोवदेसते** उस रूप में बदल जाता है, परन्तु पैशाची भाषा के विधानानुसार जब दकार को तकार हो गया तब इस का **धम्मोवतेसते** ऐसा रूप बनता है।

"**आदिकरे जाव संपाविउकामे**"— यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित पदों का उल्लेख पीछे पृष्ठ ४७ पर कर दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि वहां पर ये पद षष्ठ्यन्त है। जबकि प्रस्तुत में **प्रथमान्त। इस के अतिरिक्त अन्य कोई अन्तर नहीं है। "संपाविउकामे"**— का अर्थ है— मोक्ष को

प्राप्त करने की कामना रखने वाले। भगवान गौतम ने भगवान महावीर का जो यह विशेषण दिया है—इस से वे ये प्रकट करना चाहते हैं कि भगवान महावीर चार अघाती कर्मों के क्षय के लिये प्रयत्नशील हैं। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु ये चार अघाति कर्म है। तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणोय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म है। भगवान महावीर ने इन घातिकर्मों को पहले ही नष्ट कर रखा है और शेष अघाति कर्मों को नष्ट करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। घाति कर्मों के क्षय से जीवन-मुक्ति का सुख तो इस आत्मा को प्राप्त हो जाता है, परन्तु विदेह-मुक्ति अर्थात निर्वाणपद की प्राप्ति तो आघाति कर्मों के नष्ट होने पर ही हो सकती है। इसके लिये उनके क्षय की इच्छा अस्वाभाविक नहीं है। ध्यान रहे कि यह कामना निदान रूप नहीं होती क्योंकि निदानकर्म सकषाय योग से होता है और यह कामना कषाय-रहित अयोगी बनने के लिये होती, है। अतः इस कामना को निदान नहीं कह सकते।

"संजमेणं जाव अप्पाणं"— यहां का **जाव** पद **नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता"**— आदि पदों का संसूचक है।

"उवागए जाव पडिवंसेइ"—यहां पठित **जाव** पद **समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणे आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाणं"** इन पदों का संसूचक हैं। इन पदों का अर्थ प्रस्तुत सूत्र के मूलार्थ में दिया जा चुका है।

गौतम स्वामी का आहार लाकर भगवान महावीर स्वामी को दिखलाना और उनकी आज्ञा मिलने पर खाना इत्यादि जितना भी वर्णन आगमों में पढ़ने को मिलता है, वह केवल लौकिक मर्यादार्थ ही समझना चाहिए। सन्त-मर्यादा का एक विधान है कि शिष्य आहार-पानी आदि जो कुछ भी लाए उसको गुरुजनों या वृद्धजनों को दिखलाए विना और उनकी आज्ञा बिना अपने काम में न लावे। केवल इस विधान के परिपालनार्थ ही अनगार गौतम भगवान महावीर के पारणे के निमित्त लाया आहार दिखलाते है। अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि भगवान महावीर स्वयं सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, संसार का कोई तत्त्व उनसे अज्ञात नहीं है, फिर गौतम स्वामी द्वारा लाया आहार उनके ज्ञान प्रकाश से कैसे अछूता रह सकता है?

दूसरी बात गौतम स्वामी भी चार ज्ञान के धारक है, वे अपने ज्ञानातिगम से लोकवर्ती सभी रूपी पदार्थों को जानते हैं। ऐसी दशा में आहार दिखलाने का क्या प्रयोजन? उत्तर स्पष्ट है, कोई नहीं। तथापि जो आहार दिखलाया गया है, वह केवल लौकिक मर्यादा को स्थिर रखने के लिये दिखलाया गया है, ताकि छद्मस्थ साधुओं में इस विनयमूलक व्यवहार का उच्छेद न हो जाये।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर स्वामी के चरणों में उपस्थित हो कर उनकी सेवा में लग जाते हैं और श्री गौतम पोलासपुर नगर मे पारणे के निमित्त लाए आहार को भगवान को दिखला कर आत्मभावना में संलग्न हो जाते है। इसके अनन्तर क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं।—

मूल—तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ,

तुट्ठ० जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

छाया— ततः श्रमणो भगवान् महावीरः अतिमुक्तस्य कुमारस्य तस्याश्च धर्मकथा। ततः सोऽतिमुक्तः कुमारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट० यन्नवरं देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि। यथासुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धं कुरु !

पदार्थ— **तए णं**—उस के अनन्तर; **समणे भगवं महावीरे**—श्रमण भगवान महावीर ने; **अइमुत्तस्स कुमारस्स**—अतिमुक्त कुमार को; **य**—और; **तीसे**—उस महान परिषद जनता को; **धम्मकहा**—धर्मकथा सुनाई; **तए णं**—उस के बाद; **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार; **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान् महावीर के; **अंतिए धम्मं**—पास धर्म कथा को; **सोच्चा**—सुन कर; **निसम्म**—उस पर विचार कर; **हट्ठ तुट्ठ**—अत्यन्त प्रसन्न एव संतुष्ट हुआ; **ज नवरं**—जो विशेष है वह यह है कि अतिमुक्त कुमार ने भगवान से कहा; **देवाणुप्पिया !**—भगवन् **अम्मापियरो**—माता पिता को; **आपुच्छामि**—पूछता हूं; **तए णं अहं**—उस के अनन्तर मैं; **देवाणुप्पियाणं**—देववन्द्य भगवान के; **अंतिए**—आपके पास; **जाव**—यावत्; **पव्वयामि**—दीक्षित हो जाऊंगा; भगवान बोले;— **देवाणुप्पिया !**—हे भद्र !; **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो; **मा पडिबंधं**—मत प्रमाद; **करेह**—करो।

मूलार्थ—उस के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार तथा पास बैठे विशाल जन-समूह को धर्मकथा सुनाई। श्रमण भगवान महावीर स्वामी की धर्मकथा सुनकर अतिमुक्त कुमार को बड़ा हर्ष एवं सन्तोष प्राप्त हुआ, तब उसने भगवान से निवेदन किया कि भगवन् ! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आप के चरणों में दीक्षा अंगीकार करूंगा। अतिमुक्त कुमार की विनती सुनकर भगवान बोले-भद्र! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, पर इस शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।

व्याख्या— प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान महावीर के धर्मोपदेश का अतिमुक्त कुमार के हृदय पर पड़नेवाले प्रभाव का तथा उसके द्वारा ज्ञानगर्भित वैराग्य से प्रेरित होकर माता पिता से पूछ कर भगवान महावीर के पास दीक्षित होने की भावना को व्यक्त करना, आदि बातों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से यह प्रमाणित हो जाता है कि धर्म में दीक्षित होने के लिये किसी अवस्था विशेष को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिस प्राणी को कंचन कामिनी से जब भी वैराग्य उत्पन्न हो जाए; वही समय उसको धर्म में उपयुक्त करने का माना गया है। वास्तव में देखा जाये तो संसार की मोह-ममता के त्याग में मुख्य स्थान वैराग्य का है, किसी अवस्था विशेष का नहीं। अवस्था तो बालक युवा और वृद्ध इन में से कोई भी हो सकती है इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, पर वैराग्य का होना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र में वर्णित राजकुमार अतिमुक्त अवस्था की दृष्टि से तो बहुत छोटे दिखाई देते

हैं, पर वैराग्य को जब देखते हैं तो वृद्ध पुरुष भी इन की समानता नहीं कर सकते। बहुत लोग जीवन भर साधु-सन्तों के व्याख्यान सुनते हैं, पर आचार की दृष्टि से जीवन भर वे खाली ही रहते हैं, व्याख्यान में सुनी एक भी शिक्षा उन के जीवन का स्पर्श नहीं कर पाती। इसके विपरीत अतिमुक्त कुमार के जीवन को देख लीजिये, एक धर्म-व्याख्यान सुनकर ही वैरागी बन गए, राज्य-वैभव का मोह छोड़ कर भगवान महावीर के चरणों में साधु बनने के लिये तैयार हो गए। इस से बढ़ कर महानता की और क्या बात हो सकती है?

प्रस्तुत सूत्र के अध्ययन करने से यह भी अवगत हो जाता है कि दीक्षार्थी को दीक्षित होने के लिये माता-पिता की आज्ञा लेना भी अनिवार्य है। बच्चे के जीवन की अवस्था का जितना बोध माता-पिता को होता है, उतना किसी अन्य को नहीं हो सकता। दीक्षा जैसे कठोर भीष्म व्रत को पालन करने की क्षमता बालक में है या नहीं, यह माता-पिता ही अच्छी तरह समझ सकते हैं, इसीलिये दीक्षार्थी को दीक्षित होने से पहले माता-पिता से दीक्षा के सम्बन्ध में आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए, ऐसा विधान निश्चित किया गया है।

दीक्षार्थी अतिमुक्त कुमार ने उत्सुकता व्यक्त करते हुए जो दीक्षाग्रहण के लिये भगवान महावीर से विनती की और इसका जो उन्होंने उत्तर दिया वह भी रहस्यपूर्ण है। भगवान् कहते हैं—"**अहासुहं देवाणुप्पिया !**"

सुख दो तरह के होते है— संसार-सुख और मोक्ष-सुख। इन दोनों सुखों के स्वरूप का विचार कर लेना चाहिये। इस मे कौन सा प्रसादान्त है और कौन सा विषादान्त है? कौन जीवन को कल्याणोन्मुख बनाता है और कौन उसे अधोमुखी करता है? इस तरह हानि-लाभ को निर्णय करने के अनन्तर ही मनुष्य को कोई दिशा निश्चित करनी चाहिए। भगवान के इस कथन में विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्णतया ध्यान रखा गया है। वस्तुतः जो बात विचार-पूर्ण और अपनी इच्छा से ग्रहण की जाती है उस के अनुसरण में विचार-शील को प्रायः स्खलित होने का अवसर कभी नहीं मिलता, इसलिये जहां कहीं भी ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ, वहां पर ही भगवान ने उसको आज्ञा देने से पहले उस पर स्वयं विचार करने की अनुमति प्रदर्शित की है, क्योंकि परिस्थिति के अनुसार उपस्थित विषय का पूरा-पूरा अध्ययन कर लेने के बाद जो विचार निश्चित होता है। वह चिरस्थायी और सुखप्रद होता है।

"**अन्तिए जाव पव्वयामि**"— यहां पठित **जाव** पद "**मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं**" इन पदों का परिचायक है। अर्थ स्पष्ट ही है। अतिमुक्त की विनती के अनन्तर भगवान के "जैसा तुम्हें सुख हो, पर विलंब मत करो" ऐसा कहने पर अतिमुक्त कुमार ने क्या कुछ किया? अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागते जाव पव्वइत्तए। अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

बालेसि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धेसि तुमं पुत्ता ! किण्णं तुमं जाणासि धम्मं ? तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि, तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि, तं चेव जाणामि।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणासि जाव तं चेव न जाणासि ? तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्समरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मताओ ! काहे वा, कहिं वा, कहं वा, केच्चिरेण वा ? न जाणामि अम्मताओ ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मताओ ! जहा सएहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जंति, एवं खलु अहं अम्मताओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि, तं चेव जाणामि।

इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए। तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमपि रायसिरिं पासित्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयण-मणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स निक्खमणं जाव सामाइ-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूइं वासाइं सामण्णपरियाओ। गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।

छाया—ततः सोऽतिमुक्तः कुमारो यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैवोपागतो यावत् प्रव्रजितुम्। अतिमुक्तं कुमारमम्बापितरौ एवमवादिष्टाम्—बालोऽसि तावत्त्वं पुत्र ! असंबुद्धोऽसि त्वं पुत्र ! किं त्वं जानासि धर्मम् ! ततः सोऽतिमुक्तः कुमारोऽम्बापितरौ एवमवादीत्—

एवं खलु अम्बातातौ ! यच्चैव जानामि, तच्चैव न जानामि, यच्चैव न जानामि, तच्चैव जानामि। ततः तमतिमुक्तं कुमारमम्बापितरौ एवमवादिष्टाम्—कथं त्वं पुत्र ! यच्चैव जानासि यावत् तच्चैव न जानासि ?

ततः सोऽतिमुक्तः कुमारः, अम्बापितरौ एवमवादीत्—जानाम्यहमम्बातातौ ! यथा जातेन अवश्यं मर्तव्यं, न जानामि अहमम्बातातौ ! कदा वा, कुत्र वा, कथं वा, कियच्चिरेण वा ?

न जानामि अहं अम्बातातौ ! कैः कर्मायतनैः जीवाः नैरयिकतिर्यग्योनिकमनुष्यदेवेषु उपपद्यन्ते ? जानाम्यम्बातातौ ! यथा स्वकैः कर्मायतनैः नैरयिक यावद् उपपद्यन्ते। एवं खल्वहमम्बातातौ ! यच्चैव जानामि, तच्चैव न जानामि। यच्चैव न जानामि तच्चैव जानामि।

इच्छाम्यम्बातातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातो यावत् प्रव्रजितुम्। ततस्तमतिमुक्तं कुमारमम्बापितरौ यदा नो शक्नुतः बहुभिराख्यापनाभिर्यावत्, तदिच्छावस्ते जात ! एकदिवसमपि राज्यश्रियं द्रष्टुम्। ततः

सोऽतिमुक्तः कुमारो अम्बापितृवचनमनुवर्तयन् तूष्णीकः संतिष्ठते। अभिषेको यथा महाबलस्य, निष्क्रमणं यावत् सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते। बहूनि वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायः, गुणरत्नं यावत् विपुले सिद्धः।

पदार्थ—**तए णं**—उसके अनन्तर; **से अइमुत्ते कुमारे**—वह अतिमुक्त कुमार; **जेणेव अम्मापियरो**—जहां पर माता-पिता थे; **तेणेव उवागए**—वहां पर चले गए; **जाव**—यावत्, माता-पिता से; **पव्वइत्तए**—दीक्षित होने के लिये निवेदन किया, यह सुन कर; **अम्मापियरो**—माता-पिता **अइमुत्तं कुमारं**—अतिमुक्त कुमार को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगे—; **ताव पुत्ता! तुमं**—हे पुत्र तुम अभी; **बालेसि**—बालक हो; **तुमं पुत्ता! असंबुद्धेसि**—हे पुत्र! तुम अभी असंबुद्ध हो। तुझे अभी धर्मतत्त्व का बोध नहीं है; **तुमं धम्मं किं जाणासि?**—तुम धर्म को अभी क्या जानते हो?

तए णं से अइमुत्ते कुमारे—उस के बाद वह अतिमुक्त कुमार; **अम्मा पियरो एवं वयासी**—माता-पिता को इस प्रकार कहने लगा; **अम्मताओ!**—हे मातापिता!; **एवं, खलु**—इस प्रकार, निश्चयार्थक है, **अहं जं चेव जाणामि**—मैं जिस को जानता हूं, **तं चेव न जाणामि**—उसी को नहीं जानता हूं, **जं चेव न जाणामि**—जिस को नहीं जानता हूं; **तं चेव जाणामि**—उस को जानता हूँ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं—उसके बाद, उस अति-मुक्त कुमार को; **अम्मापियरो एवं वयासी**—माता पिता, इस प्रकार कहने लगे; **पुत्ता! तुम कहं णं**—हे पुत्र! तू कैसे; **जं चेव जाणासि?**—जिस को जानता है; **तं चेव न जाणासि**—उसी को नहीं जानता है, **जं चेव न जाणासि**—जिस को नहीं जानता है; **तं चेव जाणासि**—उसी को जानता है अर्थात् जिसको तू जानता है उसी को नहीं जानता, जिसको तू नहीं जानता है उसी को जानता है, यह क्या बात हुई?

तए णं, से अइमुत्ते कुमारे,—उसके बाद, वह अतिमुक्त कुमार; **अम्मापियरो**—माता पिता को; **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा; **अम्मताओ**—हे माता-पिता! **अहं जाणामि**—मैं जानता हूं; **जहा**—जैसे; **जाएणं**—जो पैदा हुआ है उसे; **अवस्सं मरियव्वं**—अवश्य मरना पड़ेगा, **अम्मताओ!, अहं न जाणामि**—हे माता पिता! मैं नहीं जानता हूं; **काहे वा**—कब किस समय अथवा **कहिं वा**—कहां पर, किस स्थान पर अथवा; **कहं वा**—कैसे? किस प्रकार, अथवा; **केच्चिरेण वा**—कितने समय के बाद मरूंगा; **अहं न जाणामि**—मैं नहीं जानता हूं; **जीवा, केहिं, कम्मायणेहिं**—जीव किन, कर्मायतनों अर्थात् जीव किन कर्मबन्ध के कारणों से; **नेरइयतिरिक्खजोणिय**—नारकियों में, पशुयोनि में; **मणुस्स**—मनुष्यों में तथा; **देवेसु**—देवयोनियों में; **उववज्जंति**—उत्पन्न होते हैं; **अम्मताओ! जाणामि णं**—हे माता-पिता जी! मैं जानता हूं कि; **जहा सएहिं कम्मायणेहिं**—जिस प्रकार, अपने कर्मायतनों—कर्मबन्ध के कारणों से; **नेरइय जाव उववज्जंति**—जीव नारकियों, यावत्, पशुओं, मनुष्यों, और देवों में उत्पन्न होते हैं; **अम्मताओ!**—हे माता पिता; **एवं खलु अहं**—इस प्रकार, मैं निश्चय ही; **जं चेव जाणामि**—जिसे जानता हूं; **तं चेव न जाणामि**—उसे ही नहीं जानता हूं; **जं चेव न जाणामि**—जिसको नहीं जानता हूं; **तं चेव जाणामि**—उसे ही जानता हूं; **अम्मताओ!**—हे माता पिता;

तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए—आप लोगों द्वारा आज्ञा प्राप्त करने पर; **जाव**—यावत्; **पव्वइत्तए**—दीक्षा ग्रहण करना; **इच्छामि णं**—चाहता हूं।

तए णं—उसके अनन्तर; **तं अइमुत्तं कुमारं**—उस अतिमुक्त कुमार को; **अम्मापियरो**—माता पिता; **जाहे बहूहिं**—जब अनेक; **आघवणाहिं**—व्याख्यानों—मृदु-कठोर वचनों द्वारा; **जाव**—यावत संयम लेने के विचार से रोकने में; **नो संचाएंति**—समर्थ नहीं हुए तब निराश होकर माता पिता ने अतिमुक्त कुमार से कहा; **तं**—यदि तेरी दीक्षित होने की ही इच्छा है तो; **जाया**—हे पुत्र! **एगदिवसमवि**—एक दिन की ही; **ते रायसिरिं**—तेरी राज्य-शोभा को, तेरी राज्यश्री को; **पासित्तए इच्छामो**—देखना चाहते हैं।

तए णं, से अइमुत्ते कुमारे—उसके बाद वह अतिमुक्त कुमार; **अम्मापिउवयण-मणुयत्तमाणो**—माता-पिता के वचन को मानते हुए; **तुसिणीए संचिट्ठइ**—मौन हो गए; **अभिसेओ**—राज्याभिषेक राज्य-सिंहासन पर बैठने का उत्सव; **जहा महाबलस्स**—जिस प्रकार महाबल कुमार का वर्णित हुआ है उसी प्रकार अतिमुक्त कुमार का भी समझ लेना; **निक्खमणं**—दीक्षाग्रहण के निमित्त अर्थात् दीक्षा-यात्रा महाबल की भांति जान लेनी; **जाव**—यावत—भगवान महावीर के पास दीक्षित हो जाते है; तदनन्तर स्थविर सन्तों के पास; **सामाइयमाइयाइं**—सामायिकादि (आचारांग सूत्रादि) **एक्कारस**—ग्यारह, **अंगाइं**—अंगों का; **अहिज्जइ**—अध्ययन करता है; **बहूइं वासाइं**—बहुत वर्षों तक; **सामण्ण परियाओ**—श्रामण्य—साधुवृत्ति का पालन कर; **गुणरयणं**—"गुण-रत्न" नामक तप की आराधना करके; **जाव**—यावत्; **विपुले**—विपुल गिरि नामके पर्वत पर; **सिद्धे**—सिद्ध पद पाया।

मूलार्थ—उसके अनन्तर अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास आ गए और उन्होंने उनसे भगवान महावीर के पास दीक्षित होने का विचार व्यक्त किया तथा दीक्षा लेने की आज्ञा के लिये उनसे अनुरोध किया। पुत्र दीक्षित होना चाहता है, यह जानकर माता-पिता अपने पुत्र अतिमुक्त से इस प्रकार कहने लगे—

पुत्र! तुम अभी बालक हो! तुम्हें अभी धर्म के तत्त्व का बोध नहीं है, तुम धर्म को क्या समझ सकते हो? अतः दीक्षित होने का संकल्प हृदय से निकाल दो।

माता-पिता की बात सुनकर अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता से पुनः निवेदन करने लगे—'माता-पिता जी! जिसे मैं जानता हूं उसे नहीं जानता तथा जिसे मैं नहीं जानता उसे जानता हूं।'

अपने पुत्र की बात सुनकर माता-पिता उससे फिर कहने लगे—'पुत्र! यह तुम क्या कह रहे हो? जिस को तुम जानते हो उसे नहीं जानते और जिसे तुम नहीं जानते उसे जानते हो, ज़रा यह स्पष्ट करो कि इसका क्या अभिप्राय है?'

अपने माता-पिता का प्रश्न सुनकर अतिमुक्त कुमार उनसे निवेदन करने लगे—'माता-पिता जी ! मैं जानता हूं कि जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा, परन्तु मैं यह नहीं जानता हूं कि कब, किस समय, कहां, किस स्थान पर, कैसे, किस प्रकार तथा कितने समय के अनन्तर प्राणान्त होगा ।'

'माता-पिता जी ! मैं यह नहीं जानता कि कर्मबन्धन के किन कारणों से जीव नारकी, पशु, मनुष्य एवं देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, परन्तु मैं यह जानता हूं कि जीव अपने-अपने कर्मों के कारण नरकादि गतियों में पैदा होते है, अतः माता-पिता जी ! मैं कहता हूं कि जिसे मैं जानता हूं उसे नहीं जानता और जिसे नहीं जानता उसे जानता हूं ।' 'माता-पिता जी ! मैं चाहता हूं कि आप मुझे आज्ञा प्रदान करें ताकि मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षित हो जाऊं ।'

उसके अनन्तर अतिमुक्त कुमार के माता-पिता उसे अनेकविध कठोर और मृदु वचनों से समझाने का प्रयास करने लगे, परन्तु जब वे उसे प्रव्रजित होने से रोक न सके—रोकने में समर्थ न हो सके तब उन्होंने कहा कि 'पुत्र ! हम केवल एक दिन की ही तेरी राज्यश्री को देखने की इच्छा रखते हैं ।' तब अतिमुक्तकुमार माता-पिता के उक्त वचनों का अनुसरण करता हुआ कुछ भी उत्तर न देकर बैठ गया ।

अतिमुक्त कुमार का राज्याभिषेक और निष्क्रमण आदि शेष वृत्तान्त महाबल कुमार के समान जानना चाहिए । महाबलकुमार की भांति दीक्षित होकर अतिमुक्त मुनि ने आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, गुणरत्न नामक तप किया, बहुत वर्षों तक साधुवृत्तिका पालन करके यावत् विपुलगिरि पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त करके सिद्ध पद उपलब्ध किया ।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा उनके माता-पिता इन सब के मध्य में हुए प्रश्नोत्तरों का बड़ा सुन्दर विवरण प्राप्त होता है । अतिमुक्त कुमार ने जब अपने माता-पिता से एक ही विषय को जानने और न जानने की बात कही तो माता-पिता का आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक ही था । इसी कारण माता-पिता ने अपने पुत्र को उसका स्पष्टीकरण करने का आदेश दिया ।

राजकुमार अतिमुक्त से जब यह कहा गया कि तू अभी बच्चा है, तुझे धर्म का बोध नहीं, तब उसने अपने माता-पिता के सन्मुख दो बातें रखीं वह कहने लगा—

१. मैं जिसे जानता हूं, उसे नहीं जानता।

२. जिसे नहीं जानता, उसे जानता हूं।

अपने प्रिय पुत्र राजकुमार अतिमुक्त की ये दो बातें सुनकर माता-पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—'जिसे जान लिया गया है, उसे न जानने का क्या मतलब ? और जिसे नहीं जाना, उसे जानने का क्या अर्थ ? जब ज्ञान अज्ञान और अज्ञान ज्ञान नहीं कहलाता तो अतिमुक्त कुमार के ऐसा कहने का क्या प्रयोजन हो सकता है ?' अपने सन्देह को दूर करने के लिये अन्त में उन्होंने अपने पुत्र अतिमुक्त कुमार से कहा—पुत्र ! अपने वक्तव्य को कुछ स्पष्ट करो। तुम्हारी यह प्रहेलिका हमारी समझ में नहीं आई।

राजकुमार अतिमुक्त ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा कि धर्म के सम्बन्ध में मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूं ऐसी बात नहीं है, धर्म का मुझे भी कुछ ज्ञान है परन्तु धर्म की पूर्ण परिभाषा मैं नहीं जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ। मुझे नन्हा सा बालक समझ कर ऐसा नहीं जान लेना चाहिए कि धर्म-तत्त्व से मै सर्वथा अपरिचित हूँ। धर्म के सम्बन्ध में मुझे कुछ जानकारी है ? यह भी निवेदन किये देता हूं कि मुझे इस बात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन सम्बन्ध है। जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है। यह मै अच्छी तरह समझता हूं, पर मुझे यह नहीं पता कि कब ? कहाँ ? और कैसे ? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पड़ेगा ?

अपनी बात को चालू रखते हुए अतिमुक्त कुमार फिर कहने लगे -मैं यह नहीं समझता कि जीव बिना कर्मबन्ध के कारणों से चारों गतियों (नरक, मनुष्य, तिर्यञ्च, देव) में जन्म लेते हैं, परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूं कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियों में पैदा होता है।

अल्पज्ञ और सर्वज्ञ में क्या अन्तर है ? इस प्रश्न का समाधान अतिमुक्त कुमार के कथानक में स्पष्ट रूप से प्राप्त हो जाता है। सर्वज्ञ को तो वस्तु के समस्त पर्यायों का सम्पूर्ण रूप से करामलकवत् ज्ञान होता है और अल्पज्ञ व्यक्ति तो मात्र कार्य-कारण-भाव के नियमानुसार पदार्थ को सामान्य रूप से ही जान सकता है। अल्पज्ञ को—जन्म के बाद मृत्यु के होने का ज्ञान अनुमान प्रमाण के द्वारा अवश्यंभावी है—यह सामान्य ज्ञान ही होता है, परन्तु मृत्यु कब और किस स्थान में तथा किस प्रकार होगी, यह उसके ज्ञान का विषय नहीं है, इसलिये वह उससे अज्ञात ही रहता है।

इसी प्रकार कार्य-कारण-भाव के नियम को लेकर नरक, 'तिर्यञ्च, मनुष्य और देवयोनि में स्वोपार्जित उच्चावच कर्मों का फल रूप होने से छद्मस्थ जीव इतना ही समझ सकता है कि इन योनियों का प्राप्त होना उसके किसी शुभाशुभ कर्म का परिणाम है, परन्तु किस प्रकार के कर्मबंध से किस प्रकार की योनि प्राप्त होती है तथा प्रत्येक योनि में भी जो तारतम्य दिखाई देता है उसका कारण भूत कौन-सा कर्म है ? इस प्रकार का विशेष ज्ञान उसको नहीं होता। इसके विपरीत सर्वज्ञ आत्मा को इन सब बातों का यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष ज्ञान होता है,क्योंकि उसका जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष एवं सम्पूर्ण

रूप से लोकालोक व्यापी होता है, तथा छद्मस्थ का परोक्ष विषयाधीन होने से एक देशी हुआ करता है। इसी अभिप्राय से अतिमुक्त कुमार ने कहा है कि 'मैं जानता भी हूं और नहीं भी जानता हूं।'

अतिमुक्त कुमार के माता-पिता ने अपने पुत्र को धर्म-तत्त्व से अपरिचित जानकर जो उसके संयम विषयक प्रस्ताव का विरोध किया था, अतिमुक्त कुमार ने अपनी ज्ञान-चर्चा के द्वारा उसको समाप्त कर दिया। उसने बोधपूर्ण भाषा में अपनी बात कहकर माता-पिता को यह बतला दिया कि आप निश्चिन्त रहें और मुझे धर्म से सर्वथा अनभिज्ञ न समझें।

अतिमुक्त कुमार की ज्ञानमयी बातें सुनकर इनके माता-पिता का मन पूर्णतया समाहित हो गया, उनकी अन्तरात्मा को विश्वास हो गया कि अतिमुक्त कुमार को धर्म-तत्त्व का बोध है, यह उससे अपरिचित नहीं है और यह जो कुछ कहता है वह सब सत्य है, बुद्धि-संगत है। तथापि पुत्र की ममता के कारण उन्होंने दीक्षित होने का विचार छोडने के लिये बड़ा आग्रह किया, उसे मृदु और कठोर बातों से समझाने का प्रयत्न किया, पर अतिमुक्त कुमार को उसके विश्वास से विचलित नहीं किया जा सका। संयम के महापथ पर चलने की उसकी विचार धारा में कोई अन्तर नहीं आ पाया।

अतिमुक्त कुमार को बहुत ऊंच-नीच प्रकार से समझाया गया, कि वह दीक्षित होने के विचारों का परित्याग कर दे, इसके लिये पूरा प्रयत्न किया गया, परन्तु जब वह किसी भी तरह अपने पथ से पीछे हटने के लिये तैय्यार न हुआ तो विवश हो माता-पिता ने सानुरोध उससे कहा कि पुत्र ! यदि तू किसी भी तरह घर में रहने के लिये तैय्यार नहीं है तो कम से कम एक बात हमारी अवश्य मान ले। हमारी हार्दिक इच्छा है कि पोलासपुर के सिंहासन पर बिठला कर तेरा राज्याभिषेक किया जाये, यदि अधिक नहीं तो एक दिन के लिये राज्यशोभा दिखाकर हमारी कामना पूर्ण कर। माता-पिता की इस कामना के आगे अतिमुक्त कुमार को नतमस्तक होना पड़ा और उन्होंने एक दिन के लिये राज्य-शोभा दिखाने का प्रस्ताव मौन रूप से स्वीकार कर लिया।

अतिमुक्त कुमार की स्वीकृति हो जाने के अनन्तर माता-पिता ने बड़े समारोह के साथ अपने प्रिय पुत्र का राज्याभिषेक किया, उसे पोलासपुर के सिंहासन पर बिठलाया। माता-पिता को विश्वास था कि अतिमुक्त कुमार राजसिंहासन के मोह में फंस जायेगा, पर उनका विश्वास सत्य प्रमाणित नहीं हुआ। अतिमुक्त कुमार ने तो केवल अपने माता-पिता की कामना ही पूर्ण करनी थी, उसके पूर्ण होते ही अतिमुक्त कुमार राजसिंहासन छोड़कर भगवान महावीर के चरणों में पहुँच कर दीक्षित हो गये। इन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, गुणरत्न नामक तप किया, अन्त में विपुल गिरि पर्वत पर जा कर सिद्ध हो गये।

"उवागए जाव पव्वइए"—यहां पठित **जाव** पद अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास पहुँच कर उन से कहने लगे—माता-पिता जी ! आज मैंने भगवान महावीर की वाणी सुनी है, वाणी क्या थी सचमुच अमृत था, मैं तो आनन्द-विभोर हो गया। मेरी इच्छा है यदि आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो मैं भगवान के चरणों में दीक्षित हो जाऊं। इन भावों का परिचायक है।

"**बालेसि असंबुद्धेसि**"—का अर्थ है—तू बाल है, असंबुद्ध है। बाल का अर्थ है—छोटी अवस्था-वाला, जिसे तत्त्वों का अभी ज्ञान न हो उसे असंबुद्ध कहते हैं। **बाल** शब्द आयुगत स्वल्पता का तथा **असंबुद्ध** शब्द ज्ञान के अभाव का संसूचक है।

'**णं**'—यह अव्ययपद है। यह ननु (शंकावाची) इस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

"**जाणासि जाव तं चेव**"—यहां का **जाव** पद "**तं चेव न जाणासि जं चेव जाणासि**" इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ पदार्थ में किया गया है।

"**काहे वा, कहिं वा, कहं वा, केच्चिरेण वा,**" इन पदों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभय देव सूरि लिखते हैं—

"**काहे व त्ति, कस्यां वेलायां प्रभातादिकायां, कहिं व त्ति, क्व क्षेत्रे, कहं वत्ति, केन प्रकारेण कियच्चिरेण ? कियति कालेऽतिक्रान्ते इत्यर्थः**." अर्थात् **काहे** यह पद प्रभात, मध्याह्न या सायं आदि समयों मे से 'किस समय' इस अर्थ का बोधक है। **कहिं** यह पद 'कौन से स्थान पर' इस अर्थ का तथा **कहं** यह पद 'किस प्रकार किस दिशा मे' इस अर्थ का तथा '**कियच्चिरेण**' यह पद 'कितने समय के व्यतीत हो जाने पर' इस अर्थ के परिचायक हैं।

* **कम्मायथणेहिं**" का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—**कम्मायथणेहिं त्ति, कर्मणां—ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि बंधहेतव इत्यर्थः। पाठान्तरेण "कम्मावयणेहिं त्ति' तत्र कर्मा-पतनानि यैः कर्मापतति—आत्मनि संभवति तानि तथा।**" अर्थात् कर्म शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का संसूचक है और **आयतन** शब्द बंध-कारणों (जिन कारणो से कर्मों का बंध होता है) का परिचायक है। कहीं-कहीं **कम्मायथणेहिं** के स्थान पर **कम्मावयणेहिं** ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणो से कर्म आत्मसरोवर मे गिरते है, आत्म-प्रदेशों से सम्बन्धित होते है, उन्हें कर्मापतन कहते हैं।

"**नेरइय जाव उववज्जंति**"—यहां पठित **जाव** पद **तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेसु**—इन पदों का संसूचक है।

"**अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए**"—यहां पठित **जाव** पद 'आज्ञा प्राप्त होने पर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो जाऊंगा' इन भावों का बोधक है।

"**बहूहिं आघवणाहिं जाव तं इच्छामि**"—यहा पठित **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए अव-शिष्ट पाठ का बोधक है।

"**अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे**"—**अम्बापितृवचनम् अनुवर्तमानः मन्यमानः**—अर्थात् माता-पिता के वचनो को मानता हुआ।

"**अभिसेओ जहा महाबलस्स**"—यहां पठित **जहा** शब्द का अर्थ है जिस प्रकार। महाबल

* कर्मायतनैः कर्मबन्धकारणैः। शतक ११ उद्देशक ११

कुमार का वर्णन व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) में किया गया है। अतिमुक्त कुमार का निष्क्रमण, दीक्षा यात्रा-समारोह महाबल के समान सम्पन्न हुआ था, इसलिये सूत्रकार ने **"जहा महाबलस्स"** ये पद दिए हैं। इनका अर्थ है जिस प्रकार महाबल का निष्क्रमण हुआ था उसी प्रकार अतिमुक्त कुमार का भी समझ लेना चाहिये।

"निक्खमणं जाव सामाइयमाइयाइं"— यहाँ का जाव पद दीक्षा-यात्रा सम्पन्न होने के अनन्तर अतिमुक्त कुमार भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होकर वदंन, नमस्कार करते हैं। ईशान कोण में जाकर अपने वस्त्र उतार कर पंचमुष्टिक लोच करते हैं और उसके पश्चात् भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो जाते हैं, तथारूप स्थविर सन्तों के पास—इन भावों का संसूचक है।

"गुणरयणं" का अर्थ है—गुणरत्न, नाम का तप विशेष। इस मे १६ मास लगते हैं। इस के प्रथम मास में एक-एक उपवास, दूसरे मे दो-दो, इसी प्रकार सोहलवें मास में १६ उपवास करने पड़ते हैं। इस में दिन को उत्कुटुक आसन पर सूर्य के सामने व रात्रि को वीरासन से वस्त्र-रहित बैठने का विधान है*।

"गुणरयणं जाव विपुले"—यहाँ पठित जाव पद 'गुणरत्नं तप किया, भगवान महावीर से आज्ञा ले कर स्थविर सन्तों के साथ विपुल-गिरि पर आरोहण किया, वहां आमरण अनशन किया, निर्वाण पद प्राप्त करके' इन भावों का परिचायक है।

भगवती सूत्र में मुनिराज अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है। प्रस्तुत में अतिमुक्त मुनि को जीवनी का वर्णन होने से उसका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। भगवती सूत्र में लिखा है कि—

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर के मुनि अतिमुक्त नाम के एक शिष्य थे, उनकी अवस्था छोटी थी। वे प्रकृति से भद्र, सरल एव विनयवान थे। एक बार वर्षा ऋतु आ गई। मुनि-राज अतिमुक्त बाहर गये, बाहर इन्होंने पानी को बहते देखा और मिट्टी लेकर उसमें पाल बांध दी अवरुद्ध हुए पानी मे इन्होंने अपना पात्र छोड़ दिया, जब यह पात्र तैरने लगा तब ये कहने लगे,—"मेरी नाव तैर रही है, मेरी नाव तैर रही है।" इस प्रकार यह क्रीड़ा करने लगे। यह सब दृश्य प्रवृद्ध मुनियों ने देखा। तत्काल वे श्रमण भगवान महावीर के पास गये, उनकी सेवा में निवेदन करने लगे, भगवन् ! आप के शिष्य मुनि श्री अतिमुक्त कुमार कितने जन्म लेकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगे ? कब तक जन्म-मरण-जन्य दुखों का अंत कर देंगे ? स्थविर मुनि-राजों के इस प्रश्न को सुनकर श्रमण भगवान महावीर उनसे कहने लगे —

"आर्यो ! मेरा शिष्य प्रकृति से भद्र है, सरल है, विनयवान् है, वह इसी भव मे सिद्ध पद को प्राप्त कर लेगा। जन्म-मरण-जन्य दुखों का अन्त कर देगा, अतः आर्यो ! मुनि अतिमुक्त कुमार की अवहेलना गर्हा एवं निन्दा मत करो, प्रत्युत बिना किसी ग्लानि के इसकी सेवा करो।" श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ऐसा कहने पर स्थविर मुनिराज श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर मुनि अतिमुक्त की बिना किसी संकोच के सेवा करने लगे।

*गुणरत्न तप का विशेष विवरण पृष्ठ न० ६५ पर देखिए।

प्रस्तुत अध्ययन अंतगड़ सूत्र के छठे वर्ग का १५ वां अध्ययन है। इस में पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त के जीवन का उल्लेख किया गया है, अतिमुक्त कुमार, छोटी अवस्था से ही साधु-संतों के प्रेमी श्रद्धालु एवं सेवक थे। भिक्षार्थ नगर में भ्रमण कर रहे भगवान गौतम की अंगुली पकड़ कर उन्हें अपने घर ले जाना, उन्हें आहार दिलवाना और फिर उनके साथ भगवान महावीर स्वामी के चरणों में उपस्थित होकर श्रद्धा पूर्वक उनका उपदेश सुनना, सुने उपदेश को जीवन में उतार कर दिखलाना ये सब बातें अतिमुक्त कुमार के विशुद्ध प्रेम, पावन श्रद्धान तथा अनिर्विकार संयमानुराग की परिचायक हैं।

जिसने जन्म लिया है उसने एक दिन मरना है तथा कृत कर्मों का उपभोग अवश्यमेव करना है, इन दो बातों ने अतिमुक्त कुमार के जीवन की दिशा को बदल दिया। इसी ज्ञान-प्रकाश ने उनके आन्तरिक अन्धकार को दूर करके उन्हें प्रकाशमय बना डाला था। वस्तुतः ये दो बातें जीवन का वास्तविक ज्ञान हैं, यही ज्ञान जब आचरण का स्थान ले लेता है तो जीवन की नैय्या किनारे लग जाती है। संभव है इसी सत्य को अभिव्यक्त करने के लिये अतिमुक्त मुनि ने अपने पात्र की नौका बनाकर उसे जलमें तैराया था, मानो उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मेरी जीवन-नौका संसार-सागर में तैर रही है। और एक दिन यह निश्चित ही पार हो जाएगी।

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥

सोलहवां अध्ययन

अब सूत्रकार क्रम-प्राप्त सोलहवें अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसीए णयरीए काममहावणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए अलक्खे नामं राया होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ। धम्मकहा। तए णं अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठं पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ। एक्कारस अंगाइं, बहु वासा परियाओ, जाव विपुले सिद्धे। एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये वाराणस्यां नगर्यां काममहावनं चैत्यम्। तत्र वाराणस्यामलक्षो नाम राजाऽऽसीत्। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो यावत् विहरति। परिषद् निर्गता। ततो अलक्षो राजा अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् हृष्टस्तुष्टो यथा कूणिको यावत् पर्युपास्ते। धर्मकथा। ततः सो लक्षो राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके यथा उदायनस्तथा निष्क्रान्तः, नवरं ज्येष्ठपुत्रं राज्येऽभिषिंचति। एकादशांगानि, बहूनि वर्षाणि पर्यायः यावत् विपुले सिद्धः एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् षष्ठस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

पदार्थ—**तेणं कालेणं**—उस काल तथा; **तेणं समएणं**—उस समय, **वाणारसीए णयरीए**—वाराणसी नामक नगरी के बाहिर; **काममहावणे चेइए**—काम महावन नामक, चैत्य—उद्यान था। **तत्थ णं वाणारसीए णयरीए**—वहां वाराणसी नामक नगरी मे, **अलक्खे णामं राया होत्था**—अलक्ष नामक राजा था; **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल तथा उस समय, **समणे भगवं महावीरे**—श्रमण-तपस्वी, भगवान, महावीर स्वामी; **जाव**—यावत्, वाराणसी नगरी मे पधारे वहा के काम महावन नामक उद्यान में साधुवृत्ति के अनुकूल स्थान लेकर; **विहरइ**—विचरण करने लगे; **परिसा णिग्गया**—भगवान के दर्शनार्थ जनता, नगरी से बाहिर आई; **तए णं**—उसके अन्तर; **अलक्खे राया**—अलक्ष राजा; **इमीसे कहाए**—इस कथा—वृत्तान्त को; **लद्धट्ठे समाणे**—जानकर; **हट्ठतुट्ठे**—प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए; **जहा**—जिस प्रकार; **कूणिए**—महाराजा कूणिक; **जाव**—यावत्—भगवान महावीर के दर्शन करने गए, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी गए, वंदना और नमस्कार करने के अनन्तर वे भगवान की; **पज्जुवासइ**—पर्युपासना करने लगे; **धम्मकहा**—भगवान महावीर ने जनता तथा अलक्ष नरेश को धर्म सुनाया।

तए णं अलक्खे राया—उस के बाद अलक्ष राजा; **समणस्स भगवओ महावीरस्स**—श्रमण भगवान महावीर के; **अंतिए**—पास, उपदेश सुन कर; **जहा**—जिस प्रकार; **उदायणे**—उदायन नरेश दीक्षित हुए थे; **तहा**—उसी प्रकार; **निक्खंते**—दीक्षित हो गए; **णवरं**—इतना अन्तर है कि; **जेट्ठं पुत्तं**—अपने बड़े पुत्र को; **रज्जे**—राज्य में; **अहिसिंचइ**—अभिषिक्त करते हैं अर्थात् अपने लड़के को राज्य दे देते हैं; **एक्कारस्स अंगाइं**—तथारूप स्थविर सन्तों के पास ११ अंगों का अध्ययन किया; **बहुवासा परियाओ**—अनेक वर्षों तक संयम-पर्याय का पालन किया; **जाव**—यावत्—संयम तप की सम्यग् आराधना के अनन्तर; **विपुले**—विपुलगिरि पर्वत पर; **सिद्धे**—सिद्ध-पद प्राप्त किया; **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चित ही; **जम्बू !**—हे जम्बू !; **समणेणं**—श्रमण—तपस्वी; **जाव**—यावत् भगवान महावीर ने; **छट्ठस्स वग्गस्स**—छठे वर्ग का; **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ, प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ- उस काल तथा उस समय में वाराणसी नामक नगरी थी, उस के बाहिर काम महावन नाम का एक उद्यान था। वाराणसी नगरी के नरेश का नाम महाराजा अलक्ष था।

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगरी में पधारे और नगरी के बाहिर काम महावन उद्यान में विराजमान हो गए। भगवान के आगमन की सूचना पाकर नगरनिवासी लोग धर्म-व्याख्यान श्रवणार्थ भगवान के चरणों में उपस्थित हो गए। भगवान महावीर के आगमन का समाचार जब अलक्ष नरेश को मिला, तो उन्हें बड़ा हर्ष एवं सन्तोष हुआ। वे भी महाराजा कूणिक की भांति बड़े समारोह के साथ भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हुए और वंदना नमस्कार करने के अनन्तर भगवान के चरणों में बैठ कर उनकी सेवा करने लगे।

वाराणसी नगरी की जनता तथा अलक्ष नरेश सब के यथोचित स्थान पर बैठ जाने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने सब को धर्म का उपदेश दिया, धर्म का तत्त्व समझाया। धर्म-कथा सुनने के अनन्तर अलक्ष नरेश श्रमण भगवान महावीर के पास महाराजा उदायन की भांति दीक्षित हो गए। अन्तर केवल इतना ही है कि अलक्ष नरेश ने दीक्षित होने से पूर्व अपने बड़े लड़के को राजसिंहासन पर बिठला कर उसे राज्यसत्ता सौंप दी थी।

अलक्ष नरेश ने दीक्षित हो जाने के अनन्तर तथारूप स्थविरों के पास रह कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अनेक वर्षों तक संयम का पालन किया और भगवान

महावीर से आज्ञा प्राप्त करके स्थविर मुनिराजों के साथ विपुलगिरि पर पहुंच कर सिद्ध पद को पाया।

इस प्रकार छठे वर्ग के १६ अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के छठे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सोलहवें अध्ययन में वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणों के परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु-चरणों में निष्ठा एवं आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चम्पा-नरेश कूणिक की ओर संकेत किया है। औपपातिक सूत्र का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि कूणिक को मंगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर के चरणों में अगाध श्रद्धा थी। अनुपम एवं अत्यन्त प्रेम था। इसी असीम प्रेम के कारण वह भगवान के दर्शन या उनके शुभ समाचार प्राप्त किये विना अन्न-जल तक ग्रहण न करता था। भगवान महावीर का शुभ समाचार प्राप्त करने के लिये इस ने विशेष रूप से कुछ व्यक्ति नियुक्त किये हुए थे जो उसे निरन्तर भगवान के विहार एवं उपदेश आदि की सूचना देते रहते थे। इसी प्रकार की परम श्रद्धा अलक्ष नरेश के हृदय में भी थी, इसी बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने इनकी तुलना कोणिक नरेश से की है। सूत्रकार कहते हैं भगवान महावीर के पधारने पर जितने श्रद्धान एवं समारोह के साथ कूणिक भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ करते थे, उतने ही श्रद्धान एवं समारोह के साथ अलक्ष नरेश भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हुए।

भगवान महावीर की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर अलक्ष नरेश को वैराग्य हो गया। वराग्य के अनन्तर दीक्षा-ग्रहण करना, स्थविर मुनिराजों से अंग शास्त्रों का अध्ययन करना, संलेखना द्वारा विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध-पद की प्राप्ति करना, आदि समस्त वृत्तान्तों को सूत्रकार ने महाराजा उदायन के समान बताया है। जैसे महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी अंग-शास्त्र पढ़े थे, वैसे ही अलक्ष नरेश ने भी दीक्षा ग्रहण की, अंग-शास्त्र पढे। यही इन दोनों महापुरुषों को साधुजीवन-गत समानता है। इन दोनों के जीवन में जो अन्तर है सूत्रकार ने उसे भी स्पष्ट करने का अनुग्रह किया। सूत्रकार कहते हैं—दोनों महापुरुषों ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने राज्य का जो उत्तराधिकारी निश्चित किया था उसमें अन्तर है। महाराजा उदायन ने तो अपने भागिनेय (भानजे) को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की थी और महाराजा अलक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर प्रव्रजित हुए थे। यही इन के जीवन में भिन्नता है।

सोहलवें अध्ययन के उत्क्षेप अर्थात् आरंभवाक्य का सूत्रकार ने कोई निर्देश नहीं किया है। इसका कारण केवल संक्षेप की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा प्रारंभ-वाक्य के बिना अध्ययन को

आरंभ नहीं किया जा सकता । सोहलवें अध्ययन के प्रारंभ-वाक्य की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है—

जइ णं भंते ! समणेणं अन्तगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स पन्नरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सोलमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव सपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के पन्दरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! भगवान महावीर ने छठे वर्ग के सोहलवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

"**भगवं महावीरे जाव विहरइ**" यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित "**आइगरे**' आदि अवशिष्ट पदों का निर्देश अनेक स्थलों पर किया जा चुका है।

"**जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ**" यहां पठित **जाव** पद कूणिक नरेश की दर्शन-यात्रा - समारोह का संसूचक है। चम्पा-नरेश कूणिक का विस्तृत वर्णन श्री औपपातिक सूत्र में किया गया है।

"**जहा उदायणे तहा निक्खंते**" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराज उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए उदायन भूप कौन थे ? कहां तथा किस के पास दीक्षित हुए ? आदि अनेकों प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु यहां टीकाकार बिल्कुल मौन हैं। वैसे कथा-ग्रन्थों में उदायन नरेश की कथा आती है, जो इस प्रकार है—

सिन्धु देश में वितभयपुर नामक नगर था, उदायण‡ वहां का राजा था । रानी का नाम पद्मावती, कुमार का नाम अभीच कुमार और भानजे का नाम केशीकुमार था। उदायन भूप छोटे-बड़े सोलह देशों का स्वामी था। उसका जैन धर्म पर अटूट विश्वास था। एक दिन वह पौषधशाला में पौषध करके बैठा हुआ था। धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान महावीरकी स्मृति आ गई, वह सोचने लगा— वह नगर, कानन धन्य है जहां भगवान विहार करते हैं, वे राजा, सेठ नागरिक लोग कितने धन्य हैं जो भगवान की वाणी सुनते हैं, उनकी सेवा करते हैं, अपने हाथ से उन्हें निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते है। मेरा ऐसा सौभाग्य कहां ? मुझे तो उस महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नही मिलता। चिन्तन की धारा उर्ध्वमुखी होने लगी, उसने सोचा यदि भगवान मेरी नगरी मे पधार जाएं तो मैं उनकी सेवा करूं, और साथ ही इस असार संसार को छोड़ कर दीक्षित हो जाऊं।

उस समय भगवान चम्पा के पूर्ण भद्र उद्यान में विराजमान थे। वीतभयपुर और चम्पा में सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणा-सागर, भक्त-वत्सल भगवान महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे-धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी में पधार गये । अन्धे को मानो दो नयन मिल गये, भगवान के पधार जाने का शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे। बड़े समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब

‡ इसे उदाई भी कहा जाता है।

भगवान के चरणों में उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को वैराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये वह वापिस महलों में आ गया। शासन-व्यवस्था का सारा दायित्व अभीच कुमार को संभाल देना चाहिये था, पर उदायन ने सोचा—राज्य को बन्धन का कारण समझ कर मैं त्याग रहा हूं, फिर अपने पुत्र अभीच कुमार को इस बन्धन में क्यों फंसाऊं? अपना बन्धन कुमार के गले में डालू यह तो उस के साथ अन्याय होगा। अन्त में राजा ने सारे राज्य में घोषणा कर दी—कि मेरा उत्तराधिकारी मेरा भानजा केशीकुमार है, उसका राज्याभिषेक करके मैं दीक्षित हो जाऊंगा। इस घोषणा से उत्तराधिकारी राजकुमार को महान दुःख हुआ और वह रुष्ट होकर अपने राज्य से बाहर चला गया। इधर उदायन भानजे को राजा बना कर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गये।

एक बार मुनि उदायन अस्वस्थ हो गये। वे भ्रमण करते हुए अपनी नगरी वीतभयपुर में आए, पर केशी-कुमार बदल चुका था, उसको भय हो गया था कि कहीं उदायन पुनः राज्य न लेना चाहते हो अतः उसने नगर में सब को आदेश दे दिया कि कोई व्यक्ति उदायन को आहार न दे और न विश्राम करने को स्थान ही दे, जो भी इस आदेश की अवहेलना करेगा उसे राजा परिवार सहित मौत के घाट उतार देगा। मृत्यु के भय से किसी भी नागरिक ने उसे आश्रय नहीं दिया। उदायन सारे नगर में घूमे, तब कहीं एक कुम्हार को दया आ गई, उसने उन्हें स्थान दिया। अपने गुप्तचरों से यह सूचना पाकर राजा ने उदायन को मरवाने के लिये एक वैद्य को भेजा। वैद्य ने उपचार के निमित्त उदायन को विष खिला दिया। शरीर में अपार वेदना हुई पर उदायन मुनि ने विष-वेदना को शान्तिपूर्वक सहन किया। भावना की निर्विकारता से उदायन मुनि को अवधिज्ञान हो गया। ज्ञान-प्रकाश होते ही स्थिति समझने में देर न लगी, पर इन्होंने अपने मन को विक्षुब्ध नहीं होने दिया। धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान की सीढ़ियां पार करके अन्त में इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्तिधाम मे जा विराजमान हुए।

"परियाओ जाव विपुले सिद्धे" यहां पठित **जाव** पद अलक्ष मुनि ने भगवान महावीर स्वामी से पूछ कर स्थविर सन्तों के साथ विपुल गिरि पर आरोहण किया, संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध किया, आमरण अनशन किया, अन्त में सर्व कर्मो को क्षय करके सिद्ध बुद्ध अमर पद को उपलब्ध किया।

"समणेणं जाव छट्ठस्स"—यहां पठित **जाव** पद **"भगवया महावीरेणं"** इन पदों का संसूचक है।

॥ छठा वर्ग समाप्त ॥

सातवां वर्ग

अब सूत्रकार सप्तम वर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—जइ ण भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ। जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा —

नंदा तह नंदवई, नंदोत्तर नंदसेणिया चेव।
मरुया सुमरुया, महमरुया मरुदेवीय अट्ठमा ॥१॥
भद्दा य सुभद्दा य, सुजाया सुमणातिया।
भूयदिन्ना य बोद्धव्वा, सेणियभज्जाणं नामाइं ॥२॥

जइ णं भंते० ! तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। तए णं सा नंदादेवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठा कोंडुबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाणं जहा पउमावई, जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा।

एवं तेरस वि देवियो णंदागमेण णेयव्वाओ। निक्खेवओ।

छाया— यदि खलु भदन्त ! सप्तमस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः यावत् त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा—

नन्दा तथा नन्दवती, नन्दोत्तरा नन्दश्रेणिका चैव।
मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुद्देवी च अष्टमी ॥१॥
भद्रा च सुभद्रा च, सुजाता सुमनातिका।
भूतदत्ता च बोद्धव्या, श्रेणिक-भार्याणां नामानि ॥२॥

यदि भदन्त ! त्रयोदश अध्ययनि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महावीरेण कोऽर्थः प्रज्ञप्तः। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं

नगरम्, गुणशिलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा, वर्णकः। तस्य श्रेणिकस्य राज्ञः नंदा नाम्नी देव्यासीत्, वर्णकः।

स्वामी समवसृतः, परिषन्निर्गता। ततः सा नन्दादेवी अस्याः कथायाः लब्धार्था सती हृष्ट-तुष्टा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा, यानं यथा पद्मावती यावत् एकादश अंगानि अधीत्य विंशतिवर्षाणि पर्यायो यावत् सिद्धा !

एवं त्रयोदश्योऽपि देव्यो नन्दागमेन नेतव्याः। निक्षेपकः।

पदार्थ— **भंते !**—हे भगवन्; **जइ णं**—यदि; **सत्तमस्स वग्गस्स**—सातवें वर्ग के; **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक—प्रारभ वाक्य की कल्पना कर लेना; **जाव**—यावत—सातवें वर्ग में; **तेरस**—तेरह; **अज्झयणा**—अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किये हैं; **तं जहा**—जैसे कि; **नंदा**—नन्दा देवी; **तह**—तथा; **नंदवई**—नन्दवती; **नन्दोत्तर**—नन्दोत्तरा देवी; **च**—और; **नंदसेणिया** नन्दश्रेणिका देवी; **एवं**—निश्चयार्थक है; **मरुया**—मरुता देवी; **सुमरुया**—सुमरुता देवी; **महमरुया**—महामरुता देवी; **य**—और; **अट्ठमा**—आठवीं; **मरुद्देवी**—मरुद्देवी; **य**—और; **भद्दा**—भद्रा देवी; **य**—और; **सुभद्दा**—सुभद्रा देवी; **सुजाया**—सुजाता देवी; **सुमणातिया**—सुमनातिका देवी; **य**—और; **भूयदिन्ना**—भूतदत्ता, ये; **सेणिय-भज्जाणं**—महाराजा श्रेणिक की रानियों के; **नामाइं**—नाम; **बोद्धव्वा**—जानने चाहिए; **भंते !**—हे भगवन् !; **जइ णं**—यदि; **०**—यह बिन्दु श्रमण भगवान महावीर ने सप्तम वर्ग के " इस अर्थ का बोधक है।; **तेरस**—तेरह, **अज्झयणा**—अध्ययन; **पण्णत्ता**—प्रतिपादन किये हैं तो; **भंते !**—हे भगवन् !; **समणेणं**—श्रमण-तपस्वी; **जाव**—यावत् भगवान महावीर ने; **पढमस्स अज्झयणस्स**—प्रथम अध्ययन का; **के**—क्या; **अट्ठे**—अर्थ; **पण्णत्ते**—प्रतिपादन किया है; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय में; **जम्बू !**—हे जम्बू !; **तेणं कालेणं**—उस काल तथा; **तेणं समएणं**—उस समय; **रायगिहे**—राजगृह नाम का; **णयरे**—नगर था; **गुणसिलए**—गुणशिलक नाम का; **चेइए**—चैत्य—बाग था; **सेणिए**—श्रेणिक राजा था; **वण्णओ**—राजा की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित राजगुण-सम्पदा के समान समझ लेना; **तस्स णं**—उस; **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की; **नंदा नामं**—नन्दा नाम की; **देवी**—रानी; **होत्था**—थी; **वण्णओ**—रानी की गुणसम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा के समान जान लेना; **सामी**—श्रमण भगवान महावीर स्वामी; **समोसढे**—पधारे; **परिसा**—नगरनिवासी जनता; **णिग्गता**—भगवान के दर्शनार्थ नगर से निकली; **तए णं**—उस के अनन्तर; **सा नन्दा देवी**—वह नन्दा देवी; **इमीसे कहाए**—इस वृत्तान्त को; **लद्धट्ठा समाणी**—जान कर; **हट्ठ तुट्ठा**—हृष्ट—प्रसन्न एवं तुष्ट—सन्तुष्ट हुई; **कोडुंबिय पुरिसे**—कौटुम्बिक पुरुषों—सेवक पुरुषों को; **सद्दावेइ**—बुलाती है; **सद्दाविता**—बुला कर; **जाणं**—धार्मिक यान रथ लाने की आज्ञा देती है; **जहा**—जिस प्रकार; **पउमावई**—कृष्ण वासुदेव की पट्टरानी पद्मावती भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में गई थी उसी प्रकार; **जाव**—यावत्—भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हुई, उपदेश सुना, वैराग्य हो गया, अन्त में दीक्षित हो गई; **एक्कारस्स**—ग्यारह; **अंगाइं**

अंग-शास्त्रों का; **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके; **बीसं**—बीस; **वासाइं**—वर्षों की; **परियाओ**—दीक्षा का पालन किया; **जाव**—यावत्—उसने; **सिद्धा**—सिद्ध गति को प्राप्त कर लिया; **एवं**—इसी प्रकार; **तेरस वि**—तेरह ही; **देवीओ**—देवियों को जीवनियां; **नंदागमेण**—नन्दा देवी के समान; **णेयव्वाओ**—जाननी चाहियें; **निक्खेवओ**—निक्षेपक—उपसंहार की कल्पना कर लेनी चाहिये।

मूलार्थ—छठे वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे— भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब आप यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग में जो कुछ कहा है उसको सुनाने की कृपा करें।

आर्य जम्बू स्वामी की विनती सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे— जम्बू! मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड-सूत्र के सातवें वर्ग में १३ अध्ययन बताए हैं, उनके नाम ये हैं—

१. नंदा	२. नंदावती	३. नंदोत्तरा
४. नन्द श्रेणिका	५. मरुता	६. सुमरुता
७. महामरुता	८. मरुत्देवी	९. भद्रा
१०. सुभद्रा	११. सुजाता	१२. सुमनातिका
१३. भूतदत्ता		

आर्य सुधर्मा स्वामी फिर कहने लगे—जम्बू ! नन्दा आदि १३ अध्ययनों में नन्दा देवी आदि १३ राजरानियों के जीवन का उल्लेख किया गया है। ये १३ ही महाराजा श्रेणिक को रानियां थीं।

अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में पुनः निवेदन करने लगे— 'भगवन्! यदि श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के नन्दा, नन्दावती आदि तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

जम्बू अनगार के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी पुनः बोले— जम्बू! उस काल तथा उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसके बाहिर गुण-शिलक नाम का उद्यान था। नगर-नरेश का नाम श्रेणिक था, राजा की गुण-सम्पदा

औपपातिक सूत्र में वर्णित राज-सम्पदा के समान थी। इनके नन्दा नाम की रानी थी वह सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त और अत्यन्त सुन्दरी थी, इसकी गुण-सम्पदा भी औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी गुण-सम्पदा के समान थी।

एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी राजगृह नगर में पधारे। नगर निवासी लोग भगवान के दर्शनार्थ नगर से निकले और भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। भगवान के पधारने का समाचार पाकर नंदा देवी बड़ी प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुई। उसने सेवक पुरुषों को बुलाकर धार्मिक रथ तैयार करने का आदेश दिया। प्रस्तुत सूत्र के पंचम वर्ग के प्रथम अध्ययन में वर्णित पद्मावती की भांति वह भी भगवान के पास पहुंची। वन्दन नमस्कार किया, धर्म-कथा सुनी, वैराग्य हो गया और पद्मावती की तरह ही वह दीक्षित हो गई। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बीस वर्षों तक संयम की पालना की, अन्त में संलेखना द्वारा सिद्ध पद उपलब्ध किया।

नंदवती आदि अन्य १२ राजरानियों को जीवनी नन्दा देवी की भांति ही समझ लेनी चाहिए।

व्याख्या— इस सूत्र में सातवें वर्ग के सभी अध्ययनों का वर्णन किया गया है। ये अध्ययन तेरह हैं। जिस अध्ययन में जिस सन्नारी के जीवन का उल्लेख है, उसी के नाम पर उस अध्ययन का नाम रखा गया है। जैसे पहले अध्ययन में नंदा देवी की जीवनी वर्णित है तो इस प्रथम अध्ययन का **'नन्दा'** यह नाम रख दिया गया है। यही पद्धति आगे के सभी अध्ययनों में अपनाई गई है। इन अध्ययनों में वर्णित नन्दादेवी आदि सभी देवियां राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की रानियां थीं। इन सभी ने श्रमण भगवान महावीर के पास दीक्षित होकर घोर तप करके, निर्वाण-पद पाया था। इनमें नन्दा देवी अपने युग के परम मेधावी श्रेणिक नरेश के प्रधान मंत्री श्रीअभयकुमार की माता थी। यह एक परम धर्मात्मा तथा धनाढ्य सेठ की पुत्री थी, इन्होंने बड़े त्याग वैराग्य के साथ दीक्षा लेकर अपने जीवन का कल्याण किया था। इसी प्रकार नन्दावती आदि देवियों ने त्याग एवं वैराग्यमय कठोर साधना द्वारा अजर-अमर सिद्ध-बुद्ध पद उपलब्ध किया।

प्रस्तुत वर्ग के परिशीलन से यह प्रमाणित हो जाता है कि पुरुषों की भांति स्त्री वर्ग में भी पुरुषार्थ के द्वारा निर्वाण-पद को प्राप्त करने की योग्यता अवस्थित है। आत्म-कल्याण की भावना से प्रेरित हुई इन देवियों ने संयम मार्ग में प्रवृत्ति करके निर्वाण पद को प्राप्त करते हुए नारी जाति के सन्मुख जो उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है, इसका निकट के इतिहास में उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है।

"सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवम्रो" का अर्थ है— सप्तम वर्ग का उत्क्षेपक । उत्क्षेपक प्रारंभ-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में प्रारंभ-वाक्य इस प्रकार है—

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अन्तगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स श्रयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के श्रट्ठे पण्णत्ते ?

अर्थात्— भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

"जाव तेरस अज्झयणा" यहां पठित **जाव** पद **एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स"** इन पदों का बोधक है। अर्थ स्पष्ट ही है।

सप्तम अध्ययन के पंचम अध्ययन का नाम **"मरुया"** है, परन्तु आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित अन्तकृद्दशांग सूत्र में "मरुया" के स्थान पर- **महया** ऐसा पाठ आता है । महती देवी ।

"भंते ! तेरस०" यहां दिया गया बिंदु—**समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स"** इस पाठ का सूचक है। अर्थ स्पष्ट ही है। **"राया वण्णम्रो"**—यहां का तथा **देवी होत्था, वण्णम्रो"** यहां का **वण्णम्रो** पद औपपातिक सूत्र में वर्णित राजा की गुण-सम्पदा का बोधक है। सूत्रकार ने इन पदों से श्रेणिक राजा तथा नन्दा देवी के शारीरिक वैभव और राज्य-वैभव की महानता तथा इन के विशाल प्रभाव को अभिव्यक्त किया है।

"जाणं जहा पउमावई"— यहां प्रयुक्त यान शब्द धार्मिक रथ का बोधक है सूत्रकार कहते हैं कि **जहा**—जिस प्रकार द्वारिकाधीश कृष्णवासुदेव की पट्टरानी पद्मावती धार्मिक रथ पर बैठ कर भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में पहुंची, उसने भगवान का धर्मोपदेश सुना, उसे धर्म पर श्रद्धान आया, उसने कृष्णवासुदेव से दीक्षित होने की आज्ञा प्राप्त की। कृष्ण वासुदेव ने बडे समारोह के साथ दीक्षा-कार्य सम्पन्न किया, भगवान अरिष्टनेमि ने दीक्षित करके यक्षिणी आर्या को उसे संभाल दिया । अपनी गुरुणी की देख-रेख में पद्मावती जैसे संयम का पालन करने लगी, पांच समितियों, तीन गुप्तियों की आराधना करने लगी, वैसे ही महारानी नन्दा एक धार्मिक रथ पर बैठकर भगवान महावीर की सेवा में पहुंची, भगवान का धर्मोपदेश सुना धर्म पर श्रद्धान हुआ, महाराजा श्रेणिक ने दीक्षा-कार्य समारोह के साथ सम्पन्न किया । भगवान महावीर ने उसे स्वयं दीक्षित करके एक सुयोग्य साध्वी को सौंप दिया। अपनी गुरुणी की देख-रेख में महासती नन्दा संयम का पालन, पांच समितियों तथा तीन गुप्तियों की आराधना करती है, गुप्त, जितेन्द्रिय बन कर ब्रह्मचर्य महाव्रत की उपासना करती है । पद्मावती और नन्दा इन महासतियों की इसी जीवनगत समानतो को अभिव्यक्त करने के लिये सूत्रकार ने **"जहा पउमावती जाव** ये पद दिए हैं ।

पर एक स्थान पर लिखा है कि महाराजा श्रेणिक की मृत्यु के अनन्तर नंदा आदि १३ राजरानियों ने दीक्षा अंगीकार की थी, परन्तु प्रस्तुत सूत्र-पाठ के आधार पर यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता, प्रस्तुत सूत्र में— **"सेणिए राया"** ऐसा स्पष्ट लिखा है ऐसी दशा में श्रेणिक राजा की मृत्यु के अनन्तर ये कथन कैसे सत्य हो सकता है? **"परियाओ जाव सिद्धा"** यहां का **जाव** पद गुरुजनों से आज्ञा लेकर किसी पर्वत पर जाना, वहां संलेखना द्वारा आत्मशुद्धि करना, आमरण अनशन करके पार्थिव शरीर को छोड़ना आदि निर्वाणपद प्राप्त करने से पूर्व की सभी क्रियाओं का संसूचक है। ये क्रियाएं अन्य स्थानों पर वर्णित है, अतः सूत्रकार ने उन का **जाव** पद से संकेत कर दिया है।

"निक्खेवओ"— निक्षेपक का अर्थ है—उपसंहार-वाक्य—समाप्ति-वाक्य। शास्त्रीय भाषा में उपसंहार इस प्रकार है—

'एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते', इस का अर्थ है— हे जंबू! इस प्रकार यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के सातवें वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

॥ सप्तम वर्ग समाप्त ॥

आठवां वर्ग

सप्तम वर्ग के अनन्तर अष्टम वर्ग का स्थान है, अतः अब सूत्रकार अष्टम वर्ग का आरंभ करते हुए कहते हैं —

मूल— जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगड-दसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, भंते ! अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स समणेणं जाव सम्पत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते । एवं खलु जम्बू समणेणं जाव सम्पत्तेणं अन्तगड दसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

कालो, सुकाली, महाकाली कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा ।
वीरकण्हा, य बोद्धव्वा रामकण्हा तहेव च ।
पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी, महासेणकण्हा च ।

जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णाम णयरी होत्था । पुण्णभद्दे चेइए । तत्थ णं चंपाए णयरीए कोणिए राया । वण्णओ । तत्थ णं चंपाए णयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, वण्णओ । जहा नंदा जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ० जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणा-वलिं तवं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ? अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह । तए णं सा काली अज्जा अज्ज-चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा ।

छाया— यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानां सप्तमस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, अष्टमस्य भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जंबू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—

काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा ।

वीरकृष्णा च बोधव्या, रामकृष्णा तथैव च ।

पितृसेनकृष्णा, नवमी, दशमी महासेनकृष्णा च ।

यदि भदन्त ! अष्टमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेण यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जंबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत् पूर्णभद्रं चैत्यम् । तत्र चम्पायां नगर्यां कोणिको राजा, वर्णकः । तत्र चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कोणिकस्य राज्ञः क्षुल्ल-माता काली नाम देव्यासीत् । वर्णकः । यथा नन्दा यावत् सामायिकादीनि एकादशांगान्यधीते । बहुभिश्चतुर्थ० यावदात्मानं भावयन्ती विहरति ।

ततः सा काली आर्या, अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्य चन्दना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य एवमवदत्—इच्छामि हे आर्याः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलिं तप उपसंपद्य विहर्तुम् ? यथा-सुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबंधं कुरुष्व। ततः सा काल्यार्या आर्यचन्दनयाऽभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलितपःकर्म उपसंपद्य विहरति । तद्यथा—

पदार्थ—**भंते !**—हे भगवन् !; **जइ णं**—यदि; **जाव संपत्तेणं**—मोक्ष सम्पदा सम्प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने; **अट्ठमस्स-अंगस्स**—अष्टम अंग; **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद् दशांग सूत्र के; **सत्तमस्स वग्गस्स**—सातवे वर्ग का; **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादन किया है; **भंते !**—हे भगवन् ! ; **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद्दशांग सूत्र के; **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवे वर्ग का; **समणेणं जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने; **के अट्ठे पण्णत्ते**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

जंबू! —हेजम्बू ! **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **समणेणं जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने; **अट्ठमस्स अंगस्स**—आठवें अग के; **अंतगडदसाणं**—अन्त-कृद्दशांग सूत्र के; **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवें वर्ग के; **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन प्रति-पादन किये हैं; **तंजहा**—जैसे कि—

काली—काली देवी; **सुकाली**—सुकाली देवी; **महाकाली**—महाकाली देवी; **कण्हा**—कृष्णा देवी; **सुकण्हा**—सुकृष्णादेवी; **महाकण्हा**—महाकृष्णा देवी; **य**—और; **वीरकण्हा**—वीरकृष्णा देवी; **बोद्धव्वा**—जाननी चाहिए; **य**—पुनः; **तहेव**—उसी प्रकार; **रामकण्हा**—राम-कृष्णा देवी; **नवमी**—नौवी; **पिउसेणकण्हा**—पितृसेनकृष्णा देवी; **य**—और; **दसमी—दसवीं; महासेणकण्हा**—महासेन कृष्णा देवी है ।

भंते !—हे भगवन् ! **जइ णं**—यदि; **अट्ठमस्स वग्गस्स**—आठवें वर्ग के; **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं; **भंते ! पढमस्स अज्झयणस्स**—हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का; **समणेणं जाव संपत्तेणं**—मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने; **के अट्ठे पण्णत्ते ?**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है।

जंबू !—हे जम्बू !, **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल तथा उस समय; **चंपा णाम णयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, नगरी के बाहिर; **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्णभद्र नामक, चैत्य—उद्यान था; **तत्थ णं**—वहां; **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी में; **कोणिए राया**—कूणिक राजा; **वण्णओ**—राजा के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित राजवैभव के समान जानना चाहिए; **तत्थ णं**—वहां, **चम्पाए णयरीए**—चम्पा नगरी में; **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की; **भज्जा**—भार्या (धर्मपत्नी); **कोणियस्स रण्णो**—कोणिक राजा की; **चुल्लमाउया**—क्षुल्लमाता—छोटी माता; **काली नामं देवी होत्था**—काली नामक रानी थी, **वण्णओ**—रानी के वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित नारी-गुण-वैभव के समान जानना चाहिये; **जहा**—जिस प्रकार; **नंदा**—नंदा देवी का वर्णन किया है, उसी प्रकार; **जाव**—यावत् भगवान महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षित होकर; **सामाइयमाइयाइं**—सामायिकादि है जिन में ऐसे; **एक्कारस अंगाइं**—ग्यारह अंगों का; **अहिज्जइ**—अध्ययन करती है; **बहूहिं-चउत्थ**—अनेक (चतुर्थ) उपवास; **जाव**-यावत्—बेले, तेले आदि से; **अप्पाणं भावेमाणी विहरइ**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

तए णं सा काली अज्जा—उसके बाद वह काली आर्या—साध्वी, **अन्नया कयाइं**—किसी अन्य समय; **जेणेव अज्जचंदणा**—जहां पर चन्दनबाला नामक आर्या थी; **तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी**—वहां आ गई और आकर इस प्रकार कहने लगी—

अज्जाओ !—हे आर्या जी !; **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा**—आप श्री द्वारा आज्ञा देने पर; **इच्छामि णं**—मैं चाहती हूं कि; **रयणावलिं तवं**—रत्नावली नामक तप को; **उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए**—धारण करके विहरण करूं, **देवाणुप्पिया ! अहासुहं**—हे भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो; **मा पडिबंधं करेह**—प्रतिबन्ध (प्रमाद) मत करो।

तए णं—उस के अनन्तर; **सा काली अज्जचंदणाए**—वह काली आर्या आर्य-चन्दनबाला द्वारा, **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त कर लेने पर; **रयणावलिं तवोकम्मं**—रत्नावली नामक तप को; **उवसंपज्जित्ताणं**—धारण करके; **विहरइ**—विचरने लगी ; **तंजहा**—जैसे कि।

मूलार्थ—अन्तगडसूत्र के सप्तम वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य-जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि हे भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अंतगडसूत्र के सातवें वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया

है तो भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के आठवें वर्ग का क्या अर्थ बताया है ?

हे जंबू ! इस प्रकार यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्ग के दस अध्ययन बतलाए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. काली २. सुकाली ३. महाकाली ४. कृष्णा ५. सुकृष्णा ६. महाकृष्णा ७. वीरकृष्णा ८. रामकृष्णा ९. पितृसेनकृष्णा १०. महासेनकृष्णा ।

अपने प्रश्न का उत्तर पाकर आर्य जंबू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पुनः निवेदन करने लगे कि हे भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के दस अध्ययन कहे गए हैं तो भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

आर्य जंबू अनगार का यह प्रश्न सुनकर आर्य सुधर्मास्वामी कहने लगे—कि हे जंबू! उस काल तथा उस समय चम्पा नाम की नगरी थी । नगरी के बाहिर पूर्णभद्र नामक उद्यान था, वहां चम्पा नगरी में कोणिक राजा राज्य किया करता था। राजा के राज्य-वैभव का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित राज्य-वैभव के समान समझना चाहिए।

चम्पा नगरी के श्रेणिक राजा की रानी महाराजा श्रेणिक की लघुमाता काली देवी थी । रानी की गुण-सम्पदा औपपातिकसूत्र में वर्णित नारी-गुण-सम्पदा के समान जाननी चाहिये । काली देवी नंदा देवी की तरह भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हुई । सामायिक (आचारांग) आदि ग्यारह अंगों का इस ने अध्ययन किया, अनेकों व्रत बेले तेले यावत् तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विहरण करने लगी।

एक दिन काली आर्या महासती आर्या चंदना के पास आई और उनसे निवेदन करने लगी कि आर्या जी! यदि आप आज्ञा दें तो मैं रत्नावली तप करना चाहती हूं? आर्या काली की यह बात सुन कर महासती चंदना कहने लगी—भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को शांति हो, परन्तु ऐसे शुभ कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिये । इस प्रकार की महा-

सती आर्यचन्दना से आज्ञा प्राप्त हो जाने पर आर्या काली ने रत्नावली तप की आराधना आरम्भ कर दी । रत्नावली तप का स्वरूप इस प्रकार है।

व्याख्या— इस सूत्र में आठवें वर्ग के दश अध्ययनों का नाम निर्देश किया गया है। जिस अध्ययन में जिस महासती के जीवन का उल्लेख है, उसी के नाम पर अध्ययन का नाम रखा गया है । दसों अध्ययनों में जिन रानियों का वर्णन किया गया है वे सब महाराजा श्रेणिक की रानियां थीं, इन दसों को कैसे वैराग्य हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर श्री निरयावलिका सूत्र में उपलब्ध होता है। वहां लिखा है—

एक वार मंगलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी चम्पा नगरी के बाहिर पूर्णभद्र नामक उद्यान में विराजमान थे। भगवान महावीर के चरणों में काली आदि दसों देवियाँ उपस्थित हुईं। विधिपूर्वक वन्दन करने के अनन्तर समय देखकर उन्होंने भगवान से निवेदन किया—

भगवन् ! हमारे पुत्र युद्ध में गए हुए हैं, क्या हम उन को सकुशल लौटते हुए देख सकेंगी ?

काली आदि देवियों के प्रश्न सुनकर इसका समाधान करते हुए भगवान बोले 'देवियो ! तुम्हारी यह कामना पूर्ण नहीं हो सकेगी। तुम्हारे दसों पुत्र युद्ध में काम आ चुके हैं। महाराजा चेटक के द्वारा उनका प्राणान्त कर दिया गया है । इस लिये तुम उन को नहीं देख सकोगी ।'

अपने पुत्रों के प्राणान्त की दुःखद घटना सुनकर दसों देवियों को मारणान्तिक वेदना हुई। वे पुत्र वियोग-जन्य दुःख से विलाप एवं रुदन करने लगीं, परन्तु भगवान महावीर के ज्ञानोपदेश के प्रकाश ने उनके मोहान्धकार को समाप्त कर दिया। परिणाम स्वरूप वे सब की सब संसार से विरक्त होकर भगवान महावीर के पास दीक्षित हो गई। अहिंसा संयम और तप के द्वारा कर्म मल दूर करके अपनी आत्मा को शुद्ध करती हुई वे अन्त में निर्वाण-पद प्राप्त कर गईं। इन दसों के पवित्र नामों की तालिका मूलार्थ में लिखी जा चुकी है। इन में पहली देवी का नाम काली है। प्रस्तुत सूत्र में काली देवी के जीवन का ही परिचय कराया गया है।

कालीदेवी राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्नी थी और चम्पानरेश महाराजा कोणिक की लघुमाता थी। इन्होंने एक बार मंगलमय विश्ववन्द्य श्रमण भगवान महावीर के मंगल उपदेश को सुना। उपदेश क्या था— मानों इन के मोहान्धकार को दूर करने के लिये एक प्रकाश-स्तंभ था। मोह के बन्धन तोड़कर वह भगवान के चरणों में साध्वी बन गई। साध्वी बन कर इसने शास्त्रों के गंभीर अध्ययन के साथ-साथ तप की भी आराधना की, बेले तेले आदि करके तपस्या भगवती से अपनी आत्मा को भावित किया। एक दिन यह महासती आर्या चंदना के पास जा कर निवेदन करने लगी—मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा दें तो मैं रत्नावली तप का आराधन करूं ? गुरुणी श्री ने अपनी विनीत शिष्या के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। गुरुणी श्री की ओर से स्वीकृति मिलते ही आर्या काली ने रत्नावली तप आरंभ कर दिया।

समणेणं जाव संपत्तेणं— यहां पठित जाव पद **'भगवया महावीरेणं आइगरेणं**— आदि पदों का संसूचक है। जिनका अर्थ अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है।

"चंपाए नयरीए कोणिए राया"— का अर्थ है— चम्पा नगरी में कोणिक राजा राज्य करता था। शास्त्रों का परिशीलन करने से पता चलता है कि महाराजा श्रेणिक की राजधानी राजगृह थी, परन्तु इनका प्राणान्त हो जाने पर इन के पुत्र महाराजा कोणिक ने अपनी मुख्य राजधानी चम्पानगरी बनाई थी। चंपा नगरी की समृद्धि एवं सौन्दर्य का वर्णन औपपातिक सूत्र में विस्तार पूर्वक किया गया है। काली-महाकाली आदि दसों रानियों की दीक्षा इसी नगर के समीपवर्ती पूर्णभद्र नामक चैत्य में सम्पन्न हुई थी।

"राय वण्णओ"—यहां पठित **"वण्णओ"** यह पद औपपातिक सूत्र में वर्णित राज्य-संबन्धी वैभव का तथा "नारी सम्बन्धी वैभव" का सूचक है। जिस प्रकार औपपातिक सूत्र में राजा तथा रानी के शारीरिक गुणों एवं अन्य पुण्य प्रकृति आदि का वर्णन किया गया है उसी प्रकार का वर्णन यहां भी समझ लेना चाहिए। इसी बात की सूचना के लिये सूत्रकार ने **"वण्णओ"** इस पद का प्रयोग किया है। प्रस्तुत सूत्र की तथा औपपातिक सूत्र की चम्पा नगरी एक ही है। अतः दोनों पाठों में समानता का होना स्वाभाविक है।

"कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया"—कोणिकस्य राज्ञः क्षुल्लमाता, लघुमाता—का अर्थ है— नरेश की लघुमाता। चुल्ल देशीय भाषा का शब्द है। प्रस्तुत में इसका अर्थ छोटी है। चुल्लमाता का अर्थ है छोटी माता अर्थात् सौतेली मां। चम्पा नरेश कोणिक की माता का नाम चेलना था। चेलना महाराजा श्रेणिक की सब से बड़ी रानी थी। अतः काली महाकाली आदि सब रानियां चेलना की छोटी सपत्नियां होने से कोणिक नरेश की छोटी माताएं थी।

"जहा नंदा जाव सामाइयमाइयाइं"—का अर्थ है जिस प्रकार राजगृह नरेश श्रेणिक की रानी नन्दा भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हुई थी उसी प्रकार काली देवी भी दीक्षित हुई थी, उसने सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सामायिक शब्द आचारांग सूत्र का बोधक है। काली देवी को दीक्षा आदि का वर्णन नंदा देवी के समान जानने का संकेत करके सूत्रकार ने इस विषय को संक्षिप्त कर दिया है। नंदा आदि देवियों का वर्णन पीछे किया जा चुका है। इन्हीं के समान काली देवी आदि का वर्णन होने से सूत्रकार ने **"जहा नंदा"** मात्र कह दिया है तथा **"जाव"** पद नंदा देवी की तरह काली देवी का भगवान महावीर के चरणों में वन्दनार्थ जाना, उपदेश सुनना, वैराग्यधारण कर के उनके पास दीक्षित होना आदि बातों का संसूचक है।

"चउत्थ जाव अप्पाणं" यहां पठित **"जाव"** पद **छट्ठ-अट्ठम-दसमदुवालसेहिं-मासद्ध-मास-खमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं"** इन पदों का संसूचक है। इन का अर्थ है—बेले-तेले-चौले-पचौले, पन्द्रह-पन्द्रह, महीने-महीने तक की विविध तपस्या के द्वारा।

"**अज्जचंदणा अज्जा**"— यहां पर अज्ज शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है प्रथम "**आर्या**" शब्द साध्वी का संसूचक है और दूसरा "**अज्ज**" शब्द चन्दना के साथ जुड़ा हुआ है उसी के साथ मिल कर **आर्यचन्दना** शब्द निष्पन्न होता है। यहां का आर्या शब्द महासती चन्दनबाला के विशिष्ट आर्यत्व का संसूचक है।

"**रयणावलिं**"—का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—**रयणावलिं त्ति, रत्नावली आभरणविशेषः, रत्नावलीतपः रत्नावली। यथाहि रत्नावली उभयतः आदौ सूक्ष्म-स्थूल-स्थूलतर-विभाग-काहलिकाख्य-सौवर्णावयवद्वययुक्ता भवति, पुनर्मध्यदेशे स्थूलविशिष्टमण्यलंकृता च भवति, एवं यत्तपः पट्टावावुपदर्श्यमानमिममाकारं धारयति तद्रत्नावलीत्युच्यते**—अर्थात् रत्नावली एक आभूषण विशेष होता है। उसकी रचना के समान जिस तप का आराधन किया जाये उसको रत्नावली तप कहते हैं, जैसे रत्नावली भूषण दोनों ओर से आरम्भ में सूक्ष्म फिर स्थूल, फिर उस से अधिक स्थूल मध्य में विशेष स्थूल मणियों से युक्त होता है, वैसे ही जो तप रत्नावली की तरह आरंभ में स्वल्प फिर अधिक, फिर विशेष अधिक होता चला जाता है उसी तप को रत्नावली तप कहते हैं। जिस प्रकार रत्नावली भूषण से शरीर की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार यह रत्नावली तप आत्मा को विभूषित करता है। रत्नावली तप में पांच वर्ष दो महीने अट्ठाईस दिन लगते हैं। ये चार बार में समाप्त होता है। एक परिपाटी में एक वर्ष तीन मास बाईस दिन लगते हैं। इसी रत्नावली तप की आराधना काली देवी ने की थी।

शास्त्रीय भाषा में इस तप का जो स्वरूप है अब सूत्रकार उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—**चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता**

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए अ अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ।

छाया—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणं पारयति, पारयित्वा अष्टषष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति,

कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्षष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशतम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वमकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशम करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टषष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वणकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति एवं खलु एषा रत्नावल्यास्तपःकर्मणः प्रथमा परिपाटी एकेन सवत्सरेण त्रिभिर्मासैः द्वाविंशत्यहोरात्रैर्यथासूत्रं यावद् सिद्धा भवति ।

पदार्थ— **चउत्थं**—चतुर्थ—एक उपवास; **करेइ**—करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के दूध आदि रस पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं**—दो उपवास (बेला); **करेइ**—करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के दूध आदि रस पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठमं करेइ**—तेला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**--सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठ छट्ठाइं**—आठ बेले लगातार (दो-दो व्रत); **करेइ**—करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चउत्थं**—एक उपवास (चतुर्थ); **करेइ**—करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सब प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं करेइ**—बेला करती है, **करित्ता**—करके; **सव्व-**

कामगुणियं—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठमं करेइ**—तेला करती है; (तीन उपवास); **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **दसमं करेइ**—चौला—चार उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से: **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **दुवालसमं करेइ**—पंचौला (पांच व्रत) करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चौद्दसमं करेइ**—छौला उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **सोलसमं करेइ**—सात उसवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठाइसमं करेइ**—आठ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **वीसइमं करेइ**—नौ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **बावीसइमं-करेइ**—दस उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**— पारणा करके; **चउवीसइमं करेइ**—११ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **छव्वीसइमं करेइ**—१२ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **अट्ठावीसइमं करेइ**—१३ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **तीसइमं करेइ**—१४ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **बत्तीसइमं करेइ**—१५ उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चोत्तीसइमं करेइ**—१६ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **चोत्तीसं-छट्ठाइं-करेइ**—३४ बेले करती है, **करित्ता** करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चोत्तीसइमं करेइ**—१६ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **बत्तीसइमं करेइ**—१५ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**— पारणा करके; **तीसं करेइ**—१४ उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठावीसइमं करेइ**—१३ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **छव्वीसइमं करेइ**—१२ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है;

पारित्ता—पारणा करके; **बउवीसइमं करेइ**—११ उपवास करती है; **करित्ता** करके; **सव्वकाम-गुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से. **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **बावीसइमं करेइ**—१० उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **वीसइमं करेइ**—नौ उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठारसमं करेइ**—आठ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**--सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **सोलसमं करेइ**—सात उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चोद्दसमं करेइ**—छे उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **बारसमं करेइ**—५ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **करित्ता**—करके; **दसमं करेइ**—चार उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठमं करेइ**—तीन उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं करेइ**—दो उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चउत्थं करेइ**— १ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठ-छट्ठाइं करेइ**—आठ बेले करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठमं करेइ**—तीन उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं करेइ**—दो उपवास करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से, **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चउत्थं करेइ**—१ उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चयार्थक है; **एसा**—यह (जिस का वर्णन ऊपर किया गया है) ; **रयणावलीए**— रत्नावली **तवो कम्मस्स**—तप की; **पढमा परिवाडी**—पहली परिपाटी है जो ; **एगेणं संवच्छरेणं**—एक वर्ष; **तिहिं, मासेहिं, य,**—३ मास और; **बावीसाए, अहोरत्तेहिं,**—२२ दिनों में; **अहासुत्तं**—यथासूत्र—सूत्र के अनुसार; **जाव**—यावत्; **आराहिया**—आराधित,- सम्पन्न; **भवइ**—होती है।

मूलार्थ— आर्या काली देवी ने जिस ढंग से तप का आराधन किया है उसकी रूपरेखा इस प्रकार है—

एक उपवास किया, इसके पारणे में मनोवांछित दूध, घृत आदि सब रसों

का सेवन किया, इसी प्रकार एक बेला, एक तेला, आठ बेले, एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार उपवास, पांच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह उपवास किये। इन सब के पारणे में यथेच्छ सब रसों का सेवन किया। ३४ बेले किये फिर १६ उपवास किये, इसी प्रकार १५, १४, १३, १२, ११ १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ उपवास किया। तदनन्तर आठ बेले किये फिर एक तेला किया, एक बेला किया अन्त में एक उपवास किया. इसके पारणे में पहले की भांति यथेष्ट दूध, तैलादि रसों का सेवन किया।

ऊपर की पंक्तियों में जिस प्रकार तपस्या की रूपरेखा का परिचय कराया गया है। यह रत्नावली तप की पहली लड़ी है। सूत्र के अनुसार इसकी आराधना एक वर्ष तीन मास २२ दिनों में सम्पन्न होती है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी की विधि का वर्णन किया गया है। इसमें एक उपवास से लेकर क्रमशः सोलह उपवास करने पड़ते है और पारणे के दिन अपनी इच्छा के अनुसार साधुवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए दूध-घृत-तेलादि सब पदार्थों का ग्रहण किया जा सकता है। सोलह उपवासों के अनन्तर चौतीस बेले किए जाते है, तदनन्तर क्रम से एक उपवास से से लेकर सोलह तक बढ़ाए जाते हैं, ठीक इसी प्रकार सोलह से पन्द्रह फिर इस के व्युत्क्रम से एक उपवास तक जाना पड़ता है। इस के पश्चात् आठ बेले, उसके बाद एक तेला, एक बेला और उसके बाद एक उपवास करना पड़ता है। इस प्रकार यह रत्नावली तप एक वर्ष तीन मास और बाईस दिनों में पूर्ण होता है।

"चउत्थं"—चतुर्थम्—यह चतुर्थ शब्द उपवास का बोधक है। षष्ठ दो उपवासों को कहते हैं। इस प्रकार एक मास के यदि तीस दिन हों तो एक मास के तप में बासठ भोजनों का परित्याग करना पड़ता है। एक मास के तप को **बे-सट्ठि** कह सकते है।

"सव्वकामगुणियं"—सर्वे ते काम गुणाः—अभिलाष-विषयीभूताः दधिदुग्धघृततैलमधुरस-लक्षणाः रसास्ते संजाताः यत्र तत् सर्वकामगुणितम्—सर्वरसोपेतमित्यर्थः भोजनमिति गम्यते—अर्थात् सर्वकामगुणित यह विशेषण है और भोजन शब्द का अध्याहार करके उसे विशेष्य बनाया जाता है। जिस भोजन में अपनी अभिलाषा के अनुसार दधि, दूध-घृत-तैलादि का सेवन किया जाये उस भोजन को सर्वकामगुणित भोजन कहते हैं और ऐसे भोजन से महासती काली देवी अपने उपवासों का पारणा किया करती थी।

"पढमा परिवाडी"—का अर्थ है पहली लड़ी। रत्नावली तप के चार भाग हैं। एक भाग को परिपाटी कहते हैं। प्रस्तुत में रत्नावली तप की जो रूपरेखा वर्णित की है वह रत्नावली तप की

पहली परिपाटी है। इस परिपाटी को पूर्ण करने में जो समय लगता है सूत्रकार ने उसका —**"एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं"**—इन शब्दों से निर्देश कर दिया है। रत्नावली तप की शेष परिपाटियों का वर्णन अगले सूत्रों में किया जानेवाला है।

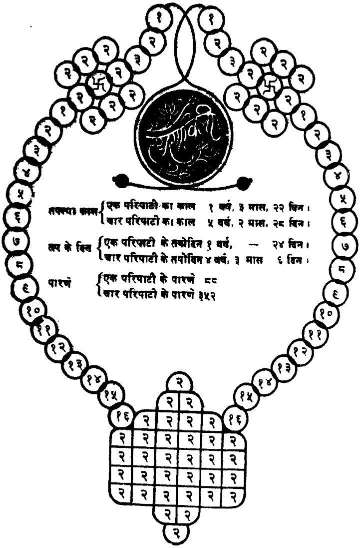
रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी को वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने एक यंत्र के रूप में उपस्थित करने का बुद्धि-शुद्ध प्रयत्न किया है। वह यंत्र वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

तत्र चतुर्थमेकेनोपवासेन, षष्ठं द्वाभ्याम्, अष्टमः त्रिभिः ततोऽष्टौ षष्ठानि, तानि च स्थापनायां चत्वारि-चत्वारि कृत्वा पंक्तिद्वयेन स्थाप्यन्ते, अथवा पंक्तिमात्रेण नवकोष्ठकान् कृत्वा मध्यकोष्ठे शून्यं विधाय शेषेस्वष्टषष्ठानि कोष्ठानि रचनीयानि, ततश्चतुस्त्रिंशत्तमपर्यन्तं, चतुस्त्रिंशत्तमं च षोडशभिरुपवासैः ततो रत्नावलीमध्यभागकल्पनाय चतुस्त्रिंशत् षष्ठानि, एतेषां स्थूलमणितया कल्पितत्वात्, एतानि चोत्तरधर्मेण द्वे च त्रीणि चत्वारि पञ्च षट्, पञ्चचत्वारिंशत् द्वे च स्थापनीयानि। अथवा अष्टाभिः षड्भिश्च रेखाभिः पञ्चत्रिंशत् कोष्ठका विधाय मध्ये शून्यं कृत्वा शेषेषु चतुस्त्रिंशत् षष्ठानि स्थापनीयानीति। एवं चतुस्त्रिंशत्तमादीनि चतुर्थान्तानि, पुनोऽप्यष्ट च षष्ठानि, स्थापना त्वेषां पूर्ववत्। पुनरप्यष्टम-षष्ठ-चतुर्थानीति, प्रथमायां परिपाट्यां सर्वकामगुणितं पारयति।
इस का अर्थ इस प्रकार है—

वृत्तिकार कहते हैं कि रत्नावली तप को स्थापना करते समय सर्व प्रथम एक उपवास फिर दो, फिर तीन, फिर आठ बेले रखो, आठ बेलों को चार चार बनाकर दो पक्तियों में रख लो या तीन पक्तियां बनाकर नौ कोठे बनाओ, मध्य के एक कोष्ठक में शून्य रहने दो शेष आठ कोष्ठकों में आठ बेले भर दो। फिर एक व्रत से लेकर सोलह उपवासों को क्रमशः रखते चले जाओ। यह सब कुछ करने के अनन्तर रत्नावली तप का मध्य भाग बनाओ उसमें चौतीस बेले रखो इसे रत्नावली भूषण को स्थूल मणि समझो. पैंतीस कोठे बनाकर मध्यका कोठा खाली छोड़कर शेष चौतीस कोठों में चौतीस बेले भर दो, फिर सोलह से लेकर एक उपवास को क्रमशः रखते चले जाओ फिर पहले की तरह आठ बेले रखो फिर तेला बेला और एक उपवास रखो। इस प्रकार रत्नावली तप की पहली परिपाटी का यंत्र बन जाता है। वास्तविक स्वरूप आगे पृष्ठ पर देखिए।

उक्त स्थापना-यंत्र में रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी का सम्यक्तया परिचय प्राप्त हो जाता है। इस प्रथम परिपाटी में तपस्या के दिन ३८४, पारणे के दिन ८८, सब मिलाकर १५ मास २२ दिन होते हैं। आगे की तीन परिपाटियों के भी एकत्रित कर लिये जायें तो चारों परिपाटियों के अनुष्ठान में पांच वर्ष दो मास अठाईस दिन लगते है। ध्यान रहे कि यह संख्या वर्ष ३६० दिन का और मास ३० दिन का मानकर ठीक बैठती है। महासती श्री काली देवी ने इन्हीं चारों परिपाटियों की आराधना करके रत्नावली तप का परिपालन किया था।

"अहासुत्तं जाव आराहिया"—यहां पठित **जाव** पद अन्य स्थान पर पढ़े गए अवशिष्ट पाठ का संसूचक है—



रत्नावली तप
का स्थापना-यन्त्र

प्रस्तुत सूत्र में रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी का परिचय कराया गया है। अब सूत्रकार अगली परिपाटी का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइ-वज्जं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता एवं जहा पढमाए वि णवरं सव्वपारणए विगइवज्जं पारेइ, जाव आराहिया भवइ। तयाणंतरं च णं

तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता अलेवाडं पारेइ, सेसं तहेव, एवं चउत्था परिवाडी, नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ, सेसं तं चेव।

पढमम्मि सव्वकामपारणयं विइयए विगइवज्जं।
तइयंमि अलेवाडं, आयंबिलओ चउत्थंम्मि॥

तए णं सा काली अज्जा रयणावली तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहिं य मासेहिं, अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता, जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं वंदेइ णमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

छाया—तदनन्तरं च द्वितीयायां परिपाट्यां चतुर्थं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा एवं यथा प्रथमायामपि, नवरं सर्वपारणायां विकृतिवर्जं पारयति यावद् आराधिता भवति। तदनन्तरं तृतीयायां परिपाट्यां चतुर्थं करोति, कृत्वा अलेपकृतं पारयति, शेषं तथैव, एवं चतुर्थापि परिपाटी, नवरं सर्वपारणके आचाम्लं पारयति, शेषं तच्चैव—

प्रथमायां सर्वकामपारणकं, द्वितीयायां विकृतिवर्जम्।
तृतीयामलेपकृतम् आचाम्लं च चतुर्थ्याम्॥

ततः सा काली आर्या रत्नावली तपःकर्म पञ्चभिः संवत्सरैर्द्वाभ्यां च मासाभ्याम् अष्टाविंशतिभिश्च दिवसैः यथासूत्रं यावदाराध्य यत्रैव आर्यचंदना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य आर्या चन्दनां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा बहुभिश्चतुर्थ-षष्ठा-ष्टम-दशम-द्वादशभिस्तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्ती विहरति।

पदार्थ—च—और; तयाणंतरं—उस के अनन्तर; णं—वाक्य सौन्दयार्थ है; दोच्चाए—दूसरी; परिवाडीए—परिपाटी में; चउत्थं करेइ—एक उपवास करती है, करित्ता—करके; विगइवज्जं—विकृति-वर्ज (जिस में विकृति दूध-घी-तेल-दधि-मीठे को छोड़ दिया जाये) भोजन से; पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके; छट्ठं—दो उपवास; करेइ—करती है, करित्ता—करके; विगइवज्जं—विकृतिवर्ज भोजन के द्वारा; पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके; एवं—इस प्रकार; जहा—जैसे; पढमाए वि—प्रथम परिपाटी में तेले आदि किए गए थे उसी भांति इस में भी किए गए; णवरं—इतना अन्तर है; सव्वपारणए—सब व्रतों के पारणे में; विगइवज्जं—विकृति रहित भोजन के द्वारा; पारेइ—पारणा करती है, पारित्ता—करके; जाव—यावत् यह परिपाटी एक वर्ष तीन मास और बाईस दिन में; आराहिया भवइ—आराधित होती है, सम्पन्न होती है; तयाणंतरं च—और उस के अनन्तर; तच्चाए परिवाडीए—तीसरी परिपाटी में; चउत्थं करेइ—१ उपवास करती है, करित्ता—करके; अलेवाडं—अलेपकृत-जिस भोजन में घी आदि का लेप भी न हो, उस भोजन से; पारेइ—पारणा करती है; सेसं तहेव—शेष वर्णन उसी प्रकार समझ लेना अर्थात् व्रत के बाद बेला किया, तेला किया, आदि सभी तप प्रथम परिपाटी के समान जानने चाहिए; एवं—इसी

प्रकार; **चउत्था**—चौथी; **परिवाडी**—परिपाटी भी समझ लेनी चाहिए; **नवरं**—अन्तर केवल इतना है; **सव्वपारणए**—सब व्रतों के पारणे में; **आयंबिलं पारेइ**—आयम्बिल तप द्वारा पारणा करती है; **सेसं**—शेष वर्णन (चारों परिपाटियों के आपसी अन्तर को गाथा से वर्णन करते है): **तं चेव**—प्रथम परिपाटी की तरह जनना; **पढमम्मि**—प्रथम परिपाटी में; **सव्वकाम पारणयं**—यथेच्छ दूध आदि सब पदार्थों से पारणा किया जाता है; **बिइयए**—द्वितीय परिपाटी में, **विगइवज्जं**—दूध आदि को छोड़ कर पारणा किया जाता है; **तइयंमि**—तीसरी परिपाटी में; **अलेवाडं**—घृतादि का जिसके साथ लेप रहा हो उस भोजन को छोड़कर पारणा किया जाता है; **चउत्थम्मि**—चौथी परिपाटी में; **आयंबिलओ**—आयंबिल तप का पारणा किया जाता है; **तए णं**—उसके बाद; **सा काली अज्जा**—वह काली देवी साध्वी; **रयणावली तवोकम्मं**—रत्नावली तप की; **पंचहिं**—पांच; **संवच्छरेहिं**—वर्षों; **य दोहिं**—और दो; **मासेहिं, य**—मास और; **अट्ठावीसाए दिवसेहिं**—अठाईस दिनों में; **अहासुत्तं**—सूत्र निर्दिष्ट विधि के अनुसार; **जाव**—यावत् **आराहेत्ता**—आराधना करके; **जेणेव**—जहां पर; **अज्जचंदणा**—आर्या चन्दना नामक साध्वी थी; **तेणेव**—वहां पर; **उवागया**—आई, **उवागच्छित्ता**—आकर; **अज्जचंदणं**—आर्या महासती चन्दनबाला महासती को; **वंदइ**—वन्दना करती है; **णमंसइ**—नमस्कार करती है; **वंदित्ता**—वन्दनाकर के; **णमंसित्ता**—नमस्कार करके; **बहूहिं**—अनेक; **चउत्थ**—एक उपवास; **छट्ठट्ठम**—षष्ठ-दो उपवास; **अष्टम**—तीन उपवास; **दसम**—चार उपवास; **दुवालसेहिं-तवोकम्मेहिं**—पांच उपवास रूप तपस्या से; **अप्पाणं भावेमाणी**—अपनी आत्मा को भावित करती हुई; **विहरइ**—विचरण करने लगी।

मूलार्थ—महासती काली देवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी सम्पन्न कर लेने के अनन्तर इस तप की दूसरी परिपाटी आरंभ की। इसमें सब से पहले एक उपवास किया और उसका पारणा किया। फिर बेला किया, पारणा करके तेला किया, फिर आठ बेले किए, फिर पारणा करके उपवास किया, बेला, तेला किया इसी प्रकार १६ उपवास किए। फिर ३४ बेले किए, पारणा करने के अनन्तर फिर १६ उपवास किए, फिर १५ किए, फिर चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। फिर पारणा करके आठ बेले किए, पारणा कर के फिर तेला, बेला और एक उपवास किया। सभी पारणों में दूध आदि पदार्थों का प्रयोग छोड़ दिया। इस तरह महासती काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी की सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधना की।

दूसरी परिपाटी की आराधना करने के अनन्तर आर्या काली देवी ने रत्नावली तप की तीसरी परिपाटी का आराधन करना आरंभ किया। प्रथम परिपाटी की तरह सर्व

प्रथम उपवास किया, फिर उसका पारणा किया, इस पारणे में घृतादि का लेप भी उस ने छोड़ दिया। उपवास के पारणे के अनन्तर आगे की तपस्या प्रथम परिपाटी के समान ही समझनी चाहिए। सभी पारणों में घृतादि के लेप का सर्वथा परित्याग कर दिया। रत्नावली तप की तीसरी परिपाटी की आराधना के पश्चात् आर्या काली देवी ने चौथी परिपाटी की आराधना आरंभ की। इस परिपाटी की तपस्या का समस्त विवरण प्रथम परिपाटी की तपस्या के समान है। अन्तर केवल इतना है कि इस चतुर्थ परिपाटी में तप का पारणा आयंबिल तप से किया गया। शेष वर्णन एक जैसा ही है।

इस प्रकार रत्नावली तप चार परिपाटियों में सम्पूर्ण होता है। इन में जो अन्तर है वह केवल पारणे में गृहीत वस्तु का है। प्रथम परिपाटी के पारणे में यथेष्ट दूध-घी आदि सब पदार्थों का सेवन किया जाता है। दूसरी परिपाटी में व्रतों के पारणे में दूध आदि विगयों का प्रयोग छोड़ दिया जाता है। तृतीय परिपाटी में व्रतों के पारणे में घृतादि विगयों के लेप का भी परित्याग होता है तथा चौथी परिपाटी में व्रतों का पारणा आयंबिल तप से किया जाता है।

महासती काली देवी ने पांच वर्ष दो मास अट्ठाईस दिनों में जब रत्नावली तप का आराधन कर लिया तब वह महासती आर्या चन्दना (चन्दनबाला) जी के पास आई, उनको वंदन नमस्कार करने के अनन्तर अनेकों व्रत-बेले-तेले-चौले तथा पंचौलों की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में रत्नावली तप की दूसरी-तीसरी और चौथी परिपाटी का वर्णन किया गया है। इन चारों परिपाटियों में उपवासों की संख्या और उन के क्रम में तो किसी प्रकार का भेद नहीं, किंतु प्रत्येक परिपाटी में पारणे का भेद है। प्रथम परिपाटी में पारणे के दिन दुग्धादि विकृतियों का ग्रहण किया जाता है, दूसरी में उनका परित्याग कर दिया जाता है और दूध-घृत आदि विकृतियों से रहित पदार्थों से पारणा किया जाता है। तीसरी परिपाटी में घृतादि के लेप का भी त्याग कर दिया जाता है। इसके पारणे में घृतादि से चुपड़ी हुई रोटी भी नहीं ली जाती, तथा चतुर्थ परिपाटी में आयंबिल से पारणा किया जाता है। यह तप पांच वर्ष दो मास और २८ दिनों में सम्पूर्ण होता है।

"विगइवज्जं"—का अर्थ है—विकृति से रहित। विकार-जनक दूध-घृत आदि पदार्थों को विकृति कहते हैं। विकृतिवर्ज, यह भोजन का विशेषण है। जिस भोजन में विकार उत्पन्न करने-वाले घृत-मिठाई आदि पदार्थों का सेवन न किया जाये उसे विकृतिवर्ज भोजन कहा जाता है। अस्थानरेश

महाराजा कोणिक की लघुमाता महासती श्री काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी का आराधन करते समय पारणे के दिन विकृति-रहित भोजन किया था।

"सव्वपारणए"—का अर्थ है—सब व्रतों के पारणे में। महासती काली देवी ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी की आराधना करते समय जितने व्रत किए थे उन सब के पारणे में विकृति रहित भोजन ग्रहण किया था। पारणा शब्द के साथ सर्व शब्द का संयोजन का उद्देश्य यही प्रतीत होता हैं कि "कुछ एक व्रतों के पारणे में" यह न समझ कर "सब व्रतों के पारणे" में यह समझना चाहिए।

"पारेइ जाव आराहिया"—यहा का **जाव** पद अन्य स्थानों पर पढ़े गए अवशिष्ट सूत्रांश को ग्रहण करने की ओर संकेत करता है।

"अलेवाडं पारेइ"— अलेपकृतं पारयति, विकृतिर्लेपरहितं पारयति, पारणके-विकृतेर्लेपमात्रमपि वर्जयतीत्यर्थ—अर्थात् जिस भोजन में विकृति का लेप भी नही है, जो भोजन घृत से चुपड़ा हुआ भी नहीं हैं, रूखा है। उस भोजन को **अलेपकृत** कहते है। सचित्र अर्द्धमागधी-कोषकार **अलेवाडं** शब्द का अर्थ करते हुए लिखते हैं—अलेपकृत—जिससे पात्र लिप्त न हो, ऐसी वस्तु चना आदि।

"आयंबिलं"—यह प्राकृत भाषा का शब्द है। संस्कृत में इसके आचाम्ल, आचामाम्ल तथा आयामाम्ल, ये तीन रूप बनते है। आयंबिल व्रत में दिन में एक बार भोजन करना होता है। यह भोजन नीरस होता है। घृत-दूध-दधि-तेल-गुड़-शक्कर मिष्ठान्न और नमक आदि से युक्त किसी भी प्रकार का स्वादिष्ट भोजन इस व्रत में ग्रहण नही किया जाता। चावल उड़द या सत्तु आदि पदार्थों में से किसी एक पदार्थ का इस में सेवन करना पड़ता है। आजकल भुने हुए चने खाकर और प्रासुक पानी पीकर आयंबिल तप करने की परम्परा प्रचलित है।

श्री काली देवी ने रत्नावली तप की चतुर्थ परिपाटी के व्रतों का पारणा आयबिल से किया। आयंबिल स्वयं एक तप है। महासती काली देवी की तप-साधना बड़ी विलक्षण थी। इसे साधनागत उग्रता की चरम सीमा ही समझना चाहिए कि वे एक कठोर तप का पारणा भी एक कठोर तप से किया करती थीं। धन्य है तपस्विनी महासती काली देवी जिस ने सुखमय वातावरण में जन्म लेकर भी रत्नावली जैसे विशाल एवं कठोर तप की आराधना सहर्ष एवं बिना किसी उदासीनता से सम्पन्न की।

"पंचहिं संवच्छरेहिं, दोहिं य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं"—का अर्थ है— पांच वर्ष दो मास २८ दिन। रत्नावली तप की चार परिपाटियां हैं। एक परिपाटी को सम्पन्न करने में—एक वर्ष तीन मास, बाईस दिन लगते हैं। इन को चार से गुणा करने से पांच वर्ष दो मास अट्ठाईस दिन हो जाते हैं, इसीलिये सूत्रकार ने **"पंचहिं संवच्छरेहिं** ये पद दिए हैं।

रत्नावली तप की सम्पूर्ण आराधना के अनन्तर उग्र तपस्विनी साध्वी श्री काली देवी महासती श्री आर्या आर्यचंदना की सेवा में रह कर तपस्यामय जीवन व्यतीत करने लगी। इस के अनन्तर क्या हुआ? उसका वर्णन सूत्रकार करते हैं—

मूल—तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं, जाव धमणिसंतया जाया यावि होत्था। से जहा इंगालसगड़ी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा, तवेणं तेएणं। तवतेयसिरीए अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कार, परक्कमे, सद्धा, धिइ, संवेगे वा ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्जचंदणाय अज्जाए अब्भणुण्णाए समाणीए संलेहणा भूसणा भूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरेत्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

छाया—ततः सा काली आर्या तेनोदारेण यावद् धमनिसंतता जाता चाप्यभवत्। अथ यथा अंगारशकटी वा यावत् सुहुतहुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्ना तपसा तेजसा तपस्तेजः श्रिया अतीव उपशोभमाना तिष्ठति।

ततस्तस्याः काल्याः आर्यायाः अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकाले अयमाध्यात्मिको यथा स्कन्दकस्य चिन्ता यावद् अस्ति उत्थानं कर्म बलं वीर्यं पुरुषकारः पराक्रमः श्रद्धा धृतिः संवेगस्तावन्मे श्रेयः कल्ये यावज्ज्वलति आर्यचन्दनामार्यामापृच्छ्य आर्याचन्दनया आर्यया अभ्यनुज्ञातायाः सत्याः संलेखना-जोषणा-जुष्टायाः भक्तपानप्रत्याख्यातायाः कालमनवकांङ्क्षन्त्याः विहर्तुम्, इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्ये यत्रैवार्यचन्दनाऽऽर्या तत्रैवोपगच्छति, उपागत्य आर्यचन्दनामार्यां वंदते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवमवदत्—

पदार्थ—**त एणं**—उसके अनन्तर; **सा काली अज्जा**—वह आर्या काली देवी; **तेणं ओरालेणं**—उस उदार—उग्र; **जाव**—यावत्—कठोर तप की आराधना के कारण; **धमणिसंतया**—धमनीसंतत, जिसकी धमनियां—नाड़ियां प्रत्यक्ष दिखाई दे रही हों या जो पिंजर मात्र हो; **जाया यावि होत्था**—ही हो गई थी; **से**—अथ—वाक्य रचना के लिये प्रयुक्त किया गया है; **जहा**—जिस प्रकार; **इंगालसगडी**—कोयलों से भरी गाडी होती है; **वा**—उसी तरह दिखाई देती है, अर्थात् जिस प्रकार कोयले से भरी गाड़ी चलने पर आवाज देती है ठीक उसी प्रकार काली साध्वी के शरीर की हड्डियां उठते-बैठते, चलते-फिरते कड़-कड़ की आवाज़ देती थीं। अत्यधिक दुबली हो गई; **जाव**—यावत्; **भासरासिपलिच्छन्ना**—राख के ढेर से ढकी हुई; **सुहुयहुयासणे इव**—जिसमें, अच्छी तरह होम किया गया है; ऐसी अग्नि की तरह; **तवेणं**—तप से; **तेएणं**— तेज के प्रभावसे; **तवतेयसिरीए**—तप तथा तेज से जन्य शोभा से; **अईव**—अत्यधिक; **उवसोभेमाणी चिट्ठइ**—सुशोभित हो रही थी; **तएणं**—उसके अनन्तर; **तीसे कालीए अज्जाए**—उस काली देवी आर्या महासती को; **अन्नया कयाइं**—किसी अन्य, समय;

पुव्वरत्तावरत्तकाले—मध्य रात्रि के समय; **अयमज्झत्थिए**—यह आध्यात्मिक—विचार उत्पन्न हुआ; **जहा**—जिस प्रकार; **खंदयस्स**—स्कन्दक मुनि जी के मन में विचार उत्पन्न हुआ था, उसी प्रकार आर्या काली देवी के मन में उत्पन्न हुआ; **जाव**—यावत्—विचार करने लगी कि मेरे शरीर में जब तक; **अत्थि**—है; **उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए**—उत्थान (खड़ा होना) कर्म-क्रिया, बल, वीर्य, शक्ति; **पुरिसक्कारपरक्कमे**—पुरुषकार और पराक्रम-उद्योग; **सद्धा-धिइ**—श्रद्धाधृति, अथवा धैर्य; **संवेगे वा**—अथवा मोक्ष की अभिलाषा, विषयों से निवृत्ति, वैराग्य है, मुझे चाहिए कि; **कल्लं**—अगले दिन; **जाव**—यावत्; **जलंते**—सूर्योदय होने पर; **अज्जचंदणं अज्जं**—आर्या चन्दना (चन्दनबाला) आर्या महासती को; **आपुच्छित्ता**—पूछ कर; **अज्जचंदणाए-अज्जाए**—आर्यचन्दना महासती से; **अब्भणुण्णाए समाणीए**—आज्ञा प्राप्त कर लेने पर; **संलेखना**—संलेखना (एक अनुष्ठान विशेष की), **झूसणा झूसियाए**—सेवन से सेवित; **भत्तपाणपडियाइक्खियाए**—अन्न तथा जल का परित्याग करती हुई; **कालं अणवकंखमाणीए**—मृत्यु की अभिलाषा न करती हुई; **विहरेत्तए**—विचरण करना चाहती हूँ; **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर; **एवं संपेहेइ**—इस प्रकार विचार करती है; **संपेहित्ता**—विचार करके; **कल्लं, जेणेव**—अगले दिन, जहां पर; **अज्जचंदणा अज्जा**—आर्या चन्दना महासती थी, **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आती है; **उवागच्छित्ता**—वहाँ आकर के; **अज्जचंदणं**—आर्या चन्दना साध्वी को; **वंदइ णमंसइ**—वन्दना नमस्कार करती है, **वंदित्ता णमंसित्ता**—वन्दना नमस्कार करके; **एवं वयासी**—इस प्रकार निवेदन करने लगी।

मूलार्थ—उसके अनन्तर वह काली आर्या उक्त उग्र तप से बहुत दुर्बल हो गई, उसकी नाड़ियां दिखाई देने लगी, उसका शरीर केवल अस्थियों का पिंजर बन गया। जिस प्रकार कोयलों से भरी गाड़ी चलने पर शब्द करती है ठीक उसी प्रकार उठते-बैठते उसकी अस्थियां शब्द करने लगीं। वह भस्म से आच्छादित (ढकी हुई) हवन की अग्नि के समान तप-तेज की शोभा से अत्यन्त सुन्दर लग रही थी।

एक बार अर्धरात्रि के समय उस काली देवी आर्या को एक विचार आया वह भगवती सूत्र में वर्णित स्कन्दक मुनि की तरह चिन्तन करने लगी कि मेरा शरीर तपस्या के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया है तथापि अभी मेरे में उत्थान (खड़ा होना) कर्म (कार्य करना),बल(शक्ति),वीर्य (सामर्थ्य), पुरुषकार(उद्योग),पराक्रम(कार्य-चेतना), श्रद्धा (आस्था), धृति (धैर्य) और संवेग (वैराग्य—मोक्षप्राप्ति की कामना) विद्यमान है, इसलिये मुझे उचित है कि मैं अगले दिन सूर्योदय होते ही आर्या चंदना महासती से आज्ञा प्राप्त करके संलेखना (एक अनुष्ठान विशेष, जिस में तप द्वारा क्रोध-मानादि कषायों का विनाश किया जाता है) की आराधना के साथ अन्न-जल का परित्याग कर

दूं और मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई जीवन व्यतीत करूं। ऐसा विचार करने के अनन्तर प्रातःकाल होने पर वह आर्या चन्दना साध्वी के पास आती है, उनको वंदन नमस्कार करती है, करने के पश्चात् उनसे निवेदन करने लगी।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने महासती उग्र तपस्विनी श्रीकाली देवी की तपश्चर्या से उसके शरीर पर पड़नेवाले प्रभाव का और अपनी गुरुणी महासती चंदनबाला से पूछकर संलेखनादि के लिये उसके मन में जो त्याग-वैराग्य प्रधान शुभ विचार उत्पन्न हुए उनका परिचय कराया गया है।

महासती कालीदेवी के तपस्या-प्रधान जीवन का परिशीलन करने से पता चलता है कि परम साध्य निर्वाण पद की साधना के लिये शारीरिक मोह का परित्याग करना होता है। जहां शरीर का मोह है, वहा अध्यात्म-साधना कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर का ममत्व छोड़े बिना तपस्या की आराधना असंभव है। तपस्या की आराधना किये बिना मोक्षोपलब्धि असंभव है और मोक्ष-प्राप्ति के बिना निर्वाणपद की प्राप्ति का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, अतः मोक्षकामी साधक को शारीरिक ममत्व से किनारा करना ही पड़ता है, प्रस्तुत सूत्र में वर्णित कालीदेवी का तपस्वी-जीवन इस सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है।

सूत्रकार कहते हैं कि रत्नावली तप की उग्र एवं कठोर साधना से महासती काली देवी का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, उसमें मांस और रक्त की बहुत कमी हो गई थी। उसकी धमनियां और नाड़ियां दिखाई देने लगी थीं, वह सूख कर हड्डियों का केवल पिंजर बन गई थीं। उठते-बैठते चलते फिरते उसकी हड्डियों से 'कड़ कड़' की आवाज आने लग गई थी, जैसे सूखे काष्ठ, सूखे पत्रों या सूखे कोयलों से भरी गाड़ी चलने पर खड़खड़ की आवाज देती है ठीक वैसे ही उठने-बैठने पर महासती कालीदेवी की अस्थियां कड़कड़ करने लग गई थीं।

रत्नावली तप की आराधना से भले ही महासती कालीदेवी का शरीर दुर्बल हो गया था तथापि उसकी दुर्बलता का इन पर कोई प्रभाव न था, वे शारीरिक चिन्ता से कभी व्याकुल नहीं हुई। इन्होंने शारीरिक क्षीणता के कारण कभी चिन्ता अनुभव नहीं की, प्रत्युत स्वस्थ व्यक्ति की भांति सदा प्रसन्न-मुख रहा करती थीं। दुर्बल शरीर से भी जितनी साधना सम्पन्न हो सकती थी उसके लिये सदा सतर्क रहती थीं। शरीरमोह तो इन्होंने कभी किया ही नहीं था।

उनके मुख पर आत्मिक तेज चमक उठा था, उनकी आध्यात्मिक शक्ति निखर उठी थी। जैसे भस्म से आच्छादित होने पर अग्नि बाहिर से शान्त दिखाई देती है, परन्तु भस्म के भीतर उसका तेज सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार उनका शरीर रक्त-मांस सूख जाने से निस्तेज एवं निर्बल दिखाई देता था, परन्तु उनकी अन्तरात्मा अहिंसा सत्यादि के प्रकाश से प्रकाशमय हो रही थी।

"ओरालेणं जाव धमणिसंतया" तथा **इंगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे"** यहां पठित **जाव** पदों से सूत्रकार ने—**पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धण्णेणं मंगलेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उत्तमेणं**

उदारेणं तवोकम्मेणं सुक्का, भुक्खा निम्मंसा, अट्ठिचम्मावणद्धा किडिकिडियभूया किसा धमणिसंतया जाया यावि होत्था। जीवंजीवेण गच्छइ जीवंजीवेण चिट्ठति, भासं भासतीति गिलाइ, भासं भासिस्सामीत्ति गिलाति, से जहा नामए कट्ठ सगडियाइ पत्तस,गडियाइ वा, इंगालसगडियाइ वा, उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्दं गच्छति, ससद्दं चिट्ठति, एवमेव कालीवि अज्जा ससद्दं गच्छति, ससद्दं चिट्ठति, उवचिया तवेणं अवचिया मंससोणिएणं।

इन पदों को अध्याहृत करने का निर्देश करता है। यह पाठ व्याख्या-प्रज्ञप्ति, भगवती सूत्र तथा ज्ञाताधर्मकथाङ्ग में वर्णित है। इस अवशिष्ट पाठ का संक्षिप्त सार इतना ही है कि तपस्या से अत्यन्त कृष वह काली आर्या अपनी समस्त आवश्यक क्रियाओं को आत्मबल से ही सम्पन्न किया करती थी, क्योंकि उनका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया था।

"**धमणिसंतया**"—नाड़ी व्याप्ता अर्थात् जो नाडियों से आवृत हो उसे "धमणि-संतता" कहते हैं। काली देवी का शरीर तपस्या के कारण इतना रक्त तथा मांस से हीन हो गया था कि उसकी नाडियां स्पष्ट दिखाई देने लगी थीं।

"**इंगाल सगडी**"—***अंगारशकटी, अंगाराः—कोयला "इति हिन्दी भाषायाम्, तैः भृता शकटी गन्त्री अंगार शकटी तद्वत्**—अर्थात् कोयलों से भरी हुई गाड़ी 'अंगार शकटी' कही जाती है। जैसे कोयलों की गाडी चलते समय किट्-किट् शब्द करती है उसी प्रकार आर्याकाली देवी जब चलती थी तो उसकी हड्डियां किट्-किट् करती थीं।

"**सुहयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा—सुहुतहुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्ना-सा काली आर्या भस्मसमूहान्तर्हितो घृतादि-तर्पित-वह्निरिव तपसा तेजसा अतीव उपशोभमाना तिष्ठति**-अर्थात् सुहुतहुताशन यह विशेष्य है और भस्मराशिप्रतिछन्ना यह विशेषण है। जो भस्म के समूह से ढकी हुई हो उसे 'भस्मराशि प्रतिछन्न' कहते हैं। हुताशन का अर्थ अग्नि है जो विशेष्य है और सुहुत का अर्थ है अच्छी तरह हवन किया हुआ इस तरह अर्थ विचारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुहुत-हुताशन शब्द घृत आदि की आहुतियों से संवृद्ध अग्नि का बोधक है।

"**तवेणं तेएणं, तवतेयसिरीए**"—**तपसा, तेजसा, तपस्तेजःश्रिया**। यहां पर सूत्रकार ने तीन बातों की ओर संकेत किया है—तप, तेज, तप एवं तेज की शोभा। सूत्रकार कहते है, कि काली देवी आर्या तप से जनित शक्ति के प्रभाव से, तेज के प्रभाव से तथा तप और तेज इन दोनों की सम्मिलित शोभा से सुशोभित हो रही थी।

"**पुव्वरत्तावरत्तकाले**" **पूर्वरात्रापररात्रकाले**। इस शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं पूर्व रात्रि और अपर रात्रि का मध्य भाग—मध्य रात्रि और रात्रि का अंतिम भाग—पिछली रात। सूत्रकार कहते हैं कि आर्या काली को मध्य रात्रि के समय एक विचार आया। मध्य रात्रि का समय बड़ा

---

* यथा अंगारशकटिका, शुष्कपत्रशकटिका, एरण्डकाष्ठशकटिका गमनकाले किट्किट् शब्दं करोति, तथैव अस्याः काल्याः आर्यायाः शरीरम् उत्थानादिक्रियायामस्थिसंघर्षवशात् किट्-किट् शब्दं करोति।

(वृत्तिकार-पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज)

शान्त होता है और समाधि के लिये अत्यन्त उपयोगी माना गया है। योगी-जन प्राय: इसी समय ध्यान किया करते हैं। **"जहा खंदयस्स चिंता जाव"**—इन पदों का भाव यह है कि भगवती सूत्र में वर्णित स्कन्दक मुनि को मध्य रात्रि के समय जैसे विचार उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार आर्या काली देवी के हृदय में भी विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने यह अनुभव किया कि तपस्या की आराधना के कारण अब मैं बहुत दुर्बल हो गई हूं, तथापि अभी मैं समर्थ हूं, उठने-बैठने की मेरे में क्षमता है, अत: अब क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषायों से मुक्त होकर अन्न-जल को त्याग कर सर्वदा समाधि में रहना ही श्रेयस्कर है।

"उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए"—इन सभी पदों का अर्थ मूलार्थ में दे दिया गया है। वैसे बल, वीर्य, पुरुषकार और पुरुषार्थ ये सब शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं। **"सद्धा धिई संवेगे"** इन शब्दों के प्रयुक्त करने का उद्देश्य इतना ही प्रतीत होता है कि आर्या काली देवी ने बढ़ती हुई शारीरिक दुर्बलता को देख कर विचार किया कि अब तक मेरा श्रद्धान ठीक है, धैर्य भी ठीक है तथा मेरे मन में मोक्ष-प्राप्ति की कामना भी प्रबल है, भविष्य में क्या हो? यह कौन जानता है, अत: अब मुझे इस समय का लाभ उठाना चाहिये। सलेखना के द्वारा आत्मा को शुद्ध बनाकर तप की आराधना में समय व्यतीत करना चाहिये।

"संलेहणा-झूसणा-झूसियाए, भत्तपाण-पडियाइक्खियाए"—संलेखना-जोषणाजुष्टाया: भक्तपान-प्रत्याख्याता:" यहां पठित संलेखना शब्द दो अर्थों का बोधक है— शरीर, कषाय आदि का शोषण और अनशन व्रत से शरीर त्याग का अनुष्ठान। जोषणा का अर्थ है आराधना और जुष्ट का अर्थ है आराधित। सलेखना की आराधना करने-वाली नारी **'संलेखना-जोषणा-जुष्टा'** और जिस ने अन्न तथा जल का प्रत्याख्यान कर दिया है उसे **'प्रत्याख्यात-भक्त-पाना'** कहा जाता है।

आर्या काली देवी को अर्ध रात्रि के समय जो विचार उत्पन्न हुआ उसे क्रियात्मक रूप देने के लिये उसने अपनी गुरुणी महासती जी के चरणों में निवेदन करने का जो संकल्प किया है यह उसको विनीतता का ही प्रतीक है। साधक को कोई भी कार्य करना हो तो उसे सर्व प्रथम अपने गुरुदेव से पूछना चाहिए, क्योंकि गुरुजन अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आज्ञा देने में उचित और अनुचित का जितना भली भांति विचार कर सकते हैं, उतना शिष्य नहीं, क्योंकि वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध होने से गुरुदेव सूक्ष्म दृष्टि से जो गम्भीर चिन्तन कर सकते हैं वह शिष्य की क्षमता से बाहिर होती है।

उदाहरणार्थ— शिष्य की ओर से यदि गुरुजन से आमरण अनशन के लिये निवेदन किया जाए तो दीर्घदर्शी तथा अनुभवी गुरुदेव सर्वप्रथम अपने ज्ञान-प्रकाश में यह देखेंगे कि आज्ञा मांगनेवाले शिष्य का आयुकर्म कितना शेष है? यदि स्वल्प है तो वे आज्ञा दे डालेंगे, यदि आयु अधिक है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, को आगे रखकर अपना निर्णय देंगे। इस तरह गुरुजनों से पूछ कर कार्य करने से लाभ ही लाभ है।

आर्या काली देवी ने महासती आर्या चन्दना की सेवा में उपस्थित हो कर क्या निवेदन किया तथा उन्होंने उत्तर में उसे क्या कहा ? आदि प्रश्नों का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं—

मूल—इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणीए संलेहणा जाव विहरित्तए ? अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह । तओ काली अज्जा अज्ज-चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा-झूसणा-झूसिया जाव विहरइ । सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठसंवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेत्ताए सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव चरिमुस्सासनीसासेहिं सिद्धा । निक्खेवो ।

छाया—इच्छामि हे आर्याः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती संलेखना यावत् विहर्तुम् । यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबधं कुरु । ततः काली आर्या आर्यचन्दनया अभ्यनुज्ञाता सती संलेखना-जोषणा-जुष्टा यावद् विहरति । सा काली आर्या आर्यचन्दनाया अन्तिके सामायिकादीनि एकादश अंगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णान् अष्टसंवत्सरान् श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनया छित्वा यदर्थाय क्रियते नग्नभावः यावच्चरमोच्छ्वासनिःश्वासैः सिद्धा । निक्षेपः ।

पदार्थ—**अज्जाओ !**—हे आर्ये !; **इच्छामि णं**—मेरी इच्छा है, **तुब्भेहिं**—आप की; **अब्भणुण्णाए समाणीए**—आज्ञा हो जाने पर; **संलेहणा**—संलेखना (अनशन से शरीर त्याग का अनुष्ठान, संथारा); **जाव**—यावत् अन्नजल का परित्याग करके, मृत्यु की आकाक्षा न करती हुई। **विहरित्तए**—विहरण करूं; **देवाणुप्पिया !**—हे भद्रे ! **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो, परन्तु; **पडिबंधं**—प्रतिबन्ध—प्रमाद; **मा करेह**—मत करो; **तओ**—उस के अनन्तर; **काली अज्जा**—आर्या काली देवी; **अज्ज चंदणाए**—आर्या चन्दना (चदन बाला) के द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त हो जाने पर; **संलेहणा—झूषणा-झूसि**—संलेखना (संथारा) की आराधना करके; **जाव**—अन्न जल के परित्याग के साथ मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई; **विहरति**—समय व्यतीत करने लगी; **सा**—वह; **काली अज्जा**—आर्या काली देवी; **अज्ज चंदणाए**—आर्या चन्दना के; **अंतिए**—पास **सामाइयमाइयाइ**—सामायिक (आचारांग सूत्र) है आदि में जिनके ऐसे; **एक्कारस अंगाइं**—ग्यारह अगों का; **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके; **बहुपडि-पुण्णाइं**—बहु प्रतिपूर्ण—पूरे; **अट्ठसंवच्छराइं**—आठ वर्ष; **सामण्ण-परियागं**—साधु वृत्ति; **पाउणित्ता**—पाल कर; **मासियाए**—एक मास की; **संलेहणाए**—संलेखना (संथारे) से; **अप्पाणं**—अपनी आत्मा को; **झूसेत्ता**—आराधित करके; **अणसणाए**—अनशन (उपवास) के द्वारा —**अर्थात्**

संलेखना से अपनी आत्मा को मोक्षमार्ग के अनुकूल बना कर; **सट्ठिभत्ताइं**—साठ भोजन; **छेदेत्ता**—छोड़ कर; **जस्सट्ठाए**—जिस उद्देश्य के लिये; **नग्गभावं**—नग्नभाव—साधु जीवन अंगीकार किया था; **जाव**—यावत् उसको सिद्धि करके; **चरिमुस्सास-नीसासेहिं**—अन्तिम श्वास के साथ ही; **सिद्धा**—सिद्ध हो गई, **निक्खेवो**—अध्ययन के निक्षेप उपसंहार-वाक्य अर्थात् समाप्ति-वाक्य की कल्पना कर लेना।

मूलार्थ—आर्या काली देवी अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दना से निवेदन करने लगी कि आर्ये ! यदि आप आज्ञा दें तो मेरी इच्छा है कि संलेखना (आमरण अनशन) की आराधना द्वारा अन्न जल का परित्याग करके मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई, अपने जीवन को व्यतीत करूं।

आर्या काली देवी की विनीत प्रार्थना सुनकर महासती आर्य चन्दना ने कहा—भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो, पर शुभ कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

महासती आर्या चन्दना की ओर से आज्ञा मिल जाने के अनन्तर आर्या काली देवी ने सलेखना (संथारा) अंगीकार करके अन्न-जल का परित्याग कर दिया और मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

आर्या काली ने महासती आर्या चन्दना के पास सामायिक (आचारांग) आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन किया। पूरे आठ वर्ष तक संयम का पालन किया, एक मास की संलेखना से अपने को मोक्षमार्ग के अनुकूल बनाया। अनशन के द्वारा साठ भोजनों का परित्याग करके जिस उद्देश्य के लिये साध्वी बनी थी उस उद्देश्य को अर्थात् सिद्ध-पद को अंतिम श्वासोच्छ्वास के साथ प्राप्त कर लिया।

अंतगड़ सूत्र के अष्टम वर्ग का प्रथम अध्ययन सुनाकर आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे—कि हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अंतगड़ सूत्रीय अष्टम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि आर्या काली देवी ने मध्य रात्रि के समय आमरण अनशन करके अन्न पानी के परित्याग कर देने का जो संकल्प किया था, उसी संकल्प को अपनी गुरुणी चन्दनबाला के चरणों में निवेदन किया और उसको क्रियात्मक रूप देने के लिये आज्ञा प्राप्त

करने की इच्छा प्रकट की। परम कृपालु गुरुणीश्री ने आर्या काली को स्वीकृति प्रदान करते हुए कहा कि हे भद्रे ! तुम्हारा विचार बहुत श्रेष्ठ है, परम साध्य निर्वाणपद की साधना ऐसे आध्यात्मिक अनुष्ठानों से ही सम्पन्न हो सकती है, परन्तु ऐसे पवित्र अनुष्ठानों की आराधना में विलंब नहीं करना चाहिये। ऐसे काम तो प्रमाद छोड़कर शीघ्र सम्पन्न कर देने चाहियें। महासती आर्या चन्दना की स्वीकृति मिलते ही आर्या काली ने संलेखना—संथारे का अनुष्ठान आरंभ कर दिया, अन्न-जल का परित्याग करके वह आत्मचिन्तन में संलग्न हो गई। यह सब कुछ करने पर भी वह मृत्यु से कभी भयभीत नहीं हुई और न ही मृत्यु की कभी आकांक्षा की।

आर्या काली ने ११ अंगों का अध्ययन किया, आठ वर्षों तक संयम साधना की, एक मास का संथारा किया, ६० भोजनों का त्याग करके उसने अपनी आत्मा को मोक्ष-मार्ग के अनुकूल बनाया जिस उद्देश्य के लिये उसने मोहमाया के बंधन तोड़ कर साधुवृत्ति अंगीकार की थी, अहिंसा संयम तप की कल्मषहारिणी पवित्र त्रिवेणी में गोते लगा कर उस उद्देश्य को पूर्ण बनाया और अंत में सिद्ध गति में जा विराजमान हुई।

"संलेहणा जाव विहरत्तए" यहां पठित **जाव** पद **झूसणा-झूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए"** इन पदों का संसूचक है। इनका अर्थ गत सूत्र मे किया जा चुका है। तथा **"झूसिया जाव विहरइ"** यहां का **जाव** पद **"भत्त-पाण-पडियाइक्खिया कालं अणवकंखमाणी"** इन पदों का बोधक है। अर्थ पहले की तरह जान लेना। **"सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं"**—का अर्थ है सामायिक आदि ग्यारह अंग-शास्त्र। आर्या काली देवी ने अपनी गुरुणी महासती चन्दन बाला से ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन किया। ग्यारह अंगों मे पहला अंग-शास्त्र आचारांग सूत्र है। आचारांग सूत्र को सामायिक भी कहते है, इसीलिये प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने सामायिक शब्द का प्रयोग किया है।

आर्या काली ने अपनी गुरुणी से ग्यारह अंग-शास्त्रों का अध्ययन किया, इस कथन से यह बात भली प्रकार प्रमाणित हो जाती है कि जिस प्रकार साधु को अंग शास्त्र पढ़ने का अधिकार है उसी प्रकार साध्वी को भी है। साध्वियां भी साधुओं की तरह अंग शास्त्र पढ़ सकती हैं। इसके अतिरिक्त काली देवी की जीवनी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि परमकल्याण रूप निर्वाणपद की प्राप्ति में साधु और साध्वी दोनों को समानाधिकार है।

व्यवहार सूत्र के दसवें उद्देश्यक में साधु-साध्वी के पाठ्य क्रम का वर्णन किया गया है। वहां लिखा है कि दस वर्ष की दीक्षावाला साधु व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र पढ़ सकता है, इससे पहले का नहीं, परन्तु यहां पर आठ वर्ष की संयम पर्याय में ग्यारह अंगों के अध्ययन का निर्देश है। काली देवी की दीक्षा आठ वर्ष की थी उसने ग्यारह अंग पढ़े। ऐसी दशा में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि व्यवहार सूत्रानुसार काली देवी ने अंग-शास्त्र पढ़ने की अधिकारिणी न होते हुए भी अंग-शास्त्रों का अध्ययन क्यों किया ?

उत्तर में निवेदन है कि स्थानांग भगवती आदि सूत्रों में पांच व्यवहार बतलाए गए हैं। मोक्ष-अभिलाषी आत्माओं की प्रवृत्ति और निवृत्ति एवं तत्कारणक ज्ञान विशेष को व्यवहार कहते हैं। ये पांच हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. **"आगमव्यवहार"**—केवल ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दश पूर्व और नव पूर्व का अध्ययन आगम कहलाता है। आगम से प्रवर्तित प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप व्यवहार को आगम-व्यवहार कहते हैं।

२. **श्रुतव्यवहार**—आचार प्रकल्पादि ज्ञानश्रुत है, इससे किया जानेवाला व्यवहार श्रुत व्यवहार है। नव-दश और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुतरूप है, परन्तु अतीन्द्रिय अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशयवाला है, अतः वह आगम रूप माना गया है।

३. **आज्ञा-व्यवहार**—दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रह हों और शरीर क्षीण हो जाने से वह विहार में असमर्थ हों उनमें से किसी एक को प्रायश्चित्त आने पर वह मुनि योग्य गीतार्थ शिष्य के अभाव में मति और धारणा में अकुशल अगीतार्थ शिष्य को आगम की सांकेतिक गूढ़ भाषा में अपने अतिचार-दोष कहकर या लिखकर उसे अन्य गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उस के द्वारा आलोचना करता है। गूढ भाषा मे कही हुई आलोचना सुनकर वे गीतार्थ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-संहनन, धैर्य और बलादि का विचार कर स्वय वहां आते है, अथवा योग्य गीतार्थ शिष्य को समझा कर भेजते हैं। यदि वैसे शिष्य का भी उनके पास योग न हो तो आलोचना का संदेश लानेवाले के द्वारा ही गूढ़ अर्थ में अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते हैं तो यह आज्ञा-व्यवहार है।

४. **धारणा-व्यवहार**—किसी गीतार्थ संविज्ञ मुनि ने द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव की अपेक्षा जिस अपराध में जो प्रायश्चित्त दिया है उसकी धारणा से वैसे अपराध में प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा-व्यवहार है।

५. **जीत-व्यवहार**—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पुरुष प्रतिसेवना का और संहनन, धृति आदि की हानि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत-व्यवहार है।

व्यवहार सूत्र में जो दश वर्ष के दीक्षित मुनि को सूत्र पढ़ाने का विधान किया गया है यह प्राय श्चित्त सूत्र-व्यवहार को लेकर लिखा गया है। आगम व्यवहार को लेकर चलनेवाले महापुरुषों पर यह विधान लागू नहीं होता। आगम-व्यवहारी जो करते हैं उसे उचित ही माना जाता है उनके किसी व्यवहार में अनौचित्य के लिये कोई स्थान नहीं होता।

काली देवी के सम्बन्ध में आठ वर्षों की दीक्षा-पर्याय में अंग-शास्त्र पढ़ने का उल्लेख मिलता है, परन्तु धन्य अनगार के सम्बन्ध में तो लिखा है कि उन्होंने नौ मास की दीक्षा-पर्याय में अंग-शास्त्र पढ़े। इस से स्पष्ट है कि आगम-व्यवहार के सामने सूत्र-व्यवहार नगण्य है। इसी दृष्टि से व्याख्या प्रज्ञप्ति स्थानांग और व्यवहार सूत्र में लिखा है—**आगम बलिया समणा निग्गंथा।**

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि— व्यवहार सूत्र के अनुसार "दशवर्षीय दीक्षित साधु को अंग पढाए जाते हैं", पर यह विधान आगम-व्यवहारवाले मुनियों पर लागू नहीं होता।

आर्या काली देवी का शरीर जब अस्थिपंजर मात्र शेष रह गया तब उसके द्वारा अंग-शास्त्रों का अध्ययन कुछ विचारणीय सा ही प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त, इस अध्ययन के आरम्भ में अंगशास्त्रों के अध्ययन का उल्लेख किया जा चुका है, फिर दूसरी बार अंगशास्त्र के अध्ययन के उल्लेख का क्या उद्देश्य है? उत्तर में निवेदन है कि शास्त्र में स्वाध्याय के पांच प्रकार लिखे गए हैं, इनमें एक प्रकार परिवर्तना है। परिवर्तना का अर्थ है— पठित शास्त्र की पुनरावृत्ति करना। महासती काली ने पूर्व तो अंग शास्त्रों का अध्ययन किया था, परन्तु तप साधना काल में वह महासती चन्दनबाला की सेवा में उनकी विशेष रूप से परिवर्तना कर रही थीं। इसी परिवर्तना को सूत्रकार ने उक्त पाठ से संसूचित किया है। रही दुर्बलता की बात, इस के सम्बन्ध में इतना ही निवेदन है कि जहां शास्त्र-स्वाध्याय की सच्ची लगन हो, वहां शरीरगत दुर्बलता का कोई महत्त्व नहीं रहता।

"मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसेत्ता सट्ठिभत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता—" का अर्थ है आर्या काली देवी को सलेखना एक मास चली, एक मास को सलेखना से उसने अपनी आत्मा को—**भूसेत्ता**—मोक्ष मार्ग के अनुकूल बनाकर अपनी आत्मा का कल्याण किया। महीने में उसने ६० भोजनों का परित्याग किया। ६० भोजनों के उल्लेख का अर्थ—महीना २६ दिन। का था।

"निक्खेवओ"—का अर्थ है—निक्षेप। निक्षेप उपसंहार या समाप्ति-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में उपसंहार-वाक्य इस प्रकार है—**एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव-संपत्तेणं छट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् हे जंबू! मोक्ष सम्प्राप्त-श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशाङ्ग के आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में आर्या काली देवी का वर्णन किया गया है। यह राजगृह नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी तथा चम्पानरेश कूणिक की लघुमाता थी। यौवन अवस्था में त्याग और वैराग्य की भावना के साथ इन्होंने भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा अंगीकार की थी। जिस निष्ठा के साथ ये दीक्षित हुई थी, अन्त तक इन्होंने उस निष्ठा को बनाये रखा। उसने रत्नावली जैसे विशाल तप की आराधना करके नारी-जगत के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया कि यदि किसी बहन को आभूषण धारण करने की लालसा हो तो उसे तप के आभूषण पहिनने चाहिएं। इससे शृंगार का शृंगार होगा और साथ में जीवन का उद्धार भी हो जायेगा।

।। प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ।।

द्वितीय अध्ययन

अब सूत्रकार दूसरे अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल— **उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।**

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ जहा रयणावलीए छट्ठाइं, एक्काए परिवाडीए संवच्छरो पचमासा बारस दिवसा सेसं तहेव। नव वासा परियाओ जाव सिद्धा।

छाया—उत्क्षेपः! एवं खलु जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी। पूर्णभद्रं चैत्यम्। कूणिको राजा, तत्र श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञः क्षुल्लमाता सुकाली नाम देवी आसीत्। यथा काली तथा सुकाल्यपि निष्क्रान्ता, यावद् बहुभिश्चतुर्थ यावद् आत्मानं भावयन्ती विहरति।

ततः सा सुकाली आर्या अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्यचंदना आर्या यावदिच्छामि आर्ये! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती कनकावली तपःकर्म उपसंपद्य विहर्तुम्। एवं यथा रत्नावली तथा कनकावल्यपि नवरं त्रिषु स्थानेषु अष्टमानि करोति, यथा रत्नावल्यां षष्ठानि एकस्यां परिपाट्यां संवत्सरः पंचमासाः द्वादश दिवसाः शेषस्तथैव, नव वर्षाणि पर्यायो यावत् सिद्धा।

पदार्थ—**उक्खेवो**—इस द्वितीय अध्ययन का उत्क्षेप—प्रस्तावना—वाक्यकल्पित कर लेना। **एवं**—खलु, जम्बू! इस प्रकार। निश्चयार्थक है। हे जम्बू! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल तथा उस समय; **चंपा नाम णयरी**—चम्पा नामक नगरी थी; **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्णभद्र नामक चैत्य-उद्यान था। **कोणिए राया**—कोणिक राजा; **तत्थ णं**—वहां पर; **सेणियस्स रण्णो**—श्रेणिक राजा की; **भज्जा**—धर्मपत्नी; **कोणियस्स रण्णो**—कोणिक राजा की; **चुल्लमाउया**—लघु माता; **सुकाली नामं देवी होत्था**—सुकाली नाम की देवी थी; **जहा काली, तहा**

सुकाली **वि**—जिस प्रकार काली देवी उसी प्रकार सुकाली देवी भी; **णिक्खंता**—दीक्षित हुई; **जाव**-यावत्—उस देवी ने; **बहूहिं**—अनेक; **चउत्थ**—चतुर्थ (उपवास); **जाव**-यावत् —बेले-तेले, चौले आदि तप के द्वारा; **अप्पाणं भावेमाणी**—अपनी आत्मा को भावित करती हुई; **विहरइ**—विचरण करने लगी।

तए णं—उस के अनन्तर; **सा सुकाली अज्जा**—वह आर्या सुकाली देवी; **अण्णया कयाइं**—किसी अन्य समय; **जेणेव**—जहां पर; **अज्जाचंदणा**—आर्य चन्दना (चन्दनबाला); **अज्जा**—आर्या थी, वहाँ पर आई; **जाव**-यावत्—उस को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगी **अज्जाओ**!—हे आर्ये; **तुब्भेहिं**—आप के द्वारा; **अभणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर; **कणगावली तवोकम्मं**—कनकावली नामक तपःकर्मरूप अनुष्ठान को; **उवसंपज्जित्ताणं**—धारण करके; **विहरित्तए**—विहरण करना; **इच्छामि**—चाहती हूं, **एवं जहा**—इस प्रकार जैसे; **रयणावली**—रत्नावली तप है; **तहा कणगावली वि**—वैसे कनकावली तप भी है; **णवरं**—अन्तर केवल इतना है; **जहा**—जिस रत्नावली तपसे काली देवी ने; **तिसु ठाणेसु**— तीनों स्थानों पर; **छट्ठाइं**—बेले किए थे वैसे इस तप में बेले न करके देवी सुकाली; **अट्ठमाइं**—तेले; **करेइ**—करती है (कनकावली तप को); **एक्काए परिवाडीए**—एक परिपाटी में; **संवच्छरो**—एक वर्ष; **पंच मासा**—पांच मास, **बारस दिवसा**—१२ दिन लगे; **सेसं तहेव**—शेष वर्णन काली देवी की तरह जानना; **नव**—नौ; **वासा परियाओ**—वर्ष दीक्षा पाली; **जाव**-यावत्—सब कर्मों का क्षय करके; **सिद्धा**—सिद्ध बन गई।

मूलार्थ—अन्तगड़ सूत्र के आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ सुनने के अनन्तर जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि—हे भगवन्! मोक्ष सम्प्राप्त भगवान महावीर ने अन्तगड़ सूत्रीय अष्टम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का जो अर्थ बताया है वह सुनाने की कृपा करें।

आर्य जंबू अनगार की विनती सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी आठवें वर्ग के द्वितीय अध्ययन का अर्थ सुनाते हुए कहने लगे कि हे जम्बू! उस काल तथा उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। उस के बाहिर पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था, महाराजा कौणिक राज्य किया करते थे। वहां पर महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा कौणिक राजा की लघुमाता सुकाली नाम की देवी थी। जिस प्रकार काली देवी दीक्षित हो गई थी उसी प्रकार सुकाली देवी भी दीक्षित हो गई। सुकाली देवी ने श्रमण भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होकर आचारांग आदि ग्यारह अंग पढ़े और व्रत बेले, तेले एवं चौले आदि तपस्याओं के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई वह विचरण करने लगी।

एक दिन सुकाली देवी महासती आर्या चंदना के चरणों में उपस्थित हुई, वह वंदन नमस्कार करने के अनन्तर उनसे निवेदन करने लगी कि 'हे आर्ये ! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मेरी इच्छा है कि मैं कनकावली तप की आराधना करूं। आर्या सुकाली देवी की विनती सुनकर चन्दनबाला बोली— भद्रे ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो शुभ कार्य में प्रमाद मत करो ।

महासती आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर लेने पर आर्यासुकाली देवी ने कनकावली तप का अनुष्ठान आरंभ कर दिया । कनकावली का आराधन भी रत्नावली तप की तरह किया जाता है, अन्तर इतना है कि रत्नावली तप के तीन ठिकानों में आठ बेले किए जाते हैं, परन्तु कनकावली तप के तीनों ठिकानों में सुकाली देवी ने आठ तेले किए। कनकावली तप की चार परिपाटियां होती हैं। प्रथम परिपाटी में एक वर्ष पांच मास १२ दिन लगते हैं। शेष समस्त वर्णन रत्नावली तप के समान जानना चाहिये। आर्या सुकाली ने नौ वर्ष दीक्षा का पालन किया और अन्त में जन्म-मरण समाप्त करके सिद्ध हो गई ।

व्याख्या—प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन में महासती सुकाली देवी के जीवन का वर्णन किया गया है। यह चम्पा नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी। इनका पुत्र भी युद्ध में मारा गया था, उसीके वियोग में यह भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गई थी। दीक्षित हो जाने के अनन्तर इन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। शास्त्रीय ज्ञानालोक से आलोकित हो जाने के साथ-साथ इन्होंने तपस्या का भी आराधन किया,व्रत बेले,तेले, चौले आदि द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध बनाया। कनकावली तप की आराधना द्वारा इन्होंने अपने जीवन को तपोमय बना डाला। अन्त में नौ वर्षों की संयम-साधना निर्विघ्न सम्पन्न करके ये मुक्ति-धाम में जा विराजीं।

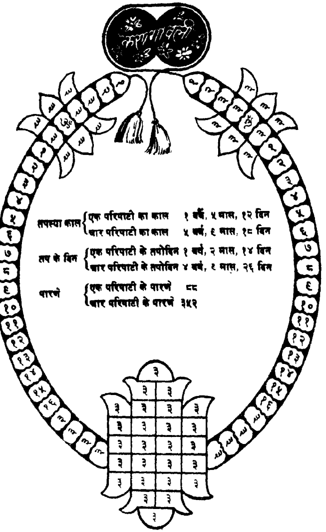
"उक्खेवओ"—का अर्थ है—उत्क्षेप। उत्क्षेप प्रस्तावना या आरंभ-वाक्य को कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना इस प्रकार है—

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अट्ठमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बीअस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? इस पाठ का भावार्थ मूलार्थ में लिखा जा चुका है।

"चुल्लमाउया"—शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ३६२ पर लिखा जा चुका है। **"जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता—यथा काली तथा सुकाल्यपिनिष्क्रान्ता, कालीवत् सुकाली देव्यपि परिव्रजिता**—अर्थात् काली देवी ने जिस प्रकार संसार की मोह-माया को ठुकरा कर दीक्षा अंगीकार की थी, ठीक उसी प्रकार सुकाली देवी ने भी दीक्षा ग्रहण कर साधुत्व का पालन किया।

"निक्खंता जाव बहूहिं"—यहां पठित जाव पद दीक्षित होने के अनन्तर आर्या सुकाली देवी ने आचारांग सूत्र आदि ग्यारह अंग पढ़े, इन भावों का परिचायक है।

"चउत्थ जाव अप्पाणं"—यहां पठित जाव **छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं"** इस पाठ का बोधक है। इसका अर्थ पीछे पृष्ठ पर लिखा जा चुका है।



कनकावली
स्थापना-यन्त्र

"अज्जा जाव इच्छामि"—यहां पठित जाव पद **तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी"** इन पदों का परिचायक है, अर्थ स्पष्ट ही है।

"कणगावलीतवोकम्मं"—का अर्थ है — कनकावली नामक तप। सुवर्णमय मणिरूप आभरण विशेष का नाम कनकावली है। जैसे सुवर्णमय मणियों का हार बहुमूल्य होता है,तथा आभूषण रूप होने से शरीर की शोभा का संवर्धक होता है। वैसे ही कनकावली तप आचरण में कठिनतर होता है तथा आत्मा में विशुद्धि और निर्मलता का सम्पादन करता हुआ अन्त:करण को सुशोभित करने की महान सामर्थ्य रखता है। कनकावली तप और रत्नावली तप में इतना ही भेद है कि रत्नावली में जहां आठ बेले तथा ३४ बेले किये जाते हैं वहां कनकावली तप में आठ तेले और ३४ तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर है, पारणे में भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पाँच मास १२ दिन लगते हैं, इस प्रकार चारों परिपाटियों के ५ वर्ष ९ मास और १८ दिन होते हैं। कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा पूर्वप्रदर्शित यंत्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है।

"जहा रयणावली तहा कनकावली वि—यथा रत्नावली तथा कनकावली अपि, रत्नावली तप:सदृशं कनकावली तपोऽपि विज्ञेयम्—अर्थात् जिस प्रकार रत्नावली तप का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कनकावली तप का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। जैसे रत्नावली की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध आदि सब विगयों का सेवन किया जाता है वैसे ही कनकावली की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध आदि का ग्रहण होता है। इसी प्रकार अगली परिपाटियों के पारणे के सम्बन्ध में भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

रत्नावली और कनकावली दोनों में जो अन्तर है उस को सूत्रकार ने **"णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइं"** इन पदों से अभिव्यक्त कर दिया है। इनका अर्थ है—रत्नावली तप के तीन स्थानों में बेले किये जाते हैं, परन्तु कनकावली तप के तीन स्थानों में तेले करने होते हैं। रत्नावली तप में एक स्थान पर आठ बेले, दूसरे पर ३४ बेले तथा तीसरे स्थान पर फिर आठ बेले किये जाते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि इन्हीं तीन स्थानों पर कनकावली तप में ८ तेले ३४ तेले तथा फिर आठ तेले करने पड़ते हैं। यही दोनों में अन्तर है।

"एक्काए परिवाडीए संवच्छरो पंच मासा बारस दिवसा"—का अर्थ है—कनकावली तप की प्रथम परिपाटी में एक वर्ष ५ मास और १२ दिन लगते हैं।* यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह दिनों की संख्या वर्ष के ३६० तथा मास के ३० दिन मान कर ठीक बैठती है, अन्यथा नहीं।

"सेसं तहेव"—का अर्थ है—शेष वर्णन आर्या काली देवी के समान जानना चाहिये। रत्नावली तप की आराधना करने के अनन्तर आर्या काली देवी ने मध्यरात्रि में धर्म-जागरण करते समय संलेखना की आराधना करके अन्न जल के परित्याग के साथ जीवन व्यतीत करने का जैसे संकल्प किया था वैसे ही आर्या सुकाली देवी ने कनकावली तप की आराधना करने के अनन्तर एक दिन मध्यरात्रि में संलेखना की आराधना द्वारा अन्न-जल का परित्याग करके जीवन का शेष काल व्यतीत करने का निश्चय किया।

---

*श्रद्धेय पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज अपने अन्तगडसूत्र में कनकावली तप की प्रथम परिपाटी के एक वर्ष ५ मास अठारह दिन मानते हैं। **"एक्काए परिवाडीए संवच्छरो पंच मासा, अट्ठारस्स दिवसा"**—समझ नहीं सके कि यह किस आधार पर लिखा गया है?

"जाव सिद्धा"—यहां पठित **जाव** पद—निर्वाण पद प्राप्त करने से पूर्व आर्या सुकाली ने अपनी आत्मा को मोक्ष-मार्ग के अनुकूल बनाया। अनशन करके अमुक संख्या में भोजन छोड़े, अतः जिस ध्येय को लेकर साधु-जीवन अंगीकार किया था उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की और अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ सम्पूर्ण कर्म क्षय करके निष्कर्मता प्राप्त की—आदि भावों का परिचायक है।

प्रस्तुत द्वितीयाध्ययन में वर्णित सुकाली देवी के जीवन का परिशीलन करने से यह भली भांति प्रमाणित हो जाता है कि आत्म-शुद्धि का मुख्य साधन तप है। यद्यपि शास्त्रकारों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारों को मोक्ष का साधन माना है, तथापि व्यवहार पक्ष में तप को ही विशेष स्थान दिया गया है, इसीलिये इसे चारित्र के अन्तर्भूत न करते हुए इसका पृथक् उल्लेख किया गया है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

अन्तगड सूत्र के आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन के अनन्तर तीसरा अध्ययन आता है, अतः अब सूत्रकार तीसरे अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं महाकाली वि, नवरं खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दशमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ,

करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा।

छाया—एवं महाकाल्यपि, नवरं क्षुल्लकं सिंहनिष्क्रीडितं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तथा—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा, द्वादशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा शोडशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा शोडश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा शोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टम करोति, कृत्वा सर्वमकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा छट्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति पारयित्वा चतुर्थं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा तथैव चतस्रः परिपाट्यः, एकस्यां परिपाट्यां षण्मासाः सप्त च दिवसाः, चतसृणां द्वे वर्षे अष्टाविंशति-दिवसाः, यावत् सिद्धा।

पदार्थ—**एवं**—इस प्रकार, जिस प्रकार काली देवी का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार; **महाकाली वि**—महाकाली देवी का भी समझना चाहिए; **णवरं**—केवल अन्तर इतना है कि काली देवी ने; **खुड्डागं**—क्षुल्लक-छोटा; **सीहनिक्कीलियं**—सिंहनिष्क्रीडित—एक प्रकार का तप, जिसमें सिंह गमन की तरह चढ़ते-उतरते उपवासों की परिपाटी होती है; **तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं**—तप को धारण करके; **णं**—वाक्य सौन्दयार्थ है; **विहरइ**—विहरण किया करती थी; **तंजहा**—जैसे कि; **चउत्थ**—चतुर्थ—उपवास; **करेइ**,—करती है; **करित्ता**—करके;

सव्वकामगुणितं—सर्व प्रकार के इष्ट पदार्थों पारणा करती है; **से**—पारेइ; **छट्टं करेइ**—बेला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के इच्छित पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चउत्थं करेइ**—चतुर्थ—(उपवास) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं पारेइ**--सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **ग्रट्ठमं करेइ**—तेला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सब प्रकार के इच्छित रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं करेइ**—बेला करती है, बेला **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **दसमं करेइ**—दशम—लगातार चार व्रत करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के विगयों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **ग्रट्ठमं करेइ**—तेला करती है, **करित्ता**—पारणा करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **दुवालसमं करेइ**—पंचौला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **दशमं**—दशम (लगातार चार उपवास) चौला **करेइ**--करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **चउद्दसमं करेइ**—छौला (लगागार ६ उपवास) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **बारसमं करेइ**—पचौला (लगातार ५ व्रत) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के विगयों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **सोलसमं करेइ**—सतौला (लगातार ७उपवास) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चउद्दसम करेइ**—छौला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करता है; **पारित्ता**—पारणा करके; **ग्रट्ठारसमं करेइ**—ग्रट्ठाई (ग्राठ उपवास) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के विगय-पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके **सोलसमं करेइ**—सतौला करती है, **करित्ता**—करके, **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **वीसइमं करेइ**— नौला करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **ग्रट्ठारसमं करेइ**—ग्राठ करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **वीसइमं करेइ**—९ नौला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के पदार्थों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके, **सोलसमं करेइ**—सातौला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **ग्रट्ठारसमं करेइ**—ग्राठ करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चोद्दसमं करेइ**—छः उपवास करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **सोलसमं करेइ**—सात करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकारके रसों से; **पारेइ**

—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके **बारसमं करेइ**—पांच करती है; **करित्ता—**करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्वप्रकार के रसोंसे; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके;**चउद्दसमं करेइ**—६ करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके;**अट्ठमं करेइ**—अट्ठाई (आठ)करती है; **करित्ता**—करके;**सव्वकामगणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है, **पारित्ता**—पारणा करके; **दसमं करेइ**—चार (चौला) करती है; **करेत्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं पारेइ**—सर्व विगयों से पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके **बारसमं करेइ**—पांच करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **अट्ठमं करेइ**—तेला करती; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **दसमं करेइ**—चार करती है; **करेत्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **छट्ठं करेइ**—बेला करती है;**करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **अट्ठमं करेइ**—तेला करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **चउत्थं करेइ**—चतुर्थ (१ उपवास) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—करके; **छट्ठं करेइ**—बेला करती है, **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्वप्रकार के रसोंसे; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणाकरके; **चउत्थं करेइ—**चतुर्थ (१) करती है; **करित्ता**—करके; **सव्वकामगुणियं**—सर्व प्रकार के रसों से; **पारेइ**—पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **तहेव**—वैसे ही अर्थात् एक परिपाटी की तरह बाकी की; **चत्तारि परिवाडीओ**—चार परिपाटियां भी समझ लेनी चाहिए; **एक्काए परिवाडीए**—एक परिपाटी में; **छम्मासा य सत्त दिवसा**—६ मास और सात दिन लगते हैं; **चउण्हं य**—और चारों परिपाटियों में; **दो वारिसा, अट्ठावीसा दिवसा**—दो वर्ष २८ दिन लगते हैं; **जाव**—यावत् संलेखना की आराधना करके; **सिद्धा**—वह सिद्ध हो गई।

मूलार्थ-- जिस प्रकार इस आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन में महासती श्रीसुकालीदेवी की जीवनचर्या का वर्णन किया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत तृतीय अध्ययन में महाकाली देवी के त्याग, वैराग्य एवं संयम प्रधान जीवन को समझ लेना चाहिये। दोनों में अन्तर केवल तपस्या की आराधना का है, महासती सुकाली ने कनकावली तप की आराधना की थी, परन्तु महासती महाकाली ने "क्षुल्लकसिंह निष्क्रीडित" तप की आराधना की है। इस तप में सिंह की क्रीड़ा की तरह चढ़ते-उतरते उपवासों की परिपाटी होती है। इस तप के क्षुल्लक (छोटा) और महालय ये दो भेद हैं। महाकाली आर्या ने 'क्षुल्लक सिंह निष्क्रीडित' तप सम्पन्न किया था, इसे 'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' भी कहते हैं। इसकी आराधना इस प्रकार है—

सर्व प्रथम उपवास किया, पारणा करके बेला किया, फिर पारणा करके उपवास किया, फिर तेला किया, इसी प्रकार बेला, चौला, तेला, पंचौला, चौला, छह, पांच, सात, छह, आठ, सात, नौ, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पांच, छह, चौला, पंचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला और उपवास किया। इन सभी उपवासों के पारणे में महाकाली आर्या ने दूध, घी आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया। यह 'लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप' की एक परिपाटी का स्वरूप है। दूसरी, तीसरी तथा चौथी परिपाटी की भी इसी तरह कल्पना कर लेनी चाहिए। प्रथम परिपाटी में छः महीने, सात दिन लगते हैं, तथा चारों परिपाटियों में २ वर्ष २८ दिन लगते हैं।

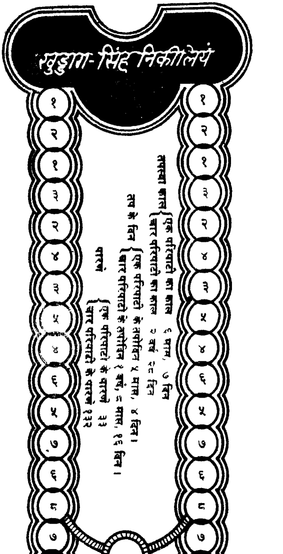
'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' की आराधना करने के अनन्तर महासती महाकाली आर्या ने फुटकर अन्य अनेकों तपस्याएं कीं। सुकाली आर्या की भांति मध्यरात्रि में संलेखना की आराधना का संकल्प किया और आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर उसे कार्यान्वित किया। अन्त में अन्तिम श्वासोच्छ्वास में मुक्ति-धाम में जा विराजी।

व्याख्या—प्रस्तुत तृतीय अध्ययन में महासती महाकाली देवी के जीवन का उल्लेख किया गया है। यह भी चम्पानरेश महाराज कोणिक की लघुमाता तथा राजगृह नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी थी। इनका पुत्र भी युद्ध में मारा गया था, उसके वियोग ने इनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया था, फलतः यह भगवान महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षित हो गई थी। इन्होंने आचाराङ्गादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा छोटे-बड़े अनेकों तप किए। इनका सब से बड़ा तप 'लघुसिंह-निष्क्रीडित तप' था। प्रस्तुत सूत्र में इस तप की रूप-रेखा पर ही प्रकाश डाला गया है।

महासती महाकाली का संयमी जीवन गत अध्ययन में वर्णित महासती सुकाली के समान है, इस बात की सूचना सूत्रकार ने "**एवं महाकाली वि**" इन शब्दों से करदी है। इन दोनों महासतियों के जीवन में जो अंतर है उसे सूत्रकार ने "**णवरं खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं**" इन शब्दों से संसूचित किया है। सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि महासती सुकाली तथा महासती महाकाली के जीवन में केवल तप का अन्तर है। सुकाली ने कनकावली तप किया और महाकाली ने 'क्षुल्लक सिंह निष्क्रीड़ित तप' का आराधन किया था।

"**खुड्डागं सीहनिक्कीलियं**"—की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—"**खुड्डागं सीहनिक्कीलियं**"—त्ति वक्ष्यमाणमहदपेक्षया क्षुल्लकं—ह्रस्वं सिंहस्य निष्क्रीडितं—विहृतं गमनमित्यर्थः सिंहनिष्क्रीडितं तदिव यत्तपस्तत्सिंहनिष्क्रीडितमुच्यते, सिंहो हि गच्छन् गत्वा अतिक्रान्त-देशमवलोकयति, एवं यत्र तपसि अतिक्रान्तं तपोविशेषं पुनः पुनरासेव्याग्रेतनं तत्तत् प्रकरोति-तत्सिंहनिष्क्रीडितमिति—अर्थात् जिस प्रकार गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त मार्ग को

पीछे लौटकर फिर देखता है, उसी प्रकार जिस तप में अतिक्रमण किए हुए उपवास के दिनों को फिर से सेवन करके आगे बढ़ा जाए, उसको 'सिंह निष्क्रीडित तप' कहते हैं। इस तप का क्रम सिंह-गमन के समान है। जैसे क्रीड़ा करता हुआ सिंह गमन करते-करते आगे चलकर फिर पीछे को लौटता है, उसी प्रकार इस तप की पद्धति है।



सिंह-निष्क्रीड़ित तप दो प्रकार का होता है, एक "लघु सिंह निष्क्रड़ित" और दूसरा "महासिंह निष्क्रीड़ित"। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित महासती काली ने 'लघुसिंह निष्क्रीडित तप' की आराधना की थी, इसकी रूपरेखा का परिचय पदार्थ और मूलार्थ में कराया जा चुका है। इस तप की भी चार परिपाटियां होती है। एक परिपाटी मे ५ महीने चार दिन लगते हैं। तथा तेंतीस दिन पारणे में जाते हैं, इस तरह पहली परिपाटी ६ महीने ७ दिन में सम्पन्न होती है, चारों परिपाटियों में ४ वर्ष २८ दिन होते है। (स्थापना-यन्त्र सामने है)

लघुसिंहनिष्क्रीडित तप में जितने दिन व्यतीत होते है उनका स्थापना यंत्र बनाते हुए वृत्ति कार अभयदेवसूरि ने बड़ा सुन्दर विवरण दिया है। वह इस प्रकार है—

इह च एक द्वयादय उपवासाश्चतुर्थ-षष्ठादिशब्दवाच्याः, एतस्य च रचनैवं भवति एकादयो नवान्ताः क्रमेण स्थाप्यन्ते पुनरपि प्रत्यागत्य नवादय एकान्तास्ततश्च द्वयाद्यन्तं नवान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादयोऽष्टान्ताः स्थाप्यन्ते, ततो नवाद्येकान्तप्रत्यागतपंक्त्यां अष्टादीनां द्वयानामादौ सप्तादय एकान्ताः स्थाप्यन्ते इति। स्थापना चेयं—। १। २। १। ३। २। ४। ३। ५। ४। ६। ५। ७। ६। ८। ७। ९। ८। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ५। ३। ४। २। ३। १। २। १। दिन संख्या

चैवम् । इह द्वे नवकसंकलने ततः एका ४५ । पुनः ४५ अन्यया चाष्टसंकलना ३६ अपरा च सप्त संकलना २८ तथा पारणकानि ३३ । तदेवं सर्वसंख्या १८७ । एते चैवं षण्मासाः सप्तदिनाधिकाः भवन्ति । एतेषु च चतुर्गुणितेषु द्वे वर्षे अष्टाविंशति दिनाधिके भवतः ।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने जो कुछ लिखा है, उसका सार पूर्व प्रदर्शित लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप के स्थापना-यंत्र के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है।

"**सव्वकामगुणियं—**" इस पद की व्याख्या पीछे पृष्ठ ३९८ पर कर दी जा चुकी है। जैसे कालीदेवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध-घृतादि सभी पदार्थों का ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे में इन रसों को छोड़ दिया; तीसरी परिपाटी में लेपमात्र का भी त्याग कर दिया तथा चतुर्थ परिपाटी में उपवासों का पारणा भी आयंबिलों से किया, वैसे ही महाकाली देवी ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप में प्रथम परिपाटी में विगयों का ग्रहण करना, दूसरी में त्याग, तीसरी में लेपमात्र का भी त्याग, चौथी में उपवासों का पारणा आयंबिल तप से किया। तीनों महासतियों के पारणे में गृहीत वस्तुएं एक समान ही थीं।

"**जाव सिद्धा**"—यहां पठित **जाव** पद निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व और रत्नावली तप की सम्पूर्ण आराधना के अनन्तर वही कुछ महासती महाकाली ने किया जो महासती सुकाली देवी ने किया था इन भावों का सूचक है।

इस तीसरे अध्ययन में महासती महाकाली की जीवनी वर्णित हुई है। इसका परिशीलन करने से पता चलता है कि तप की आराधना यदि दृढ़ता एवं शुद्ध भावना से की जाए तो वह जीवन का कल्याण कर देती है। तप के आगे किसी लिंग का कोई प्रश्न नहीं है। चाहे स्त्री-पुरुष कोई भी हो जो भी कुठाली में जीवन-स्वर्ण को ढाल लेता है तप उसीके सब मल नष्ट करके उसे सर्वथा निर्मल बना देता है। महासती चन्दनबाला, महासती काली, महासती सुकाली और महासती महाकाली आदि अनेकों नारियां तप की आराधना करके संसार-सागर से पार हो गई तथा गजसुकुमाल, अर्जुनमाली अतिमुक्त कुमार आदि अनेकों पुरुष हो गए हैं जिन्होंने तप की शरण स्वीकार करके परम निर्वाण-पद को प्राप्त कर लिया।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन

अब सूत्रकार चतुर्थ अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं कण्हा वि, णवरं महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं, जहेव खुड्डागं। णवरं चोत्तीसइमं जाव नेयव्वं। तहेव ऊसारेयव्वं। एक्काए वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता। सेसं जहा कालीए, जाव सिद्धा।

छाया—एवं कृष्णाऽपि नवरं, महत् सिंहनिष्क्रीडितं तपःकर्म, यथैव क्षुल्लकं, नवरं चतुस्त्रिंशद्यावन्नेतव्यम्। तथैव उत्सारयितव्यम्। एकस्याः (परिपाट्याः कालः) वर्षं, षण्मासा अष्टादश च दिवसाः चतसृणां परिपाटीनां कालः षड् वर्षाणि द्वौ मासौ द्वादश च अहोरात्राणि। शेषं यथा काल्याः यावत् सिद्धा।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार काली देवी की जीवनी है, उसी प्रकार; **कण्हा वि**—कृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए; **णवरं**—विशेष इतना है कि कृष्णा देवी ने; **महालयं सीहनिक्कीलियंतवोकम्मं**—महा सिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की; **जहेव**—जिस प्रकार; **खुड्डागं**—क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप किया गया है उसी प्रकार 'महा सिंहनिष्क्रीडित तप' की आराधना की गई; **णवरं**—इतना अन्तर है कि; **चोत्तीसइमं**—१६ उपवास; **जाव**—यावत्—पर्यन्त; **नेयव्वं**—कहना चाहिए अर्थात् लघु सिंहनिष्क्रीडित तप में एक उपवास से लेकर नव तक करते हैं, परन्तु महा सिंहनिष्क्रीडित तप में एक उपवास से लेकर १६ तक किया जाता है; **तहेव**—उसी प्रकार अर्थात् १६ तक आगे बढ़े थे, उसी प्रकार; **ऊसारेयव्वं**—पीछे लौटना चाहिए अर्थात् १६ से १५ आदि उपवास करने पड़ते हैं; **एक्काए**—महा सिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी का काल इस प्रकार है; **वरिसं छम्मासा**—एक वर्ष छः महीने; **अट्ठारस दिवसा**—१८ दिन लगते हैं; **चउण्हं**—चारों परिपाटियों का काल इस प्रकार है; **छ वरिसा दो मासा य बारस अहोरत्ता**— ६ वर्ष दो मास १२ दिन लगते हैं; **सेसं**—शेष वर्णन; **जहा**—जिस प्रकार; **कालीए**—काली देवी का है उसी प्रकार कृष्णा देवी का समझना चाहिए; **जाव**—यावत् कृष्णा देवी ने संलेखना की आराधना करके; **सिद्धा**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—जिस प्रकार महाकाली देवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार कृष्णा देवी के जीवन का वर्णन भी समझ लेना। अन्तर केवल इतना है कि महाकाली ने "लघु सिंहनिष्क्रीडित तप" की आराधना की थी और कृष्णा देवी ने "महा सिंहनिष्क्रीडित तप" की आराधना की है। लघु सिंहनिष्क्रीडित तप और महा सिंह-

निष्क्रीडित तप में इतना भेद है कि लघु में एक उपवास से लेकर नौ तक आगे बढ़ते हैं, परन्तु महासिंहनिष्क्रीडित में एक उपवास से चालू करके सोलह व्रतों तक किए जाते हैं फिर सोलह से पीछे आना पड़ता है, सोलह के अनन्तर पन्द्रह, इस प्रकार क्रमशः नीचे उतरना होता है। महा सिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी का काल एक वर्ष छः मास और १८ दिन है। चारों परिपाटियों का समय छः वर्ष दो मास और १२ दिन होते हैं। यही तप महासती कृष्णा जी ने किया। श्री कृष्णा जी की जीवनी महासती काली देवी के समान जाननी चाहिए। अन्त में कृष्णादेवी आर्या काली की तरह कर्म-क्षय करके सिद्ध बन गई।



व्याख्या—प्रस्तुत चतुर्थाध्ययन में कृष्णा देवी के संयमी जीवन का उल्लेख किया गया है। ये राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की पत्नी एवं चम्पानरेश महाराजा कोणिक की छोटी माता थी। इन का पुत्र भी युद्ध में मारा गया था, पुत्र-वियोग ने इन का मन संसार से विरक्त कर दिया। इन्होंने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षा अंगीकार की। महासती चंदनबाला के नेतृत्व में आचारांगादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। व्रत, बेले, तेले आदि अनेकविध तप किये, एक दिन इन्होंने महासती चन्दनबाला के चरणों में महासिंहनिष्क्रीडित तप करने की इच्छा प्रकट करते हुए उन से आज्ञा प्रदान करने के लिये निवेदन किया। "जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो" ऐसा स्वीकृतिपूर्ण उत्तर पाकर कृष्णा आर्या ने 'महासिंहनिष्क्रीडित तप' आरंभ कर दिया। सर्वप्रथम इन्होंने उपवास किया, पारणा करके फिर बेला किया, पारणा करके उपवास किया, इसी प्रकार तेला, बेला, चौला, तेला, पंचौला, चौला, छह, पांच, सात, छह, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह,

बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पांच, छे, चोला, पंचोला, तेला, चोला, बेला, तेला, उपवास, बेला और फिर पारणा करके उपवास किया। इस प्रकार महासिंहनिष्क्रीडित तप की यह प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है।

"एवं कण्हावि"—का अर्थ है—इसी प्रकार कृष्णादेवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए। गत तृतीय अध्ययन में महासती महाकाली के जीवन का परिचय कराया गया है। सूत्रकार कहते हैं, कि जिस प्रकार महाकाली आर्या के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णादेवी के जीवन की कल्पना करलेनी चाहिए। महाकाली की तरह कृष्णा को वैराग्य हुआ, भगवान महावीर के पास दीक्षित हुई, ग्यारह अंग पढे, महासती चन्दनबाला से महासिंहनिष्क्रीडित तप नामक तप का आराधन करने के लिये आज्ञा की याचना की, आदि सभी घटनाएं दोनों महासतियों की एक समान हैं। इसी समानता को सूत्रकार ने "**एवं कण्हा वि**" इन शब्दो से अभिव्यक्त किया है।

महासती महाकाली और महासती कृष्णा के संयमी जीवन में जो अन्तर है, उसको **"णवरं"** इस पद से व्यक्त किया गया है। **णवरं** का अर्थ है—इतना अन्तर है। अन्तर को रूपरेखा को अभिव्यक्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

"महालयं सीहणिक्कीलियं तवो कम्म जहेव खुड्डागं, णवरं चोत्तीसइमं जाव णेयव्वं, तहेव ऊसारेयव्वं"— एषा महत् सिंहनिष्क्रीडितं तपःकर्म करोति, यथैव क्षुल्लकं सिंहनिष्क्रीडितं तथैवेदमपि बोध्यम्। णवरं—अयं विशेषः। चतुस्त्रिंशं यावन्नेतव्यम्, तथैव उत्सारयितव्यम्, पश्चादनुपूर्व्याऽवतारयितव्यम्। अत्र महासिंहनिष्क्रीडिते तपः कर्मणि चतुर्थादारम्य क्रमेण चतुस्त्रिंशं यावद् गन्तव्यम्, पुनः पश्चादनुपूर्व्या ततश्चतुर्थं आगत्य पारणीयमिति भावः अर्थात् महासती महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना की थी, परन्तु महासती कृष्णा ने 'महासिंहनिष्क्रीडित' तप का आराधन किया। सिंहनिष्क्रीडित शब्द का अर्थ पीछे पृष्ठ ४२५ पर किया जा चुका है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। प्रस्तुत में महत् का प्रसंग है। कृष्णा महासती ने यही तप किया था। लघु और महद् दोनों में इतना ही अन्तर है कि लघु में एक उपवास से आरभ करके ९ उपवासों तक बढ़ते चले जाते है, जबकि महद् में एक से आरंभ करके १६ तक बढ़ते हैं, जैसे १६ तक क्रमशः बढ़ते चले जाते हैं, उसी क्रम से पीछे हटते-हटते, नीचे उतरते-उतरते एक उपवास तक आ जाते हैं।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि के शब्दों में महासिंहनिष्क्रीडित तप की **व्रतसंख्या** इस प्रकार है—

"एवं महासिंहनिष्क्रीडितमपि, णवरमेकादयः षोडशान्ताः षोडशादयश्चैकान्ताः स्थाप्यन्ते, ततश्च द्व्याद्यीनां षोडशान्तानामग्रे प्रत्येकमेकादयः पञ्चदशान्ताः षोडशादिषु, त्वेकान्तेषु पञ्चदशादीनां द्व्यान्तानामादौ प्रत्येकं चतुर्दशादयः एकान्ताः स्थाप्यन्ते, दिनमानं त्वेवम्—इह षोडश-संकलनद्वयं १३६ पञ्चदशसंकलना १०५ पारणकानि ६१ सर्वाग ५५८ अर्थात् यह लघुसिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही है, परन्तु इस की व्रतसंख्या एक से ले कर १६ तक जाती है। इस की प्रथम परिपाटी में १ वर्ष ६ मास

और ८१ दिन लगते हैं। विशेष जानकारी महासिंहनिष्क्रीडित तप के यंत्र से प्राप्त की जा सकती है

एक्काए—एकस्याः परिपाट्याः कालः"—का अर्थ है—महासिंहनिष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी का काल। तथा—**चउण्हं चतसृणां परिपाटीनां कालः**" का अर्थ है—उक्त तप की चारों परिपाटियों का काल।

"**सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा।**"—का अर्थ है—महासती कृष्णा देवी के जीवन का शेष वृत्तान्त महासती काली के समान जानना। प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध आदि सभी पदार्थों का यथेच्छ सेवन, दूसरी परिपाटी में विगयों का परित्याग, तीसरी में लेप का भी त्याग, चौथी परिपाटी में आयंबिल तप से पारणा किया। महासिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना समाप्त कर लेने पर महासती चंदनबाला द्वारा आज्ञा प्राप्त करना, अन्नजल का परित्याग करना संलेखना की आराधना करना, अन्त में सिद्ध पद प्राप्त करना, ये सब बातें महासती काली के समान ही समझनी चाहिये। यही समानता सूत्रकार ने "**सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा**"—इन पदों से अभिव्यक्त की है।

अध्ययन के उत्क्षेप—उपसंहार की कल्पना पहले अध्ययनों की भांति कर लेनी चाहिये।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पंचम अध्ययन

इस के अनन्तर पांचवें अध्ययन का स्थान आता है, अतः अब सूत्रकार पञ्चम अध्ययन का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं सुकण्हा वि, णवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स। दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणगस्स पडिगाहेइ, तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स, तिण्णि पाणगस्स। चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए, सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ सत्त पाणगस्स। एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णासाए राइंदिएहिं एगेण य छन्नउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेह।

छाया—एवं सुकृष्णाऽपि। णवरं सप्तसप्तमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसंपद्य विहरति। प्रथमे सप्तके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, एकैकां पानकस्य। द्वितीये सप्तके द्वे-द्वे भोजनस्य द्वे-द्वे पानकस्य (दत्तीः) प्रतिगृह्णाति। तृतीये सप्तके तिस्रो भोजनस्य, तिस्रः पानकस्य, चतुर्थे चतस्रः। पञ्चमे पञ्च। षष्ठे षट्। सप्तमे सप्तके सप्त दत्तयः भोजनस्य गृह्णाति। सप्त पानकस्य। एव खलु सप्त सप्तमिकां भिक्षुप्रतिमामेकोनपञ्चाशद्‌भिः रात्रिन्दिवैः एकेन च षण्णवत्यधिकेन भिक्षाशतेन यथासूत्रं यावदाराध्य यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैवोपागता आर्यचन्दनामार्यां वदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्—

इच्छामि खलु हे आर्याः! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती अष्टाष्टमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसंपद्य विहर्तुम? यथासुखं, देवानुप्रिये! मा प्रतिबंधं कुरु।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार, जिस प्रकार कृष्णा आर्या का जीवन वर्णन किया है; उसी प्रकार **सुकण्हा वि**—सुकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन भी जानना; **नवरं**—इतना अन्तर है कि; **सत्तसत्तमियं**—सप्तसप्तमिका (जिस में सात सप्ताह लगें); **भिक्खुपडिमं**—भिक्षुप्रतिमा (भिक्षु की प्रतिज्ञा-विशेष) को; **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**—धारण करके विहरण करती है; **पढमे सत्तए**—पहले सप्तक (सप्ताह) में; **भोयणस्स**—भोजन की; **एक्केक्कं**—एक-एक; **दत्तिं**—दत्ति (जिस में एक बार दान दिया जाये वह, या अविच्छिन्न-रूप से जितनी भिक्षा दी जाए वह,) को; **पाणगस्स**—पानी की; **गिण्हइ**—ग्रहण करती है; **दोच्चे सत्तए**—दूसरे सप्ताह में; **भोयणस्स**—भोजन की

दो-दो दत्तियां; दो-दो पाणगस्स—पानी की दो-दो दत्तियां; **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है; **तच्चे सत्तए** तीसरे सप्ताह में; **तिण्णि भोयणस्स**—तीन-तीन दत्ति भोजन की; **तिण्णि पाणगस्स**—तीन तीन पानी की; **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है; **चउत्थे**—चौथे सप्ताह में चार-चार दत्ति पानी और भोजन की; **पंचमे**—पांचवें सप्ताह में पांच-पांच भोजन और पानी की दत्ति; **छट्ठे छ**—छठे सप्ताह में छ-छ भोजन पानी की दत्ति; **सत्तमे**—सातवें सप्ताह में सात-सात भोजन पानी की दत्ति; **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **सत्तसत्तमिया**—सातवीं सप्तमिका नामक; **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा की; **एगूणपण्णाए**—एकोनपंचाशत, एक-कम पचास; **राइंदिएहिं**—दिन रातों से; **य**—और; **एगेण छन्नउएणं**—**भिक्खासएणं**—एक सौ छियानवें भिक्षाओं से; **अहासुत्तं**—सूत्रानुसार; **जाव**—यावत्, सातवीं सप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा की; **आराहेत्ता**—आराधना करके; **जेणेव अज्जचंदणा**—जहां पर आर्यचन्दना नामक महासती; **अज्जा**—आर्या थी; **तेणेव, उवागया**—वहां पर आई; **अज्जचंदणं अज्जं**—आर्य चन्दनाआर्या को; **वंदइ, नमंसइ**—वन्दना नमस्कार करती है; **वंदित्ता, णमंसित्ता**—वन्दना, नमस्कार करके; **एवं**—इस प्रकार; **वयासी**—निवेदन करने लगी; **अज्जाओ**—हे आर्ये; **तुब्भेहिं**—आप से; **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर, **अट्ठट्ठमियं**—अष्ट अष्टमिका नामक (जिस में आठ सप्ताह लगें); **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा को; **उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए**—धारण करके, विचरण करना; **इच्छामि**—चाहती हूं; **णं**—वाक्य सौन्दर्यार्थ है; **देवाणुप्पिए !**—हे देवानुप्रिये। (चन्दना आर्या ने प्रत्युत्तर दिया); **अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो; **मा पडिबंधं करेह**—शुभकार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मूलार्थ--जिस प्रकार महासती कृष्णादेवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सुकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिये। इसमें इतना अन्तर है कि सुकृष्णा ने सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना की थी। सप्त-सप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

प्रथम सप्ताह में एक दत्ति (जो भिक्षा में एक बार दान दिया गया हो) भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह में दो दत्तिएं पानी की और दो दत्तिएं भोजन की ग्रहण की जाती हैं और तीसरे सप्ताह में तीन-तीन दत्तिएं, चौथे सप्ताह में चार-चार दत्तिएं, पांचवें सप्ताह में पांच-पांच दत्तिएं, छठे सप्ताह में छः-छः दत्तिएं, सातवें सप्ताह में सात-सात दत्तिएं भोजन और पानी की ग्रहण की जाती हैं।

इस प्रकार इस सप्तसप्तमिका नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना में ४९ दिन रात लगते हैं और इस में १९६ भिक्षाएं ग्रहण की जाती हैं। महासती सुकृष्णा सूत्रोक्त

विधि के अनुसार सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती आर्य चंदना (चन्दनबाला) के पास आती है। महासती को वंदन एवं नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करती है—

हे आर्ये! यदि आपश्री आज्ञा प्रदान करें तो मैं अष्टअष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना करना चाहती हूं। आर्या सुकृष्णा की इस विनती को सुन कर आर्या आर्यचन्दना कहने लगी–'भद्रे! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, किन्तु एक बात का ध्यान रखो—शुभ कार्य में प्रमाद करना उचित नहीं।'

व्याख्या—प्रस्तुत पांचवें अध्ययन में सुकृष्णा देवी के जीवन का परिचय दिया गया है। यह भी काली, सुकाली, महाकाली की तरह राजगृह-नरेश श्रेणिक की धर्मपत्नी चम्पानरेश कोणिक की छोटी माता थी। इनका भी पुत्र युद्ध मे मारा गया था, पुत्र-वियोग ने इनके मनको संसार से उपराम कर दिया, इन्होंने मंगलमय श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों मे दीक्षा ग्रहण कर ली। महासती आर्या चन्दना की देख-रेख में इन्होंने ग्यारह अंग पढ़े। व्रत-बेले आदि अनेकविध तपस्याए कीं। एक बार इन्होंने महासती आर्या चन्दना से निवेदन किया कि "श्रद्धेय गुरुणी जी! मैं सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करना चाहती हूं।'

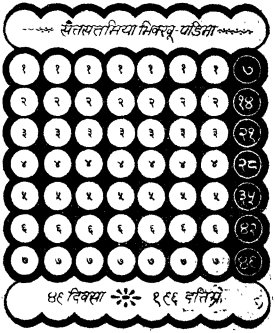
जैनाचार्यों ने भिक्षु की १२ प्रतिमाओं का विधान किया है। प्रतिमा प्रतिज्ञा-विशेष को कहते हैं। इस तरह साधु के प्रतिज्ञा-विशेष या अभिग्रह विशेष को भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। एक मास से लेकर सात मास तक सात प्रतिमाएं होती है, आठवीं, नववीं और दसवी ये तीनों प्रतिमाएं सात-सात दिनों की होती हैं। ग्यारहवीं एक दिन रात की और बारहवीं भिक्षुप्रतिमा केवल एक रात्रि की होती है। प्रतिमाधारी साधक अपनी शारीरिक ममता को तथा शारीरिक महत्त्व को छोड़ देता है। दीनता प्रकट न करके देव-तिर्यञ्च-मनुष्य सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करता है। अज्ञातकुल से गोचरी करता है। गृहस्थ के घर मनुष्य-पशु-श्रमण-ब्राह्मण और भिखारी आदि भिक्षार्थ खड़े हों तो 'दान में अन्तराय न पड़ जाये' इस विचार से उनके घर नहीं जाता है। प्रथम प्रतिमा के धारक साधक एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेते है।

साधु या साध्वी के पात्र में दाता द्वारा दिये जानेवाले अन्न और पानी की जब तक धारा अखण्डित बनी रहे तब तक जो आहार पानी पड़ जाता है उसका नाम एक दत्ति है, धारा टूट जाने के अनन्तर जो आहार-पानी पात्र में पड़ता है, वह पहली दत्ति के अन्तर्गत नहीं होता, वह उससे बाहिर समझा जाता है।

प्रथम प्रतिमा का समय एक मास होता है। इसी तरह दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं इन प्रतिमाओं में क्रमशः दो तीन चार पांच छः और सात पानी की तथा सात भोजन की दत्तियां ग्रहण की जाती हैं। प्रत्येक प्रतिमा का समय एक मास है। केवल दत्तियोंकी वृद्धि के कारण ही ये क्रमशः द्वैमासिकी, त्रैमासिकी, चतुर्थमासिकी पंचमासिकी षण्मासिकी, और सप्तमासिकी कही जाती हैं। आठवीं प्रतिमा का समय एक दिन-रात है। इस में एकान्तर चौविहार उपवास किया जाता है।

इस में आहार-पानी की दत्ति की मर्यादा नहीं होती। नवमी तथा दसवीं प्रतिमा का समय भी सात दिन-रात का है। नवमी में चौविहार बेले-बेले पारणा किया जाता है। दसवीं प्रतिमा में तेले-तेले पारणा करना पड़ता है। ग्याहवीं प्रतिमा का समय एक रात है। चौविहार बेला करके इसका आराधन किया जाता है। बारहवीं प्रतिमा का समय एक रात है, इसका आरम्भ चौविहार तेले से किया जाता है। यह नगर के बाहिर श्मशान आदि एकान्त स्थान पर करनी होती है।

अन्तगडसूत्रीय अष्टमवर्ग के प्रस्तुत पांचवें अध्ययन में वर्णित महासती सुकृष्णा के जीवन का परिशीलन करने से मालूम होता है कि इन्होंने आर्या चन्दना से सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन करने के लिये आज्ञा की जो याचना की है इसका उक्त बारह प्रतिमाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि सातवीं भिक्षुप्रतिमा का समय एक मास है और इसमें सात दत्तियें भोजन की और सात दत्तिएं पानी की ग्रहण की जाती हैं, परन्तु इस प्रतिमा के विधान के साथ प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा का कोई मेल नहीं है। इसका समय ४९ दिन रात्रि का है। यह सात सप्ताहों में पूर्ण होती है (७×७=४९) प्रथम सप्ताह में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है, दूसरे में दो-दो, तीसरे में तीन-तीन, चौथे-पांचवें-छट्ठे सातवें में एक-एक की वृद्धि क्रमशः करते हुए सातवें तक सात-सात दत्तिएं अन्न-पानी की ग्रहण की जाती हैं। इस सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा में समस्त दत्तियों की संख्या १९६ होती है अतः इस भिक्षु प्रतिमा का उक्त बारह भिक्षुप्रतिमाओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।



कहा जा चुका है कि आर्या सुकृष्णा ने आर्या चन्दना से सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा के आराधनार्थ आज्ञा देने के लिये निवेदन किया था। अपनी विनीत शिष्या आर्या सुकृष्णा की विनती सुनकर आर्या चन्दना ने सहर्ष स्वीकृति देते हुए कहा "भद्रे! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, परन्तु शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।" आज्ञा मिलते ही आर्या सुकृष्णा ने सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन करना आरंभ कर दिया।

सूत्रकार ने सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा की रूप रेखा का निर्देश करते हुए कहा है कि इस को सात सप्ताहों में बांटा जाता है। प्रथम सप्तक में अन्न जल की एक-एक दत्ति दूसरे में दो-दो, तीसरे में तीन-तीन, चौथे में

चार-चार पांचवे में पांच-पांच छठे में छः-छः और सातवें सप्तक में अन्न जल की सात-सात दत्तियों का सेवन किया जाता है, पूर्व प्रदर्शित सप्तसप्तमिका यंत्र से इसे भली भांति समझा जा सकता है।

सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की सम्यग् आराधना के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने अपनी गुरुणी श्रद्धेय आर्या चन्दना जी की सेवा में उपस्थित होकर वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करने के बाद हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगी कि "हे पूज्य गुरुणी जी ! अगर आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं अब "अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करना चाहती हूं।

अपनी विनीत तथा आज्ञाकारिणी शिष्या की विनती सुनकर आर्या चन्दना ने कहा—"हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, मगर शुभकार्यों में विलम्ब नहीं होना चाहिए।

"एवं सुकण्हा वि"—का अर्थ है—इसी प्रकार सुकृष्णा का जीवन वर्णन भी समझ लेना। जिस प्रकार पीछे काली, महाकाली आदि महासतियों की दीक्षा, विद्या-प्राप्ति आदि का उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार सुकृष्णा का भी जान लेना चाहिए। इनमें जो अन्तर है सूत्रकार ने **"नवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं"**—आदि पदों द्वारा उसका भी निर्देश कर दिया है। सूत्रकार कहते हैं कि अन्तर केवल इतना है कि सुकृष्णा देवी ने सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था। सप्तसप्तमिका का अर्थ है—जिस में सात सप्ताह लगें। भिक्षु प्रतिमा का अर्थ है—प्रतिज्ञा-विशेष।

"एगेण य छन्नउएणं भिक्खासएणं"—**एकेन च षण्णवत्यधिकेन भिक्षाशतेन**—का अर्थ है—१९६ भिक्षाएं। **"अहासुत्तं जाव आराहेत्ता'**— यहां पठित जाव पद अन्य स्थान पर पढ़े अवशिष्ट सूत्रपाठ का संसूचक है।

"अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं"—का अर्थ है—अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा। यह भिक्षु की एक प्रतिज्ञा-विशेष है। इस प्रतिज्ञा-विशेष में प्रथम अष्टक के प्रत्येक दिन अन्न-जल की एक एक दत्ति ग्रहण की जाती है। दूसरे अष्टक के प्रत्येक दिन अन्न-जल की दो-दो दत्तियें ग्रहण की जाती हैं। इसी प्रकार आठवें अष्टक में अन्न-जल की आठ-आठ दत्तियों का ग्रहण होता है।

प्रस्तुत सूत्र में कहा जा चुका है कि सुकृष्णा आर्या ने अष्टअष्टमिका भिक्षु प्रतिमा का आराधन करने के लिये अपनी गुरुणी महासती चंदना से आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके अनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार उस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठ-अट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिग्गाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स दत्तिं जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्तिं पडिग्गाहेइ, अट्ठट्ठ पाणगस्स।

एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

छाया—ततः सा सुकृष्णा आर्या चंदनया अभ्यनुज्ञाता सती अष्ट-अष्टमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति । प्रथमेऽष्टके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, एकैकां पानकस्य दत्तिं यावदष्टमेऽष्टके अष्टौ-अष्टौ भोजनस्य दत्तीः प्रतिगृह्णाति, अष्टौ-अष्टौ पानकस्य (दत्तीः स्वीकरोति) ।

एवं खलु अष्टाष्टमिकां भिक्षुप्रतिमां चतुष्षष्टिभिः रात्रिदिवसैः द्वाभ्यां भिक्षाष्टकाभ्यामाराध्य नव-नवमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति।

पदार्थ—**तएणं**—उस के अनन्तर; **सा सुकण्हा**—वह सुकृष्णा; **अज्जा**—आर्या साध्वी; **अज्जचंदणाए**—आर्या चन्दना के द्वारा; **अब्भणुण्णाया समाणी**—आज्ञा प्राप्त होने पर; **अट्ठअट्ठमियं**—अष्ट-अष्टमिका नामक (जिसकी आराधना में आठ अठ वारे लगे); **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु-प्रतिमा—प्रतिज्ञा विशेष को; **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**—धारण करके विचरण करने लगी; **पढमे अट्ठए**—प्रथम अष्टक अर्थात् आठ दिनों के समय में; **एक्केक्कं भोयणस्स**—एक-एक भोजन की; **दत्ति**—दत्ति अर्थात् भोजन की अखण्डित धारा को; **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है; **एक्केक्कं पाणगस्स** एक-एक पानी की; **दत्ति**—दात को ग्रहण करती है; **जाव**—यावत्—दूसरे में दो-दो, तीसरे में तीन-तीन, चौथे में चार-चार, पांचवे में पांच-पांच, छट्ठे में छः-छः सातवें में सात-सात अन्न-पानी की दत्तियां ग्रहण कीं; **अट्ठमे अट्ठए**—आठवें अष्टक में; **अट्ठट्ठ भोयणस्स**—आठ-आठ भोजन की; **दत्ति**—दत्तियों को; **पडिग्गाहेइ**—ग्रहण करती है; **अट्ठट्ठ पाणगस्स**—आठ दत्तियां पानी की भी ग्रहण करती है ।

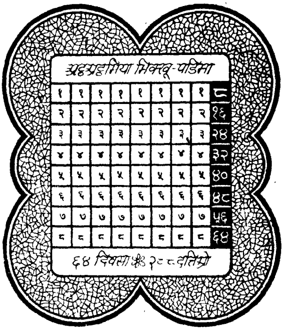
एवं खलु—इस प्रकार, निश्चय ही; **अट्ठट्ठमियं**—अष्ट-अष्टमिका नामक; **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा की; **चउसट्ठीए**—६४; **राइंदिएहिं**—दिन रातों में; **दोहिं अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं**—दो सौ अट्ठासी भिक्षाओं का; **अहासुत्तं**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार; **जाव**—यावत्; **आराहेत्ता**—आराधन करके; **नवनवमियं**—नवनवमिका (जिसकी आराधना में नव नवक ६ दिनों का समूह है); **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा—प्रतिज्ञा विशेष—तपोविशेष को; **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**—धारण करके विचरण करने लगी ।

मूलार्थ—महासती आर्या चंदना से आज्ञा प्राप्त होने पर आर्या सुकृष्णा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षु प्रतिमा को धारण कर के समय व्यतीत करने लगी । अष्ट अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनों में महासती सुकृष्णा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की, दूसरे अष्टक में अन्न-पानी की दो-दो दत्ति लीं। इसी प्रकार क्रम से

तीसरे में तीन-तीन चौथे में चार-चार, पांचवें में पांच-पांच, छट्ठे में छः-छः, सातवें में सात-सात और आठवें में आठ-आठ अन्न-जल की दत्तियां ग्रहण कीं। इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना में ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाएं ग्रहण की गईं। इस भिक्षु-प्रतिमा की सूत्रोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने नवनवमिका नामक भिक्षु-प्रतिमका आराधन आरम्भ कर दिया।

व्याख्या—महासती सुकृष्णा ने जिस प्रकार सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया था, उसी प्रकार उन्होने अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा का आराधन किया। सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा में दत्तियों की संख्या १९६ थी और अष्टअष्टमिका में दत्तियों की संख्या २८८ है। पहली में ४९ और दूसरी में ६४ दिन लगते हैं। इन प्रतिमाओं का आराधन साधारण कार्य नहीं है। विशिष्ट उत्साही तथा धैर्यवान् व्यक्ति ही इनका आराधन कर सकता है, परन्तु जो इस तपोमार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, वह निश्चय ही शुद्ध होकर परम-साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।



"**अट्ठ-अट्ठमियं भिक्खुपडिमं**"—का अर्थ है—अष्टअष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा। भिक्षु को जिस प्रतिमा—प्रतिज्ञा-विशेष या तपोविशेष में आठ-अष्टक अर्थात् अठवारे लगें उसे अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमा में कितने दिन लगते हैं? इसमें कितनी दत्तियां ग्रहण की जाती हैं? इन सब प्रश्नों का समाधान अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा के ऊपर प्रदर्शित यंत्र द्वारा स्पष्टतया जाना जा सकता है।

महासती सुकृष्णा ने नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा का आराधन आरंभ कर दिया। परन्तु यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा क्या है? इसकी क्या रूप रेखा है? अब सूत्रकार इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं—

मूल—पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स, जाव नवमे नवए नवदत्तिं भोयणस्स पडिगाहेइ, नव पाणगस्स। एवं खलु नवनवमियं भिक्खुपडिमं एकासीइ राइंदिएहिं चउहिं पंचोत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स जाव दसमे-दसए दस-दस भोयणस्स, दस-दस-पाणगस्स। एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं, अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ, आराहित्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमासविविहतवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तए णं सा कण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा। निक्खेवओ।

छाया—पढमे नवके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, एकैकां पानकस्य, यावद् नवमे नवके नवदत्तीः भोजनस्य प्रतिगृह्णाति नव पानकस्य। एवं खलु नवनवमिकां भिक्षुप्रतिमां एकाशीतिभिः रात्रिन्दिवैः, चतुर्भिः पञ्चोत्तरैः भिक्षाशतैः, यथा सूत्रं यावदाराध्य दशदशमिकां भिक्षुप्रतिमामुपसंपद्य विहरति।

प्रथमे दशके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, एकैकां पानकस्य, यावद् दशमे दशके दश दश भोजनस्य दश-दश पानकस्य। एवं खलु एतां दशदशमिकां भिक्षुप्रतिमां एकेन रात्रिन्दिवशतेन। अर्धषष्ठैः भिक्षाशतैः यथासूत्रं यावदाराधयति, आराध्य चतुर्थं यावद् मासार्द्धमासविविधतपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति। ततः सा सुकृष्णा आर्या तेनोदारेण यावत् सिद्धा। निक्षेपः।

पदार्थ—**पढमे**—पहले; **नवए**—नवक (नौ दिनों के समय) में; **एक्केक्कं**—एक-एक; **भोयणस्य**—भोजन अर्थात् अन्न की; **दत्तिं**—दत्ति—भोजन की अखण्डित धारा को; **पडिगाहेइ**—ग्रहण करती है; **एक्केक्कं**—एक-एक; **पाणगस्स**—पानी की दत्ति ग्रहण करती है; **जाव**—यावत्; **नवमे**—नौवें; **नवए**—नवक में; **नव**—नौ; **दत्ति**—दत्तिएं; **भोयणस्स**—भोजन की; **पडिगाहेइ**—ग्रहण करती है और; **नवनव**—नौ-नौ; **पाणगस्स**—पानी की दत्तियें ग्रहण करती है; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **नवनवमियं भिक्खुपडिमं**—नव नवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा; **एकासीइ**—इक्कासी; **राइंदिएहिं**—दिन रातों में सम्पन्न होती है; **चउहिं पंचोत्तरेहिं**—पांच ऊपर चार; **भिक्खासएहिं**—सौ भिक्षाओं के द्वारा; **अहासुत्तं**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार **जाव**—यावत्; **आराहित्ता**—आराधना करके; **दसदसमियं**—दशदशमिका (जिस की आराधना में दस दशकों का समय लगता है); **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु-प्रतिमा को; **उवसंपज्जित्ता णं**—धारण करके; **विहरइ**—विचरण करने लगी।

पढमे—प्रथम; **दसए**—दशक में; **एक्केक्कं**—एक-एक; **भोयणस्स**—भोजन की; **दत्ति**—दत्ति; **पडिगाहेइ**—ग्रहण करती है; **एक्केक्कं**—एक-एक; **पाणगस्स**—पानी की दत्ति ग्रहण

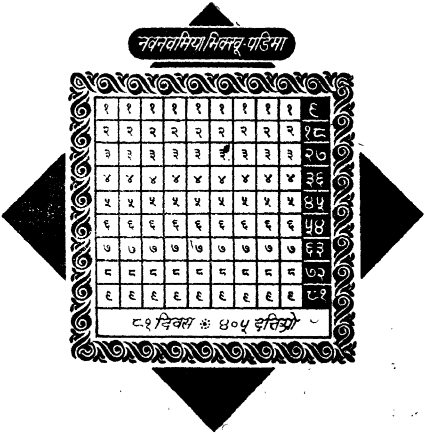
करती है; **जाव**—यावत्; **दसमे**—दसवें; **दसए**—दशक में; **दस-दस**—दस-दस दत्तियें; **भोयणस्स** भोजन की और; **दस-दस**—दस-दस दत्तियें; **पाणगस्स**—पानी की ग्रहण करती है; **एवं**—इस प्रकार; **खलु**—निश्चय ही; **एयं**—इस; **दसदसमियं**—दशदशमिका; **भिक्खुपडिमं**—भिक्षु प्रतिमा को; **एक्केणं राइंदियसएणं**—एक सौ रात्रि दिनों में आराधित करती है तथा; **अद्धछट्ठेहिं**—साढे पांच; **भिक्खासएहिं**—सौ भिक्षाओं के द्वारा; **अहासुत्तं**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार; **जाव**—यावत् दश दशमिका, भिक्षुप्रतिमा की; **आराहेइ**—आराधना करती है; **आराहित्ता**—आराधना करके; **बहूहिं**—अनेक; **चउत्थ**—चतुर्थ-उपवास; जाव—यावत् बेले तेले तथा; **मासद्धमास**—१५ दिनों का उपवास, एक महीने का उपवास; **विविहतवोकम्मेहिं**—अनेक प्रकार के तपों द्वारा; **अप्पाणं**—अपनी आत्मा को; **भावेमाणी**—भावित करती हुई—तपोमय बनाती हुई; **विहरइ**—विहरण करने लगी—समय बिताने लगी; तए णं—उसके अनन्तर; **सा सुकण्हा**—वह सुकृष्णा; **अज्जा** आर्या साध्वी; **तेणं**—उस; **ओरालेणं**—प्रधान; **जाव**—यावत् तपस्या से अत्यधिक दुर्बल हो गई अंतिम समय में संलेखना आदि द्वारा कर्मों का नाश करके; **सिद्धा**—सिद्ध बन गई; **निक्खेवओ**—पंचम अध्ययन के निक्षेप—समाप्ति-वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिए।

मूलार्थ—नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करती हुई महासती सुकृष्णा ने प्रथम नौ दिनों में प्रतिदिन एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार आगे क्रमशः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए नौवें नवक में अन्न जल की नौ-नौ दत्तियें ग्रहण कीं। इस प्रकार यह नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिनों में पूर्ण हुई। इसमें भिक्षाओं को संख्या ४०५ तथा दिनों की संख्या ८१ बनती है। सूत्रोक्त विधि के अनुसार नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने दशदशमिका (जिसकी आराधना में दश दशक समय लगे) नामक भिक्षुप्रतिमा की आराधना आरंभ कर दी।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना करते समय महासती सुकृष्णा प्रथम दशक में एक-एक दत्ति भोजन और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण करती है, इसी प्रकारः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए दसवें दशक में दस-दस दत्तिएं भोजन की स्वीकार करती है। दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा में एक सौ रात्रि दिन लग जाते हैं। इसमें साढ़े पांच सौ (५५०) भिक्षाएं और ११ सौ दत्तिएं ग्रहण करनी होती हैं। सूत्रोक्त विधि के अनुसार दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा ने व्रत, बेला, तेला, चौला, पंचौला छे, सात, आठ से लेकर १५ तथा महीने तक की तपस्या के अतिरिक्त अन्य अनेकविध तपों से अपनी आत्मा को भावित किया। इस कठिन तपके

कारण आर्या सुकृष्णा अत्यधिक दुर्बल हो गई। एक दिन उसने विचार किया कि मेरा शरीर दुर्बल हो गया है, अब इसमें विशेष शक्ति नहीं रही है, अतः मुझे संलेखना की आराधना से अन्न-जल के त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। सुकृष्णाने आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर संथारा किया, सम्पूर्ण कर्मों का नाश करके मोक्षगति को प्राप्त किया।

पञ्चम अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि हे जम्बू! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अंग अंतगड सूत्र के अष्टमवर्गीय पञ्चम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।



१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

व्याख्या—प्रस्तुत सूत्रमें नवनवमिका तथा दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा की रूप-रेखाका वर्णन किया गया है। नवनवमिका को नौ विभागों में विभक्त करके प्रत्येक नवक में क्रमश एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की बढ़ा दी जाती है। इस पद्धति से नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना में ८१ दिन लग जाते है, चार सौ पांच भिक्षायें ग्रहण की जाती हैं, नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा का स्थापना-यन्त्र ऊपर प्रदर्शित किया गया है—

दश दशमिका भिक्षु-प्रतिमा का अर्थ है—जिस प्रतिज्ञा विशेष में दश दशक (दस दिनों का समुदाय) लगे। इस तप की आराधना में १०० दिन लगते हैं ५५० भिक्षायें ग्रहण की जाती हैं और

११ सौ दत्तियें ली जाती हैं। इस तप का स्थापना-यन्त्र नीचे प्रदर्शित किया गया है—

दसदसमिया भिक्खू-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवसा ∴ ५५० दत्तिओ

दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा के प्रथम दशक में एक दत्ति अन्न की और एक-दत्ति पानी की, इसी प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते दशम दशक में दस दत्तियें अन्न की और दस दत्तियें पानी की ग्रहण की जाती हैं।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि एक ही दत्ति से इच्छित आहार प्राप्त हो जाए तो फिर अन्य दत्तियों का आहार ग्रहण करना आवश्यक है या नहीं? एक या दो दत्तियों में पर्याप्त आहार मिल जाने पर क्या अन्य दत्तियां छोड़ी जा सकती हैं? उत्तर में निवेदन है कि सर्व प्रथम तो सप्तसप्तमिका, अष्ट-अष्टमिका आदि भिक्षु-प्रतिमाओं का आराधन करने-वाला साधक ऐसी समुचित पद्धति से आहार ग्रहण करने का प्रयत्न करेगा कि जिससे उसकी मर्यादित दत्तियें भी पूर्ण हो जायें और उसे पर्याप्त आहार भी प्राप्त हो जाए, परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि कभी एक ही दत्ति में आहार की पूर्ति हो जाए तो उस दशा में उसे अन्य दत्तिए ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस से त्याग को और अधिक पोषण मिलता है, जो साधक की आत्म-शुद्धि में सहायक ही बनता है। सूत्रकार ने दत्तियों की जो मर्यादा निश्चित की है उसका अभिप्राय यह है कि दस दत्तियों के स्थान पर ११ या १२ दत्तियां ग्रहण नहीं की जा सकती। उस की स्वल्पता के लिये कोई निषेध नहीं है।

सप्तसप्तमिका, अष्ट-अष्टमिका, नवनवमिका तथा दश-दशमिका भिक्षुप्रतिमा इन चारों प्रतिमाओं का भली भांति आराधन करने के अनन्तर महासती सुकृष्णा बहुत अधिक दुर्बल हो गई। उस का मांस और रक्त सूख गया, वह पिंजर मात्र रह गई। अत्यधिक दुर्बल हो जाने पर भी वह तपस्तेज से अत्यधिक सुशोभित हो रही थी।

एक बार मध्यरात्रि में उसे विचार आया कि तपस्या के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तथापि अभी मेरे में जो शक्ति विद्यमान है उससे लाभ उठाना चाहिये, अतः प्रातःकाल महा-सती आर्या चन्दना से आज्ञा लेकर मुझे अन्न-जल का सर्वथा परित्याग करके संलेखना की आराधना में लग जाना चाहिये।

प्रातः काल होते ही उसने अपना विचार आर्या आर्यचन्दना की सेवा में निवेदन किया। आर्या आर्य चन्दना की ओर से स्वीकृति मिलने पर उसने मध्यरात्रि में उठे अपने विचार को कार्यान्वित कर दिया, अन्न-जल का परित्याग करके वह संलेखना की आराधना में लग गई। अन्तमें एक दिन सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके उसने सिद्ध-गति को प्राप्त कर लिया। इन सब भावों को संसूचित करने के लिये सूत्रकार ने **"त एणं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा"** इन पदों का प्रयोग किया है।

"अहासुत्तं जाव आराहिया"—यहां पठित **जाव** पद अन्य सूत्रों में वर्णित **अवशिष्ट** आगम-पाठ का संसूचक है।

"पाणगस्स जाव नवमे नवए" तथा **पाणगस्स जाव दसमे दसए"**—इन स्थानों पर **जाव** पद का अभिप्राय यह है कि सप्तसप्तमिका मे जिस पद्धति का आश्रय लिया गया था उसी पद्धति का यहां भी आश्रय लिया गया।

"**चउत्थ जाव मासद्ध**"—यहां का **जाव** पद **छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहिं** इस पाठ का बोधक है।

निक्खेवओ का अर्थ है—उपसंहार-वाक्य। शास्त्रीय भाषा में उपसंहार-वाक्य इस प्रकार है—

एव खलु जम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स पंचमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते—अर्थ स्पष्ट है।

तप अग्नि है, इसे आत्ममन्दिर में प्रज्वलित करने से कर्म-मल जल जाता है। परिणामस्वरूप तपोऽनुष्ठान से विशुद्ध बना आत्मा सहज ही में परम-साध्य निर्वाणपद को प्राप्त कर लेता है। तपकी इसी पावन उपादेयता को महासती तपस्विनी सुकृष्णा जी के तपस्वी जीवन के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

॥ पंचम अध्ययन समाप्त ॥

छठा अध्ययन

अब सूत्रकार छठे अध्ययन का आरंभ करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं महाकण्हा वि, णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता, चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता, सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता, दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडियो, पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा, सेसं तहेव जाव सिद्धा।

छाया एवं महाकृष्णाऽपि, णवरं क्षुल्लकां सर्वतोभद्रां प्रतिमामुपसम्पद्य विहरति। तद्यथा—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति,

पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति ।

एवं खलु क्षुल्लकां सर्वतोभद्रस्य तपःकर्मणः प्रथमां परिपाटीं त्रिभिर्मासैः दशभिर्दिवसैः यथासूत्रं यावदाराध्य द्वितीयस्यां परिपाट्यां चतुर्थं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा यथा रत्नावल्यां तथा अत्रापि चतस्रः परिपाट्यः, पारणा तथैव, चतसृणां कालः संवत्सरो मासो दश च दिवसाः, शेषं तहेव यावत्सिद्धा । निक्षेपः ।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार सुकृष्णादेवी का वर्णन किया गया है उसी प्रकार; **महाकण्हा वि**—महाकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए; **णवरं**—इतना अन्तर है कि महाकृष्णादेवी ने; **खुड्डागं**—छोटी; **सव्वओभद्दं**—सर्वतोभद्र (गणना करने पर जिसके अंक सर्वप्रकार से भद्र अर्थात् समान हों) नामक; **पडिमं**—प्रतिमा—तपोविशेष को; **उवसंपज्जित्ता णं विहरइ**—धारण करके, विचरने लगी; **तं जहा**—जैसे कि; **चउत्थं करेइ**—उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है। **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है, **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—तेला करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्व-**

कामगुणियं पारेइ—पंचौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पंचौला करके व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्वप्रकार के विगयों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचोला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पचौला करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास किया करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्वप्रकार के इष्ट पदार्थो से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **पारित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ**—चौला करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है। **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पचौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है, **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—व्रत करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—व्रत करके सभी रसों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है।

एवं खलु—इस प्रकार; **खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स**—क्षुल्लक सर्वतोभद्र नामक तप की; **पढमं परिवाडि**—पहली परिपाटी के; **तिहिं मासेहिं**—तीन मास और; **दसहिं दिवसेहिं**—दस दिनों में; **अहासुत्तं**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार; **जाव**—यावत्, **आराहेत्ता**—आराधित करके; **दोच्चाए-परिवाडीए**—दूसरी परिपाटी में; **चउत्थं करेइ**—उपवास करती है; **करित्ता विगइवज्जं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि विकार-जनक पदार्थों को छोड़कर अन्य खाद्य पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता**—पारणा करके; **जहा**—जिस प्रकार; **रयणावलिए**—रत्नवाली तप में पारणों का वर्णन किया गया है; **तहा**—उसी प्रकार; **एत्थ वि**—यहा क्षुल्लक सर्वतोभद्र तप में भी; **चत्तारि परिवाडीओ**—

चारों परिपाटियों में पारणे आदि बताए गए हैं; **तहेव**—वैसे ही; **पारणा**—पारणों का वर्णन क्षुल्लक सर्वतोभद्र में समझ लेना चाहिये; **चउण्हं कालो**—चारों परिपाटियों का समय; **संवच्छरो**—एक वर्ष; **मासो**—एक मास; **य**—और; **दस दिवसा**—दस दिन होता है; **सेसं**—महासती महाकृष्णादेवी के जीवन का शेष वर्णन; **तहेव**—काली-महाकाली आदि देवियों के समान ही समझ लेना चाहिये; **जाव**—यावत्—यह; **सिद्धा**—सिद्ध-पद को प्राप्त हुई। **निक्खेवओ**—उपसंहार-वाक्य की कल्पना कर लेनी चाहिये ।

मूलार्थ—जिस प्रकार काली आदि महासतियों के जीवन का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार महासती महाकृष्णा का भी समझ लेना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि इस महासती ने लघु-सर्वतोभद्र तप का आराधन किया था, इस तप की रूप-रेखा इस प्रकार है—

उपवास,	बेला,	तेला,	चौला,	पंचौला
तेला,	चौला,	पंचोला,	उपवास,	बेला,
पंचौला,	उपवास,	बेला,	तेला,	चौला,
बेला,	तेला,	चौला,	पंचौला,	उपवास,
चौला,	पंचौला,	उपवास,	बेला,	तेला ।

अर्थात्—महासती महाकृष्णा ने सर्व प्रथम उपवास किया, पारणा किया फिर बेला किया, फिर पारणा किया, फिर तेला किया, इसी प्रकार फिर पारणा करके चौला किया, इसी पद्धति से आगे भी समझ लेना चाहिये । इन व्रतों के पारणों में दूध-घृत आदि सभी इष्ट विगयों का प्रयोग किया गया, इस प्रकार तीन मास दस दिन में यह 'लघु सर्वतोभद्र तप' की प्रथम परिपाटी सम्पन्न की ।

सूत्रोक्त विधि के अनुसार लघुसर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी की आराधना करने के अनन्तर महासती महाकृष्णा ने इस तप की दूसरी परिपाटी आरम्भ की। इस दूसरी परिपाटी के पारणों में दूध आदि किसी विकृति-पदार्थ का सेवन नहीं किया गया ।

जिस प्रकार रत्नावली तप की चार परिपाटियां बताई गई थीं, उसी प्रकार 'लघु सर्वतोभद्र' तप की भी चार परिपाटियां समझनी चाहिये। पारणे भी पहले की तरह ही किये जाते हैं। इस तप की चारों परिपाटियों का काल एक वर्ष, एक मास तथा दस दिन है। शेष जीवन-वृत्तान्त पहले जैसा समझना चाहिये। अन्त में महासती महाकृष्णा ने सिद्ध पद उपलब्ध कर लिया।

प्रस्तुत छठे अध्ययन के समाप्त हो जाने पर आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार से कहने लगे कि 'हे जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड के आठवें वर्ग के छठे अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत छठे अध्ययन में महासती महाकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया गया है, यह राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पा नरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र भी युद्ध में मारा गया था, उसके असह्य वियोग ने इनके हृदय को संसार की मोह-माया से विरक्त कर दिया था। अनित्य भावना से भावित हो कर एक दिन यह भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित होकर साध्वी बन गई। महासती आर्या चन्दना से इन्होंने आचारांग आदि ग्यारह अंग पढ़े। व्रत, बेला आदि अनेकविध तप किया। लघुसर्वतोभद्र इनका बहुत प्रिय तप था, इसीलिये सूत्रकार ने विशेष रूप से इसका निर्देश किया है। लघुसर्वतोभद्र तप की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते है—



"खुड्डियं सव्वओभद्दं पडिमं" त्ति क्षुद्रिका महत्यपेक्षया सर्वतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च भद्रा—समसंख्येति सर्वतोभद्रा। तथाहि—एकादीनां पञ्चान्तानामङ्कानां सर्वतो भावात् पञ्चदश पञ्चदश सर्वत्र तस्यां जायन्ते इति। स्थापनोपाय-गाथा—

एगाइ पंचंते ठविउं. मज्झं तु आइमणुपंति।
सेसो कमसो ठविउं जाणह, लहु सव्वओभद्दं ॥१॥

तपोदिनानीह पञ्चसप्तति, पारणकदिनानि तु पंचविंशतिरिति, सर्वाणि दिनानि शतमेकस्यां परिपाट्यां, चतसृषु त्वेतदेव चतुर्गुणम्।

अर्थात्—क्षुद्र शब्द यहां पर महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का होता है, एक महद् और लघु। यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुद्र शब्द का प्रयोग किया गया

है। गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से भी गणना की जाए उधर से ही समान हों, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इसमें एक से लेकर पांच अंक दिये जाते हैं, चारों ओर जिधर से चाहें गिन लें सभी ओर १५ ही संख्या मिलती है। एक से पांच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या होने से ही इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है, एक जैसी संख्या कैसे बनती है? यह ऊपर दिये गये चित्र से स्पष्ट हो जाता है।

क्षुद्रसर्वतोभद्र तपके इस यंत्र में इसकी प्रथम परिपाटी सम्पन्न होती है, इस प्रथम परिपाटी में तीन मास दस दिन अर्थात् १०० दिन लगते हैं। इनमें ७५ दिन तपस्या के और २५ दिन पारणों के होते हैं।

जैसे प्रस्तुत आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन में रत्नावली तप का वर्णन किया गया था, वैसा ही वर्णन इस तप का है। रत्नावली तप की तरह इस तप की चार परिपाटियां होती हैं, उसीकी तरह इसकी प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध-घृत आदि इष्ट पदार्थों का सेवन किया जाता है, दूसरी परिपाटी के पारणे में दूध, घृत आदि सभी विगय पदार्थों का परित्याग कर दिया जाता है। तीसरी परिपाटी के पारणे में दूध-घृत आदि सभी विगयों का लेप मात्र भी छोड़ दिया जाता है, इसके अनन्तर चौथी परिपाटी के पारणे में आयम्बिल तप किया जाता है।

लघुसर्वतोभद्र की चारों परिपाटियोंका काल एक वर्ष, एक मास, दस दिन है, इस काल में इस तप की चारों परिपाटियां सम्पन्न हो जाती हैं।

"**एवं महकण्हा वि**"—का अर्थ है—इस प्रकार महाकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिये। जिस प्रकार प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में काली देवी की जीवनी का उल्लेख किया गया है, बिल्कुल उसी के समान महाकृष्णा देवी की जीवनी की कल्पना कर लेनी चाहिये।

"**सव्वकामगुणिय**" का अर्थ पृष्ठ ३९८ पर किया गया है।

"**विगइवज्ज**" का अर्थ है—विकृति से रहित। विकृति विगय को कहते हैं। श्री स्थानांग सूत्र में विगय के ९ प्रकार बताए गए हैं—दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड़, मधु, मद्य और मांस।

ये पदार्थ शरीर-पोषक होने के कारण इन्द्रियों को उत्तेजित करते हैं, मन में विकार पैदा करते हैं, अतः इनको विकृति या विगय कहते हैं। इन में मद्य और मांस अभक्ष्य होने से सर्वथा त्याज्य हैं, मधु और नवनीत ये दोनों विशेष स्थिति में ही लिये जा सकते हैं, सदैव नहीं। दूध, घृतादि का भी यथाशक्ति एक या एक से अधिक के रूप में प्रतिदिन त्याग करते रहना चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित महासती महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों का ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे में दूध आदि विगयों का भी परित्याग कर दिया। विगयों के इस परित्याग को ही सूत्रकार ने "**विगइवज्जं**" इस पद से अभिव्यक्त किया है।

तीसरी परिपाटी के पारणे में विगय का लेप भी छोड़ दिया तथा चतुर्थ परिपाटी के पारणे में

आयंबिल तप का आराधन किया। इसी बात को सूत्रकार ने **"जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ"** ये पद प्रयुक्त किये हैं।

"सेसं तहेव जाव सिद्धा"—का अर्थ है शेष वर्णन वैसा ही जानना, निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व महासती काली की जो जीवनी है, वह सब की सब महासती कृष्णा की जीवनी समझ लेनी चाहिये। इसी समानता को संसूचित करने के लिये सूत्रकार ने **"सेसं तहेव"** इन पदों का प्रयोग किया है।

"निक्खेवओ-निक्षेपः"—का अर्थ है—उपसंहार-वाक्य जो शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है—

एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। अर्थ स्पष्ट है।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवां अध्ययन

अब सूत्रकार सातवें अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं वीरकण्हा वि, णवरं महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पढमा लया।

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, बीया लया।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, तइया लया।

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, चउत्थी लया।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ, पंचमी लया।

छट्ठं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवाल-समं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, छट्ठी लया।

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, सत्तमी लया।

एक्काए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा, चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा, सेसं तहेव जाव सिद्धा।

छाया—एवं वीर कृष्णाऽपि, णवरं महत् सर्वतोभद्रं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा—चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति. पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, प्रथमा लता।

दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति. पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति. कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, द्वितीया लता।

षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, तृतीया लता ।

अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, चतुर्थी लता ।

चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पञ्चमी लता ।

षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, षष्ठी लता ।

द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा षष्ठ करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, सप्तमी लता ।

एकस्याः (परिपाट्याः) कालः—अष्टमासाः पञ्च च दिवसाः । चतसृणां (परिपाटीनां कालः) द्वे वर्षे, अष्ट मासाः विंशति दिवसाः । शेषं तथैव यावत्सिद्धा ।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार जैसे महाकृष्णा देवी का वर्णन किया गया है; **वीरकण्हा वि**—वीर कृष्णा देवी का जीवन भी समझ लेना चाहिए; **णवरं**—अन्तर यह है कि; **महालयं सव्वओभद्दं तवो-कम्मं**—महासर्वतोभद्र नामक तप को; **उवसंपज्जित्ताणं**—धारण करके; **विहरइ**—विचरण करती है; **तं जहा**—जैसे कि, महासर्वतो भद्र की रूपरेखा इस प्रकार है; **चउत्थं**

करेइ—चतुर्थ अर्थात् उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके लगातार दो उपवास (बेला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि इष्ट विगयों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं रेइ**—पारणा करके अष्टम (तेला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके दशम अर्थात् लगातार चार उपवास करती है; **करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ**—चौला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवाल-समं करेइ**—पारणा करके पंचौला लगातार पांच उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके छौला (लगातार छ उपवास) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके लगातार सात उपवास करती है। **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पढमा लया**—यह इस तप का प्रथम प्रकार है।

दसमं करेइ—दशम अर्थात् चार उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसम करेइ**—पारणा करके लगातार पाच उपवास (पंचौला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—पंचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके लगातार छे उपवास (छौला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके निरन्तर सात उपवास (सतौला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सभी दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है. **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **परित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **बीया लया**—यह इस तप का दूसरा प्रकार है।

सोलसमं करेइ—सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थ करेइ**—पारणा करके एक उपवास (चतुर्थ) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ** चौला करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके

पांच उपवास (पंचौला) करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है । **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके लगातार छः उपवास (छौला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **तइया लया**, यह तीसरी लता अर्थात् प्रकार है ।

अट्ठमं करेइ—तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके छौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास (सतौला) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **चउत्थी लया**—यह चौथी लता अर्थात् तप का प्रकार है ।

चउद्दसमं करेइ—छे व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छे व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सात व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है । **पंचमी लया**—यह पांचवीं लता अर्थात् उपवास-क्रम है ।

छट्ठं करेइ—बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पादर्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चौला करके दूध आदि सभी इष्ट

पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके लगातार छः उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छः उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है। **छट्ठी लया**—यह छटी लता अर्थात् उपवास आदि की व्यवस्था है।

दुवालसमं करेइ—पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके निरन्तर छः उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सात उपवास करके सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता छट्ठं करेइ**—पारणा करके बेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके तेला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चौला करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **सत्तमी लया** सातवीं लता अर्थात् उपवास-विधि है।

एक्काए—एक परिपाटी का; **कालो**—काल-समय; **अट्ठमास**—आठ महीने; **य**—और; **पंच दिवसा**—पांच दिन हैं; **चउण्हं**—चारों परिपाटियों का समय; **दो वासा**—दो वर्ष; **अट्ठमासा**—आठ महीने; **वीसं दिवसा**—वीस दिन है, **सेसं**—शेष वर्णन; **तहेव**—वैसे ही। जैसे महाकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया गया है, वैसे इस महारानी का भी समझ लेना चाहिए; **जाव**—यावत् आठों कर्मों का क्षय कर के, यह; **सिद्धा**—सिद्ध बन गई।

मूलार्थ--अन्तगड सूत्र के आठवें वर्ग का छठा अध्ययन सुनाने के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जम्बू स्वामी कहने लगे कि "भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने छठे अध्ययन का जो अर्थ बताया है, वह मैंने सुन लिया है, अब आप अन्तगड सूत्र के आठवें वर्ग के सातवें अध्ययन को सुनाने की कृपा करें।" जम्बू की विनती सुन कर आर्य सुधर्मा कहने लगे—

जम्बू ! अन्तगड सूत्र के सातवें अध्ययन में वीरकृष्णा देवी की जीवनी वर्णित की गई है। यह जीवनी महासती महाकृष्णा देवी के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि इन्होंने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया था। महासर्वतोभद्र तप में सात लताएं हैं, जिन की रूपरेखा इस प्रकार है–

पहली लता—उपवास, बेला, तेला, चौला, पंचौला, छ व्रत, सात व्रत।

दूसरी लता—चौला, पंचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला।

तीसरी लता—सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला, पंचौला, छ व्रत।

चौथी लता—तेला, चौला, पंचौला, छ व्रत, सात व्रत, एक व्रत, बेला।

पांचवीं लता— छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला, पंचौला।

छठी लता—बेला, तेला, चौला, पंचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत।

सातवीं लता—पंचौला, छ व्रत, सातव्रत, एक व्रत, बेला, तेला, चौला।

इन सब व्रतों के पारणे में दूध घृत आदि सभी इष्ट विगयों का सेवन किया गया था। इन सात लताओं को मिलाकर एक परिपाटी बनती है। एक परिपाटी में आठ महीने और पांच दिन लगते हैं। चार परिपाटियों का समय दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन होते है।

महासती वीरकृष्णा देवी का शेष जीवन महासती महाकृष्णा के समान जान लेना चाहिए। वह अन्त में आठ कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद उपलब्ध कर लेती है।

व्याख्या—प्रस्तुत सातवें अध्ययन में महासती वीरकृष्णा की जीवनी का उल्लेख किया गया है, वीरकृष्णा राजगृह नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पानरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र युद्ध में मारा गया था, पुत्र-वियोग-जन्य दुःख ने इनको संसार की विषादान्त मोह-माया से उपराम कर दिया था, परिणाम स्वरूप यह श्रमण भगवान महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षित हो गई थी। महासती आर्या चन्दना से इन्होंने आचारांग आदि ११ अंग पढ़े। इनका अधिक झुकाव तपस्या की आराधना की ओर था। व्रत, वेले, तेले आदि अनेकविध तप करने के अतिरिक्त इन्होंने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया। प्रस्तुत सूत्र में इसी तप की रूपरेखा का परिचय कराया गया है।

सर्वतोभद्र तप की अर्थ-विचारणा पीछे पृष्ठ ४४८ पर की जा चुकी है। इसके लघु और महद् ये दो भेद हैं। लघु सर्वतोभद्र तप का परिचय इसी वर्ग के छठे अध्ययन में कराया जा चुका है। महद्

सर्वतोभद्र तप की रूप-रेखा का परिचय प्रस्तुत सूत्र में कराया जा रहा है। इस में सात लताएं होती हैं, प्रत्येक लता में व्रतों आदि का निर्देश मूलार्थ में कर दिया गया है।



महद् सर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी में तप के दिन १९६ होते हैं पारणे के दिन ४९, इस प्रकार एक परिपाटी के कुल दिन २४५ होते हैं। इनको चार गुणा करने पर चारों परिपाटियों के ९८० दिन होते हैं।

महासर्वतोभद्र तप के सम्बन्ध में वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—"**एवं महासर्वतोभद्राऽपि, नवरमेकादयः सप्तान्ताः उपवासास्तस्यां, स्थापनोपायगाथा—**

एगाती सत्तंते ठविउं मज्झं तु आइमणुपंति।
सेसो कमसो ठविउं जाण महासव्वओभद्दं ॥ १ ॥

इह षण्णवत्युत्तरशततपोदिनानां एकोनपञ्चाशच्च पारणकदिनानि। ततोऽस्यां द्वे शते पञ्चचत्वारिंशदधिके दिनानां भवतः। इत्येवमेकस्यां परिपाट्यां चतसृषु त्वेतदेव चतुर्गुणमिति।

इस पाठ का भावार्थ ऊपर की पंक्तियों में लिखा जा चुका है।

महासर्वतोभद्र का जो यंत्र सामने प्रदर्शित किया गया है, इसमें गणना करने पर चारों ओर से अंकों की समान ही संख्या होती है। एक ओर गिनो तो २८, दूसरी, तीसरी और चौथी ओर से गिनें तो २८ ही संख्या बनती है। इसी समान संख्या के कारण इस को सर्वतोभद्र संज्ञा दी गई है। यह प्रतिमा सर्व प्रकार से भद्र—कल्याण करनेवाली है।

"**एवं वीरकण्हा वि**" का अर्थ है—इसी प्रकार वीरकृष्णा भी। भाव यह है कि जिस प्रकार पिछले अध्ययन में महाकृष्णा के जीवन का उल्लेख किया गया है उसी प्रकार वीरकृष्णा की जीवन सम्बन्धी घटनाओं को भी समझ लेना चाहिये। दोनों महासतियों की जीवनगत घटनाएं एवं आध्यात्मिक आचरण एक जैसे हैं। जहां अन्तर है, उसे भी सूत्रकार ने स्पष्ट कर दिया है। महासती महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र का और महासती वीरकृष्णा ने महासर्वतोभद्र तप का आराधन किया था, इसके बिना दोनों के आध्यात्मिक जीवन-वृत्तों में कोई अन्तर नहीं है।

प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध, घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया गया। दूसरी परिपाटी के पारणे में घृत आदि विगयों का परित्याग कर दिया गया। तीसरी परिपाटी के पारणे में

विगयों का लेपमात्र भी छोड़ दिया गया, चौथी परिपाटी के पारणे में आयंबिल तप का आराधन किया गया।

"सेसं तहेव जाव सिद्धा" का अर्थ है महासती वीरकृष्णा का शेष जीवन महासती महाकृष्णा के समान जानना चाहिये। महासर्वतोभद्र तप की आराधना के अनन्तर अर्द्धरात्रि के समय अन्न-जल का त्याग करके संलेखना—आमरण अनशन करना, अन्त में समस्त कर्मों का क्षय करके जन्म-मरण से रहित हो जानाआदि सभी बातें पूर्व वर्णित महासतियों के जीवन के तुल्य हो समझ लेनी चाहिये। निर्वाण-पद प्राप्त करने से पूर्व की सभी घटनाओं के वर्णक पाठ को सूत्रकार ने जाव पद से अभिव्यक्त किया है।

सप्तम अध्ययन का उपसंहार-वाक्य शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है. **"एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् जम्बू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगडसूत्र के आठवें वर्ग के सातवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

आठवां अध्ययन

अब सूत्रकार छठे अध्ययन का आरंभ करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं रामकण्हा वि, णवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्व कामगुणियं पारेइ, पढमा लया।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, बीया लया।

वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, तइया लया।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता, दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, चउत्थी लया।

अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेई, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पंचमी लया।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा, चउण्हं कालो दो वरिसा, दो मासा वीस य दिवसा, सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा ।

छाया—एवं रामकृष्णाऽपि, नवरं भद्रोत्तरप्रतिमामुपसम्पद्य विहरति । तद्यथा-द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, प्रथमा लता ।

षोडशं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, द्वितीया लता ।

विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, तृतीया लता ।

चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति,पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, चतुर्थी लता ।

अष्टादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्व-कामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चउद्दसमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति पंचमी लता ।

एकस्याः (परिपाट्याः) कालः षण्मासाः विंशतिदिवसाः, चतसृणां कालो द्वे वर्षे, द्वौ मासौ, विंशतिदिवसाः । शेषं तथैव यथा काली यावत्सिद्धा ।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती वीर कृष्णादेवी की जीवनी का वर्णन किया गया है उसी प्रकार; **रामकण्हा वि**—रामकृष्णा देवी की जीवनी की कल्पना कर लेनी चाहिए; **नवरं**—केवल इतना अन्तर है कि यह; **भद्दोत्तरपडिमं**—भद्रोतर नामक प्रतिज्ञा-विशेष को; **उवसंपज्जित्ता णं**—धारण करके; **विहरइ**—विहरण करती है; **तं जहा**—जैसे कि; **दुवालसमं करेइ**—पंचौला (लगातर पांच उपवास) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सर्व-प्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके छौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है। **पारित्ता**

सोलसमं करेइ—पारणा करके सतौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है, **पारित्ता अट्ठारसमं करेइ**—पारणा करके आठ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—आठ उपवास करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता वीसइमं करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—नौ उपवास करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पढमा लया**—यह प्रथम लता अर्थात् व्रत-विधान है।

सोलसमं करेइ—सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठारसमं करेइ**—पारणा करके आठ व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—अठाई करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता वीसइमं करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—नौ व्रत करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सर्वप्रकार के विगयों से पारणा करती है; **बीया लया**—यह दूसरी लता अर्थात् व्रत-विधि है।

वीइसमं करेइ—नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—नौ उपवास करके सर्वप्रकार के पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पांच उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पांच उपवास करके सर्वप्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके छौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सतौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठारसमं करेइ**—पारणा करके आठ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ**—अठाई करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है; **तइया लया**—यह तीसरी व्रत-विधि है।

चउद्दसमं करेइ—छः व्रत करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठारसमं करेइ**—पारणा करके आठ उपवास (अठाई) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—आठ उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता बीसइमं करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—नौ उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचौला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **चउत्थी लया**—यह चौथी व्रत-परम्परा है।

अट्ठारसमं करेइ—आठ व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—व्रत करके सर्वप्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता बीसइमं करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—नौ उपवास करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं**

करेइ—पारणा करके पंचौला करती है; करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ—पंचौला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; पारित्ता चउद्दसमं करेइ—पारणा करके छः उपवास करती है; करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ—छौला करके सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; पारित्ता सोलसमं करेइ—पारणा करके सात व्रत करती है; करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ—सतोला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; पंचमी लया—यह पांचवा व्रत विधान है; एक्काए इस तप की एक परिपाटी का; कालो—समय है; छम्मासा—छः महीने; वीस य दिवसा—बीस दिन होते है; चउण्हं कालो—चारों परिपाटियों का काल; दो वरिसा—दो वर्ष; दो मासा—दो महीने; य—और वीस दिवसा—बीस दिनहै; सेसं—शेष वर्णन; तहेव—वैसा ही जान लेना अर्थात् जिस तरह काली आदि महासतियों के पारणे का वर्णन दिया गया है, उसी तरह रामकृष्णा देवी के पारणों का वर्णन भी जान लेना चाहिये; जहा—जिस प्रकार; काली—महासती काली देवी; जाव—यावत्—तप संयम की आराधना के द्वारा; सिद्धा—सिद्ध बन गई, वैसे यह भी सिद्ध हो गई।

मूलम्—आर्य जम्बू अनगर आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के सातवें वर्ग के आठवें अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, वह मैंने सुन लिया है, भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? अब यह बतलाने की कृपा करें। आर्य जम्बू अनगार की इस विनति को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! आठवें वर्ग के आठवें अध्ययन में महासती रामकृष्णा देवी के जीवन का वर्णन किया किया गया है। महासती रामकृष्णा का जीवन प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में वर्णित महासती काली देवी के जीवन के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि काली देवी ने रत्नावली तप का आराधन किया था और इन्होंने "भद्रोत्तरप्रतिमा" नामक तप का। भद्रोत्तर प्रतिमा तप में पांच लताएं है। उनकी रूपरेखा इस प्रकार है–

प्रथमलता —पांच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नौ उपवास।
द्वितीयलता—सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास पांच उपवास, छ उपवास।
तृतीय लता—नव उपवास, पांच उपवास, छ उपवास सात उपवास, आठ उपवास।
चतुर्थलता —छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास, पाँच उपवास।
पंचमलता —आठ उपवास, नव उपवास, पांच उपवास, छ उपवास, सात उपवास।

इन उपवासों के पारणे में दूध, घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया

गया। इन पांच लताओं को मिलाकर एक परिपाटी बनती है। एक परिपाटी में छः मास और बीस दिन लगते हैं। चार परिपाटियों का समय दो वर्ष दो महीने और बीस दिन है। महासती रामकृष्णा का शेष जीवन महासती काली के समान जान लेना चाहिए। महासती काली की तरह दूसरी परिपाटी के पारणों में दूध आदि विगयों का परित्याग कर दिया गया। तीसरी में विगयों का लेप भी छोड़ दिया और चौथी परिपाटी का पारणा आयम्बिल तप से किया गया। इसके अतिरिक्त महासती काली की तरह सखना की आराधना कर के अन्त में सिद्ध-पद प्राप्त किया।

व्याख्या—प्रस्तुत आठवें अध्ययन में महासती रामकृष्णा की जीवनी वर्णित की गई है। यह भी राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी और चम्पा-नरेश महाराज कोणिक की लघुमाता थी। इनका पुत्र भी युद्ध में मारा गया था। पुत्र-वियोग-जन्य अन्तर्वेदना ने इनके मन को संसार के ऐश्वर्य से उदासीन बना दिया था। सांसारिक आमोदप्रमोद से इनका कोई लगाव नहीं रहा। परिणामस्वरूप यह विश्ववन्द्य मंगलमूर्ति भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गई। महासती आर्या चन्दना से इन्होंने आचारांग आदि ग्यारह अंग पढ़े। व्रत, बेले, तेले आदि अनेक-विध तप किये। तपों में **"भद्रोत्तर प्रतिमा"** तप इनका विशेष प्रिय तप था। प्रस्तुत सूत्र में इसी तप की व्याख्या की गई है—इसकी रूपरेखा का परिचय कराया गया है।

भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ है—उत्तर—प्रधान, भद्र—कल्याण की प्रदाता। यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने से भद्रोत्तर प्रतिमा कही जाती है। यह पांच उपवास से आरम्भ होकर नौ उपवास तक जाती है। आरम्भ पाँच से और समाप्ति नौ उपवासों से होती है। इसकी चार परिपाटियां हैं। प्रत्येक परिपाटी में पांच लताएं हैं। एक परिपाटी में छः मास बीस दिन लगते हैं और दो वर्ष, दो मास और बीस दिनों का समय चार परिपाटियों की पूर्ति में अपेक्षित रहता है। इसकी प्रथम परिपाटी में १७५ दिन उपवास के २५ दिन पारणों के होते हैं। सब मिलाकर ६ मास बीस दिन हो जाते हैं। इसका स्थापना यंत्र सामने प्रदर्शित है—



भद्रोत्तर प्रतिमा के सम्बन्ध में वृत्तिकार आचार्य अभयदेवसूरि लिखते हैं—**भद्रोत्तर-प्रतिमायाः स्थापनोपायगाथेयं**—

पंचादी य नवंते ठविउं मज्झं तु आदिमणुपंति।
सेसो कमसो ठविउं जाण भद्दोत्तरं सुद्धं ॥ १ ॥

इह पञ्चसप्तत्यधिकं शतं तपोदिनानां पञ्चविंशतिस्तु पारणदिनानि, एवं शतद्वयं दिनानामे-कस्यां परिपाट्यां भवति, तच्चतुष्टये त्वेतदेव चतुर्गुणमिति। अर्थ स्पष्ट ही है।

"एवं रामकण्हा वि" का अर्थ है—इसी प्रकार रामकृष्णा का जीवन भी है। प्रस्तुत आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन में महासती कालीदेवी के जीवन का वर्णन किया गया है। सूत्रकार पाठकों को सावधान करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कालीदेवी के जीवन में उसके वैराग्य, दीक्षा-ग्रहण आदि का उल्लेख किया गया है, ठीक उसी प्रकार महासती रामकृष्णा के वैराग्य तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिये। इन दोनों महासतियों के जीवन में **"नवरं भद्दोत्तरं पडिमं"** इतना अन्तर बताया गया है कि महासती काली ने रत्नावली तप का आराधन किया था, परन्तु इसने भद्रो-त्तर प्रतिमा की पालना की थी।

"सव्वकामगुणियं" का अर्थ पीछे पृष्ठ ३८८ पर किया जा चुका है। भद्रोत्तर प्रतिमा की प्रथम परिपाटी के ५ भेद हैं। इसीलिये इस की ५ लताएं बनाई गई हैं। **"एक्काए"** का अर्थ है प्रथम परिपाटी का तथा **चउण्हं** पद चार परिपाटियों का बोधक है।

"सेसं तहेव" का अर्थ है—भद्रोत्तर-प्रतिमा की दूसरी परिपाटी के पारणों में रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी के समान दूध आदि विगयों का परित्याग कर दिया गया, तीसरी के पारणे में विगयों का लेपमात्र भी छोड़ दिया तथा चौथी का पारणा आयंबिल तप से किया गया।

"जहा काली जाव सिद्धा" का अभिप्राय है जिस प्रकार महासती काली के अर्द्ध-रात्रि के समय धर्म-जागरण करते समय अन्न-जल का परित्याग करके संलेखना की आराधना का निश्चय किया और निश्चयानुसार आचरण करके सिद्ध-पद प्राप्त किया था, इसी प्रकार महासती रामकृष्णा ने भी अर्द्धरात्रि के समय अन्न-जल के त्याग के साथ संलेखना की आराधना का निश्चय किया, तदनुसार आचरण करके इन्होंने सिद्ध-पद प्राप्त किया। इसी बात को सूत्रकार ने **"जहा काली जाव सिद्धा"** इन पदों से संसूचित किया है।

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥



नवम अध्ययन

अब सूत्रकार नवम अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं पिउसेणकण्हा वि, णवरं मुत्तावलि तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ

करित्ता, एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, चउत्थं करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा, पनरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा, दस य मासा। सेसं जाव सिद्धा।

छाया—**एवं पितृसेनकृष्णाऽपि नवरं मुक्तावली तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकाम गुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दश करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति,पारयित्वा द्वाविंशतितमं करो-ति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकाम-गुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणित पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति एवं तथैव अवतारयति यावत् चतुर्थं कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति। एकस्याः (परिपाट्याः) कालः एकादश मासा पञ्चदश च दिवसाः, चतसृणां (परिपाटीनां कालः) त्रीणि वर्षाणि दश च मासाः, शेषं यावत् सिद्धा।**

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती राम कृष्णादेवी के जीवन का वर्णन किया गया है उसी प्रकार; **पिउसेणकण्हा वि**—पितृसेनकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिए। **णवरं**—इतना अन्तर है कि महासती पितृसेनकृष्णा ने; **मुत्तावलि तवोकम्म**—मुक्तावली नाम का एक तप; **उवसंपज्जित्ता**—धारण करके; **णं**—वाक्य सौंदर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है; **विहरइ**—विचरण करती है; **तंजहा**—जैसे कि; **चउत्थं करेइ**—चतुर्थ अर्थात् एक उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं**

पारेइ—उपवास करके सर्व प्रकार के दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है, **पारित्ता छट्टं करेइ**—पारणा करके लगातार दो उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—बेला करके सर्व प्रकार के रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है, **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठमं करेइ**—पारणा करके लगातार तीन उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—तेला करके सभी दूध आदि पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दसमं करेइ**—पारणा करके चोला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—चोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता दुवालसमं करेइ**—पारणा करके पंचोला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—पंचोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउद्दसमं करेइ**—पारणा करके छोला करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—छोला करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता सोलसमं करेइ**—पारणा करके सात उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—सतोला करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठारसमं करेइ**—पारणा करके अठाही (आठ उपवास) करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—अठाही करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता वीसइमं करेइ**—पारणा करके नौ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। **पारित्ता बावीसइमं करेइ**—पारणा करके दस उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—दस उपवास करके दूध आदि रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं** पारेइ—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउवीसइमं करेइ**—पारणा करके ग्यारह उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—ग्यारह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं** पारेइ—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता छव्वीसइमं करेइ**—पारणा करके बारह उपवास करती है; **पारित्ता**

सव्वकामगुणियं पारेइ—बारह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता अट्ठावोसइमं करेइ**—पारणा करके तेरह उपवास करती है; **करित्ता सव्वकमगुणियं पारेइ**—तेरह उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता तीसइमं करेइ**—पारणा करके १४ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—१४ उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है। **करित्ता सव्वकामगुणियं करेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता बत्तीसइमं करेइ**—पारणा करके १५ उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—१५ उपवास करके दूध आदि इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके एक उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ**—पारणा करके १६ व्रत करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं करेइ**—१६ व्रत करके दूध आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके सभी रसों से पारणा करती है; **पारित्ता चउत्थं करेइ**—पारणा करके पुनः उपवास करती है; **करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ**—उपवास करके दूध आदि सभी पदार्थों से पारणा करती है; **करित्ता**—करके; **एवं**—इसी प्रकार; **तहेव**—वैसे ही, अर्थात् जैसे १ व्रत से ऊपर चढ़ते-चढ़ते १६ तक आए हैं, वैसे ही १६ से; **ओसारेइ**—पीछे लौटती है, जिस क्रम से आगे बढ़ती है, उसी क्रम से नीचे उतरी; **जाव**—यावत् १६ व्रतों का पारणा करके एक उपवास किया फिर १५ उपवास किए, इसी तरह पीछे हटते-हटते अन्त में; **चउत्थं**—एक उपवास; **करेइ**—करती है; **चउत्थं करित्ता**—उपवास करके **सव्वकामगुणियं पारेइ**—दूध घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों से पारणा करती है; **एक्काई**—एक परिपाटी का; **कालो**—काल—समय है; **एक्कारस**—११; **मासा**—महीने; **य**—और; **पनरस**—पन्द्रह; **दिवसा**—दिन; **चउण्हं**—चारों परिपाटियों का काल है; **तिण्णि वरिसा**—तीन वर्ष; **य**—और **दसमासा**—दस महीने; **सेसे**—महासती पितृसेनकृष्णा का शेष तपस्या-प्रधान जीवन; **तहेव**—वैसे ही है, अर्थात् महासती काली देवी के समान है; **जाव**—यावत् संलेखना की आराधना कर इन्होंने; **सिद्धा**—सिद्ध पद प्राप्त किया।

मूलार्थ—अन्तगड सूत्र के अष्टमवर्गीय आठवें अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी, अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा जी से निवेदन करने लगे कि भगवन्! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगड सूत्र के अष्टमवर्गीय अष्टम अध्ययन का जो अर्थ बताया है इसका श्रवण मैंने कर लिया है। भगवन्! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड के आठवें वर्ग के नौवें

अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है, अब वह सुनाने की कृपा करें । आर्य जम्बू अनगारकी । विनति सुनकर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—

जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्रीय इस अष्टम वर्ग के नवम अध्ययन में महासती पितृसेन-कृष्णा के आध्यात्मिक जीवन का उल्लेख किया है । इनका जीवन भी पीछे वर्णित महासती काली देवी के जीवन के समान समझ लेना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि उन्होंने रत्नावली तप की आराधना की थी, परन्तु इन्होंने मुक्तावली तप का आराधन किया था । मुक्तावली तप की रूप-रेखा इस प्रकार है,—एक उपवास, दो उपवास, एक उपवास, तीन उपवास, एक उपवास, चार उपवास, एक उपवास इसी क्रम से बढ़ते-बढ़ते १६ उपवास करती है और तदनन्तर क्रमश: नीचे उतरती है । सोलह उपवास, एक उपवास, पन्द्रह उपवास, एक उपवास, चौदह उपवास, इसी पद्धति से नीचे आते-आते अन्त में एक उपवास करती है । यही मुक्तावली तप का स्वरूप है । यह मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी है । इस प्रथम परिपाटी में कुल उपवासों के पारणे में दूध-घृत आदि सभी इष्ट पदार्थों का सेवन किया जाता है । इस प्रथम परिपाटी की आराधना में ग्यारह महीने पन्द्रह दिन लगते हैं । मुक्तावली तप की चारों परिपाटियों का काल तीन वर्ष दस महीने है ।

महासती पितृसेन कृष्णा का शेष तपस्या-प्रधान जीवन प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में वर्णित महासती काली देवी के तुल्य समझना चाहिए । अन्त में इन्होंने समस्त कर्मों का क्षय करके सिद्ध-पद प्राप्त किया ।

नवम अध्ययन के उत्क्षेप-उपसंहार की कल्पना पिछले अध्ययनों में वर्णित उत्क्षेप की भांति कर लेनी चाहिये ।

व्याख्या—प्रस्तुत अध्ययन में महासती पितृसेनकृष्णा के तपस्या-प्रधान जीवन का परिचय कराया गया है। यह राजगृह-नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी तथा चम्पानरेश महाराज कोणिक की लघु माता थी । इनका भी पुत्र युद्ध में मारा गया था। पुत्र-वियोग-जन्य असह्य वेदना ने इनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया, इनका हृदय संसार के आमोद-प्रमोद से उपराम हो गया । त्याग-वैराग्य की तीव्र भावनाओं के कारण यह श्रमण भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गई ।

महासती आर्य चन्दना की सेवा में रहकर इन्होंने आचारांग आदि ग्यारह अंग पढ़े ।

विद्याध्ययन के साथ-साथ यह उग्र तपस्याएं भी किया करती थीं। व्रत, बेले, तेले, आदि इन्होंने ने अनेकविध तप किये। इनके तपों में मुक्तावली तप का विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत सूत्र में इसी तप की रूप-रेखा का परिचय कराया गया है।

मुक्तावली शब्द का अर्थ है—मोतियों का हार। जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उस मोतियों की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं। इस तप में एक से ले कर सोलह तक उपवास करने का विधान है और एक-एक उपवास अन्तर में किया जाता है। उदाहरणार्थ एक उपवास के अनंतर पारणा, फिर दो उपवास, फिर पारणा, फिर एक उपवास, फिर पारणा, फिर तीन उपवास, पारणे के अनन्तर फिर एक उपवास, पारणे के पश्चात् चार उपवास फिर पारणा करके एक उपवास, इसी क्रम से सोलह उपवास तक चले जाते हैं। सोलह उपवासों के अनन्तर फिर वापिस लौटना होता है। वापिस लौटने का क्रम पहले जैसा है। सोलह उपवासों के अनन्तर पारणा किया जाता है, फिर एक उपवास का पारणा करके पन्द्रह उपवास, फिर पारणा, फिर एक उपवास, पारणे के पश्चात् चौदह उपवास, फिर पारणा करके एक उपवास किया जाता है, इसी क्रम से पीछे हटते-हटते अन्त में एक उपवास पर आना होता है। यह मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी का स्वरूप है। इस पहली परिपाटी में ग्यारह मास और पन्द्रह दिनों का समय लगता है और चार परिपाटियों को सम्पन्न करने में तीन वर्ष दस मास अपेक्षित हैं। प्रस्तुत अध्ययन में महासती पितृसेनकृष्णा ने इसी मुक्तावली तप की चारों परिपाटियों की आराधना की थी, इसी तप के अनुष्ठान से कर्म-मल को नष्ट करके इन्होंने आत्म-विशुद्धि द्वारा परम कल्याण रूप सिद्ध-पद को प्राप्त किया था।

मुक्तावली तप की रूप-रेखा का परिचय कराते हुए वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—

मुक्तावली सुज्ञातैव, नवरं, तस्यां चतुर्थं ततः षष्ठादीनि चतुस्त्रिंशत्तमपर्यन्तानि चतुर्थभक्तान्तरितानि ततश्चतुर्थं ततः प्रत्यावृत्य द्वात्रिंशत्तमादीनि षष्ठान्तानि चतुर्थभक्तान्तरितानि ततश्चतुर्थं च करोति, एवं चेयं तपसि इयत्प्रमाणः षोडश-संकलनादिना १३६ पञ्चदश-संकलनया च १२० चतुर्थानि २८, पारणकानि ५९ एषां च मीलनेन मासाः ११ दिनानि १३, भवन्ति, सूत्रे तु दिनानि १५ दृश्यन्ते, तत्तु नावगम्यते इति।

अर्थात् प्रथम चतुर्थ भक्त कर के दो उपवास से आरम्भ कर के सोलह तक उपवास करके और प्रत्येक पारण के अनन्तर चतुर्थभक्त करना होता है, इसी प्रकार प्रत्यावृत्ति में चतुर्थभक्त कर के पन्द्रह उपवास से लेकर दो उपवास तक उतरते जाना है और प्रत्येक पारणे में चतुर्थ भक्त (उपवास) करना पड़ता है। इस प्रकार एक परिपाटी में चतुर्थभक्तों—उपवासों और पारणों की कुल संख्या को मिलाने से ग्यारह मास तथा तेरह दिन होते हैं, परन्तु सूत्रकार ने मल

पाठ में समस्त संख्या ग्यारह मास पन्द्रह दिन लिखी है। ये दो दिन अधिक कैसे बढ़ गए? यह समझ में नहीं आता।

वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी के दिनों की संख्या जो ग्यारह मास तेरह दिन लिखी है, यह ठीक जंचती है। सूत्रकार ने ग्यारह मास पन्द्रह दिन यह लिखकर जो दो दिन अधिक बताए हैं, ये संगत नहीं बैठते। मुक्तावली तप की प्रथम परिपाटी में तपस्या के दिन दो सौ पचासी और पारणों के दिन अट्ठावन बनते हैं। सबको



मुक्तावली तप का स्थापना-यन्त्र

मिलाकर तीन सौ तेंतालीस दिन होते हैं। इन दिनों के ग्यारह मास तेरह दिन बनते हैं। संभव है सूत्र संकलन करते समय भ्रान्ति-वश 'तेरस' के स्थान पर 'पनरस' लिखा गया हो।

मुक्तावली तप के लिये कितने दिन अपेक्षित हैं, इस प्रश्न का समाधान ४७२ पृष्ठ पर प्रदर्शित मुक्तावली तप के स्थापना यंत्र से भली भांति हो जाएगा।

"एवं पिउसेणकण्हावि" का अर्थ है—इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का जीवन भी समझ लेना चाहिए। सूत्रकार के कहने का उद्देश्य यह है कि प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में जिस प्रकार काली देवी के वैराग्य, दीक्षा-ग्रहण, आचारांग आदि ग्यारह अङ्गों के अध्ययन के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है, वही वर्णन महासती पितृसेनकृष्णा के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

"णवरं"—इस अव्ययपद का अर्थ है इतना विशेष है। पिछले प्रकरण में महासती काली देवी का जो वर्णन कर आये हैं, उसमें तथा पितृसेनकृष्णा के जीवन में इतनी भिन्नता है कि इसने **"मुत्तावली तवोकम्मं"** मुक्तावली तप किया था।

"एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ"—इन पदों का भाव यह है कि जिस प्रकार महासती पितृसेनकृष्णा एक से आरम्भ करके सोलह तक उपवास करती है, उसी प्रकार वह सोलह से पीछे जाती हुई अर्थात् सोलह उपवास करके फिर उपवास करती है, और पारणा करके फिर पन्द्रह उपवास करती है, इसी क्रम से वह अन्त में एक उपवास करके मुक्तावली तप की साधना सम्पन्न करती है।

"एक्काए"— यह शब्द प्रथम परिपाटी का और **"चउण्हं"** यह शब्द चारों परिपाटियों का बोधक है।

नवम अध्ययन का निक्षेप—उपसंहार-वाक्य शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है—**एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,** अर्थात् नवम अध्ययन का अर्थ सुनाने के अनन्तर महामहिम आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू अनगार को कहने लगे—

जम्बू ! यावत्-मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें वर्ग के नवम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

।। नवम अध्ययन समाप्त ।।

दशम अध्ययन

अब सूत्रकार दशम अध्ययन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—एवं महासेणकण्हा वि, णवरं आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता छः आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति, चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ।

तए णं सा महासेनकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चउद्दसहिं वासेहिं तिहिं य मासेहिं वीसेहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ।

छाया—एवं महाकृष्णाऽपि नवरम्, आचाम्लवर्द्धमानं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा—आचाम्लं करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा द्वे आचाम्ले करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा त्रीणि आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा चत्वारि आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति कृत्वा पंच आचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा षडाचाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा एकोत्तरया वृद्धया आचाम्लानि वर्द्धन्ते, चतुर्थान्तरितानि यावद् आचाम्ल-शतं करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति।

ततः सा महासेनकृष्णा आर्या आचाम्लवर्द्धमानं तपः कर्म चतुर्दशभिर्वर्षैः त्रिभिर्मासैः विंशतिभिश्चाहोरात्रैः यथासूत्रं यावत् सम्यक् कायेन स्पृशति, यावदाराध्य यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य आर्यचंदनामार्यां वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा बहुभिश्चतुर्थैः यावद् भावयन्ती विहरति।

पदार्थ—**एवं**—इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकार महासती काली देवी का जीवन वर्णित किया है उसी प्रकार, **महासेणकण्हावि**—महासती महासेनकृष्णा देवी की जीवनी भी समझ लेनी चाहिए; **नवरं**—दोनों महासतियों के जीवन में इतना अन्तर है, कि उन्होंने; **आयंबिलवड्ढमाणं**—

आयंबिल वर्धमान नामक; **तवोकम्मं**—तप को; **उवसंपज्जित्ता**—धारण करके; **णं**—यह अव्ययपद वाक्य सौंदर्य के लिये है; **विहरइ**—विहरण करती है; **तं जहा**—जैसे कि; **आयंबिलं**—आचाम्ल—आयंबिल (अमल) तप को; **करेइ**—करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—अमल करके उपवास करती है; **करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ**—उपवास करके दो आयंबिल करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—दो आयंबिल करके उपवास करती है; **करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ**—उपवास करके तीन अमल करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—तीन अमल करके उपवास करती है; **करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ**—उपवास करके चार अमल करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—४ अमल करके उपवास करती है; **करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ**—उपवास करके पांच अमल करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—५ अमल करके उपवास करती है; **करित्ता छ आयंबिलाइं करेइ**—उपवास करके ६ आयंबिल करती है; **करित्ता चउत्थं करेइ**—६ आयंबिल करके उपवास करती है; **करित्ता एकोत्तरियाए**—उपवास करके उत्तरोत्तर एक-एक की; **वुड्ढीए**—वृद्धि करके; **आयंबिलाइं**—अमल; **वड्ढंति**—बढ़ जाते हैं, ये समस्त अमल; **चउत्थतरियाइं**—एक एक चतुर्थ उपवास के अन्तर के साथ किए जाते हैं अर्थात् पहले अमल, उसके अनंतर उपवास, करके अमल, इसी पद्धति से अमल तपस्या सपन्न की जाती है; **जाव**—यावत् सात अमल, एक उपवास, फिर आठ अमल एक उपवास, फिर नौ अमल इसी प्रकार आगे बढ़ते बढ़ते हुए **आयंबिलसयं**—सौ अमल; **करेइ**—करती है, **करित्ता चउत्थं करेइ**—सौ अमल करके उपवास करती है; **त एणं**—उसके अनन्तर; **सा महासेणकण्हा**—वह महासेन कृष्णा; **अज्जा**—आर्या, साध्वी; **आयंबिलवड्ढमाणं**—आयंबिल वर्धमान; **तवोकम्मं**—तप; **चउद्दसहिं वासेहिं**—१४ वर्षों; **य**—और; **तिहिं मासेहिं**—तीन महीने; **वीसेहिं अहोरत्तेहिं**—बीस दिन रात्रियों में; **अहासुत्तं**—सूत्रोक्त विधि के अनुसार; **जाव**—यावत्; **सम्मं काएणं**—सम्यग् रूप से शरीर द्वारा; **फासेइ**—स्पर्श करती है; **जाव**—यावत्; **आराहेत्ता**—तप की आराधना करके; **जेणेव अज्जचंदणा**—जहां आर्य चन्दना; **अज्जा**—आर्या थी; **तेणेव उवागच्छइ**—वहां आती है; **उवागच्छित्ता**—वहां आकर; **अज्जचंदणं अज्जं**—आर्या आर्यचन्दना को; **वंदइ, णमंसइ**—वंदन नमस्कार करती है; **वंदित्ता, णमंसित्ता**—वंदन नमस्कार करके; **बहूहिं**—अनेक; **चउत्थेहिं**—उपवासों; **जाव**—यावत् तपस्याओं से अपनी आत्मा को; **भावेमाणी**—भावित करती हुई; **विहरइ**—विहरण करती है।

मूलार्थ—प्रस्तुत वर्ग के नवम अध्ययन में जिस प्रकार महासती पितृसेन-कृष्णा की जीवनी का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार महासेन-कृष्णा की जीवनी भी समझनी चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि महासती महासेनकृष्णा ने आयंबिल वर्धमान नामक तप का आराधन किया था। आयंबिल-वर्धमान तप की रूप-रेखा इस प्रकार है—

सर्व प्रथम आयंबिल—अमल किया, फिर एक उपवास किया, तदनन्तर दो आयंबिल किए, फिर एक उपवास किया, इसी प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते तीन आयंबिल एक

उपवास, चार आयंबिल एक उपवास, पांच अमल एक उपवास, फिर छ अमल किए और एक उपवास किया। इसी पद्धति से आगे-आगे एक-एक अमल बढ़ाते-बढ़ाते और मध्य में एक-एक उपवास करते हुए अन्त में सौ अमल करती है। इस के पश्चात् एक उपवास करती है।

उसके अनन्तर वह महासती महासेनकृष्णा आयंबिल वर्धमान तप की चौदह वर्ष, तीन महीने और बीस दिन रात्रियों तक सूत्रोक्त विधि के अनुसार यावत् काय द्वारा सम्यग् रूप से आराधना करके जहाँ महासती आर्य चन्दना थी वहाँ आकर उनको वन्दन एवं नमस्कार करती है। इसके पश्चात् अनेक उपवास, बेले आदि तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई जीवन व्यतीत करने लगी।

व्याख्या—अन्तगडसूत्र के आठवें वर्ग के नौवें अध्ययन का श्रवण करने के अनन्तर आर्य जम्बू अनगार अपने गुरुदेव मंगलमूर्ति वन्दनीय आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों में सविनय निवेदन करने लगे—भगवन् ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्गीय नवम अध्ययन का जो अर्थ प्रतिपादन किया है उस का श्रवण मैंने कर लिया है। गुरुदेव ! अब मेरी इच्छा है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्रीय अष्टम वर्ग के दशम अध्ययन का जो अर्थ बतलाया है उसे सुनाने की कृपा करें।

अपने सुविनीत शिष्य आर्य जम्बू अनगार की जिज्ञासा भरी उक्त प्रार्थना को सुन कर आर्य सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के अष्टम वर्गीय दसवें अध्ययन में महासती महासेनकृष्णा के जीवन का उल्लेख किया है। यह भी राजगृह नरेश महाराज श्रेणिक की धर्मपत्नी और चम्पा नरेश महाराज कोणिक की छोटी माता थी। इनका पुत्र भी युद्ध में मारा गया था। उसके असह्य दुःख को यह सहन न कर सकी। इन्हें सारा संसार असार दिखाई देने लगा। संसार की यही असारता एक दिन इनके वैराग्य का कारण बनी। इन्होंने संसार के बन्धनों को तोड़कर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ संकल्प धारण किया। अन्त में एक दिन अवसर देखकर यह भगवान के चरणों में दीक्षित हो गई। इन्होंने अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दना (महासती चन्दन बाला) से आचाराग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और व्रत-बेले, तेले आदि अनेकविध तपस्याएं की। इनकी तपस्या में आयंबिल-वर्द्धमान तप का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

"आयंबिलवर्धमान" यह एक प्रकार का तप है। इसका अर्थ है, जिस में आयंबिल तप को बढ़ाया जाता है, वह तप। इस तप की आराधना में १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते हैं। इसमें एक से लेकर क्रमशः सौ तक अमल करने का विधान है और प्रत्येक अमल के बाद एक उपवास करना होता

है। गणना करने पर अमल के दिन ५०५० बनते हैं। इसको ३६० से भाग देने पर १४ वर्ष १० दिन हो जाते हैं। इनमें व्रतों के १००. (३ मास १० दिन) सम्मिलित करने पर १४ वर्ष ३ महीने २० दिन बनते हैं।

पिछले तपों का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपों को जो दिन-संख्या लिखी है, उसमें तपस्या के दिन और पारणे के दिन इस प्रकार सभी दिन संकलित किए जाते हैं। यदि उसी पद्धति का प्रस्तुत आयंबिल-वर्धमान तप की दिन संख्या में आश्रयण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि महासती महासेन कृष्णा ने लगातार १४ वर्ष ३ मास और २० दिन तक तपस्या की, इसमें पारणे का कोई दिन नहीं आता। इसके दो कारण हैं—प्रथम तो सूत्रकार जैसे पीछे पारणे का निर्देश करते चले आ रहे हैं, वैसे यहां पर सूत्रकार ने निर्देश नहीं किया, दूसरे यदि पारणे के सब दिन भी साथ में सम्मिलित कर दिए जाएं तो आयम्बिल-वर्धमान तप की दिन संख्या १४ वर्ष ३ मास २० दिन न रह कर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है। अतः यही समझना ठीक है, कि महासती महाकृष्णा ने १४ वर्ष ३ महीने २० दिन तक ही तपस्या की। मध्य में उन्होंने कोई पारणा नहीं किया। आयंबिल वर्धमान तप का स्थापना-यंत्र इस प्रकार है—

आयम्बिल-वर्धमान स्थापना-यन्त्र

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

आयंबिल वर्धमान तप की व्याख्या करते हुए अर्ध-मागधी कोषकार शतावधानी श्री रत्न-चन्द्र जी महाराज लिखते हैं—

"चौदह वर्ष, तीन मास और २० दिन तक होनेवाला तप जिसमें कि एक आयंबिल के पारणे के बाद एक उपवास करके उसके बाद दो आयंबिल किए जाते हैं। फिर एक उपवास, तीन आयंबिल इसी प्रकार बढ़ातेबढ़ाते १०० आयंबिल तक किए जाते हैं।

इस रीति से १४ वर्ष, तीन मास, २० दिन में यह तप पूर्ण होता है [पृष्ठ ६३, भाग २]।

सूत्रोक्त विधि के अनुसार आयंबिल-वर्धमान तप की आराधना करने के अनन्तर महासती महासेनकृष्णा अपनी आराध्य गुरुणी महासती आर्यचन्दना की सेवा में उपस्थित होती है, वन्दन और नमस्कार करने के अनन्तर उन्हींके सानिध्य में, उपवास, बेले, तेले आदि अनेकविध तप की आराधना करती हुई संयम तप की भावनाओं से भावित होकर जीवन व्यतीत करती है।

"एवं महाकण्हा वि"—एवं महाकृष्णाऽपि, यथा काल्यादयो निष्क्रान्तास्तथैवेयमपि, का अर्थ है—जिस प्रकार अष्टमांग अन्तगडसूत्र के अष्टमवर्ग के प्रथम अध्ययन में महासती काली के दीक्षा ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार महासती महाकृष्णा के दीक्षा-ग्रहण आदि का समस्त घटनाचक्र समझ लेना चाहिए।

"आयंबिलवड्ढमाणं"—आचाम्लं वर्द्धमानं यस्मिन् तपः कर्मणि तद् आचाम्लवर्धमानम्, अर्थात् जिस तप में आयंबिल तप की वृद्धि हो उसे आयंबिल-वर्धमान कहते हैं। इसमें एक से १०० तक अमल किए जाते हैं। अमलों की सम्वृद्धि होने के कारण ही इसे आयंबिल-वर्द्धमान कहा गया है।

"एकोत्तरेयाए वुड्ढीए" का अर्थ है—एकोत्तरिक वृद्धि से। अर्थात् उत्तरोत्तर—आगे-आगे एक-एक अमल की सम्वृद्धि करने से।

"चउत्थंतरियाइं"—चतुर्थान्तरितानि—का अर्थ है जिनके अन्तर मध्य में चतुर्थ उपवास हो। आगे-पीछे अमल तपस्या हो और मध्य में जहां उपवास हो उसे चतुर्थान्तरित कहते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में लिखा है कि आयंबिल वर्धमान तप के अनंतर महासती महासेनकृष्णा तपः संयम के साथ अपनी आत्मा को भावित करती हुई विहरण करने लगी। इसके पश्चात् क्या हुआ? अब सूत्रकार इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी २ चिट्ठइ २। तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त-काले चिन्ता, जहा खंदयस्स जाव अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ जाव संलेहणा। कालं अणवकंखमाणी विहरइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्ज-चंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, जस्स-

दृठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ, चरिम-उस्सास-नीसासेहिं सिद्धा बुद्धा।
अट्ठ य वासा आदी, एकोत्तरियाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणिय भज्जाण णायव्वो ॥

छाया—ततः सा महासेनकृष्णा आर्या तेनोदारेण यावद् उपशोभमाना उपशोभमाना तिष्ठति। ततस्तस्याः महासेनकृष्णायाः आर्यायाः अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकाले चिन्ता यथा स्कन्दकस्य यावदार्यचन्दनामार्य्यामापृच्छति, यावत् संलेखना, कालमनवकांक्षन्ती विहरति।

ततः सा महासेनकृष्णाऽऽर्या आर्यचन्दनायाः आर्याया अन्तिके सामायिकादीनि एकादश अंगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णानि सप्तदश वर्षाणि पर्यायं पालयित्वा, मासिक्या संलेखनयात्मानं जोषयित्वा षष्टि भक्तानि अनशनेन छित्वा यस्यार्थाय क्रियते यावत्तमर्थमाराधयति, चरमोच्छ्-वासनिःश्वासैः सिद्धा बुद्धा।

अष्ट वर्षाणि आदिरेकोत्तरिया यावत् सप्तदश।
एषः खलु पर्यायः, श्रेणिकभार्याणां ज्ञातव्यः ॥

पदार्थ—तए—उसके अनन्तर; णं—यह अव्ययपद वाक्य सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है; सा महासेणकण्हा—वह महासेनकृष्णा; अज्जा—आर्या—साध्वी; तेणं—उस (जिसका वर्णन पूर्व कर चुके हैं); ओरालेणं—उदार—प्रधान तप से; जाव—यावत् उसके तेज के कारण उवसोभेमाणी २—अत्यन्त शोभायमान दिखाई दे रही थी; तए णं—उसके अनन्तर; तीसे—उस; महासेणकण्हाए—महासेन कृष्णा; अज्जाए—आर्या को; अण्णया कयाइं—किसी अन्य समय एक बार; पुव्वरत्तावरत्तकाले—पिछली रात्रि में; जहा—जिस प्रकार; खंदयस्स—स्कंदक कुमार मुनि ने चिन्तन किया था, उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा ने; चिन्ता—चिन्तन किया; जाव—यावत् चिन्तन करने के अनन्तर वह; अज्जं—आर्या; अज्जचंदणं—आर्य चन्दना-महासती चन्दनबाला को; आपुच्छइ—पूछती है; जाव—यावत् उसने; संलेहणा—संलेखना—आमरण अनशन आरंभ कर दिया और; कालं—मृत्यु की; अणवकंखमाणी—आकांक्षा न करती हुई; विहरइ—समय व्यतीत करने लगी; तए णं—उसके अनन्तर; सा महासेणकण्हा—वह महासेनकृष्णा; अज्जा—आर्या; अज्जचंदणाए—आर्य चन्दना के; अंतिए—पास; सामाइयाइं—सामायिक-आचारांग सूत्र आदि; एक्कारस—ग्यारह; अंगाइं—अंग शास्त्रों को; अहिज्जित्ता—पढ़ करके; बहुपडिपुण्णाइं—परिपूर्ण; सत्तरस—सत्रह; वासाइं—वर्षों तक; परियायं—पर्याय-साधु वृत्ति का; पालइत्ता—पालन करके; मासियाए—मासिक, एक महीने की; संलेहणाए—संलेखना (आमरण अनशन) से अप्पाणं—अपनी आत्मा को; झूसेत्ता—आसेवित करके— अपनी आत्मा को मोक्ष के अनुकूल बना कर; अणसणाए—अनशन (उपवास) द्वारा; छेदेत्ता—छोड़ कर; जस्सट्ठाए—जिस प्रयोजन के लिये; कीरइ—ग्रहण किया था; जाव—यावत्-नग्नभाव—साधु जीवन; तमट्ठं—उस प्रयोजन को; आराहेइ—आराधना करती है, उसे सिद्ध कर लेती है;

चरिम—अन्तिम; **उस्सासणिसासेहिं**—श्वासोच्छ्वास—साँसों से; **सिद्धा**—सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है; **बुद्धा**—बोध—केवल ज्ञान में रमण करती है; (प्रस्तुत वर्ग में वर्णित दसों देवियों के दीक्षा पर्याय का वर्णन करते हैं) **अार्या**—आदि महासती काली देवी की दीक्षा-पर्याय **अट्ठ वासा**—आठ वर्षों की थी; **य**—यह अव्ययपद पाद पूर्ति के लिये प्रयोग में लाया गया है; (इससे आगे की शेष नौ महासतियों की दीक्षा पर्याय); **एगोत्तरियाए**—उत्तरोत्तर—आगे-आगे एक-एक की वृद्धि करके दसवीं महासती की दीक्षा पर्याय; **जाव**—यावत्; **सत्तरस**—सतरह वर्ष की समझनी चाहिए अर्थात् दूसरी महासती की नौ वर्ष, तीसरी की दस, चौथी की ग्यारह; पांचवीं की बारह, छठी की तेरह; सातवीं की चौदह, आठवीं की पन्द्रह, नौवीं की सोलह और दसवीं महासती की सत्रह वर्षों की दीक्षा पर्याय है; **सेणियभज्जाणं**—महाराजा श्रेणिक की भार्याओं धर्म-पत्नियों की; **एसो**—यह; **खलु**—यह अव्ययपद निश्चयार्थक है; **परियाओ**—दीक्षा पर्याय-दीक्षा की पर्याय—अवस्था; **णायव्वो**—जाननी चाहिये।

मूलार्थ—महासती महासेनकृष्णा अपनी गुरुणी महासती आर्या चन्दनाके सान्निध्य में रह कर व्रत, बेला, तेला आदि अनेकविध तप के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई समय व्यतीत करती है। इस कठोर तप के कारण इनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया, तथापि तपोजन्य आन्तरिक तेज के कारण वह अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रही थी।

एक बार महासती महासेनकृष्णा पिछली रात्रि को धर्म-जागरण करती हुईविचार करने लगी कि मेरा शरीर तपस्या से अत्यन्त दुर्बल हो गया है, तथापि इसमें अभी कुछ बल शेष है, अतः मुझे चाहिए कि महासती आर्य चन्दना से आज्ञा लेकर संलेखना की आराधना करूं, आमरण अनशन आरंभ करदूं। भगवती सूत्र के द्वितीय शतक के उद्देशक प्रथम में जिस प्रकार मुनिवर स्कन्दक ने चिन्तन किया था, ठीक उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा ने संथारा करने का विचार किया। अन्त में महासती आर्य-चन्दना से आज्ञा लेकर अपने विचार के अनुसार आमरण अनशन अंगीकार करके मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

आमरण अनशन अंगीकार करने के अनन्तर महासती आर्यचन्दना के पास सामायिक (आचारांग सूत्र) आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन किया। इस तरह परिपूर्ण सत्तरश वर्षों तक संयम साधना की आराधना करने के अनन्तर एक महीने की संलेखना (संथारा) के द्वारा अपनी आत्मा को परिमार्जित करके उपवासों द्वारा ६०

भोजन छोड़कर जिस उद्देश्य के लिये इन्होंने साधु-जीवन अंगीकार किया था । उसे परिपूर्ण कर लिया और अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ सिद्ध एवं बुद्ध पद प्राप्त कर लिया।

प्रस्तुत आठवें वर्ग में काली आदि दस महासतियों के जीवन वर्णित हुए हैं। ये दसों महाराजा श्रेणिक की भार्याएं थीं। इन सबकी दीक्षापर्याय इस प्रकार है—

१. काली देवी	आठ वर्ष	२. सुकाली देवी	नव वर्ष
३. महाकाली देवी	दस वर्ष	४. कृष्णा देवी	ग्यारह वर्ष
५. सुकृष्णा देवी	बारह वर्ष	६. महाकृष्णा देवी	तेरह वर्ष
७. वीरकृष्णा देवी	चौदह वर्ष	८. रामकृष्णा देवी	पन्द्रह वर्ष
९. पितृसेनकृष्णादेवी	सोलह वर्ष	१०. महासेनकृष्णादेवी	सत्रह वर्ष

व्याख्या—आयंबिल-वर्धमान नामक तप की रूपरेखा का परिचय पिछले सूत्र में करवाया जा चुका है। चौदह वर्ष लगातार अमल-तपस्या करनी साथ में उपवास करना बड़ा कठिन कार्य है। ऐसा घोरातिघोर तप कोई बहुत बड़ा साहसी, सहिष्णु, बली और गंभीर व्यक्ति ही कर सकता है। महासती महासेन कृष्णा ऐसी ही साहसशीला व्यक्तियों में से एक थी। इन्हें तो साहस और सहिष्णुता एवं सबलता की अनुपम निधि ही समझना चाहिए। सूत्रकार कहते हैं कि आयंबिल वर्धमान तप की आराधना तथा व्रत, बेले आदि अनेकविध तपस्याओं की परिपालना के कारण महासती महासेनकृष्णा बड़ी दुबली हो गई थी। उनका शरीर मांस और रक्त से रहित हो गया था, इनके शरीर की धमनियां—नाड़ियां प्रत्यक्ष दिखाई देने लग गई थीं। वह सूख कर हड्डियों का केवल पंजर बन रही थीं। उठते-बैठते, चलते-फिरते उसकी हड्डियों से कड़-कड़ की ध्वनि उठने लगी थी। इतना कुछ हो जाने पर भी उनकी तपस्यागत रुचि में न्यूनता नहीं आ पाई थी। आयंबिल वर्धमान तप की आराधना के अनन्तर वे अपनी गुरुणी महासती चन्दनबाला की सेवा में पधारीं और वहां रह कर भी इन्होंने तप से विश्राम नहीं किया। सूत्रकार कहते हैं कि वे वहां पर भी व्रत, बेले, तेले से लेकर महीने तक और अन्य अनेकविध तप करती रहीं। यह इनकी तपः-प्रियता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

यह सत्य है कि आयंबिल-वर्धमान तप तथा अन्य अनेकविध तप का आराधन करने के कारण महासती महासेनकृष्णा अत्यन्त दुर्बल हो गई थी, उसे उठने-बैठने में भी कष्टानुभूति होती थी, तथापि तपस्या भगवती की सम्यग् आराधना के कारण उनका आत्मिक तेज अत्यन्त बढ़ गया था। उनके आत्मिक तेज की प्रकर्षता को अभिव्यक्त करने के लिये स्वयं सूत्रकार को "तवेणं तेएणं तवतेए सिरीए अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ" यह शब्द कहने पड़े।

एक बार पिछली रात में महासेनकृष्णा धर्म-जागरण कर रही थीं। उस समय इनको विचार आया कि यह ठीक है कि तपस्या भगवती की आराधना के कारण मेरा शरीर अत्यंत कृश अर्थात् दुर्बल हो गया है, फिर भी मेरे शरीर में कुछ न कुछ शक्ति विद्यमान है। मुझे इससे लाभ उठाना चाहिए, मुझे चाहिए कि कल मैं अपनी आदरास्पद गुरुणी महासती चन्दनबाला के चरणों में उपस्थित होकर उनकी आज्ञा से अन्न-जल का त्याग करके संलेखना (संथारे—आमरण अनशन) की आराधना करूं। यह विचार करने के अनन्तर जब सूर्योदय हुआ तब महासती महासेनकृष्णा रात्रि के आए हुए विचार को अपनी गुरुणी महासती चन्दना की सेवा में निवेदन करके उसके लिये उनसे आज्ञा प्राप्त करती है। आज्ञा प्राप्त होने पर इन्होंने अन्न-जल का परित्याग करके संलेखना की आराधना आरम्भ की। संलेखना की आराधना करते हुए इन्होंने मृत्यु की कभी आकांक्षा नहीं की अथवा यूं कहें कि संलेखना-काल में इनका मन कभी डावांडोल नहीं हुआ। वे सर्वथा स्वस्थ रहीं और आत्मसमाधि में ही लगे रहीं।

महासती महासेनकृष्णा की दीक्षापर्याय सत्रह वर्ष की थी। सत्रह वर्षों तक इन्होंने अहिंसा संयम तथा तप की त्रिवेणी में जी भर कर गोते लगाए, जन्म-जन्मान्तरों के कर्म-मल से लिप्त आत्मा को बिल्कुल विशुद्ध बना लिया। एक महीने की संलेखना से मोक्ष के अनुकूल कर लिया। एक महीने का इनको संथारा आया। इसमें इन्होंने साठ भोजन छोड़े। इस प्रकार परम साध्य निर्वाण-पद को प्राप्त करने के लिये जिस उद्देश्य को लेकर इन्होंने संसार की मोहमाया से किनारा कर साधु-जीवन अंगीकार किया था, उस को सफल बनाकर जीवन के अंतिम श्वासोच्छ्वास के साथ सिद्ध-गति प्राप्त कर ली और अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध और सर्व दुःख प्रहीण आदि पदों से विभूषित हो गईं।

"ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी"—यहां पठित **जाव** पद प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में वर्णित—**धमणिसंतया जाया यावि होत्था, से जहा इंगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भास-रासि पलिच्छण्णा, तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव**" इन पदों का बोधक है। इनका अर्थ पृष्ठ ४०८ पर लिखा जा चुका है।

"पुव्वरत्तावरत्तकाले"—**पूर्वरात्रापररात्रकाले—रात्रः पश्चिमे भागे**, अर्थात् रात्रि के पिछले भाग को 'पूर्वरात्रापररात्रकाल' कहते हैं। अर्धमागधी कोषकार इस शब्द का अर्थ—मध्यरात्रि करते हैं।

"चिन्ता जहा खंदयस्स जाव"—का अर्थ है, जिस प्रकार स्कन्धक मुनि के मन में विचार उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार महासती महासेनकृष्णा के हृदय में विचार उत्पन्न हुआ। महामहिम स्कंधक का वर्णन भगवती सूत्र के दूसरे शतकके पहले उद्देशक में किया गया है। स्कंधकमुनि का निर्देश करके सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि तपस्या से अत्यन्त दुर्बल होने पर जैसे स्कन्धक मुनि के हृदय में अन्नजल का परित्याग करके संलेखना की आराधना का विचार उत्पन्न हुआ था, वैसे ही विचार महासती महासेनकृष्णा के मानस में प्रकट हुए। यहां पठित **जाव** पद स्कन्धक मुनि से सम्बन्धित

पाठ की ओर संकेत कर रहा है।

"आपुच्छइ जाव संलेहणा"—यहां पठित **जाव** पद **आपुच्छित्ता अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए,** आदि पदों का संसूचक है।

"कालं अणवकंखमाणी विहरइ"—का अर्थ है—काल की आकांक्षा न करती हुई विहरण करती है। सूत्रकार ने यह पद देकर यह ध्वनित किया है, कि महासती महासेनकृष्णा अत्यन्त दुर्बल होने पर भी कभी डावांडोल नहीं हुई, उसके मन में कभी ग्लानि नहीं आई। भगवती तपस्या के प्रति इसकी जो निष्ठा थी— आस्था थी उसमें कोई अन्तर नहीं आने पाया। वह कभी दुःखी नहीं हुई और दुःखी होकर उसने कभी नहीं सोचा, कि इस कष्टमय जीवन से मरना अच्छा है। इन्हीं भावों को सूत्रकार ने **कालं 'अणवकंखमाणी'** इन पदों से संसूचित किया है।

"सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता"—इन पदों का अर्थ स्पष्ट है। प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में महासती काली देवी के जीवन में अंग-शास्त्रों के दो बार पढ़ने का उल्लेख है। उसीके अनुसार इस दशम अध्ययन में दो बार अग शास्त्र पढ़ने की बात देखने को मिल रही है।

"मासियाए संलेहणाए णोसासेहिं सिद्धा" इन पदों का अर्थ प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है।

अट्ठ य वासा आदी' यहां पठित आदि शब्द प्रस्तुत वर्ग के प्रथम अध्ययन में वर्णित महासती कालीदेवी का वाचक है, कालीदेवी ने आठ वर्षों तक दीक्षा-पर्याय का पालन किया था। **"एकोत्तरियाए जाव सत्तरसं"** का अर्थ है—क्रमशः उत्तरोत्तर आगे-आगे एक-एक महासती की दीक्षा-पर्याय में एक-एक वर्ष की वृद्धि कर लेनी चाहिए। दीक्षा-पर्याय-पालन की तालिका इस प्रकार है—

संख्या	नाम	दीक्षा पर्याय	संख्या	नाम	दीक्षा पर्याय
१	काली देवी	८	६	महाकृष्णा देवी	१३
२	सुकाली देवी	९	७	वीरकृष्णा देवी	१४
३	महाकाली देवी	१०	८	रामकृष्णा देवी	१५
४	कृष्णा देवी	११	९	पितृसेनकृष्णा देवी	१६
५	सुकृष्णा देवी	१२	१०	महासेनकृष्णा देवी	१७

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित महासती महासेन कृष्णा ने सत्रह वर्षों तक संयम-साधना संपन्न की।

'परियाओ' यह शब्द दीक्षा-काल का बोधक है। तथा **'सेणियभज्जाणं'—श्रेणिकभार्याणाम्"** यह पद देकर यह प्रकट किया गया है कि प्रस्तुत वर्ग में वर्णित काली देवी, सुकाली देवी आदि दसों महासतियां राजगृह-नरेश महाराजा श्रेणिक की धर्मपत्नियां थीं।

प्रस्तुत दशम अध्ययन की समाप्ति के साथ अन्तगड-सूत्र का आठवां वर्ग समाप्त हो जाता

है। अन्तगड-सूत्र के सभी वर्गों में, तथा वर्गों के सभी अध्ययनों में भगवती तपस्या के विलक्षण चमत्कारों तथा परम साध्य निर्वाण-पद प्राप्त करवाने की उसकी क्षमता का निर्देश किया गया है। महासती काली देवी आदि सभी महासतियों ने जिस कार्य की सिद्धि के लिये संयम अंगीकार किया था, उसमें सफलता करवानेवाला एक मात्र उनका तपोमय जीवन था। उसीके प्रभाव से उन्होंने सर्व प्रकार के कर्ममल को भस्मसात् करके परम कल्याणरूप निर्वाण पद को प्राप्त किया।

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

उपसंहार

सूत्रकार ने जैसे प्रत्येक अध्ययन की प्रस्तावना और उसका उपसंहार करते हुए उत्क्षेप और निक्षेप इन दो पदों का उल्लेख करके प्रत्येक अध्ययन के आरंभ और समाप्ति का बोध कराया है, उसी क्रम के अनुसार श्री अन्तगड सूत्र का उपसंहार करते हुए, तथा सूत्र में वर्णित वर्गों और अध्ययनों का संक्षिप्त परिचय कराते हुए सूत्रकार समाप्ति-सूचक पदों का उल्लेख करते हैं—

मूल—एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि।

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो, अट्ठ वग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति, तत्थ पढम-बितिय-वग्गे दस-दस उद्देसगा, तइय-वग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थ पंचम-वग्गे दस-दस उद्देसगा, छट्ठ-वग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठम वग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाणं।

छाया—एवं खलु जंबू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण यावत् सम्प्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अन्तकृद्दशानामयमर्थः प्रज्ञप्तः इति ब्रवीमि।

अन्तकृद्दशानामंगस्य एकः श्रुतस्कन्धः, अष्ट वर्गाः अष्टसु चैव दिवसेषु उद्दिश्यन्ते, तत्र प्रथम-द्वितीय वर्गे दश-दश उद्देशकाः, तृतीयवर्गे त्रयोदश उद्देशकाः, चतुर्थ-पंचम-वर्गे दश-दश उद्देशकाः, षष्ठ वर्गे षोडश उद्देशकाः सप्तमवर्गे त्रयोदश उद्देशकाः, अष्टमवर्गे दश उद्देशकाः, शेषं यथा ज्ञाताधर्मकथानाम्।

पदार्थ—एवं—इस प्रकार; **खलु**—यह अव्यय पद निश्चय अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है; **जंबू**—हे जम्बू !; **आइगरेणं**—आदिकर—धर्म-तीर्थ के आरंभकर्ता; **जाव**—यावत्; **संपत्तेणं**—मोक्ष-सम्प्राप्त; **समणेणं**—श्रमण-तपस्वी; **भगवया**—भगवान; **महावीरेणं**—महावीर स्वामी ने; **अट्ठमस्स**—आठवें; **अंगस्स**—अंग-शास्त्र; **अंतगडदसाणं**—अन्तकृद्दशांग सूत्र का; **अयमट्ठे**—

यह अर्थ; पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है (श्री सुधर्मा-स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू !); त्ति—इस प्रकार; बेमि—मैं कहता हूं; अन्तगडदसाणं—अन्तगडसूत्र; अंगस्स—आठवें अंग का; एगो—एक; सुयक्खंधो—श्रुत-स्कंध है; अट्ठ—आठ; वग्गा—वर्ग हैं; अट्ठसु चेव दिवसेसु—आठ ही दिनों में; उद्दिसिज्जन्ति—उपदेश होता है; तत्थ—उनमें; पढम—पहले और; बितिय-वग्गे—दूसरे वर्ग में; दस-दस—दस दस; उद्देसगा—उद्देशक हैं; तइय-वग्गे—तीसरे वर्ग में; तेरस उद्देसगा—तेरह उद्देशक हैं; चउत्थ—चौथे और; पंचम-वग्गे—पांचवे वर्ग में; दस-दस—दस-दस; उद्देसगा—उद्देशक है; छट्ठ-वग्गे—छटे वर्ग में; सोलस—सोलह; उद्देसगा—उद्देशक हैं; सत्तम वग्गे—सातवें वर्ग में; तेरस उद्देसगा—तेरह उद्देशक हैं; अट्ठम-वग्गे—आठवें वर्ग में; दस उद्देसगा—दस उद्देशक हैं; सेसं—शेष वर्णन; जहा—जिस प्रकार; नायधम्मकहाणं—ज्ञाता धर्मकथा के समान जानना चाहिए।

मूलार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय से, धर्म के आदि संस्थापक यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त—श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग अंतगड सूत्र का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादन किया है। "इस प्रकार मैं कहता हूं।

अन्तकृद्दशांग सूत्र का एक श्रुतस्कंध है। इसमें आठ वर्ग हैं। इनका आठ दिनों में उपदेश किया जाता है। प्रथम तथा द्वितीय वर्ग में दस-दस अध्ययन हैं। इसी प्रकार तीसरे वर्ग में तेरह, चौथे में दस पांचवें में दस, छठे में सोलह, सातवें में तेरह, आठवें वर्ग में दस अध्ययन हैं। जिस बात की प्रस्तुत सूत्र में व्याख्या नहीं की गई, उसे श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

व्याख्या—अन्तगड सूत्र के आठवें वर्ग में वर्णित अध्ययनों का अर्थ सुनाने के अनन्तर मंगल-मय आर्य सुधर्मा स्वामी अपने सुविनीत, आज्ञाकारी, शास्त्रस्वाध्याय-रसिक एवं प्रिय शिष्य आर्य जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—कि हे जम्बू ! अहिंसा, संयम तथा तप रूप धर्म के आदि प्रवक्ता यावत् मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तगड सूत्र का यह अर्थ बताया है। अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग से लेकर आठवें वर्ग तक जिन-जिन राजकुमारों, राजाओं, श्रावकों तथा श्राविकाओं की जीवनियों का प्रतिपादन किया गया है, वे सब जीवनियां स्वयं भगवान महावीर ने बताई हैं। उनसे सुनी हुई बातें मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर रहा हूं। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बू अनगार के सन्मुख अन्तगड सूत्र का मूलकर्त्ता भगवान महावीर स्वामी को जो उद्घोषित किया है, इससे प्रस्तुत सूत्र की प्रामाणिकता में किसी भी प्रकार के संदेह के लिये कोई अवकाश नहीं रह जाता। इस कथन से दो बातें प्रमाणित होती हैं—

१. अर्थ रूप से सूत्र की रचना करनेवाले स्वयं तीर्थंकर भगवान हैं।

२. भगवान की वाणी को सूत्र रूप से व्यवस्थित करनेवाले गणधर महाराज हैं।

अन्तगड सूत्र अंगशास्त्रों में आठवां अंगशास्त्र है और इसका एक श्रुतस्कन्ध है। श्रुत आगम या शास्त्र को और स्कंध उस शास्त्र के बड़े खण्ड या विभाग को कहते हैं। इस विशाल विभाग के छोटे विभाग को वर्ग और वर्ग के एक छोटे भाग को अध्ययन या उद्देशक कहा जाता है। अध्ययन और उद्देशक ये दोनों समानार्थक शब्द हैं। यही कारण है, कि सूत्रकार वर्गों की व्याख्या में अध्ययन शब्द का प्रयोग करते हैं और प्रस्तुत उपसंहार-सूत्र में उन्होंने उद्देशक शब्द का प्रयोग किया है।

अन्तगड सूत्र का एक श्रुतस्कंध है जिसमें आठ वर्ग हैं। किस वर्ग में कितने अध्ययन हैं ? इस प्रश्न का सूत्रकार ने स्वयं समाधान कर दिया है। सूत्रकार के कथनानुसार वर्ग गत अध्ययनों की तालिका इस प्रकार है—

वर्ग संख्या	अध्ययन संख्या	लिंग	वर्ग संख्या	अध्ययन संख्या	लिंग
पहला	दस	पुरुष	पाँचवां	दस	स्त्री
दूसरा	दस*	पुरुष	छठा	सोलह	पुरुष
तीसरा	तेरह	पुरुष	सातवां	तेरह	स्त्री
चौथा	दस	पुरुष	आठवां	दस	स्त्री

आठ वर्गों में वर्णित सभी अध्ययनों का संकलन करने पर इनकी संख्या ९२ होती है। इन में ५९ पुरुष और ३३ नारियां है। तप संयम की कठोर साधना द्वारा इन सभी ने परमसाध्य निर्वाण-पद प्राप्त किया था। आठ वर्गों में वर्णित इन अध्ययनों का वाचन आठ दिनों में करना होता है। आठ वर्गों की क्रमशः आठ दिनों में एक-एक वाचना होनी चाहिए या इस से अधिक ? यह व्याख्याता की अपनी सुविधा की बात है। यदि सभी वर्ग एक समान होते तब तो एक-एक वर्ग का एक-एक दिनमें उपदेश होना सभव है, परन्तु कोई वर्ग छोटा है, तो कोई वर्ग बड़ा है। ऐसी दशामें एक वर्ग का एक दिन में ही व्याख्यान होना असम्भव है। इसीलिये सूत्रकार ने यहां सामान्य रूप से कह दिया है कि आठ दिनों में इन आठ वर्गों का उपदेश समाप्त हो जाना चाहिए। एक दिन में एक वर्ग का पढ़ना ही आवश्यक है ऐसा कोई संकेत सूत्रकार ने नहीं किया। संभव है इसीलिये आजकल जैन-जगत् में महापर्व पर्युषण में अन्तगडसूत्र के पठन-पाठन की परम्परा पाई जाती है। सात पर्युषण पर्व के और आठवां दिन महापर्व सम्वत्सरी का। इस प्रकार इन आठ दिनों में साधु-साध्वी श्रावक और श्राविका द्वारा श्री अन्तगड सूत्र का वाचन होता है।

"**आइगरेणं जाव संपत्तेणं**" यहां पठित **जाव** पद से विवक्षित पदों का निर्देश पीछे पृष्ठ १२ पर कर दिया गया है। '**त्ति बेमि**' का अर्थ है—इस प्रकार मैं कहता हूं। इन पदों से आर्य सुधर्मा स्वामी यह ध्वनित करना चाहते हैं, कि मैंने जो कुछ कहा है, वह सब श्रमण भगवान महावीर का प्रतिपादन किया हुआ है।

"**उद्दिसिज्जंति**"—**उद्दिश्यन्ते—उपदिश्यन्ते**" का अर्थ है—कहे जाते हैं, उपदिष्ट किए जाते हैं।

*आजकल द्वितीय वर्ग में आठ अध्ययन संप्राप्त होते हैं।

"सेसं जहा नायधम्मकहाणं—शेषं संक्षिप्तोक्तिवशादवशिष्टं नगरादिवर्णनादारभ्य बोधिलाभान्तक्रियादि सर्वं सविस्तरं ज्ञाताधर्मकथावद् विज्ञेयम्—का अर्थ है अन्तगड सूत्र में नगर, नगर-नरेश, उद्यान आदि से लेकर बोधिलाभ तथा अन्त-क्रिया (मोक्ष) आदि का जो संक्षेप में वर्णन किया गया है, उस सबका विस्तृत वर्णन श्री ज्ञाताधर्मकथांग शास्त्र के समान जानना चाहिए।

नन्दी सूत्र आदि सूत्रों में वर्णित श्री उपासकदशांग आदि सूत्रों के परिचय में श्रुत ग्रहण के अनन्तर उपधान तप का वर्णन किया गया है। उपधान तप का अर्थ है—जिस तप के द्वारा सूत्र आदि की शीघ्र उपस्थिति हो। तप निर्जरा का सम्पादक होने से ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय तथा क्षयोपशम का कारण बनता है। इससे सूत्रादि का शीघ्र बोध हो जाता है तथा साथ में सूत्राध्ययन निर्विघ्नता से पूर्ण हो जाता है, अथवा अंग तथा उपांग सिद्धान्तों के पढ़ने के लिये आयंबिल, उपवास और निर्विकृति आदि लक्षणवाला तप विशेष उपधान तप कहलाता है। इस अर्थ की पोषक मान्यता आज भी प्रत्येक सूत्राध्ययन के साथ-साथ या अन्त में आयंबिल तपस्या के रूप में पाई जाती है। यह ठीक है कि वर्तमान में उपलब्ध आगमों में किस सूत्राध्ययन में कितना आयंबिल आदि तप होना चाहिए इस सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं मिलता, तथापि इनमें उपधान तप के वर्णन से पूर्वोक्त मान्यता की प्रामाणिकता निर्विवाद सिद्ध हो जाती है। आगमों के अध्ययन के समय आयंबिल तप की गुरुपरम्परा के अनुसार जो मान्यता आज उपलब्ध एवं प्रचलित है, उसकी तालिका इस प्रकार है—

११ अंग सूत्र—

आचारांग सूत्र	४० आयंबिल,	सूत्रकृतांग सूत्र	३० आयंबिल,
स्थानांग सूत्र	१८ ,,	समवायांग सूत्र	३ ,,
भगवती सूत्र	१८६ ,,	ज्ञाताधर्मकथांग	३३ ,,
उपासकदशांग	१४ ,,	अन्तकृद्दशांग	१२ ,,
अनुत्तरौपपातिकदशा	७ ,,	प्रश्न व्याकरण	५ ,,
विपाक सूत्र	२४ ,,		

१२ उपांग सूत्र—

औपपातिक सूत्र	३ आयंबिल,	प्रज्ञापना	३ ,,
जीवाभिगम	३ ,,	निरयावलिका	७ ,,
जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	३० ,,	पुष्पिका	७ ,,
कल्पावतंसिका	७ ,,	वृष्णिदशा	७ ,,
पुष्पचूला	७ आयंबिल,	सूर्य-प्रज्ञप्ति	३ आयंबिल,
चन्द्र-प्रज्ञप्ति	३ ,,	राजप्रश्नीय	३ आयंबिल,

४ मूल सूत्र—

दशवैकालिक सूत्र	१५ आयंबिल,	नन्दी सूत्र	२ आयंबिल
उत्तराध्ययन सूत्र	२९ आयंबिल,	अनुयोग द्वार	२९ आयंबिल

४—छेद सूत्र—

निशीथ सूत्र	१० आयंबिल	बृहत्कल्प सूत्र	२० आयंबिल,
व्यवहार सूत्र	२० आयंबिल	दशाश्रुतस्कंध	२० आयंबिल,

११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, और ४ छेद, ये ३१ सूत्र होते हैं। आवश्यक ३२ वां सूत्र है। इस सूत्र के ६ आयंबिल होते हैं। प्रस्तुत में अन्तगड सूत्र का प्रसंग है, अतः अन्तगड सूत्र के अध्ययन आदि करनेवाले महानुभावों के लिये गुरु-परम्परा के अनुसार आज की उपलब्ध धारणा के अनुसार १२ आयंबिलों का अनुष्ठान अपेक्षित रहता है।

अन्तगड सूत्र के आठ वर्गों में वर्णित अध्ययनों का अध्ययन करने से सहृदय पाठकों को अनेकानेक कल्याणकारी अमूल्य शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। इन शिक्षाओं से जीवन आदर्श बन सकता है और मानव निर्वाणपद को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। कुछ शिक्षाएं प्रस्तुत हैं—

१. कल्याणाभिलाषी साधक में धैर्य और दृढ़ निश्चय मंगलमय, वन्दनीय मुनिराज गजसुकुमार के समान होना चाहिए।

२. सहनशीलता एवं सहिष्णुता मुनिवर अर्जुनमाली जैसी होनी चाहिए।

३. राजगृह के मान्य प्रसिद्ध धनपति सेठ सुदर्शन की तरह धर्म पर आस्था रखनी चाहिये।

४. जीवन की वास्तविकता का दिग्दर्शन मुनिवर अतिमुक्तकुमार से प्राप्त करना चाहिए।

५. त्याग क्या है? तपस्या कैसे की जाती है? आदि प्रश्नों का समाधान कृष्णवासुदेव की पद्मावती आदि तथा महाराजा श्रेणिक की काली देवी आदि पट्टरानियों के जीवन से प्राप्त करें।

इस सूत्र से जो अन्य शिक्षाएं प्राप्त होती हैं, उनका यथा स्थान उल्लेख हो चुका है और अब यही निवेदन करना है कि हमें इस शास्त्र के स्वाध्याय-प्रकाश में मानव-जन्म को सफल एवं कृतकृत्य बनाने का सत्प्रयास करना चाहिये, अशुभ कर्मों के आचरण से सदा पराङ्मुख रह कर अहिंसा, सत्य आदि शुभ अनुष्ठानों को आराधना में सदा उद्यत रहना चाहिये। अन्त में हम अपने सहृदय पाठकों से विपाक सूत्र के वृत्तिकार पूज्य अभयदेव सूरि के वचनों मे अपने हार्द को अभिव्यक्त करते हुए विदा लेते हैं।

* इहानुयोगे यदयुक्तमुक्तम्, तद्धीधनाः प्राक् परिशोधयन्तु।
नोपेक्षणं युक्तिमदत्र येन, जिनागमे भक्तिपरायणानाम्॥

॥ श्री अन्तगडसूत्र समाप्त ॥

* आचार्य-प्रवर अभयदेवसूरि कहते हैं—कि मेरी इस व्याख्या में जो युक्तिविकल कहा गया है, जैनागमों के भक्तिरसिक मेधावी पुरुष उसका शीघ्र ही संशोधन कर लें, क्योंकि व्याख्यागत युक्तिविहीन स्थलों की उपेक्षा उचित नहीं है।